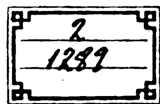
2
1289

# CLEMENTIS ALEXANDRINI OPERA QVAE EXSTANT:

Protrepticus, id est, Adhortatio ad Gentes: Pædagogi libri tres: Stromateωn libri octo, id est Veræ philosophiæ gnostici commentarii:

GENTIANO HERVETO AVRELIANENSI INTERPRETE.

Additæ sunt in fine SCHOLIA, obscuriora quædam auctoris loca illustrantia: & Rerum memorabilium INDEX.

TABELLA insuper indicans quæ paginæ Latinæ quibus Græcis paginis nostræ editionis respondeant.

Versionis loca nonnulla in Græci textus Annotationibus obiter & in transcursu emendantur.

Es del Collegio de S. Joseph de Lerida

Esta expurgado con arreglo al Expurgat.º del año 1707. Fr. Salvador de S. M.ª Magdalena

IN OFFICINA SANCTANDREANA, ANNO CHR. CIϽ IϽ XCII.

# PAGINARVM HVIVS VERSIONIS CVM GRÆco CLEMENTIS exemplari collatio.

| Versionis pagina | Gr.exemp. pag.vers. | Lat. | Græc. | Lat. | Græc. | Lat. | Græc. | Lat. | Græc. | Lat. | Græc. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 5 | 1 | 67 | 59,36 | 127 | 0 | 187 | 171,9 | 247 | 227,4 | 307 | 281,21 |
| 6 | 2,5 | 68 | 60,20 | 128 | 116,1 | 188 | 172,7 | 248 | 227,52 | 308 | 282,18 |
| 7 | 3,7 | 69 | 61,15 | 129 | 116,33 | 189 | 173,4 | 249 | 228,47 | 309 | 283,14 |
| 8 | 4,12 | 70 | 62,12 | 130 | 117,28 | 190 | 174,1 | 250 | 229,38 | 310 | 284,12 |
| 9 | 5,14 | 71 | 63,7 | 131 | 118,26 | 191 | 174,47 | 251 | 230,34 | 311 | 285,10 |
| 10 | 6,19 | 72 | 64,2 | 132 | 119,24 | 192 | 175,42 | 252 | 231,28 | 312 | 286,9 |
| 11 | 7,21 | 73 | 64,51 | 133 | 120,22 | 193 | 176,39 | 253 | 232,25 | 313 | 287,4 |
| 12 | 8,23 | 74 | 65,49 | 134 | 121,16 | 194 | 177,32 | 254 | 233,19 | 314 | 288,1 |
| 13 | 9,19 | 75 | 66,46 | 135 | 122,13 | 195 | 178,23 | 255 | 234,15 | 315 | 288,52 |
| 14 | 10,17 | 76 | 67,41 | 136 | 123,9 | 196 | 179,18 | 256 | 235,10 | 316 | 289,50 |
| 15 | 11,14 | 77 | 68,36 | 137 | 124,5 | 197 | 180,17 | 257 | 236,5 | 317 | 290,46 |
| 16 | 12,11 | 78 | 69,36 | 138 | 125,1 | 198 | 181,17 | 258 | 236,51 | 318 | 291,38 |
| 17 | 13,9 | 79 | 70,31 | 139 | 125,49 | 199 | 182,10 | 259 | 237,43 | 319 | 292,35 |
| 18 | 14,8 | 80 | 71,28 | 140 | 126,45 | 200 | 183,6 | 260 | 238,40 | 320 | 293,32 |
| 19 | 15,8 | 81 | 72,25 | 141 | 127,42 | 201 | 184,3 | 261 | 239,35 | 321 | 294,29 |
| 20 | 16,8 | 82 | 73,19 | 142 | 128,42 | 202 | 185,2 | 262 | 240,31 | 322 | 295,28 |
| 21 | 17,4 | 83 | 74,16 | 143 | 129,40 | 203 | 185,49 | 263 | 241,28 | 323 | 296,26 |
| 22 | 18,4 | 84 | 75,14 | 144 | 130,40 | 204 | 186,47 | 264 | 242,25 | 324 | 297,19 |
| 23 | 18,52 | 85 | 76,12 | 145 | 131,40 | 205 | 187,35 | 265 | 243,20 | 325 | 298,13 |
| 24 | 19,50 | 86 | 77,9 | 146 | 132,38 | 206 | 188,33 | 266 | 244,15 | 326 | 299,10 |
| 25 | 20,47 | 87 | 78,7 | 147 | 133,35 | 207 | 189,33 | 267 | 245,12 | 327 | 300,6 |
| 26 | 21,45 | 88 | 79,1 | 148 | 134,32 | 208 | 190,30 | 268 | 246,10 | 328 | 300,52 |
| 27 | 22,39 | 89 | 80,1 | 149 | 135,31 | 209 | 191,27 | 269 | 247,8 | 329 | 301,48 |
| 28 | 23,38 | 90 | 80,50 | 150 | 136,31 | 210 | 192,27 | 270 | 248,6 | 330 | 302,43 |
| 29 | 24,38 | 91 | 81,45 | 151 | 137,29 | 211 | 193,28 | 271 | 249,1 | 331 | 303,38 |
| 30 | 25,40 | 92 | 82,43 | 152 | 138,29 | 212 | 194,26 | 272 | 249,50 | 332 | 304,35 |
| 31 | 26,42 | 93 | 83,40 | 153 | 139,26 | 213 | 195,20 | 273 | 250,48 | 333 | 305,31 |
| 32 | 27,42 | 94 | 84,35 | 154 | 140,24 | 214 | 196,19 | 274 | 251,43 | 334 | 306,30 |
| 33 | 28,38 | 95 | 85,27 | 155 | 141,24 | 215 | 197,17 | 275 | 252,40 | 335 | 307,27 |
| 34 | 29,37 | 96 | 86,25 | 156 | 142,24 | 216 | 198,15 | 276 | 253,38 | 336 | 308,24 |
| 35 | 30,37 | 97 | 87,21 | 157 | 143,25 | 217 | 199,12 | 277 | [illegible] | 337 | 309,18 |
| 36 | 31,34 | 98 | 88,20 | 158 | 144,23 | 218 | 200,8 | [illegible] | 255,29 | 338 | 310,15 |
| 37 | 32,35 | 99 | 89,20 | 159 | 145,22 | 219 | 201,3 | 279 | [illegible] | 339 | [illegible] |
| 38 | 33,32 | 100 | 90,17 | 160 | 146,25 | 220 | 202,1 | 280 | 257,16 | 340 | 312,9 |
| 41 | 35,1 | 101 | 91,13 | 161 | 147,25 | 221 | 202,48 | 281 | [illegible] | 341 | [illegible] |
| 42 | 35,40 | 102 | 92,1 | 162 | 148,22 | 222 | 203,32 | 282 | 259,5 | 342 | [illegible] |
| 43 | 36,35 | 103 | 92,45 | 163 | 149,19 | 223 | 204,26 | 283 | 259,43 | 343 | 314,47 |
| 44 | 37,32 | 104 | 93,39 | 164 | 150,6 | 224 | 205,19 | 284 | 260,34 | 344 | 315,43 |
| 45 | 38,28 | 105 | 94,38 | 165 | 151,3 | 225 | 206,17 | 285 | 261,27 | [illegible] | [illegible] |
| 46 | 39,27 | 106 | 95,32 | 166 | 151,48 | 226 | 207,15 | 286 | 262,10 | 346 | 317,40 |
| 47 | 40,19 | 107 | 96,33 | 167 | 152,49 | 227 | 208,10 | 287 | [illegible] | 347 | 318,37 |
| 48 | 41,17 | 108 | 97,31 | 168 | 153,46 | 228 | 209,10 | 288 | 263,46 | 348 | 319,33 |
| 49 | 42,13 | 109 | 98,25 | 169 | 154,34 | 229 | 210,6 | 289 | 264,34 | [illegible] | 320,31 |
| 50 | 43,11 | 110 | 99,24 | 170 | 155,29 | 230 | 211,3 | 290 | 265,27 | 350 | 321,28 |
| 51 | 44,5 | 111 | 100,20 | 171 | 156,24 | 231 | 211,51 | 291 | [illegible] | 351 | 322,27 |
| 52 | 45,6 | 112 | 101,20 | 172 | 157,19 | 232 | 212,46 | 292 | 267,13 | 352 | 323,27 |
| 53 | 46,4 | 113 | 102,18 | 173 | 158,15 | 233 | 213,43 | 293 | 268,11 | 353 | 324,20 |
| 54 | 47,2 | 114 | 103,12 | 174 | 159,14 | 234 | 214,41 | 294 | 269,9 | 354 | 325,19 |
| 55 | 47,52 | 115 | 104,11 | 175 | 160,11 | 235 | 215,39 | 295 | 270,7 | 355 | 326,14 |
| 56 | 48,52 | 116 | 105,9 | 176 | 161,8 | 236 | 216,31 | 296 | 271,5 | 356 | 327,5 |
| 57 | 50,2 | 117 | 106,5 | 177 | 162,2 | 237 | 217,33 | 297 | 272,2 | 357 | 327,48 |
| 58 | 50,50 | 118 | 107,6 | 178 | 162,47 | 238 | 218,31 | 298 | 272,51 | 358 | 328,40 |
| 59 | 51,49 | 119 | 108,7 | 179 | 163,44 | 239 | 219,29 | 299 | 273,49 | 359 | 329,35 |
| 60 | 52,46 | 120 | 109,9 | 180 | 164,42 | 240 | 220,28 | 300 | 274,48 | 360 | 330,32 |
| 61 | 53,46 | 121 | 110,6 | 181 | 165,39 | 241 | 221,26 | 301 | 275,46 | 361 | 331,27 |
| 62 | 54,44 | 122 | 111,9 | 182 | 166,36 | 242 | 222,25 | 302 | 276,37 | 362 | 332,23 |
| 63 | 55,44 | 123 | 112,8 | 183 | 167,27 | 243 | 223,20 | 303 | 277,29 | 363 | 333,17 |
| 64 | 56,45 | 124 | 113,7 | 184 | 168,27 | 244 | 224,20 | 304 | 278,28 | 364 | 334,14 |
| 65 | 57,45 | 125 | 114,10 | 185 | 169,23 | 245 | 225,12 | 305 | 279,25 | | |
| 66 | 58,40 | 126 | 115,9 | 186 | 170,16 | 246 | 226,9 | 306 | 280,21 | | |

# RODOLPHO CARPENSI SANCTAE ROMANÆ ECCLESIÆ TIT. SANCTÆ Mariæ Tranſtyberinæ ampliſsimo Cardinali, Gentianus Heruetus S. D. P.

*VM nihil ſit pulchrius, nihil præclarius, nihil ad laudem & gloriam illuſtrius, quàm vitam ita inſtituere, vt ad publicã vtilitatem omnes rationes, omnia conſilia, & omnes deniq; actiones conferantur: nulli certè mihi reipublicæ magis videntur prodeſſe, ijs qui egregia veterum monimenta, qui virtute & doctrina cæteris antecelluere, è tenebris eruta in claram lucem proferũt. Qui meo quidem iudicio longè in hoc cæteros ſua ſuperant beneficentia, quòd quantumvis magna ſint aliorum beneficia, illis certè de ijs tantùm qui viuunt bene merentur: horum verò inſignia merita, ſibi non ſolùm viuos, ſed eos etiam qui è viuis exceſſere deuinciunt. Nam & apud veteres qui hanc vitam reliquere ſcriptores, magna initur gratia, cùm quæ ad publicam vtilitatem diuinè ſcripſerunt, communicantur omnibus, & qui ſunt ſtudioſi, ex eorum lucubrationibus magnum fructum percipiẽtes, tum ipſis authoribus, tum ijs quoq; quorum opera authores in lucem prodierũt, agnoſcunt ſe debere plurimum. Quòd ſi vllus vnquam ſcriptor antiquus diu planè ſepultus tandem exijt in lucẽ, à quo maxima in publicum redundauit vtilitas, Clemens certè Alexãdrinus, qui fuit Pantæni Martyris diſcipulus, & Magiſter Origenis, propter admirabilem eius eruditionem, ſit neceſſe eſt omnibus longè vtiliſsimus. Ac de eius quidem inſigni doctrina, cùm Euſebij Cæſarienſis, Theodoriti Epiſcopi Cyrenſis, Diui Hieronymi Stridonenſis, & aliquot aliorum virorum illuſtrium poſsim proferre teſtimonia, mihi in præſentia vnus ſuffecerit Cyrillus Patriarcha Alexandrinus, qui de eo ita ſcribit aduerſus Iulianum:* Ἔφη δὲ καὶ Κλήμης, ἀνὴρ ἐλλόγιμος, ὃ μὲν τοι καὶ πολυΐστωρ, περί τε θεῶν καὶ ναῶν ὧδε. οὐ γὰρ οὐδὲ τοῦτο σιωπήσομεν, πρὸς δὲ καὶ αὐτοὺς ἐλέγξομεν νεὼς μὲν εὐφήμως ὀνομαζομένους, τάφους δὲ γενομένους τούτους, καὶ τάφους νεὼς ἐπικεκλημένους. *quod eſt: De dijs autem & templis ſic dixit Clemens vir diſertus, & plurimarum rerum cognitione præditus. Neq; enim hoc celabimus, atque adeò hoc cõuincemus, ſpecioſo quidem nomine dici templa, fuiſſe autem ſepulchra ea quæ templa ſunt appellata. Et rurſus:* Ταύτης τῆς ἰδίᾳ μέμνηται ἱστορίας ἐν τοῖς στρωματεῦσι ὁ Κλήμης, ἀνὴρ ἐλλόγιμος καὶ φιλομαθὴς, καὶ ἀναγνωσμάτων ἑλληνικῶν πολυπραγμονήσας βάθος, ὡς ὀλίγοι τάχα τῶν πρὸ αὐτοῦ. *Huius, inquit, hiſtoriæ ſeparatim meminit Clemens in Stromatibus, vir diſertus & in primis ſtudioſus, & qui eorum quæ apud Græcos leguntur altitudinem ea cura ac ſtudio perſcrutatus eſt, quo pauci vtiq; ex ijs qui eum præceſſere. Quàm is autem ſit vtilis futurus, hinc poteſt euidenter perſpici. Súnt ne aliqui, qui priſcis & ex alto petitis delectantur hiſtorijs? hi legant Clementem, qui omnes antiquas ita tenuit hiſtorias, vt nihil eorum quæ in vniuerſo terrarum orbe geſta ſunt, eum latuiſſe videatur. Sunt qui veterum Poetarum carmina perinde venerantur ac quædam diuina oraculorum reſponſa? hi Clementem magnifaciant neceſſe eſt, qui plurimorum Poetarum citat teſtimonia, quorum opera hodie funditus interiere. Sunt qui priſcos in deorum ſacrificijs velint ſcire ritus & cærimo-*

nias? hi adeant Clementem, qui omnia veterum deorum orgia & nefanda mysteria ita aperit, vt si quis adhuc inter Christianos ἑλληνίζει, & veteres Gentium mores & instituta laudat & admiratur (atqui vtinam nullus esset) is lecto Clemente, si non sit vel lapide stupidior, omnem de falsis dijs falsam abijciat opinionem, & eorum qui olim deos colebant, amentiæ eum pudeat necesse est. Sunt qui veterum Philosophorum velint decreta cognoscere? hi videant Clemētem, qui Philosophiæ totius originem, Philosophorum omnium familias, sectas, successiones & scita, ita tradit & describit, vt cùm vir tam insigniter doctus Christianam philosophiam omnibus prætulerit, eam esse planè diuinam, & à Deo reuera inspiratam & promulgatam, quantumuis increduli, vel inuiti fateantur oportet. Sunt qui veterum hæreticorum, qui Dei Ecclesiam in eius nascentis initio perturbarunt, dogmata cupiunt cognoscere? hi ea à Clemente explicata audient & confutata. Sunt qui aduersus nostri temporis hæreticos desiderant veterum authoritates? eos quoq; suo testimonio pulchrè instructos in plurimis dimittet Clemens. Sunt qui prauos ac corruptos mores corrigi cupiunt? at nemo est qui vitia acrius insectetur, nemo qui ad virtutes melius adhortetur, nemo qui rectè instituendæ vitæ viam melius demonstret. Sunt qui optant in integrum lapsam restitui disciplinam? hi cùm Clementis doctrinam & vitæ sanctitatem, vt par est, laudauerint, qui cùm esset solummodo presbyter, talis fuit, quales si essent permulti nostris temporibus Episcopi, præclarè ageretur cum Christiana republica: hi inquam Christum rogabunt, vt ijs qui hodie sibi commisso gregi præsunt, sancto suo Spiritu sanctam mentē inspiret. Cùm itaq; reipub. Christianæ tam vtilis sit futurus Clemens Alexandrinus, ijs plurimum deberi agnoscatur, magnæq; gratiæ habeantur & agantur æquum est, quorum opera effectum est, vt vir tantus in publicum exiret. Cuius Stromata quidem & Pædagogus ex Medicea bibliotheca, ea suppeditante clarissimo virtutisq; & doctrinæ amantissimo Principe, COSMO Florētiæ duce, in apertum prodiere. A te autem amplissime Cardinalis, benignè est suppeditatus is liber qui dicitur προτρεπτικός. Is est autem oratio, qua dehortatur Gentes à cultu simulachrorum, & ad veram hortatur religionem. Qui cùm nuper editus esset, & aliquot meis amicis visum esset facturum me operæprecium si eum latinè vertere, eam ego prouinciam eò suscepi confidentius, quòd à tuo exemplari antiquissimo, & permultis in eo adiectis scholijs illustrato, adiutus sim. Quo nomine cùm & ego & hi qui ex meo labore aliquam accipient vtilitatem, tibi multum debeant, & his meis ad te literis testatum relinquere, & hoc Clementis opusculum quidem, sed varia & multiplici doctrina refertum, tibi dedicare & offerre constitui. Quod vt grato animo accipias, te etiam atq; etiam oratum velim. Vale Cardinalis amplissime. Romæ, pridie Cal. Ianua. M. D. L.

# CLEMENTIS ALE-
## XANDRINI ADHORTATORIA
### AD GRAECOS, SEV AD GENTES.

MPHION Thebanus, & Arion Methymnęus, fuerunt quidem ambo arte canendi præditi, Grecorum autem in choro: & fabula & canticũ de ambobus hucusq; canitur, quòd hic quidem piscem inescauerit, ille verò Thebas ædificauerit. Thracius autem alius Sophista (alia est hæc Græca fabula) solo cantu feras reddebat mansuetas: quinetiã & cæteras arbores, & fagos, suis locis motas musica trãsplantabat. Possum tibi aliam quoq; narrare fabulam, huic nõ minus quàm fratri frater est similis, similem, & Cantorem Eunomum Locrensem, & Cicadam Pythicam. Dies festus maximo Græcorum cõuentu Pythone celebrabatur propter Draconem mortuũ, Eunomo canente serpentis epitaphium, nescio an hymnus an lamentatio serpentis esset canticum. Erat autem certamẽ constitutum, & æstus tempore cithara canebat Eunomus, quando cicadæ quæ sole incalescebant, sub ramis canebant in montibus. Canebant autem nõ Draconi mortuo, sed Deo sapientissimo verè liberum canticum, modis Eunomi præstantius. Locro chorda rumpitur, in citharæ iugũ advolat cicada, & super in
B strumẽtum tanquam super ramum personat, & citharæ cantico apta harmonia cõueniens citharœdus, chordam suppleuit deficientem. Cicada ergo Eunomi cantu ducitur, vt vult fabula, quæ æneum Eunomum in Pythone posuit cum ipsa cithara, & Locri socium certaminis. Ea autem & sua sponte advolat, & sua sponte canit: Græcis aũt visus est fuisse histrio & imitator musicę. Quanam ergo ratione credidistis inanibus fabulis, existimãtes animantia demulceri musica: lætus autem ac speciosus vultus veritatis, solus, vt est verisimile, videtur vobis esse simulatus, & infidelitatis oculis subijcitur? Cithæron autem, & Helicon, & Odrysij montes, & Thracum quæ errori initiant mysteria, diuinis honoribus affecta, hymnisq; & laudibus sunt celebrata. Ego quidẽ, etsi mera sit fabula, ægrefero tot & tantas quæ à tragœdis referuntur calamitates. Vobis autem malorum quoq; descriptiones actus Poëtarum euaserunt. Sed actus quidẽ, & Lenæum celebrantes, & iam planè debacchãtes Poëtas, hedera vtriq; redimitos, mysterijs Bacchicis præter modum desipientes, cum ipsis Satyris, & insano Thyaso, & alio choro dæmonum, in Helicone & Cythærone qui consenuerunt includamus: supernè autem è cælis deducamus veritatem, vnà cum clarissima prudentia, in montem Dei sanctum, & sanctum chorum propheticum. Illa autem vel longè clarissima luce emicans vndiquaq; illuminet eos qui volutãtur in tenebris, & homines liberet ab errore, supernam dexteram, nempe intelligentiam, porrigens ad salutem. Ij verò ad se reuersi, Heliconem quidem & Cithæronem renuentes deserant, Sion autem habitent. Ex Sion enim egredietur Lex, & Verbum Domini ex Hierusalem. Verbum cæleste, ve- *Esa. 2.*
C rus germanusq; decertator, qui in totius mundi theatro coronatur. Canit autẽ meus quidem certè Eunomus, non Terpandri modum, neq; modum Capitonis, sed neque Phrygium, vel Lydium, vel Dorium, sed nouæ harmoniæ æternum modum, qui à deo accipit denominationem, Canticum nouum, Leuiticum,

*Luctu itaq; carens, grauiumq; obliuia ducens* — *Hom. Od. A.*
*Cunctorum.*

Iucundum quoddam & verum persuasionis medicamentum est cantico contemperatum. Mihi itaq; vidẽtur & Thracius ille Orpheus, & Thebanus, & Methymnæus, viri quidam, non viri, fuisse deceptores, qui prætextu musicæ vitæ perniciem afferentes, artificiosis quibusdam præstigijs ad corruptelas dæmoniacè incitantes, probra orgijs celebrantes, luctus in deorum cantica traducentes, primi deduxere homines ad simulachra, atque adeo lapidibus & lignis, hoc est, imaginibus & adumbrationibus, agrestem gentis excitauere cõsuetudinem: illam verè pulchram libertatem, eorum qui sub cęlo vitam egerunt, canticis & carminibus in extremã redigentes seruitutem. Sed nõ talis est meus cantor, sed venit paulò pòst dissoluturus acerbam seruitutem dęmonum tyrannidem obtinẽtium: ad suaue autem & benignum religionis & pietatis in Deum iugũ nos traducẽs, in cælum rursus euocat eos qui humi sunt abiecti. Solus quidem certè ex ijs qui vnquam fuerunt, difficillimas feras, homines mansuefecit. Volucres quidem, eos qui ex ipsis sunt leues: serpentes verò, eos qui deceptores: & leones, eos qui sunt animosi & ad iram cõcitati: sues autem, eos qui

sunt voluptati dediti:lupos aũt,eos qui sunt rapaces: lapides autẽ & ligna, sunt insipientes.Præterea aũt lapidibus quoq; est insensilior homo qui est tinctus ignorantia. A
Testis nobis accedat vox prophetica,veritati concinens, quæ miseretur eorũ qui sunt
Matth.3. cõtriti in ignorantia & amentia.Potens est enim Deus ex his lapidibus suscitare filios Abrahæ,qui miseratus multã inscitiam & cordis duritiẽ eorum qui lapiduerũt aduersus veritatẽ,excitauit semen pietatis in Deum,virtutẽ sentiens ex lapidibus illis,nempe Gentibus quę crediderunt lapidibus.Rursus ergo quosdã virulentos impostoresq;
Lucæ 3. ac simulatores,iustitiæ insidiantes,appellauit genimina viperarũ.Sed horũ quoq; serpentũ si quis pœnitentia ductus fuerit,Verbum lubẽs ac sua sponte sequẽs, homo Dei
Matth.7. efficitur.Alios aũt allegoricè dicit lupos pellibus ouiũ indutos,eos innuẽs,qui in forma hominũ sunt rapaces. Has ergo omnes immanissimas feras & tales lapides, ipse
Ad Tit.3. cælestis cantus in mãsuetos homines trãsformauit. Eramus enim, eramus nos quoq; aliquando insipientes,inobedientes, errantes, seruientes voluptatibus & cupiditatibus varijs,in malitia & inuidia degentes, odibiles, nos inuicem odio habentes,vt ait scriptura Apostolica.Quando autẽ benignitas & humanitas apparuit Seruatoris nostri Dei,non ex operibus in iustitia quę fecimus nos,sed secundum suam misericordiã nos saluos fecit.Vide quantũ potuerit nouũ Canticum:homines ex lapidibus, & homines fecit ex feris.Hi aũt qui erant alioqui vt mortui, qui eius quæ verè est vita non erãt participes,postquã cantici solùm fuerunt auditores,reuixerũt.Hoc tibi & vniuersum numerose cõcinneq; exornauit,& elementorũ dissensionẽ in ordinem redegit cõsonãtiæ,vt ei totus mundus fieret harmonia.& mare quidẽ dimisit solutũ, ei autem vt B
terrã inuaderet prohibuit:terrã aũt rursus stabilem & solidam effecit, quæ ferebatur, & ei mare terminũ præfixit.Iam verò ignis quoq; vehementiam aëre emollijt, veluti Doricã harmoniam Lydia attẽperans,& ęquam aëris frigiditatẽ ignis amplexu lenijt, hos extremos vniuersorũ sonos numerose & cõcinnè cõtemperans. Atq; incorruptũ quidem hoc canticũ,vniuersorum firmamẽtum,& harmonia omnium, à medijs ad fines,& ab extremis extensum ad media,cõcinnauit hoc vniuersum,nõ ex musica Thra
Gen.4. cia,quæ est Tubal musicæ similis,sed ex paterna Dei voluntate, quã Dauid admiratus est.Qui autẽ ex Dauid ortus est,& ante ipsum fuit,Dei verbũ, lyram quidẽ & citharã instrumenta inanima despiciens,cùm hunc mundũ,atq; etiam paruũ mundũ, nempe hominẽ,& eius animã corpus sancto spiritu cõcinnasset, psallit Deo per instrumentũ multarũ vocum,& huic instrumento,nempe homini,canit: Tu enim es cithara, & tibia,& templũ meum:cithara propter harmoniã, tibia propter spiritũ, templum propter verbum,vt illa quidem resonet,hæc verò inspirẽt, templum autem cõtineat Dominũ.Dauid certè rex citharœdus,cuius paulò antè meminimus,qui adhortabatur ad veritatẽ,dehortabatur aũt ab idolis,longè quidem aberat vt ipse laudaret dæmones,
2.Reg.8. qui vera musica ab ipso expellebantur,qua Saule à dæmone vexato, ille solummodo
ἐνεργουμένῳ canẽs,eum curauit.Pulchrum spirans instrumẽtum Dominus, hominẽ fecit ad suam
Cautè legendum. imaginẽ.Certè ipse quoq; est Dei cõcinnum & aptum instrumẽtum & sanctum, sapiẽtia supermũdana,verbum cæleste.Quidnam ergo vult instrumentũ,Dei verbũ, Dominus,& nouũ canticum?Patefacere oculos cęcorũ,& aperire aures surdorũ, & qui pedibus claudicãt vel errant,ad iustitiã deducere,Deum insipiẽtibus hominibus ostẽdere, C
interitũ compescere,mortẽ vincere,inobediẽtes filios patri recõciliare. Benignũ Dei instrumentũ Dñs,miseretur,castigat,hortatur,admonet,cõseruat, custodit, & doctrinæ mercedẽ ex redundanti quadam copia,nobis regnũ cælorũ promittit, hũc solum fructũ percipiẽs ex nobis,q̃ salui sumus.Vitiũ enim hominũ pascitur interitu: veritas aũt,sicut apis,nulli ex ijs quæ sunt detrimentũ afferẽs,ꝓpter solã salutẽ hominũ exultat.Habes ergo ꝓmissionẽ,habes benignitatẽ,euade gratię particeps, & meũ salutare canticũ ne ita existimes esse nouũ,vt vas,vel domũ:erat enim ante Luciferũ,& in prin
Ioan.1. cipio erat verbũ,& verbũ erat apud Deũ,& Deus erat verbũ.Est aũt vetus error: res noua verò apparet veritas.Siue ergo veteres Phryges docẽt fabulosæ capræ: siue rursus
Herodotus. Arcades,qui eos ante Lunã fuisse describũt poëtæ,siue rursus Ægyptios,hi qui hãc primã apparuisse terrã,deosq; & homines somniãt:sed nullus eorũ fuit ante hũc mundũ: nos aũt sumus ante mundi constitutionẽ,qui eò q̃ esse oporteret, in ipso prius Deo sumus geniti.Dei verbi sumus nos figmẽta ratione prędita,per quẽ prisci sumus,quoniã in principio erat verbũ.Sed quoniã Verbũ quidẽ erat ab alto petita origine, diuinũ vniuersorũ principium & fuit & est. Quia autẽ nunc nomen accepit olim sanctificatũ, potestate dignũ,Christus,nouum mihi vocatũ est canticũ.Hic ergo Verbũ Christus,& vt nos olim essemus,erat enim in Deo,& vt bene essemus,causa fuit. Nunc autẽ appa-

ruit

A fuit hominibus hic ipse Verbũ, qui solus est ambo, Deus & homo: & est nobis omniũ causa bonorũ, à quo edocti rectè viuere, ad vitã æternã transmittimur. Nam vt ait diuinus ille Dñi Apostolus, Gratia Dei salutaris omnibus hominibus apparuit, docẽs nos, vt abnegãtes impietatẽ & secularia desideria, moderatè & iustè & piè viuamus in hoc seculo, expectantes beatã spem & aduentũ gloriæ magni Dei, & seruatoris nostri Iesu Christi. Hoc est canticũ nouum, aduentus qui nunc refulsit in nobis, Verbi qui erat in principio, & prius fuit. Apparuit autẽ nuper, qui prius erat Seruator: apparuit qui est, in eo qui est, quoniã Verbũ qui erat apud Deũ, Doctor apparuit, per quẽ omnia sunt fabricata. Verbũ, qui cum eo quod finxit, vitã simul prębuit in principio, vt opifex, bene viuere docuit, cũ apparuisset vt magister, vt postea semp viuere suppeditaret vt Deus. Ille aũt non nunc quidẽ primũ misertus est nostri erroris, sed ab ipso altè petito principio: nunc aũt cùm iam periremus, apparẽs cõseruauit. Maligna enim & serpẽs bellua, oculos pręstringẽs redigit in seruitutẽ, & in hodiernũ vsq; diẽ homines affligit, barbarorũ ritu (vt mihi videtur) puniens, qui dicũtur cadaueribus alligare captiuos, donec cũ ipsis quoq; putrescãt. Hic ergo malus tyrãnus & draco, quoscũq; ab ortu sibi potuerit vẽdicare, lapidibus, & lignis & imaginibus, & aliquib. eiusmodi simulachris, misero supstitionis vinculo, viuos (vt dicitur) adducens, vnà cũ eis sepelit, donec vnà cũ eis interierint. Quamobrẽ, vnus enim est seductor, qui ab initio quidẽ Euã, nunc aũt alios quoq; iam homines ad mortẽ adducit, vnus & idẽ est nobis adiutor & opitulator dñs, à principio quidẽ propheticè præsignificãs, nunc aũt iam etiã apertè ad salutẽ adhortãs. Fugiamus ergo, præcepto parẽtes Apostolico, principẽ potestatis aëris, spiritus, q nunc operatur in filijs diffidẽtiæ, & ad seruatorẽ Dominũ accurramus, qui & nunc & semper adhortatur ad salutẽ, per prodigia & signa, in Ægypto, in deserto, & per rubrũ, & per eã, quæ humanitatis gratia Hebræos ancillę instar, sequebatur nubẽ. Atq; hoc q dẽ metu adhortabatur eos q erãt duro corde. Iam verò etiã per Mosem omnibus sapiẽtiæ numeris absolutũ, & veri amatorẽ Esaiã, & omnẽ chorum propheticũ, magis ex ratione, ad rationẽ seu Verbum cõuertit eos qui habẽt aures, & alicubi quidẽ maledictis incessit, alicubi verò etiã minatur, & nõnullos quidẽ deflet homines, nõnullis verò canit, quemadmodũ bonus medicus corporũ ægrotantiũ, alia quidem effingẽs cataplasmatibus, alia verò leuigãs, alia aũt exhauriẽs, alia aũt ferro quoq; diuidens, alia autẽ vrẽs, & nonnunq etiam secans, si qua ratione fieri posit, vt præter partẽ vel membrũ posit homo sanari. Multiplices quidẽ habet Seruator voces & modos ad salutẽ hominũ: minãs admonet, maledicẽs cõuertit, deflẽs miseretur, psallẽs p rubũ loquitur, quoniã illi signis egebãt & pdigijs: & igne terret homines, ex colũna flammã accendens, quod est simul gratiæ & timoris indiciũ: si obedieris, lucẽ, si nõ obedieris, ignẽ. Quoniam aũt & colũna & rubo caro est pretiosior, Prophetæ post illa loquũtur. Ipse est Dominus loquẽs in Esaia, ipse in Helia, ipse in ore Prophetarũ. Quòd si tu nõ credis Prophetis, fabulã aũt esse existimas & viros, & ignem, ipse tibi loquetur Dñs. Qui cùm in forma Dei esset, nõ rapinã arbitratus est esse æqualem Deo: seipsum aũt exinanijt misericors Dñs, hominem seruare cupiens. & ipse iam tibi Verbũ euidenter loquitur, ægreferens incredulitatẽ. Ego certè loquor, Dei Verbũ factus homo, vt tu quoq; discas

B

*Ad Tit. 2*

*Ephes. 2.*

*ἀπειθείας, incredulitatis.*

*Ad Philip. 2*

C ab homine, quãnã tandẽ ratione homo efficiatur Deus. Deinde, an nõ absurdũ, ô amici, Deũ quidem semper nos adhortari ad virtutẽ, nos aũt recusare vtilitatem, & differre salutẽ? An nõ Ioannes quoq; adhortatur ad salutẽ, & est vniuersum vox exhortatoria? Eum ergo rogemus, quisnã tu es ex hominibus? Heliã quidẽ se nõ esse dicet, Christum aũt esse negabit, vocem aũt esse fatebitur clamantẽ in deserto. Quis est ergo Ioãnes? Vt eũ vtcunq; exprimã, liceat dicere, vox Verbi adhortatoria, clamans in deserto. Quid clamas ô vox? dic nobis quoq;: Rectas facite vias Domini, præcursor Ioannes: & vox Verbũ præcurrit, vox adhortatoria, præparans ad salutẽ, vox adhortãs ad hæreditatẽ cælorũ, per quã sterilis & deserta nõ est amplius infertilis. Hãc mihi fœtus conceptionẽ prædixit vox angeli. Illa quoq; vox præcurrebat Dominũ, sterilẽ annuncians mulierẽ, vt Ioannes desertã. Per hanc ergo Verbi vocẽ, sterilis multos habet filios, & deserta fert fructũ. Hæ duæ voces dominũ præcurrentes, angeli & Ioannis, mihi quidem significant salutẽ repositã, nempe q, cùm hoc Verbum apparuerit, bonæ prolis fructũ recepturi simus, vitã æternam. Has ambas itaq; voces simul Scriptura colligẽs, totum aperit: Audiat quæ non parit, erumpat vocem quæ nõ parturit, quòd sunt plures filij desertę, quàm eius quę habet virũ. Virũ nobis annũciabat angelus, nos adhortabatur Ioannes vt agricolã cogitaremus, virũ quæreremus. Est enim hic vnus & idẽ, vir sterilis mulieris, agricola desertæ, qui diuina impleuit virtute & sterilẽ & desertam. Quia

*Esa. 40.*
*Ioan. 1.*

*Esa. 54.*

enim ingenuæ multi sunt filij,carebat autẽ liberis propter incredulitatẽ, quæ multos A
ab initio habuit filios,mulier Hebræa:sterilis accipit virum,& deserta agricolã.Dein-
de illa quidem,fructuũ,hæc verò fidelium,ambæ aũt matres per Verbum. Infidelibus
aũt in hodiernũ vsq; diem & sterilis & deserta relinquitur. Ioannes quidẽ præco Ver-
bi,ea vtiq; ratione adhortabatur, paratos esse ad Dei Christi adventũ: & id erat quod
*Luc.1.* tacitè significabat Zachariæ silentiũ,expectans fructum Christi præcursorẽ, vt Verbũ
lux veritatis,Propheticorũ ęnigmatum mysticũ absoluat silentium,factus Euangeliũ.
Tu autẽ si Deum verè videre desideras,sis particeps piaculorũ quæ Deo conveniunt,
non ramorũ lauri,& quorundam sertorum factorum ex lana & purpura,sed iustitia re
*Ioan.11.* dimitus,& cõtinentiæ fólijs contectus,sedulò Christum quæras. Ego, inquit, sum o-
stium.quod discere oportet ijs qui voluerint Deum intelligere, vt nobis omnes simul
portas cælorũ aperiat.Sunt enim rationales rationis seu Verbi portæ,quæ aperiuntur
*Matth.11.* claue fidei.Deum nemo nouit nisi filius,& cui filius reuelauerit. Bene autẽ scio,quòd
qui clausam portam tunc aperit,reuelat postea ea quæ sunt intus, & ostendit ea quæ
nec prius poterant cognosci,nisi ab ijs qui per Christum ambulassent, per quẽ solum
Deus cernitur.Impia ergo adyta ne inuestigetis,nec barathrorũ ora præstigijs plena,
aut Lebeten Thesprotæum,aut tripodem Cirrhæum,aut æs Dodonæũ. Gerandryon
autẽ arenis desertis honoratum,& quod illic est oraculũ,quod cum ipsa quercu emar
cuit,anilibus fabulis relinquatis.Silentio quidem certè mandatus est fons Castalius,
& alius fons Colophonis,& alia similiter perierunt fluenta diuinatoria, quæ certè fa-
stu plena,serò quidem,tandem tamen cõuicta sunt, vt quæ vnà cum suis effluxere fa- B
bulis.Narra nobis alius quoq; diuinationis, vel insanæ potius vanitatis oracula,Cla-
rium,Pythium,Didymeum,Amphiaraum,Apollinẽ Amphilochum. Quòd si velis, &
monstrorũ inspectores,augures,& aruspices,& somniorũ cõiectores vnà cum eis con
secra.Ad Pythium autẽ adductos simul statue aleuromantes & crithomantes, & eos
qui adhuc apud multos sunt in honore,ventriloquos. Iam verò adyta Ægyptiorũ, &
necromantiæ Hetruscorũ,demandentur tenebris.Sunt hæc verè insana hominũ infi-
delium cõmenta.Ad harum præstigiarũ mercaturæ societatẽ adducuntur capræ, quæ
sunt ad diuinationẽ exercitatæ: & corui, qui ab hominibus docentur dare responsa.
Quid tibi recenseam mysteria?Non propalabo quidẽ,vt aiunt olim Alcibiadẽ,sed per
Verbũ veritatis,præstigias quæ in eis latent rectè aperiam,& eos qui vestri dij vocan-
tur,quorũ sunt sacra mystica,tanquã in vitæ scena,veritatis contemplatoribus in me-
dium proferam & euoluã.Dionysum Mænolen orgijs Bacchi celebrãt,crudarum car-
nium esu sacram agentes insaniam,& cæsarũ carnium peragunt diuisionem, coronati
serpentibus,vlulantes Euã,Euam illam per quam error est cõsecutus:& signũ Bacchi-
corũ orgiorum est serpens mysterijs initiatus. Iam verò si accuratè vox spectetur He-
braica,nomẽ Heuia aspiratum,exponitur serpẽs fœmina.Ceres autẽ & filia Proserpi-
na iam in scena actus factæ sunt,erroremq; & raptum, & earũ luctum Eleusis illustrat
facibus.Mihi aũt videtur oportere dare etymologiam horũ vocabulorũ, Orgia,& my
steria.Orgia quidem dicũtur ἀπὸ τῆς ὀργῆς,hoc est,ab ira Cereris in Iouem. Mysteria autẽ
ἀπὸ τοῦ μύσους,hoc est,ab execratione & abominatione quæ áccidit circa Dionysum.Quòd C
si etiam à Mæonte quodam Attico,quẽ dicit Apollodorus interijsse in venatione, nul
la est inuidia vestra mysteria sepulchri honore esse affecta.Possunt aũt aliter quoq; in-
telligi μυστήρια quasi μυθήρια,literis ex aduerso sibi respondẽtibus: θηρεύουσιν, id est,venãtur
enim,si vllæ alię,huiusmodi quoq; fabulę,ex Thracibus,maximè barbaros:ex Phrygi
bus,amẽtissimos:ex Græcis,supstitiosos. Pereat ergo qui huius fraudis fuit princeps
& author hominibus,siue Dardanus,q̃ matris deorũ ostendit mysteria: siue Eetion, q̃
Samothracũ suggesśit Orgia & sacra mystica:siue Phryx ille Midas, q̃ didicit ab Odry
so,deinde ijs q̃ eius parebãt ditioni,fraudẽ tradidit artificiosam.Nõ enim Cyprius in-
sularis Cinyras mihi vnq̃ persuaserit,libidinosa quæ circa Venerem fiebãt orgia,ausus
ex nocte diei tradere,dum meretricẽ ciuem vellet in deos referre. Melampodem autẽ
filium Amythaonis,alij dicũt ex Ægypto in Græciã trãstulisse festum Cereris, luctum
qui laudibus celebratur.Hos ego dixerim fuisse principes & authores impiarũ fabula
rũ,& patres perniciosæ superstitionis,qui vitij & corruptelæ semẽ in vita seminarũt,
mysteria. Iam verò(tẽpus enim est)cõuincã hęc vestra orgia esse plena fraude & prę-
stigijs,& si mysterijs estis initiati,has vestras fabulas quæ in honore habẽtur magis ri-
debitis.Apertè aũt dico quæ sunt occulta,nõ erubescens dicere ea, quæ nõ pudet vos
*Cinyras fuit rex Cypri.* adorare.Quæ ergo ex spuma & in Cypro est genita,Cinyræ amica,Venerẽ dico, quæ
φιλομήδης dicitur,q̃ exorta sit ἐκ μηδέων,hoc est,ex genitalibus,ex salacib.inquã illis geni-
tali-

A talibus quæ Cælo abscissa sunt, quæ post abscisionem fluctui vim attulerunt, tanquã libidinosis vestris partibus dignus, fructus fit Venus in sacris mysticis. Marinæ huius voluptatis generationis indicium, salis pugillus & Phallus traditur, ijs qui in hac mœchandi arte sunt initiati. Nummum autem ei offerunt ij qui initiantur, vt amicæ amatores. Cereris autem mysteria, sunt Iouis cum matre venerei congressus, & ira, nescio quid deinceps dicam, matris an vxoris Cereris, qua de causa dicitur appellata esse Brimo, Iouis preces, & potus bilis, & cordis euulsiones, & dictu nefandæ operationes. Hęc mystica sacra peragunt Phryges Atthidi, & Cybelæ, & Corybantibus. Hoc quoq; iactarunt, quòd cùm Iupiter ab ariete geminos euulsisset coleos, iecit in medium sinũ Cereris, de violento congressu falsum pendens supplicium, vt qui seipsum vtiq; excidisset. Hæc symbola huius initiationis satis superq; adaucta, satis scio vobis risum esse motura, etiam si vobis non veniat in mentẽ ridere, eò quòd refellamini. Ex tympano comedi, ex cymbalo bibi, temperatũ attuli, ingressa sum thalamũ, an non probra sunt hæc symbola? non ridicula mysteri ? Quid autem si etiam reliqua adiecerim? Vterum quidem gerit Ceres, nutritur autem Proserpina. Rursus autem hic Iupiter qui genuit, coit cum Proserpina sua filia post matrẽ Cererem, oblitus prioris sceleris. Pater & corruptor puellæ Iupiter, & coit factus draco, conuictus quisnam esset. Sabaziorum certè mysteriorũ signum est ijs qui initiantur, Deus qui sinum peruadit. Est autem ijs draco qui extrahitur à sinu eorũ qui initiantur, euidens argumentũ Iouis incontinentiæ. Parit autẽ Proserpina quoq; filium taurina specie. Certè, ait quidam Poëta cultui idolorum deditus, Taurus pater draconis, & pater tauri draco. In monte occultũ bubulcus stimulũ. Bubulci, vt existimo, stimulum, ferulam illam pulchrã efficiens, quam Bacchi circumagunt. Vis etiam tibi narrẽ, quomodo flores collegerit Proserpina, eiusq; calathum, & raptũ à Plutone, & hiatũ terræ, & sues Eubulei quæ deuoratæ fuerunt à deabus? propter quã causam, in Thesmophorijs sacrificantes, expellunt porcos. Huius fabulæ diem festũ mulieres variè concelebrant, Thesmophoria, Scirophoria, multis modis raptũ Proserpinę tragicè decantantes. Dionysi enim mysteria sunt planè inhumana, quẽ cùm esset adhuc puer, motu qui fit in armis, Curetibus choream ducẽtibus, dolo autem subeuntibus Titanibus, puerilibus quibusdam ludis deceptum hi decerpserunt Titanes, cùm adhuc esset infans, vt mysterij poëta dicit Orpheus Thracius:

Veneris mysteria.

B

ἀδωνικῶς (margin)

μιγάρζοντες (margin)

*Pinea nux, trochus, & qui flectunt membra mouentq;*
*Ludi, & quæ Hesperides miserunt aurea mâla*

Invtilia aũt huius mysterij symbola, non fuerit invtile ad ea condẽnanda adducere, talus, sphæra, nux pinea, mâla, trochus, speculũ, vellus. Atq; Minerua quidẽ quæ Dionysi cor sustulit, appellata est Pallas, ἀπὸ τοῦ πάλλειν, id est, à vibrando seu torquendo, eò q̃ cor vibret ac torqueat. Titanes aũt qui ipsum etiã discerpserunt, cùm quendam lebetẽ tripodi imposuissent, Dionysi mẽbra inijcientes, ea prius coxerunt, deinde confixa verubus Vulcano imposta tenebant. Iupiter aũt cùm postea apparuisset, siquidẽ deus erat, vt qui assarũ carnium nidorem fortè sensisset, cuius præmij se esse participes vestrĩ dij cõfitentur, Titanes punit fulmine, & membra Dionysi, filio Apollini sepelire pręcipit. Ille aũt, nõ fuit enim Ioui inobediẽs, deferens in Parnassum, deponit illic cadauer lacerũ. Quòd si etiam Corybantũ velis Orgia considerare, hi cùm tertium fratrẽ occidissent, caput mortui purpura cõtexerunt, & coronatum sepelierunt, ferentes in clypeo æneo ad radicẽ montis Olympi. Et hæc sunt, vt in summa dicam, mysteria, cędes, & sepulchra. Horum aũt sacerdotes, quos Anactotelestas vocant ij quibus vocare curę est, ad calamitatẽ quædam monstra afferunt, prohibentes, apiũ cum totis radicibus in mensa apponere: putãt enim ex Corybantico qui effluxit sanguine, enatũ esse apiũ. Sicut certè mulieres etiã quæ Thesmophoria celebrant, à mâli Punici granorũ esu se abstinẽt, existimantes ex guttis sanguinis Dionysi germinasse mâla Punica. Cabeiros aũt appellantes Corybantes, mortẽ quoq; Cabiricam annunciant. Hi enim duo fratricidæ, cùm cistã sustulissent in qua repositũ erat pudendum Dionysi, eam vexerunt in Hetruriam, egregiarũ mercium mercatores, & ibi habitarũt cùm essent exules, venerabilem pietatis doctrinã, pudenda & cistã colendam cõmendantes Hetruscis. Propter quã causam non improbabiliter volunt nõnulli Dionysum vocari Atim, vt qui sit priuatus pudendis. Et quid mirũ, si Hetrusci barbari in tam turpes incidãt affectiones, cũ etiã Atheniensibus & alijs Græciæ (pudet me vel dicere) probro ac dedecore plena sit Cereris fabula? Cùm enim erraret Ceres ad quærendã filiam Proserpinã, circa Eleusinem (is est aũt locus Atticæ) defatigatur, & mœrore affecta sedet super puteũ. Hoc in hodiernũ vsq; diem prohibetur ijs qui initiantur, ne videãtur ij qui sunt initiati myste

C

rijs,imitari eam quæ lugebat.Tunc autē habitabant Eleusinē Terrigenæ,seu Terræ filij.Eorū nomina sunt,Baubo, & Dysaules & Triptolemus, præterea autē Eumolpus & Eubuleus.Triptolemus erat bubulcus,pastor autē Eumolpus, vpilio autē Eubuleus,à quibus Eumolpidarum,& hoc sacra enuncians præconū genus, Athenis effloruit.Baubo autem(neq; enim me continebo quin dicam)cùm Cererē hospitio excepisset,ei confectum potum porrigit.Cùm ea autem recusaret accipere,& non vellet bibere,vt quę lugeret,ægreferens Baubo,vt quæ fuisset despecta,pudenda aperit, & ea deę ostendit.Ceres autem delectatur visione,& vix tandem potū accipit,exhilarata spectaculo.Hæc sunt arcana Atheniensiū mysteria:hæc etiam describit Orpheus. Adducam autē tibi ipsos versus Orphei,vt habeas illum ipsum mystagogum testē impudentiæ: A

*Sic dixit, uestes tollens, omnemq; figuram*
*Corporis ostendit turpem,puerilic; Iacchus*
*Tunc ætate fuit,gremio à quo est dextera Baubus*
*Ridente immissa,ipsa hilari sed tunc dea mente*
*Subrisit, uarium uas quod potumq; tenebat*
*In cista accepit.*

Eleusiniorum mysteriorum signum est,Ieiunaui,potum confectum bibi, ex cista accepi:postquā feci,deposui in calathum,& ex calatho in cistam. Pulchra quidem hæc sunt spectacula,& deæ convenientia.Digna quidem certè nocte mysteria, & igne, & qui magno,vel potius vano est animo,populo Erechthidarū, atq; etiam alijs Græcis, quos quidem vita functos ea manent,quæ ne sperant quidem. His quidem vaticinatur Heraclitus Ephesius,his,inquam,noctiuagis,Magis,Bacchis,mystis,his post mortem minatur,his ignem vaticinatur.Iis enim quæ ex hominum sententia mysteria existimantur,prophanè initiantur:sunt enim ea,lex vana & opinio,& sunt draconis mysteria,fraus quædam,quæ verè prophanā colit sacra,& ad execranda sacramenta, adulterina exhortatur religione.Quales autem sunt cistæ eorū mysticæ? Oportet enim sancta eorum reuelare,& arcana enunciare. An non ea sunt sesamides & pyramides, & lana bene laborata,libaq; multis distincta vmbilicis,salisq; pugilli, & draco orgiū Dionysi Bassari?An non mala Punica,atq; etiam corda, ferulæ, & hederæ, & præterea placentæ & papauera?Hæc sunt eorum sancta.Quinetiam Themidis arcana symbola,origanū,lucerna,ensis,pecten muliebris,quem honestè & mysticè licet dicere, pudendū muliebre.O euidentem impudentiam. Olim quidem moderatis hominibus voluptatis integumentū erat nox silens:nunc autē ijs qui initiantur, est incontinētiæ sacra nox loquens:& ignis qui lucet in facibus, vitia & animi perturbationes arguit. Extingue ignē ô sacerdos,reuerere lampades ô tu qui faces geris, tuum Iacchum lux arguit.Convertere,cela nocte mysteria,& orgia honorētur tenebris. Ignis nō dissimulat,& arguit, & punit quæ iubetur.Hæc sunt impiorū,& qui sunt planè sine Deo, mysteria.Impios aūt eos & sine Deo iure voco,qui eum quidem qui est verè Deus ignorauerunt,puerum aūt qui discerpitur à Titanibus,& lugentē mulierculam, & partes reuera prę pudore minimè dicēdas impudenter colūt,dupliciq; tenētur impietate:priore quidē,qua eum qui est Deus ignorant,eū qui verè est deus nō agnoscentes:altera & secunda,qua per eum errorē eos qui nō sunt,vt qui sint existimant,& eos deos nominant qui verè nō sunt,imò verò qui ne sunt quidē,sed solum nomē obtinent.Propter- B C
Ephes.2. ea certè nos quoq; arguit Apostolus:Et eratis,dicēs,alieni à testamētis promissionis, spem nō habētes,& sine Deo in mundo.Multa bona regi Scytharū eveniāt, quicunq; fuerit Anacharsis.Is ciuē suum, qui Matris deorū sacra quæ fiunt apud Cyzicenos,in Scythia imitabatur,& tympanū perstrepens,& cymbalū resonans,vt Menagyrtes aliquis,collo appensum habebat,sagittis cōfodit, vt qui & ipse effœminatus euasisset apud Græcos,& fœmininū morbū alios Grǣcos doceret.Quā de causa(nullo enim modo celandū est)venit mihi in mentē admirari,quonā modo Euemerū Agrigentinū, & Nicanorē Cyprium,& Diagoram,& Hipponem Melium,& illum post hos Cyrenęū, cui nomen erat Theodorus,& multos alios,qui moderatè ac cōtinenter vixerūt,& reliquis hominibus acrius hūc de dijs istis errorem perspexerūt, impios & ἀθέους,hoc est, absq; Deo,cognominarunt,etiamsi veritatem ipsam non considerauerint, sed errorē quidē certè suspicati sint:quod quidem nō paruum exoritur semen ad excitandā scintillā intelligentiæ veritatis. Ex quibus vnus quidē præcipit Ægyptijs: Si existimatis deos,ne ipsos lugeatis,neq; plāgatis:si aūt lugetis,ne eos deos esse putetis. Alter verò cùm Herculem ex ligno cepisset effōrmatū (aliquid aūt domi fortè coquebat,vt est verisimile)age ô Hercules,inquit,nunc iam tempus est, vt sicut Euristheo, nobis quoq; in

A in hoc tertio decimo decertando certamine inseruias, idque Diagoræ pares: & ipsum tanquam lignum in ignem iniecit. Extrema itaque ignorantiæ sunt, Impietas & Superstitio; extra quæ studendum est manere. Non vides Mosem, sacrum veritatis interpretem, iubentem, vt Eunuchus, & cui sunt execta virilia, non ingrediatur in ecclesiam? & præterea is qui natus est ex meretrice? Significat autem per priores quidem, mores impios, diuina virtute & genitali priuatos: per reliquum autem tertium, eum qui pro vno solo, qui est Deus, multos falso nomine deos sibi adscribit, sicut is qui natus est ex meretrice, multos adscribit sibi patres, propter veri patris ignorationem. Erat autem quædam antiqua, naturaliter hominibus ingenerata, cum cælo societas; ignoratione quidem obscurata, sed quæ tamen repente ex tenebris exilit & emicat; vt illud ab aliquo dictum est: Deut. 23.

*Huncne vides qui supra infinitum æthera,*
*Vlnis suis terram humidisque continet,*
*Cui terra currus, & sedes terrestria?*
*Quisnam tu sis conijcere est difficile.*

Et quæcunque huiusmodi alia canunt Poetæ. Peruersæ autem sententiæ, & quæ declinarunt a recta, vere perniciosæ, hominem, qui est planta cælestis, diuerterunt a cælesti videndi ratione, & humi prostrauerunt, persuadentes humanis figmentis attendere. Alij enim statim in cælo contemplando decepti, & soli visui credentes, motus astrorum contemplantes, admirati sunt, & deos esse censuerũt; astra deos (nempe θεοὺς ἀπὸ τοῦ θεῖν,
B hoc est, a cursu) nominantes: & Solem adorarunt, vt Indi: & Lunam, vt Phryges. Alij autem, eorum quæ ex terris nascuntur mites fructus carpentes, Cererem frumentum, vt Athenienses: & Dionysum vitem, vt Thebani, appellauerunt. Alij, cum considerassent vitij pœnas, eas in deos referunt, adorantes pœnas & calamitates. Hinc Furias & Eumenidas, & quos παλαμναίους & προστροπαίους vocant, ceu auerruncatores & malorum depulsores: & præterea ἀλάστορας, id est, cacodæmones seu malos genios, finxerũt Poetæ scenici. Iam vero quidam ex philosophis, ipsi quoque post Poeticos, earum quæ sunt in nobis affectionum figuras & simulacra constituunt; nempe metum, & amorem, & gaudium & spem: sicut certe priscusquoque Epimenides, qui Contumeliæ & Impudentiæ Athenis erexit altaria. Alij autem ex iisdem rebus impulsi, ab hominibus in deos referuntur, & instar corporis effinguntur; Iustitia quædam, & Clotho, & Lachesis, & Atropos, & Parca, & Auxo, & Thallo, Atticæ. Sextus est modus introducendæ & acquirendæ deorum deceptionis, quo deos numerant duodecim. Quorum etiam Theogoniam, seu deorum ortum, canit Hesiodus, & quæcunque de diis theologice disserit Homerus. Restat postremus (sunt enim hi omnes septem modi) qui proficiscitur a diuino in homines beneficio. Nam cum beneficio afficientem Deum non intelligerent, effinxerunt quosdam seruatores, Castorem & Pollucem, & Herculem ἀλεξίκακον, id est, in malis adiutorem, & medicum Æsculapium. Hæ quidem sunt lubricæ & exitiosæ a veritate digressiones, quæ hominem a cælo detrahunt, & in barathrum pessundant. Volo autem vobis, quales essent ipsi dij, & quinam essent, ad viuum ostendere; vt tan-

αὐξώ, ab augendo. θαλλώ, a germinando.

C dem ab errore cessetis, rursus autem in cælum reuertamini. Eramus enim nos quoq; aliquando filii iræ, sicut etiã reliqui: Deus autem, cum diues esset in misericordia, per multam suam dilectionem qua dilexit nos, cum iam essemus mortui delictis, cũ Christo conuiuificauit. Viuens enim Verbum, & vna cum Christo sepultum, vna cum Deo extollitur. Qui autem adhuc sunt infideles, iræ filii nominantur, vt qui ira nutriantur. Nos non sumus amplius iræ alumni, qui sumus auulsi ab errore, tendimus autem ad veritatem. Ea ratione nos, qui aliquando fuimus filii iniquitatis, per Verbi clementiam nunc facti sumus filii Dei. Vos autem vester quoq; incessit poeta Agrigentinus Empedocles: Ephes. 2.

*Difficilis nam quos cruciat sceleratáque vita,*
*Non erit a misero vobis cessare dolore.*

Ac plurima quidem vobis de diis ficta & fabulose sunt tradita. Quæcũq; autem facta esse reputatum est, ea de hominibus turpibus, & qui petulanter ac flagitiose vixerunt, scripta sunt. Cũ fastu quodam & furore inceditis, & recta via relicta, per spinas & vepres abitis.

*Cur erratis? ab humanis desistite rebus:*
*Et missis noctis tenebris, apprendite lucem.*

Hæc vobis præcipit prophetica & poetica Sibylla: præcipit etiam Veritas, quæ harum terribilium & stuporem incutientium personarum, aperit deorũ turbam, falso susceptas opiniones synonymis arguens. Ac sunt quidem qui tres dicunt esse Ioues: vnum quidem Ætheris filium in Arcadia, reliquos autem filios Saturni. Eorũ autem vnũ quidem in Cre-

ta, alterum vero rursus in Arcadia. Sunt autem qui ponunt quinq; Mineruas; vnam quidem Vulcani filiam, Atheniensem: alteram vero Nili, Ægyptiam: tertiã Saturni, belli inuentricem: quartam Iouis, quam Messenii Coryphasiam a matre cognominarunt: postremam, filiam Pallantis & Titanidis filiæ Oceani; quę patre impie ab ipsa sacrificato, ornata fuit patris pelle, tanquam vellere. Iam vero Apollinem Aristoteles quidem primũ Vulcani & Mineruæ, (non est hic amplius virgo Minerua) secundum in Creta, filiũ Corybantis, tertium Iouis, & quartum Arcadem, Sileni. is apud Arcadas appellatus est Nomius. Post hos recenset Libyn Ammonis. Didymus autem Grammaticus sextum his subiungit, filium Magnetis. Quot autem nunc quoq; sunt Apollines innumerabiles, mortales homines, opem ferentes, qui similiter vocati sunt atq; illi prædicti? Quid autem si tibi multos dixerim Æsculapios, vel qui enumerantur Mercurios, vel Vulcanos qui traduntur in fabulis? Num superflua quædam vobis afferre videbor, qui aures vestras his multis nominibus obruam? Sed ipsos quidem, patriæ, & artes, & vitæ, & præterea sepulcra, homines fuisse conuincunt. Mars quidem certe, qui a Poetis fuit, vt potuit, honoratus,

Iliad. ε. *Mars Mars pernicies hominum, qui mœnia quassas.*

ἀλλοπρόσαλλος ἀνάρσιος. Hic transfuga, qui nunc has, nunc illas partes sequitur, & insurgit in hostes, vt dicit quidem Epicharmus, erat Spartanus. Sophocles autem eum nouit esse Thracem: alij autem Arcadem. Hunc autem Homerus dicit fuisse vinctum tredecim mensibus:

Iliad. ε.

*Et Mars sustinuit, cum Otus fortisque Epialtes*
*Hunc nati rigido vinxerunt vinculo Aloi.*
*Mensibus is dolio terdenis vinctus aheno est.* B

Multis augeantur bonis Cares, qui canes ei sacrificant. Scythæ autem non cessent mactare asinos, vt dicit Apollodorus, & Callimachus;

*Phœbus hyperboreis asino placatur in oris.*

Idem autem alibi:

*Phœbum mactati cædes delectat aselli.*

Vulcanus autem, quem iecit Iupiter ex Olympo à limine dio, cum in Lemnũ cecidisset, fuit faber æris, vt qui mutilatus esset pedibus,

*—graciles illi tibiaque fluebant.*

Habes etiam Medicum, non solum æris fabrum inter deos. Medicus autem erat auarus: nomen est ei Æsculapius. Tibi autem tuum adducam poetam Bœotium Pindarum:

*Illum quoque subuertit præclara mercede,*
*Aurum quod in manibus apparuit.*
*Manus autem Saturnius iaculatus per ambas,*
*Respirationem pectoris abstulit ocius.*
*Ardens autem fulmen illi mortem attulit.* Et Euripides:
*Nam Iupiter meum peremit filium,*
*Cui torsit ignem in pectus, Æsculapium.*

Hic ergo ictus fulmine iacet in finibus Cynosuridis. Philochorus autem dicit Medicum in Teno coli Neptunum; Saturnum autem situm esse in Sicilia, & eum illic fuisse sepultum. Patrocles Thurius, & iunior Sophocles, scribunt de Castore & Polluce, eos fuisse quosdam homines morti fatisque obnoxios. Quod si cui possit fidem facere Homerus, audiatur quod scriptum est: C

Tenos, vna ex Cycladibus.

Iliad. γ.

*Hos autem gremio iam terra tenebat*
*In Lacedæmone, eis quæ cara est patria tellus.*

Accedat autem is quoque qui scripsit poemata Cypriaca:

*Mortalis Castor, mortemque huic fata pararunt:*
*Immortalis erat sed Pollux, Martia proles.*

Hoc quidem effinxit poetice. Homerus autem est eo fide dignior, qui dixit de vtroque, Castore & Polluce, & qui præterea Herculem arguit esse hominem:

Odyss. γ. *Nanque virum Alciden qui insignia facta sciebat.*

Herculem ergo ipse quoque Homerus nouit mortalem hominem. Hieronymus autem philosophus ipsius quoque corporis narrat habitũ, paruum, crispo capillo, bona firmaq; valetudine. Dicæarchus autem gracilem, neruosum, nigrum, naso aquilino, oculis sublætis, fuso capillo. Hic ergo Hercules, cum duos & quinquaginta annos vixisset, e vita excessit, per eam quæ fuit in Oeta pyram, iustis illi factis exequiis. Musæ autem, quas Alcander ait genus ducere a Ioue & Memoria, & reliqui poetæ & scriptores vt deas eas habent & colunt, quin & totæ ciuitates Musis musæa extruunt: eas, cum essent seruæ, emit Megaclo filia Macaris. Macar autẽ erat quidẽ rex Lesbiorũ: semper autem cõtendebat cũ

vxore

A vxore. Matris autem vicem dolebat Megaclo. Quid ni enim doleret? & Musas has ancillas tot emit numero, & Mysas vocat lingua Æolica. Has docuit canere, & vetera facta numerosè ad citharam cantare. Illæ verò cùm cithara assiduè sonarent, & pulchrè incantarent, Macara demulcebant, & eius irā sedabant. Qua de causa Megaclo, vt pro matre eis referret gratias, posuit columnas æneas, & per omnia iussit sacra honorari. Et sunt Musæ quidem tales. Est autem historia apud Myrsilum Lesbium. Audite ergo eorum qui sunt apud vos deorum amores, & quæ sunt præter fidem fabulas intemperantiæ, & eorū vulnera, & vincula, & risus, & pugnas, & præterea seruitutes, & conuiuia, & rursus cōplexus, & lachrymas, & affectiones, & impudicas voluptates. Voca mihi Neptunum, & chorum qui fuit ab ipso corruptus, Amphitritem, Amymonem, Alopen, Melanippem, Alcyonem, Hippothoēm, Chionem, & alias innumerabiles, in quibus quidem cùm tot essent, vestri Neptuni affectiones in arctum cogebantur. Voca mihi etiam Apollinem. Is est Phœbus, & vates castus, & bonus consiliarius. Sed non hæc dicit Sterope, nec Arethusa, nec Arsinoē, nec Zeuxippe, nec Prothoē, nec Marpissa, nec Hypsipyle. Effugit enim sola Daphne & vatem & vitium. Et post omnes veniat ipse Iupiter, vestra sententia hominum pater atque deorum, qui in Venerem adeò fuit profusus, vt omnes quidem desideraret, suam autem in omnes expleret libidinem. Explebatur itaque mulieribus, non minus quàm hircus Thmuitarum capris. Atque tua quidem ô Homere admiror poēmata:

*Legitur Aethusa.*

B *Amauit & cilijs glaucis Saturnius ipse,*
*Fusiq; Ambrosij Regis fluxere capilli*
*Vertice de sacro, magnum & tremefecit Olympum.* *Iliad. α.*

Grauem ac venerabilem ô Homere effingis Iouem, & ei nutum tribuis honorandum. Sed si solùm ei cestum ô homo ostenderis, & Iupiter arguitur, & coma dedecore afficitur. In quantam libidinem processit ille Iupiter, qui tot noctes cum Alcumena transegit in delitijs? Neque enim nouem noctes longæ sunt intemperanti. Rursus autem vniuersa vita erat breuis intemperantiæ, vt illum nobis malorū propulsatorē sereret, Iouis filius Hercules, verè Iouis, qui ex longa nocte gignitur, qui duodecim quidem certamina longo tempore fortiter sustinuit, quinquaginta autem filias Thestiæ vna nocte vitiauit, vt qui simul & adulter & sponsus fuerit tot virginum. Non abs re ergo eum vocant poëtæ miserum & αἰνολέργον, id est, perpetratorem rerum nefariarum. Longum autem fuerit eius omnis generis adulteria & stupra pueris illata recensere. Nam nec à pueris quidem dij vestri abstinuere, vnus quidem Hylam, alius verò Hyacinthum, alius Pelopem, alius Chrysippū, alius autem Ganymedem, amantes. Hos deos vestræ vxores adorent, tales autem suos esse maritos vota faciant, adeò temperantes, vt sint dijs similes, similia consectantes. Tales filij vestri consuescant colere, vt etiam viri fiant, sacram fornicationis imaginem, Deos accipientes. Sed ex dijs fortè quidem soli masculi feruntur in Venerem: Deæ autem fœminæ domi quælibet harum, ait Homerus, erubescentes Deæ propter honestatem videre Venerem adulteratam. Illę autem se gerunt impudicè, in adulterio

C vehementius implicitæ. Aurora propter Tithonum, Luna Endymionem, Nereis propter Æacum, & propter Peleum Thetis, propter Iasonem autem Ceres, & propter Adonidem Proserpina, Venus verò propter Martem est probro & dedecore affecta: transijt ad Cinyram, & nupsit Anchisæ, & Phaëthonti parauit insidias, & amauit Adonidem, contendit autem cum Iunone quæ βοῶπις dicitur, hoc est, bouinis oculis: & cùm se propter mâlum Deę vestibus exuissent, se permiserunt pastori, iudicaturo quęnam esset ex eis pulchra. Agè verò paucis quoque obeamus certamina, & panegyricos illos sepulchrales cōventus dissoluamus, Isthmia, & Nemea, & Pythia, & quæ ea sequuntur Olympia. In Pythone quidem Pythius Draco colitur, & frequens serpentis conventus appellatur Pythia. In Isthmo miserabile excrementum mare expuit, & Melicertam deflent in Isthmia. Nemeæ alij puero Archemoro iusta facta sunt, & funebris pueri oratio appellatur Nemea. Pisa autem vobis, ó Græci, est sepulchrum aurigæ Phrygis, & Pelopis inferiæ. Olympia sibi vendicat Iupiter Phidiæ. Erant ergo mysteria, vt videtur, certamina, quæ suscipiebantur propter mortuos, sicut etiā oraculi responsa: & facta sunt ambo publica. Sed quæ sunt quidem in Sagra mysteria, & quæ in Alimunte Atticæ, circūscripta sunt Athenis, mundi autem sunt probrum ac dedecus: & certamina & Phalli Dionyso consecrati, qui vitam malè occuparunt. Dionysus enim cùm cuperet descendere ad inferos, viam

*λόγια*

ignorabat. Pollicetur autem se ei esse dicturum quidam Prosymnus nomine, sed nō fine mercede. Merces autem non pulchra, sed pulchra Dionyso. erat autem venerea gratia, merces quam postulabatur Dionysus. A Deo autem volente hoc postulatum est, idq; ei daturum pollicetur, si redierit, iureiurando promisso confirmato. Cùm viam didicisset, abijt, rursus redijt, non offendit Prosymnum, erat enim mortuus. Amatori iusta faciens Dionysus, proficiscitur ad monimētum, & muliebria patiendi vehementi tenetur desiderio. Cùm ergo ficus ramū, vt contigit, excidisset, instar virilis membri eum efformat, & ei insidet ramo, faciens promissum mortuo. Mysticum huius quod accidit monimentum, per vrbes Phalli excitantur Dionyso. Nisi enim pompam facerent Dionyso, & canticum canerent, pudendis, inquit Heraclitus, fierent impudentissima. Hic est autem Orcus, & Dionysus seu Bacchus cui insaniunt, & cui bacchantur, non tantùm propter ebrietatem corporis (vt opinor) quàm propter probrosam sacrorum libidinis interpretationem. Sunt ergo iurè vestri dij tales, qui serui fuere vitiorum: quinetiam eorum qui Ilotes vocantur à Lacedæmonijs. Iugum seruile subijt Apollo Admeto Phæris. Hercules Sardibus Omphalæ. Laomedonti autem fuit mercenarius Neptunus & Apollo, sicut seruus invtilis, qui nec libertatem quidem potuit consequi à priori domino. Tunc etiam muros Troiæ Phrygi ædificarunt. Non pudet autem Homerum dicere Mineruā Vlysi præluxisse, aureum lychnum tenentem in manibus. Legimus autem Venerem, tanquam immodestam aliquam ancillulam, lecticā Helenę apposuisse ex aduerso adulteri, vt eum induceret ad coitū. Panyasis autem, præter hos, alios quoq; plurimos deos refert seruijsse hominibus, sic scribens: A B

*Passa Ceres, passusq; insignis Mulciber, estq;*
*Passus Neptunus, passusq; est Phœbus Apollo*
*Mortali ipse suas operas mercede locare.*
*Passus Marsq; ferox, irato à patre coactus.* Et quæ deinceps sequuntur.

Est ergo his meritò consequens, hos vestros deos, qui & amore languent, & animi vexatur perturbationibus, omnino inducere obnoxios humanis affectionibus: nam mortale illis est corpus. Rectè autem admodum conijcit Homerus, introducens Venerem propter vulnus acuta & magna voce clamantem, & narrans bellicosissimum Martem fuisse à Diomede in vētre sauciatum. Polemo autem dicit etiam Mineruam fuisse vulneratam ab Ornyto. Quinetiam dicit Homerus Plutonem fuisse vulneratum ab Hercule, & Eleum Augeam. Iam verò Iunonem quoq; coniugalē, refert idem Panyasis, fuisse vulneratam ab eodem Hercule in Pylo arenoso. Sosibius autem dicit etiam Herculem fuisse in manu sauciatum ab Hippocoontidis. Quòd si sunt vulnera, est etiam sanguis. Sanies verò poëtica, quam ἰχῶρα vocant, est etiam sanguine turpior. Putrefactio enim sanguinis sanies intelligitur. Et curationes ergo & nutrimenta quibus indigent, eis necesse est inducere. Quare & mensæ, & ebrietates, & risus, & coitus, vtpote quòd homines venereis rebus non vterētur, nec darent operā liberis, sed nec dormituri essent, si essent immortales, nullius egeni, & expertes senij. Fuit aūt humanę quoq; mēsę particeps apud Æthiopes: inhumanæ autem & nefariæ, conuiuio à Lycaone exceptus ipse Iupiter, humanis certè carnibus impletus nō lubens. Nesciebat enim deus, quòd Lycaon Arcas eum conuiuio excipiebat, interfectum suum filium ei epulandum apponeret: Nyctimo ei nomen erat. Egregius verò Iupiter, qui est diuinator, hospitalis, supplices exaudiens, clemens, panomphæus seu voces ac linguas omnium excipiens, depulsor & auersor malorum: potius autem iniustus, sceleratus, iniquus, impius, inhumanus, violentus, stuprator, adulter, amator. Sed tunc quidem fuit cùm esset talis, nempe quando erat homo: nunc autem mihi videntur vobis quoq; consenuisse fabulæ. Iupiter non est amplius draco, non cygnus, non aquila, nō homo amori deditus, non volat deus, puerorum amore non tenetur, non osculatur, non affert vim, etsi adhuc multæ sint pulchræ mulieres, & Leda venustiores, & Semele formosiores: adolescentes autem speciosiores & ciuiliores Phrygiæ bubulco. Vbi nunc est illa aquila, vbi verò cygnus, vbi autem ipse Iupiter? vnà cum penna consenuit. Non enim quòd amoribus operam dederit, eum pœnitet, nec docetur esse moderatus & temperans. Vobis autem fabula aperitur, mortua est Leda, mortuus est cygnus, mortua est aquila. Quęre tuum Iouem, ne scruteris cælum, sed terram. Narrabit tibi Cretensis, apud quē est sepultus. Callimachus in Hymnis: Sepulchrū enim, inquit, tuum ô rex, Cretes sunt fabricati. Mortuus est.n. Iupiter, ne ægrè feras, vt Leda, vt cygnus, vt aquila, C

vt

A vt homo amori deditus, vt draco. Iam verò videntur ipsi quoq; qui praua imbuti sunt superstitione, inuiti quidem, sed tamen de dijs errorem intelligere:

*Annosa haud geniti sunt ex quercuue petráue,*
*Sed sunt ex genere hominum.*

Paulo pòst autem inuenientur esse & quercus & petræ. Agamemnonem certè quendam Iouem in Sparta coli refert Staphylus. Phanocles autem, in pulchris colebat heroibus Agamemnonem Græcorũ regem. Argynnæ stare templum Veneris propter Argennum dilectum. Dianam quę vocatur ἀπαγχομένη, hoc est, suffocata, colunt Arcades, vt inquit Callimachus in Causis. Culta est etiam in Methymna alia Diana Condylitis, sic appellata à pugno. Est etiam Podagrę alterius Dianę templum in Laconica, vt ait Sosibius. Polemo autem nouit imaginem hiantis Apollinis, & obsonatoris rursus Apollinis aliam, quæ colitur in Elide. Hìc Elei Ioui ἀπομυίῳ sacrificant. Romani autem sacrificant ἀπομυίῳ Herculi, id est, muscarum depulsori, & Febri & Pauori, quos ipsos quoq; adscribunt in numerum eorum qui erant cum Hercule. Mitto autem Argiuos, qui colunt Venerem τυμβωρύχον, id est, quæ sepulchra effodit. Argiui & Lacones, & etiam Spartani, Dianam colunt Chelytidem, quoniam tussire ab eis vocatur χελύττειν. Vnde nam putas hæc tibi adscripta sunt? Afferuntur ea quæ adducuntur à vobis: ne tuos quidem videris agnoscere scriptores, quos ego testes cito ad tuam incredulitatem? O miseri, qui omnem vestram vitam reuera minimè vitalem, impia impleuistis ludificatione. An non caluus quidem Iupiter Argis, alius autem vltor, honorati sunt in Cypro?

B An non Veneri quidem περιβασίᾳ, Argiui: ἑταίρᾳ autem, id est, amicæ seu meretrici, Athenienses: καλλιπύγῳ autem, id est, pulchras habenti nates, sacrificant Syracusani, quam Nicander Poëta alicubi vocauit καλλίγλουτον, id est, pulchris clunibus? Dionysum autẽ iam taceo χοιροψάλαν, id est, cunni contrectatorem. Eum adorant Sicyonij, Dionysum præficientes membris muliebribus, vt curam gerat turpitudinis, colentes eum qui est author & princeps probri ac petulantiæ. Tales quidẽ sunt ipsis dei: tales autem sunt ipsi quoq;, in dijs ludentes, vel potius seipsos ludificantes, probroq; & ignominia seipsos afficientes. Et quanto meliùs Ægyptij, qui vicatim & per oppida, bruta coluërunt animantia, quàm Græci, qui tales deos adorant: illa enim, etsi sint feræ, non sunt tamen adultera, nec stupro ac fornicationi dedita: hi autẽ quales sint, quid opus est amplius dicere, cùm satis eos conuicerimus? Porrò autem Ægyptij, quorũ nunc feci mentionem, dispersi sunt in varios cultus ac religiones. Ex his, Euenitæ quidem colunt piscem Phagrum. Mæoten autem (est verò hic quoq; alius piscis) colunt qui habitant Elephantinam. Oxyrinchitæ autem piscem similiter, à quo eorum denominatur regio. Præterea autem Ichneumonem Heracleopolitæ: Saitæ autem & Thebani, ouem: Lupum autem Lycopolitani, Canem verò Cynopolitani, Apim Memphitani, Hircum Mendesij. Vos autem qui estis Ægyptijs omnino meliores, vereor autem dicere deteriores, qui non cessatis Ægyptios ridere quotidie, quales vos quoq; estis in bruta animantia? Ex vobis quidem ciconias honore affe-

C cerunt Thessali, propter consuetudinem. Thebani autem mustelas, propter ortum Herculis. Quid verò, Thessali rursus dicuntur colere formicas, quoniam didicerunt Iouem assimilatum formicæ, coijsse cum Eurymedusa filia Cletoris, & genuisse Myrmidonem? Polemo autem refert eos qui habitant circa Troadem, colere mures qui sunt in his regionibus, quos ipsi appellant σμίνθους, quoniam arrodebant chordas arcuum bellicorũ, & Sminthium Apollinem ab illis muribus appellarunt. Heraclides autem dicit in ædificationibus templorum in Arcanania, vbi est Actiũ promontorium, & templum Actij Apollinis, bouem priùs sacrificari muscis. Neq; verò obliuiscar Samiorum, qui ouem colunt, vt dicit Euphorion. Sed nec eorum qui colunt Phœniciam Syrorum, quorum alij quidem columbas, alij verò pisces tam impensè colunt, quàm Elei Iouem. Age verò, quoniam non sunt dij quos colitis, mihi rursus videtur considerandum, an sint reuera dæmones, relati in hunc secundum ordinem, vt vos dicitis. Si sunt itaq; dæmones, liguritores & scelerati, possunt etiam apertè inueniri in ciuitatibus dæmones indigenæ, qui honores decerpunt: apud Cythnios quidem Edemus, apud Tenios Callistagoras, apud Eleos autem Anius, apud Lacones Astrabacus. Colitur autem quidam quoq; heros Phalereis in puppi. Et Pythia constituit, vt sacrificarent Platæensibus Androcrati, & Democrati, & Cyclæo, & Leuconi, cùm vel maximè tunc vigerent Medica certamina. Possunt alij quoq; permulti cerni dæmones, ei qui potest vel parum perspicere.

*Cythnos una ex insulis Cycladibus.*

*Dæmonium decies ter habet nam millia tellus*

*Hesiodus.*

*Immortalia, quis hominum custodia cessa est.* A

Quinam sunt hi custodes? O Bœotie, non te pigeat dicere. Num clarum est quòd hi sunt, & qui sunt his honoratiores, magni dæmones, Apollo, Diana, Latona, Ceres, Proserpina, Pluto, Hercules, ipse Iupiter? Sed ne fugiamus, nos custodiunt ô Ascræe, ne fortasse peccemus, qui peccatis non sunt vtiq; affines. Hîc licet eloqui id quod habet instar prouerbij, Pater qui non potest corrigi, corrigit filium. Si autem sunt hi quoq; custodes, non sunt propter eā qua sunt in nos affecti beneuolentiam, sed nostrum vrgentes exitium, instar adulatorum adhærescunt vitæ, fumo inescati. Ipsi certè dæmones fatentur suam ingluuiem libaminis & nidoris, vt qui dicant, sortiti sumus hoc munus. Quámnam aliam vocem ederēt, si vocē acciperent dij Ægyptiorum, nempe feles & mustelæ, quàm Homericam & Poëticam, cui placet nidor & condimentum obsoniorum? Tales quidem sunt apud vos & dæmones & dei, & si qui semidei, tanquā semiasini muli vocati sunt. Neq; enim est vobis nominū egestas ad impietatis compositiones. Age verò hoc quoq; adijciamus, q, inhumani & homines odio habentes dęmones sunt vestri dij, & non solùm lætitiā ex eo capiunt quòd hominum mentes offendant, sed etiam ex hominum cæde fruuntur voluptate, nunc quidem armatas in stadijs contentiones, nunc autem innumerabiles de laude in bellis decertationes, sibi præbentes materiam voluptatis, vt vel maximè possint humanis affatim expleri cædibus. Iam verò cùm ciuitates & gentes, tanquam pestes inuasissent, sęua postularunt libamina. Et Aristomenes quidem Messenius, Ithomete Ioui trecentos mactauit, se tot & tales hecatombas ritè sacrificare existimans, in quibus etiam Theopompus, rex Lacedęmoniorum, erat pręclara victima. B Tauri autem populi qui habitāt circa Tauricam Chersonesum, quoscūq; hospites apud se ceperint, ex ijs qui mari aberrarunt, Dianæ Tauricæ eos statim sacrificant. Hæc tua sacrificia Euripides in scena tragicè decantat. Monimus autē in Collectione rerum mirabilium, refert in Pella Thessaliæ Acheū hominem sacrificari Peleo & Chironi. Lycios autem (sunt hi verò gens Cretēsium) pronūciat itidem Anticlides in reditibus, Ioui mactare homines: & Lesbios Dionyso simile offerre sacrificiū dicit Dosidas. Phocenses autē (neq; enim eos præteribo) eos scribit Pythocles in tertio de Concordia, hominem holocaustum offerre Dianæ Tauricæ. Erechtheus autem Atticus, & Marius Romanus sacrificarunt suas filias, quorum ille quidem Persephone, vt Demaratus in primo Rerum tragicarum, hic autem, nempe Marius, dijs Auerruncanis seu malorum depulsoribus, vt Dorotheus scribit in quarto Rerum Italicarum. Hominibus quidem bene velle ex his rebus ostendūtur dæmones. Quomodo ergo non sunt sancti, qui sunt cultui dæmonum ac superstitioni dediti? alij quidem dæmones vt seruatores bonis verbis prosequentes, alij verò petentes salutem à salutis insidiatoribus. Dum ergo existimant se eis ritè sacrificare, non animaduertunt se homines occidere. Non enim ex loco fit cædes hostia: neque si quis Dianæ & Ioui in sacro loco, magis quàm iræ & auaritiæ & alijs similibus dæmonibus in altaribus vel in vijs hominem occiderit, sacram appelās hostiam, id sacrum est, sed est cædes & homicidium tale sacrificium. Quid ergo, ô homines aliorum hominum sapientissimi, alias quidem feras fugimus, & sicubi in vrsum vel leonem inciderimus, diuertimus? C

Iliad.3. *Improuisum aspris ueluti qui sentibus anguem,*
Verg.2. *Pressit humi nitens, trepidusq; repente refugit.*

Perniciosos autem & exitiales insidiatores, hominumq; hoste & prędones, cùm dæmones esse prius senseritis & intelligatis, non declinatis, non auersamini? Quidnam autem veri dixerint improbi, vel quámnam attulerint vtilitatem? Iam ego possum tibi ostendere hominem vestris istis dijs, nempe dæmonibus, meliorem: Apolline vate, Cyrum & Solonem. Munera diligit vester Phœbus, non homines. Prodidit Crœsum amicum, & mercedis oblitus, adeò erat gloriæ cupidus, Crœsum ad rogum deduxit per Halym. Sic amantes dæmones deducunt ad ignem. Sed tu ô homo, qui es Apolline hominum amantior & verior, miserere eius qui est vinctus supra pyram. Et tu quidem Solon vaticinare veritatem. Tu autem Cyre iube pyram extingui. Tu postremò ô Crœse fac vt sapias, cùm tuo malo id didiceris. Est ingratus is quē adoras: capit mercedē, & auro accepto mētitur. O Solon vide rursus finē: nunquid nō dęmon, sed homo tibi dicit? Non obliqua vaticinatur Solon, eum bene intelliges: verum solum ô Barbare responsum hoc in pyra experieris. Vnde mihi venit in mentem admirari, quibúsnam tandem visis abducti homines qui sunt decepti,

A decepti, superstitionem & dæmonum cultum annunciarunt hominibus, sceleratos dæmones colere lege lata iubentes, seu fuerit ille Phoroneus, seu Merops, seu aliquis alius, qui eis posuerunt templa & altaria, & præterea sacrificia eis primi obtulisse fabulose dicti sunt: nam posterioribus quidem certè temporibus, finxerũt deos quos adorarent. Hunc certè Amorem vel Cupidinem, qui dicitur esse inter deos antiquissimos, nemo prius colebat, quàm adolescẽtulus quispiam Charmam ceperit, & aram elegantiorẽ posuerit in Academia, postquam fuit expleta cupiditas, & morbi intemperantiam appellarunt Amorem, intemperantem cupiditatem in deorum numerum referentes. Athenienses autem nec quis esset quidem Pan nouerát, priusquam eis diceret Philippides. Meritò ergo dæmonum cultus, cùm alicunde cepisset principium, fons fuit stolidi vitij. Deinde cùm non fuisset rescissus, sed accepisset augmentum, & magno fluxisset alueo, multos dæmones constituit, sacrificans hecatombas, & cõuentus celebrans, & imagines erigens, & templa ædificans. Quæ quidem nec ipsa silentio prætermittam, atq; adeò ipsa conuincam specioso quidem nomine nominari templa, fuisse autem sepulchra, hoc est, sepulchra vocata fuisse templa. Vos autem vel nunc saltem dæmonum cultus & superstitionis obliuiscamini, sepulchra colere erubescentes. In tẽplo Mineruæ, Larissæ, in arce est sepulchrum Acrisij. Athenis autem in arce, Cecropis, vt ait Antiochus in nono Historiarũ. Quid verò Erichthonius, non fuit sepultus in templo Poliadis? Immarus autem filius Eumolpi & Dairæ, non fuit sepultus in ambitu Eleusinij, quod est sub arce? Filiæ autẽ
B Celei, non sunt sepultæ in Eleusine? Quid tibi enumerem vxores Hyperboreorum? Hyperoche & Laodice sepultę sunt in Artemisio in Delo. Id autem est in templo Delij Apollinis. Leandrius autẽ dicit Clearchum fuisse Mileti sepultum in Didymæo. Hîc Leucophrynes monimentum par est non prætermittere, sequendo Zenonem Myndium, quæ in templo Dianæ sepulta est, Magnesiæ. Sed neq; Apollinis aram quæ est in Thelmesso, quam ipsam quoque scribunt esse monimentum Thelmissis vatis. Ptolomæus autem filius Agesarchæ, in primo eorum quos scribit de Philopatre, dicit in Papho, in templo Veneris sepultum esse Cyniram & eius nepotes. Sed mihi quidem persequenti sepulchra quæ adorantur, ne vniuersum quidem tempus suffecerit. Vos autem, si non eorum quæ audetis aliquis vos pudor subeat, planè mortui, verè mortuis credentes circumcursatis. O' miseri cur nam hoc malum toleratis? Nocte quidem capitá vobis sunt inuoluta. Quòd si præter hæc ipsas vobis imagines subiecero considerandas, verè persequentes, inuenietis nugas esse consuetudinem, vt qui manuum hominum opera colatis insensibilia. Et Scythæ quidem antiquitus adorabant acinacem: Arabes autem lapidem: Persæ verò fluuiũ: & ex alijs hominibus; ij qui erant adhuc antiquiores, ligna erigebant insignia, & columnas ponebát ex lapidibus: quæ etiá appellabantur ξόανα, eò q, eraderentur & expolirẽtur ex materia. In Icaro certè, imago Dianæ lignũ erat non laboratũ: & Cithæroniæ, Iunonis Thespiæ truncus excisus: & Samiæ Iunonis, vt ait Æthlius, prius quidem erat asser, postea autem cùm esset Archon Procleus, effica est in formam sta-
C tuæ. Postquam autẽ cœperunt statuæ formari hominibus, βρέτη, quod idem est quod statuæ, cœperunt denominationem ἐκ τῶν βροτῶν, id est, ex hominibus. Romæ autem antiquitus statuam Martis fuisse hastam dicit scriptor Varro, cùm nondum peruenissent artifices ad hoc speciosum quidẽ, sed improbũ artificium. Postquam aũt ars floruit, auctus est error. Quòd itaq; lapides & ligna, & vt semel dicam, materiam fecerint imagines hominibus similes, quibus pietatis formá præ vobis fertis, calumniátes veritatem, iam quidẽ ex hoc patet. Verumenimuerò cùm locus indigeat aliqua demonstratione, non est id recusandum. Ac Iouem quidem Olympicum, & Poliadem Athenis, ex auro & ebore effecisse Phidiam, cuius est euidens. Iunonis autem Samiæ statuam factam esse Euclidis cælo, refert Olympicus in Samiacis. Ne ergo dubitetis, si sæuerarum quæ Athenis vocantur dearum, duas quidem fecit Scopas, ex lapide qui vocatur λυχνεύς. Calos autem eam quam narrantur habere mediam, Polemonẽ ostendere in quarto eorum quæ scripsit ad Timęum: nec eas quę sunt in Pataris Lycię statuas, Iouis & Apollinis, quas rursus Phidias imagines, sicut Leones qui cum eis dedicatæ sunt, effecit. Quòd si, vt nonnulli dicunt, erat ars Bryaxis, non contendo, habes eum quoq; statuarium, vtrum eorum velis adscribe. Quinetiam Telesij Atheniensis, vt ait Philochorus, opus sunt imagines in Neapecha, Neptuni & Amphitrites, quæ adorantur Teni. Demetrius autem in secundo Argolicorum, statuæ Iunonis Tirynthiæ, & materiam, pirum, & effectorem fuisse scribit Argum.

*Thespiæ locus in Bœotia sacer Iunoni.*

*Locus hic est corruptus.*

*Quasi diceret, siue fuerit ars Bryaxis, siue Phidiæ.*

Multi autem fortasse admirabuntur si didicerint Palladium quod appellatur Diopetes, vt quod à Ioue deuolarit, quod Diomedes quidem & Vlysses feruntur Troia abstulisse, deposuisse auté apud Demophoontem, fuisse constitutū ex ossibus Pelopis, quemadmodum Olympium ex alijs ossibus beluæ Indicę. Atqui adduco Dionysiū hæc referentem in quinta parte circuli. Appellas autem in Delphicis dicit duo fuisse Palladia, ambo autem fabricata esse ab hominibus. Sed ne quis existimet me propter ignorationem prætermisisse, hæc quoque adducam: Morychi Dionysi statuam fuisse quidem factā ex lapide qui vocatur Phellata, esse autem opus Siconis cognomine Eupalami, vt dicit Polemo in quadam epistola. Fuerunt autem etiam quidem duo alij, Cretenses, vt arbitror, statuarij, Ecyles & Dipœnus hi nominabantur. Fecerunt autem imagines Castoris & Pollucis quæ sunt Argis, & effigiem Herculis quę est Tyrinthe, & statuam Dianę Munichiæ in Sicyone. Et quid in his immoror, cùm liceat vobis magnum illum dęmonem ostendere quisnam fuerit, qué per excellentiam audimus cultu & veneratione dignum ab omnibus esse habitum? Eum non esse manu factum ausi sunt dicere, Ægyptium Sarapim. Alij enim scribunt eum fuisse munus missum à Sinopensibus ad Ptolemæum Philadelphum, qui eos fame laborantes misso ex Ægypto frumento recreauit: esse autem hanc statuam effigiem Plutonis, qui acceptam statuam posuit in promontorio quod nūc appellant Racotim, vbi etiam est honore affectum templum Sarapidis. est autem prędium locis vicinum. Blistichem autem pellicem mortuam Canopi, translatam Ptolemęus sepelijt sub prius dicto templo. Alij autem Ponticam imaginem dicunt esse Sarapim, translatam autem fuisse honorificè Alexandriam à frequenti hominum conuentu. Isidorus solus, à Seleucensibus, qui sunt propter Antiochiam, statuam fuisse traductam, qui ipsi quoq; penuria frumenti laborauerant, & nutriti fuerant à Ptolemæo. Cæterùm Athenodorus quidem filius Sandonis, cùm vellet Sarapidis ostendere antiquitatem, nescio quomodo eò lapsus est, vt eum argueret factam fuisse statuā. Sesostrim dicit regem Ægyptium, cùm plurimas Græcorum gentes sibi subiunxisset, reuersum in Ægyptum, multos adduxisse artifices. Osirim itaq; à quo genus duxerat, iussit magnificè affabreq; variatum effingi. Eum autem construit Bryaxes opifex, non Atheniensis, sed aliquis alius qui eodem appellabatur nomine quo Bryaxes, qui ad opus faciendum mixta & varia vsus ęst materia. Habebat enim ramentum auri, & argenti, & æris, & ferri, & plumbi, nec ei vllus lapis deerat Ægyptius, nec Sapphiri & Hematitis fragmenta, sed nec Smaragdi & Topazij. Hæc ergo omnia leuigata tritaq; ac commixta illiuit colore cœruleo. Qua de causa nigrior est color imaginis. Et cùm pharmaco relicto ex sepultura Osiridis & Apis, omnia permiscuisset, duplicauit Sarapim, cuius nomen quoque significat & funeris societatem, & opus quod factum est ex sepultura, vt quod compositum ex Osiride & Api, factum sit Osirapis. Nouum autem alium in Ægypto, & qui vel ab ipsis propémodum colitur Græcis, retulit in numerum deorum, Imperator Romanorum, dilectum, & qui fuit formosissimus, Antinoum: quem ita consecrauit, vt Ganymedem Iupiter. Non enim facilè arcetur cupiditas, quę caret metu. Et sacras Antinoi noctes nunc adorant homines, quas turpes sciebat amator qui simul vigilauerat. Quid mihi refers in numerū deorum, eum qui stupro fuit honoratus? Quid verò iussisti etiam lugeri tāquam filium? Quid verò eius quoq; narras pulchritudinem? Turpis est pulchritudo, quę per contumeliam & probrū emarcuit. Ne tyrannidem exerceas ô homo in pulchritudiné, ne probrum afferas florenti adolescenti. Ipsam mūdam conserua, vt sit pulchra. Pulchritudinis rex efficere, non tyrannus, liber maneat. Tunc tuam agnoscam pulchritudinem, quoniam mundam conseruasti imaginem: tunc veram adorabo pulchritudinem, quæ est exemplar pulchrorum. Iam verò dilecti sepulchrum, est templū Antinoi & oppidum. Sicut autem templa, ita etiam sepulchra habentur in admiratione, Pyramides, & Mausolea, & Labyrinthi, alia templa mortuorum, vt illa sepulchra deorum. Vobis autem magistram adducam vatem Sibyllam:

*Morychus unum ex Bacchi cognominibus.*

*Non sunt responsa hæc Phœbi mendacia, stulti*
*Quenque deum dixere homines, falsoq; uocarunt*
*Vatem: sed uox ista Dei, similem simulachris,*
*Quem haud fecere manus hominum, sermonis egenis.*

Hęc quidem tibi prędicit ruinas téplorum, significans quidem fore, vt templum Dianę Ephesię terrę hiatibus & motibus absorbeatur, his verbis:

*Abiecta autem Ephesus tristisq; in littore flebit,*

A *Et templum quærens, quod tunc non incolet ullus.*

Templum autem Isidis & Sarapidis in Ægypto diruendum dicit, & exurendum:

*Isi dea in Nili tu undis infausta manebis*
*Sola, & uoce carens, Menasq; Acherontis arenis.* Deinde subijcit:
*Tuq; Sarapi erecta ingens cui saxea moles,*
*Magnus in Aegypto misera impendet tibi casus.*

Sed si tu non audis prophetissam, at tuum audi philosophum Heraclitum Ephesium, quòd sint insensiles, exprobrantem imaginibus. Et his vota faciunt imaginibus, perinde ac si quis loquatur cum ædibus. An non enim sunt prodigiosi qui lapides adorant? Deinde verò eos etiam statuentes ante fores, perinde ac viuos ac efficaces? Mercurium tanquam deum adorant, eum etiam ἀγυιεα, hoc est, viæ viciniæve præfectum, ianitorem statuentes. Si enim tanquam insensiles iniuria afficiunt, cur adorant vt deos? Si verò existimant eos esse sensus participes, cur eos ianitores constituunt? Romani autem qui res maximas & præclarè gestas Fortunæ attribuunt, & eam esse deam maximam existimant, posuerunt eam in sterquilinio: dignum Deæ templũ, secessum tribuẽtes. Verumenimuerò insensili lapidi & ligno & diuiti auro nihil penitus curæ est, nec nidor, nec sanguis, nec fumus, quo dum honorantur & suffumigantur, nigrescunt: sed neque honori: nec iniuria. Sunt autem hæ imagines quouis animali viliores. Et quomodo quæ sunt insensilia, diuino sint honore affecta, mihi venit in mentem dubitare, & errantium, vtpote miserorum, B misereri amentiæ. Nam si quædam animalia non habent omnes sensus, vt vermes & erucæ, & quæcunque statim à primo ortu manca & mutila apparent, sicut talpæ & mus araneus, quam dicit Nicander cæcam & surdam, sunt tamen meliores his statuis & imaginibus quæ sunt surdæ penitus: habent enim vnum quidem certè sensum, verbi gratia, auditum vel tactum, vel qui habet proportionem ac conuenientiam cum odoratu vel gustu: simulachra autem nullum sensum participant. Sunt autem multa animantia quæ nec visum habent, nec auditum, neq; vocem, cuiusmodi est genus ostreorum, viuunt tamen & augentur, & præterea vnà cum Luna afficiuntur. Statuæ autem ociosæ, inefficaces, inutiles & insensiles, alligantur, & clauis configuntur, & compinguntur, funduntur, limantur, secantur, eraduntur, cælantur. Surdam quidem terram vexant & contumeliose tractant statuarij, eam à natura propria arte dimouentes, & adorare persuadentes. Adorant autem ij qui deos faciunt, non deos & dæmones, mea quidem sententia, sed terram & artem, quod quidem est imagines. Verè est imago, mortua materia formata manu artificis. Nobis autem non est sensilis, imago materiæ sensilis, sed quæ percipitur intelligentia. Deus qui solus verè est Deus, intelligentia percipitur, non sensu. Ac rursus cùm in ipsis casibus & infortunijs re ipsa didicerint superstitiosi lapidum adoratores, insensilem non colere materiam, ab ipso vsu victi pereunt præ superstitione: & tamen simulachra contemnentes, nec volentes omnino videri cõtemnere, ab ipsis dijs conuincuntur, quibus sunt dedicatæ imagines. Dionysius enim tyrannus iunior cùm C auream vestem Ioui abstulisset in Sicilia, iussit eum indui lanea, facetè dicens eam esse aurea meliorem, vt quæ esset & æstate leuior, & hyeme calidior. Antiochus autem Cyzicenus cùm egeret pecunijs, Iouis auream statuam, quæ erat magnitudinis quindecim cubitorum, fundi iussit, & ex alia viliori materia statuam illi similem, laminis inauratam, rursus reponi. Hirundines autem, & multæ aues sæpe aduolantes, inquinant imagines, nullam curam gerentes nec Olympij Iouis, nec Æsculapij Epidaurij: sed nec Mineruæ Poliadis, vel Sarapidis Ægyptij, à quibus nec ipsas quidẽ imagines esse insensiles discitis. Sed sunt quidem improbi aliqui prædones, vel hostes, qui facta irruptione, turpis lucri gratia, sacra sunt depopulati, & diripuere donaria, vel ipsas etiam fuderunt statuas. Et si Cambyses aliquis, vel Darius, vel alius insaniens, quædam eiusmodi fecerit, & si Ægyptium quis Apim occiderit, rideo quidem quòd deum ipsorum occiderit: indignor autem, si propter lucrum peccauit. Lubens autem obliuiscar huius maleficij, auaritiam, non idolorum imbecillitatem conuinci existimans. Sed non ignis nec terribiles terræmotus pertimescunt aut reuerentur dæmones aut imagines, non magis quàm calculos qui sunt ad littora accumulati fluctibus. Scio ego ignẽ posse cõuincere, & mederi superstitioni, si velis cessare ab amentia. Ignis te ad lucem deducet. Hic ignis, & templum quod erat Argis, combussit vnà cum sacerdote Chryside, & id quod erat Ephesi, Dianæ, secundum post Amazones, & Romæ sæpe depopulatus est Capitolium. Sed nec

[Margin notes: σμύφλαν; *Epidaurus est oppidum Argorum sacrũ Apollini.*]

abstinuit à templo Sarapidis Alexandriæ. Liberalis autem Dionysi Athenis templum diruit,& templũ Delphici priùs rapuit procella, deinde ignis sapiens temperansque deleuit. Hoc tibi ostenditur prooemium eorum quæ pollicetur ignis. Qui autem fabricantur statuas, nónne eos admonent qui ex vobis sapiunt, vt materiam contemnatis? Atheniensis quidem Phidias, qui scripsit in Iouis Olympij digito, παντάρκης καλὸς, Pulcher omnes adiuuans. Non erat enim ei pulcher Iupiter, sed is qui ab eo amabatur. Praxiteles autem, vt declarat Posidippus in libro de Cnidio, Veneris Cnidiæ construens imaginem, fecit eam formę similem Cratinæ quam amabat, vt adorarent miseri amicam Praxitelis. Cùm floreret autem Phryne meretrix Thespiaca, pictores omnes imitabantur Veneris imagines ad Phrynes pulchritudinem: sicut rursus lapicidæ quoque Mercurios effingebant Athenis ad Alcibiadem. Restat nunc tuum adhibere iudicium, si velis etiam adorare meretrices. Hinc puto moti Reges veteres, has fabulas despicientes, liberè, propterea quòd ab hominibus nullum impendêret periculum, seipsos deos pronunciarunt: ea ratione docentes, illos quoque per gloriam factos esse immortales. Ceyx quidem filius Æoli, appellatur Iupiter ab vxore Alcyone. Rursus autem Alcyone, Iuno appellatur à marito. Ptolemęus autem quartus vocabatur Dionysus, & Mithridates Ponticus ipse quoque Dionysus. Volebat autem Alexander quoque videri filius esse Ammonis, & cornutus effingi à statuarijs, pulchrum hominis vultum cornu studens ignominia probroque afficere. Neque verò solum reges, sed etiam priuati, se iactant de diuinis appellationibus: vt Menecrates Medicus, qui fuit cognominatus Iupiter. Quid opus est vt referam Alexarchum? Is cùm fuisset scientia Grammaticus, vt scribit Aristus Salaminius, seipsum effinxit in Solis effigiem. Quid opus est etiam meminisse Nicagoræ? Erat Zelites genere, natus tempore Alexandri, Mercurius appellabatur Nicagoras, & vsus est Mercurij veste: cùm etiam integræ gentes, & cum ipsis viris vrbes, adulatione vtentes, de dijs fabulas viles & contemptas reddant, homines seipsos efficientes, dijs æquales, inflati à gloria, sibi qui modum superant honores decernentes, nunc quidem Macedonem Pellæum, Amyntoris filium Philippum in Cynosarge adorandum decernentes, cui & fractus erat iugulus, & fracta tibia, cui fuerat exectus oculus: & rursus Demetrium ipsum quoque Deum vocantes, & vbi ex equo quidem descendit Athenas ingrediens, est templum Demetrij καταβάτε, hoc est, Descensoris. Vbiq; autem aræ & nuptiæ Mineruæ ei parabantur ab Atheniensibus. Ille autem Deum quidem despiciebat, cùm non posset nubere imagini: habens autem Lamiam meretricem ascendit in arcem, & in Mineruæ thalamo volutabatur, veteri virgini, meretricis iuuenis figuras & habitus ostendens. Neque est ergo Hipponi invidendum mortem suam efficienti immortalem: is enim Hippo iussit suo inscribi monimento hunc versum elegiacum:

*Quidam dicunt hoc fecisse Phidiã.*

*Cynosarges Atticæ gymnasium.*

A B

*Hic est Hipponis tumulus, quem lumine cassum*
*Aeternis fecit Parca parem esse deis.*

C Rectè quidẽ, ô Hippo, humanum errorẽ nobis ostendis. Si enim tibi vel loquenti non crediderunt, fiant mortui discipuli. Hoc est oraculum Hipponis, ipsum intelligamus. Qui à vobis adorantur, cùm fuerint aliquando homines, deinde quidem mortem obierunt. Affecit autem ipsos honore & fabula & tempus. Solent enim, nescio quomodo, ea quidem quæ sunt præsentia, despici propter consuetudinem: quæ autem sunt præterita, separata ab ea quæ tunc erat præsens probatione, propter incertitudinem temporis, in honore esse propter figmentum: & alia quidem non credi, alia verò etiam haberi in admiratione. Iam verò veteres mortui longo erroris tempore se venditantes, à posteris existimantur esse dij. Harum rerum fidem vobis faciunt vestra mysteria, celebres conuentus, vincula & vulnera, & dij lachrymantes.

*Iliad. ο.*

*Hei mihi, quòd qui hominum est mihi uel charißimus unus,*
*A Patroclo statuunt Sarpedona fata domari.*

Superata est Iouis voluntas, & vobis fictus Iupiter luget propter Sarpedonẽ. Meritò ergo vos ipsi idola & dęmones eos vocatis, cùm & Mineruam ipsam & alios deos, qui eos improbè honorauit, Homerus, appellauit dæmones.

*Illa ast conscendit Olympum,*
*Ad Iouis Aegiferi, aliosq; ad dæmonas, ædes.*

Quomodo ergo sunt adhuc dij simulachra & dæmones, verè abominandi & im-

A immundi spiritus, quos fatentur omnes esse terrenos & lutulentos, qui circa sepulchra & monimenta ipso pondere depressi versantur & volutantur? circa quæ etiam exiliter & euanidè apparent spectra vmbris similia. Hi sunt vestri dij, simulachra, vmbræ, & præter hos claudæ illæ & rugosæ & strabis oculis litæ, quæ sunt potius filiæ Thersitis quàm Iouis. Quare mihi videtur Dion facetè dixisse, quomodo homines bonam prolem iure petierint à Ioue, quam ipse sibi præbere non potuit? O impietatem puram: ab interitu alienam essentiam, quoad eius à vobis fieri potest, defoditis, & id quod est intemeratum & sanctum, eius quæ verè est essentię, obruistis, deum deprædantes. Quid ergo ijs qui non sunt dij munera tribuistis? Cur verò relicto cælo, terram honorastis? Quid est autem aliud aurum, vel argentum, vel adamas, vel ferrũ, vel æs, vel ebur, vel lapides pretiosi? an'nõ terra, & ex terra? An'nõ aũt vnius matris terræ sunt fœtus hæc cũcta quę vides? Cur ergo, ô stolidi & inaniũ rerũ dediti cogitationi (rursus enim reuertar ad institutũ) cælestem locũ maledictis incessentes, pietatem ac religionem in solum detraxistis? terrestres deos vobis fingentes, & hæc genita ante deum ingenitum persequentes, in profundiorem incidistis caliginem? Pulcher est lapis Parius, sed nondum est Neptunus. Pulchrum est ebur, sed nondum est Olympius. Materia semper arte indiget. Deus autem est nullius indigus. Præcessit ars, adiecta est figura. Materia & essentiæ opes, ad lucrum quidem deducunt, sola autem sunt figura venerandæ. Aurum est tua statua, est lignum, est lapis, est terra, quæ si ab initio consideraueris, formam accepit ab artifice.

*Iliad. 1.*

*Lapis Parius, est mirum in modum albus.*

B Ego autem terram calcare didici, non adorare. Non est enim mihi fas vnquam rebus inanimatis credere spes animæ. Eundum est ergo quàm proximè fieri potest ad imagines. Nam qui est proprius earũ error, vel ex aspectu conuincitur. Dęmonum enim affectionem imagines vel apertissimè exprimunt. Si quis ergo picturas & imagines obiens contempletur, ex turpibus ignominiaque ac dedecore plenis figuris, vestros deos statim agnoscet, Dionysum ex amictu, Vulcanum ex arte, Cererem ex calamitate, Inô ex vitta, Neptunum ex tridente, Iouem ex cygno, Herculem autem ostendit pyra: & si quis nudam viderit depictam mulierem, auream Venerem intelligit. Sic Pygmalion ille Cyprius eburneam amauit statuam: erat ea simulachrum Veneris, & erat nudum. Vincitur figura Cyprius, & coït cum imagine. Id autem scribit Philostephanus. Venus autem alia in Cnido erat lapis, & erat pulchra: alius eam amauit, & cum lapide Veneris habet consuetudinem, vt refert Posidippus: prior quidem in opere de Cypro, alter verò in opere de Cnido. Tantum ars valuit ad decipiendum, quæ homines amori deditos illexit in barathrum. Vim quidem efficacem habet ars opificis: sed eum qui est ratione præditus, non potest decipere, nec eos qui vixerunt ex ratione. Per picturam enim, propter adumbratam similitudinem, columbi aduolarunt ad columbas, & equabus rectè pictis equi adhinnierunt. Adolescentem aiunt amasse imaginem, & pulchrum iuuenem simulachrum Cnidium: sed spectatorum visum ars deceperat. Neque enim cum dea congressus esset aliquis, neque esset aliquis sepultus cum mortua, neque

C dæmonem amasset & lapidem aliquis, qui fuisset sanæ mentis. Vos autem ars decipit alijs præstigijs, etiamsi non inducens ad amãdum, verùm ad colendũ & adorandum simulachra & picturas. Similis quidem est pictura: laudetur ars, non decipiat autem hominẽ, ac si esset veritas. Quietè stetit equus, columba minimè est perturbata, & penna stetit ociosa. Vacca Dędali, quæ ex ligno cõfecta fuerat, cepit taurum agrestem, & coëgit bestiam ars, quæ eam deceperat, amantem inire mulierem. Tantum œstrum artes quæ improbo vtuntur artificio, attulerunt insipientibus. Sed qui simias quidem nutriunt & exercent, quòd nec cereæ, nec luteæ, nec virginaliũ mundorum similitudines, eas aliquid fallant, mirantur. Vos autem vel simijs euadetis deteriores, dum lapideis, & ligneis, & aureis, & eburneis imagunculis & picturis animum adhibetis. Tot vobis pernitiosorum ludibriorum opifices, lapicidæ, & statuarij, pictoresq;, & fabri, & Poëtæ, multam & talem turbam inducunt: in agris quidem Satyros, per syluas autem nymphas Oreades, & Hamadryades: quinetiam in aquis & fluuijs & fontib. Naiades, & in mari Nereides. Magi autẽ se iam suę impietatis gloriantur ministros habere dęmones, vt qui eos in suorum famulorum numerum adscripserint, & necessitate adactos seruos fecerint suis carminibus. Deorum itaq; nuptiæ, & liberorum procreationes, & puerperia, & adulteria quæ canuntur, & conuiuia quæ à Comicis recitantur, & risus qui in potu inducuntur, incitant me vt vociferer, etsi velim tacere. O impietatẽ, scenã cælũ fecistis, & deus vobis factus

est actus, & quod sanctum est, dæmoniorum personis in Comœdia ludificati estis, A
σατυρίζοντες verum Dei cultum ac religionem, dæmonum superstitione, libidinosè & obscœnè inquinantes.

*Sed pulsans citharam pulchrè is præludere cœpit.*

Cane nobis, ô Homere, pulchram aliquam cantilenam.

Ὀδυσ. θ. *Furtiuum pulchræ Venerisq; & Martis amorem.*
*Vulcani in tecto ut fuerit congressus amantum*
*Primum, & per multa incestarit dona cubile,*
*Vulcani regis.*

Desine canticum, ô Homere, non est pulchrum, docet adulterium. Nos autem ne aures quidem stupris ac fornicationibus inquinare volumus. Sumus enim nos, sumus, qui Dei imaginē circūferimus, in hoc viuo, & qđ mouetur, simulachro, homine, simul habitantē imaginē, consulentē, colloquentē, contubernalē, & quæ nostris mouetur affectionibus, & est affectionib. omnibus superior. Nos Deo donati & de-
1.Pet.2. dicati sumus pro Christo. Nos genus electū, regale sacerdotiū, gens sancta, populus
Exod.9. peculiaris, qui aliquādo non populus, nunc autem populus Dei, qui, vt ait Ioannes,
Ioan.6. nō sumus ex ijs qui sunt inferiùs, sed ab eo qui venit supernè, vniuersum didicimus, qui Dei œconomiam seu carnis susceptæ dispensationem mente comprehēdimus, qui vt in vitæ nouitate ambularemus nos exercuimus. Sed hæc non cogitat vulgi magna pars, sed pudore & metu omni abiecto, domi depingunt turpes dæmonum
πασχητιασμοὺς in Venerem pruritus & titillationes. Depictis enim quibusdam tabellis sublimè appensis, mentem adhibentes, thalamos ornarunt impudicitia, intemperantiam existimantes pietatem: & in cubili decumbentes, in ipsis amplexibus Venerem illam nudam respiciunt, quæ vincta est propter complexus: & ad Ledam advolantem auem, quòd sit mulierū amans, probantes & admittentes, in annuli palla imprimūt picturam, vtentes signaculo conveniente Iouis impudicitiæ. Hæc sunt mollis & delicatæ vitæ vestræ exemplaria. Hæ sunt Theologiæ probri & petulantiæ plenæ. Hę sunt doctrinæ deorum, qui vnà vobiscum fornicantur. Nam quod quilibet vult, hoc etiam putat, vt ait orator Atheniensis. Cuiusmodi autem sunt aliæ quoq; vobis imagines? Panisci quidam, & nudæ puellæ, & ebrij Satyri, & membrorum erectiones, quæ picturis nudantur, convictæ proficisci ab intemperantia. Iam verò totius libidinis & impudicitiæ figuras apertè descriptas publicè intuentes, non erubescitis, sed potius positas erectasq; custoditis, perinde ac si deorū vestrorum imagines impudentiæ columnas domi consecraueritis, figuras gestusq; Philęnidis æquè depingentes, atq; certamina Herculis. Horum non solùm vsus, sed etiam aspectus & auditus deponēdam esse memoriam vobis annunciamus. Scortatæ sunt aures vestrę, fornicati sunt oculi, & quod est magis nouum, ante complexum vestri adulterium
Græcè ita puto legendum καὶ τὸ ἔνθεον τοῦ πλάσματος ἐλέγχῳ ἀναράξαντες. admiserunt aspectus. O´ qui homini vim attulistis, & diuinitatem figmenti confutatione convellistis, omninò increduli estis, vt vestras sequentes animi perturbationes, vacetis delitijs, & creditis quidem simulachris, eorum quærentes intemperantiam: Deo autem non creditis, moderationem non ferentes & continentiam: & quæ sunt quidem præstātiora, odio habuistis: quæ verò deteriora, honore affecistis, vt qui virtutis quidem sitis effecti contemplatores, vitij autem decertatores. Beati ergo vno, vt semel dicam, consensu sunt soli illi ex Sibyllæ sententia, quicunq; C

*A se uisa deûm qui omnino templa negabunt,*
*Surdorum & lapidum quæ sunt altaria, sedes:*
*Ex lapide & manibus simulachra effecta uirorum,*
*Cæsorum quæ sunt animato infecta cruore,*
*Quadrupedum, bipedum, uolucrumq;, & cæde ferarum.*

Exodi 20. Nobis enim est apertè vetitum artem fallacem exercere. Non facies enim, inquit Propheta, cuiusvis rei similitudinem, eorum quæ sunt in cælo, & quæcunq; sunt in terra infrá. Reuera enim Cererem Praxitelis, & Proserpinam, & Iacchum mysticū deos existimaremus, vel Lysippi artes, vel manus Apellis, quę diuinæ existimationis figuram prębuere materiæ. Sed vos quidem vt statua fabricetur quàm pulcherrima valde adlaboratis, ne autem propter insensilitatem efficiamini imaginibus similes, non curatis. Valde certè dilucidè & breuiter arguit Propheticus sermo consuetudinem, dicens, quòd omnes dij gentium sunt idola dæmoniorum: Deus autem cælos fecit, & ea quæ sunt in cælo. Hinc itaq; factum est, vt quidam errantes nescio quomodo, diuinam quidē artem, sed non Deum adorēt, Solem & Lunam, & alium chorum

A chorum astrorum, eos præter rationem deos existimantes, cùm sint instrumenta temporis. Verbo enim eius firmati sunt cęli, & spiritu oris eius omnis virtus eorũ. *Psalm. 32.* Sed ars quidem humana, & domos, & naues, & vrbes, & picturas fabricatur, Deus autem quomodo dixerim quæcunque facit? Vide vniuersum mundum. Illius est opus & cælum & Sol, & angeli & homines sunt opera digitorum eius. Quanta est autem Dei potentia? Ipsius Dei solùm voluntas, est mũdi creatio. Solus enim Deus fecit, quoniam ipse quoque est solus verè Deus. Sola voluntate operatur, & eius solum velle, factum esse consequitur. Hinc euertitur chorus Philosophorũ, qui factum quidem esse hominem ad cælum contemplandum pulcherrimè confitentur, sed quæ in cælo cernuntur & visu comprehenduntur adorant. Etsi enim humana opera non sunt ea quæ sunt in cælo, at hominibus tamen sunt fabricata. Nec adoret quis vestrûm Solem, sed Solis effectorem desideret: neque mundum Deum esse censeat, & vt Deum colat, sed mundi quærat opificem. Ei ergo qui ad portas venturus est salutares, solum restat, vt videtur, refugium diuina sapientia. Hinc tanquam ex sacro aliquo asylo, nullus homo potest amplius educi, qui magno studio contendit ad salutem. Persequamur autem, si velis, sententias quoq; philosophorum, quas de dijs iactitant, si fortè ipsam quoq; inuenerimus philosophiam, propter inanem gloriam, ex materia idola constituentem, si etiam dæmonia quædam diuino honore afficientem, persequendo ostendere possimus somniare veritatem. Principia itaque à se laudata reliquerunt, Thales Milesius aquam, & Anaximenes, qui ipse quo-

B que fuit Milesius, aërem, quem Diogenes Apolloniates est postea consecutus. Parmenides autem Eliates introduxit deos ignem & terram. Ex his autem alterum solum deum existimarunt ignem, Hippasus Metapontinus, & Ephesius Heraclitus. Empedocles autem Agrigentinus, cùm incidisset in multitudinem, prçter hęc quatuor elementa, contentionem enumerat & amicitiam. Sunt autem hi quoq; impij, qui insipida quadam sapientia adorarunt materiam: & lapides quidem vel ligna nõ honorarunt, terram autem eorum matrem vt deam esse colendam putarunt: & Neptunum quidem non effingunt, ipsam autem aquam colunt. Quid est enim aliud Neptunus, quàm humida quædam substantia, quæ ἀπὸ τῆς πόσεως, hoc est, à potu, Gręcè vocata ποσειδῶν, sicut certè Mars bellicus ἄρης Græcè dictus est ἀπὸ τῆς ἄρσεως καὶ ἀναιρέσεως, id est, ab insurrectione & interfectione. Qua ratione mihi videntur quoque valde multi, cùm solum ensem fixerint, tanquam Marti sacrificare. Est autem hoc Scytharum, sicut dicit Eudoxus in secundo de ambitu. Ex Scythis autem Sarmatæ, vt dicit Icesius in opere de Mysterijs, adorant acinácem. Hoc etiam vsu venit Heraclito & eius sectatoribus, qui ignem colunt tanquam ortus rerum principium. Hunc enim ignem alij nominarunt ἥφαιστον, id est, Vulcanum. Persarum autem Magi ignem coluërunt, & multi ex ijs qui Asiam incolunt. Quinetiam Macedones, vt ait Diogenes in primo Persicorum. Quid mihi opus est recensere Sarmatas, quos refert Nymphodorus, in libro de Legibus Barbaricis, ignem colere, aut Persas & Medos & Magos? Hos autem dicit Dinon sacrificare sub dio, solas deorum imagines ignem & aquam esse putantes. Neque verò eorum celauerim inscitiam: nam

C etsi se maximè existimant fugere ab errore, in alium tamen labuntur errorem. Deorum quidem imagines ligna & lapides non existimarunt, vt Gręci. Sed nec Ichneumonas & Ibides, vt Ægyptij, sed ignem & aquam, vt philosophi. Multis tamen postea decursis annorum curriculis, eos imagines hominum formæ similes coluisse ostendit Berosus in tertio Chaldaicorum, cùm hoc introduxisset Artaxerxes Darij filij Ochi filius, qui cùm primus Veneris Tanaidis imaginem erexisset Babylone, & Susis, & Ecbatanis, & Persis, & Bactris, & Damasco, & Sardibus, eam ostendit esse colendam. Fateantur ergo philosophi suos magistros fuisse Persas, vel Sarmatas, vel Magos, à quibus didicerunt impietatem venerabilium sibi principiorum, principem omnium effectorem & ipsorum principiorum opificem ignorantes, deum, qui caret principio: hæc autem egena & infirma, vt ait Apostolus, quæ ad vsum hominum ministeriúmque facta sunt elementa adorantes. Ex alijs autem philosophis, qui elementis præteritis, quid excelsius & præstantius indagarunt: alij quidem ex ipsis laudarunt infinitum, ex quibus fuit Anaximander Milesius, & Anaxagoras Clazomenius, & Atheniensis Archelaus. Atque hi quidem ambo præfecerunt mentem infinitati. Leucippus autem Milesius & Chius Metrodorus, ipsi quoque, vt videtur, duplicia reliquêre principia, plenum & inane. His autem duobus assumpta adiecit simulachra, seu rerum species, Democritus.

*Hic Berosus fuit Sibyllæ pater, ut refert Iustinus Martyr.*

*Galat. 4.*

Abderitanus. Alcmæon verò Crotoniata, astra deos esse putabat, vt quæ sint animata. Sed nec eorum silebo impudentiam. Xenocrates (fuit hic Carthaginensis) septem quidem deos Planetas, octauum verò, qui ex his omnibus constat, mundum tacitè significat. Sed nec prætermittam Stoicos, qui omnem quantumvis vilem & abiectam materiam dicunt deum pervadere, qui apertè suam philosophiā afficiunt dedecore. Sed nec molestum fuerit, vt arbitror, cùm ad hunc locū pervenerim, meminisse etiam Peripateticorum. Et qui est quidē pater huius hæresis, cùm non intellexisset patrem, eum qui vocatur supremus, putat esse animā vniuersi, hoc est, mūdi animam deum esse existimans, ipse à se ipso confoditur. Qui enim vsq; ad Lunam eius definit providētiam, deinde mundū deum esse existimat, evertitur, vt qui eum, qui est dei expers, deum esse arbitretur. Eresius autem ille Theophrastus, familiaris Aristotelis, alicubi quidem cælum, alicubi verò spiritum, deum esse existimat. Nam Epicuri quidem solius vel lubens obliuiscar, qui deo dicit non esse curæ res humanas, impiè se gerens per omnia. Quid verò Heraclides Ponticus? non ipse quoque alicubi detrahitur ad simulachra? Magna mihi affluit huiusmodi turba, inducens veluti quandam laruam dæmoniorum, absurdas exterorum fabulas, nugis anilibus adumbratas. Longè abest vt viris permittamus audire eiusmodi fabulas, qui ne lachrymantes quidem, vt dicitur, filios narrando fabulas solari assuescimus, timentes ne vnà cum eis nutriamus impietatem, quæ annunciatur quidem ab his, qui sibi videntur sapientes: qui quidem veritatem non magis nouerunt quàm pueri. Quid enim, ô per veritatem, eos qui tibi crediderunt, fluxui & interitui grauibus & inordinatis efficis obnoxios? Cur verò mihi vitam reples simulachris, vel ventos, vel aërem, vel ignem, vel terram, vel lapides, ligna, vel hunc mundum deos effingens? & de dijs etiam stellis errantibus, hominibus qui verè aberrauerunt, per hanc vulgò iactatam astrologiam, non astronomiam, sublimè loquens & nugans? Desidero dominum spirituum, dominum ignis, mundi opificem Deum quæro, qui præbet Soli lumen, non autem dei opera. Quémnam autem à te inquisitionis accipiam adiutorem? Non enim Platonem, si velis, omninò repudiamus. Quánam ergo ratione est deus perscrutandus, ô Plato? Vniuersi enim huius patrem & effectorem & invenire est difficile, & cùm inveneris, fieri non potest vt eum enuncies. Cur nam verò ô per ipsum? Nequaquam enim est dicendus. Rectè ô Plato attigisti veritatem, sed ne te pigeat laboris, vnà mecum suscipe boni inquisitionem. Omnibus enim, vt semel dicam, hominibus, maximè autem ijs qui versantur in doctrina & literis, instillatus est quidam diuinus influxus. Qua de causa vel inuiti fatentur quidem vnum esse deum, ab interitu alienum & ingenitum, eumque in cæli vertice, in sua propria specula verè semper esse. Dic autem, quísnam deus est mihi cogitandus?

*Plato in Timæo.*

*Per ipsum, videlicet Deū, dic ô Plato.*

*Qui cuncta cernit, ipse sed non cernitur,*

Ait Euripides. Mihi ergo videtur Menander errasse, cùm dicit:

*O sol Deorum, nam te adorare decet*
*Primum, Dei per quem uidentur cæteri.*

Neque enim Sol vnquam ostendet verum deum, neq; verum Verbum, qui est Sol animæ, quem, si solùm intus sit exortus, in profundo mentis, ipsius quoque mentis illustratur oculus. Vnde non improbabiliter Democritus ait, paucos ex doctis hominibus manus sustulisse: hic quem nunc Græci vocamus aërem, totum oppleri fabulis, quòd ipse omnia norit, & det, & auferat, & is sit rex omnium. Hac ergo ratione Plato, quoq; de deo cogitans, regem omnium significat, & est ille causa omnium bonorum. Quisnam ergo rex est deus vniuersorum? Eorum quæ sunt mensura veritatis. Sicut enim ea in quæ cadit dimensio, mensura comprehenduntur: ita etiam eò quòd deum cogitemus, venit in dimensionem & comprehenditur veritas. Verè autem sacer Moses: Non erit, inquit, in tuo marsupio statera magna vel parua, sed statera vera & æqua. stateram & mensuram & numerum omnium deum esse existimans. Iniusta enim & iniqua simulachra, domi in marsupio, & in sordida, vt semel dicam, anima sunt abscondita. Quæ est autem sola iusta mensura? qui solus est verè deus, semper æqualis, & semper eodem modo se habens, omnia metitur & ponderat tanquam trutina iustitia, vniuersorum naturam in æquilibrio continens & sustinens. Deus quidem certè, sicut vetus est oratio, omniū quæ sunt, principiū & finem & media continens, rectà semper secundum naturam circumcirca ingreditur. Illum autem semper consequitur iustitia, quæ de eis pœnas sumit, qui à lege diui-

*ἀῤῥεπῶς.*

A diuina deficiunt. Vndénam, ô Plato, veritatem conijcis? Vndénam abundè suppeditata rationum copia, pietatem & verum Dei cultum vaticinatur? His, inquit, sunt sapientiora barbarorum genera. Noui tuos magistros, etsi eos celare velis. Geometriã discis ab Ægyptijs, Astronomiam à Babylonijs, rectas & sanas incantationes accipis à Thracibus. Te etiam multa docuerunt Assyrij. Leges aũt quæcunq; veræ sunt, & de Deo opinio, suppeditata tibi sunt ab Hebræis, qui non vanis erroribus, nec hominum opera aurea, ænea & argentea, eburnea, lignea & lapidea hominũ qui mortui sunt adorant simulachra, quæ inani consilio adorãtur ab hominibus, sed sanctas vlnas tollunt ad cælum, manè à cubili semper corpus aquis mundantes, & immortalem qui semper regnat colunt. Nec mihi ô Philosophia vnum hunc Platonem, sed multos etiam alios cura vt in medium adducas, qui vnũ verè Deum, solum loquuntur Deũ, sicubi per eius inspirationẽ veritatẽ apprehenderint. Antisthenes enim nõ hoc quidem Cynicum cogitauit, sed vt qui esset Socratis familiaris, dicit Deũ nulli esse similem: quare nemo eum potest discere ex imagine. Xenophon autẽ Athenienſis ipse quoq; apertè scribit de veritate, testimonium dicturus vt Socrates, nisi ipse timuisset pharmacum: sed nihilo secius tacitè significat: Qui, inquit, omnia mouet & quieta efficit, magnus quidem est & apertè potens: sed cuiusmodi nam sit forma, nõ apparet. Sed nec Sol, qui omni ex parte videtur esse lucidus & conspicuus, ipse seipsum videre permittit: sed si quis ipsum impudenter fuerit contemplatus, visu oculorum priuatur. Vndénam igitur eruditur Grylli filius? num ab Hebræorũ prophetissa scilicet, quæ hoc modo vaticinatur? *Xenoph. de memor. dict. & fac. Soc.*

B *Quæ caro cælestem poterit uerumq; tueri?*
*Humanæ sortis qui expers in uertice cæli*
*Est Deus. Aduersos radios neq; cernere Solis*
*Mortales possunt homines, lucemq; micantem.*

Cleanthes autem Pisadeus, Stoicus philosophus, qui non Poëticã theogoniam, sed veram ostendit Theologiam, non celauit quidnã de Deo sentiret. Si bonum quale sit me rogas, audi: ordinatum, iustum, sanctum, pium, seipsum continens, pulchrum, decorum, seuerum, constans, semper conferens, metus, curæ & doloris expers, iucũdum, tutum, amicum, honoratum, quod omnes fatentur gloriosum, à fastu alienum, curam gerens, moderatum, vehemens, diuturnũ, reprehensioni minimè affine, semper permanens. Is est sordidus & illiberalis, quisquis respicit ad opinionem, tanquã ab illa quid boni consecuturus. Hic, vt existimo, apertè docet qualísnam sit Deus, & quòd communis opinio & cõsuetudo, eos qui ipsas sequuntur, sed non eos qui Deũ quærunt, in seruitutem redigunt. Nec est silendus Pythagoras, qui dicit: Deus quidẽ est vnus. Is autem non est, vt quidam existimant, extra mundi administrationem, sed est totus in ipsa, in toto circulo speculator totius generationis, vniuersorum contẽperatio, qui semper est, & suas facultates deducit ad opus, omnium operum in cælo illustrator, pater omnium, mens & animatio toti circulo, omnium motus. Atq; hæc quidem sufficiunt ad Dei agnitionem, quæ ab ipsis quidem Deo inspirante scripta,
C à nobis autem selecta sunt ei, qui vel parum potest perspicere veritatem. Accedat autem (non sufficit enim philosophia) ipsa quoq; poëtica, quæ est quidem omnino in falso occupata, sed vix tandem aliquando testatur veritatem, vel potius Deo confitetur fabulosam digressionem. Accedat autem quicũq; velit poëta. Ac primus quidem Aratus intelligit Dei potestatem omnia peruadere:

*Atq; ut sint omnia firma,*
*Primo & postremo præbent huic sacra precesq;.*
*O mirande pater, salue, ualde utilis orbi.*

Ascræus quoq; Hesiodus Deum itidem tacitè significat:

*Ipse suo regno ditioneq; continet omnes.*
*Nec tenet imperium hoc ex immortalibus ullus.*

Iam verò in scena quoq; veritatem aperiunt. Vnus quidem,

*In ætherem & cælum cum tu suspexeris,*
*Eum uide, tu censeas esse Deum,* ait Euripides.

Sophilli verò filius Sophocles:

*In ueritate est unus, est unus Deus,*
*Qui machinam cæli soliq; condidit,*
*Lætos marisq; fluctus, & uehementiam*
*Ventorum: aberrantes lucro nos homines*

*Sed recreantes qui incidunt casus graues,*
*Imagines & æneas & ligneas*
*Et lapideas posuimus atq; eburneas:*
*Dijsq; sacra offerentes, & festos dies*
*His celebrantes, esse dicimus pios.*

Hic quidem tam audacter & tam confidenter veritatem auditoribus introduxit in scenam. Thracius autem sacrorum simul interpres & poëta, Oeagri filius Orpheus, postquam Orgiorum sacra fuit effatus, & simulachrorũ exposuit Theologiam, veritatis inducit recantationem, verè sacram, sed serò tamen canens orationem:

*Effabor quis fas est, aures claude prophane*
*Quisquis es, illustri Musæ sed edite Luna,*
*Audi, uera loquar, nec quæ olim uisa fuere*
*Pectoribus, charæ te priuent lumine uitæ.*
*Verbum est aspiciens diuinum, assistere nunquam*
*Huic cessat, mentemq; tuam & cor dirige, recta*
*Atq; uia ingredere, mundi autem respice Regem,*
*Solum immortalem.*

Deinde inferiùs subiungens, dicit dilucidè:

*Ex se unus genitus, genita & sunt omnia ab uno.*
*Versaturq; in eis ipse, ex mortalibus ullus*
*Nec uidet hunc, contrà sed cunctos aspicit ipse.*

Sic quidem Orpheus, & cùm aberrasset, tandem intellexit: B

*Ast homo consilio ne tu cunctare sagaci,*
*Sed propera placare Deum, mox ipse reuersus.*

Si enim cùm vel maximè Græci quasdam verbi diuini accepissent illuminationes, veritatis pauca quædam sunt elocuti, attestantur quidem eius vim non occultá, seipsos aũt arguunt, vt qui imbecilli finem non attigerint. Iam enim existimo cuiuis euasisse manifestum, quòd qui absq; Verbo veritatis operãtur aliquid vel loquuntur, sunt similes ijs qui conantur ingredi absq; pedibus. Te quoq; pudore quodam moueant ad salutem, Deorum vestrorum reprehensiones, quibus à veritate coacti Poëtæ vestri, eos insectantur in comœdijs. Menander certè Comicus in Auriga, in actu qui dicitur Suppositiius:

*Nullus, inquit, mihi placet Deus foris ambulans*
*Cum uetula, neq; in domos ingrediens*
*In tabula Metragyrtes.*

Tales enim erant Metragyrtæ. Vnde eis medicantib. meritò dicebat Antisthenes: Non alo matrem Deorum quam dij alunt. Rursus autem idem Comicus in actu qui dicitur Sacerdos, ægrè ferens consuetudinem, impiam erroris arrogantiam conatur refellere, sapienter eloquens:

*Nam si trahit Deum*
*Ad quod cupit quisquam homo cymbalis,* C
*Hoc qui facit, certè is Deo est potentior.*
*Audaciæ sed uitæq; hæc reperta sunt*
*Hominibus instrumenta.*

Neq; verò solus Menander, sed etiam Homerus & Euripides, & alij permulti poetę Deos vestros arguunt, nec eos verentur insequi maledictis vel tantillum. Iam Mineruam κυνομύιαν, id est, muscam caninam, & Vulcanum ἀμφιγυῆ, id est, vtroq; pede claudũ appellant. Veneri autem dicit Helena,

*Atq; tuis pedibus reditus tibi non sit Olympo.*

De Dionyso autem seu Baccho apertè dicit Homerus:

*Et qui nutrices Bacchi quandoq; furentis.*
*In dium immisit Dionysum, quæ simul omnes*
*Thyrsum iecerunt sæuo impellente Lycurgo.*

Socratica schola verè dignus est Euripides, respiciens ad veritatem, & spectatores despiciens, aliquando quidem Apollinem, qui medias habitat sedes, in os apertissimè respondens hominibus, arguens:

*Parens ei, suam parentem cecìdit,*
*Eum putate uos impium & occidite,*
*Peccauit ille, non ego, minus sciens*

Eran

A *Erant qui honesti & ipsius iustitiæ.*

Aliquando autem Herculem inducens furiosum,& alicubi ebrium & insatiabilem. Quomodo enim non erat eiusmodi,qui in conuiuio virides ficus comedebat cũ carnibus,latrans tã ineptè,vt id sciret vel barbarus? Iam verò in actu cui nomen est Ion, capite nudo deos theatro aperit.

*Aequum esse qui potest,dedistis qui hominibus*
*Leges,rei ut uos sitis iniustitiæ?*
*Quòd si (nam erit nunquam id,& absq; re loquor)*
*Supplicium ob raptas luatis fœminas,*
*Neptune tu, & cælum tenet qui Iupiter,*
*Scelera luendo,templa eximanibitis.*

Tempus est itaq; alijs prius ordine peractis, venire ad scripturas propheticas. Prophetarum enim responsa, materiam nobis apertè præbentia ad Dei cultum & religionem,veritati fundamentum subijciunt. Diuinæ autem scripturæ, honestæq; & moderatæ vitæ institutiones,quæ sunt viæ compẽdiosæ, nudæ à verborum fucis & ornamentis blanditijsq; & illecebris, exigũt hominem qui suffocatur à vitio, casus eorum quæ ad victum pertinent contemnentes,vna & eadẽ voce multa remedia afferentes, à damnosa quidem fraude nos dehortantes, ad præuisam autem salutem apertè adhortantes. Prophetissa itaq; Sibylla nobis prima canat canticum salutare.

*Omnino en clarus,nulloq; errore uagatur.*
B *Dimissis tandem nebulis tenebrisq; uenite.*
*Solis lux grata aspectu clarissima fulget,*
*Figaturq; animis præstans sapientia uestris.*
*Est mittens imbres Deus unus,fulgura,motus,*
*Fulmina,pestes atq; fames,& tristia cuncta,*
*Et glaciem,atq; niues. Quid opus tibi singula dicam?*
*Est cæli princeps, Dominus terræis quoq; uerè est.*

Diuinè profectò errorem quidem tenebris assimilans,Soli autem & Dei luci cognitionem. Vtrunq; aũt adducens in cõparationem,docet electionem. Falsum enim nõ per solam veri allationem exterminatur,sed per vsum veritatis per vim eiectũ fugatur. Hieremias aũt Propheta sapiẽtissimus,vel in Hieremia potiùs sanctus Spiritus, Deũ ostendit: Deus appropinquãs ego sum,inquit,& non Deus procul. Si fuerit homo aliquis in occulto,& ego nõ videbo ipsum? An non cælum & terrã ego impleo? dicit Dominus. Rursum autem per Esaiam: Quis metietur,inquit,cælum palmo, & terram omnem pugillo? Vide Dei magnitudinẽ,& admirare. Eum adoremus de quo dicit Propheta: A facie tua montes liquescent, sicut cera à facie ignis. Is est, inquit, Deus, cuius cælũ est thronus,terra autem scabellum pedum eius, qui si cælum aperuerit,te error apprehendet. Vis aũt etiam audire quid hîc Propheta dicat de simulachris? Traducentur,inquit,coram Sole, & erunt eorum morticinia escæ volucribus cæli & bestijs terræ,& putrefient à Sole & Luna. Ipsi amauerunt ea quibus ipsi etiã

*Cap.23.* *Cap.40.* *Idem 64.* *Idem 66.*

C seruierunt,& ciuitas eorum incẽdetur. Dicit aũt fore, vt etiam elementa & mundus cum eis pereant: Terra,inquit,veterascet, & cælum præteribit, verbum autem Domini manet in æternum. Quid verò quando Deus rursus voluërit seipsum per Mosen ostendere? Videte videte quòd ego sum,& nõ est alius Deus præter me. Ego occîdã & viuere faciã, percutiam & ego medebor, & non est qui eripiet è meis manibus. Sed vísne adhuc audire alium responsa dantem? Habes vniuersum chorũ Propheticum,eos qui vnà cum Mose concinunt. Quid eis dicit Spiritus sanctus? Non verebor dicere per Osee Prophetam: Ecce ego firmans tonitru,& creans spiritũ,cuius manus cæli quoq; fundarunt militiam. Præterea aũt per Esaiã hanc quoq; tibi vocẽ redigam in memoriam: Ego sum,inquit,Dominus, ego sum qui loquor iustitiam,& annuncio veritatem,congregamini & venite. Simul consultate qui seruamini à Gentibus. Non cognouerunt qui tollunt lignum, sculpturam eorum, & deos orantes qui eos non seruabunt. Deinde paulò inferiùs: Ego, inquit, Deus,& non est præter me iustus, & seruator non est excepto me. Conuertimini ad me, & salui estote qui estis ex finibus terræ: Ego sum Deus, & non est alius,per meipsum iuro. Idololatris aũt indignatur dicens: Cui assimilastis Dominum, aut cui similitudini assimilastis ipsum? Num imaginẽ fecit faber,aut aurifex auro fuso ipsum auro illiuit? & quæ deinceps cõsequuntur. Non amplius ego,ô vos idololatræ,sed nũc quoq; minas cauete. Eiulabunt enim sculptilia, & quæ manu facta sunt, vel hi potiùs qui fiduciam in

*Deut.32.* *Esa.45.* *Esa.40.*

eis habuerunt: est enim materia insensilis. Præterea, inquit, Dominus concutiet vr A
bes quæ habitantur, & manu cōprehendet vniuersum orbem terræ tanquam nidū.
Quid tibi annunciem sapientiæ mysteria & verba, ex erudito quodam Hebræo? Do
Prouerb. 8. minus creauit me initium viarum suarum ad opera sua. & Dominus dat sapiētiam,
& à facie eius cognitio & intelligentia. Quousq; piger iaces? quando autem ex som
no excitaberis? Sin autem fueris impiger, veniet tanquam fons messis tua, verbum
paternum, bonus lychnus, Dominus qui inducit lucem, fidem omnibus & salutem.
Cap.27. Dominus enim qui fecit terram in virtute sua, vt ait Hieremias, erexit orbem terræ
in sapientia sua. Nos enim qui prociderамus ad simulachra, sapientia, quæ est Ver-
bum eius, erigit ad veritatem. & hæc est prima à lapsu resurrectio. Vnde ab omni ido
Deut.6. lolatria dehortans diuinus Moses, pulcherrimè clamauit: Audi Israël, Dominus De-
Matth.4. us tuus, Dominus vnus est, & Dominum Deum tuum adorabis, & illi soli seruies.
Psal.2. Nunc ô homines intelligite, ex sententia beati illius Psalmographi Dauid, apprehē
dite disciplinam, ne aliquando irascatur Dominus, & pereatis de via iusta, quando
exarserit velociter furor eius. Beati omnes qui confidunt in ipso. Iam verò nostri mi
randum in modum miserens Dominus, nobis tradit modū salutarem, veluti nume-
Ibid.4. rum quem vocant ἐμβατήριον, quòd hortetur ad ingrediendum: Filij hominum vsque-
quo graui corde? Vt quid diligitis vanitatem & quęritis mendaciū? Quęnam est er-
go vanitas? & quid est mendaciū? sanctus Domini Apostolus Græcos reprehēdens,
Rom.1. tibi exponet, quòd cùm Deum cognouissent, non vt Deum glorificauerunt, aut gra
tias egerunt, sed euanuerunt in cogitationibus suis, & mutauerunt gloriam Dei in B
similitudinē carnis corruptibilis hominis, & seruierunt creaturæ potius quàm crea
tori. Atqui hic est Deus, qui in principio fecit cęlum & terrram. Tu autem Deū qui-
dem non intelligis, cælum autem adoras, & quomodo non te impiè geris? Audi rur
sus Prophetam qui dicit: Deficiet quidem sol, & cælum obscurabitur, resplendebit
autem omnipotens in æternum, & mouebuntur cælorū virtutes, & cæli cōuoluen-
tur vt pellis, vt qui extendantur & contrahantur (hæ enim sunt voces propheticæ)
& terra fugiet à facie Domini. Possim tibi scripturas afferre innumerabiles, quarum
ne apex quidem vnus præteribit, qui non euaserit perfectus. Os enim Domini, Spi-
Heb.12. ritus sanctus, ea est elocutum: Ne amplius ergo, inquit, fili mi negligas disciplinam
Domini, neq; defatigeris cū ab eo corriperis. O' insignem humanitatem: nō vt ma-
gister discipulos, neq; vt ministros Dn̄s, nec vt homines Deus, sed vt pater, quàm be
nignè admonet filios? Deinde fatetur quidem Moses, se timere ac tremere cùm de
verbo audiret. Tu autem verbum diuinum audiens, non times? non es anxius? non
simul & reuereris & studes discere? hoc est, festinas ad salutē, timens iram, diligens
gratiam, spem amplectēs & admirans, vt declines iudicium. Venite venite ô meorū
iuuenum cœtus: nisi enim efficiamini rursus vt pueri, & regeneremini, vt ait Scriptu
ra, eum qui verè est pater non recipietis, neq; vnquam in regnum cælorum intrabi-
tis. Quomodo enim hospiti permissum est ingredi? Sed quando, vt puto, inscriptus
fuerit, & ciuis effectus, & patrem acceperit, tunc erit in numero filiorum patris, tūc
dignus habebitur qui sit hæres, tunc germano & dilecto regnum paternum imper- C
tiet. Hæc est enim primogenita ecclesia, quę constat ex multis bonis pueris. Hi sunt
primogeniti, qui descripti sunt in cælis, & vnà cum tot angelorum millibus diem
festum celebrant. Primogeniti autem nos filij, qui sumus Dei alumni, qui primoge-
niti sumus germani amici, qui primi ex alijs hominibus Deum intelleximus, qui
primi à peccatis auulsi, qui à diabolo primi sumus separati. Nunc autem sunt tantò
quidam magis impij, quantò est benignior Deus ac humanior. Deus enim ex ser-
uis vult nos fieri filios, illi autem etiam filij effici contempserunt. O' magnam arro-
gantiam: Dominum pudore afficitis. Libertatem pollicetur, vos autem aufugitis in
seruitutem. Salutem gratis largitur, vos autem ad hominem descenditis. Vitam do
nat æternam, vos autem supplicium expectatis, & ignem præstolamini, quem para-
Ephes.4. uit Dominus diabolo & angelis eius. Propterea beatus Apostolus: Testor, inquit, in
Domino, ne amplius ambuletis sicut & Gentes ambulant in vanitate mētis suę, ob-
scurati cogitatione, & alienati à vita Dei, propter ignorantiam quæ est in ipsis, pro-
pter cæcitatem cordis ipsorum: qui quidem seipsos tradiderunt, indurati impudici
tiæ, ad operationem omnis immunditiæ & auaritiæ. Tali teste refellente hominum
ignorantiam, & Deum inuocante, quidnam restat aliud incredulis, quàm iudicium
& condemnatio? Non negligit aūt Dominus, suadens, terrens, adhortans, excitans,
admonens. A somno quidem certè excitat, & ab ipsis tenebris eos qui aberrauerūt

facit

A facit surgere:Expergiscere,inquit,qui dormis,& exurge à mortuis,& illuminabit te *Ibid.5.*
Christus dominus, Sol resurrectionis, qui ante Luciferum gignitur,qui largitus est vitam proprijs radijs.Ne quis ergo Verbum despiciat,ne seipsum imprudens despicetur.Dicit enim alicubi Scriptura:Hodie si vocem eius audieritis,nolite obdurare *Psal.84.*
corda vestra,sicut in exacerbatione secundũ diem tentationis in deserto, vbi tentauerunt me patres vestri in probatione. Quę'ná est aũt probatio?Si velis discere,exponet tibi sanctus Spiritus:Et viderunt,inquit,opera mea quadraginta annis.Quare proximus fui generationi huic,& dixi,semper errant corde.Ipsi verò non cognouerunt vias meas,sicut iuraui in ira mea,si introibunt in requiem meam.Videte minas,videte adhortationem,videte honorẽ.Cur ergo gratiã adhuc mutamus in iram, & non patentib.auribus Verbum suscipientes, in castis animis Deũ hospitio excipimus?Est enim magna gratia eius ꝓmissionis,si hodie vocẽ eius audierimus. Illud aũt,hodie,augetur in vnoquoq; eius die,donec nominatur hodie. Vsq; ad consummationẽ & hodie & doctrina permanet, & tunc quæ verè est hodie, quæ nõ deficit dies Dei,vnà cũ seculis extenditur. Semper ergo audiamns vocẽ Verbi diuini. Hodie enim est imago æterni seculi,lucis verò signum ac symbolũ est dies.Lux verò est Verbũ hominibus,per quod Deũ cõtemplamur. Meritò ergo ijs qui crediderunt & obediunt,superabundauit gratia.Iis aũt qui nõ crediderunt & errant corde, & vias Domini nõ cognouerunt, quas rectas facere & parare iussit Ioannes, ijs proximus fuit Dñs & minatur.Atq; minarum quoq; finẽ acceperunt ænigmaticè veteres Hebræorum errones.Non dicuntur enim ingredi in requiẽ,propter infidelitatem,priusquã ipsi Mosis successorẽ consecuti, serò tandem dicant se nõ posse aliter esse saluos,quàm si Iesu crediderint.Dñs autem cùm sit benignus,adhortatur omnes homines ad agnitionẽ veritatis,qui mittit paracletũ. Quę'nam est ergo agnitio? pietas
B
ac Dei cultus.Est aũt pietas ad omnia vtilis ex Pauli sententia,habens promissionẽ *1.Tim.4.*
vitæ præsentis & futuræ.Quanti ô homines profiteremini vos esse empturos, si salus æterna venderetur? Ne si Pactolum quidẽ, qui totus aureo, vt est in fabulis,fluit fluento,quis dederit,pro salute iustum pretium numerauerit.Ne vos ergo laborasse pigeat:licet vobis,si velitis,pretiosissimã salutem emere proprio thesauro, charitate & fide vitæ, quod quidem est iustũ pretium.Hoc pretium Deus lubenter accipit. Sperauimus enim in Deo viuo, qui est seruator omnium hominum,maximè aũt fidelium.Alij aũt homines qui mundo adhæserunt,vt pisciculi quidam qui vocantur φύκια petris marinis,contemnunt immortalitatem: sicut senex Ithacensis,qui nõ veritatem & cælestem patriam,& eam etiam quæ verè est lucem, desiderabat, sed fumum.Pietas autem,quæ Deo hominem quoad eius fieri potest assimilat, conuenientem sibi magistrum adscribit,nempe Deum,qui vel solus potest pro dignitate hominem Deo assimilare.Hanc doctrinã Apostolus cùm sciret verè esse diuinã, Tu au *2.Tim.3.*
tem,inquit,ô Timothee, ab infantia sacras literas nosti, quæ te possunt instruere ad salutem per fidem in Christũ.Sunt enim verè sacræ literę,quæ sacros faciunt & deificant. Ex quibus literis & sacris syllabis compositas scripturas & opera, idem cõse
C quẽter Apostolus appellat diuinitùs inspiratas, vt quæ sint vtiles ad docendũ,ad arguendũ,ad corripiẽdũ,ad instruendũ in iustitia,vt perfectus sit homo Dei, ad omne bonũ opus instructus.Non adeò aũt admirabitur quispiã aliorum sanctorum adhortationes,vt ipsum Dominum,qui est benignus ac humanus. Nullum enim aliud est ei præterquàm hoc solum opus, vt homo saluus fiat.Clamat ergo ipse vrgens ad salutem:Appropinquauit regnum cælorum.Conuertit homines timori appropinquãtes.Ea ratione Apostolus quoq; Domini adhortans Macedonas,fit diuinæ vocis interpres,dicens: Appropinquauit Dominus,cauete ne deprehẽdamur vacui. Vos au *Phil.4.*
tem qui estis adeò egeni,vel potius increduli,neq; ipsi Domino credentes,neq; Paulo,& maximè rogãti pro Christo,gustate & videte quòd Christus est Deus, fides introducet,experientia docebit,Scriptura instituet: Venite, dicens, ô filij, audite me, *Psal.33.*
timorem Domini docebo vos.Deinde vt ijs qui iam crediderũt,breuiter subiungit: Quis est homo qui vult vitam,diligit dies videre bonos?Nos sumus,inquiemus,qui sumus boni adoratores,qui bonorũ æmulatores ac sectatores. Audite ergo qui estis longè,audite qui propè.Nullis celatum est Verbum,lux est cõmunis, omnibus illucescit hominibus.Nullus est in Verbo Cimmerius,festinemus ad salutem,ad regenerationem.Multi in vnam cogi dilectionem, per monadicæ essentiæ vnionem,festinemus.Beneficio affecti, cõuenienter persequamur vnionem, bonam exquirentes vnitatem.Quæ est autem ex multis vnio?cùm ex vocum multitudine & dispersione

diuinam ceperit harmoniam, fit vnus concentus, vnum chori ducẽ sequens & magi- A
strum Verbũ, in eadem acquiescens veritate, dicens, Abba pater. Hanc Deus verã vo
cem amplectitur, eam primã à suis filijs percipiens. At, inquitis, nõ est fas nobis euer
tere consuetudinẽ traditã à patribus. Quid verò, an nõ primo alimento lacte vtimur,
cui certè in lucẽ editos nutrices nos assuefecere? Cur verò paternas facultates auge-
mus aut diminuimus, & nõ æquales, vt accepimus, cõseruamus? Cur aũt nõ ampli-
ἐνκαπαδλύζομεν us in sinu paterno singultimus, vel etiã alia quæ dum vt infantes faceremus, & alere
mur à matribus, risum mouimus, non amplius facimus? sed nos ipsos, etiamsi pæda
gogos minimè habuimus, correximus. Deinde in affectionib. quidem excessus, etsi
sint damnosi & periculosi, dulces tamen éxcidunt: in vita autem, non improbam re-
linquentes cõsuetudinẽ vitiosamq; & impiã, etsi patres ægrè ferant, declinabimus
ad veritatem, & eum qui verè Pater est inquiremus, tanq̃ letifero aliquo veneno re-
iecta cõsuetudine? Hoc ipsum enim est pulcherrimũ argumentum, ad vobis ostendẽ
dũ, ꝙ ex insania & hac lõgè infelicissima consuetudine odio habita est pietas & Dei
cultus. Nunquã enim esset odio habitũ vel prohibitum tantũ bonum, quo generi ho
minum nullũ à Deo datum est præstantius, nisi abrepti à consuetudine, deinde no-
bis occlusis auribus, vt equi duræ ceruicis habenas detrectantes, & ore frænũ mor-
dentes, fugeretis rationes, vestræ quidem vitæ aurigas nos excutere cupientes: sed
vos ipsos præ inscitia pręcipites dantes in exitiũ, sanctum Dei Verbum ducitis exe-
crandum. Vestrę itaq; electionis vos consequuntur præmia, ex Sophoclis sententia:

*Mens uana, inutiles aures, curæ irritæ.* B

Et nescitis hoc esse lõgè omnium verissimum, quòd boni quidem & pij bonam con
sequentur remunerationem, vt qui bonum honorarint: qui aũt contrà sunt mali, sup
plicium conueniens. Ac etiam vitij principi imminet supplicium? Ei certè minatur
Zach. 8. Zacharias fore vt puniatur: In te est qui elegit Hierusalẽ, nõ ecce hoc est torris euul-
sus ex igne? Quænam ergo adhuc inest hominibus appetitio mortis voluntarię? Cur
verò ad mortiferũ hunc torrem cõfugerunt, cum quo comburentur, cùm liceat rectè
ex Deo viuere, non ex consuetudine? Deus enim vitam largitur. Mala autem cõsue-
Hesiodus. tudo post excessum ex hac vita, vanam pœnitentiam affert cum supplicio. Passus no-
uit quoq; stultus, quòd perdit dæmonum superstitio, & salutẽ dat verus Dei cultus.
Videat vestrûm aliquis eos qui adorant simulachra, sordida coma, veste senta & lace
ra deformatos, à lauacris quidem omninò abstinentes, excrescentibus autem vngui
bus efferatos, & multos etiam pudendis priuatos, re ipsa ostendentes, templa idolo
rum esse quædam sepulchra vel carceres. Hi certè mihi videntur lugere, non deos co
lere, vt qui ea passi sint, quæ sunt potius misericordia digna, quàm Dei cultu ac reli-
gione. Et hæc videntes vos adhuc cæcutitis, & ad vniuersorum Dominum nõ respi-
cietis? Non autem ex ijs qui hîc sunt carceribus fugientes, confugietis ad eam quæ
est ex cælis misericordiam? Deus enim ex multa benignitate & clementia hominẽ
retinet & complectitur, sicut cùm pullus è nido éxcidit, mater auis è nido aduolat.
Si quando autem serpens pullo deuoraturus inhiet, mater circumuolat, natos cha-
rissima pignora deflens. Deus autem pater & suum quærit figmẽtum, & ei quod la- C
psum est medetur, & feram persequitur, & pullum rursus in nidum recipit, vt rursus
aduolet incitans. Deinde canes quidem, qui iam aberrauerũt sagacib. naribus quæ-
Esa. 1. rentes, Dñm inuestigant: Nouit aũt, inquit, bos possessorem suum, & asinus præsepe
Domini sui, Israël aũt me non cognouit. Quid ergo Dominus? Iniuriæ acceptæ obli
uiscitur, adhuc miseretur, adhuc postulat pœnitentiam. Volo autẽ vos rogare, an nõ
vobis videtur absurdum, vos ipsos qui estis Dei figmentum, & ab ipso animam acce
pistis, & omnino Dei estis, alij seruire Dño, & præterea colere quidem pro rege ty-
rannum, pro bono aũt malum? Quis enim, ô per veritatem, sanæ mentis, bonũ relin
quens versatur cum vitio? Quis est autem qui Deum fugiens, viuit vnà cum dæmo-
nijs? Quis autem, cùm possit esse Dei filius, delectatur seruitute? Aut quis cùm cæli
possit esse ciuis, erebum persequitur, cùm ei liceat colere paradysum, & cælum cir-
cumcirca obire, vitalisq; & puri esse fontis particeps, per lucidã illam in aëre suis ve
3. Reg. 17. stigijs ambulando nebulã, & contemplando, vt Helias, salutarem pluuiam? Illi aũt,
instar vermium, in cœno & voraginibus, nempe voluptatis fluentis volutati, inutili
bus & stultis pascuntur delitijs, suilli quidã homines. Sues enim, inquit, cœno ma-
gis delectãtur, quàm aqua munda: & in cõgestæ paleæ versari cumulo, est quædã in-
Ἐν φορυτῷ μαρ- sana eis delectatio, vt ait Democritus. Ne ergo, ne euadamus mancipia, neq; porcis
γαίνειν. efficiamur similes, sed vt germani filij lucis, intueamur lucẽ & sursum aspiciamus,

A ne nos esse adulterinos deprehendat Dominus, quemadmodum sol aquilas. Ducamur ergo pœnitentia, & ex ignoratione traducamur ad scientiã, ex imprudentia ad prudentiam, ex intemperãtia ad temperantiã, ex iniustitia ad iustitiã, ex impietate & nulla religione ad Deum. Pulchrum est periculum ad Deum transfugere. Multa alia possumus bona consequi nos iustitiæ amatores, qui æternã salutem persequimur. Quinetiam eorum quę Deus ipse tacitè significat, loquens per Esaiam, est hęreditas ijs qui colunt Dominum. Est pulchra quidẽ certè & amabilis hæreditas, nõ aurum, non argentum, non vestis, in qua sunt tineæ: nec res terrenę quas subit latro in diuitijs terrestribus cæcutiens, sed thesaurus ille salutis, ad quem oportet eos cõtendere qui Verbi fuerint amatores. Hinc autem nobiscum abeũt bona opera, & veritatis pennis simul euolant. Hanc nobis hęreditatem æternum Dei tradit testamentũ, donum æternum suppeditans. Hic autem amore nostri prædicus noster pater, verè pater, non cessat adhortari, admonere, docere, diligere. Neq; enim cessat dare salutẽ. Cõsulit autem ea quæ sunt optima. Efficiamini iusti, ait Dominus. Qui sititis, ite ad aquam: & quicunq; non habetis pecuniam, ite & emite, & bibite absq; pecunia. Adhortatur ad lauacrum, ad salutẽ, ad illuminationem, propémodum clamãs & dicẽs: Do tibi, ô fili, terram & mare, & cælum, & quæ in eis sunt tibi omnia largior animãtia. Solummodò ô fili patrem sitias, Deus tibi gratis ostendetur. Nõ cauponatur veritas, dat tibi & volucria & natatilia & terrestria animantia. Hæc tuis cum gratiarũ actione sumendis nutrimentis pater est fabricatus, quæ pecunia quidem emet qui

*Margin:* φιλαλήθων — Esa. 55. — εὐχαρίστους τῆς φῆς.

B est adulterinus, & filius perditionis, cuius institutum est seruire mammonæ: tibi autẽ tua permittit. Germano dicit filio, qui amat patrem, per quem adhuc operatur, cui etiam soli promittit, dicens: Et extendetur terra ad confirmationem. Interitui enim seu corruptioni non confirmatur. Mea est enim vniuersa terra: ea autem tua quoq; est, si Deum receperis. Vnde ijs qui crediderunt, meritò annunciat Scriptura: Sancti autem Domini erunt hæredes Dei gloriæ & potentiæ. Quænam est, dic mihi ô beate, gloria? Quam oculos nõ vidit, nec auris audiuit, nec in cor hominis ascendit, & lętabuntur in regno Domini sui in æternũ, Amen. Habetis ô homines diuinã gratiæ promissionẽ: audiuistis etiam alias supplicij minas, per quę dat salutẽ Dominus, & gratia & metu hominẽ instituens. Quid cunctamur? cur non suppliciũ effugimus? Cur non donũ suscipimus? Cur non eligimus ea quæ sunt præstantiora, Deum malo, & idololatriæ præferentes sapientiã, & vitã morte cõmutantes? Ecce, inquit, ante faciem vestram posui mortem & vitã: tentat te Dominus vt vitã eligas. Cõsulit tibi vt pater, Deo obedite. Si enim me, inquit, audieritis & voluëritis, bona terræ comedetis. Obediẽtiæ est gratia. Sin autẽ mihi nõ obedieritis, neq; voluëritis, gladius vos & ignis deuorabit. Inobedientiæ autẽ est iudiciũ. Os enim Domini hæc locutũ est, lex veritatis, Verbũ Domini. Vultis ego sim vobis bonus consiliarius? Sed vos quidẽ audite, ego autẽ, si fieri posit, ostendam. Vos quidem oportebat, ô homines, de ipso bono cogitantes, testem à natura ingeneratũ & eum fide dignũ adducere, nẽpe fidem, quæ ex se & ex sua domo apertè eligit id quod est optimum ac pręstãtissimum, nec quærere aut laborare an ea sit persequẽda. Etenim an aliquẽ inebriari o-

*Margin:* Esa. 64. — 1. Corin. 2. — Ecclesi. 15. — Esa. 1.

C porteat, verbi gratia, dubitare oportet? Vos autẽ inebriamini, priusquam consideraueritis. Et an iniuria sit faciẽda, nõ valde estis soliciti, sed quàprimùm iniuriam facitis. Solùm autẽ an Deus sit colendus quæritis: & an sapiens, hoc est, Deus & Christus sit sequendus, hoc consultandum & considerandũ esse censetis. Credite nobis, si vos inuaserit ebrietas, vt sobrij & moderati sitis. Credite, si affecti estis iniuria, vt vitatis. Si autem vultis credere, euidentẽ virtutũ fidẽ suspicientes, ex redundanti quadam copia vobis adducam de Verbo persuasionẽ. Vos autem (patrij enim mores adhuc vos præoccupatos abducũt à veritate) iã audieritis quomodo se habet id quod sequitur. Neq; verò vos huius nominis pudor occupet, q viris affert dãnũ maximũ. In veritatis ergo stadio nos apertè exuẽtes, germanè ac legitimè certemus, designatore quidẽ Verbo sancto, certamen autẽ ac præmium certaminis agonotheta proponente Domino vniuersorũ. Non proponitur enim nobis paruũ certaminis præmiũ immortalitas. Nõ curetis ergo, nec si vobis detrahant quidã forensiũ rabularũ quisquiliæ, dæmonũ superstitionis impiũ ducentes chorũ, amentia & insania in ipsum deturbati barathrum, simulachrorũ factores, & adoratores lapidũ. Illi enim ausi sunt homines in deos referre, tertiũdecimũ Macedonẽ Alexandrum in deorũ numerum adscribentes, quem Babylon arguit mortuũ. Diuinũ itaq; admiror Sophistam, ei nomẽ erat Theocritus. Irridẽs is Theocritus vanas hominũ opiniones quas de dijs ha-

*Margin:* *Qui pudor scilicet, eos qui sunt magno & forti animo, solet ualde lædere: tales enim uiros appellat.*

bebant, dixit ad ciues: O viri, inquit, bono estote animo, donec videtis deos mori A
ante homines. Hos autem deos qui sub aspectũ cadunt, & horũ qui sunt geniti promiscuam qui adorat colluuiẽ, eisq; assentatur, is est dæmonibus illis longè infelicior. Deus enim nullo modo est iniustus vt dæmones, sed q̃ fieri potest iustissimus: neque est illi quicquã similius, quàm qui ex nobis fuerit quàm iustissimus. Ite in viam omnes qui illiberalẽ manuum artem exercent, populus qui Mineruam Iouis filiam Gorgopin & Ergatin statutis vẽtilabris colitis: stulti lapidũ opifices ijdemq; adoratores veniãt, Phidias vester & Polycletus, & rursus Praxiteles, & Apelles & quicũq; illiberales & sordidas tractant artes, qui sunt terreni terræ operarij. Tunc enim, inquit quædã prophetia, res hìc se habebunt infeliciter, quãdo crediderint statuis. Veniant ergo rursus (non enim desinã vocare) viles abiectiq; artifices: nullus vtiq; ex his spirantem fabricatus est imaginẽ, sed neq; ex terra mollem carnem effecit. Quis liquefecit medullam? aut quis fecit vt ossa cõcrescerent? quis neruos distendit? quis venas inflauit? quis in ipsis sanguinem infudit? aut quis cutem extendit? vbínam autem quis eorũ oculos fecit videntes? quis inspirauit animã? quis donauit iustitiam? quis promisit immortalitatẽ? Solus vniuersorũ opifex Pater, cuius est ars longè optima ac præstantissima. Talẽ animatam imaginẽ, nos, nempe hominem fecit. Olympus autem vester, imago imaginis longè à veritate discrepans, est surdum opus manuum Atticarum. Est enim Dei imago eius verbũ & filius, mẽtis germanũ diuinum illud Verbũ, lucis lux exemplaris & archetypa. Verbi autem imago est homo, vera mẽs quæ est in homine, qui ad Dei imaginẽ & similitudinẽ propterea factus esse dicitur, prudẽtia quæ est in corde, diuino Verbo assimilatus, & ea ratione Verbi rationisq; particeps. Hominis autẽ terrigenæ, qui videtur, terrena imago, sunt quæ viri similitudinem referunt effigies. Procul à veritate cernitur id quod est ad tempus expressum ac efformatũ. Nihil ergo mihi videtur fuisse aliud vita nisi furore plena, quæ tanto studio versabatur in materia. Permissa est autem à vana opinione consuetudo, quę nos quidem fecit gustare seruitutẽ, curamq; superuacaneã & à ratione alienam. Legũ autem iniquarum & fallacium imitationum causa est ignoratio, quæ quidem hominũ generi comparata, cùm Parcarum exitialiũ & abominandorum simulachrorum dæmonũ multas formas excogitasset, ijs qui eã sequũtur longæ mortis impressit maculã. Rationalẽ ergo aquã seu Verbi accipite. Lauamini qui estis polluti. Vos veris aspergite guttis & emundate à consuetudine. Mundos homines cælũ oportet conscendere. Homo es, quære id quod est maximè cõmune, eũ qui te est fabricatus. Filius es, id quod est maximè proprium, agnosce patrẽ. Tu autẽ adhuc permanes in peccatis, extabescens & liquescens voluptatibus. Cui loquetur Dominus? Vestrum est regnũ cælorũ, si velitis, qui liberã animi voluntatẽ ad Deũ direxeritis. Vestrũ est si tantũ voluẽritis credere, & compendiũ sequi prædicationis. Quam cùm exaudijssent Nineuitæ, expectatã euersionẽ, per germanam & synceram pœnitentiã, egregia salute cõmutauere. Quomodo ergo, inquit, cælos conscendã? Via est Dominus angusta quidẽ, sed ex cælis: angusta quidẽ, sed quæ mittit ad cælos: angusta, quæ despicitur in terra: lata, quæ adoratur in cælis. Deinde qui Verbum quidem nõ accepit auditione, ei venia datur ꝓpter ignorantiã. Qui autẽ haurit auribus, & animæ sua spõte infert incredulitatem, quo videbitur quidem esse prudentior, eũ maiori eo malo fuerit: quoniã accusatrice vsus est prudentia, id quod est optimũ non eligens. Est enim alioqui homini à natura ingeneratũ, vt ei quędam intercedat cum Deo coniunctio. Quemadmodum ergo equum non cogimus arare, neq; taurum venari, ad id autem quod natura aptũ est, animal vnũquodq; trahimus: sic certè hominẽ qui natus est ad cæli contemplationẽ, & verè est planta cælestis, adhortamur ad Dei cognitionem, id quod est eius propriũ, eximiũ, & peculiare comprehendentes, vt sufficiens seculorum viaticũ, pietatem & Dei cultum comparet, consulentes. Terrã cole, dicimus, si es agricola: sed cognosce Deũ, terrã colens: & nauiga, qui teneris amore nauigationis, sed cęlestem assumens gubernatorẽ. Te militantẽ deprehẽdit cognitio, audi Imperatorẽ qui tibi iusta significat. Vt qui ergo sitis crapula grauati & ebrietate, redite ad sobrietatem, & cũ parũ perspexeritis, cum animis vestris cogitate quidnam sibi velint qui à vobis adorantur lapides, & quæ vano studio in materiã expenditis. In ignoratione & facultates & opes, sicut etiam vestrã vitã, in morte consumitis, cũ vanæ vestræ spei hunc solũ finẽ inueneritis, nec vestrûm possitis misereri. Sed nec vt ijs qui miserentur vestri erroris apti estis vt credatis, mãcipati malę cõsuetudini, à qua dependentes, vestra sponte vsq; ad extremũ spiritũ passum itis ad interitũ.

Lux

[Margin notes: χειροτέχναι (beside "Veniant ergo rursus"); ἀπορρίπτων (beside "hominũ generi"); Matth. 7. (beside "sent Nineuitæ"); B, C section letters in right margin.]

A Lux enim venit in mundum, & dilexerunt homines magis tenebras quàm lucẽ, cũ liceat ea amouere quæ saluti impedimentũ afferunt, fastũ, diuitias, & timorẽ, proferendo hoc poëticum: Quò fero hác magnam vim pecuniæ? vbinam autẽ ipse quoq; aberro? Si vultis ergo, his inanibus abiectis visis ac phantasijs, renunciare ipsi cõsuetudini, dic vanę gloriæ, falsa valete somnia, eratis ergo nihil. Quid enim, ô homines, existimatis Typhonem, & Andocidem, & Mercurium, & Amyetũ? num est cuilibet vtiq; manifestum eos esse lapides sicut etiam Mercurium? Vt autẽ nõ est Deus area, & vt non est Deus iris, sed sunt aërum & nubiũ quædam affectiones: & quẽadmodũ dies non est Deus, neq; mẽsis, nec annus: sic neq; Sol, nec Luna, quibus definitur vnumquodq; eorũ quæ prædicta sunt. Quis itaq; sanæ mentis, pœnam supplicium, iustitiã & Nemesin Deos esse putauerit? Nã neq; Furiæ, nec Parcę, nec fatũ: quoniã nec respub. nec gloria, nec Plutus, id est, diuitiæ, quẽ vel pictores cæcũ depingunt. Si aũt Verecũdiã & Amorẽ & Venerẽ in Deos refertis, eos cõsequãtur pudor & appetitio, & pulchritudo, & coitus. Nõ ergo amplius iurè dij apud vos Gemelli existimabuntur, somnus & mors, cũ ea sint affectiones quę naturaliter animalib. eueniãt? Sed neque Fatũ, nec Parcas, Deos meritò dicetis. Si aũt lis & pugna nõ sunt dij, nec deus est Mars, nec Enyo. Pręterea autem fulgura & fulmina & imbres non sunt dij, quõ sunt dij ignis & aqua? Quomodo aũt quæ διαΐσσοντες, hoc est, aërẽ pcurrẽtes dicũtur, & Cometæ, qui puenerũt ex affectione aëris? Qui deã aũt dicit Fortunã, deã quoq; dicat actionẽ. Si ergo nullum ex his cẽsetur esse Deus, sed nec ex illis insensilib. & manu

B factis figmẽtis: cernitur aũt quædã in nos diuinæ potẽtię prouidentia: restat vt nihil aliud q̃ hoc cõfiteamur, quòd solus verè sit & cõsistit, qui verè est solus Deus. Verũ enimuero hominib. qui mandragorã, vel aliquod aliud pharmacũ biberunt, stulti euasere similes. Deus aũt vobis concedat, vt ex hoc somno aliquando excitemini, & Deũ intelligatis, neq; aurũ, vel lapidem, vel arborẽ, vel actionẽ, vel affectionem, vel morbũ, vel timorem, vt Deũ affingatis. Verè enim sunt in alma terra tres dæmonũ myriades, non immortalium, sed neq; mortalium: nam neq; sunt sensu prædití, vt mortis sint quoq; participes, sed lapidei & lignei hominũ domini, qui vitam hominum violant & iniuria afficiunt per consuetudinẽ. Domini autẽ, inquit, est terra & plenitudo eius. Deinde, cur in ijs quæ sunt Domini, voluptati & delitijs indulgens, audes ignorare Dominum? Relinque meam terram, inquiet tibi Dominus, ne tangas aquã quam tibi dono, ne sis particeps fructuum quos ego colo. Alimẽta ô homo refer Deo accepta, agnosce tuũ Dominum, proprium es Dei figmentum. Quod autẽ est eius propriũ, quomodo iurè fiat alienum? Quod est enim abalienatum, cũ priuetur proprietate, priuatur veritate. An nõ enim quodãmodo vt Niobe, vel vt magis mysticè ad vos loquar, instar vxoris viri Hebręi (eum Loth appellabant veteres) euasistis omni sensu vacui? Hanc mulierem accepimus effectam esse lapidem, propterea quòd amaret Sodoma. Sodomitæ autem impij, & qui versabantur adhuc in impietate, duro erant corde & stolidi. Has tibi existima voces dici diuinitùs. Ne existimes enim lapides quidem esse sacra & ligna & aues & serpẽtes, non aũt homines: sed cõ-

C trà, verè quidẽ sacros homines existima, feras autẽ & lapides id quod sunt. Miseri enim & infelices homines per coruũ quidẽ & graculũ existimant Deũ clamare, p hominẽ autẽ tacere: & honore quidem affecerunt coruum ut Dei nunciũ: Dei aũt hominẽ persequuntur, nõ crocitantẽ, nec glocitãtem, sed, proh dolor, è ratione loquẽtem, benignisq; & humanis vocib. resonãdo instituentẽ, inhumanè conantur occidere, dum vocat ad iustitiã: neq; quæ supernè descendit gratiã excipientes, neq; supplíciũ declinãtes. Deo enim non credunt, neq; eius ediscunt potentiã. Cuius autem est humanitas quæ verbis dici nõ potest, eius est improbitatis odiũ quod capi non potest. Alit autẽ ira quidem suppliciũ propter peccatũ: bene facit autem humanitas propter pœnitentiã. Dei autẽ priuari auxilio est longè miserrimũ. Oculorũ quidẽ orbitas, & aurium surditas, maiori dolore afficiunt, quàm cętera maligni cõmoda. Illa enim aspectu cælesti est priuata: hæc verò orbata est cęlesti doctrina. Vos autem, qui quod ad veritatẽ quidẽ attinet, estis manci, & mente quidem cæci, surdi aũt intelligentia, nõ doletis, non ægrè fertis, non cælum videre & cæli effectorẽ desiderastis, nec vniuersorũ opificẽ & patrem audire & discere quæsijstis, institutum & liberam animi voluntatem saluti coniungentes? Nullum enim obsistit impedimentum ei qui contendit ad Dei cognitionem, nõ liberorũ orbitas, non paupertas, nõ ignominia, non egestas possessionũ. Nemo eam quæ vera verè est, sapiẽtiã optat excindere, & ære ferróue cõmutare. Id enim elegit potius, q̃ quiduis aliud. Christus est vbiq;

*Iohan. 3*

*Hom. in Od.*

ἀμύητος

ἄλως.

*Demosthenicum.*

*Ex Hesiodo.*

κατηχοῦντα

*Aspectu cælesti, id est, spectaculo diuinæ pulchritudinis.*

*Bonũ doctrinæ præfert cuiuis alij bono.*

salutaris. Qui enim iusti est æmulator, vt qui est amator eius qui nullius est egenus, A
*In ipso bono scilicet doctrinæ.* paucis indiget, vt qui non in aliquo alio, q̃ in ipso & Deo, beatitudinis thesaurum reposuerit, vbi non est tinea, non fur, non pirata, sed bonorum æternus dator. Meritò ergo assimilati estis illis serpẽtibus, qui clausas habent aures incantatoribus. Ita enim eis, inquit Scriptura, est ad similitudinem serpẽtis, tanq̃ surdæ aspidis & aures suas obthurãtis, quę nõ exaudiet vocẽ incantantium. Sed vos quidẽ reueremini sanctitatẽ, miteq; nostrũ verbũ suscipite, & virus letale expuite, vt vobis quoq; interitũ, sicut illis senium exuere cõcedatur. Audite me, nec aures obstruite, nec auditũ obsepite, sed menti ea quę dicũtur imprimite. Immortalitatis pulchrũ est medicamentũ, reptiles ac serpentinas tandem conuersiones sistite. Inimici enim Domini terram lingent, inquit Scriptura: à terra in ætherem extollamini, respicite in cælum, admiremini, desinite insidiari calcaneo iustorũ & viam veritatis impedire. Estote prudentes & innoxij: fortasse Dominus vtiq; vobis dabit pennã simplicitatis ( vult pennis induere terrigenas) vt relictis lustris cælos habiteris, solummodo ex toto corde ducamur pœnitentia, vt possimus capere Dominũ ex toto corde. Sperate in ipsum, inquit, tota populi cõgregatio, effundite coram ipso omnia corda vestra: ijs dicit qui sunt recentes ab improbitate, miseretur, & implet iustitia. Crede homo homini & Deo. Crede homo Deo viuẽti, qui passus est & adoratur. Credite serui mortuo, oẽs homines credite ei qui solus est Deus ex omnibus hominib. Credite, & mercedem accipite salutem. Quærite Deũ, & viuet anima vestra. Qui quærit Deum, est de propria salute solicitus. Inuenisti Deum, habes vitam. Quæramus ergo, vt etiam viuamus. Merces inuẽtionis, vita est apud Deũ. Exultent & lætentur in te oẽs qui te quęrũt, & dicãt perpetuò, magnificetur Deus. Pulcher hymnus Dei homo immortalis, qui iustitia ædificatur, in quo sunt insculpta eloquia veritatis. Vbi enim est alibi inscribenda iustitia, q̃ in anima temperanti ac moderata? vbi charitas? vbi aũt pudor? & vbi mãsuetudo? Oportet, vt existimo, vt qui his diuinis sunt scripturis obsignati, existiment eas esse optimos carceres à quibus emittatur sapientia, ad quãcumq; vitæ partem ij conuersi fuerint, & eundẽ salutis portum nullis agitatum fluctib. putẽt sapientiam: per quam sunt quidẽ boni patres filiorum, qui ad patrem confugerunt: boni autẽ sunt filij in parentes, qui filium intellexerũt: boni aũt mariti vxorum, qui sponsi meminerunt: boni aũt sunt famulorũ domini, qui sunt ab extrema seruitute liberati. O errore qui est in hominib. bestiæ beatiores, quæ possident quidẽ vt vos ignorationẽ, veritatẽ autem nequaquam falso imitantur ac simulãt. Non sunt apud eas genera adulatorũ. Pisces nequaquã dæmones colunt superstitiose, aues non adorant simulachra. Vnum cælum solũ stupent, quoniã Deũ non possunt intelligentia apprehendere, vt quibus non sit cõcessa ratio. Deinde non erubescitis, quòd vosipsos feceritis piscibus minus participes rationis, qui per tot ætates cõtriti estis in impietate? Fuistis infantes, deinde pueri, deinde puberes, deinde viri, boni aũt nunquam. Senectutẽ saltẽ reueremini. Cùm in vitæ ipsius occasu, resipiscite moderatiq; ac temperantes euadite, vel in fine vitę Deum agnoscite, vt vobis vitę finis suscipiat initiũ salutis. Consenuistis in falsa dæmonum religione, venite iuuenes ac recentes C
ad Dei cultũ veramq; religionem, vos referet Deus in numerum puerorũ simpliciũ. Leges quidẽ Solonis sequatur Atheniẽsis, & Argiuus leges Phoronei, & Spartanus Lycurgi. Si aũt teipsum Deo asscribis, cælũ quidem tibi est patria, Deus aũt legislator. Quænam autem sunt leges? Non occides, adulterium non cõmittes, puero stuprum non inferes, non furaberis, non dices falsum testimonium: diliges Dominum Deũ tuum. Horum aũt sunt etiam implementa leges rationales, & verba sancta, si in ipsis inscribantur cordibus: Diliges proximum tuum sicut teipsum. &, tibi percutiẽti maxillam, præbe etiam alteram. Non concupisces: sola enim concupiscentia admisisti adulterium. Quantò est melius hominib. ab initio ea quæ non oportet nolle cõcupiscere, q̃ assequi ea quæ cõcupieris? Sed vos quidẽ non potestis sustinere salutis acrimoniã. Quemadmodũ aũt cibis dulcib. delectamur, eos pluris facientes propter leuitatẽ voluptatis: nos aũt curant & sanant amara, quæ sensum exasperant: sed eos qui sunt imbecillo stomacho, cõfirmat medicamẽtorũ acrimonia, sic delectat & iucundo quidẽ sensu titillat cõsuetudo. Sed illa quidẽ in barathrũ deturbat consuetudo, in cælũ aũt deducit veritas, quę aspera quidẽ primũ est, sed bona puerorũ educatrix: & honestus quidẽ ac venerãdus est mulierũ cœtus, prudens aũt moderatusq; senatus. Neq; verò ea est aditu difficilis, neq; eiusmodi vt sit eã accipere difficile, sed est ꝓximè in nostris domib. vt dicit tacitè significãs Moses lõgè sapiẽtissimus, in tribus

A bus nostris degens partibus, manibus, ore, & corde. Hoc quidē verum est ac germanum signum veritatis, quæ in summa tribus completur, consilio, & actione, & verbo. Neq; verò verearis, ne multa eaq; iucunda, te visis pulsum ac phantasijs abducant à sapientia, transiliet ipse lubens nugas consuetudinis, sicut etiam pueri, cùm ad virilem ętatem peruenerint, abijciunt ludicra. Celeritate quidem inexuperabili, & quæ facilem aditum præbet beneuolentia, diuina quæ terræ illuxit potentia, impleuit vniuersum salutari semine. Non enim tātum opus in tam paruo tempore absque diuina cura & prouidentia perfecit Dominus, qui visu est despectus, reipsa autem adoratur, qui expurgans, & salutaris, benignusq; & clemens est, Verbum diuinum qui reuera est Deus manifestissimus, qui est vniuersorum domino exæquatus: quoniam erat eius filius: & Verbum erat in Deo, neq; quando est primùm prædicatus non creditus, neq; quando suscepit personam hominis, nec quando carne effictus egit salutarem actum humanitatis ignoratus. Fuit enim verus ac germanus decertator, & sui figmēti propugnator. Celerrimè autem omnibus nominib. traditus, cum Sole celeriùs ortus esset ex ipsa paterna voluntate, facillimè fecit vt Deus nobis illucesceret, vndénam ipse esset, & quis esset, per ea quę docuit & demonstrauit, ostēdens, fœderis initor & reconciliator, & Seruator noster, Verbum, fons viuificus, pacificus, qui per vniuersam terræ faciem diffunditur, per quem, vt semel dicam, effecta sunt omnia, pelagus bonorum. Parumper autem si velis ab alto repetens, intuere diuinum beneficiū. Primus homo quando in Paradyso erat, ludebat solutus, quoniam erat Dei puer: quando autem subiecit se voluptati (Serpens allegoricè dicitur

B voluptas, super ventrem repens, vitio terreno innutrita materijs) illectus est puer cupiditatibus, vir effectus per inobedientiam, & cùm patrem non audijsset, Deum affecit ignominia. Quantum virium habet voluptas? Homo qui erat solutus propter simplicitatem, inuētus est alligatus peccatis. Eum voluit rursus Dominus soluere à vinculis & carne illigatus. O diuinum mysterium. hunc serpentem subegit, & tyrannum redegit in seruitutem, nempe mortem, & quod est maximè pręter opinionem, illum hominem qui seductus fuerat à voluptate, qui alligatus erat interitui & corruptioni, extensis manibus ostendit solutum. O mysticum miraculum. Inclinatus quidem est Dominus, homo autē surrexit, & qui cécidit ex paradyso, maius obedientiæ præmium cælos accipit. Quamobrem, vt mihi videtur, quoniam ipsum Verbum ad nos venit cælitùs, non est nobis amplius eundum ad humanam doctrinam, Athenas, & aliam Græciam, quinetiam Ioniam, quærendo curiosé. Si est enim nobis ille magister, qui impleuit omnia sanctis potestatibus, opificio, salute, beneficio, legislatione, prophetia, doctrina, magister omnia nunc resonat, & vniuersum iam Athenæ & Græcia factum est Verbo. Non enim poëticæ quidem fabulæ credidistis, quæ Minoën scribit Cretensem vsum esse familiari Iouis consuetudine: nobis autem non credetis qui Dei fuimus discipuli, qui eam philosophiam, quæ reuera vera est, suscepimus? Quam autem summi tantùm obscurè significarunt Philosophi, Christi etiam comprehendêre & prædicauere discipuli. Atq; vniuersus quidem, vt semel

*Extensis manibus in cruce.*

C dicam, Christus non diuiditur. Neq; est Barbarus, nec Iudæus, nec Græcus, nec masculus, nec fœmina: est autem nouus homo dei sancto Spiritu transformatus. Deinde alia quidē consilia & admonitiones, & molesta sunt, & sunt de ijs quæ sunt singularia, an ducenda sit vxor, an sit gerenda respublica, an procreādi filij? Generalis aūt sola adhortatio, & quę ad totam scilicet vitam in omni tempore, in omni euētu, vitam dirigit ad id quod est præcipuum, est pietas ac Dei cultus. Qua ratione solum quoq; viuere necesse est, vt semper viuamus. Philosophia autem, vt dicunt veteres, est diuturnum Sapientiæ consilium, quod æternum ambit amorem. Pręceptum autem Domini lucidum illuminans oculos. Suscipe Christum, suscipe visum, suscipe lucem, vt rectè cognoscas Deumq; virumq;, dulce Verbum, quod nos illuminauit: super aurū & lapidem pretiosum est, desiderabile super mel & fauū. Quomodo enim non est desiderabile, quod mentem in tenebris defossam, operantem effecerit & efficacem, & animæ luciferos acuerit oculos? Quemadmodū enim si sol nō esset, quod ad alia quidē astra attinet, nox essent omnia: ita nisi Verbum cognouissemus, & eo illuminati essemus, nihil differremus ab auibus quæ pascuntur, vt qui pinguefiamus in tenebris, & morte nutriamur. Capiamus lucem, vt Deum capiamus. Capiamus lucem, vt simus Domini discipuli. Hoc certè Patri quoq; est pollicitus. Narrabo nomen tuum fratribus meis, in medio ecclesiæ laudabo te. Lauda, & narrabo tibi patrem tuum Deum. Saluum faciunt tuæ narrationes. Docebit me cāticū, quòd

hucvsq; erraui quęrēs Deum. Quoniā autem ad lucem me deducis Domine, & Deū inuenio per te & Patrem accipio abs te, fio tuus cohæres, quoniam fratris te non puduit. Auferamus ergo, auferamus obliuionem veritatis, ignorantia amota & tenebris, quæ sunt impedimento oculis perinde ac caligo: eum qui verè est Deus contemplemur, hanc ei primùm vocem in hymno acclamantes: Salue lux, quoniam lux nobis è cælo exorta est, qui defosſi eramus in tenebris, & inclusi in vmbra mortis: lux, inquam, sole purior, & vita quæ hîc est iucundior. Illa lux vita est æterna, & viuunt quæcunq; eam participant. Nox autem veretur lucem, & propter timorem occidens, cedit diei Domini. Fiunt omnia lux quæ sopiri non potest, & occasus credidit orienti. hoc noua voluit creatura. Qui omnia enim obequitat sol iustitiæ, æquè obit humanitatem, imitans patrem qui æquè super omnes facit oriri solem suum, & rorem instillat veritatis. Is occasum traduxit in orientem, & mortem in vitā cruci affixit: ab exitio autem abreptum hominem, in æthere suspendit, transplantans interitum & corruptionem, in interitus & coruptionis vacuitatem: & terram mutat in cælum Dei agricola, dextra significans: populos autem ad bonum opus excitans, veram vitam in memoriam redigens, & verè magnam, & diuinam, & quæ auferri non potest nobis hæreditatem largiēs, cælesti doctrina hominem Deum faciens, dans legem in mentem ipsorum, & ea scribens in corde. Quásnam scribit leges? Quòd omnes scient Deum à magno vsq; ad paruum. Et propitius, inquit Deus, ero ipsis, & peccatorum eorum non recordabor. Suscipiamus leges vitæ, pareamus Deo exhortanti. Discamus ipsum, vt sit propitius. Reddamus illi licet non egenti gratam mercedem, affectus bene compositos: & veluti inhabitatę domus mercedem, pro nostra quæ est hîc inhabitatione, demus Deo pietatem ac eius cultum. Æs pro auro pondusq; nouem, pro pondere centum taurorum. Pro modica fide dat tibi tantam terram quam colas: aquam, vt bibas, & aliam, vt nauiges: aērem, vt respires: ignē, vt opereris: mundū, vt inhabites. Hinc tibi cōcessit in cælos mittere coloniā. Hæc tot & tam magna opera & munera modica fide locauit. Deinde qui crediderunt quidem præstigiatoribus, amuleta & incantationes accipiunt vt salutares: Vos autem ne ipsum quidem Verbum cæleste, qui est seruator, alligare vobis vultis, & Dei credentes incantationi liberari quidem à vitijs & perturbationibus, quæ sunt morbi animi: auelli autem à peccato. Est enim peccatum mors æterna. Estis planè edentuli & cæci sicut talpæ, & nihil aliud quàm comedentes, degitis in tenebris, circumfluentes interitu & corruptione. Sed est veritas quę clamat. Ex tenebris lux lucebit. Luceat ergo lux in occulto hominis, nempe in corde, & exoriātur radij cognitionis, eum qui intùs est occultus, hominem manifestantes & illustrantes, discipulum lucis, qui est Christi familiaris & cohæres: maximè quando pio & bono filio, maximè honorandum & colendum boni Patris nomen venerit ad cognitionem, imperantis lenia, & filio iubentis ea quæ sunt salutaria. Qui autem ei paret, in omnibus magna cōmoda percipit, sequitur Deum, paret Patri, se errare cognoscit, Deum diligit, diligit proximum, implet mandatum, quærit præmium, postulat promissum. Deo autem semper est propositum seruare gregem hominum, & ideo pastorem bonum, bonus misit Deus. Verbum autem explicata veritate, ostendit hominibus altitudinem salutis, vt vel salui fierent ducti pœnitentia, vt iudicarentur, si non obedijssent: Hæc est prædicatio iustitiæ, ijs quidem qui parent, euangelium, seu bonus nuncius: ijs aūt qui nō obedierint, iudicium. Sed terrifica quidem tuba classicum canens, congregauit milites, & bellum denunciauit. Christus autem qui pacificum modum in fines terræ inspirauit, non cōgregabit suos milites pacificos? Collegit quidem, ô homo, sanguine & Verbo incruentum exercitum, & regnum cælorum eis tradidit. Tuba est Christi, eius Euangelium. Is quidem tuba cecinit, nos autem audiuimus. Armemur pacificè, induentes thoracem iustitiæ & fidei clypeum assumentes, & galeam salutaris imponentes, & acuamus gladium spiritus, quod est Verbum Dei. Ita nos Apostolus ordinat pacificé. Hæc sunt arma nostra inuulnerabilia. His armati, confligamus instructa acie aduersus malum, ignita mali iacula extinguamus aqueis à Verbo tinctis cuspidibus, beneficia remunerantes gratis benedictionibus, & Deum verbo Diuino honorantes. Adhuc enim loquente te, dicet, inquit: Ecce adsum. O sanctam beatam hanc potentiam, per quam Deus versatur vnà cum hominibus. Melius est ergo & præstantius imitatorem simul fieri & cultorem optimæ ac præstantissimæ eorum quæ sunt essentiæ. Non poterit enim quis Deum imitari, nisi eo quòd sanctè colat: neq; colere ac venerari, nisi eum imitetur.

*Locauit, id est, tradidit largitus.*

*Esa. 58.*

A B C

A tetur. Qui est enim cælestis amor & verè diuinus, hac ratione accedit hominibus, quando in ipsa anima id quod verè est honestum, à Verbo diuino excitatum, potuerit effulgere. Et quod est maximum, cum germana ac syncera voluntate vnà concurrit salus, simul, vt semel dicam, coniugatis libera animi electione & vita. Proinde hæc sola veritatis adhortatio assimilata est fidelissimis amicis, permanens vsq; ad extremum spiritum, & bona dux ac comes toto ac perfecto spiritu animæ, ijs qui tendunt ad cęlum. Quid autem te adhortor? Vrgeo vt saluus fias. Hoc vult Christus, vno verbo tibi vitam largitur. Et quódnam est hoc? Disce paucis. Verbum veritatis, Verbum incorruptionis, qui hominem regenerat, ipsum reducens ad veritatem, stimulus salutis, qui abigit interitum, qui mortem persequitur, qui ædificauit templũ in hominibus, vt in hominibus Deum collocet. Fac vt templum sit castum ac mundum, & uoluptates & delitias, tanquam caducum & breuem florem, relinque vento & igni. Temperantiæ autem ac moderationis sapienter fructus cole, & Deo teipsum consecra primitias, vt non solùm sit opus, sed etiam Dei gratia. Decet aũt vtrunq;, & Christo familiarem videri, & dignum regno, & regno esse dignatum. Fugiamus ergo consuetudinẽ, fugiamus tanquam scopulũ difficilẽ, aut Charybdis minas, aut fabulosas Sirenes: suffocat hominem, à veritate auertit, abducit à vita, est laqueus, est barathrum, est malum ventilabrum consuetudo. Ait quidem ille:

*Coniugatis, id est, conuenientibus.*

*Hom. in Od.*

*Nauem inter fumum sæuum fluctumq; coerce.*

Fugiamus, fugiamus ô socij, hæc vnda ignem eructat, mala est insula, accumulata ossibus & cadaueribus. In eam autem canit formosa meretricula, voluptas, quæ publica oblectat musica:

*Circe innuit.*

B

*Sirenes hæc dicũt Vlysi.*

*Gloria Græcorum ueni, agè huc illustris Vlysses,*
*Siste ratem, diuina audire ut carmina possis.*

Laudat te, ô nauta, & celebrem te dicit & illustrem, & Græcorũ gloriam sibi vendicat meretrix. Sine eam possidere cadauera, fert tibi opem diuinus spiritus. Prætergredere, voluptatem abige:

*Hesiodus.*

*Atq; caue meretrix te fœmina fallere compta.*
*Possit, dulcè loquens, quærens te euertere nido.*

Prænauiga canticum, mortem operatur. Si solùm velis, vicisti interitum, & ligno alligatus, eris solutus ab omni exitio. Gubernabit te Verbum Dei, & ad portum cælorum te adducet Spiritus sanctus. Tunc meum Deũ intueberis, & sanctis illis initiabere mysterijs, & frueris ijs quæ sunt occulta in cęlis, quæ mihi sunt seruata, quæ neque auris audiuit, nec in cor alicuius ascẽderunt. Soles mihi duos videre en videor, & duplices Thebas, dicebat quidam bacchans idolis, mera ebrius ignorantia. Ego verò eius misertus fuerim debacchantis, & eum qui sic desipit, adhortatus fuerim ad moderatam temperantemq; salutem: quoniam Dominus quoq; pœnitentiam peccatoris, & non mortem desiderat. Veni ô Vesane, non thyrso innixus, neq; hædera redimitus. Abijce mitram, abijce nebridem, sis temperans ac moderatus. Ostendam tibi Verbum, & Verbi mysteria narrans conuenienter tuæ similitudini. Hic est mons Deo dilectus, qui non tragœdijs subijcitur, vt Cythæron: sed est dedicatus veritatis actibus, mons sobrius, castis vmbrosus materijs. In eo autem bacchantur, nõ fulmine ictæ Semeles sorores, Mænades, quæ incesta visceratione carnium initiantur, sed Dei filiæ, pulchræ agnæ, quæ veneranda Verbi orgia concelebrant, chorum moderatum congregantes. Chorus sunt iusti. Canticum est hymnus Regis omnium, psallunt puellæ, gloria afficiunt Angeli, Prophetę loquũtur, editur sonus musicæ, cursu Thiasum persequuntur, magno studio festinant qui sunt vocati, patrẽ cupientes recipere. Veni tu quoq; mihi ô senex, relictis Athenis, & diuinatione abiecta & arte Bacchica, deducere ad veritatem. Ecce do tibi lignum quo innitaris. Festina Tiresia, crede. Christus illuminabit visum sole splendidius, per quem cæcorum oculi respiciunt: nox te fugiet, ignis perterrebitur, mors peribit. Videbis cælos ô senex, qui Thebas non aspicis. O verè sancta mysteria. O puram lucẽ, præferuntur mihi faces, cùm cęlos & Deum aspexero, sanctus fio initiatus. Sacrorum autẽ interpres est Dominus, & mystam obsignat illuminans, & Patri cõmendat eum qui credidit, qui seruatur seculis. Hæ sunt debacchationes meorum mysteriorum. Si velis tu quoq;, initiare, & chorum duces cum Angelis circa eum qui est ingenitus, & ab interitu alienus, & qui solus est verè Deus, vnà hymnum nobiscum canente Deo Verbo. Aeternus hic est Iesus vnus, qui magnus pontifex & vnius Dei, qui idem quoq; est pater, orat pro hominibus, & hortatur homines. Audite gentes innumerabiles, vel po-

C

rius quicunq; ex hominib. estis ratione præditi, & Barbari & Græci, voco omne ge- A
nus hominum, quorum ego sum opifex volũtate Patris. Venite ad me sub vno Deo collocãdi, & vno Dei Verbo: nec sola ratione superate expertia rationis animantia, sed etiam ex vniuersis mortalibus do fruendam vobis immortalitatem. Volo enim, volo vos hac quoq; impertiri gratia, plenum & integrum præbens beneficium. Interitus ac corruptionis vacuitatem, & rationem seu Verbum vobis largior, Dei cognitionem, perfectum meipsum largior. Hoc sum ego, hoc vult Deus. Hoc est consensio, hoc est concentus & harmonia Patris. Hoc Filius, hoc Christus, hoc Verbum Dei, brachium Domini, potestas vniuersorum, voluntas Patris. Quorum olim quidem imagines, sed non omnes similes. Volo vos corrigere ad exemplar, vt sitis mihi quoq; similes: vngã vos vnguento fidei, per quod interitum exuitis & corruptio-
Matth. 11. nem: & iustitiæ nudam ostendam figurã, per quam ad Deum ascenditis. Venite ad me omnes qui laboratis & onerati estis, & ego reficiã vos. Tollite iugum meum super vos, & discite à me, quòd ego sum mitis & humilis corde, & inuenietis requiem animabus vestris. Iugum enim meum est suaue, & onus meum leue. Festinemus, curramus ô religiose, & Dei verbi similes, ô homines, imagines, festinemus: curramus, tollamus iugum eius, subeamus incorruptionem. Pulchrum aurigam hominũ Christum diligamus. Pullum cum veteri duxit sub idem iugum, & iũcta hominum biga, currum dirigit ad immortalitatem, contendens ad Deum, vt euidẽter impleat quod tacitè significauerat: prius quidem in Hierusalem, nunc autem agens in cælos. Pulcherrimum est Patri spectaculũ filius æternus, victor. Magno ergo studio & conten- B
tiõe feramur ad honesta, & efficiamur homines pij ac religiosi, & maximè eorũ quę sunt aliena ab affectionibus & perturbationibus, Deum & vitã acquiramus. Est autem Verbum adiutor: bono animo simus, & in eo ponamus fiduciam. Nec nos vnquã tantum auri & argenti & gloriæ subeat desiderium, quantum ipsius Verbi veritatis. Neq; enim Deo gratum est, si nos ea quidem quæ sunt maximi pretij, minimi facimus: amentias autem, & ignorãtias, & socordias, ac voluptates, & cultus simulachrorum, manifesta probra ac dedecora, & impietatem extremam pluris faciamus. Non abs re enim philosophi, quæcunq; stulti faciunt, ea impiè gerere, & impios esse existimant. Quinetiam ipsam præterea ignorãtiam insaniæ genus describentes, nihil aliud quàm multos fatentur insanire. Non est ergo dubitandum, inquiet Verbum, vtrum sit eorum melius, sapere ac moderatum esse, an insanire. Oportet aũt veritati fortiter adhærentes, Deum sequi totis viribus, moderatè se gerentes, & existimare omnia eius esse sicut sunt. Præterea autem nos quoq; cùm didicerimus esse rem pulcherrimam eius possessionem, seipsos Deo permittere, Dominum Deum diligẽtes, & hoc nostrum esse munus per totam vitam existimantes. Si autem sunt communia ea quę sunt amicorum (est autem homo religiosus, & Dei amicus Verbo intercedente) fiunt itaq; omnia hominis, quia sunt Dei omnia, & sunt omnia amborum amicorum communia, Dei & hominis. Nobis ergo hoc nunc restat, vt dicamus, eum solũ qui est pius ac religiosus, esse Christianum, & diuitem, & temperantem, & generosum, & ea ratione Dei imaginem cum similitudine, & dicere & credere iustũ est & C
sanctum, vt qui à Christo Iesu factus sit cum prudentia, atque adeo iam quoq; Deo si-
Psal. 81. milis. Non celat itaq; Propheta gratiam, dicens: Ego dixi dij estis, & filij excelsi omnes. Nos enim, nos adoptauit, & noster tantùm vult esse pater, non eorum qui fidem non habent. Res ergo nostrę ita se habẽt, qui sumus Dei ministri. Qualia autem sunt cõsilia, tales quoq; sunt sermones: quales aũt sunt sermones, tales etiam actiones: & qualia sunt opera, vita talis. Bona est vniuersa hominum vita, qui Christum cognouerunt. Satis, vt puto, verborum fecimus, etiamsi longius processi, propter humanitatem & beneuolentiam, quod de Deo habui effundens, vtpote qui ad maximum omnium bonorum hortarer, nempe salutem. De ea enim vita quę nullum habet finem & intermissionem, nec volũt quidem vnquam intermitti orationes, sacra enunciantes. Vobis autẽ adhuc hic restat finis, vt eligamus id quod est vtile, vel iudicium, vel gratiam. Nam ego ne puto quidẽ esse dubitãdum, vtrum eorum sit melius: sed nec fas est comparare vitam cum interitu.

ORATIONIS ADHORTATORIAE AD GENTES FINIS.

# ILLVSTRI AC REVERENDO IOANNI AB HANGESTO NOVIODVNENSI Episcopo & Comiti, regni Franciæ Pari, Gentianus Heruetus S. P. D.

*VM Clementis Alexandrini Pædagogus, nuper à me Latinè versus, esset in lucem exiturus, diuq́ apud me cogitaßem, quémnam ex omnibus potißimũ deligerem, cuius felicibus auspicijs fretus, tutò posset multiplex ac varium doctorum virorum subire iudicium, tu mihi in primis occurristi, ad quem & ipse Clemens meritò mitti magnopere cuperet, & à quo eum benignè excipiendum, amanter amplectendum, fortiterq́ defendendum, ego iustis, vt existimo, de causis mihi persuaderem. Cùm enim ad conciliandã retinendamq́ amicitiam plurimùm valeat eorundem morum ac studiorũ similitudo: Clementis autem tanta sit doctrina, tam insignis & propè incredibilis rerũ variarum cognitio, vt vir longè doctißimus Theodoretus eum virum sacrum, & maxima rerum experientia & doctrina præditum, in suo de Diuinis dogmatib. libello, vocare minimè dubitarit: ad quem potius fuerit is mittendus, quàm ad eũ qui in omni literarũ genere est ita versatus, vt in singulis excellat? Neq́ verò vereor, ne aliquo adulãdi studio adductus, plura tibi quàm par sit tribuere existimer, cùm sit mihi magis pertimescẽdum, ne viri docti, qui & antea in Gallia, & nunc in Italia pro summa tua humanitate te familiariter vsi sunt, & indies vtuntur, me nimis esse in laudando parcum, & malignum arguant, quàm metuẽdum, ne in tuis laudibus modum excesisse videar. Quas quidem ego fuse ac prolixè in præsentia persequerer, nisi mihi interim esset habenda ratio tuæ verecundiæ, qui cùm sis ab omnibus longè celebrari dignißimus, à nullo tamen lubenter in os laudari pateris. Hoc tantùm dicam, quod mihi Clementem ad te mittenti quodammodo necesse est, & te Clementem, & Clemente te esse dignißimum. Nec dubito, quin vbi familiaris aliqua inter vos intercesserit consuetudo, vtriq́, nempe vt & tu illum, & ille te vicißim admiretur, vsu sit venturum. Nam cùm præter sacrarum literarũ peritiã, in quibus eius præcipua laborauit industria, omnium bonarum artiũ totiusq́ humanitatis, maximè autem philosophiæ, & in primis Platonicæ, qua tu, quòd à Christiana in permultis non ita multum dißidere videatur, admodũ delectaris, non dubito, quin vir magnus & maximè suspiciendus à te sit existimandus. Sed cùm ille hæc omnia esse tibi secum communia intellexerit, tibi autem hoc præterea accedere cognouerit, quòd ille pulcherrimã quidem illam, sed vnam tamen tantùm linguam, nempe Græcam, teneat: tu autem Græcam, Latinam, Hebræam, Chaldæam, vt omittam Arabicam, quam satis feliciter attigisti, & Gallicam, quam ab infantia, & Italicã, quam adolescens obiter didicisti, pulchrè calleas, & liberalibus omnibus disciplinis Philosophiæq́ ac medicinæ cognitioni, Iuris Ciuilis ac Pontificij scientiam adiunxeris, administrandæq́ Reipub. iurisq́ dicendi rationem tam diuturno rerum vsu & experientia, quàm veterum exemplorũ & monimentorum recordatione comparatam comprehenderis, non dubito quin ille tibi summa sit omnia tributurus, & quòd ad tãtum virum missus sit, magnas gratias acturus. Sed quid ago, qui contrà ac statueram in tuas laudes excurram?*

*cùm mihi magis laborandum sit vt tu Clementem clementer accipias, quàm com mittendum, vt dum vtrunq; inter se confero, alteri fortasse videar nimium detrahere. Ut eum autem tibi gratum futurum mihi persuadeã, tua facit humanitas, ad quem cùm viris omnibus doctis facilis pateat aditus, multum abest vt virum lõgè doctissimum & optimum à te putem excludendum. Qui quidem cùm Græcè & Latinè nunc in lucem exeat, si natiua eius lingua te magis delectet, poteris eum Græcè perlegere. Sin autem velis eum quãdoq; audire loquentem paulò familiarius, Latino eum sermone non tam ornato quidem illo & eleganti, sed qui tamen eius cogitata fideliter exprimat, differentem audies. Interpretis enim fidem, si nihil aliud, me satis præstitisse existimo. Quod cũ tu, vt spero, facile animaduerteris, restabit vt à te petam ac postulem, vt cùm hunc Pædagogũ grata manu acceperis, me, imo verò nostrum Clementem tuo patrocinio à malignorum & improborum hominum calumnijs defendas: qui cùm ipsi nullam Christianæ Reipub. vtilem nauent operam, in hoc tamen sibi valde placent, si securè aliorũ detrahant laboribus. Quorum ego maledicta me posse facile repellere, imo verò despicere, existimo, si tu eum qua spero beneuolẽtia exceperis, & summa tui nominis authoritate defenderis. Uale, & me in clientulorum tuorum numerum digneris adscribere. Bononiæ. V I. Idus Iul.*

*M. D. XLIX.*

CAPITA PRIMI LIBRI.



CLEMEN-

A

# CLEMENTIS ALEXANDRINI PAEDAGOGVS, LIBER PRIMVS.

*Quid profiteatur Pædagogus,* . *Cap.* I.

ONSTITVTA est basis veritatis, ô vos pueri, nobis ipsis sancti templi magni Dei, infractum fundamentum cognitionis, pulchra adhortatio per obedientiam vitæ rationi consentaneæ, æterna appetitio deiecta in prædium intelligens. Cùm hæc quidem certè tria sint in homine, mores, actiones, animiq; affectiones seu perturbationes: mores sortitus est sermo exhortatorius, pietatis dux ac religionis, qui instar carinæ subiectus est ad fidei ædificationem: quo quidem nos valde exultantes, & opiniones veteres abiurantes, ad salutem capescendam iuuenes alacresque reddimur, cum psallente prophetia concinentes: Quàm bonus Israël Deus ijs, qui recto sunt corde. Omnibus verò actionibus præest sermo qui versatur in tradendis præceptis: animi autem motibus ac perturbationibus medetur sermo consolatorius. Hic ipse idem quiuis sermo, cùm vnus sit, à mundana, in qua eductus & coalitus est, consuetudine hominem abripiens, & in simplici vniusque modi fidei in Deum salute instituens, dux scilicet cælestis sermo, quando ad salutem quidem adhortatus est, ei impositum est nomen exhortatorij. & hic sermo propriè incitatorius, ex parte scilicet totum, appellatus est. Est enim exhortatoria vniuersa religio piusq; Dei cultus, vt qui & vitæ hîc rectè degendæ, & futuræ desiderium menti cognatæ ingeneret. Nunc autem cùm & in medendo & in præceptis tradendis versetur, & ad vtrunq; simul, eum quẽ admonet, ipse seipsum sequens, adhortetur, qui in nobis sunt animi morborum curationem in summa promittens, hic à nobis apposite vno appelletur nomine, Pædagogus: cùm in actione, non in accuratè tradenda disciplinæ ratione, versetur Pædagogus: quatenus eius quoq; finis est, animam meliorem reddere, non docere: & in vita moderata ac temperata, non quæ sit scientia prædita, instituere. Quanquam hic ipse quoq; sermo ad docendum aptus est, sed eo in præsentia non vtitur. Qui enim quæ ad dogmata pertinent declarat & reuelat, is sermo est qui in docendo versatur. Cùm autem in actione versetur Pædagogus, postquam ad componendos mores prius adhortatus est, tum ad ea quæ oportet agenda adhortatur, pura ac syncera præcepta tradens, & eorum quæ prius admissa sunt, erratorum imagines ac similitudines posteris ostendens. Sunt autem ambo vtilissima: Adhortatorium quidem genus, ad parendum. Quod autem instar imaginis ac similitudinis assumitur, quod est ipsum quoque duplex, sicut prior coniugatio: partim quidem in eo consistit, vt bonum eligentes imitemur: partim autem, vt malum repudiantes auersemur. Morborum itaq; animi hinc curatio sequitur, cùm adhibitis imaginum ac similitudinum solatijs, animos confirmat Pædagogus humanis præceptis, tanquam lenibus medicamentis, ad perfectam veritatis cognitionem eos qui laborant deducens. Inter sanitatem autem & cognitionem permultum interest: nam hæc quidem disciplina, illa verò curatione comparatur. Qui itaque laborat, non prius aliquid eorum quæ ad doctrinam pertinent didicerit, quàm perfectè sanus fuerit. Neque enim discentibus ac laborantibus vnumquodq; præceptum similiter traditur, sed illis quidem ad cognitionem, his verò ad medelam. Quemadmodum ergo, quorum corpus ægrotat, ijs medico opus est: ita quorum æger est animus, ij pędagogo opus habent, vt animi nostri morbis medeatur: deinde verò doctore, qui puram deducat animam ad cognitionis aptitudinem, vt possit reuelationem sermonis percipere. Porrò autem dum gradu salutari nobis conuenienti in efficaci disciplina nos studet perfectos & consumatos reddere, pulchra vtitur œconomia, omni ex parte benignus & hominum amans Verbum, è supernis adhortans, deinde fungens Pædagogi officio in omnibus, & nos edocens.

*Psal.* 72. B C

Quòd propter peccata nostra nos moderetur Pædagogus, Cap. II. A

*Christus Deus in figura hominis.*

AEDAGOGVS autẽ noster, ô vos pueri, est Deo Patri suo similis, cuius est filius, in quem nullum omnino cadit peccatum, estq; nulli reprehensioni affinis, & animo impatibilis: Deus in figura hominis, impollutus, paternæ voluntati seruiens, Deus verbũ, qui est in patre, qui est à dextris patris, & cũ figura Deus est. Hic nobis est imago in qua nulla est macula. Ei omnib. viribus tentandum est animam similẽ efficere. Sed ille quidem liber est ab omnibus humanis animi perturbationib. Propterea enim vel solus est iudex, quòd solus sit in quem peccatum nõ cadit: nos autem conemur quoad eius fieri poterit, vt quàm minimũ peccemus. Nihil enim maiori curę ac studio esse debet, quàm vt ab animi perturbationibus morbisq; primùm liberemur: deinde verò, vt prohibeamus ne in peccatorum consuetudinem facilè prolabamur. Atq; optimum quidem est nullo modo peccare penitus, quod quidem Dei esse dicimus. Secundum autem, nullũ ex voluntarijs attingere maleficijs, quod est proprium sapientis, & in inuoluntariorum non adeò multa incidere. Tertiũ autem, quod est propriũ eorum qui bene educti & à Pædagogo rectè instituti fuere, in peccatis non diutissimè immorari, vltimo loco ponatur. Sed ei quoq; salutare fuerit, si ijs qui vocant ad pœnitentiam, minimè repugnauerit. Atq; mihi quidem per Mosen videtur pulcherrimè dicere Pædagogus: Si quis in eo fuerit repentè mortuus, statim polluetur caput voti eius, & radetur: peccatum inuoluntarium, mortem repentinam appellans. Eam autem dicit polluere, vt quæ animam macula respergat: & ideo quamcitissimè ei adhibet medicinã, consulens vt statim ei caput radatur, nempe ignorantiæ comas, quæ vmbram rationi offundunt, amouere & abstergere suadens, vt à densa vitij materia nuda relicta ratio (ea autem sedem suam collocat in cerebro) quamocyssimè redeat ad pœnitentiam. Deinde cũ pauca adiecisset, subiungit: Priores autem dies irrationales. Per quæ clarũ est significari peccata quæ non facta sunt per rationem. Et inuoluntarium quidem appellauit repentinum, peccare aũt, irrationale. Quamobrẽ sermo Pædagogus sortitus est moderationem, ad prohibendum irrationale peccatum. Id autẽ hinc ex Scriptuta considera: Propterea hæc dicit Dominus. quòd prius fuerit peccatum, arguendo ostenditur per sequentem dictionem, Propterea, quod iustum iudicium sequitur. Idq; per Prophetas apertè ostenditur, dum dicunt: Si non peccasses, non hæc esset minatus. & propterea sic dicit Dominus. Propterea quòd hos sermones non audijstis, ideo hæc dicit Dominus. &: Ecce propterea dicit Dominus. Propterea enim est Prophetia, propter obedientiam scilicet & inobedientiam. Propter illam quidem, vt seruemur: propter hanc autẽ, vt castigemur. Est aũt Pædagogus noster Verbũ, qui præternaturales animæ affectiones curat per admonitiones. Morborũ enim corporis auxilium, propriè vocatur Medicina, quæ docetur humana sapientia. Verbũ autem paternum, solus est humanarum ægritudinum, Pæonius medicus, & sanctus ægrotæ animæ incantator. Saluum fac seruum tuum, inquit, Deus meus sperantem in te. Miserere mei Domine, quia ad te clamabo toto die. Medicina enim, vt ait Democritus, medetur morbis corporis, sapientia autem liberat animam à perturbationibus. Bonus autem Pædagogus, qui est sapientia, qui Verbum Patris, qui fabricatus est cælũ, vniuersi figmenti curam gerit, eiusq; corpori & animæ medetur, qui est omni ex parte sufficiens medicus humanæ naturæ, seruator, Surge, inquit, paralytico, & sublato, in quo iaces, grabato, vade domum, & qui prius erat infirmus, extemplo sanus & firmus euasit. Et mortuo, Lazare, dixit, egredere. Ille verò mortuus, ex sepulchro exijt qualis erat ante quàm moreretur, meditatus resurrectionẽ. Quinetiam ipsi quoq; medetur animæ præceptis donisq; ac gratijs. Sed præceptis quidem ac monitis id facere vtiq; differt: donis autem ac gratijs diues, Dimittuntur tibi peccata tua, nobis dicit peccatoribus. Nos autem simul ac ipse cogitauit, facti sumus infantes, optimum ac stabilissimum locũ ab optima & præclarè ordinata eius moderatione adepti: quæ primũ quidem in mundi & cæli soliq; ambitibus circumagitur, in cæterorumq; astrorum motibus versatur, propter hominem: deinde verò in ipso homine, in quem omne eius studium confertur: eumq; maximum ac pulcherrimum esse opus existimans, prudentia quidem ac moderatione & temperantia animam eius direxit: corpus verò pulchritudine iustaq; & commoderata membrornm proportione temperauit: in humanæ autem naturæ actionibns quod in eis rectè & ex virtute geritur, pulchrumq; qui est in eis ordinem, ex suo eis inspirauit.

Marginalia (in order): Ioan. 5. / 1. Pet. 2. / Num. 6. / B / Esa. 66. / Hiere. 7. / Ezech. 33. / Psal. 85. / C / Marc. 2. / Ioan. 11.

A *Quòd sit benignus & hominum amans Pædagogus,* *Cap.* III.

N omnibus prodest & in omnibus iuuat Dominus, & tanquam homo, & tanquam Deus: peccata quidem remittens, vt Deus: ne peccemus aũt, Pædagogi ritu instituens, vt homo. Iurè ergo homo est Deo charus, quoniam eius figmentum homo est. Et alia quidem solo iussu fecit: hominẽ autem per se manu fabricatus est, & quid ei propriũ, inspirauit. Quod ergo ab ipso *Gen.1.* & ad eius imaginem factum est, vel tanquam propter se Deo eligendum, ab ipso Deo fabricatum est, vel tanquam propter aliud eligendum effictũ est. Si ergo homo est propter se res eligẽda cùm bonus sit, bonum amauit. & intus est in homine id amatoriũ, quod dei inspiratio seu insufflatio dicitur. Si autẽ homo res propter alias eligenda factus est, non alia fuit Deo causa cur hunc faceret, quàm quòd absq; eo ne que Deus poterat esse bonus opifex, neq; homo peruenire ad Dei cognitionem. Nõ enim aliter id cuius causa homo factus est Deus fecisset, si non homo factus esset: & quam habuit absconsam volendo potentiã, per externã impleuit faciendi potestatẽ Deus ab homine acceptã qui fecit hominẽ: & vidit quem habuit, & factũ est quod voluit. nihil est autẽ quod Deus non possit. Homo ergo quẽ fecit Deus, res est per se eligenda. Quæ res autẽ per se est eligenda, ei est propria ac familiaris, cui per se est eligenda. Ea autem res est expetenda & diligenda. Sed & si quid est diligendum, non potest id ab ipso non diligi. Diligendũ aũt esse hominẽ ostensum est. Homo ergo à Deo diligitur. Quî enim fieri potest vt non diligatur, propter quem vnigenitus
B ex sinu patris demittitur, Verbum fidei, fides ex superabundãtia, ipse Dominus? qui apertè confitetur & dicit: Ipse enim pater vos diligit, quia vos me dilexistis. Et ipse *Ioan.16.* rursus: Et dilexisti ipsos, quemadmodum me dilexisti. Quidnam ergo vult Pędagogus, & quid profitetur, & quomodo & factis & dictis affectus sit, & in ijs quæ sunt *Idem.17.* agenda præcipiendis, & prohibendis ijs quæ sunt contraria, iam vtique clarum est. Manifestum est autem esse alterum genus sermonis, cuius est institutum docere, quod quidem est subtile & spiritale, & accuratam tractandi rationem sequitur, & in arcanis contemplandis mysterijs versatur. Id autem in præsentia differatur. Par est autem eum nos redamare, qui pro suo in nos amore dux est nobis vitæ optimæ degendæ: ex eius autem voluntatis iussis viuere, non ea solùm quæ iubentur exequentes, vel quæ prohibentur cauentes, sed etiam has quidem imagines auersantes, illas verò, quoad eius fieri poterit, imitantes: Pędagogi factorum similitudinem operando referre, vt impleat id quod dictum est, Ad imaginem & similitudinem. In vita enim tanquam in profundis errãtes tenebris, optimo, & qui nunquam aberret ac offendat duce opus habemus. Optimus autem dux est, non cæcus, vt dicit Scriptura, *Matth.15.* cæcos in foueas ducens, sed Verbum, cuius est visus perspicacissimus, & qui cordis intima peruidet. Quemadmodum ergo non est lux quæ non illuminat, neque mouens quod non mouet, ita nec diligens quod non diligit, nec bonum quod non prodest, & ad salutem deducit. Faciamus ergo præcepta per opera & facta Domini. Ver
C bum enim ipsum apertè caro factum est, eandem simul virtutem actiuam & con- *Ioan.1.* templatiuam ostendens. atque adeo eius sermonem, præcepta & monita legem existimantes, cognoscamus quæ sunt breues & directæ viæ ad æternitatẽ. Persuasione enim sunt plena præcepta, non timore.

*Quòd ex æquo uirorum & mulierum Pædagogus sermo sit,* *Cap.* IIII.

ANC ergo bonam obedientiam magis magisq; amplectentes, nos ipsos Domino tradamus, firmissimum eius fidei rudentem appendentes, cogitantes eandem esse virtutẽ viri & mulieris. Si enim vtrisque vnus Deus *Gal.3.* est, vtrisque etiam vnus est Pædagogus, vna ecclesia, vna moderatio ac temperantia, vna verecundia, alimentum commune, coniugales nuptiæ, respiratio, visus, auditus, cognitio, spes, obedientia, charitas, omnia similia. Quorum autem est vita quidem communis, communis autem gratia, & salus communis, eorũ quoq; cõmunis est dilectio & educatio. In hoc enim, inquit, seculo vxores ducũt & nubũt, *Matth.22.* in quo solo fœmininum à masculo discernitur: in illo autem non amplius, vbi socia *Luc.20.* lis & sanctæ huius vitæ, quæ ex coniunctione proficiscitur, præmia non masculo ac fœminæ, sed homini proponuntur, cùm eum qui est separatus seiungat cupiditas. Viris itaq; & mulieribus commune nomen homo est. Ea ratione mihi videtur Attici παιδάριον communiter non solùm masculum, sed etiã fœminam vocasse, si cui fide

dignus videtur esse Comicus Mænander in Rapizomena, qui sic dicit: Filiola mea. A
admodum enim natura humanum est ac benignum παιδάριον. Iam verò ἄρνες quoque, quod agnos significat, est epicœnū nomē simplicitatis, animalis masculini & fœminini. Ipse autem Dominus nos pascit in secula seculorum, Amē. Sine pastore autem, nec oues, nec quicquam potest aliud viuere: neq; pueri sine pędagogo, nec ministri sine Domino.

*Quòd omnes qui in ueritate uersantur, sint apud Deum pueri,* *Cap. V.*

VO'D itaq; Pędagogia quidem sit παίδων ἀγωγή, hoc est, puerorū eductio, ex ipso nomine clarum est. Restat autē vt pueros quos Scriptura significat consideremus, deinde Pædagogum eis præficiamus. Nos pueri sumus. Multifariam autem nos celebrat, multisq; modis varijs nominibus allegoricè vtitur Scriptura, simplicitatem fidei diuersis rationibus immutans. In Euan-
Ioan. ult. gelio itaq;: Cùm in littore, inquit, stetisset Dominus, Discipulos (erant autem piscā-
Matt.19. tes) alloquutus est: Puelli, nunquid obsonium habetis? eos pueros appellans, quos
Marc.10. vsu & diuturna cōsuetudine habebat familiares. Et adduxerūt ei, inquit, pueros ad impositionem manuum benedictionis. Cùm autem eius noti ac familiares prohibe-
Matth.18. rent, dixit Iesus: Sinite puellos, & ne prohibete eos venire ad me: talium enim est regnum cælorum. Quid autem sibi vult quod dictum est, ipse declarabit Dominus, dicens: Nisi conuersi fueritis, & efficiamini sicut hi puelli, non intrabitis in regnum cęlorū. non regenerationē allegoricè hîc significans, sed quæ in pueris inest simplici- B
tatem, vt eius similitudinem referamus, commendans. Pueros quoque nos eligit
Math.21. spiritus Propheticus. Cùm carpsissent, inquit, pueri ramos oleæ vel palmarum, exierunt obuiam Domino, & clamarunt dicentes: Osanna filio Dauid, benedictus qui venit in nomine Domini: Lux & gloria & laus cum supplicatione Domino. hoc enim significat Osanna, si Latinè explicetur. Mihi autem videtur Scriptura, hâc
Psal.8. prophetiam proferens, tacitè eam quæ prædicta fuerat probri loco obijcere. Nunquam legistis, Ex ore infantium & lactentium perfecisti laudem? Hac itidem ratione Dominus suos familiares stimulat, vt ipsum diligenter attenderent incitans, vt qui iam ad patrem properaret: auditores vt maiore desiderio eum audirent præparans, fore vt paulò pòst abesset præsignificans: oportere eos veritate vberius ac profusius frui innuens, cùm Verbum mox se in cælum reciperet. Rursus ergo eos vocat
Ioan.13. puellos. Ait enim: Puelli, adhuc modicum sum vobiscum. Et rursus assimilat re-
Matt.11. gnum cælorum puellis in foro sedentibus, & dicentibus: Tibia vobis cecinimus, & non saltastis: lamentati sumus, & non planxistis: & quæcunque alia subiunxit his consentanea. Neque verò ita solùm sentit Euangelium, sed prophetia quoque est
Psal.112. eiusdem sententiæ. Dicit itaque Dauid: Laudate pueri Dominum, laudate nomen
Esa.8. Domini. Porrò autem dicit etiam per Esaiam: Ecce ego & pueri quos dedit mihi Deus. Miraris, dum audis viros, qui sunt in Gentibus à Domino vocari pueros: non mihi vocem videris audire Atticam, à qua disci potest, eas, quæ sunt elegantes & speciosæ adolescentulæ, & præterea ingenuæ, appellari παιδίσκας, ancillas autem παιδισκάρια, & ipsas adolescentulas propter ætatis puerilis vigorem diminutiuè puellarum C
Mat.25. nomine honorari. Iam verò cùm dicit, Agnelli stent à dextris, simplices pueros significat, tanquam agni & oues sint genere, non viri. Agnellos autem priuilegio dignos censuit, eam quæ est in hominibus facilitatem ac teneritudinem morumque sim-
Hiere.46. plicitatem & animi innocentiam præferens. Et rursus quando dicit, Tanquam vitu
Deute.14. li lactentes, nos rursus allegoricè significat. Et quando, Tanquam columbam sim-
Numer. 6. plicem & felle carentem. Et cùm rursus nos iubet per Mosen duos pullos columbarum vel par turturū pro peccato offerre, eorū quę sunt tenera, nullam quæ eis inest cum peccato affinitatē, pullorumq; innocentiam, & acceptæ iniuriæ nullam recordationē dicens esse Deo acceptam, & simile simili expiari exponens. Quinetiā turturum timiditas, quæ ne peccetur adhibenda est, cautionem significat. Quòd au-
Mat.23. tem nos pullos dicat, testis est Scriptura: Quemadmodum gallina congregat pullos sub alis suis: ita nos sumus pulli Domini, sane quàm admirabiliter & mysticè animæ simplicitatem ex puerili ætate describente sermone. Alicubi enim nos
υἱοὶ vocat pueros, alicubi verò pullos, nonnunquam autem infantes, alicubi autem filio
τέκνα los, & sępe filios, & populum recentem, & populū nouum. Seruis autē meis, inquit,
Esa.56.& imponetur nomen nouum. Nomen nouū dicit, quod est recens, æternum, impollu-
65. tum, simplex, & infantile, & verū, quod benedicetur in terra. Per allegoriam autem

nos

A nos rursus pullos vocat, qui vitij iugum non subimus, qui ab improbitate minimè πῶλοι
domiti sumus, sed sumus simplices, & ad ipsum solum Patrem exilimus: non equos Pullus equi-
subiugales, qui ad propinquorum vxores hinniunt, & fœminarum insano amore nus.
tenentur, sed liberos, & recenter genitos: qui propter fidem exultant: qui celeriter
currunt ad veritatem: qui sunt veloces ad salutem: qui mundana proterunt & cócul
cant. Lętare valde filia Sion, annuncia filia Hierusalem: Ecce Rex tuus venit tibi iu- Zach.9.
stus, mansuetus, & seruans, & ipse mitis, & qui ascendit subiugalem & pullum no- Matth.21.
uũ. Non satis habuit solũ dixisse pullũ, sed etiã nouũ ei adiecit, humanitatis quæ in
Christo vnita est nouitaté, & senij expertem cum simplicitate ęternitaté ostendens.
Tales autem nos nouos pullos qui infantes sumus diuinus noster alit pullorum
domitor. Quòd si asinus quoque nouus est in Scriptura, pullus tamen est hic quoq;
asinus. Et pullum, inquit, alligauit vineæ. hunc simplicem & infantem populum ser Genes. 49.
moni alligans, quem vocat allegoricè vitem. Fert enim vinum vitis, sicut Verbum
sanguinem. Est autem vtrũq; poculentum hominibus ad salutem: vinum quidé cor-
pori, sanguis verò spiritui. Quòd autem nos quoq; agnos dicit, fide dignus testis est
spiritus loquens per Esaiam: Sicut pastor pascet gregem suum, & brachio suo colli- Esa.40.
get agnos: per id quod est in ouibus tenerrimum, agnos scilicet simplicitatem alle-
goricè significans. Atqueadeo nos quidem certè earum quæ sunt in vita longè pul-
cherrimas & perfectissimas possessiones appellatione puerili honorantes, discipli-
nam Græcè παιδείαν & παιδαγωγίαν vocauimus. Pædagogiam autem esse confitemur
B bonam à pueris in virtute institutionem. Nobis itaque Dominus apertius ac eui-
dentius reuelans quid ex appellatione puerorum significetur, cùm orta esset quæ-
stio inter Apostolos, quisnam ex eis maior esset, statuit Iesus puellum in medio di-
cens: Qui se humiliauerit vt hic puellus, is maior est in regno cælorum. Non ergo Matth.18.
puerorum appellatione vsus est, tanquam qui per ætatem essent inconsiderati, & ra
tione minimè vti possent, quemadmodum nonnulli sensere: neque si dixerit, nisi fue
ritis sicut hi puelli, non intrabitis in regnum Dei, id ineruditè accipiendum est. Qui
itaque infantes sumus, humi non amplius volutamur: neque vt antea serpentum
more in terra serpimus, toto corpore in stultis cupiditatibus prouoluti, sed men-
te sursum erecti, mundoque & peccatis renunciantes, suspéso pede eatenus terram
tangentes, quatenus in mundo esse videamur, sanctam persequimur sapientiam.
Hæc autem videtur esse stultitia ijs, qui se ad calliditatem & versutiam exacuerunt.
Iurè ergo sunt pueri, qui Deum solum patrem nouerunt, simplices infantes, integri
ac innocentes, qui sunt vnicornium cornuum amatores. Iis itaque qui in sermone
processerunt, hanc vocem annunciauit, rerum ac negotiorum quæ hîc sunt iubens
curam abijcere, & suadens solum patrem attendere, puellos imitantes. Et ideo dicit
in ijs quæ consequuntur: Ne sitis soliciti de crastino, sufficit enim diei malitia sua. I- Matth.8.
ta curis de victu depositis, soli Patri adhærere præcipit. Qui aũt hoc implet præce-
ptum, reuera infans ac puer Deo est & mundo: huic quidem, tanquam seductus ac
erabundus: illi verò, tanquam dilectus. Iam verò si vnus est, vt dicit Scriptura, ma-
C gister in cælis, in confesso est, qui in terra sunt, omnes appellari discipulos. Ita enim
habet veritas, id quidem quod est perfectum, esse apud Dominum qui semper do- Matth.23.
cet: quod puerile autem est & infantile, apud nos, qui semper discimus. Porrò
autem itidem Prophetia id quod perfectum est honorauit viri appellatione. Et per
Dauid quidem, de diabolo: Virum, inquit, sanguinum abominatur Dominus. Psal.6.
Virum vocat, vt qui sit perfectus in vitio. Dicitur vir quoque Dominus, vt qui sit
perfectus in iustitia. Iam enim Apostolus ad Corinthios scribens, dicit: Despondi 2.Cor.11.
enim vos vni viro virginem castam exhibere Christo: siue tanquam infantes & san-
ctos, veruntamen soli Domino. Ad Ephesios autem scribens, apertissimè reuela-
uit quod quæritur, dicens hoc modo: Donec occurramus omnes in vnitatem fi- Eph.4.
dei & agnitionis Dei in virum perfectum, in mensuram ætatis plenitudinis Chri-
sti, vt non simus amplius infantes qui fluctibus agitemur & circumferamur o-
mni vento doctrinæ, in præstigijs hominum, in versutia ad insidias erroris: vera
autem dicentes in dilectione, augeamus in ipsum omnia. Hæc dicens ad ædifica-
tionem corporis Christi, qui est caput & vir, qui solus in iustitia perfectus: nos au-
tem infantes, qui ad inflationem perflantes, hæresum ventos vitantes, & ijs non
fidem habentes qui nos aliter docent quàm patres, tunc perfecti efficimur quando
sumus ecclesia, capite, Christo scilicet, recepto. Hîc autem par est attendere, ap-
pellationem huius vocabuli νήπιος, quod infanté significat, vt intelligatur τὸ νήπιον non

dici de insipientibus. Qui est enim insipiens, dicitur νηπύτιος. νήπιος aũt, qui est νέηπιος, vt ἤπιος qui est leni ac molli animo. Quo fit, vt is dicatur νήπιος, qui moribus mitis ac mãsuetus recenter euasit. Hoc autem manifestissimè significauit beatus Paulus, dicés: A
1.Theß.2. Cùm possemus oneri esse sicut Christi Apostoli, fuimus mites in medio vestri, sicut nutrix fouet filios suos. Mitis ergo ac mansuetus est infans, nempe νήπιος, & ea ratione magis tener ac mollis, & tener mollisq; est, q est simplex, doli ac fraudis expers, & remotus à simulatione, rectoq; & erecto animo. Hoc est autem fundamentum sim
Esa.66. plicitatis & veritatis. Super quem enim, inquit, respiciam, nisi super mansuetum & quietum? Talis enim est sermo virginalis, tener ac mollis, & fictioni non affinis. Vn-
ἁπαλοὶ ἀπαλοὶ de etiam virginem tenerã sponsam, & puerum ἀπαλόφρονα, hoc est, teneri ac mollis animi, vocare consueuimus. Sumus autem nos teneri ac molles, qui persuasioni nõ reluctamur, & à bonitate non difficiliter colimur, bileq; vacui, & malitia & peruersitate minimè permixti sumus. Vetus enim generatio peruersa est & duro corde. Chorus autem infantium, nos inquam, qui sumus nouus populus, mollis est & delicatus vt puer. Propter simplicium autem & innocentum corda, fatetur se gaudere Apostolus in epistola ad Romanos, & quandam, vt ita dicam, infantium definitioné
Rom.ult. tradit, dicens: Volo autem vos sapientes quidem esse ad bonum, simplices autem ad malum. Neque enim nomen τὸ νηπίοι à nobis intelligitur per priuationem, quoniã à Grammaticis statuitur νη esse priuatiuam particulam. Si qui enim infantiam insectantur, nos vocant insipientes, videte quomodo Dominum blasphemijs & maledictis impetunt, dum eos existimant insipientes qui ad Deum confugerunt. Sin autem, quod magis quoq; audiendum est, ipsi de simplicibus infantes acceperint, gaudemus appellatione. Infantes enim sunt mentes nouæ in veteri insipientia, quæ nu B
Matt.11. per prudentes, quæ in Nouo Testamento exortæ sunt. Nuper certè Deus per Chri-
Luc.10. sti aduentum fuit cognitus. Deum enim nemo nouit nisi Filius, & cui Filius reuelauerit. Iuuenes ergo populus nouus, vt distinguatur à veteri populo, ij sunt qui noua bona didicerunt: & est nobis vber ætatis ipsa iuuentus expers senij, in qua semper vigemus ad intelligentiam & mentis agitationem, semper iuuenes, & semper mansueti, & semper recentes ac noui. Oportet enim nouos esse sermones, qui noui verbi fuerunt participes. Quod autem fuit æternitatis particeps, ei quod est ab interitu alienum solet assimilari, vt puerilis ætatis appellatio, sit nobis ver totius vitæ, propterea quòd sit senij expers, quæ est in nobis veritas, & mores nostri, qui sunt veritate perfusi. Sapientia autem semper germinans, quæ semper similiter & eodem mo-
Esa.49. & 66. do se habet, & nunquam mutatur, Puelli, inquit, eorum super humeros tollentur, & super genua consolationem accipient. perinde ac si mater aliquem consoletur, ita ego quoq; vos consolabor. Mater quidem ad se pueros adducit: & nos matrem quærimus Ecclesiam. Quicquid itaque est imbecillum & tenerum, vt quod propter imbecillitatem auxilio egeat, gratum est, iucundum & delectabile, animosa animę parte ei quod est tantillum auxilium ferente. Quemadmodum enim patres & matres lubentius vident, equorum quidem pullos, boum verò paruos vitulos, & leonum leunculum, & cerui hinnulum, & hominis puellum: ita etiam vniuersorum Pater eos qui ad ipsum confugiunt recipit, & in filiorum adoptionem spiritu regeneratos nouit mansuetos, & eos solos diligit, eisq; fert auxilium, & pro eis pugnat, eosque C
Genes.26. defendit: & ideo puellum nominat. Ego verò Isaac quoque ad puerum refero. Isaac, risus exponitur. Eum vidit ludentem cum vxore & auxiliatrice Rebecca rex curiosus. Rex autem, cui nomen erat Abimelech, mihi videtur esse quædam supra-
παιδιὰ mundana sapientia, quæ puerilis ludi ac disciplinæ considerat mysterium. Interpretantur autem Rebeccam, tolerantiam. O prudentem ludum ac disciplinam. Risus & à tolerantia adiuuatur, & Rex, qui ea attendit, stupet & admiratur spiritum eorum qui sunt puelli in Christo, qui in tolerantia vitam agunt. Et hic est diuinus ludus ac disciplina. Talem ludum ludere suum Iouem dicit Heraclitus. Quid enim aliud viro sapienti & perfecto magis conuenit, quàm luderę & collætari? per honestarum rerum tolerantiam, & bonorum administrationem, dies festos cum Deo celebrantem. Potest etiam aliter accipi quod à prophetia significatur, nos scilicet lætari & ridere propter salutem, quemadmodum Isaac. Risit autem ille quoque à morte solutus, ludens & exultans cum sponsa, quæ nostra est ad salutem auxiliatrix Ecclesia, cui firmum ac solidum nomen impositum est, Tolerantia: vel quoniam ea manet in secula, semper gaudens: vel quòd constet ex tolerantia credentium, qui sumus membra Christi, & eorũ qui ad finem sustinuerunt testimo-

stimo-

A stimonium,& quæ fit propterea gratiarum actio. Hic est ludus & disciplina mystica,& salus quæ cum graui ac honesto solatio fert auxilium. Rex itaq; Christus è superis risum nostrum speculatur,& cum è fenestra,vt dicit Scriptura,prospexisset gratiarum actionem, & benedictionem,exultationem & lætitiam,& simul etiam cũ ijs operantem tolerantiam, & eorum coniunctionem, solam suam respicit ecclesiam: ostendens faciem suam quæ deerat ecclesiæ, quæ regali capite perfecta efficitur. Vbi erat autem fenestra per quam ostendebatur Dominus?Caro,per quam fuit manifestatus.Ipse est Isaac (aliter enim accipere possumus)qui est typus ac figura Domini.Puer quidem vt filius:erat enim filius Abrahæ,quemadmodum Christus Dei:hostia autẽ sicut Dominus,sed non oblatus est vt Dominus. Ligna solùm sacrificij portauit Isaac,vt lignum Dominus.Mysticè autem risit,prædicẽs fore, vt Dominus nos risu impleret,qui sanguine Domini ab interitu & corruptione redempti sumus.Solummodò autem iurè Isaac non passus est, qui primas passionis partes Verbo cesserit. Quinetiam significat Domini diuinitatem, dum non fuit occisus.Surrexit enim post iusta facta funeris Iesus:non passus, quemadmodum Isaac dimissus est è sacrificio. Porrò autem ad eius quod propositum est defensionem,maximum quoq; aliud afferam. Ipsum Dominum puellum nominat,id per Esaiam prædicens spiritus:Ecce puellus natus est nobis, & filius datus est nobis, cuius principatus super humerum eius, & vocatum est nomen eius, magni consilij Angelus. Quid est ergo puellus? Infans, ad cuius imaginem nos infantes sumus.Per eundem Prophetam narrat eius magnitudinem:Admirabilis consiliarius,Deus potens,pater æternus,princeps B pacis: eò quòd ludum ac disciplinam impleat:Et pacis eius non est finis. O' magnũ Deum. O' perfectum puerum. Filius in Patre,& Pater in Filio.Et quomodo non est perfecta huius pueri puerilis disciplina & institutio, quæ nos omnes pueros peruadit,Pædagogi ritu nos instituens, qui sumus eius infantes? Is manus in nos expandit,quæ apertè & euidenter fuere creditæ.De hoc puello fert quoque testimonium Ioannes,qui est maior Propheta inter natos mulierum: Ecce agnus Dei. Quoniam enim Scriptura pueros ac infantes agnos nominat, Deum qui est Verbum, qui propter nos homo factus est, qui nobis in omnibus assimilari volebat, vocauit agnum Dei,filium Dei, infantem Patris.

Esa.9.
Ioan.1.

*Aduersus eos qui existimant,puerorum & infantium appellationem significare primarum disciplinarum doctrinam,* Cap. VI.

LICET autem nobis veluti ex quadam redundãti copia eos aggredi, qui in reprehendendis alijs delectantur. Non enim nos pueri & infantes appellati sumus,quòd sit puerilis & cõtemnenda nostra disciplina, vt nos calumniati sunt,qui sunt inflati scientia.Statim itaq; regenerati recepimus perfectionem,cuius causa festinabamus. Fuimus enim illuminati: id autem est, Deum agnoscere. Non est ergo imperfectus,qui quod perfectũ est cognouit:nec me reprehenderitis,ꝙ fatear me Deum nosse. Verbo enim ita dicere vi- C sum est: Is verò liber est. Iam enim dum tingeretur Dominus,vox è cælis testis dilecti resonuit:Tu es filius meus dilectus,ego hodie genui te.Sapientes ergo rogemus: Christus hodie regeneratus,iám ne est perfectus,an, quod est absurdissimum,ei aliquid deest? Sed si ita est,vt aliquid disceret opus fuit:sed eũ cùm Deus esset,nihil didicisse fuit cõsentaneũ.Neq; enim quis Verbo maior fuerit.Sed neq; magister ac doctor est eius qui solus est magister. An nõ ergo vel inuiti fatebuntur, Verbũ perfectũ ex perfecto Patre natum,ex œconomica præordinatione esse perfectè regeneratum? Et si erat perfectus,cur qui erat perfectus tingebatur?Oportebat, inquiunt, implere humanam professionem.Pulcherrimè.Ita enim dico. Simul ac ergo à Ioanne tingitur,fit perfectus,scilicet.Nihil ergo ab eo didicit? nequaq̃. Solo aũt lauacro perficitur,& spiritus aduentu sanctificatur.Ita habet. Hoc ipsum nobis quoq; euenit quorum fuit exemplar Dominus. Tincti illuminamur: illuminati,in filios adoptamur: adoptati perficimur:perfecti, immortales reddimur.Ego,inquit,dixi dij estis, & filij excelsi omnes.Multis autem modis vocatur hoc opus, gratia,illuminatio, perfectum,& lauacrum. Lauacrum quidem, per quod peccata abstergimus: Gratia autem,qua remittuntur pœnæ quæ peccatis debentur. Illuminatio autem, per quam sanctam illam & salutarem lucem intuemur, hoc est,per quam id quod est diuinum perspicimus.Perfectum autem dicimus, cui nihil deest. Quid enim ei desit qui Deum nouit? Est enim reuera absurdum, Dei vocari gratiam, quæ non sit perfecta

Matth.3.
Marc.1.
Luc.3.
Psal.81.

&vndequaq; plena. Qui est autem perfectus, perfecta vtiq; largietur. Quemadmodum autem simul ac ipse iussit fiunt omnia, ita sequitur, vt eo quòd solum gratificari voluerit, plena fuerit gratia. Quod enim futurum est temporis, id per voluntatem potentiæ anticipatur. Accedit ijs, quòd liberatio à malis est initium salutis. Soli ergo qui primùm vitæ fines attigimus, iam perfecti sumus. Iam autem viuimus, qui sumus à morte separati. Christum ergo sequi salus est. Quod enim factum est, in ipso vita est. Amen amen dico vobis, inquit, qui sermones meos audit, & credit ei qui me misit, habet vitam æternam, & in iudicium non venit, sed transijt à morte ad vitam. Ita solùm credidisse & regeneratum esse, est in vita perfectio. Nunquã est enim Deus imbecillus. Quemadmodum enim eius volũtas est opus, & id Mundus nominatur: ita etiam eius volũtas est hominum salus, & ea vocata est Ecclesia. Nouit ergo quos vocauit, quos seruauit: simul autem vocauit, & seruauit. Ipsi enim vos, inquit Apostolus, à Deo docti estis. Nefas est ergo imperfectũ sentire, quod ab ipso docetur. Quod autem ab eo discitur, est æterni Seruatoris æterna salus. Cui gratia in secula seculorum, amen. Et qui est solummodò regeneratus, quemadmodum etiam illuminatus dicitur: illuminatus quidem protinus à tenebris liberatur, & ab eo tempore lucem accepit. Quemadmodum ergo qui somnum excusserunt, ab eo tempore protinus intus vigilant: vel potius quemadmodum qui oculorum suffusionem conãtur amouere, non extrinsecus eis lucem suppeditant, quam non habent, sed quod oculis impedimentum afferebat depellentes, liberam relinquunt pupillam: ita etiam qui tingimur, abstersis peccatis, quæ diuino spiritui instar caliginis tenebras offundebant, liberum, ab omniq; impedimento vacuum, & lucidum habemus spiritus oculum: quo quidem solo quod diuinum est intuemur, cælitùs influente nobis sancto spiritu. Hæc est æterna splendoris temperatura, qui videre potest æternam lucem: quãdoquidem quod simile est, est amicum simili. Quod sanctum est autem, amicum est ei ex quo sanctum est, quod lux propriè appellatum est. Eratis enim aliquando tenebræ, nunc autem lux in Domino. Hinc puto ab antiquis Græcis hominem vocatum esse φῶτα, id est, lucem. At nondum, inquiunt, perfectum donum accepit. Ego quoque assentior: sed est in luce, & tenebræ ipsum non comprehendunt. Inter lucem autem & tenebras nihil est intermedium. In resurrectione autem credentium, finis est repositus. Is autem non est aliquid aliud adipisci, quàm promissum prius conuentum assequi. Non enim eodem tempore ambo simul consistere dicimus, nempe & accessum ad finem, & accessus anticipationem. Non est enim idem, æuum & tempus. Sed neque idem est appetitio, qua ad aliquid impellimur, & finis ad quem tendimus. Circa vnum autem ambo, & vnus circa ambo versatur. Est autem, vt ita dicam, incitans quidem appetitio, fides quæ in tempore generatur: finis promissum autem assequi, qui est firmus ac stabilis in secula. Ipse autem Dominus salutis æqualitatem apertissimè reuelauit, cùm dixit: Hæc est enim voluntas patris mei, vt omnis qui contemplatur filium, & credit in ipsum, habeat vitam æternam, & resuscitabo ipsum in nouissimo die. Quatenus ergo fieri potest, in hoc mundo, quem per nouissimum diem significauit, qui eousque seruatur dum cessauerit, nos perfectos factos esse credimus. Fides enim est doctrinæ perfectio. Et ideo dicit: Qui credit in filium, habet vitam æternam. Si ergo qui credidimus, habemus vitam æternam, quid reliqui est vltra vitæ æternæ possessionem? Fidei autem quæ ex se perfecta & plena est, nihil deest. Sin autem ei aliquid deest, non est vndequaque perfecta. neq; fides est in vlla reclaudicans: neque postquam ex hoc loco excesserint, expectat eos qui crediderunt, cùm absque vllo discrimine hic arrham acceperint. Sed cùm illud quod futurum est credere præceperimus, post resurrectionem quod factum est recipimus: vt illud impleatur quod dictum est: Fiat secundum fidem tuam. Vbi autem fides, hic promissio. Promissionis autem perfectio est requies. Quapropter cognitio quidem est in illuminatione: finis autem cognitionis, requies. quod quidem extremum expetendum intelligitur. Quemadmodum ergo imperitia, peritia soluitur, & inuenta certa via, dubitatio: ita illuminatione tenebras deleri necesse est. Tenebræ autem sunt ignoratio, per quam in peccata incidimus, circa veritatem hallucinantes. Cognitio ergo est illuminatio, quæ delet ignorationem, & perspicacem videndi facultatem infert. Quin etiam eorum quæ sunt deteriora reiectio, est meliorum reuelatio. Quæ enim malè colligauit ignoratio, ea pulchrè resoluit agnitio. Hæc autem vincula quam celerrimè remittuntur, humana quidem fide, diuina verò gratia, cũ remittũtur peccata vno medicamẽto pęonio, nẽpe verbali baptismo.

Omnia

Margin notes: Ioan.1. Ibidem. Rom.8. Ephes.4. αἰών. Ioan.8. Ibidem 3. Matth.9. — Section letters: A, B, C.

A Omnia ergo peccata eluimus,& è vestigio mali nō sumus amplius. Vna est hæc gratia illuminationis, quòd nō sint ijdē mores,qui erant ante quàm lauaremur. Quoniam autem cognitio vnà oritur cum illuminatione circa mentem refulgens, & qui prius rudes & ignari eramus,protinus vocamur discipuli: vtrúmne id factū est cùm aliquando aduentasset disciplina? nō enim poteris tempus dicere. Catechesis enim, seu quæ per auditum suscipitur institutio,ad fidē deducit.Fides autē simul cum baptismo docetur à diuino spiritu. Quòd enim fides vna sit vniuersa salus humanæ naturæ,eadem sit autem iusti & benigni Dei erga omnes æqualitas & communicatio, Paulus manifestissimè exposuit,sic dicens:Priusquàm autem veniret fides,custodiebamur sub lege,conclusi sub fide quæ erat reuelanda. Quare lex fuit noster pædagogus in Christo,vt ex fide iustificemur. Postquam autem venit fides, non sumus amplius sub pædagogo. Non auditis nos non esse amplius sub illa lege quæ erat cum timore,sed sub Verbo qui est pædagogus liberi arbitrij? Deinde subiunxit vocem quę est remota ab omni personarum acceptione: Omnes enim filij estis per fidem Dei in Christo Iesu. Quicunq; enim in Christum baptizati estis,Christū induistis. Non est Iudæus nec Gręcus,non est seruus nec liber,non est masculus & fœmina. Omnes enim vos vnus estis in Christo Iesu. Non ergo hi quidem sunt cognitione præditi, hi autem animales in eodem verbo:sed omnes qui concupiscentias carnales deposuerūt,sunt ęquales & spiritales apud Dominum. Et rursus alibi scribit:Etenim vno spiritu omnes nos in vnum corpus baptizati sumus,siue Iudæi,siue Gręci,siue serui,
B siue liberi: & omnes ex vno poculo bibimus. Neq; verò absurdum fuerit illorum quoq; ipsorum,vnà cum eis, verbis vti, qui spiritus quidem percolationem dicunt esse meliorum memoriam. Percolationem autem intelligunt, quæ ex meliorum fit recordatione,eorum quæ peiora sunt separationem. Ei itaq; qui meliora reuocauit in memoriam,necessariò sequitur pœnitentia propter deteriora. Ipsum ergo spiritum pœnitentia adductum recurrisse fatetur. Eodem modo nos quoque nostrorum peccatorum moti pœnitentia, ipsorum detrimentis renunciantes, baptismo percolati ad æternam quoq; lucem recurrimus, filij ad patrem. Exultans itaque in spiritu Iesus, Confiteor tibi pater,inquit,Deus cæli & terræ, quòd abscondisti hæc à sapientibus & intelligentibus, & reuelasti ea paruulis. Infantes nos ac paruulos pædagogus & magister appellans,qui sapientibus qui sunt in mundo, sumus aptiores ad salutem, qui sapientes seipsos existimātes, superbia inflati sunt:& exclamat exultans & mirandum in modum lętus,tanquam vnà cum infantibus balbutiens: Nę, ô pater,quia sic complacuit ante te. Propterea quæ abscōsa sunt à sapientibus & intelligentibus huius quod nunc est seculi,reuelata sunt infantibus. Meritò ergo Dei pueri,qui veterē quidē hominē deposuerunt, & vitij tunicā exuerūt: Dei autem incorruptionem induerunt,vt nouus facti populus sanctus,regenerati impollutū hominem custodiamus. & infans quidē est, tanquam Dei puellus, qui à fornicatione & improbitate est expurgatus. Manifestissimè itaq; beatus Paulus nos ab hac quæstione liberauit in priore epistola ad Corinthios,sic scribens:Fratres ne pueri efficia
C mini mentibus, sed sitis vitio infantes, mentibus autem este perfecti. Illud autem: Quando eram paruulus, cogitabam vt paruulus, loquebar vt paruulus: quam sub lege egit vitam significat,in qua non vt iam simplex,sed vt adhuc insipiens, puerilia quidem animo agitans,persequebatur:puerilia autem loquens,blasphemijs & maledictis Verbum incessebat. Duo enim significat τὸ νήπιον, infantem videlicet & stultum. Postquam factus sum, inquit, vir ( rursus dicit Paulus ) feci vt cessarent ea quæ erant infantis. Non ætatis imperfectam magnitudinem, sed nec temporis præfinitam mensuram,neq; virilium & perfectiorum disciplinas: arcanas scilicet alias doctrinas significat,infantiā extra fines amandans, qui se eam annūciare profitetur Apostolus. Sed infantes quidem dicit eos qui sunt in lege, qui non secus ac laruis pueri, timore perturbantur. Viros autem qui Verbo paremus,nostrique sumus iuris & arbitrij,vocauit qui credidimus,spontanea electione seruati,sapiēter,non insipienter metu territi. De hac re testimonium feret ipse Apostolus,Iudæos secundum prius testamentum dicens hæredes, nos autem secūdum promissionem. Dico autem, inquit, quandiu hæres est infans, nihil differt à seruo, cùm sit dominus omnium, sed est sub tutoribus & curatoribus vsque ad patris præfinitum tempus: ita & nos quando eramus redacti in seruitutem sub elementis mundi. Quando autem venit plenitudo temporis, misit Deus filium suum factum ex muliere,factum sub lege, vt eos qui erant sub lege redimeret,vt adoptionem filiorū per ipsum reciperemus. Vi-

[Margin notes: λογικῷ βαπτίσματι. — Gal.3. — Ibidem. — 1.Corinth. 12. — Matth.11. — Cap.14. — 1.Corinth. 12. — Gal.4.]

de quomodo confessus est esse infantes, qui timori & peccatis subiecti sunt: eos autem qui sub fide sunt filios vocans, viros effecit, tanquã vt eos distingueret ab infantibus qui sunt in lege. Non es enim, inquit, amplius seruus, sed filius. Sin autẽ filius, & hæres per Deũ. Quid ergo filio deest post hæreditatẽ? Eleganter ergo sic exponi potest illud, Quando eram infans: hoc est, quãdo eram Iudæus (erat enim à prima sua origine Hæbræus) cogitabam vt infans, quoniã sequebar legẽ: postquã autem factus sum vir, nõ amplius quę sunt infantis, hoc est, quæ sunt legis, sed quæ sunt viri, cogito, hoc est, quæ sunt Christi, quẽ solũ virũ Scriptura vocat, vt antè diximus: cessare feci quæ sunt infantis. Quæ est autẽ in Christo infantia, est perfectio, si cum lege conferatur. Cùm hîc sumus suscipienda est defensio infantiæ. Est præterea interpretandum id quoq; quod ab Apostolo dictum est: Lac vobis potum dedi tanquam infantibus in Christo, non cibũ: nondũ enim poteratis, sed neq; adhuc nũc potestis. Non enim mihi videtur dictũ Iudaicè accipiendũ quod dicit. Nam illã quoq; scripturam ei ex hoc aduerso adducã. Inducam vos in terrã bonã lacte & melle fluẽtem. Exoritur itaq; maxima dubitatio in harum scripturarũ collatione cogitantibus. Si enim fidei in Christum principium est quę per lac designatur infantia: ea autem tanquam puerilis & imperfecta vilipenditur: quomodo eius quod est perfectum & scientia præditũ, post cibũ requies, infantili rursus lacte honorata est? Nunquid ergo hoc, quod veluti quandam similitudinem indicat, tale quid significat? & est vtique hoc dictum ita legendum: Lac vobis potum dedi in Christo: & paruo interiecto spatio subiungamus, Tanquam infantibus. vt per lectionis distinctionem talem sensum accipiamus, Catechizaui vos, hoc est, per auditum in Christo institui, simplici verò & ex se naturali alimento spiritali. Talis est enim lactis, quæ est altrix animalium, substantia, ex amantibus vberibus scaturiens: ita vt vniuersum sic intelligatur. Quemadmodum nutrices recenter natos infantes lacte nutriunt, ita ego Christi lacte nempe vobis spiritale nutrimentum instillans. Ita ergo perfectum est alimentum lac perfectum, & ad finem qui nunquam cessaturus est deducit. Quocirca in quiete quoque idem ipsum lac & mel promittitur. Iurè enim rursus iustis lac Dominus pollicetur, vt apertè Verbum esse vtrunq; ostendatur, Alpha & ω, principium & finis: Verbum inquam, quod lac allegoricè dicitur. Tale quid Homerus vel inuitus diuinat, iustos homines γαλακτοφάγους, hoc est, qui lacte vescũtur, appellãs. Potest etiam ita Scriptura accipi. Et ego, fratres, non potui loqui vobis tanquam spiritalibus, sed tanquã carnalibus, tanq̃ infantibus in Christo, vt possint carnales intelligi, qui recenter instituebantur, erãtq; catechumeni, & adhuc infantes in Christo. Spiritales enim eos qui sancto spiritui iam crediderũt, appellauit. Carnales autem, eos qui per auditionem recenter instituti sunt, nec adhuc sunt expurgati: quos meritò adhuc carnales dicit, vt qui æquè ac Gentes ea quæ erant carnis cogitabant. Vbi enim inter vos æmulatio & lis, an nõ carnales estis, & secundum hominem ambulatis? Quocirca dicit etiam, Lac vobis, inquit, potum dedi: cognitionem dicens vobis infudi, quæ ex catechesi, id est, per auditum institutione data est, quæ nutrit in vitã æternam. Quinetiam hoc verbum, Potum dedi, est symbolum ac signum perfectæ participationis. Qui enim perfecti sunt, dicuntur bibere, infantes autem sugere. Sãguis enim meus, inquit Dominus, verus est potus. Nunquid ergo cùm dixit, Lac potum dedi, significauit perfectam in verbo Lacte lætitiam, veritatis scilicet cognitionẽ? Quod autem deinceps subiũgitur, Non cibum, nondum enim poteratis, euidentem quæ erit in futuro seculo reuelationem, instar cibi, facie ad faciẽ, potest significare. Videmus enim nunc tanq̃ per speculum, dicit idem Apostolus, tunc autẽ facie ad faciẽ. Quocirca illud quoq; subiunxit: Sed neq; nũc potestis, adhuc enim carnales estis, quæ sunt carnis cogitantes, concupiscentes, amantes, ęmulantes, irascẽtes, inuidentes. Non enim in carne amplius sumus, vt quidam existimarunt: cum ea enim, faciem Angelis ęqualem habentes promissum facie ad faciem videbimus. Quomodo autem, si verè est illud promissum postquam hinc excesserimus, quod oculus non vidit, neque in mentem hominis ascendit, se id nouisse dicunt, cùm spiritu non intellexerint, sed ex disciplina acceperint, quod auris nunquam audiuit, præterquam illa sola quæ in tertium cælum rapta est, sed illud quoque arcano silentio obtegere iussus est? Sin autem humana sapientia, quod quidem restat, potest intelligi, est cognitionis gloriatio. Audi legem scripturæ: Ne glorietur sapiens in sapientia sua: & non glorietur fortis in fortitudine sua, sed qui gloriatur, in Domino glorietur. Nos autem à Deo docti sumus, & in Christi nomine gloriamur. Quomodo

Marginalia: *Ibidem.* (beside "tibus qui sunt in lege"); *1. Corinth. 3.* (beside "pretandum id quoq;"); *Exod. 3.* (beside "pturam ei ex hoc"); *1. Corinth. 3.* (beside "etiam ita Scriptura"); συνεπέχεται (beside "qui per auditionem"); *1. Corinth. 3.* (beside "tis? Quocirca"); *1. Corinth. 2.* (beside "oculus non vidit"); *2. Corinth. 12.* (beside "ritu non intellexerint"); *Hierem. 9.* (beside "pientia sua"); *1. Corinth. 1.* (beside "no glorietur"). Section letters A, B, C in right margin.

A modo ergo non est existimandũ, Apostolum hoc modo intelligere lac infantium, siquidem pastores sumus qui ecclesijs præsumus ad imaginẽ boni pastoris, vos autẽ oues? an non eum qui lac quoq; gregis dicit Dominũ seruare consequentiã, vtentẽ allegoria? Iam verò dictũ rursus menti est applicandũ, Lac vobis potũ dedi, nõ cibũ, nondũ enim poteratis: non aliquid aliud quàm lac cibũ existimantes, sed idem substantia. Similiter enim idem ipsum quoq; Verbum vel est remissum laxumq; & mite, vt lac: vel concretum & coactum, vt cibus. Verumenimuero si sic acceperimus, potest à nobis lac intelligi prædicatio, quæ plurimùm diffusa est. Cibus autem, fides, quæ à catechesi in fundamentum coacta & conuersa est: quæ cùm sit auditione solidior, cibo assimilatur in ipsa anima corpus effecta. Tale alimentum alibi quoque Dominus in Euangelio secundum Ioannẽ aliter per symbola ac signa exposuit cùm dixit: Comedite carnes meas, & bibite meum sanguinem: euidenter fidei & promissionis quod est, esculentum & poculentum dicens, allegoricè, per quæ ecclesia, tanquam homo ex multis constans membris irrigatur & augetur, & ex vtrisque conflatur & coalescit, corpore quidem, fide, anima verò, spe, quemadmodum Dominus quoque ex carne & sanguine. Reuera enim sanguis fidei est spes, in qua continetur, quemadmodum fides ab anima. cùm autẽ spes expirauerit, perinde ac si sanguis effluxerit, vitalis fidei facultas dissoluitur. Quòd si velint nõnulli contendere, dicẽtes lac primas significare disciplinas tanq̃ prima nutrimenta, cibũ aũt spiritales cognitiones, ad quas seipsos propter scientiã erigunt, sciant q, cùm vtiq; cibum dicant nutrimentũ solidum, & carnem & sanguinem Iesu gloriabunda sua sapientia deducunt ad veram simplicitatem. Sanguis enim inuenitur primùm genitus in homine, quem nonnulli dicere ausi sunt substantiã animæ. Hic aũt sanguis naturali conuersus concoctione, postquã mater concepit & vterũ gerit, charitate consentiente & vnà quodammodo patiẽte, efflorescit & senescit, vt sit infans absque metu: & quod carnis quidẽ est humidius, est sanguis, vt qui sit veluti quædã caro humida: sanguinis autem lac est id quod est iucundius & subtilius. Siue enim est sanguis qui fœtui qui est in vtero suppeditatur, & per maternũ prius vmbilicũ mittitur: siue ipsa menstrua à proprio motu exclusa, naturali diffusione ab almo & generationis authore Deo ad vbera iam turgentia se conferre iubentur, sanguis mutatus infanti efficitur iucundum & suaue nutrimentum: ex omnibus enim membris maximum habent consensum vbera cum matrice. Vbi enim in partu vas abscissum fuerit per quod sanguis ad fœtum deferebatur, obstruitur quidem meatus, sanguis autẽ ad vbera impellitur, & cùm illuc permultum defluxerit, extenduntur, & sanguis in lac mutatur, nõ secus ac mutatur sanguis in pus in vlceratione: siue à venis apertis, quæ sitæ sunt in mamillis, per fœtus distensiones, in naturales mamillarum cauernas sanguis transfunditur, ei autem commixtus qui ex vicinis arterijs emittitur spiritus, manente integra quæ subijcitur sanguinis substantia, vndæ instar agitatus albescit, & tali interruptione ritu spumæ mutatur affectione quadam ei quæ mari euenit non absimili, quod quidem Poëtę dicunt ventorum concitum insultibus salis quisquilias expuere. Veruntamen adhuc habet sanguinis substantiam. Eodem modo fluuij quoq; dũ magno feruntur impetu, circunfusi aëris interceptione lancinati spumam cum murmure exprimunt: & quod in ore nostro est humidũ, spiritu exalbescit. Quàm est ergo absurdum non fateri, sanguinem in eum fulgorem eamq; albedinem à spiritu cõuerti, eamq; suscipere mutationem in qualitate, non autem in substantia? Nihil certè quod melius nutriat, neq; quod sit dulcius, nec lacte candidius, inueneris. Est id itaq; omni ex parte spiritali nutrimento simile, qđ est quidẽ dulce propter gratiam, nutriens autem tanquam vita, candidum autem vt dies Christi, & sanguinem Verbi ostensum est esse tanquam lac. Ea ergo ratione in puerperio dispensatum lac infanti subministratur, & vbera quæ interim rectà virum respiciebant, iam ad puellum inclinantur, quod à natura elaboratum est nutrimentum, vt ad capiendũ facilè exhibeant edocta, ad salutis educationẽ. Non enim tanquam fontes sunt vbera influente parato lacte plena, sed alimentum mutantia, lac in se ipsis efficiunt, & exhalant. Alimentũ autem quod est ipsum conueniens ac vtile puello recenter compacto & nato, à Deo altore & Patre eorũ qui generantur & regenerantur, elaboratur, quemadmodum veteribus Hebræis manna cælitùs defluebat, supercæleste Angelorum nutrimentũ. Certè nunc quoq; nutrices id lactis quod primum ad potum effunditur, eodem quo illud nutrimentum nomine manna appellauerunt. Cæterùm mulieres quidem prægnantes, cùm matres factæ fuerint, lac emittunt. Dominus autem Chri-

[Margin notes: Ioan. 6. (beside "dixit: Comedite carnes meas"); B (beside "trimentũ solidum"); ἀλὸς ἄχνην. (beside "quod quidem Poëtę dicunt"); C (beside "re. Veruntamen"); Exod. 16. Deut. 8. (beside "modum veteribus Hebræis manna")]

stus fructus Virginis, nõ beata duxit vbera fœminea, nec ea ad nutrimentũ delegit: A
sed cùm amans & benignus Pater Verbum impluisset, ipsum iam spiritale alimentum factum est bonis & moderatis hominibus. O' miraculum mysticum. Vnus quidem est vniuersorum pater. Vnũ est etiam Verbũ vniuersorum, & Spiritus sanctus vnus, & ipse est vbiq;. Vna autem sola est mater virgo: mihi autẽ placet eam vocare ecclesiam. Lac non habuit mater hæc sola, quoniam sola non fuit mulier. Virgo est autem simul & mater, integra quidem & inuiolata, vt virgo: amans autem, vt mater: & suos accersens infantulos, sancto lacte, nempe verbo infantili enutrit. Ideo autẽ lac non habuit, quòd lac esset hic infantulus pulcher & appositus, scilicet corpus Christi, nouum cœtum verbo nutriens: quem ipse Dominus carnali labore peperit: quem ipse fascijs alligauit Dominus, precioso sanguine. O' sanctas secundinas: & partum sanctum: ô sanctas fascias, Verbum est omnia infanti, & pater, & mater, & pę-
Ioan. 6. dagogus, & altor. Comedite, inquit, meam carnem, & bibite meum sanguinem. Hęc apposita & conuenientia alimenta nobis suppeditat Dominus, & carnem præbet, & effundit sanguinem, & ad incrementum nihil deest infantulis. O' admirabile mysterium. Veterem & carnalem nos iubet exuere corruptionem, quemadmodum & vetus nutrimentum: alius autem nouæ Christi diætæ effectos participes, illum, si fieri posset, recipientes, in nobis ipsis reponere, & seruatorem intra pectus cõprehendere, vt carnis nostræ affectiones integras perfectasque reddamus. At non vis sic intelligere, sed fortasse communiús. Hoc quoq; modo audias. Carnem nobis allegoricè sanctus significat Spiritus: ab ipso enim caro fabricata est. Sanguis Verbum B
nobis designat: tanquam enim diues sanguis, Verbum vitæ infusum est. Amborum autem est temperatura Dominus. Alimentum infantiũ est Dominus, qui est spiritus & Verbum. Alimentum, id est Dominus Iesus, hoc est, Verbum Dei, est spiritus incarnatus, caro cælestis sanctificata. Nutrimentum est lac Patris, quo solo aluntur infantuli. Ipse itaque qui est dilectus & altor noster, Verbum, effudit pro nobis suum sanguinem, salutem humanæ naturæ afferens, per quem qui in Deum credidimus, ad mamillam Patris, quæ curarum obliuionem inducit, nempe Verbum, confugimus. Ille autem solus, vt est consentaneum, nobis lac dilectionis infantibus suppeditat. Iique sunt verè beati, qui hanc lactant mamillam. Et ideo Petrus quoque dicit:
1. Pet. 2. Deposito ergo omni vitio, & omni dolo, & simulatione, & inuidia, & detractione, tanquam nuper nati infantes verbale lac cõcupijstis, vt in ipso crescatis in salutem, si gustastis quòd Christus Dominus. Quòd si quispiam etiam eis concesserit cibum aliquid aliud esse præter lac, deinde quomodo non à seipsis configentur, vt qui naturam non considerauerint? Etenim alimentum cùm condensans hyems continet, & intus concluso calido non præbet exitum, concoctum & in sanguinem versum fluit in venas. Illę autem cùm eis non detur perspiratio, impletæ maximè intenduntur, & pulsant. Quocirca nutrices quoque lacte tunc maximè plenæ sunt. A nobis autem paulò antè ostensum est, sanguinem prægnantibus in lac deduci, mutatũ quidem, sed nequaquam conuersa substãtia, quemadmodum scilicet senescentibus pili flaui mutantur in canos. Æstate autem rursus corpus, cùm sit rarius, vt alimentũ C
faciliùs differatur efficit: & lac minimè abundat, quoniam neq; sanguis, neq; vniuersum continetur nutrimentum. Si ergo cibi quidem confectio sanguificatur, sanguis verò lactescit, sanguis est lactis præparatio, sicut sanguis hominis, & acinus vineæ. Lacte ergo, dominico scilicet nutrimento, statim quidem postquam editi sumus, alimur: simulac autem regenerati fuimus, honore affecti sumus, dum spes quietis annunciatur, superna Hierusalem, in qua & mel & lac pluere scriptum est, dum per materiale sanctum nobis alimentum despondetur. Cibi enim, sicut ait Apósto-
1. Cor. 6. lus, abolentur. Quod per lac autem est nutrimentum, deducit in cælos, ciues cælorum & cum Angelis choreas ducturos enutriens. Quoniam autem Verbum est fons vitæ scaturiens, & flumen olei dictum est, meritò Paulus allegoricè loquens, & i-
Ibidem 3. psum lac nominans, subiungit: Potum dedi. Verbũ enim bibitur alimentũ veritatis. Certè potus quoq; vocatur humidum nutrimentum. Potest autem res eadem esse & cibus, si aliquo modo affecta sit, & potus, si alio & alio modo consideretur. quemadmodum caseus quoq; est lactis concretio, vel lac concretum: neq; enim dictiones aucupari mihi in præsentia curæ est, præterquàm quòd vtrunq; nutrimentum vna subministrat substantia. Cæterum pueris quoq; lactantibus lac solum sufficit, vt sit
Ioan. 4. & potus & alimentum. Ego, inquit Dominus, habeo manducare cibum quem vos nescitis. Cibus meus est, vt faciam voluntatẽ eius qui misit me. Videte alium cibum, qui

A qui quemadmodum lac allegoricè dictus est, nempe voluntas Dei. Quinetiam pro-
priæ passionis complementum abusiuè poculum appellauit, quando eam ebibere
ac exhaurire & perficere ipsum solum oportebat. Ita Christo quidem nutrimentum
erat paternæ voluntatis adimpletio. Nobis autem ipse Christus infantibus est ali-
mentum, qui Verbum cælorum exugimus. Hinc quærere Græcè dicitur μαστεῦσαι, *μαστεῦσαι à μα-*
quòd infantibus qui verbum quærunt, paterna benignitatis vbera lac suppeditant. *σθὸς, quod si-*
Præterea autem seipsum quoque panem cælorum Verbum fatetur. Non enim Mo- *gnificat ma-*
ses, inquit, dedit vobis panem de cælo, sed Pater meus dat vobis panem de cælo ve- *millam.*
rũ: panis enim ex Deo est qui de cælo descendit, & vitam dat mundo & panis quem Ioan. 6.
ego dabo caro mea est, quam ego dabo pro mundi vita. Hîc panis notandum est my
sterium, quòd ipsum dicat carnem, vt quæ per ignem resurgat, quemadmodum ex
corruptione & satione frumentum resurgit, atque adeo quæ etiam per ignem con-
sistat, in gaudium ecclesiæ, vt panis qui pinsitur. Sed hoc rursus à nobis dicetur aper
tius in libro de resurrectione. Quoniam autem dixit, Et panis quem ego dabo, ca-
ro mea est: caro autem sanguine irrigatur: sanguis autem vinum allegoricè dicitur:
sciendum est q̃ panis in vinũ temperatum minutatim coniectus, vinũ arripit, quod
est aqueũ autem relinquit: ita etiam caro Domini quæ est panis cælorum, ebibit san
guinem: eos qui ex hominibus sunt cælestes, ad incorruptionem enutriens, solas
autem illas carnales cupiditates ad corruptionem relinquens. Ita Verbum multis
modis allegoricè dicitur, & cibus, & caro, & nutrimentũ, & panis, & sanguis & lac.
B Omnia est Dominus, vt nos eo fruamur qui in ipsum credidimus. Ne quis verò alie-
num existimet, quòd nos sanguinem Domini lac allegoricè dicamus: an non enim
vinum quoque allegoricè dicitur? Qui lauat, inquit, in vino vestem suam, & in san- Genes. 49.
guine vuæ indumentum suum. In spiritu suo dicit se ornaturũ corpus Verbi, quem-
admodum scilicet suo spiritu enutriet eos qui Verbum esuriunt. Quòd autem san
guis sit, Verbũ, Abel iusti sanguis fert testimonium, qui Deum interpellat. Sanguis Ibidem 4.
enim vocem nũquam emittet, nisi sanguis Verbum intelligatur. Vetus enim iustus,
typus est noui iusti: & sanguis vetus qui interpellat, pro nouo sanguine interpellat.
Deũ autẽ alloquitur sanguis qui est Verbũ, quoniam significauit Verbũ qui erat pas-
surus. Cæterũ caro quoq; ipsa, & sanguis qui est in ipsa, veluti per quandã remune-
rationẽ, lacte irrigatur & augetur. Porrò autem eius quod conceptũ est formatio, fit
semine commixto ac contemperato cum puro, qđ relictũ est, excremẽto menstruę
purgationis. Quæ est enim in eo facultas, sanguinis naturam conglobans, quemad
modum coagulũ facit lac concrescere, formationis efficit substantiam. Facilè enim
producit bona temperatura: quæ autem sunt extrema, propensa sunt ad filiorum
sterilitatem. Iam enim in ipsa terra, quòd nimijs imbribus inundatur, semen abstra-
hitur, propter humoris autem siccitatem desiccatur. Qui est autem viscosus succus,
semen continet & producit. Iam verò nonnulli quoque animalis semen statuunt
esse spumam sanguinis in substantia, qui innato masculi calore in coniunctione
turbatus, ventilatus spumescit, & deponitur in venis seminarijs. Hinc Diogenes
C Apolloniates vult Venerem Gręcè esse dictam ἀφροδίσια. Ex his omnibus clarũ est san *ἀφροδίσια Ve-*
guinem esse humani corporis substantiam. Quinetiam qui est in vtero, primũ qui- *nus, aut coi-*
dem est lactea humidi coagulatio: deinde hæc coagulatio in sanguinem conuersa *tus ἀπὸ τοῦ ἀφροῦ*
caro efficitur: concreta autẽ in vtero à naturali & calido spiritu, à quo effingitur fœ-
tus, viuificatur. Sed etiam postquam est in lucem editus puellus, eodem sanguine a-
litur. Natura enim sanguinis est fluxus lactis, & fons nutrimenti lac est, quo etiam
mulier ostenditur & verè peperisse, & esse mater: per quod etiam beneuolentiæ a-
matoriũ accipit. Propterea ergo qui in Apostolo erat Sanctus spiritus, Domini vô-
ce vtens, dicit mysticè: Lac vobis potum dedi. Si enim in Christo regenerati sumus, 1. Cor. 3.
qui nos regenerauit, proprio lacte nutrit, nempe Verbo. Quicquid enim genera-
uit, ei quod generatur, protinus alimentum præbere, est consentaneum. Quemad-
modum autem regeneratio conuenienter, ita etiam nutrimentum fuit homini spi-
ritale. Omni ergo ratione nos in omnibus Christo coniungimur, & familiares red-
dimur, & in cognatione, per sanguinem eius quo redimimur: & in consensione, per
nutritionem quę ex verbo efficitur: & in incorruptione, per eius ipsius institutionẽ,
& vitæ agendæ rationem. Aluisse autem, inter homines sæpe affert plura amoris in-
citamenta, quàm procreasse liberos. Idem ergo sanguis & lac, est symbolum ac si-
gnum passionis & doctrinæ. Vnicuiq; ergo nostrûm, qui infantes sumus, licet Do- *Ibidem 3.*
mino gloriari & eloqui: Patre bono, æquè bono me sanguine glorior esse. Quod aũt 2. Cor. 3.

lac ex sanguine fiat per mutationem, iam quidem clarum est: verùm id etiam & ex pecoribus & ex bobus licet cognoscere. Hęc enim animalia tempore anni quod ver vocamus, cùm sit id quod ambit humidius, herbæq; & pascua sint melioris succi & magis roscida, sanguine prius implentur, vt ex venarum quæ incuruantur vasorum extensione licet cognoscere: ex sanguine autem lac funditur vberius: contrà autem ęstate, ab æstu adustus & arefactus sistit sanguis mutationem, & ideo minus mulgentur. Quinetiam lac quoq; habet maximè naturalem cum aqua cognationem, quemadmodum scilicet cum nutrimento spiritali lauacrum spiritale. Qui itaq; in prædicto lacte frigidæ aquæ parum exorbent, statim iuuantur: non finit enim lac acescere, quæ est illi cum aqua societas, dum non per repugnantiam aliquam, sed per coniunctam illi affectionem maturatur. Et quam habet verbum cum baptismo societatem, eandem habet lac cum aqua conuentionem: hoc enim solum ex humidis suscipit cum aqua mixtionem, recipiens expurgationem, quemadmodum baptismus propter remissionem peccatorum. Aptè etiam & appositè melle miscetur, idque rursus propter purgationem, cum dulci nutrimento. Verbum enim benignitate cõmixtum, simul & animi medetur affectionibus, & expurgat peccata, illudq; Melle dulcior emanat sermo, mihi videtur dictum esse de Verbo, qui est mel. Multis autẽ in locis Prophetia eum extollit super mel & fauum. Porrò autem miscetur quoq; lac vino dulci: est autẽ vtilis mixtio, veluti cõtemperata affectione ad incorruptionem: Lac enim à vino serescit, & finditur, & quicquid est eius adulterinum, id tanquam per aquæductum educitur. Eodem autem modo spiritalis fidei societas se habet in hominem patibilem. Serescere enim faciens carnales concupiscentias, hominem ad æternitatem contrahit, diuinis immortalem efficiens. Sed & multi adipe lactis, quod butyrum vocant, vtuntur ad lucernam, multiplicem Verbi misericordiam per hoc ænigma apertè significantes, vt quod solum iurè nutriat, & augeat, & infantes illuminet. Propterea enim Scriptura quoq; dicit de Domino: Cibarunt eos germina agrorum: suxerunt mel de petra, & oleum ex petra solida: butyrum boum & lac ouium, cum adipe agnorum, & quæ sequuntur, dedit eis. Quinetiam prædicens Propheta pueri generationem: Butyrum, inquit, & mel comedet. Mihi autem venit etiam in mentem admirari, quomodo audent quidam seipsos vocare perfectos & gnosticos, hoc est, cognitione præditos, plus de se quã Apostolus sentiẽtes, inflati, & exultantes, cùm ipse Paulus de se fateatur: Nõ quòd iam cœpi, vel iam perfectus sum: persequor autem si etiam comprehendã, propter quod & comprehensus sum à Christo. Fratres, ego meipsum nondum existimo comprehendisse. Vnum autem, eorum quæ retro sunt obliuiscens, ad ea autem quæ antè sunt me extendens, secũdum scopum persequor brauium supernæ vocationis in Christo Iesu. Et seipsum quidem perfectum existimat, quòd à priore vita liberatus sit: meliorẽ aũt persequitur, non tanquam in cognitione perfectus, sed tanquam id quod est perfectum desiderans. Et ideo subiungit: Quicunque ergo perfecti, hoc sentimus: perfectionem scilicet dicens renunciasse peccatis, & in fidẽ eius qui est perfectus, esse regeneratos, posteriorum peccatorum oblitos.

*Psal. 18.* — *Allusio est in* ἔλαιον & ἔλεος — *Deut. 32.* — *Philip. 3.*

## *Quis sit Pædagogus, & de eius Pædagogia,* Cap. VII.

QVONIAM ergo ostendimus, pueros nos omnes qui à Scriptura vocamur, nec id solum, sed etiam qui Christum secuti sumus, nos infantes dictos esse allegoricè: solũ aũt esse perfectum Patrem vniuersorũ: in ipso enim Filius, & in Filio Pater: restat vt nos ordinem sequentes, dicamus quis sit noster Pædagogus. Vocatur autem Iesus. Nonnunquã ergo seipsum pastorem vocat, & dicit, Ego sum pastor bonus, per metaphorã sumptã à pastoribus, qui ducũt oues. Qui puellos ducit intellectus pædagogus, qui est pastor curã gerens infantiũ. Infantes enim, simplices tanq̃ oues dicũtur allegoricè. Et erunt, inquit, omnes vnus grex, & vnus pastor. Pædagogus ergo iure Verbum dicitur, qui pueros nos ducit ad salutẽ. Euidentissimè ergo Verbũ dicit de seipso per Oseam. Ego autem sum præceptor vester. Pædagogia autem est diuina religio, quæ est doctrina diuini cultus, & eruditio ad assequendam veritatis agnitionẽ, & recta institutio, vitęq; agendæ ratio, quæ in cælum deducit. Pædagogia autem multis modis appellatur. Est enim pędagogia eius qui ducitur & discit: & pædagogia eius qui ducit & docet: & tertiò pædagogia est ipsa deductio & institutio: & quartò pædagogia est ea quæ docentur, vt præcepta. Est autem quæ est ex Deo pædagogia, veritatis

*Ioan. 10.* — *Ibidem.* — *Præceptor græcè* παιδευτής, *& est allusio ad* παῖδας *&* παιδαγωγεῖν

A tatis directio ad Dei contemplationem, & sanctarum actionum aperta ac euidens descriptio in æterna perseuerantia. Quemadmodum ergo phalangem dirigit dux exercitus, militum salutis curam gerens: & gubernator nauis clauum regit, volens seruare vectores: ita etiam pædagogus ducit pueros ad salutarem vitæ agendæ rationem, vt nostri ipsorum curam gerat. Et in summa, quæcunq; à Deo iustè nobis fieri petierimus, ea nobis aderunt si Pædagogo paruerimus. Quemadmodum ergo gubernator non semper cedit ventis, sed contrà proram obuertens, vniuersis resistit tēpestatibus: ita pædagogus legibus quæ sunt in hoc mundo nunquam cedit, nec eis puellum, tanquam cymbam, in beluinam & libidinosam viuendi rationem impellere permittit: sed solo secundo veritatis spiritu in altum sublatus, clauum pueri, aures inquam, fortiter tenet, donec inoffensum puellum in portum cælorum perduxerit. Patrius enim qui ab eis vocatur mos, momento temporis prętereit. Diuina autem vitæ institutio est in æternum permanens possessio. Achillis quidem pædagogum dicunt fuisse Phœnicem, & Crœsi filiorum Adrastum, Alexādri autem Leonidem, & Philippi Nausithoon. Sed Phœnix quidem insano mulierum amore tenebatur: erat autem exul Adrastus: Leonides verò Macedonis fastū non resecuit: nec Nausithous ebrietatis Pellæi curauit vitium. Neq; verò Alcibiadis scortationem Thrax Zopyrus reprimere potuit. Sed erat emptitiū mancipium Zopyrus: & Themistoclis liberorum pædagogus Sicinnus fuit ignauus famulus. Eum dicunt saltasse, & genus saltationis, quod Sicinnis græcè dicitur, inuenisse. Non nos latuerunt qui apud Persas Regij vocantur pædagogi, quos numero quatuor ex omnibus Persis optimatim *Pelleus Philippus, à Pella urbe Macedoniæ.*
B deligentes reges Persarum, suis præficiebant liberis. Sed solam sagittandi artem discunt eorum filij: postquam autem ad pubertatem peruenerint, cū sororibus & matribus, mulieribusq; tam vxoribus quàm concubinis innumerabilibus coëunt, tanquam capri ad Venereum congressum exercitati. Noster autem pædagogus sanctus Deus Iesus, qui est dux omnis humanæ naturæ, Verbum, ipse benignus & clemens Deus, est pædagogus. De ipso quidem alicubi dicit Spiritus sanctus in cantico: Populo in deserto sufficienter suppeditauit in siti æstus, in inaquoso ipsum circundedit, & eum erudijt & custodijt tāquam pupillam oculi, sicut aquila protegit nidum suum, & in pullis suis desiderauit: expansis alis suscepit ipsos, & super dorsum eos recepit: Dominus solus duxit ipsos, & non erat cum eis deus alienus. Apertè, vt mihi quidem videtur, Scriptura ostendit pædagogum, eius ductum enarrans. Rursus autem quando dicit, per propriam personam, seipsum fatetur pædagogum. Ego Dominus Deus tuus, qui eduxi te de terra Ægypti. Quis ergo habet potestatem inducendi & educendi? an non pædagogus? Is apparuit Abrahæ, & dixit: Ego sum Deus tuus, gratus esto coram me. Eum autem tanquam optimus pædagogus, vt sit fidelis puer, instruit dicens: Et sis irreprehensibilis. Et ponam testamentum inter me & te & semen tuum. Amicitiæ quæ præest & curam gerit, hîc est societas & communicatio. Iacob autem pædagogus videtur esse euidentissimé. Ei itaque dicit: Ecce ego tecum, custodiens te in vniuersa via quocunq; ambulaueris, & reducam te in terram *Deut.32. Mich.6. Genes.17. ἀνάρετα Ibid.28.*
C hanc, quoniam non te derelinquam donec fecerim quæcunq; locutus sum tibi. Cū eo autem colluctari quoq; dicitur. Remansit autem, inquit, Iacob solus, & luctabatur cum eo homo, nempe pædagogus, vsque ad matutinum. Hic erat homo qui agebat & ferebat, qui vnà exercebatur, & exercitatorem Iacob aduersum malignum inungebat. Quòd autem Verbum esset qui erat vnà cum Iacob aliptes & inunctor, & pædagogus humanæ naturæ, ex hoc sciri potest: Interrogauit, inquit, ipsum, & dixit ei: Enuncia mihi quod sit nomen tuum. Et dixit: Cur interrogas nomen meum? Nomen enim nouum nouo populo reseruabat, nempe infanti. Adhuc autem erat innominatus Deus Dominus, vt qui nondum homo factus fuerat. Vocauit tamen Iacob nomen loci illius, Speciem Dei. Aspexi enim, inquit, Deum facie ad faciem, & salua facta est anima mea. Facies autem Dei, est Verbum, quo Deus illuminatur & cognoscitur. Tunc etiam nominatus est Israël, quando vidit Deum Dominum. Hic est Deus, qui est Verbum, qui pædagogus, qui ei postea rursus dixit: Ne timeas descendere in Ægyptū. Vide quomodo iustum sequitur pædagogus, & quomodo eum qui exercetur inungit, docens supplantare aduersarium. Hic ipse Mosen quoq; docet fungi pædagogi officio. Dicit enim Dominus: Si quis peccauit coram me, deleo eum de libro meo: nunc autem vade, & deduc populum hunc in locum quem dixi tibi. Hoc in loco est magister pędagogiæ. Reuera enim erat Dominus per Mosen pædagogus veteris populi, per seipsum autem, populi noui dux, *Ibid.32. Ibidem. εἶδος εἶδον Ibidem. Ibid.46. Exod.32.*

Ibidem. facie ad faciem. Ecce enim dixit Mosi: Angelus meus præcedit te: euangelicam & principalem Verbi potestatem repręsentans. Dominicam autem authoritatem ac dignitatem conseruans: Quo die, inquit, visitauero, inducam super ipsos peccatũ ipsorum. hoc est: Quo die iudex fuero constitutus, reddam quæ eorum peccatis respondeant. Idem enim pædagogus & iudex, eos qui non obedierunt iudicat. Eorum autem peccatum benignum Verbum nequaquam silentio præterit. Arguit autem, vt
Ezech.18. ducantur pœnitentia. Mauult enim Dominus pœnitentiam peccatoris, quàm mortem. Nos autem, cùm tanquam infantes aliorum peccata auditione acceperimus, minarum metu ne similia patiamur, ab eiusmodi delictis abstinemus. Quídnam fuit ergo quod peccarunt? Quòd in ira sua homines occiderunt, & sua cupiditate tauro neruos præciderunt, execranda est ira ipsorum. Quis ergo nos eo benigniùs &
Rom.3. humanius erudierit? Prius itaq; veteri populo vetus erat testamentum, & Lex cum metu populum erudiebat, & Verbum erat angelus: nouo autem & recenti populo nouum ac recens testamentum datum est, & Verbum fuit genitum, & metus in dilectionem conuersus est, & mysticus ille Angelus Iesus paritur. Hic enim ipse pæda
Deut.6. gogus, tunc quidem, Dominum Deum timebis, dicebat: nobis autem per hoc suasit,
Matth.22. Diliges Dominum Deum tuum: & nobis præcipit, Cessate ab operibus vestris pec-
Esa.1. catorum veterum, discite benefacere: Declina à malo, & fac bonum: Dilexisti iusti-
Psal.36. tiam, odio habuisti iniquitatem. Hoc est meum nouum testamentum veteri litera
Ibid.44. impressum. Non est ergo exprobranda Verbi nouitas. Sed Dominus quoque dicit
Hier.1. in Hieremia: Ne dicas quòd sum iunior. Antequam te formarim in vtero noui te, B
& antequam egredereris è matrice sanctificaui te. Hæc apud nos potest prophetia significare eos, qui ante mundi constitutionem Deo ad fidem sunt cogniti, nomine
Ibidem. autem sunt infantes propter impletam nuper Dei voluntatem, quatenus ad vocationem & salutem recenter nati sumus. Quocirca etiam subiungit: Prophetam ad gentes posui te: dicens eum oportere prædicere, non videri esse probro recentioris appellationem ijs qui videntur infantes. Lex autẽ est vetus gratia per Mosen à Ver-
Ioan.1. bo data. Quocirca dicit quoque scriptura, Lex per Mosen data est: non à Mose, sed à Verbo quidem, verùm per Mosen seruum suum; & ideo fuit ad tempus. Æterna autem gratia & veritas per Iesum Christum facta est. Videte verba scripturæ. De lege quidem, data est, inquit, tantùm: Veritas autem, quæ est gratia Patris, est æternum Verbi opus: & non dicitur dari, sed per Iesum fieri, sine quo factum est nihil. Iam verò Moses propheticè perfecto cedens pædagogo, nempe Verbo, & nomen & pædagogiam prædicit, & populo cõmendat pædagogum, præceptis ei obedientiæ tra
Deut.18. ditis: Prophetam vobis suscitabit, inquit, Deus tanquam me de fratribus vestris: per Iesum Naue filium, Iesum Dei significans: nomẽ enim Iesu, quod in lege prædicabatur, erat adumbratio Domini. Subiungit itaq;, quod populo vtile futurum erat consulens: Ipsum audietis, dicens. Et homo qui non audierit Prophetam hunc, ei minatur. Tale nobis prædicit nomen salutaris pædagogi, propterea ei virgam adiungit prophetia, virgam disciplinæ, imperij, & potestatis: vt quibus Verbum suadens & admonens non medetur, eis minæ medeantur. Quibus aũt non medentur minæ, eis C
Esa.11. virga medebitur. Quibus verò virga nõ medetur, eos ignis depascit. Egredietur, inquit, virga de radice Iesse. Vide pædagogi curam, sapientiam, & potestatem. Non se-
Psal.117. cundum opinionem, inquit, iudicabit, neq; secundum loquelam arguet, sed iudicabit humili iudicium, & arguet peccatores terræ. Et per Dauid: Castigans castigauit me Dominus, & morti non tradidit me. A Domino enim castigari, & tanquã à pęda
Ibid.2. gogo erudiri, est à morte liberari. Et dicit per eundem prophetam: In virga ferrea pa sces eos. Ea quoq; motus Apostolus in epistola ad Corinthios: Quid vultis, inquit,
1.Cor.4. in virga veniam ad vos, an in dilectione & spiritu lenitatis? Sed etiam, virgam poten
Psal.119. tiæ emittet Dominus ex Sion, dicit per alium prophetam. Pædagogica autem hæc
Ibid.22. virga tua & baculus tuus me consolata sunt, dixit aliquis alius. Hæc est pædagogi potestas, veneranda & grauis, consolatoria, salutaris.

*Aduersus eos qui existimant non esse bonum eum qui iustus est,* Cap. VIII.

HIC exoriuntur aliqui, qui dicunt non esse bonum Dominum, propter
Ecclesi.21. virgã & minas, & timorem: neq; scripturam audiẽtes quæ sic dicit: Et qui timet Dñm, cõuertetur ad cor suũ. & obliti, quod est maximũ, eius benignitatis, quòd propter nos homo factus sit. Atqui propheta eum
Iob 10. familiarius precatur per hæc verba: Memento nostrî, quoniam puluis sumus

A sumus, hoc est, Miserere nostri, quoniam carnis imbecillitatem tu ipse eam passus, expertus es. Ea ergo ratione optimus, & nulli reprehensioni obnoxius pædagogus est Dominus, qui propter insignem benignitatem & clementiam vniuscuiusq; hominum naturæ miseretur. Nihil enim esset, quod odio habet Dominus: non enim aliquid quidem odit, vult aũt id esse quod odit. Neq; verò vult aliquid non esse, est autem causa vt sit id quod vult non esse. Sed neq; nõ vult quidẽ aliquid nõ esse, id verò est. Si quid ergo odio habet Verbũ, id vult nõ esse. Nihil est aũt, cuius nõ causam Deus, quod id sit, præbeat. Nihil ergo odio habet Deus. Sed neq; Verbũ: vtrunq; enim vnũ est, nempe Deus. Dixit enim: In principio erat Verbũ, & Verbum erat in Deo, & Deus erat Verbum. Quòd si nihil odio habet eorũ quæ ab ipso facta sunt, restat vt id diligat. Longè autem plus quàm alia iurè hominem diliget, qui est pulcherrimũ animal eorum quæ ab ipso effecta sunt, pietateq; ac religione præditũ. Hominem ergo diligit Deus, ergo Verbũ etiã hominẽ diligit. Qui aũt aliquid amat, ei vult prodesse. Quod aũt prodest, eo quod non prodest vtiq; fuerit præstantius. Præstantius aũt bono nihil est, prodest ergo quod bonũ est. Deum aũt esse bonũ in confesso est. Deus ergo prodest. Bonum aũt quatenus bonum est, nihil aliud facit quàm prodest. Deus ergo prodest in omnibus. Et non homini quidem in aliqua re prodest? nõ autem eius curam gerit? Neq; curam quidem eius gerit? non autem est etiam de eo solicitus? Est enim præstantius quod sua sponte prodest, quàm quod non sua sponte. Deo autem nihil est præstantius. Nec est aliud sua sponte prodesse, quàm esse de homine solicitum. Deus ergo curam gerit hominis, & de eo est solicitus. Id aũt reipsa ostendit, cũ

*Psal.102.*

*Sap.11.*

*Ioan.1.*

*Matth.6.*

B Verbo eum erudiat, qui est verus ac germanus coadiutor Dei in homines beneuolẽtiæ. Bonum autem esse dicitur, non eò quòd virtutem habeat: quandoquidẽ iustitia quoq; bonum esse dicitur, non quòd habeat virtutem, ipsa enim est virtus, sed quòd ipsa ex se & per se bona sit. Dicitur etiam alio modo bonum, id quod est vtile, nõ eò quòd delectet, sed eò quòd prosit. Quæ quidem omnia est iustitia, & vt virtus, & vt per se eligenda bonum, & vt quæ nõ delectet. Non enim iudicat ad gratiam, sed pro vniuscuiusq; meritis distribuit. Id autem quod est vtile, sequitur id quod prodest. Per omnes ergo partes per quas bonum dijudicatur, iustitia quoq; boni figuram ac characterem suscipit: sunt inter se æqualia & similia. Bonum est ergo iustitia. Quomodo ergo inquiunt, si Dominus homines diligit, & bonus est, irascitur, & punit? Necesse est ergo de ijs quàm fieri poterit breuissimè disserere: est enim hæc tractatio aliqua ex parte conducibilis, ad rectam puerorum eductionem necessarij auxilij locum tenens. Multæ enim animi affectiones curantur supplicio, & præceptorum acerbiorum iussu, atq; etiam per doctrinam nonnullarum speculationum. Est autem reprehensio veluti quædam chirurgia affectionum animæ. Abscessus autem, veritatis affectiones, quas sectione diuidentem oportet coarguere. Medicamentorum autem potioni aut applicationi est similis probri insimulatio, quæ resoluit affectiones quæ iam occalluerunt, impudicæq; & libidinosæ vitæ sordes expurgat, fastusq; ac superbiæ carnes quæ excreuerunt, exæquat, sanum ac verum hominem reparans ac

*Abscessus græcè est ἀπόστασις, hoc est apostema, siue humorum abscessus.*

C restituens. Iam verò admonitio est veluti quædam diæta ægrotantis animæ, quæ sunt sumenda consulit, & quæ non sunt, prohibet. Hæc autem omnia tendunt ad salutem & sanitatem æternam. Quinetiam dux exercitus, cùm in eos qui maleficium admiserunt, & mulctis pecuniarijs, & pœnis quæ cum vinculis & extrema ignominia ad corpus vsq; peruadunt, animaduertit, & nonnullos etiam nonnunquam morte punit, finem habet id quod bonum est, vt qui eius imperio parent duces admoneantur. Ita etiam magnus ille Imperator vniuersorum dux Verbum, eos qui præter suam legem effrenatiori impetu efferuntur, & aurigæ non parent, vt à seruitute & errore, & ab aduersarij captiuitate liberentur, vt animi perturbationes coërceant admonens, ad sacram reipublicæ concordiam eos pacificè deducit. Quemadmodum ergo orationi suasoriæ adiunctum est genus exhortatorium & consolatorium, ita etiam laudatorio vituperatorium & exprobratorium. Est autem hoc genus ars quędam abstersoria. Beneuolentiæ autem, non odij signum est, reprehendere. Ambo enim probrum obijciunt, & amicus & inimicus: sed inimicus quidem irridens, amicus autem benè volens. Non ergo propter odium Dominus homines maledictis incessit, quos cùm propter nostra ipsorum scelera licuisset perdere, ipse pro nobis passus est. Pædagogus enim, vt qui sit bonus, admodum artificiosè vel per maledictũ ad vituperandum irrepit, maledicto tanquam flagello mentis socordiam excitans. Rursus autem eosdem vicissim conatur adhortari. Quos enim laus non mouit,

*Heb.12.*

eos incitauit vituperatio: & quos tanquam mortuos vituperatio non excitauit ad salutem, eos ad veritatem expergefacit maledictum. Flagella enim & maledicta in omni tempore sapientiæ. Qui testam conglutinat, & stultum docet, ad sensum, inquit, terram ducit, & eum qui est desperatus acuit ad prudentiam. Propterea apertè subiunxit: Excitans dormientem è profundo somno, qui est ex alijs maximè morti similis. Porrò autem ipse de seipso apertissimè exponit, multiplicem multisq; modis vtilem culturam allegoricè significans, quando dixit: Ego sum vitis vera, & Pater meus agricola est. Deinde rursus subiunxit: Omnis palmes in me non ferens fructum, tollit ipsum, & quicquid fructum fert expurgat, vt amplius fructus ferat. Syluescit enim vitis nisi putetur: ita etiam homo. Luxuriantes autem adnatasq; propagines, Verbum, qui est gladius, expurgat, cogens appetitiones ne fructum ferre desiderent. Eorum autem qui peccant increpatio habet scopum salutem, Verbo se concinnè applicante pro proprijs vniuscuiusq; moribus, & alicubi quidem vehementi ac intenso, alicubi autem laxo ac remisso. Apertissimè itaq; per Mosen dictum est: Bono este animo, vt vos tentet accessit Deus, vt sit timor eius in vobis, vt non peccetis. Hinc pulchrè quoq; Plato cùm didicisset: Omnibus enim, inquit, reuera bene fit qui dant pœnas: iuuantur enim dum eis punitis melior euadit anima. Si qui autem corriguntur, ijs à iusto bene fit. etiam ex sententia Platonis in confesso est bonũ esse quod iustum est. Ipse ergo timor prodest, & vt hominib. bono esset inuentus est: quoniam spiritus timens Dñm viuet. Spes enim est in eũ qui ipsos saluos facit. Hic ipse aũt, Verbum inquam, qui pœnas imponit, est iudex. De quo dicit etiam Esaias: Dominus tradidit ipsum peccatis nostris, peccatorum scilicet correctorem & directorem: & ideo solus hic potest peccata remittere, noster à Patre vniuersorum constitutus Pædagogus, qui solus ab obedientia potest discernere inobedientiam. Qui autẽ minatur, apertè ostendit se nihil mali velle facere, neq; ea quæ minatur exequi, sed incusso timore impetum ad peccata reprimit, & suam in homines beneuolentiam ostendit, adhuc differens, & ostendens qualia sunt passuri si peccatores permaneãt. Non autem sicut serpens statim infixus momordit. Bonus est ergo Deus. Atque ipse quidem Dominus sermone ante factum sæpe vtitur. Sagittæ, inquit, meæ conficient ipsos, consumpti fame & morsu auium, & neruorum in ceruicem conuulsio immedicabilis. Dentes beluarum immittam in ipsos cum ira serpentium super terrã, foris filijs eos orbabit gladius, & ex promptuarijs metus. Non enim Deus irascitur, vt nonnullis visum est, sed per suam in homines beneuolentiam à plurimis quidem abstinere hortatus est, omnia autem quæ sunt agenda indicauit. Bona aũt est hæc ars, terrere ne peccemus. Timor enim Domini peccata extrudit. Qui est aũt sine timore, non poterit iustificari, inquit Scriptura. Deus autem non ex ira irrogat supplicium, sed quòd iustum est considerat, nempe quòd propter nos expediat prætermitti quod iustum. Vnusquisq; autem nostrûm supplicium eligit, cùm spontè peccat. culpa est aũt eius qui eligit: in Deum autem culpa conferri nequit. Si autem iniustitia nostra Dei iustitiam commendat, quid dicemus? Nunquid est Deus iniustus qui infert iram? Absit. Dicit itaq; minans: Acuam gladium meum, & apprehendet iudicium manus mea, & ipse retribuam ius inimicis, & ijs qui oderunt me retribuam. Inebriabo sagittas meas sanguine, & gladius meus comedet carnes à sanguine vulneratorum. Hîc ergo apertum est, quòd qui non sunt inimici veritati, neque Verbum oderunt, suam ipsorum salutem odio non habuerint, inimicitiarũ autem pœnas effugerint. Corona itaq; sapientiæ, inquit Sapientia, timor Domini. Apertissimè autem per Amos prophetam sui consilij rationem Verbum significauit: Euerti vos, dicens, sicut Deus euertit Sodomam & Gomorram, & fuistis sicut torris extractus ab igne, & ne sic quidem ad me conuersi estis, dicit Dominus. Videte quomodo Deus propter suam bonitatem requirit pœnitentiam: & in ipsa minarum intentione tacitè ostendit suam in homines beneuolentiam: Auertam, inquit, faciem meam ab ipsis, & ostendam quid erit ipsis. Vbi enim Domini facies respicit, illic est pax & exultatio. Vbi autem faciem auertit, ingreditur vitium. Non vult ergo mala intueri: bonus enim est: sed cùm ipse oculos auertit, sua sponte propter humanam infidelitatem ortum habet vitium. Vide ergo, inquit Paulus, bonitatem & seueritatem Dei. In eos quidem qui ceciderunt, seueritatem: in te autem bonitatem, si permanseris in bonitate, hoc est, fide in Christum. Eum autem qui bonus est, quatenus bonus est, sequitur odium vitij. Et ideo fatebor quidem eum castigare infideles. Castigatio enim est bono & vtilitati eius qui castigatur: est enim eius qui

resistit

[Marginal notes: Eccles. 22. — Ioan. 15. — Deut. 8. — Esa. 43. — Deut. 32. — Eccles. 1. — Rom. 3. — Deut. 32. — Eccl. 1. — Amos 4. — Rom. 11.]

[Margin letters: A, B, C]

A resistit correctio: vlcisci autem non vult. Est autem vltio, retributio mali quod emittitur ad vtilitatem eius quod vlciscitur. Vlcisci autem non desiderauerit, qui pro ijs qui nobis faciunt iniuriam nos orare docuit. Atqui quòd bonus sit Deus omnes cõfitentur. Quòd autem idem quoque Deus iustus sit, non est mihi pluribus verbis opus, si euangelicam Domini vocem adduxero. Vnum quidem ipsum dicit: Vt omnes vnum sint, sicut tu Pater in me, & ego in te, vt & ipsi in nobis vnum sint: vt etiã mundus credat quòd tu me miseris. Et ego gloriã quã dedisti mihi, dedi eis, vt vnũ sint, sicut nos vnum sumus: ego in ipsis, & tu in me, vt sint perfecti in vnum. Vnum aũt est Deus, & vltra vnum, & supra ipsam vnitatem. Et ideo particula illa, Tu, demonstratiuam habens emphasim, eum qui verè solus est, qui fuit, & est, & erit, Deum ostendit. In quibus tribus temporibus ponitur vnum nomen, nempe Ens. Quod autem is ipse qui solus Deus est, ipse quoq; solus & verè iustus sit, in ipso testabitur Dominus euangelio, dicens: Pater, quos dedisti mihi, volo vt vbi ego sum, illi quoq; mecum sint, vt contemplentur gloriam meam quam dedisti mihi, quòd dilexisti me ante constitutionem mundi. Pater iuste, & mundus te non cognouit, ego autem te cognoui, & illi cognouerunt, quòd tu me miseris, & notum eis feci nomẽ tuum, & notum faciam. Hic est qui reddit peccata patrum in filios ijs qui oderunt, & faciens misericordiam ijs qui diligunt. Qui enim hos quidem statuit à dextris, illos verò à sinistris, quatenus quidem Pater qui bonus est mente concipitur, id solum quod est bonus appellatus est: quatenus verò qui Filius est verbum eius in Patre est, iustus appellatur ex mutua quæ est inter se relatione & habitudine, vt sit dilectionis æqualitate

B dimensum nomen potentiæ: Virum, inquit, secundum opera sua iudicabit, cùm bonę statêre iustitię faciem Deus nobis Iesum notum fecerit, per quem, tanquam ex æquali trutina, Deum cognouimus. De eo quoq; apertè dicit Sapientia: Misericordia enim & ira cum ipso. Dominus enim his vtrisq; solus est potens, iram effundens ad propitiationem ex magna sua misericordia. Ita etiam eius reprehensio: misericordiæ enim & reprehensionis scopus salus est eorum qui reprehenduntur. Iam verò quòd bonus sit idem Deus & Pater Domini nostri Iesu Christi, idem Verbum rursus confitebitur, dicens eum esse bonum in ingratos & in improbos: & præterea dum dicit: Estote misericordes, sicut Pater vester est misericors. quinetiam quando apertè dicit: Nemo bonus nisi Pater meus qui est in cælis. Deinde rursus: Pater, inquit, solem suum splendere facit super omnes. hîc notandum est, quòd Patrem suum qui bonus est, opificem quoque & creatorem esse fatetur. Quòd autem iustus sit creator, nulla est controuersia. Et rursus: Pater meus, inquit, pluit super iustos & iniustos: & quatenus quidem pluit, est aquarum & nubium opifex: quatenus autem super omnes, iustè est & cum virtute eius æquilibrium. Tanquam bonus autem, super iustos & iniustos, similiter. Apertissimè ergo vnum & eundem esse Deum ratiocinatione colligimus, hoc modo: Videbo cælos opera digitorum tuorum: &, Qui creauit cælos, in cælis habitat: &, Cælum sedes tua, Spiritus sanctus cecinit. Dominus autem dicit in precatione: Pater noster qui es in cælis. Cæli autem sunt eius qui

C mundum creauit. Contradici ergo non potest, quin Dominus sit filius opificis. Quòd si apud omnes in confesso est iustum esse creatorem: opificis autem filius est Dominus, eius ergo qui est iustus, filius est Dominus. Quocirca Paulus quoq; dicit: Nunc autem sine lege iustitia Dei manifestata est. Et rursus, vt magis Deum cẽseas: Iustitia autem Dei per fidem Iesu Christi in omnes credentes. Non est enim distinctio. Et pręterea ferens testimonium veritati paulò pòst subiũgit: Intollerantia Dei ad ostensionem quòd sit idem iustus, & iustificans eum qui est ex fide, Iesus. Quod autem iustum est id bonum esse, nosse videtur qui dicit: Quare lex quidem sancta, & præceptum sanctum, & iustum, & bonum: in eadem potestate vtrunque nomen collocans. Atqui nullus est etiam bonus nisi Pater eius. Idem est ergo Pater eius, qui cùm vnum sit, multis significatur potestatibus. Et hoc sibi volebat illud: Nemo nouit Patrem, qui quidem erat ipse omnia priusquam veniret Filius: vt sit veritate apertum, quòd qui est vniuersorum Deus, vnus solus sit bonus, iustus, opifex, Filius in Patre, cui gloria in secula seculorum, amen. Sed neq; à salutari verbo est alienum, dum cura aliquorum ab eo geritur: maledicere etenim, hoc quoque est medicamentum diuinæ benignitatis, ex quo effloresci t rubor pudoris, & ad peccandum subit verecundia. Si enim oportet vituperare, oportet etiam maledicere. Quo in loco animam, quæ dolere desijt, tempus est non letaliter sauciare, sed salubriter exiguo dolore lucrantem à morte æterna liberationem. In pædagogia autem eius magna

Margin notes: τιμωρεῖσθαι; Matth. 5.; Ioan. 17.; ὤν; Ibidem.; Exod. 20.; Prouerb. 31.; Sapien. 6.; Ecclesi. 5. 18.; Matth. 5.; Marc. 10.; Matth. 5.; Ibidem.; Psal. 8.; Ibid. 2.; Ibid. 10.; Ibid. 102.; Esa. 62.; Matth. 6.; Rom. 3.; Ibid. 7.; Matth. 11.

est sapientia,& varia est eius administrationis ratio ad salutem. Bonis enim fert te- A
stimonium pædagogus. Vocatos autem ad meliora euocat, & eos qui ad iniuriã fa-
ciẽdam properant,ab impetu auertit:iubet autem ad vitam meliorem traduci. Non
est enim alterum,quod est absque testimonio, ab eo cui fertur testimonium: & gra-
tia est maxima,quæ proficiscitur ex testimonio. Porrò autẽ iræ quoq; affectio, si i-
ra vocanda sit eius admonitio, est benignitatis & beneuolentiæ in homines, cùm
Deus ad affectiones descendat propter hominem, propter quem Verbum Dei ho-
mo factus est.

*Quòd eiusdem est potestatis & benefacere, & iustè punire: in quo etiam dicitur, quis sit modus Verbi Pædagogiæ,* Cap. IX.

OMNIBVS ergo viribus,humanæ naturæ pædagogus,diuinum nostrũ
Verbum vtens omnibus sapientiæ machinis, infantes conseruare ag-
gressus est,admonens,reprehendens, increpãs,arguẽs,minans,sanãs,
promittens,gratificãs,multis quibusdã veluti frenis à ratione alienas
humanæ naturæ appetitiones alligans. Vt ergo paucis dicam, in nos
ita se gerit Dominus,vt nos in nostros filios. Sunt tibi filij,castiga eos, suadet sapien
Sap.7. tia,& inflecte eos à iuuentute sua. Sunt tibi filiæ,attende corpori earum, & ne vul-
tum tuum apud eas exhilaraueris. Atqui liberos nostros, filios & filias,valde & su-
pra quodcunque aliud amamus. Quoniam autem qui ad gratiam quidem loquun-
tur,parum diligunt id quod molestia non afficiunt: qui autem ad vtilitatem acerbi B
sunt,etsi in præsentia molesti sint,in futurum postea seculum beneficio afficiunt. nõ
præsentem voluptatem Dominus,sed futurã spectauit delectationem. Benignè au-
tem eius pædagogiæ modum persequamur cum prophetico testimonio. Est ergo
admonitio,curam gerens vituperatio,mentem inserens. Talis est pædagogus admo
Matth.23. nitor,vt quando dicit in Euangelio: Quoties volui congregare filios tuos, sicut gal-
Hier.3.32. lina congregat pullos suos, & noluistis. Et rursus scriptura admonet: Et mœchati
sunt,dicens,in lignum & lapidem,& suffumigarunt Baal. Maximum autem signum
est eius benignitatis,quòd licet apertè sciret impudentiam populi qui recalcitrabat
Cap.2. & resiliebat,apertè tamen adhortatur ad pœnitentiam, & dicit per Ezechiel: Fili ho
minis in medio scorpiorum tu habitas: veruntamen loquere ipsis si fortè audierint.
Exod.3. Quinetiam Mosi dicit: Vade & dic Pharaoni vt emittat populum: ego autem noui
quòd non emittet ipsos. Vtrunque enim apertè ostendit, & Deum præsciuisse futu-
rum,& eius benignitatem libero animi arbitrio largiri occasionem pœnitentiæ. Ad
Cap.29. monet etiam per Esaiam,populi curam gerens,quãdo dicit: Hic populus labijs me
Matth.15. honorat,cor autem eorum longè est à me. Hoc est vituperatio arguens: Frustra autẽ
ἐν παραλλήλαις me colunt,docentes doctrinas mandata hominum. Hîc curatio,quæ peccatum ma-
nifestauit,eadem ratione salutem ostendit. Increpatio autem est propter turpia vi-
Cap.5. tuperatio,ijs quæ sunt honesta,coniungens. Hoc ostenditur per Hieremiam: Equi
in fœminas insanientes facti sunt: vnusquisque ad vxorem proximi sui hinniebat.
Nunquid propter hæc non visitabo,dicit Dominus,vel in populo tali non vindica- C
bit anima mea? Coniungit autem vbiq; timorem,quòd timor Domini sit principiũ
Cap.4. sensus. Et rursus per Osee: Non visitabo, inquit,ipsos? quoniam ipsi cum meretrici-
bus commiscebantur,& cum initiatis sacrificabant,& populus qui intelligebat con
iungebatur cum meretrice. Eorum peccatum ostendit apertius, eos intelligere pro
fitens,vt qui sua sponte & consultò peccarent. Intelligentia autem est animæ ocu-
lus,& ideo Israël est qui Deum videt: hoc est,qui Deum intelligit. Querela autem est
vituperatio,vtpote eorum qui cõtemnunt vel negligunt. Hoc modo pædagogiæ v-
sus est per Esaiam,dicens: Audi cælum & ausculta terra, quoniam Dominus locu-
Cap.1. tus est. Filios genui, & exaltaui, ipsi verò me nihili duxerunt: Nouit bos possessorem,
& asinus præsepe Domini sui,Israël autem me non cognouit. Quomodo enim non
est indignum,si qui nouit Deum,non cognoscat Dominum? sed bos quidem & asi-
nus,quæ sunt inertia & stulta animalia, nouerint eũ qui ipsa alit, Israël autẽ ijs à ra-
tione alienior inueniatur? Et cũ per Hieremiã pluribus de populo questus esset,sub
Hier.1.& 2. iungit: Et me reliquerunt,dicit Dominus. Insectatio autẽ est inuectiua increpatio,
ἐπίπληξις. vel inuehens vituperatio. Hoc etiã medicamento vsus est pædagogus per Esaiam,
Esa.30. dicens: Væ filij defectores. Hæc dicit Dominus: Fecistis consiliũ non per me,& pa-
cta conuenta non per spiritũ meũ. Acerbissimo autẽ constipamento in singulis vti-
tur,nẽpe metu,per ipsum simul aperiens & conuertens populũ ad salutẽ: quemad-
modum

A modum lanæ quoq; quæ tinguntur solent constringi ac cōstipari, dum parantur, vt colorem melius suscipiant. Redargutio autem est peccati prolatio, id in medium afferens. Eo tanq̃ maximè necessario pædagogiæ modo vtitur, propterea quòd eneruata, & soluta sit permultorum fides. Dicit enim per Esaiam: Dereliquistis Dominũ, Esa.30.& & ad indignationem concitauistis sanctum Israëlis. Dicit etiã per Hieremiam: Stu- 63. puit cælum propter hoc, & terra multò magis horruit: quoniã duo mala fecit hic po Hier.2. pulus: me dereliquerunt fontem aquæ viuæ, & foderunt lacus contritos qui aquã continere non poterunt. Et rursus per eundem: Peccatum peccauit Hierusalem, propterea in commotionem facta est. Omnes qui glorificabant eam, spreuerunt ipsam, quoniam viderunt eius turpitudinem. Redargutionis autem acerbitatem & vehementiã per Solomonem consolans, dicit, tacitè significans pædagogiæ in filios amorem: Fili mi, disciplinam Domini ne despicias, neque ęgreferas cum ab ipso Prouer.3. corriperis. Quem enim diligit Dominus, castigat: flagellat autem omnem filium quem recipit: quoniam homo peccator fugit reprehensionem. Cōsequenter ergo dicit scriptura: Increpet me iustus, & castiget, oleum autem peccatoris non impin- Psal.140. guet caput meum. Castigatio autem est vituperatio, quæ affert intelligentiam. Nec φρένωσις ab hoc quidem pædagogiæ modo abstinuit, sed dicit per Hieremiã, Quousq; clama Cap.11. bo, & non exaudient? ecce aures incircuncisæ eorum. O' beatam tolerantiam. Et Cap.9. rursus per eundẽ: Incircuncisæ omnes gentes: hic autem populus est incircuncisus corde, quoniam populus est inobediens: filij, inquit, quibus non est fides. Visitatio ἐπισκοπὴ

B autem est vehemens redargutio. Vsa est hoc genere in Euangelio: Hierusalem, Hie- Matth.23. rusalem quæ occidit prophetas, & lapidat eos qui ad ipsam missi sunt. Nominis autem conduplicatio effecit vt esset grauis reprehensio. Qui enim Deum nouit, quo modo Dei ministros persequitur? Propterea, inquit, relinquitur domus vestra deserta. Dico enim vobis: Deinceps non videbitis me donec dixeritis, Benedictus Ibidem. qui venit in nomine Domini. Si enim nōn suscipitis benignitatem, cognoscetis potentiam. Maledictum autem est intensa & vehemens oratio. Pro medicamento autem vsa est maledicto dicens per Esaiam: Væ gens peccatrix, filij iniqui, populus Esa.1. plenus iniquitatibus, semen malum. Et in euangelio per Ioannem: Serpẽtes, inquit, Matt.3. genimina viperarum. Accusatio autem est vituperatio eorum qui faciunt iniuriam. Hac pædagogiæ ratione per Dauid vsus est, dicens: Populus quem non cognoui Psal.17. seruijt mihi, & in auditu auris obedijt mihi. Filij alieni mentiti sunt mihi, & claudicauerunt à vijs suis. Et per Hieremiã: Et dedi ei libellũ repudij, & non timuit incom Hier.3. positus Iuda. Et rursus: Et me nihili fecit domus Israël, & domus Iudæ mentita est Ibid.2.8. Domino. Expostulatio autem est, quæ artificiali auxilio clam fit vituperatio, quæ μεμψιμοιρία ipsa quoque saluti prouidet sub integumento. Ea autẽ vsa est per Hieremiam, Quo- Thren.1. modo sedit sola ciuitas, quæ fuerat plena populis, facta est tanquam vidua: quæ imperabat regionibus, facta est sub tributo: flens fleuit in nocte. Obtrectatio autem est obtrectans vituperatio. Et eo vsus est auxilio diuinus pędagogus, dicens per Hieremiam: Fuit tibi aspectus meretricis, impudens fuisti erga omnes, & non in domum Hier.3.

C vocauisti me & patrem & principem virginitatis tuæ, & pulchra meretrix & iucunda, dux venenorum. Artificiose admodũ cùm virgini sub nomine meretricio insultasset, rursus ad honestatẽ meam adhortans euocat. Indignatio autem est legitima increpatio, seu increpatio filiorum qui plus quàm oportet extolluntur. Ea pædagogia per Mosen vtitur, dicens: Filij reprehensibiles, generatio praua & peruersa: hæc Deut.32. Domino retribuitis? Hic populus stultus & non sapiens: non hic ipse Pater possedit te? Et per Esaiam dicit: Principes tui non obediunt, socij furum, diligentes munera, persequentes retributionem, orphanis non iudicantes. Et vt in summa dicam, eius in incutiendo timore artificium, est fons salutis. Boni est autem, dare salutem. Misericordia autem Domini est super omnem carnem, dum arguit, castigat & docet, sicut pastor gregem suum. Eorum qui disciplinam suscipiunt miseretur, & eos qui sunt ardenti studio sibi conglutinat: & hac ducendi ratione sexcenta millia peditum, qui coacti erant, in ea quam habebant cordis duritie flagellans, miserans, verberans, medens, in miseratione & disciplina custodijt. Prout enim eius est multa misericordia, ita etiam eius reprehensio. Pulchrum enim quidem certè est non peccare: bonum est etiam vt & qui peccat ducatur pœnitentia: quemadmodum optimum quidem est semper esse sanum: bonum autem est etiam à morbo conualescere. Hac etiam ratione per Solomonem pręcipit: Tu quidem virga percute filiũ tuum, Prouerb.23. animã autem eius à morte libera. Et rursus: Ne parseris castigare puerum: virga autẽ

ipsum corrige, nō enim morietur. Reprehensio enim & increpacio, sicut vel ipsum A
ἐπίπληξις à Græcū nomen nempe ἐπίπληξις significat, sunt ipsi ictus animæ, qui peccata castigant,
πλήττω, quod & mortem prohibent: ad moderationē aūt & temperantiā deducunt eos qui ferun-
est percutio. tur ad intemperātiam. Hac quidem certè ratione Plato cùm sciret reprehensionem
maximas esse vires correctionis, & præcipuam purgationem, cōuenienter ei quod
dictū est, eum qui est maximè impurus, vult ineruditum & turpē euasisse, propter-
ea quòd reprehendi non posset: quemadmodum purissimum & pulcherrimum
eum esse conueniebat, qui futurus esset beatus. Si enim magistratus ac principes nō
sunt timori bono operi, quomodo qui natura bonus est Deus, ei qui non peccat erit
Rom. 13. timori? Si autem malum facies, time, vt dicit Apostolus. Et ideo ipse quoque Apo-
Ibidem. stolus ad similitudinem Domini sigillatim ecclesias peracriter incessit, suæ con-
Gal. 4. scius libertatis, & imbecillitatis eorum qui audiebant. Galatis itaq; dicit: Inimicus
factus sum, vera vobis dicens? Quemadmodum autem qui sani sunt, non opus ha-
bent medico, quatenus sunt valentes: qui autem ęgrotant, arte indigent, ita nos quo
que qui in vita laboramus probrosis cupiditatibus, vituperandisque intemperan-
tijs, ac libidinibus aliorumque vitiorum inflammationibus, Seruatore opus habe-
mus. Is autem non solùm lenia ac mitia adhibet medicamenta, sed etiam acria. Pec-
catorum quidē certè proserpentes corrosiones sistunt amaræ metus radices. Quam
obrem salutaris est metus, licet amarus. Iurè ergo qui ægrotamus, Seruatore opus
habemus: qui autem aberrauimus, eo qui nos est deducturus: & qui cæci sumus, eo
qui nos ad lucem deducat: & qui sitimus, fonte vitali, cuius qui sunt participes, non B
amplius sitient: & qui mortui sumus, vita egemus: & qui oues, pastore: & qui pueri,
pædagogo: quinetiam vniuersa humana natura, Iesu: ne qui insolentes & peccato-
res sumus, incidamus in finem condemnationis: à paleis autem segregemur, & in
Matth. 3. apothecam paternam recondamur. Ventilabrum enim in manu Domini, quo palea
Luc. 3. quæ igni debetur, à frumento secernitur. Licet autem, si vultis, sanctissimi pastoris
& pædagogi omnipotentis & paterni Verbi summam nobis sapiētiam ediscere, v-
bi allegoria vtitur, seipsum dicens pastorē ouiū. est aūt pædagogus infantiū. Dicit er
go per Ezechielem, orationem dirigens ad presbyteros, & eis quandam salutarem
Ezec. 34. iustæ solicitudinis descriptionem exponens: Et quod claudum est alligabo, & quod
ægrum est curabo, & quod aberrat, reducam: & pascam ipsos ego ad montē sanctum
meū. Hæc sunt præcepta boni pastoris. Pasce nos infantes, sicut oues. Etiā Dn̄e im-
ple tuis iustitię pascuis: etiā pædagoge pasce nos ad sanctū tuū montē, ad ecclesiam,
Ibidem. quæ in alto est, quæ superat nubes, quæ cælos tangit. Et ero, inquit, pastor ipsorum,
& ero prope ipsos, sicut tunica prope corpus ipsorum. Vult carni meæ dare salutem,
Zach. 13. me tunica incorruptionis induens, & corpus meum inunxit: Vocabunt me, inquit,
Esa. 58. & dicā, Ecce adsum. Celerius exaudijsti, q̄ ego expectaui Domine. Et si traijciant, nō
cadent, dicit Dominus. Non cademus enim in corruptionem, qui ad incorruptionē
traijcimus: quoniam ipse nos tenebit. Dixit enim ipse, & voluit ipse. Talis est no-
Matt. 20. ster pædagogus, optimo iure bonus: Non veni, inquit, vt mihi ministraretur, sed vt
Ioan. 4. ipse ministrarem. Propterea in euangelio fessus introducitur, qui pro nobis defati- C
gatur, & suam ipsius animam pretium redemptionis pro multis dare pollicens. Hūc
enim solum esse fatetur bonum pastorē. Liberalis ergo est ac magnificus, qui quod
maximum est suam pro nobis dat animam. Valdeque est hominibus vtilis, & in eos
benignus, quòd homo voluit esse frater, cùm posset esse Dominus. Ille verò etiam vs-
Hier. 7. 17. queadeo bonus fuit vt pro nobis moreretur. Quinetiam eius clamauit iustitia: Si re-
18. cti ad me veniatis, & ego rectus ad vos: Si obliqui ambuletis & ego obliquus, dicit
Mal. 2. Dominus exercituū: peccatorum increpationes per vias obliquas significans. Re-
cta enim & secundum naturam, quæ per Iesu I literam significatur, est eius bonitas,
Prouerb. 1. quæ erga eos qui ex auditu crediderunt firma est & immobilis: Quoniam vocaui, &
non exaudijstis, dicit Dominus, sed mea irrita fecistis consilia: meas autem repre-
hensiones non attendistis. Ita est maximè vtilis Domini reprehensio. De his Dauid
Psal. 77. quoq; dicit: Generatio peruersa & exacerbās, generatio quæ non direxit cor suum,
& non fuit fidelis cum Deo spiritus eius, & Dei testamentum non custodierunt,
& in lege eius noluerunt ambulare. Hæ sunt causæ exacerbationis propter quas
venit Iudex pœnas irrogaturus ijs qui bonam vitam noluerunt eligere: & ideo cum
eis paulò hîc egit crassius, si ab eo quo ad mortem feruntur impetu, aliquo modo
Ibidem. eos retardauerit. Dicit itaque per Dauid minarum causam apertissimam: Non cre-
diderunt in mirabilibus eius. Quando occidebat ipsos, requirebant ipsum, & con-
uerte-

A uertebantur, & manè ad Deum vigilabant, & recordati sunt quòd Deus est adiutor eorum, & Deus altissimus redemptor eorum est. Ita cognouit eos conuerti propter metum, contempsisse autem eius benignitatem. Bonum enim, vt quod sit semper beneficum, generaliter contemnitur: colitur autem qui beneuolo iustitiæ metu admonet. Duplex est autem genus metus: quorum alterum quidem est cum pudore, quo vtuntur ciues erga bonos Principes, & nos erga Deum: quemadmodum vtuntur boni ac moderati filij in parentes. Equus enim, inquit, indomitus euadit durus, & filius remissus euadit petulans. Ecclesi.30. Aliud autem metus genus est cum odio, quo serui vtuntur erga dominos difficiles: & Hebræi, qui Deum Dominum fecere, non patrem. Multum autem atqueadeo omnino differt id quod est spontaneum, liberum, ac voluntarium, ab eo quod fit per necessitatem, quod ad religionem & pietatem attinet. Ipse enim, inquit, est misericors, medebitur peccatis eorum Psal.84. & non perdet, & implebit vt auertat iram suam, & non incendet omnem indignationē suam. Osee 14. Vide quomodo pædagogi quod iustum est, ostenditur in increpationibus, & Dei quod bonum est, in miserationibus. Quocirca Dauid, hoc est, spiritus qui per eum loquitur, vtrunq; complectens de eodem Deo psallit: Iustitia & iudicium præparatio sedis tuæ. Psal.88. Misericordia & veritas præcedent ante faciem tuam. Fatetur esse eiusdem potestatis & iudicare & benefacere: simul enim est vtrorunq; potestas, iudicium iusti quod discernit, & idem iustus & bonus qui est verè Deus: qui est ipse omnia, & omnia ipse: quoniam ipse Deus, qui est solus Deus. quemadmodum enim speculum nō est malū deformi, eò quòd ipsum ostendat qualis sit: & quē-

B admodum medicus non est ægrotanti malus, quòd ei febrem annunciet: non enim medicus febris causa est, sed ipse febrem arguit: ita nec is qui reprehendit, ei malè vult qui laborat animo: neque enim ei delicta adiungit, sed ea quæ adsunt peccata ostendit, ad hoc vt auertat ab eiusmodi studijs. Quamobrem Deus quidem bonus est per seipsum, iustus autem propter nos, & ideo etiam bonus. Quod iustum est autem, nobis per suum ipsius Verbū ostendit illinc è superis vnde ipse fuit Pater. Priusquā enim esset creator, Deus erat, bonus erat: & propterea & opifex esse & Pater voluit: & illius amoris habitudo ac relatio fuit iustitiæ principium, cùm & solem suum lucere faceret, & filium suum mitteret. Isque primus è cælis bonam annūciauit iustitiam, cùm diceret: Nemo nouit Filium nisi Pater, neque Patrem nisi Filius. Matth.14. Hæc reciproca quæ ex æquo rependitur cognitio, est antiquæ iustitiæ symbolum. Deinde ad homines descendit iustitia, & scripto & corpore, Verbo & lege humanam naturam ad salutarem vrgens pœnitentiam: bona enim erat. At Deo non obedis? Eius rei culpam tibi adscribe, qui iudicem attrahas.

*Quòd idem Deus per idem Verbum & à peccatis arcet minans, & humanæ naturæ dat salutem adhortans,* Cap. X.

SI itaq; quæ in adstringenda humana natura versatur administratione, bonā esse & salutarē, & à Verbo necessario assumi ostendimus vsq; &

C ad pœnitentiam, & ad peccatorū prohibitionem, accōmodata fuerit, consideranda deinceps fuerit Verbi mansuetudo & lenitas. Eū enim iustum esse ostensum est. Proprias autem exponit sententias quæ ad salutē hortantur, per quas id quod bonū est & conducibile, vult ex paterna voluntate significare. Hæc autem considera. Honestū quidem, est encomiastici. Vtile verò, suasorij. Enimverò suasorij quidem relatio & habitudo, est hortatoriū & dehortatoriū: encomastici verò laudatoriū & vituperatoriū. Aliquo enim modo affecta sententia suasoria, efficitur hortatoria, & aliquo modo dehortatoria. Similiter etiā genus encomiasticū, aliquo qdē modo affectum, est vituperatoriū: aliquo verò, laudatoriū, in quibus maximè versatur iustus pædagogus, qui quod nobis est vtile, sibi tanquā scopum proposuit. Verumenimuero genus quidem vituperatoriū & dehortatoriū nobis prius ostensum est: nunc autem hortatorium & laudatorium rursus nobis aggrediēdum est, & tanquam in trutina in æquilibrio stantes iusti lances expēdamus. Ad ea ergo quæ sunt vtilia, adhortatione vtitur pædagogus hoc modo p Solomonē: Ego vos, ô homines, adhortor, & meam vocem edo filijs hominum, audite me: præclara enim dicam. Prouer.4.5. & quæ sequuntur. Quæ sunt autem salutaria consulit: quoniam consilium ad eligendum & vitandum aptum est, quemadmodum facit per Dauid, dicēs: Beatus vir qui non ambulauit in consilio impiorū, & in via peccatorum non Psal.1. stetit, & supra cathedram pestilentiarum non sedit: sed in lege Domini volun-

tas eius. Consilia autem dandi tres sunt partes. Vna quidem, quæ sumit exempla ex A
tẽpore præterito: vt, verbi gratia, quid Hebræis euenerit, qui aurum per idololatrię
Exod.32. crimen adorarunt in vitulo, & quid passi sunt cùm fornicati essent, & quæ sunt si-
milia. Altera verò quæ ex præsenti tempore intelligitur, vt quæ sensu comprehen-
Matth.11. datur, sicut illud quod dictum est ijs qui Dominum rogarunt: An ipse es Christus, a-
liúm ne expectamus? Abite & dicite Ioanni, cæci vident, surdi audiunt, leprosi mun
dantur, mortui resurgũt, & beatus qui non fuerit scandalizatus in me. Hoc ergo fuit
Psal.47. quod prædicens dicebat Dauid: Sicut audiuimus, ita & vidimus. Ex futuris autem
constat tertia pars dandi consilij, qua quæ sunt euentura iubet caueri, quemadmo-
Matth.8.22. dum illud quoque dictum est: Qui autem in peccata inciderint, eijcientur in te-
Luc.13. nebras exteriores, illic erit fletus & stridor dentium, & quæ sunt similia: adeò vt ex
his omnibus clarum sit Dominum per omnem medendi rationem procedentem,
humanam naturam euocare ad salutem. Consolatione autem peccata solatur mi-
nuens quidem cupiditatem, simul autem spem præbens ad salutem. Dicit enim
Ezech.18. per Ezechielem: Si conuersi fueritis ex toto corde vestro, & dixeritis Pater, audiam
Matth.11. vos tanquam populum sanctum. Et rursus dicit: Venite ad me omnes qui laboratis,
& onerati estis, & ego reficiam vos: & ea quæ sequuntur ex sua persona dicit Domi-
Prouerb. 3. nus. Apertissimè autem ad bonitatem vocat per Solomonem, dicens: Beatus homo
qui inuenit sapientiam, & mortalis qui inuenit prudentiam. Quod bonum est e-
nim à quærente inuenitur, & solet videri ab eo qui inuenit. Iam verò per Hieremiã
Hier.31. quoq; enarrat prudentiam: Beati sumus Israël, dicens, quòd quæ Deo grata sunt, à B
Verbũ λόγος ratio. nobis cognosci possint. Cognosci autem possunt per Verbum, per quem sumus bea
ti & prudentes. Prudentia enim & cognitio significatur per eundem prophetam di-
Hier.11. centem: Audi Israël mandata vitæ, ausculta vt cognoscas prudentiam. Per Mosen au
Baruch 3. tem propter suam in homines beneuolentiam donũ quoq; pollicetur ijs qui contẽ-
Luc.11. dunt ad salutem. Dicit enim: Et introducam vos in terrã bonã quã iurauit Dominus
Deut. 4. 8. patribus vestris. Et prȩterea: Introducã vos in mõtẽ sanctum, & vos lætitia afficiam,
Esa.56. dicit per Esaiam. Iam verò est aliud quoque genus pædagogiæ, nempe beatificatio:
Psal.1. Beatus ille est, per Dauid dicit, qui non peccauit: & erit tanquam lignum quod plan
tatum est secus decursus aquarum, quod fructum suum dabit in tempore suo, & fo-
lium eius non defluet. Per hoc etiam tacitè significauit resurrectionem: Et omnia
quæcunque faciet, ei rectè succedent. Nos vult esse tales vt simus beati. Rursus au-
tem ostendens id quod ex aduerso respondet iustitiæ trutinæ: At non sic impij, in-
quit, non sic, sed tanquam puluis, quem proijcit ventus à facie terræ. Cùm peccato-
rum pœnas, & facilem & tanquam ventis perflabilem eorum dissipationem osten-
disset pædagogus, per pœnam à causa dehortatus est: & cùm supplicium pro meri-
tis intentasset, beneficentiæ suæ benignitatem ostendit, vt bona nobis paremus, iis-
que fruamur, per eam summo nos artificio excitans. Quinetiam ad cognitionem
Hier.6. nos per Hieremiam hortatur, dicens: Via Dei si ambulasses, habitasses in pace in se-
culum. Cognitionis enim eis mercedem ostendens, prudentes ad eius amorem
Ibidem. excitat. Et ei qui aberrauit dans veniam, Conuertere, conuertere enim, inquit, sicut C
qui vindemiat ad canistrum suum. Vides bonum iustitiæ, quæ consulit moueri pœ-
nitentia. Præterea per Hieremiam illuminat eos qui à veritate aberrant. Hæc au-
Ibidem. tem dicit Dominus: State in vijs, & videte, & rogate semitas Domini æternas, quę
nam est semita bona, & ambulate in ea, & inuenietis sanctificationem animabus
Hier.18. vestris. Ducit autem ad pœnitentiam causa salutis nostræ. Propterea dicit: Si
Ezech.18. te pœnituerit, expurgabit Dominus cor tuum, & cor seminis tui. Poteram qui-
33.36. dem ad huius quæstionis defensionem adducere Philosophos, qui dicunt eum so-
lum qui est perfectus, esse laudabilem: qui malus est autem, vituperabilẽ. Sed quoni-
am nonnulli quod beatum est calumniantur, vt quod neque ipsum aliquid negocij
habeat, neque alij exhibeat, cùm beneuolentiam in homines non intelligant, pro-
pter hos, & propter eos etiam qui bono quod iustum est non tribuunt, id quod à
nobis dictum fuit, adiectum est. Consequens enim esset vt diceremus, increpatori-
um ac vituperatorium pædagogiæ genus conuenire hominibus, quoniam omnes
homines stultos dicunt: sapiens autem solus Deus est, à quo sapientia: & perfectus
solus, & ideo solus quoq; laudabilis. Sed hac oratione non vtor. Dico ergo, laudẽ
& vituperationem, vel quod laudi & vituperationi est assimile, esse medicamẽta ho
minibus maximè necessaria. Qui sunt itaq; curatu difficiles, ab igne, malleo, incu-
de, hoc est, minis, reprehensione, increpatione, tanquam ferrum aguntur. Qui autẽ
ipsam

A ipsam fidem attendunt, tanquam per se docti, & libero animi arbitrio impulsi, laude augetur. Laudata enim virtus non secus ac arbor crescit. Hoc cùm intelligeret, mihi videtur Samius præcepisse Pythagoras:

*Quæ mala sunt faciens reprehendere, sed bona, gaude.*

Reprehendere autem dicitur etiam admonere, quod græcè est νουθετεῖν. Admonitionis autem, quæ Græcè est νουθέτησις, etymologia est τὸ ἐνθηματισμός, hoc est, mentis immissio, quòd sit increpatorium genus quòd mentem pariat. Cæterùm alia innumerabilia inueniri possunt præcepta de parandis bonis, & malis fugiendis: Non est pax impijs dicit Dominus. Propterea per Solomonem præcipit infantibus: Fili, ne te in errorem abducant peccatores, neq; in vijs cum eis ambulaueris, si te hortati fuerint, dicentes: Veni nobiscum, sis socius innocentis sanguinis: in terra autem virum iustum iniustè abscondamus, de medio eum tollamus, sicut infernus viuentem. Hoc itaq; de Domini quoq; passione prædicitur. Porrò per Ezechielem etiam vita nobis mandata suppeditat. Anima quæ peccat, morietur: homo autem erit iustus, qui facit iustitiã. Non comedet in montibus, & oculos suos non conieciт in cogitata domus Israël, & vxorem proximi sui non polluerit, & ad mulierem quæ est in puerperio non appropinquabit, & hominem potentia nõ opprimet, & pignus debitoris reddet, & rapinam non rapiet, panem suum dabit esurienti, & nudum induet. Pecuniam suam non dabit ad vsuram, & commodum non accipiet, & ab iniquitate auertet manum suam, & iustum iudicium faciet inter virum & inter proximum suum.

*Esa. 48.* *Prouerb. 1.* *Ezech. 18.*

B In præceptis meis ambulauit, & iustificationes meas seruauit vt faceret eas. Iustus hic est vita viuet, dicit Dñs. Hæc cõtinẽt descriptionẽ institutionis vitæ Christianorum, & conuenientem adhortationem ad beatam vitã, præmium vitę, vitã ęternam.

## *Quòd per legem & Prophetas Verbum fungeretur Pædagogi officio,* Cap. XI.

EIVS quidẽ in homines beneuolentiæ & pædagogiæ modus, vt à nobis geri potuit, ostensus est. Quocirca ipse seipsum pulcherrimè exponẽs, grano sinapis assimilauit: & verbi qđ seminatur, quod in eo inest spiritale, naturamq; multiplicẽ, verbalisq; seu rationalis potestatis magnificentiam simul & sanctitatẽ, & pręterea reprehensionis mordacitatẽ, & repurgandi facultatem, esse vtilẽ propter acrimoniã significans. Per exiguum itaq; granũ, quod allegoricè dicitur, vniuersæ humanæ naturæ plurimã salutẽ largitur. Atq; mel quidẽ, cùm sit dulcissimũ, bilem generat: quemadmodũ quod bonum est, contemptũ: quod quidem causa est peccandi. Sinapi autem & bilẽ diminuit, hoc est, iram: & phlegma excindit, hoc est, fastũ ac superbiã. Ex quo verbo vera animæ sanitas æternaq; bona temperatura accedit. Olim itaq; per Mosen, Verbũ pędagogi fungebatur officio. Deinde etiam per Prophetas. Est autẽ Moses quoq; Propheta. Est enim Lex Pædagogia puerorum insolentium, qui habenis non facilè retinentur. Saturati ergo, inquit, surrexerunt ludere. Saturati autẽ Græcè est χορτασθέντες

*Matth. 13.* *λογικῆς δυνάμεως* *Exod. 32.* *1. Cor. 10.*

C quasi dicas, fœno repleti, nempe qui à ratione alienam alimẽti plenitudinẽ χόρτασμα, hoc est, fœni repletionem, nõ autẽ cibum dixerit. Quoniam autẽ absq; ratione satiati, absq; ratione ludebant, propterea ipsos & Lex & timor sequebatur, vt & peccata rescinderet, & ad res honestas rectè & ex virtute gerendas adhortaretur, aures præparans vt vero pædagogó obedirent, qui est vnum & idem Verbum legi quæ vrgebat conueniens: datum enim dicit Paulus pædagogum ad Christum, adeò vt ex hoc apertum sit, vnum solum, verum, bonum, iustum, ad imaginem & similitudinem Patris filium, Iesum, verbum Dei esse nostrum pædagogum, cui nos tradidit Deus tanquam Pater beneuolus, vero & germano pædagogo comittens & commendans filios, vt qui nobis dilucidè præceperit: Hic est filius meus dilectus, ipsum audite. Fide dignus est diuinus pædagogus, tribus rebus pulcherrimis ornatus, scientia, beneuolentia, dicendi libertate. Scientia quidem, quoniam est paterna sapientia. Omnis enim sapientia est à Domino, & cum eo est in æuum. Dicendi autem fiducia, quoniam Deus est & opifex. Omnia enim per ipsum facta sunt, & sine ipso factum est nihil. Beneuolentia autem, quoniam solus pro nobis seipsum hostiam tradidit. Bonus enim pastor animam suam ponit pro ouibus suis, atque adeo eam posuit. Beneuolentia autem nihil est aliud, quàm voluntas boni proximi sui propter illum.

*Gal. 3.* *Matth. 17.* *Ephes. 5.* *Ioan. 10.*

Quòd Pædagogus conuenienter paternæ affectionis seueritate & benignitate usus sit, Cap. XII.

A

HIS iam peractis, consequens fuerit, vt pædagogus noster Iesus vitam nobis veram describat, & qui in Christo est hominem instituat. Est aũt forma eius ac character neq; admodum difficilis, nec præ benignitate vsqueadeo dissolutus. Simul autẽ mãdat, & mãdatorũ characteres ita imprimit, vt ea posint perficere. Atq; mihi quidẽ is ipse videtur hominẽ finxisse ex puluere: aqua autẽ regenerasse: spiritu verò auxisse: Verbo autem, pędagogi instar instituisse, ad filiorum adoptionẽ & salutẽ sanctis præceptis dirigens, vt cùm terra genitum in sanctum & supercælestem hominem suo aduentu trãsfomasset, diuinam illam vocẽ maximè impleret: Faciamus hominem ad imaginem & similitudinem nostram. Atq; fuit quidem Christus hoc plenum quod dixit Deus. Alius autem homo intelligitur per solam imaginem. Nos autem, ô boni Patris filij, alumni boni Pædagogi, Patris voluntatem impleamus, Verbum audiamus, & verè salutarẽ Seruatoris nostri vitam exprimamus, hîc iam meditantes cælestem vitæ agẽdæ formam, per quam effecti dij, semper germinante lætitia & incorrupto boni odoris vnguento inungamur, euidens incorruptionis indiciũ habentes vitæ Domini formam & Dei vestigia persequentes: cui soli conuenit considerare, atqueadeo cui curæ est quomodo & quãnam ratione futura sit vita hominum sanior. Quinetiã ad hoc vt victu facilè contenti simus, & quæ sunt superuacanea negligamus, accinctiq; & expediti & ad bonæ vitæ æternitatem parati simus, nos præparat, vnũquẽque nostrum esse ipsum sui ipsius penum docẽs. Ne soliciti enim, inquit, sitis de crastino: dicens oportere eum qui in Christi numerum relatus est, sua sorte contentum, sibi per se seruientem, & cui in diem satis sit victum deligere. Non enim in bello, sed in pace instituimur. Ac bello quidẽ magno apparatu opus est, magnoq; & profuso sumptu egent delitiæ: pax autem & dilectio, simplices & quæ lites ac negotia fugiunt sorores, non armis, neq; profuso apparatu indigent. Nutrimentũ eis Verbũ est. Verbũ aũt is est cui & demõstrandi & docẽdi principatus obtigit, à quo frugalitatẽ, simplicitatem, à fastuq; alienationem, libertatis amorem, benignitatem & honesti studium edíscimus. Id, etsi vno Verbo cum virtutis coniunctione Deo similes reddimur, non ad socordiam ac negligentiam oportet traducere, sed elabora, & ne defatigeris, eris enim qualis non speras, neq; verò conijcere potueris. Quemadmodum autem Philosophorum quidem est alia viuendi ratio, alia verò oratorum, alia autem luctatorum: ita est generosa ac liberalis affectio, liberæ animi voluntati quæ honesti est studiosa, conueniẽs, quæ accessit ex Christi pędagogia, & qui operari docti sunt, honesti & graues, incessus & accubitus, nutritio & somnus, cubitusq; & viuendi ratio, & reliqua disciplina. Non est enim nimis intensa ac vehemens eiusmodi Verbi eductio, sed moderata, & quæ iusto ac recto tenore consistat. Hac etiam ratione Seruator Verbum dictus est, qui hæc hominibus verbalia & rationalia medicamẽta ad salutem, vt bono ac integro sensu prędíti essemus, inuenit, oportunitatem quidem obseruans, detrimentum autem & offensionem arguens, & affectionum animi causas exponens, & à ratione alienarum cupiditatum radices excindens, à quibus quidem abstinere oporteat præcipiens, omnia autem salutis antidota ægrotãtibus exhibens. Hoc est enim maximum, & maximè regium Dei opus, humanam seruare naturam. At medico quidem, qui nihil quod ad salutem faciat consulit, ægroti succensent: diuino autem Pędagogo, quomodo nõ maximas se habere gratias fatebuntur, qui minimè taceat, nec animi penetralibus contineat minas quę ferunt ad exitium? sed & eas arguat, & quę ad eas tendunt appetitiones excindat, & quę ad rectam reipub. administrationem pertinent edoceat. Magnæ ergo illi sunt agendæ gratiæ. Ratione enim præditum animal, hominem inquam, aliquid ne aliud dicimus quàm oportere id quod est diuinum contemplari? Porrò autem humanam quoq; naturam dico eum oportere considerare, & ita viuere, vt iubet & dictat veritas, & ipsum Pædagogum & eius præcepta mirandum in modum admirantes, vt quæ inter se congruant & conueniant. Cui conuenienter imagini ac similitudini oportet nos quoq;, cùm nos ipsos Pædagogo adaptauerimus, ita viuere, vt factis oratio reuera conueniat.

Marginalia: Humani (beside "hominẽ finxisse"); Genes. 1. (beside "fet, diuinam"); B (beside "ad hoc vt victu"); Matth. 6. (beside "que nostrum"); C (beside "salutem, vt bono").

A Quòd quemadmodum id quod rectè & ex uirtute geritur, fit ex recta ratione, ita rursus peccatum præter rationem, Cap. XIII.

QVICQVID est præter rectam rationem, id est peccatum. Iam enim generales animi affectiones seu perturbationes hoc modo definiẽdas cẽsent Philosophi. Cupiditatem quidem, appetitionem quæ non paret rationi: Metum autem, dissolutionem quę non paret rationi: Voluptatem autem, elationem animæ quæ non paret rationi. Si ergo quæ in rationem est inobedientia, peccatũ generat, quomodo non necessariò rationis obedientia, quam quidem finem dicimus, parit ac procreat id quod vocatur honestum ac decorum? Ipsa enim virtus, est animæ concinna & congrua affectio, quæ rationi subijcitur per totam vitam. Quin etiam, quod est supremum omnium, ipsam Philosophiam definiunt, studium rectę rationis, adeò vt sit necessariò delictum, quicquid fit propter errorem rationis, & meritò græcè vocetur ἁμάρτημα, hoc est, erratum, quod etiam peccatum significat. Iam enim, quando primus homo peccauit, & Deo non obedit: Et iumentis, inquit, assimilatus est homo, qui præter rationem aberrasset, meritò rationis expers existimatus comparatur iumentis. Hinc etiam dicit Sapientia: Equus ad coitum, libidinosus, & adulter irrationali iumẽto assimilatus. Et ideo subiungit: Quocunq; super eum sedente hinnit. Non amplius, inquit, homo loquitur. Non est enim amplius particeps rationis, qui peccat præter rationem: est autem

*λόγος ratio, pro filio Dei hoc in loco necessariò uertitur.*

*Hier. 5.*

B expers rationis belua, dedita cupiditatibus, cui omnes voluptates insident. Quod ex rationis autẽ obedientia rectè & ex virtute geritur, προσῆκον & καθῆκον, hoc est, quod congruit & conuenit, nempe officium, vocant Stoici. Quod itaq; decet & congruit, nempe officium, id etiam conuenit. Obedientia autem fundatur mandatis. Eæ autem monitionibus, quæ cùm sint eædem, veritatem sibi scopum proponentes, ad extremum expetendum, quod finis intelligitur, instituunt. Pietatis autem ac religionis finis est æterna in Deo requies. Æui autem seu æternitatis principium, est noster finis. Quod est itaq; pietatis honestum recteq; & ex virtute factũ, id quod decet ac conuenit, nempe officium, operibus efficit. Vnde officia meritò consistunt in actionibus, non autem in dictionibus. Et est Christiani quidem actio, rationalis animæ operatio, ex syncero ac prudenti iudicio & appetitione veritatis, quæ per cõiunctum auxiliumq; simul ferens corpus peragitur. Quod decet autem ac conuenit, officium inquam, est quæ in vita Deum & Christum sequitur voluntas vna, quæ se propter vitam æternam rectè & ex virtute gerit. Etenim Christianorum vita quam nunc instituimus, est quidam conuentus ac congregatio actionum rationalium: hoc est, eorum quæ à ratione docentur, quæ non labitur operatio, quam quidem fidem appellauimus. Conuentus autem ac congregatio, mandata Domini, quæ cùm sint diuinæ sententiæ, monita spiritalia, nobis ipsis scriptæ sunt, vt quæ & nobis ipsis & proximis bene possint quadrare. Quinetiam ipsæ quoq; ad nos reuertuntur, sicut globus qui propter repercussionem ad eum qui iacit recurrit. Vnde etiã sunt ea quę

C decent ac conueniunt, nempe officia ad diuinam pædagogiam necessaria, vt quæ à Deo præcepta & ad salutem tradita sunt. Et quoniam eorum quæ sunt necessaria, alia quidem solùm ad vitam hîc agendam pertinent, alia verò hîc vt illic bene viuamus erigunt & extollunt: conuenienter quoque officiorum, hæc quidem ad viuendum, illa verò ad rectè viuendum ordinantur. Quæcunq; ergo ad gentiliter viuendum præcipiuntur, ea vulgò apud multos publicata sunt. Quæ autem ad bene viuendum conueniunt, ex quibus æterna illa vita acquiritur, ea hîc veluti adumbrata ex ipsis scripturis colligentibus licebit considerare.

*Hæc insunt in secundo libro Pædagogi.*

# CLEMENTIS PAEDAGOGI LIBER SECVNDVS.

A.

*Quomodo in alimentis uersari oporteat,* *Cap.* I.

ROPOSITVM itaq; institutum ac scopum sequentibus, & scripturas ad eam pædagogiæ partẽ, quæ vitæ vtilis futura est deligentibus, qualẽ esse in tota vita eum qui Christianus dicitur, oporteat, summatim describendum est. Nobis igitur à nobis ipsis incipiendum est, & quomodo nos componere ac moderari oporteat. Cōpositi itaq; proportionem & commoderationem coniectantibus, quemadmodum vnumquenque nostrûm se in suum corpus gerere, vel potius quomodo id dirigere oporteat, dicendum est. Quando enim quis à rebus externis, & ab ipsa præterea eductione corporis ad mentem à ratione deductus, eorum quæ in homine secundum naturam eueniunt contemplationem accuratè perfecteq; didicerit, sciet non esse studium in res externas conferendum: hominis autem esse proprium, animæ expurgare oculum, castamq; & sanctam carnem suam tueri. Qui enim ab illis purè emundatus exolutusq; fuerit per quæ est adhuc puluis, quidnam aliud seipso habuerit conducibilius ad hoc, vt recta via ingrediatur ad Dei comprehensionem? Atq; alij quidem homines viuunt vt comedant, quod certè etiam rationis expertibus euenit animantibus, quibus nihil aliud quàm venter vita est: nobis aũt pædagogus præcipit comesse vt viuamus. neq; enim nostrum nutritio munus est, neq; institutum scopúsue noster voluptas: sed ea nutritio est propter nostram hîc mansionem, quam ad incorruptionem ratio instituit: & ideo secernitur ac seligitur alimentum. Est autem ipsum simplex, & non nimio studio comparanda nimisue curiosa, sed simplicibus & minimè curiosis puellis apta & apposita veritas, vtpote quod ad viuendum, non ad lautitias delitiasq; aptum sit. Ipsum autem viuere, ex duobus, sanitate scilicet & viribus, constituitur, quibus maximè conuenit alimenti facilitas, vt quod & ad digestionem & corporis leuitatem sit vtile: ex quibus incrementum, sanitas, & iustæ vires: non autem iniustæ, lubricæ & miseræ, quales sunt quæ Athletis ex illa sua edendi necessitate obueniunt. Sunt itaq; multiplices qualitates respuendæ, quæ varia detrimenta pariunt, malas corporum habitudines, stomachorum subuersiones, cùm corruptus & constupratus sit gustus, misera & infausta quadam condiendi arte, & inani in faciendis bellarijs artificio. Audent enim appellare nutritionem, delitiarum exercitationem, quæ in noxias voluptates dilabitur. Antiphanes autem Delius medicus vel vnam hanc dixit esse morborum causam, ciborum varietatem: cùm qui veritatem ægreferant, multiplici nescio qua vana gloria frugalem & moderatum victum abiurent, & transmarinas escas anxiè perquirunt. Ac mihi quidem venit in mentem eorum morbi misereri: ipsos autem non pudet suas decantare delitias, cumq; in freto sunt Siculo, murænas anxio & solicito animo perquirant, & Mæandri anguillas, & qui in Melo sunt hœdos, & qui in Sciatho mugiles, Pelori cōchas, & Abydena ostrea, nec mænas quæ sunt in Lipara prætermittant, nec bolum Mantinicum, nec betas quæ sunt apud Ascræos, & pectines exquirant Methymnæos, & psettas Atticas, & turdos Daphnios, & caricas Chelidonias, propter quas in Græciam cum quinquies mille millibus infelix Persa profectus est: Phasidis aues præterea coëmant, attagenas Ægyptias, Medicum pauonem. Hæc condimentis immutantes, ij qui sunt gulæ dediti, obsonijs inhiant, quæcunq; tellus, & profunda Ponti, immensaq; alit latitudo aëris, ingluuiei ea suæ comparantes. Videntur reuera hi insatiabiles, & soliciti ac anxij ciborum indagatores, ad delitias ac voluptates suas mundum irretire, sibilantibus sartaginibus vndiq; circunstrepentes, & circa cochlear & mortarium totam vitam suam consumentes, edaces atqueadeo omniuori homines, materiam ignis instar apprehendentes. Quinetiam facilem & parabilem cibum, nempe panem effœminant, quod frumenti est nutriens excribrantes, vt quod est alimenti necessarium, sit probrum voluptatis. Apud homines autem nullum habet terminum delicata ingluuies. In liba enim placentas & bellaria prouecta est, merendarum & cœnæ appendicum multitudinem inueniens, omnes qualitates aucupans. At mihi quidẽ videtur homo qui est eiusmodi, nihil esse aliud quàm bucca aut maxilla.

*Margin notes:* B (beside "ad hoc, vt recta via..."); C (beside "tem eorum morbi misereri..."); αἰσχροφαγία (beside "tem iniustæ, lubricæ..."); ψῆτται ἀττικαί *piscis genus, de quibus uide Athenæũ & Aristotelem.* (beside "cum, nec betas...")

A maxilla. Ne desideres autem, inquit Scriptura, cibos diuitum: ij enim vitæ non veræ & turpi coniuncti sunt. Illi enim dant operam obsonijs quæ fimus paulò pòst excipit: nobis autem cibum cælestem venantibus necesse est ventri qui est sub cælo imperare, & multò magis ijs quæ ei amica & grata sunt: Quæ Deus abolebit, inquit Apostolus, voraces gulæ cupiditates iure execrans. Escæ enim ventri, ex quibus hęc carnalis, & quæ interitum affert, vita dependet, quam audent nonnulli vocare charitatem, effręnata lingua vtentes, nempe quædam prandiola nidorem & ius redolentia, pulchro & salutari Verbi opere appellantes, sanctificatam charitatem ollulis & iuris fluento iniuria afficientes, potuq; delitijs & fumo illud nomen maledicto persequentes: falluntur existimatione, vt qui Dei promissum pradiolis se posse emere expectauerint. Quæ enim lætitiæ causa fiunt congregationes, ipsi quoq; recensentes & cœnulas, & prandia, & epulas, hunc cœtum iure vocauerimus, rationē sequentes. Has autem epulas ἀγάπας, id est, charitates, non vocauit Dominus. Dicit itaq; alicubi quidē: Quando fueris inuitatus ad nuptias, ne primo loco accumbas, sed quando vocatus fueris, accumbe in vltimo loco. alicubi autem: Quando feceris prandiū aut cœnam. Et rursus: Sed quando feceris epulum, voca mendicos, propter quod cœna maximè facienda est. Et præterea: Homo quidam fecit cœnam magnam, & vocauit multos. Sed sentio vndénam effluxerit speciosa cœnarum appellatio: nempe ex gutturibus. Insaniæ merendarum venticator, ait Comicus. Reuera enim multis multa sunt cœnæ gratia: nondum enim didicerunt Deum parasse suo opificio, homini

*1. Corint. 6.*

*Vocabāt Clementis tēpore nonnulli prādia ac cōuiuia ἀγάπας, hoc est, charitates.*

*Luc. 14.*

*Ibidem.*

B inquam, cibum & potum, vt conseruetur, non autem vt voluptate afficiatur. Nam nec corporibus quidem natura insitum est, vt ex multiplici ciborum varietate iuuētur. Contrà enim omnino qui escis vtuntur vilissimis, sunt robustiores, saniores, & generosiores: vt famuli Dominis, & agricolæ possessoribus: & non solùm fortiores, sed etiam prudentiores, vt Philosophi diuitibus. Neq; enim mentem nutrimentis obruerunt, neq; ipsam voluptatibus deceperunt. Charitas autem reuera est cæleste nutrimentum, rationale epulum: omnia sustinet, omnia suffert, omnia sperat, charitas nunquam excidit. Beatus qui comedit prandium in regno Dei. Casus est autem omnium grauissimus, si quæ charitas non potest excidere, supernè è cælis ad iuscula humi abijciatur. Et tu me eam existimas putare cœnā quæ aboletur? Si facultates inquit, meas distribuero, charitatem autem non habeā, nihil sum. Ab vniuersa hac charitate dependet Lex & Verbum, si Dominum Deū tuum & proximū dilexeris. In cælis aūt est hoc cæleste conuiuiū, quod à bona sessione συνεχία græcè dicitur. Terrestre aūt, cœna dictum est, vt ex Scriptura ostensum est. & fit quidem cœna propter charitatem: sed non est cœna charitas, verùm socialis beneuolentiæ, & quæ suā lubenter impertit, indicium. Ne quod ergo nostrū bonū est, maledictis lacessatur. Non est enim regnum Dei esca & potus, dicit Apostolus, vt fluxum & momentaneū prandium intelligatur: sed iustitia, & pax, & gaudium in Spiritu sancto. De hoc qui prandio comederit, is eorum quæ sunt, optimum, nempe regnum Dei possidebit, sanctum charitatis conuentum hîc meditatus, nempe cælestem ecclesiam. Charitas

*1. Cor. 13.*

*Ibidem.*

*Matth. 22.*

*Rom. 14.*

C ergo res est pura & Deo digna: officium verò eius est communicatio. Cura autem disciplinæ est charitas, quam dicit Sapientia: Charitas verò obseruatio legum eius. Hæ autem lætitiæ habent quoddam charitatis incitamentum ex nutrimento publico, quod ad æternam assuefacit oblectationem. Charitas ergo cœna non est: epulum autem à charitate pendeat. Discant enim, inquit, filij tui quos dilexisti Domine, quòd non generationes fructuum nutriant hominem, sed verbum tuum eos qui tibi credunt conseruat: non enim in pane viuet iustus. Sed sit nobis cœna tenuis & expedita, apta ad vigilias, impermixta diuersis qualitatibus, & quæ à pædagogi disciplina minimè sit aliena. Bona enim nutrix ad societatem & communicationem est charitas, quæ copiosum habet viaticum, nempe sufficientiam, quæ quidem dimenso iusta quantitate alimento præfecta, salubriter corpus administrans, etiam proximis ex eo aliquid distribuit. Victus autem qui inundat & obruit sufficientiam, homini multum officit, animam quidem segnem & inertem reddit, corpus verò valetudinarium, & quod in morbos facilè prolabitur, efficiens. Quinetiā voluptates quæ in aromatibus conditis dijudicandis dapibus sunt anxiæ & difficiles, probra & maledicta inurunt: vtpote liguritionem, ingluuiem, edacitatem, voracitatem, insatiabilitatem, & huiusmodi alia. Muscæ quoq; ijs nominib. aptissimè respōdentes, & viuerræ, & adulatores, & gladiatores, & immane genus parasitorum, ventris voluptate: hi quidem rationem, illi verò amicitiam, alij autem vitam ipsam ven-

*Sapien. 6.*

*Deut. 6.*

dentes,super ventrem serpentes,beluæ hominibus similes, ad imaginem patris sui, A
edacis voracisq; beluæ,& qui eos prodigos,quod græcè est ἀσώτους,appellarunt,bene
mihi videntur eorum finem significasse:vt qui eos ἀσώστους, hoc est, à salute alienos,per
elisionem elementi σ,intellexerint. An non enim sunt eiusmodi qui in ollis versan-
tur,multiplicibusq; exquisitorum condimentorum varietatibus, qui sunt humilis
& abiecti animi,terræ planè filij, qui victum in dies persequuntur perinde ac nō vi-
Esa.22. cturi? Eos miseros pronunciat per Esaiam sanctus Spiritus, cùm nomen Charitatis
sensim nescio quomodo ab eis sustulisset,quoniam non erat epulum rationi consen
taneum:Ipsi autem fecerunt lætitiam, occidentes vitulos, & oues sacrificantes, di-
cētes: Comedamus & bibamus,cras enim morimur. Et quòd eiusmodi delitias pec
catum existimet, subiungit: Et non dimittetur hoc vestrum peccatum,donec mor-
tui fueritis. Non dicens peccati remissionem mortem insensilem, sed retributionē
Prouerb. 4. peccati,quæ quidem mors est,à salute secernens. Ne læteris autem propter execran
20. das delitias,dicit Sapientia. Hîc autem de idolothytis quoque, hoc est, de ijs quæ i-
Eccl.2. dolis immolantur,mentio facienda est, quónam modo præcipiat ab ijs esse abstinē
dum. Illa mihi videntur execranda & abominanda, quorum sanguinem superuo-
lant. Subter sunt erebum quæ animæ hoc nunc lumine cassæ. Nolo enim vos fieri
1.Cor.10. participes dæmoniorum,dicit Apostolus. Eorum enim qui seruantur,& eorum qui
pereunt,separata sunt nutrimenta. Ab his ergo abstinendum est, non quòd perti-
mescamus, non est enim in eis aliqua potentia,sed quòd propter nostram conscien-
tiam, quæ sancta est, ea propter dæmonum odium, quibus illa sunt dedicata,auer- B
semur: & præterea,propter eorum qui multa procliuiter discernunt,ac verentur im
1.Cor.8. becillitatem, quibus infirma polluitur conscientia: Cibus enim nos non commen-
Matth.15. dabit Deo: neque quæ intrant coinquinant hominem, sed quæ ex ore, inquit, exe-
1.Cor.8. unt. Vsus enim nutrimenti est indifferens: Neq; enim si comedamus,inquit,plus ha
bemus: nec si non comedamus, deficimus. Sed non est consentaneum vt sint men-
sæ dæmoniorum participes,qui diuino ac spiritali nutrimento digni sumus habiti.
Ibid.9. An non habemus potestatem comedendi & bibendi, dicit Apostolus, & mulieres
circunducendi? sed voluptatibus,scilicet,imperantes,arcemus cupiditates. Videte
Ibid. 8. ergo ne hæc nostra potestas offensionem afferat imbecillis. Non oportet ergo nos
Luc.15. veluti prodigè & profusè viuentes, quemadmodum est in Euangelio similitudo fi-
lij diuitis,abuti donis patris,sed eis vti, vt qui ipsis constanter imperemus: vt in ci-
bos enim regnum & dominatum obtineamus, non vt eis seruiamus, ordinati fui-
mus. Res est ergo præclara & maximè expetenda, id quod verum est suspicientes,
supernum alimentum persequi,& eius quod verè est inexplebili spectaculo imple-
ri,firma,stabili,& pura voluptate fruentes. Hanc enim charitatem oportere nos su-
scipere ostendit cibus Christi.Est autē valde à ratione alienum & inutile, & nequa-
quam humanum,pecudum more pinguefactum, morti nutriri, deorsum in terram
respicientes,& è terra semper in mensas procumbentes, lautam ac delicatam vitam
persequentes,id quod bonum est, hîc vtique in vita quæ non est futura infodientes,
soli cibi deuorationi blandientes, propter quam in maiori pretio sint coqui quàm C
agricolæ. Non enim ferculorum circumlationem tollimus, sed consuetudinis pro-
1.Cor.10. lapsionem,tanquam calamitatem, suspectam habemus. Quocirca vitandus est lu-
xus, pauca quædam & quæ sunt necessaria sumentibus: & si quis nos inuitat infi-
delium, & accedere statuamus ( bonum est enim cum insolentibus hominibus non
versari ) quicquid apponitur iubet nos comedere,nihil interrogantes propter con-
scientiam. Similiter autem iussit nos ea quæ sunt in macello citra vllum scrupu-
lum vllámve curiosam indagationem emere. Non est ergo omnino à varijs cibis
abstinendum,sed in eis non est studium ponendum. Ea autem quæ apponuntur su-
menda sunt,vt decet Christianum, eum quidem qui nos inuitauit honorantes, in-
noxia & quæ satietatem non afferat sermonis & congressionis societate: sumptuo-
sas quæ inferuntur dapes indifferentes esse existimantes, obsonia despicientes, vt
Rom.14. quæ non sint paulò pòst. Qui comedit, eum qui non comedit non spernat. Qui au-
tem non comedit,eum qui comedit non iudicet.Cùm autem parum fuerit progres-
sus,præcepti quoque causam exponit: Qui comedit, inquiens, Domino comedit,
& Deo agit gratias: & qui non comedit,Domino non comedit,& Deo agit gratias:
vt sit iustum nutrimentum gratiarum actio. Porrò autem qui semper agit gratias, is
in voluptatibus non versatur. Quòd si etiam propter virtutem conuiuas aliquot in-
uitemus, eò magis à lautis & delicatis his cibis abstinendum est, euidens virtutis
exemplar

A exemplar nos ipsos exhibentes, sicut ipsi Christum exemplar habuimus. Si quid e- 1.Cor.8.
nim eiusmodi ciborum fratrem offendit, non comedam, inquit, in æternum, ne fra-
trem meum offendam. Exigua continentia hominem lucrifacio. An non habemus
potestatem comedendi & bibendi? Et veritatem cognouimus, inquit, quòd nihil est Ibid.9.
simulachrum in mũdo, sed solus reuera & vnus noster Deus, ex quo omnia, & vnus
Dominus Iesus. Sed tua, inquit, cognitione perit frater imbecillus, propter quem Ibid.8.
Christus mortuus est. Qui autem imbecillorum fratrum conscientiam verberant, in
Christum peccant. Hac quidem certè ratione Apostolus de nobis cautionem adhi- Ibid.5.
bens, cœnas discernit: non commisceri iubens, si quis frater inueniatur qui dicitur
esse fornicator, vel adulter, vel idololatra, cum eo nec comedere quidem, vel sermo
nem, vel obsonium, quod illinc procedit inquinamentum habẽs suspectum, quem-
admodum etiam mensas dæmoniorum. Bonum ergo esse nec carnem comedere,
nec vinum bibere, & ipse fatetur, & Pythagorici: hoc enim est potius feræ: & quæ
ex eis ascendit exhalatio, cùm sit crassior & turbidior, offundit animæ tenebras.
Quòd si quis ea quoque sumat, non peccat, modò ea moderatè ac temperatè sumat,
non eis nimium deditus, neque ab eis dependens, neque obsonia deuorans ac de-
glutiens. Ei enim vox personabit, dicens: Ne cibi gratia dissolue opus Dei. Est enim Rom.14.
insipientis, ea quæ publicis epulis apponuntur, valde mirari ac stupere, postquam
quæ ex verbo percipiuntur delitias senseris: multò est autem insipientius visum, ser
uire pulmentis, adeò vt eorum, vt ita dicam, intemperantia vnà cum eis feratur à mi
B nistris. Quomodo autem non est inutile è sedibus surgere, propémodum faciem in
ollas inijcientes, è sedibus tanquam è nido prospicientes, vt quod vulgò dicitur,
vaporem errantem excipiant per respirationem? Quomodo autem non est à ratio-
ne alienum, manus condimentis immiscere, vel perpetuò ad obsonium extendere,
non gustantium ritu, sed rapientium, se immodoratè & indecorè implentes? Li-
cet enim videre eos qui sunt eiusmodi, suibus vel canibus propter voracitatem as-
similari, potius quàm hominibus: qui adeò festinant vt saturentur, vt ambæ maxil-
læ simul inflentur, elatis vasis quæ sunt in facie: quinetiam sudorem præterea dif-
fundi, dum propter insatiabilitatem arctè comprimuntur, & propter intemperan-
tiam anhelant, festinatione indecora, & ab honesta consuetudine aliena, intruso in
ventrem nutrimento, & tanquam ad viaticum, non ad digestionem, edulia repo-
nunt. Atque cùm semper malum sit immoderatio, ea in nutrimentis maximè re-
probatur. Ingluuies itaque, quæ græcè ὀψοφαγία dicitur, nihil est aliud quàm in ob-
sonij vsu immoderatio. Dicitur etiam λαιμαργία, quæ quidem est circa guttur insa-
nia: & γαστριμαργία, quæ est in alimento intemperantia, & vt ipsum nomen indicat, in
ventrem insania. Insanus enim græcè μαργὸς dicitur. Eos itaque qui in epulis iniu-
riam facere meditabantur Apostolus increpans, dicit: Vnusquisque enim propriam 1.Cor.11.
cœnam præoccupat in comedendo: & alius quidem esurit, alius verò est ebrius. An
non domos habetis ad comedendum & bibendum? aut Dei ecclesiam contemni-
tis, & pudore afficitis eos qui non habent? Apud eos autem qui habent, insatiabiles
C qui citra vllum pudorem comedunt, seipsos dedecore afficiunt. Ambo autem ma-
lè faciunt, hi quidem qui eos qui non habebant grauarunt: illi verò qui suam in-
temperantiam apud eos qui habent aperuerunt. Necessariò ergo aduersus eos qui
pudorem exuerunt & insatiabiles, quibus nihil sufficit, cœnis impudentius vten-
tes, secundò rursus Apostolus in vocem erupit indignantem: Quamobrem fratres Ibidem.
mei conuenientes ad comedendum, alter alterum expectate. Si quis autem esurit,
domi comedat, ne in iudicium conueniatis. Ab omni ergo seruili & illiberali
actione & intemperantia abstinendum est, quæ apponuntur honestè tangendo,
& manum, & lectum, & barbam seruando impollutam, faciei decorem immo-
bilem, & non se huc & illuc versantem custodiendo, nec inter comedendum se in-
decorè gerendo, sed manum quidem ordinatè certis interuallis adhibitis porrigen-
do. Est etiam cauendum ne inter comedendum loquaris, fit enim vox indecora,
& non satis expressa ac significans, vt quæ plenis maxillis in angustum coërcetur:
& lingua quæ nutrimento premitur, à naturali operatione præpedita, oppressam
edit prolationem. Sed nec simul edere & bibere conuenit: est enim maximè in-
temperantiæ tempora confundere, quorum vsus non simul conueniunt. Et siue co- 1.Cor.10.
meditis, inquit, siue bibitis, omnia in gloriam Dei facite, veram frugalitatem ac te-
nuitatem tanquã scopum proponentes. quam mihi Dominus quoq; videtur signi-
ficasse, cùm panes benedixit & assos pisces, cũ quibus suos discipulos conuiuio ex- Ioan.ult.

cepit, cibi non nimis exquisiti pulchrum exemplar inducens. Ille itaq; piscis quem (cùm iussisset dominus) Petrus cepit, ipse quoque facile, diuinitus donatum, frugaleq; ac moderatum alimentum significat. Per eos autem qui ex aqua ascendunt ad escam iustitiæ, monet auferre luxuriam, & auaritiam, tanquam piscis numisma, vt separet vanam gloriam, & dato statere publicanis, redditis Cæsari quæ sunt Cæsaris, Deo seruet quæ Dei sunt. Habet autem stater alias quoq; solutiones quæ minimè ignorantur: sed ea tractare non est huius temporis: sufficit autem admonitio, ea nobis ad præsens institutum vtentibus, cùm à Verbi floribus minimè discrepet, quod quidem iam sæpe fecimus, ad eam de qua agitur quæstionē, fontem longè vti- A
1. Cor. 10. lissimum attrahentes, vt irrigentur quæ à Verbo plantātur. Etsi enim omnium mihi licet esse particeps, non omnia tamen expediunt: citò enim adducuntur vt ea faciāt quæ non licet, qui faciunt omnia quæ licet. Quemadmodum autem non aduenit iustitia per auaritiam & plura habendi cupiditatem, neq; temperantia per intemperātiam: ita nec victus Christiani ratio lautitijs paratur & delitijs. A cibis enim titillātibus & ad venerem incitantibus, procul est mensa veritatis. Etsi enim maximè propter homines omnia facta sunt, non tamen omnibus vti bonum est, sed neque semper: nam tempus, occasio, modus, & ad aliquid relatio, non paruum ei qui instituitur momentum afferunt ad id, quod sibi est vtile. Atque hoc quidem aptū est, & magnam vim habet ad abolendam vitam quæ est ventri dedita, ad quam quidem diuitiæ incitant, non eæ quæ sunt acribus oculis, sed nimiæ quæ circa gulæ insaniam cæcutiunt copiæ. Nemo autem ad res necessarias pauper est, neque homo vnquam despicitur. Qui enim & pennata & natatilia, & vt semel dicam, à ratione aliena nutrit animantia, vnus est Deus. eis autem nihil deest, etsi nullam de victu curam gerant. Nos aūt eis sumus eò præstantiores, quòd & Domini: & Deo eò familiariores, quòd & temperantiores. Facti autem sumus non vt comedamus & bibamus, sed facti sumus vt essemus ad Dei agnitionem: Iustus enim, inquit, comedens, impletur animo: ventres autem impiorum egeni, vt qui nunquam cessaturas cupedias appetant. Magnificentia autem non ad solum vsum, sed etiam ad socialem communicationem apta est: quocirca ij cibi cauendi sunt, qui non esurientes nos cogunt comedere, appetitiones nostras veluti quibusdam præstigijs fallentes. An non est enim vel in moderata frugalitate multiplex ciborum varietas? bulbi, oliuæ, aliquot olera, lac, caseus, fructus, & quæcunq; absq; iure coquuntur: & si assa carne vel elixa opus fuerit, ea est quoq; impertienda. Habetis hîc aliquid esculentum? dixit Dominus discipulis post resurrectionem. Illi verò, vt qui frugalitatem exercere ab eo didicerāt, ei assi piscis partem dederunt. Et cùm coram eis comedisset, dixit eis, inquit Lucas, quæcunq; dixit. Ad hęc autem ne bellariorū quidem, nempe fauorum, expertes esse oportet eos qui rationi conuenienter cœnant. Ex cibis enim ij sunt aptissimi, quibus ex se vti licet absq; igne, quoniam sunt paratiores: secundi autem, qui sunt frugaliores ac viliores, vt antè diximus. Iis autem qui ad luxū mēsarum propensi sunt, & suos sibi morbos enutriunt, præest dæmon helluo maximus, quem ego non verebor appellare Ventridęmonem, dæmonū omnium pessimum & perniciosissimum. Is autem est reuera similis ei qui dicitur ventriloquus. Melius est autem esse felicem, quàm habere cohabitantem dæmonē. In vsu autem virtutis esse censetur felicitas. Matthæus itaq; Apostolus seminibus, baccis & oleribus absq; carnibus vtebatur. Ioannes autem continentiam vlterius extendens, locustas & mel agreste comedebat. Porrò autem Petrus quoq; abstinebat à suibus. Sed ei persuasit quæ in eum cecidit ecstasis, vt in Actibus Apostolorum scriptum est: Et videt cælum apertum, & vas quoddam quatuor initijs alligatum super terram, omnes quadrupedes, & serpentes terræ, & volucres cæli in ipso. Et vox ad ipsum facta est: Surge, & occide, & comede. Petrus autem dixit: Nequaquam Domine, quoniam omne commune & immundum nunquam comedi. Et vox rursus ad eum secundò facta est: Quæ Deus mundauit ne communia dixeris. Ergo nobis quoq; vsus est indifferens: Non enim quæ intrant in os coinquinant hominem, sed in intemperantia inanis exercitatio. Deus enim qui finxit hominem: Omnia vobis, inquit, erunt in cibum. Olera autem cum charitate meliora, quàm vitulus cum fraude. Hoc nobis rectè in memoriam reuocat id quod antè dictum est, quòd non sunt olera charitas, sed secundæ sunt cœnæ cum charitate, in quibus bona quidē est media constitutio, in omnib. quidem, sed vel maximè in apparatu conuiuij. Nam sunt extrema quidem periculosa: media aūt bona sunt: medium est autem, quicquid non eget rebus necessarijs. Quę sunt enim secundum

Marginalia: Diuitiæ, πλοῦτος: Plutus autem cæcus fingitur. (B) — Matth. 6. — Prouerb. 13. — Luc. 24. — Græcè est allusio in δαίμονα & ἐνδαίμονα. (C) — Matth. 3. — Actuum 10. — Genes. 1. & 9.

A dum naturam appetitiones, circunscribuntur sufficientia. Porrò autem Iudæis per legem summo consilio annũciatur frugalitas. Innumerabilium quippe rerum vsum per Mosen abstulit pædagogus, causas illis adiungens, occultas quidem, quæ erant spiritales, apertas autem, quæ carnales, quibus etiam crediderunt: ijs quidem, quòd vngulam non habeant bifidam: illis verò, quòd cibum non ruminent: alijs verò, quòd ex aquatilibus sola squamas non habeant, adeo vt eis omnino pauca restarent apta ad alimentum. Quæ autem permisit tãgere, eorum rursus prohibuit morticinia, & quæ simulachris immolata, & quæ suffocata fuerant: nanq; ne hæc quidẽ licet tractare. Quoniam enim fieri non potest, vt qui iucundis vtitur, ab eis suscipiẽdis abstineat, ei contrariam vitæ rationem opposuit, donec qui ex more proficiscitur ad voluptatem ac delectationẽ impetũ dissolueret. Hominibus aũt sæpenumero quidem damnũ & molestiã procreauit voluptas: graues autẽ affectiones, & obliuionẽ, & insipientiã, in anima parit nimia alimenti copia. Iam verò dicũt etiã puerorum corpora rectè crescere in longitudinem, si desit nutrimentum: neq; enim prohibetur spiritus recurrens ad incrementum, cùm commodã cursus respirationẽ multum nutrimentum obsepiat. Vnde luxuriosam delitijsq; affluentem vitam qui sectatus est, veritatem Philosophorum Plato scintillam Hebraicæ veritatis suscitans: Mihi autem, inquit, cùm venissem, quæ illic beata vita dicitur, Italicis & Syracusanis mensis plena, nullo modo placuit. Bis die saturum viuere, & noctu nunquam solum dormire, & quæcunq; studia hanc vitam consequuntur. Ex his enim nullus homo
B ex ijs qui sunt sub cælo potest esse prudẽs, qui hæc à iuuentute exercet, nec sic admirabilis natura superabitur. Neq; enim Plato de Dauide non audierat, qui in sua ciuitate in medio tabernaculo sanctam arcam collocans facta omnibus qui eius ditioni parebant lætitia, coram Domino distribuit omnibus Israëlis copijs, à viro vsque ad *1. Para. 16.* mulierem, vnicuiq; tortam panis, & subcineritium panem, & laganum ex sartagine. Hoc est sufficiens nutrimentũ & Israëliticum: gentile autem quod est, superuacaneum. Qui autem eo vtitur, nunquam vt sit sapiens laborauerit, vt qui mentẽ in ventre infoderit, admodum similis pisci qui græcè ὄνος, hoc est, asinus dicitur: quem quidem dicit Aristoteles solum ex alijs animalibus habere cor in ventre. Hunc Epicharmus comicus vocat ἐκβαπτιλόγαστρον, hoc est, qui à communi ventris consuetudine discedit. Tales sunt ij homines, qui in ventrem crediderunt. Quorum Deus venter est, & gloria in ignominia ipsorum, qui ea quę sunt terrena cogitant, eis non bona prædixit Apostolus, dicens: Quorum finis est interitus. *Philip. 3.*

*Quomodo in potu se gerere oporteat,* *Cap. II.*

VINO autem modico vtere, aquam bibenti Timotheo, propter stomachum tuũ, dicit Apostolus, pulchrè admodũ ægrotanti & languenti *1. Tim. 5.* corpori cõueniens, quod ipsum cõfirmet ac corroboret auxiliũ adhibens: modicum aũt id decernens, ne eum laterét, hoc auxiliũ propter multitudinẽ alia egere curatione. Naturalis itaq; & sobrius potus si-
C tientibus necessarius, est aqua. Eã ex prærupta petra manantẽ, veteribus Hebræis vnicum ac simplicẽ temperãtiæ potum supeditauit Dominus. Oportebat autẽ eos vt *Exod. 17.* pote errantes esse maximè sobrios: postea sancta vitis botrum germinauit propheticum. *Num. 20.* Hoc signũ est ijs qui ad quietem ex errore instituti sunt, magnus botrus, nempe Verbum pro nobis expressum, cũ sanguis vuæ, Verbum scilicet, aqua temperari voluerit. Sic etiam sanguis eius salute temperatur. Duplex est autem sanguis Domini: alter enim est carnalis, quo redempti sumus ab interitu: alter verò spiritalis, quo scilicet vncti sumus. Et hoc est, bibere Iesu sanguinem, esse participem incorruptionis Domini. Verbi autem virtus est spiritus, quemadmodum sanguis carnis. Cõmoderata itaq; proportione & conuenientia, vinum quidẽ aquæ, homini verò spiritus admiscetur. Ac temperatum quidem vinum ad fidem cõuiuio excipit, Spiritus autem deducit ad incorruptionẽ. Amborum autem temperatura potus scilicet & verbi, dicitur Eucharistia, quę & laudatur, & bona est gratia: cuius qui per fidem sunt participes, sanctificantur & corpore & anima, cũ diuinum temperamentũ, hominem scilicet, diuina voluntas Spiritu & Verbo mysticè contemperauerit. Etenim verè quidem spiritus animæ quæ ab ipso fertur, coniungitur & familiaris efficitur: caro autem Verbo, propter quam Verbum caro factum est. Eos itaq; laudo & admiror qui vitam austeram delegerũt, & moderatæ vitæ medicamentũ aquam appetunt: vinũ autẽ tanquã ignis minas, quàm longissimè fugiunt. Placet ergo vt pueri & puellæ

ab hoc medicamento plurimum abstineant. Non enim ferueti ætati, quod est omni- A
um humidorũ calidissimum vinũ infundere conuenit, perinde ac si quis ignem in
ignem deriuet, ex quo agrestes immanesq; appetitiones, ardentesq; cupiditates, &
mores ignei incenduntur: excalefacti autem intus adolescentes euadunt propensi
ad libidines, adeò vt præuisum eorum damnum per corpus comprobetur, celerius,
quàm oportuit maturatis membris cupiditatis. Vino itaq; efferuescente, luxuriant
ac intumescunt vbera & pudenda, fornicationis imaginem iam prænunciantia: &
corpus cogit vulnus animæ inflammari, & pulsus impudẽtes anxiam superuacane-
am persequuntur diligentiam, temperantiam ac moderationem ad iniquitatem
prouocantes: hinc autem fit, vt mustum iuuentutis, fines pudoris transiliat. Oportet
autem quã maximè fieri potest iuuenum appetitiones conari extinguere, minarum
quidem Bacchicum fomitem auferentes, feruori autem contrarium medicamen-
tum infundentes, quod etiam ardentem animam cohibebit, & membra intume-
scentia retinebit, & quę iam agitatur cupiditatis incitamentũ sopiet. Qui autẽ sunt
in ipso flore ac vigore ætatis, cùm interdiu quidem prandiũ sumpserint quibus con
uenit prandiũ, pane solo gustato à potu omnino abstineant, vt ebibatur eorũ super-
flua humiditas, aridorũ esu veluti quadam spongia exhausta. Assiduè enim spuere
& emungi, & ad excernendum properare, sunt signũ intemperãtiæ ex immoderata
exhibitione humidorum, quæ plus quàm par sit in corpus infunduntur. Quòd si e-
tiam sitis accesserit, curetur aqua non multa hæc affectio. Neq; enim aqua nimiũ pro
fusè impleri conuenit, ne obruatur nutrimentum: comminuatur autem ad facien- B
dam concoctionem, dum cibi quidem assurgunt in molem: pauca sunt autem quæ
ad excretionem procedant. Quanquam etiã alioqui cõuenit diuinis cogitationibus
vino minimè grauari. Perpauca nam cogit, sicut ait Comicus, merũ cõprehendere,
tantũ abest vt temperantẽ eum possit efficere. Vespere autẽ tempore cœnæ vino v-
tendũ est: quoniã enim paulò magis sobrijs ac serijs lectionibus non amplius operã
damus, tũc fit frigidius quod ambit interdiu, vt introducto calore fouẽdus sit tepor
innatus qui deficit. Sed hîc quoq; vino est exiguo vtendum: neq; enim vsq; ad con-
tumeliæ crateras accedendũ est. Iis autẽ qui iam sunt prouectioris ætatis, hilarius
potu vti permittendũ est, ætatis refrigerationẽ, quæ tempore quodammodo emar-
cescit, vitis medicamento citra noxam suscitantes. Neq; enim seniorũ appetitiones
circa ebrietates naufragia amplius magna ex parte fluctuãt. Ratione enim ac tẽpo-
re, veluti quibusdam anchoris, in portu fundati, cupiditatũ tempestatẽ, quę ex ebrie
tate excitatur, ferũt facilius. quibus etiã in cõuiuijs licet aliquid vrbanè dicere ac le-
pidè. Cæterùm ijs quoq; sit potationis eousq; terminus, dũ & illabefactatã rationẽ,
& suo officio fungẽtem memoriam, corpusq; vino immotũ & inconcussum conser-
uent. ἀκροθώρακα, hoc est, qui suum pectus vino insigniter armauit, vocant qui sunt eo-
rũ periti. Melius est ergo ne labaris, antea desinere. Artorius autem quidam in libro
de longa vita (sic enim commemini) existimat oportere eousq; potũ solũmodo præ
bere, donec cibi humectentur, vt nobis vitam paremus longiorẽ. Conuenit ergo vt
vinum alij quidem loco medicinæ propter solam sanitatem adhibeant, alij verò vt C
se relaxent & exhilarent. Vinum enim primùm quidem facit eum, qui plus quàm
antè bibit, ipsum esse sibijpsi æquum & clementẽ, & conuiuis suauẽ, & famulis mi-
tiorem, & amicis iucundiorem: cõtumelia autẽ affectum par pari refert. Cùm enim
sit calidum, & habet suaues succos moderatè temperatos, turpia quidem excremen
ta liquefacit caliditate, acres autẽ & malos succos bono odore contẽperat. Illud er
Psal. 103. go bene dictum est: Exultatio animę & cordis, vinum creatum est ab initio, si quan-
Eccles. 13. tum satis est bibatur. Optimum est autem aqua plurima vinũ miscere, & non ipsum
tanquam aquam requirere, hebesq; & obtusum reddere ad temulentiã: neq; tanquã
aquam infundere propter vinositatẽ. Sunt enim ambo Dei opera, & ea ratione con
ducit ad sanitatem vtriusque mixtura, aquę scilicet & vini: quoniam ex eo quod est
necessarium, & eo quod est vtile, vita consistit. Ei itaq; quod est necessarium, nempe
aquæ plurimæ, ex vtili etiam aliquid immiscendum est. Vino autẽ immodico lin-
gua quidem præpeditur, labra verò soluuntur, oculi autem detorquentur ac diuer-
tuntur, cùm præ humiditatis multidudine visus tanquã in piscina natitet, & menti
ri coacti existimãt quidem omnia in orbem circumagi, numerare autem nõ possunt,
quæ procul sunt tanquam sint vnica. Atqui duos soles videre mî videor, ebrius dice
bat Thebanus senex. Motus enim visus à vini caliditate, sępius eius quod vnum est,
multiplicem apprehendit substantiam. nihil autem differt an visum moueat, an id

A quod videtur:idem enim visui ex vtrisq; áccidit,qui propter fluctuationem non potest subiectum perfectè comprehendere.Iam verò gressus tanquā fluctu impellente subsidunt,nec possunt locum tenere:ructusq; ac singultus,vomitusq; & desipientię pro ludo & delectamento subeunt.Quisquis enim est temulétus, vt dicit tragœdia,

*Eum ira uincit,caret sapientia.*
*Soletq;,lingua cùm permulta fuderit,*
*Inuitus audire quæ uolens dixit malè.*

Atq; ante tragœdiam quidem clamauit Sapientia: Vinum quod bibitur multum, in irritatione, &omni lapsu replet.Quocirca plurimi quidem dicunt oportere in cōuiuio se relaxare, & quæ sunt seria in auroram differre.Ego autem tūc maximè censeo rationē esse in conuiuium vnà introducendam,quæ instar pædagogi corrigat temulentiam, ne nobis imprudentibus conuiuium dilabatur ad ebrietatē. Quemadmodum enim nemo qui sapit, æquum censuerit claudere oculos, priusquā eat dormitū : ita nec rationem abesse à conuiuio quis rectè voluërit,neq; ante res gerendas eam præsopire rectè instituerit.Sed neq; poterit vnquā ratio à suo munere desistere, nec si dormiamus quidem:ea enim ad somnum est inuitanda.Perfecta enim sapientia, quæ est diuinarum & humanarum rerū scientia, quæ vniuersa complectitur ac continet, quatenus gregis hominū curā gerit, ars vitæ efficitur, & ea ratione quandiu viuimus simul adest perpetuò,propriū semper munus,nempe bonam vitam, obiens. Miseri autē qui è conuiuio temperantiā exigunt, quæ in compotationibus versatur intemperātiam, vitam esse beatam existimant. Quorum vita quidem nihil est aliud quàm comessatio,crapula,balnea,temetum,matulæ, otium,potus. Videre ergo licet aliquos eorum semimortuos,cespitantes,in collis coronas habentes,non secus ac amphoras inter se inuicem merū fundentes sub nomine beneuolentiæ: alios autem plenos crapula, sordidatos, in vultu pallentes & liuidos, & hesternæ temulentiæ adhuc aliam infundentes temulentiā.Bonū,bonum est,ô amici, vt cū hác imaginē simul ridiculā & miserabilē quālongissimè ab ea didicerimus,nos ipsos ad id quod est melius cōponamus & effingamus,timētes ne fortè nos quoq; alijs simile spectaculū fiamus,& ridiculi euadamus. Lepidè profectò dictū est:Fornacē quidē inter tingendū probare ferri aciē,vinū aūt cor superborū . Et est quidē ebrietas, vsus vini vehemētior : debacchatio verò, quæ Græcè est παροινία, quod ex huius vsu præter decorum loquendo,suscipitur dedecus.Crapula autem,quæ propter ebrietatem accipitur molestia & fastidium, quæ κραιπάλη græcè dicta est, eò quòd caput vibret & exagitet.Hanc vitam(si quidem vita est appellanda,quæ est ignaua & otiosa,libidini & voluptati dedita, temulentiam admirans & suspiciens ) diuina despiciens Sapientia,præcipit suis filijs:Ne sis vini potor,nec stipem extendas ad emptiones carnium.Omnis enim ebriosus & fornicator mendicabit,& induetur laceris & pannosis omnis somnolentus.Somnolentus enim est,quisquis ad sapientiam non vigilat, sed ab ebrietate in somnū demergitur. Et laceris, inquit, induetur debacchator,& per ebrietatē pudore afficietur,propter eos qui aspiciūt. Peccatoris enim foramina

Prouer. 2.
Eccle.19.& 31.
B
Prouer. 23.
Ecclesi.19.

C sunt ea, quæ ex veste carnali sunt lacerata, perforata libidinibus, per quæ dedecus intra animā cernitur, nempe peccatū,propter quod non facilè seruabitur vestis quę vndicunq; diuulsa est & dilaniata,multis marcescēs cupiditatibus, à salute separata ac discissa. Et ea ratione admonendū aptissimè subiungit:Cui væ,cui tumultus, cui iudicia,cui iniucundæ loquelæ, cui contritiones superuacuæ? Videte vinosum totum dilaceratum,qui ipsam quidem rationem despicit,seipsum autē tradidit & permisit ebrietati,& quot & quāta ei Scriptura minata est.Minis autē rursus subiungit: Cuius sunt liuidi oculi? an non eorum qui in vinis tempus consumunt? an non eorum qui inuestigant vbi fiant potationes? Hîc quidem eum qui potu nimio delectatur,vel iam rationi mortuum esse ostendit per liuentes oculos, quod est signū mortuis,eam quæ est in Domino mortem ei annuncians. Obliuio enim eorum quæ ad veram vitam pertinent,vergit ad interitum. Iurè ergo pædagogus vehementissimè prohibet,nostræ salutis curam gerens:Ne bibite,inquit,vinum propter ebrietatem. Quamobrem, rogabis? Quoniam,inquit,os tuū tunc loquetur peruersa. Iaces autē tanquam in corde maris, & tanquam gubernator in multis fluctibus. Ex hoc loco etiam adiuta dicit Poëtica:

Ibid.23.
Prouerb.23.
Esa. 28.

*Vinum hominum ueniens,uelut ignis corda furore*
*Pellit,ceu Libyci fluctuat unda maris,*
*Quam Notus aut Boreas agitant.* Et rursus: *-Arcanaq; cuncta*

*Vinum errans aperit, temulentis noxia, uinum,*
*Vinum quod mentes fallit.* Et quæ sequuntur.

Videtis naufragij periculum. Cor quidem multo potu obruitur, vini autem temulentiæ maris minis comparauit, in qua corpus tanquam nauis demersum, turpitudinis profundum subijt ac dedecoris, decumanis vini fluctibus obrutum. Gubernator autem, mẽs scilicet humana, supereminẽtis ebrietatis fluctu circumagitur, & in mari versans caligat, & propter ꝓcellæ tenebras à portu veritatis aberrat, donec in saxa mari latentia irruẽs, seipsum in voluptates impactũ perdiderit. Meritò ergo

Ephe. 5. Apostolus quoq; præcipit: Ne inebriemini vino, in quo est multa luxuria. Luxuria

*Allusio est in ἄσωτος & ἄσωτος.* autem græcè est ἀσωτία: nõ posse seruari ebrietatẽ, per ἀσωτίαν significans. Nam etsi aquam vinum in nuptijs fecerit, non tamen permisit inebriari: quod erat autem aqueum sensus legis viuificauit, operatorem scilicet ex Adam, cùm vniuersum mundum

Ioan. 2. repleuit sanguine, & potum vitis veritatis, temperamentũ veteris legis & Verbi noui, ad præstituti temporis complementum, pietati ac Dei cultui prębuit. Mysticum ergo signum sancti sanguinis vinum scriptura nominauit. Temulentiæ autem in-

Prouerb. 20 commoda reprehendens: Intemperans, inquit, res est vinum, & iniuriosa res ebrietas. Placet ergo rectę rationi, hyeme quidem propter rigorem eousque bibere dum non rigeas, ijs qui sunt ad rigorem procliues: alio autem tempore propter medelam intestinorũ. Quemadmodum enim cibo, vt non esurias, ita etiam potu ne sitias, vtẽdũ est, diligenter cauẽdo ne labamur (res est enim admodum lubrica & periculosa vini ingressus) ita autem fuerit anima nostra pura, sicca & luminosa. Ipsa autem B sicca anima, est sapientissima & optima: ea autem ratione etiam contemplatiua, nec ex ijs quæ ex vino ascendunt exhalationibus madefacta, instar nubis in molem corpoream coacta est. Non est ergo vinum Chium magna cura requirendum, si absit: nec Arethusium, si non adsit. Sitis enim est alicuius indigentiæ affectio, & ad eam explendam quærit conueniens auxilium, non autem vinum ardens ac fumosum. Languescentis autem & imbecillæ propter intemperantiam appetitionis sunt trãsmarinæ vini importationes, desipiente in desiderijs animo vel ante ebrietatem. Nam & Thasium odoriferum, & bene spirans Lesbium, & quoddam suaue Creticum, & dulce Syracusium, & Mendesium quoddam Ægyptiacũ, & insulare Naxiũ & aliquod aliud flagrans ex Italia. Multa quidẽ hæc nomina. Moderato conuiuæ vinũ vnũ, quod ex vnius Dei agricultura prouenit. Quid enim, an non vinũ in sua patria natũ cuiq; sufficit ad suã explendã cupiditatẽ? Nisi fortè etiam aquã sunt importaturi, quemadmodum stulti reges. Choaspes qui sic dicitur, est fluuius Indiæ, cuius est

*Hoc de regibus Persarũ scribit Herodotus & multi alij.* ad potum optima aqua Choaspia. Quemadmodum autem vinum vinosos, ita quæ inuehitur aqua diuites miseros efficit in delitijs. Et hîc spiritus sanctus per Amos elocutus: Qui bibunt vinum percolatum, & super lectum, inquit, sedent eburneum: & quæcunq; ea consequuntur, probri loco subiunxit. Decoris autem cura est maximè gerenda, cuius etiam Mineruam, quæcunq; ea fuerit, curam gerentem dicit fabu-

Amos 6. la, tibiarum abiecisse delectationem, propterea quòd id esset aspectu indecorum, vt-

Ibid. 7. pote vt vultu stabili, nec se huc & illuc flectente bibamus, non nimis auidè attrahen C tes, nec ante quàm biberimus, oculos indecorè se gerere cogentes, prę intemperantia inconuenienter haurientes, vt mentum non conspergamus, nec vestem madefaciamus, dum potus simul totus infunditur, faciem nostram phialis proluentes, atque adeo propẽmodum obruentes. Etenim susurrus, dum potus magno impetu fertur, & plurimo spiritu attrahitur, perinde ac si in vas fictile infundatur, guttur autem resonat propter rapidam ingurgitationem, turpe est & indecorum intemperantiæ spectaculum. Accedit his, quòd ei quoque est damnosum, qui illo vtitur, potus studium. Ne ad id quod tibi damnum affert, ô amice, festinaueris. A te non rapitur potus, tibi datus est, & te expectat: ne disrumpi festinaueris, ingenti hiatu attrahens. Impletur tua sitis, etsi tardius biberis, honestè ac decorè te gerens, dum potus vt decet, per partes diuiditur. Non enim tempore aufertur, quod præripitur

Ecclesi. 31. ab intemperantia. In vino, inquit, ne te virum fortem præbeas. Multos enim vinum

Esa. 5. reddidit inutiles. Ebrietate autem maximè vtũtur Scythæ, Celtæ, Iberi, & Thraces, quæ vniuersæ sunt bellicosæ gẽntes: pulchrumq; ac beatum vitæ studium se exercere putant. Nos autem qui sumus genus pacificum, ad vsum, non ad petulantiam & contumeliã conuiuantes, sobrijs haustibus amicitiæ ergò bibimus, vt vero & conuenienti nomine appellentur pocula amicitiæ. Quomodo Dominum bibisse existimatis, quando propter nos homo factus est? adeóne impudenter vt nos? an non

A non honestè ac temperatè? an non consideratè? Rectè enim scitote, ipse quoq; vino vsus est: nam ipse quoq; homo, & vinum benedixit, cùm dixit: Accipite, bibite, hoc est sanguis meus, sanguis vitis: Verbum, quod pro multis effunditur in remissionem peccatorum, sanctum lętitiæ fluentum allegoricè significat. Et quòd sobrium quidē ac moderatum esse oportet eum qui bibit, per ea quæ in conuiuijs docuit apertè ostendit: neq; enim ebrius docuit. Quòd autem vinum esset quod benedictum est, ostendit rursus, dicens discipulis: Non bibam ex fructu vitis huius, donec bibero ipsum vobiscum in regno patris mei. Cæterùm quòd vinum quidem esset quod bibebatur à Domino, rursus ipse de seipso dicit, Iudęorum cordis duritiem exprobrans: Venit enim, inquit, filius hominis, & dicunt: Ecce homo vorax, & potor vini, publicanorum amicus. Hæc quidem nobis firma & fixa sint aduersus eos qui dicuntur Encratitę. Porrò autem mulieres, id quod honestum est ac decorum vtiq; suscipientes, ne labra latis calicibus diffundentes, dilatato ore disrumpantur, admodum angustis in ore alabastris indecorè bibentes, capita quidem reflectunt, colla aūt nō, vt mihi quidem videtur, honestè denudant, & iugulū extendentes potum ingurgitant, conuiuis ea quæ possunt veluti denudantes: virilesq; eructationes vel potius seruiles attrahentes, in luxu & in delitijs tempus cōsumunt. Nihil enim quod probrum affert & vituperationem, viro, qui ratione est prædictus, conuenit, multò autem minus mulieri, cui vel ipsum tantum scire ipsam quæ nam sit, ei afferr pudorē. Ira autē, inquit, magna est mulier ebria: tanquam ira Dei mulier temulenta. Quamobrem? *Matth. 26.* *Ibidem.* *Luc. 7.* *Eccl. 26.*

B quoniam suam non celat turpitudinem. Facilè enim mulier ad inhonestè se gerendum attrahitur, si liberam suam animi electionem voluptatibus solummodo permiserit. Neq; verò alabastris bibere prohibuerimus, sed studere in ijs solùm bibere, vt superbum & arrogās resecamus: eis quę inciderint, citra vllam animi affectionē vti illis consulentes, ad quas prolabuntur appetitiones eis longè antè eminus resecantes. Iam verò aëris impulsus, qui redeunte quadam fluctuatione incitat ad eructandum, est sensim transmittendus. Nullo autem modo permittendū est mulieribus, vt appareant aliquid corporis denudantes, ne ambo prolabantur: hi quidem, vt qui ad videndū incitentur: illę verò, vt quę in se virorum intuitum attrahant. Semper autem, tanquam præsente Domino, honestè versandum est, ne nobis quoq; sicut Corinthijs succensens dicat Apostolus: Conuenientibus vobis non licet Dominicam cœnā comedere. Mihi videtur is qui à Mathematicis dicitur Acephalus, qui ante stellam errantem enumeratur, capite in pectus compresso, significare helluones homines, & voluptuarios, & ad ebrietatē propensos. Nam in his quoque ratiocinandi facultas, non in capite, sed in intestinis collocatur, iræ & cupiditati seruiens. Quamobrem quemadmodum Elpenor fregit calcaneum, cùm cecidisset propter ebrietatem: ita eorū cerebrum præ ebrietate caligine offusum, ad cor & iecur, hoc est, ad voluptatem & iram maiori casu décidit, quàm dicunt Poëtæ Vulcanum cælitus à Ioue in terram fuisse deiectum. Labor autem, vigiliæ, inquit, & bilis, & tormentum est cum homine insatiabili. Quocirca Noë quoq; indecora vinolentia scripta est, vt e- *1. Corint. 11.* *Genes. 9.*

C brietatem quàm maximè vitemus, manifestam scriptisq; mandatam lapsus imaginem habentes: propter quam qui ebrietatis texerunt turpitudinem, benedicuntur à Domino. Breuissimè itaq; comprehēdens Scriptura, vno verbo omnia dixit, quod homini erudito satis est vinum, & in eius cubili requiescet.

### *Quòd in sumptuosam uasorum supellectilem non sit studium conferendum,* *Cap.* III.

ARGENTEORVM itaq; & aureorū gemmeorumq; poculorum irritus & inutilis est vsus, vt qui sit visus solùm deceptio. Nam siue eis calidum mixtum liquorem infuderis, excalefactorum vasorum molesta est tractatio: siue rursus frigidum infuderis, qualitatē materia trāsfundit, liquorem corrūpens, & est damnosus diues potus. Valeant ergo Therideí calices, Antigonides, cāthari Labronij, & Lepastæ, & poculorū genera innumerabilia, trullæ præterea & psycteres, & œnochoę. Aurū enim & argētū, & priuatim & publicè est inuidiosa, vt semel dicā, possessio, si vsum excesserit: rara ad acquirendū, difficilis ad custodiendū, & nō apta ad vtendū. Quin etiā curiosa ac superflua tornatorū in vitro vana gloria, ad frangendū propter artem paratior, quæ simul docet & timere & bibere, est à bonis nostris institutis & legibus exterminãda. Sellæ aūt argenteæ, pelues & acetabula, scutellę & catini & præterea *De his Athenæus lib. 11.*

vasa aurea & argentea, nonnulla quidem ad ciborum ministerium, alia verò ad alios vsus quos me pudet dicere, ex sectili cedro, thuris virgulto, ebenoq; & ebore instructi tripodes, lectiq; argentei pedes & ex ebore cōpacti, auroq; interspersæ & testudine variatæ cubilis valuæ, & stragulæ vestes purpureæ, & aliorū colorū paratu difficilium, insolentū deliciarū argumenta, inuidiæ mollisq; ignauiæ insidiosa cōmoda, sunt omnia amandanda, vt quæ nihil habeant propter quod sit iurè in eis multum A
1. Cor. 7. studij ponendū: Tēpus enim contractū est, vt dicit Apostolus. Hoc ergo restat ne habitū ac figuram quampiā præ nobis ridiculè feramus: quemadmodū in pompis videntur nonnulli extrinsecus ita vncti & obliti ad grauitatem, vt stuporem & admirationem afferāt, intus autem sunt planè miseri. Hoc itaq; explicans accuratius sub-
Ibidem. iunxit: Reliquū est, vt & qui habent vxores, sint tanquam nō habentes, & qui emūt,
Gene. 1. tanq̃ non possidentes. Quòd si hæc dixit in coniugio, in quo dixit Deus, Crescite & multiplicemini, quomodo putatis arrogātiam ac superbiam nō esse ex authoritate
Matth. 19. Domini exterminandam? Quocirca dicit etiam Dominus: Vende quæ habes, & da
Mar. 10. pauperibus, & huc me sequere. Sequere Deum nudus ab arrogantia, nudus à pōpa momentanea, quod tuū est, quod bonū est, quod auferri nō potest, in Deū fidem, in passum confessionē, beneficentiā in homines possidens: quod quidem est possessio pretiosissima. Ego autem admitto etiā Platonē, qui lege lata apertè decernit, quòd neq; vt opes aureas & argenteas habeas laborare oportet, neq; vas inutile, quod nō cum vsu necessario moderatum quoq; sit, vt sit idem ad multa accommodatum: multiplex autem & varia possessio expurgetur. Pulcherrimè itaq; alicubi dicit diuina B
Baruch 3. Scriptura, ad eos qui sunt sui amantes & arrogātes verba dirigens: Vbi sunt qui gentibus imperabant, & qui dominabantur feris quæ sunt super terram? qui in cæli auibus illudebant, qui argenti & auri thesauros congregabant, in quibus homines habebant fiduciam, & nō est finis acquisitionis eorum? qui aurum & argentū fabricabantur, & erant soliciti? Non est inuentio verborum eorum: euanuerunt, & ad inferos descenderunt. Hæc est merces arrogantis superbiæ. Si nobis enim agrum colētibus, ligone & aratro opus est: ligonem autem argenteum, falcemq; auream nemo fuerit fabricatus: & materia quæ apta sit ad opus faciundum, non quæ sit diues in agricultura, vtimur: quid vetat quo minus in vasis quoque domesticis idem sentiant, qui quod est simile considerant? quorum modus sit vsus, non sumptus ac magnificentia. Quid enim, dic quæso, qui in mensa ponitur gladiolus, si clauos non habuerit argenteos, vel non fuerit factus ex ebore capulus, non scindit? An ad carnē diuidendā Indicū ferrū nobis fabricandū est, auxilium veluti quoddam euocantibus? Quid verò si fuerit peluis fictilis, an ablutarū manuum sordes nō excipiet? & vas fictile quo pedes lauamus, pedū sordes? Ergo ne etiā indignabitur mēsa, quæ est pedibus eburneis instructa, si panē vnius oboli portauerit? neq; verò lumen lucerna ministrabit, q̧ sit figuli opus, non aurificis? Ego aūt dico vel humile grabatū nihilo meliorem prębere accubitū, q̃ lectum eburneū. Cùm aūt ad substernendū sit satis ouinarū caprinarúmue pellium, adeò vt purpureis aut puniceis nō sit opus, propter primarum, quæ exitium attulerunt, deliciarū stultitiā, nihilo secius condemnare frugalitatē, quis tantus error & vana honesti pulchriq; persuasio? Videte, Christus in vili C
εὐτελεῖ catino cibum sumpsit, & fecit discipulos super herbā accumbere, & pedes eorum la-
Matth. 14. uit linteo accinctus. Deus à fastu alienus, & Dominus omnium, nunquid argente-
Mar. 6. um lauacrum è cælo deferens? Et à Samaritana potum petijt, quæ aquam vase fictili
Ioan. 13. hauriebat è puteo, aurū regale nō requirens, sitim autem docens facilè extinguere.
Ibid. 4 Scopum enim constituebat vsum, non nimiam & inutilem magnificentiam. In cōuiuijs autem comedebat & bibebat, non terræ metalla effodiens, neq; auri & argenti, hoc est, rubiginem redolentibus vasculis vtens: quodammodo enim spirat incensæ rubigo materiæ. In summa enim & alimenta, & vestes, vasa & supellectilem, & quæcunq; in domo sunt, atq; ipsam, vt semel dicā, vitā, oportet esse consentaneam rectæ Christiani hominis institutioni, prout conducibile fuerit, accōmodatam personæ, ætati, studio, ac tempori. Cùm enim simus vnius Dei ministri, oportet & possessiones, & quæ est in eis supellectilem, vnius honestæ vitæ signa ostēdere, & vnumquenq; hominem indistincta & non differenti fide, huic vniformi institutioni ea quæ consequuntur consentanea & conuenientia, per hanc vnicam affectionem videri facere. Quæ autem nec difficiliter acquirimus, & eis facilè vtimur, laudamus, & facilè custodimus, & facilè communicamus: meliora autem sunt quæ vtilia. Quę viliora autem sunt ac frugaliora, sunt meliora diuitibus. In summa, diuitiæ quæ non

rectè

A rectè administrantur, sunt arx vitij ac sceleris, in quibus multi cæcutientes, cęlorum regnum nunquam ingredi poterunt, in rebus quidem mundanis ægrotantes, superbè autem & arroganter propter delitias viuentes. Oportet aũt eos, qui contendunt ad salutem, hoc animo antea anticipasse, quòd vsus quidem causa, nobis sit vniuersa possessio: sufficientiæ autem gratia, possessio, quã etiam ex paucis quispiam parauerit. Vani autem sunt, qui propter insatiabilitatem repositis rebus pretiosis delectantur. Qui autem cogit, inquit, mercedes, coëgit in nodum perforatum. Is autẽ est qui cogit, & semẽtem excludit, & detrimento afficitur, qui nulli impertitur. Res est autem planè ridicula, & digna maximè quæ ludibrio habeatur, argentea vrinæ receptacula, & vitreas matulas viros inferre, quemadmodum suos introducunt consiliarios: & has, quæ sine ratione sunt, diuites mulieres, ex auro excrementorum facere receptacula, vt ne egerere quidem eis liceat absq; superbia. Vellem quidem eos per totam vitam aurum stercora existimare. Nunc autem arx vitij inuenta est pecuniæ cupiditas, quam Apostolus dicit esse radicem omnium malorum: quã quidam appetentes, à fide aberrarunt, & seipsos confixerunt multis doloribus. Veræ autem diuitiæ sunt, paupertas cupiditatũ: & vera animi magnitudo est, non propter diuitias sibi placere, & magnos spiritus sumere, sed eas despicere. De supellectile autem & vasis se iactare est perquàm turpe: non enim in eis studium suum ponere æquum est, quæ volenti licet vel è foro emere. Sapientia autem emi non potest terreno numismate, nec in foro, sed in cælo venditur: & iusto nummo venditur, nempe Verbo immortali, regali aureo. 1. Timot. 6.

B

*Quomodo in conuiuijs se recreare oporteat,* Cap. IIII.

A CONVIVIO aũt rationali absit comessatio & lasciuia iuuenilis: quinetiam inanes vigiliæ, quę de petulantia & turpibus conuicijs & maledictis sibi placent. Est enim hæc comessatio tibia inebrians, extemporalis amatorij pontis impotentiæ catena. Amor autem & ebrietas, & quæ ratione carent affectiones, à nostro choro procul amandentur. Vanà autem cum petulantia in comessatione versatur cantilena: in potu verò vigilię ebrietatẽ accersunt, & excitant libidinem, quæ sunt rebus turpibus faciendis dedita audacia. Sin aũt in tibijs, & psalterijs, choris & saltationibus, & plausibus Ægyptiorum, & dissolutis eiusmodi ocijs studiosè versentur, immodesti, insolenter, valdeq; à bona disciplina alieni euaserint, vtpote quos cymbala & tympana circunsonent, & fraudis instrumenta circunstrepãt. Reuera enim, vt mihi videtur, eiusmodi cõuiuiũ est ebrietatis theatrum. Cùm enim tenebrarũ opera exuerimus, induere arma lucis vult Apostolus, vt in die decorè ambulãtes, non in comessationib. & ebrietatibus, non in cubilibus & in impudicitijs versantes. Fistula itaq; tribuatur pastoribus: tibia autem superstitiosis hominibus, qui ad cultum idolorum cõtendunt. Reuera enim hæc instrumenta sunt à sobrio conuiuio amandanda, quæ magis bestijs quàm hominibus conueniunt, & ijs hominibus qui à ratione sunt alieniores. Ceruas enim fistulis demulceri accepimus, & in laqueos inter venandum cantu duci à venatoribus. Equis autem coëuntibus, veluti quidam hymenæus, tibia carmẽ canitur: id autem ab incitandis equis Musici appellarunt ἱππόθορον. Omne autem turpe spectaculũ, omnemq; turpem auditionem, &, vt semel dicam, turpem omnem sensum intemperantiæ, quod quidem est vera sensus priuatio, maximè oportet nos excindere, quæ in oculis & in auribus titillat & effœminat, voluptatem cauentes: fractorum enim cantuum, & flebilium Caricæ Musę modorum varia veneficia, intemperanti & prauo musicæ artificio mores corrumpunt, ad huius comessationis affectionem trahentes. Diuinum autem ministerium separans psallit spiritus: Laudate eum in sono tubæ. In sono enim tubæ suscitabit mortuos. Laudate eum in psalterio, quoniam lingua est psalterium Domini. Et in cithara laudate eum. Per citharam os intelligatur, quod spiritu tanquam plectro pulsatur. In tympano & choro laudate eum. Dicit Ecclesiam quæ meditata est carnis resurrectionem in pelle resonãte. In chordis & organo laudate eum. Organum dicit corpus nostrum, & chordas eius neruos, per quos numerosè & concinnè intenditur, & spiritu pulsatum, voces edit humanas. Laudate eum in cymbalis iubilationis. Oris cymbalum dicit linguam, quæ pulsatis labris resonat. Et ideo humanæ naturæ acclamauit: Omnis spiritus laudet Dominum: quoniam omnis spiritus quem fecit, curam gessit. Verè enim pacificum instrumentum homo est. Alia autem si quis curiosius inquirat, inueniet instru-

Margin notes: κῶμοι; παννυχίδες; Rom. 13.; C; Psal. 150.

menta bellica ad cupiditates inflammantia, vel amores incendentia, vel animum iramq; irritantia. In bellis itaq; suis tuba vtuntur Hetrusci, fistula Arcades, Siculi aūt instrumentis quæ appellant πηκτίδας, Cretẽses lyra, Lacedæmonij tibia, cornu Thraces, tympano Ægyptij, & Arabes cymbalo. Vno ergo instrumento, Verbo solo pacifico nos vtimur, quo Deum honoramus, non amplius veteri psalterio, & tuba, & tympano, & tibia, quibus mos erat ijs qui in bello se exercebãt, Deiq; metum contẽpserunt, & simul cõgregatis concionibus in choris vti, vt per eiusmodi modos solutus ac deiectus excitaretur animus. Duplex autem fit nostra in potu beneuolentiæ ergò inuitatio, ex lege. Si enim diliges Dominum Deum tuum, deinde proximum tuum: prior quidem, quæ est in Deum beneuola inuitatio, fiat per gratiarum actionem & psalmodiam: secunda autem, quæ est in proximum, per honestam vitæ consuetudinem. Verbum enim Domini inhabitet in vobis copiosè, dicit Apostolus. Hoc autẽ verbum se accommodat & reddit cõforme temporibus, personis, locis, atque adeo nunc quoq; in conuiuio versatur. Rursus enim subiungit Apostolus: In omni sapientia docentes, & admonentes vos ipsos psalmis, hymnis, & canticis spiritalibus, in gratia canẽtes in corde vestro Deo. Et rursus: Quicquid feceritis vel in sermone vel in opere, omnia in nomine Domini Iesu, gratias agentes Deo & Patri eius. Hæc est gratiosa ac iucunda nostra comessatio. Et si ad lyram vel citharam canere & psallere noueris, nulla in te cadet reprehensio. Hebræum iustum regem imitaberis, qui Deo est gratus & acceptus: Exultate iusti in Domino, rectos decet laudatio (dicit prophetia) Confitemini Domino in cithara, in psalterio decachordo ei psallite. Cantate ei canticum nouum. Nunquid autem decachordum psalterium Verbum Iesum significat, qui manifestatur elemento decadis? Quemadmodum autem antequam sumamus alimentum, laudare nos conuenit factorem vniuersorum: ita etiam in potu nos ei decet psallere, cùm eius creaturarum efficimur participes. Est enim psalmus numerosa & modesta laudatio. Cãticum spiritale psalmum dixit Apostolus. Postremò aūt antequam nos somnus inuadat, pium & sanctum est Deo gratias agere, vt qui eius benignitatem & gratiam fuerimus consecuti, ita vt cum diuino quodam afflatu nos ad somnum conferamus: & confiteri ei, inquit, in canticis labiorum, quòd in eius iussu fiat quicquid ei visum est, & ad eius salutare nihil est neque mancum neq; diminutum. Cæterùm apud Græcos quoq; veteres, in conuiuijs ad compotandum comparatis, & distillantibus poculis, ad Hebraicorum psalmorum similitudinem, canticum quod appellabatur σκολιὸν, id est, obliquum, canebatur cõmuniter omnib. voce simul pæana clamantibus, & nonnunquã etiam per cantici vices propinationem circumagentibus. Qui aūt erant ex eis musicæ paulò peritiores, etiam ad lyrã canebant. Verùm amatoria quidem procul absint cantica. Sint aūt cantica, Dei laudes: Laudent, inquit, nomen eius in choro, in tympano, & psalterio psallant ei. Et quis est chorus qui psallit? Ipse tibi narrabit spiritus: Laudatio eius in ecclesia sanctorum. Exultent propter regem ipsorum. Et rursus subiungit: Quoniam beneplacitum est Domino in populo suo. Sunt enim admittendæ modestæ & pudicæ harmoniæ, à forti & neruosa nostra cogitatione verè molles & eneruatas harmonias amandando quamlongissimè, quæ improbo flexuum vocis artificio vtentes, ad delicatã & ignauam vitæ agendæ rationem deducunt. Graues autem, & quæ ad temperantiam pertinent modulationes, ebrietati, proteruiæ valedicunt. Chromaticæ igitur harmoniæ, impudenti in vino proteruiæ, floribusq; redimitæ & meretriciæ musicæ, sunt relinquendæ.

*Coloss. 3.* *Ibidem.* *Psal. 32.* *Litera I decẽ apud Græcos significat.* *Ad Colos. 3.* *Psal. 62. & 118.* *Ibid. 149.*

A B C

### De risu, Cap. V.

ERVM autem ridicularum vel ridẽdarũ potius actionum imitatores, exigendi sunt à nostra republica. Cùm enim verba omnia à cogitatione & moribus emanent, fieri nõ potest vt verba aliqua emittãtur ridicula, quæ nõ procedãt à morib. ridiculis. Illud enim: Non est arbor bona quæ facit fructus malos, neq; arbor mala quæ facit fructus bonos, hîc quoq; applicandũ est. Sermo enim fructus est cogitationis. Si ergo qui risum mouent sunt exterminãdi à nostra republica, lõgè abest vt nobis permittat risum mouere. Absurdũ enim esset, quorũ auditores esse prohibitũ est, inueniri eorũ imitatores. Multò autẽ esset absurdius, studere vt ipse sis ridiculus, hoc est, probris incessendus & irridendus. Si enim ridiculam figuram suscipere, quemadmodum in pompis videntur nonnulli, in animum minimè induxerimus; quomodo internum hominem

*Matth. 7.*

magis

A magis ridiculam sustinere figuram iure passi fuerimus? & si personā nostrā non nostra quidem spōte in magis ridiculosam vnquā conuerterimus, quomodo in verbis studuerimus esse & videri ridiculi, id quod est omnium quæ sunt in homine longè preciosissimum, nempe sermonem ac rationem ludibrio habentes? Ridiculum est ergo hæc exercere, quandoquidem nec huiusmodi ridiculorum hominum oratio digna est quæ audiatur: per hæc nomina ad turpia facta consuefaciens. Vrbanè ergo & lepidè loquendum est, non risus autem mouendus: quinetiam ipse risus est comprimendus. Nam ipse quoq;, si quo modo oportet proferatur, præ se fert decorē & honestatem: sin aliter prodeat, indicat intemperantiam. Nam, vt semel dicam, quæcunq; sunt naturalia hominibus, ea ab illis minimè tollenda sunt, sed eis potius modus & conueniens tempus adhibendum est. Non enim quoniam homo est animal vi ridendi præditum, ideo perpetuò ridendum est, quandoquidem nec equus, cuius est proprius hinnitus, semper hinnit. Tanquam autem animalia ratione prædita, oportet nos temperatè componere, studij nostri acrimoniam & nimiùm intensam vehementiam moderatè remittentes, non autem inconcinnè dissoluentes. Quæ vultus enim tanquam alicuius instrumenti fit per harmoniam decora remissio, appellata est grȩcè μειδίαμα, hoc est, subrisio. Ita appellata est diffusio, & exhilaratio, & risus eorum in quorum vultu residet modestia. Immoderata autem & inconcinna vultus dissolutio, si sit quidem in mulieribus, appellatur Græcè κιχλισμὸς, hoc est, risus immodestus & lasciuus: is est autem risus meretricius: si autem in viris, καγχασμὸς, hoc est, cachinnatio. Est autem hic procorum risus insolens & proteruus. Stultus autem in

B risu extollit vocem suam, inquit Scriptura: Vir autem astutus vix sensim subridebit. *Eccl.21.* Astutum autem nunc dicit prudentē, qui contrario modo q̄ stultus affectus est. Sed neq; rursus oportet esse tristem, sed grauem & cogitantem: illum enim magis admitto subridentē, qui seuera visus est facie subridere, quàm qui nō seuera: minus enim fuerit risus ille irridendus. Oportet autem ipsum quoq; subrisum doceri & castigari, & si de rebus quidē turpibus fuerit, erubescere potius videri quàm subridere, ne videamur per consensum collætari: si autem de rebus molestis, conuenit potius tristiores videri, quàm lætari. Illud enim est considerationis humanæ indicium, hoc autem exhibet crudelitatis existimationē. Neq; enim est semper ridendū: est enim immoderatum: neq; si adsint seniores, vel aliqui quos æquum est revereri: nisi fortè ipsi quoq; vt nos exhilarent, vrbanè aliquid & lepidè dixerint. Sed neq; apud quoslibet ridendum est, neq; in omni loco, sed neq; omnibus, neq; propter omnia. Maximè enim adolescentulis & mulieribus risus est procliuis ad calumniam. Terribile autem aliquid & rigidum præ se ferre eminus, eos qui circunstant expellit. Potest enim vel solo aspectu grauitas, petulantiæ irruptiones frangere ac reprimere.

*Omnes autem stultos, ut uno uerbo dicam, uinum*
*Et ridere iubet molle, & saltare lubenter,*

mores effœminatos conuertens ad mollitiem. Est autem considerandum, quomodo hinc profecta dicendi licentia, turpitudinem vsqueadeo auget & amplificat, vt

C eam deducat ad turpiloquium.

*Edidit, & quod erat melius non dicere, uerbum.*

Improborum itaq; hominū mores in vino maximè perspici contingit, vt qui sint omni simulatione nudati, propter illiberalem vini petulantiæ in dicendo licētiam, per quam sopitur quidem ratio, quæ in ipsa anima ebrietate oppressa est & grauata: agrestes autem & omni vrbanitate carentes excitantur affectiones, quæ in animi imbecillitatem facilè dominatum occupant.

*De turpiloquio,* Cap. VI.

A Turpiloquio aūt & nos omnino abstinere oportet, & eis qui illo vtūtur os obstruere, & aspectu seueriore, & vultus auersione, & ea quȩ vocatur, subsannatione, & sȩpe etiā asperiori oratione. Quæ enim, inq̄t, *Matth.15.* ex ore exeunt, coinquinant hominē. Cōmunem, & gentilem, & indo- *Coinquināt,* ctum, intemperātemq; & petulantē eum ostendunt: non aūt propriū, *græcè κοινοῖ,* modestum, honestum, & temperantē. Cùm aūt turpia æquè in audiendo versentur *id est, cōmunem reddūt.* & in spectando, diuinus pædagogus eadem ratione pueris luctantibus, ne aures eorum offendantur, pudicos & modestos sermones, veluti quædam aurium munimēta adhibet, ne possit ad frangendam animam peruadere pulsatio fornicationis: oculos autem dirigit ad rerum honestarū spectaculum, melius esse dicens labi pedibus

Ephe.4. quàm oculis. Hoc turpiloquiũ propulsans Apostolus: Omnis, inquit, malus sermo A
Ibid.5. ex ore vestro non procedat, sed si quis bonus. Et rursus: Sicut decet sanctos, non nominetur in vobis turpitudo, & stultiloquium, vel scurrilis vrbanitas, quæ ad rem nõ pertinent: sed potius gratiarum actio. Si autem qui stultum dixit fratrem, obnoxius
Matth.5. est iudicio, quid de eo qui stulta loquitur pronunciabimus? An non etiã de eo scri-
Ibid.12. ptum est: Qui locutus verbum fuerit ociosum, reddet rationem Domino in die iu-
Ibidem. dicij? Et rursus: Ex sermone tuo iustificaberis, inquit, & ex sermone tuo condemnaberis. Quæ'nam sunt ergo salutares aurium defensiones, & quæ'nam sunt lubricorum oculorum disciplinæ? Quæ cum iustis sunt conuersationes, auresq; præoccupant, & eis prius obstruunt, qui volunt abducere à veritate. Bonos mores perdũt ma
Rom.12. læ consuetudines, inquit Poëtica. Præclarius autẽ Apostolus: Estote, inquit, odio habentes malum, adhærentes bono. Qui enim cũ sanctis versatur, sanctificabitur. Omnino ergo abstinẽdum est à turpibus auditionibus, & verbis, & spectaculis: sed multò magis à factis turpibus mundos esse oportet: partim quidem in ostendendis & nudandis aliquibus partibus corporis quas non decet: partim autem in contemplã
Genes.9. dis secretioribus partibus. Neq; enim turpem iusti denudationem in animum induxit aspicere modestus filius: sed texit modestia, quod nudarat ebrietas, spectandũ lapsum inscientiæ. Mundos autem nihilo secius esse oportet & à vocum prolationibus, quibus nullum esse oportet aditum ad aures eorum qui in Christo crediderunt. Hac ratione mihi videtur pædagogus nihil quod sit indecorum & inhonestum nobis loqui permittere, longè antè nos præmuniens aduersus incontinentiam. Præ- B
Exod.20. clarè enim & mira arte solet vitiorum radices excindere: quemadmodum, Non mœ
Matth.5. chaberis, per illud: Non concupisces. Adulterium enim fructus est concupiscentiæ, quæ quidem est mala radix. Similiter ergo hic quoque pædagogus securam nominum licentiam, tanquam vsum reprehendit, securam intemperantiæ congressionẽ amputans: se enim in nominibus insolenter gerere, facit vt meditemur inhonestè facere. In voce autem esse modestum, est seipsum exercere ad fortiter sustinendam libidinis impressionem. Profundiori autem oratione tractauimus, quòd neq; in nominibus, sed neq; in partibus ad coitum pertinentibus, & nuptiali congressione, in quibus imposita sunt nomina quæ vsu minimè trita sunt, eius quod verè turpe est ponitur appellatio. Nam neq; genu & tibia, & huiusmodi membra, & quæ eis imposita sunt nomina, sunt turpia, nec quæ per ea fit actio: membra autem & hominis verenda, verecundia quidem plena, nõ autem turpia censenda sunt. Turpis autem res est, quæ fit præter leges eorum operatio, ideoq; probro digna & supplicio. Turpe enim solum reuera est vitium, & quæ per ipsum aguntur. His ergo consequenter iurè vocetur turpiloquiũ, quæ de vitiosis factis habetur oratio, cuiusmodi est, si de adulterio vel de puerorum amore disseratur, & quæ sunt huiusmodi. Quanquam ineptę
Prouerb.10. quoq; nugæ sunt silentio prætermittendæ. Ex multiloquio enim, inquit, non effu-
Eccl.10. gies peccatũ. Luet ergo pœnas linguæ vitium. Est enim tacẽs qui inuenitur sapiẽs, & est qui odio habetur propter multam loquacitatem. Quinetiã ipse nugator affert
Ibid.10. sibijpsi fastidium ac satietatem. Qui enim multiplicat sermonem, odit animam suã. C

*Quæ'nam obseruare oporteat eos qui honestè simul uiuunt,* Cap. VII.

NOBIS autem absit quoq; irridere, à quo primũ incipit cõtumelia, ex quibus lites, pugnæ & inimicitiæ erumpunt. Diximus aũt cõtumeliã esse ebrietatis ministrã. Non ex solis aũt factis, sed etiam ex verbis ho-
Ibid.31. mo iudicatur. In cõuiuio autẽ, inquit, ne argueris proximũ, & ei opprobrij sermonẽ ne dixeris. Si enim vel maximè cũ sanctis cõuersari præ-
Prouer. 20. cipitur, sanctum irridere peccatũ est. Ex ore enim insipientium, inquit Scriptura, ba-
Ephes.5. culus cõtumeliæ: baculũ dicens, fundamentũ cõtumeliæ, cui innititur & super quã requiescit cõtumelia. Vnde admiror Apostolũ, qui hîc quoq; suadet, neq; scurrilia, neq; quę nihil ad rẽ pertinent, verba effundere. Si enim ꝓpter charitatẽ conuenitur ad cõuiuia: conuiuij aũt finis est, in eos qui simul sunt beneuolentia: charitatem aũt consequuntur cibus & potus, quõ non est vt ratio postulat conuersandum, & nec propter charitatem dubitandũ? Si enim conuenimus, vt quæ inter nos est beneuolentiã augeamus, quomodo inimicitias irridendo prouocamus? Satius est tacere q̃
Eccl.14. cõtradicere, peccatũ peccato adducẽtes. Beatus reuera vir ille est, qui nõ est lapsus in ore suo, vel non cõpunctus est in molestia peccati, vel ductus pœnitentia propter ea quę locutus peccauit: vel ideo quòd locutus neminẽ molestia affecerit. In summa

ergo

A ergo adoleſcentes & adoleſcentulæ ab eiuſmodi conuiuijs omnino abſtineant, ne labantur in ijs quæ non conueniebant. Inuſitatæ enim auditiones, & indecora ſpectacula, dum in eis adhuc fides fluctuat, mentem eorum euentilant: ætatis aũt inſtabilitas eas adiuuat, vt ad cupiditates ferantur præcipites. Quinetiam nonnunquã alijs cauſæ ſunt offenſionũ, dum florem ætatis, qui eſt maximè lubricus & periculoſus, oſtentant. Rectè enim videtur præcipere Sapientia: Cum muliere quæ viro ſubiecta eſt ne omnino ſedeas, & ne ſuper cubitum cum ea accubueris: hoc eſt, ne cum ea frequentius cœnes, neq; cum ea comedas. Et ideo ſubiungit: Neq; cum ea in vino congrediaris, nequando inclinet cor tuum in ipſam, & ſanguine tuo labetur ad interitum. Lubrica enim res eſt, quę eſt in vino libertas, quæ poteſt efflorеſcere. Viro aũt ſubiectam nominauit, ꝙ maius ſit periculũ ei qui vitæ ſocietatis vinculum conatur diſſoluere. quòd ſi aliqua neceſsitas euenerit quæ eas iubeat accedere, illæ quidẽ exterius amictu pulchrè tegantur, intus aũt pudore. Quęcunq; aũt non ſunt viro ſubiectæ, ijs eſt extremũ probrũ intereſſe conuiuio virorũ, idq; vinolentorum. Qui in tabernaculũ aũt oculos fixerint, immobiles, innixi cubitis adſint ſolis auribus. Quòd ſi etiam ſederint, ne pedes ſæpe permutent, nec alterũ fœmur alteri ſuperponãt, nec manũ mento ſuſtentent. Illiberale enim eſt & indecorũ, ſeipſum nõ ferre, idq; datur vitio adoleſcenti. Sæpe aũt moueri, habitũq; & figurã mutare, ſignum eſt leuitatis. Iam verò modeſti eſt & honeſti, & in cibo & in potu quod minus eſt eligere, idq; tardius & nõ procliuius, tam in principio ꝗ etiã in interuallis. Quinetiam priorem deB ſinere, & ab affectione ſe alienũ oſtendere: Comede, inquit, vt homo, quæ apponuntur: ceſſa aũt primus diſciplinæ gratia. Et ſi in medio plurium ſederis, ne ante ipſos manum porrigas. Non eſt ergo vnquam proſiliendum ab ingluuie perſuaſis? ſed nec quamuis cupientes non niſi aliquanto pòſt porrigere oportet, longa mora intemperantiam fatentes. Sed neq; interim videri tanquã feras cibo hærere, eumq; auidè arripere. Porrò aũt nec obſonij multum ingerendum eſt: neq; enim vt obſoniũ deuoret, ſed vt frumento veſcatur homini innatum eſt. Ante multos aũt ſurgere, & conuiuio excedere, eſt valde modeſti hominis. Cùm eſt, inquit, tempus ſurgendi, ne ſis poſtremus, & reuertere in domum tuam. Quinetiã dicebãt duodecim, cùm euocaſſent diſcipulorum multitudinem: Non eſt bonũ nos relicto verbo Dei, miniſtrare mẽſis. Quòd ſi hoc diligenter cauerunt, multò magis vitabant ingluuiem. Hi autem ipſi Apoſtoli ſcribentes fratribus qui erant in Antiochia, Syria & Cilicia: Viſum eſt, dixerũt, ſpiritui ſancto & nobis, nullũ vobis maius onus imponere, pręterquã neceſsitatẽ abſtinẽdi ab immolatis & ſanguine, ſuffocatis & fornicatione, à quibus vos ipſos cuſtodientes, rectè facietis. Oportet autem in vino petulantiam non ſecus fugere ꝗ cicutam: ambo enim ad mortem attrahunt. Oportet verò & profuſum riſum arcere, & immodicas lachrymas: ſæpe enim temulenti cùm maximũ cachinnũ ſuſtulerint, deinde rurſus neſcio qua perſuaſi vini inſolentia, deſcendunt ad lachrymas. A ratione enim alienum eſt, & eſſe effœminatum, & eſſe petulantem. Senes aũt adoleſcentes tanquam filios reſpicientes, rariſsimè quidem, ſed aliquando tamen cum eis luC ſerint, ſalſum aliquod dictum in eos torquentes, quod eos decorum doceat. Cum taciturno & verecundo facetè & vrbanè poteſt hoc modo agere: Meus aũt filius (de eo loquens qui tacet) non ceſſat loqui. Adoleſcentis enim verecundiam auget talis ludificatio, lepidè oſtendens bona quæ in eo inſunt, per falſam inſimulationem malorum quæ ei non inſunt. Eſt enim hæc quędã magiſtri docentis inuentio, per id quod non adeſt, id quod adeſt confirmans. Certè tale quid etiam facere conſtituit, qui eũ qui aquã bibit, & eſt ſobrius ac temperans, temulẽtum dicit eſſe & petulantẽ. Quòd ſi ſint etiam nonnulli qui alios lubenter irrideant, nobis quidem tacendum eſt, & verba ſuperflua ſunt tanquã plena pocula à nobis tranſmittenda. Lubricus enim & periculoſus eſt eiuſmodi ludus. Os autem temerarij appropinquat cõtritioni. Non ſuſcipies autem inanem auditionem: neq; vnà cũ iniuſto ſedebis vt ſis falſus teſtis, neq; in calumnijs, neq; in maledictis, ſed neq; in improbitate. Atq; ego quidem mihi videor modeſtorũ voci poſſe modũ imponere, quibus permittitur, vt is qui cũ alio diſſerit loquatur. Silentium enim eſt virtus mulierũ: à periculo aũt remotũ adoleſcentum munus eſt: probata aũt iam ætate bona eſt oratio. Senior loquere in cõuiuio, te enim decet: ſed citra impedimentum loquere, & in perfecta ſcientia. Adoleſcens, tibi quoq; permittit Sapientia, loquere, ſi te opus ſit, vix cùm bis interrogatus fueris. Sermonem aũt tuum paucis in ſummã redige. Vterq; aũt qui diſſerit, vocẽ ſuã metiatur iuſta proportione & cõmoderatione. Elatus enim clamor pronũciationis,

Ibid. 9. Eccl. 31. Actuum 6. Actuum 15. Eccl. 32.

est res insanissima: cum proximis autem ita loqui vt non audiaris, eius est qui nullo est sensu prædictus, neq; enim audient: & est hoc quidem pusilli & abiecti animi indicium, illud verò arrogantiæ. Absit etiam vehemens contentio pro inani verborum victoria: nobis enim finis est esse à tumultu & perturbatione alienos. & hoc sibi vult illud: Pax tibi. Priusquã autẽ audieris, ne verbũ respõde. Iam verò vox quoq; fracta & eneruata est fœminæ: modesti aũt est in voce moderatio, à magnitudine simul & prolixitate celeritateq; & multitudine arcentis suam orationem. Neq; enim prolixo est vnquam sermone vtendum, neq; multum loquendũ, nec nugãdum: sed neq; volubiliter & præcipitanter colloquendũ est. Ipsi enim voci (vt ita dicam) ius suum tribuendum est, importunisq; vociferatorib. & exclamatoribus ora sunt obstruenda. Ea enim de causa Thersitem plagis castigauit moderatus Vlysses: A

*Immodicis uerbis turbabat nam omnia solus.*
*Plurima mente sua temerè is confusa tenebat,*
*Sed certo nihil ordine.* Terribilis enim in interitu suo vir linguosus. Nugatorum itaq;, non secus ac veterũ calceorum, alia quidem vitio detrita sunt: sola aũt lingua

Ibidem. reliqua est ad damnum. Ea de causa quæ sunt vitæ vtilissima præcipit Sapientia: Ne nugeris in multitudine seniorum. Quinetiam nugas nostras radicitus excindens,

Ibid. 7. à Deo incipiens, & vt moderatè nos geramus constituens, dicit: Sermonẽ ne iteraueris in oratione tua. Poppysmata autem, & sibili, & digitis expressi soni, quibus accersuntur famuli, cùm sint rationis expertes significationes, ratione prædictis hominibus vitandi sunt. Frequenter etiam spuere, & violentius excreare, & etiam emungere in conuiuio, vitandum est. Conuiuarum enim habenda est vtiq; ratio, ne B præ nausea talem auersentur turpitudinem, quæ arguit intemperãtiam. Non enim sicut bobus & asinis simul est præsepe & sterquilinium: multi enim eodem tempore se emungunt, spuũt, & cœnant. Sternutatio aũt si cui euenerit, sicut etiam ructus, non oportebit sono proximos ciere, qui de mala educatione ferant testimonium: sed ructus quidem cum expirato aëre est transmittendus, ore decorè composito, nec instar personarum tragicarum diducto & hiante. Sternutationis autem qui conturbat strepitus, respiratione leniter repressa ac retenta auferendus est. Hac enim ratione, quàm honestissimè fieri poterit, conglobatæ spiritus minæ intus sunt extinguendæ, prouidendo vt ita transeat, vt etiam cæteros latẽre conetur, si vi expressus aër aliquod secum excrementum eduxerit. Arrogantiæ autem & insolentiæ signum est, ipsis velle sonis aliquid addere, non autem detrahere. Iam verò qui dentes scalpunt, & vlcera cruentant, tum sibijpsis molesti sunt, & tum inuisi proximis. Porrò autem aurium quoq; fricationes, & sternutamentorum irritationes, sunt suilli pruritus & confricationes, quæ intemperantem meditantur fornicationem. Fugiendæ quoq; sunt turpitudines quæ sub aspectum cadunt, & turpes qui de eis fiunt sermones. Sit autem grauis quoq; aspectus, colliq; conuersio ac motus honestus & decorus, & manuum quoq; in loquendo gestus. In summa enim, quies, pax, & tranquillitas, est Christiani propria.

C

*An unguentis & coronis utendum sit,* Cap. VIII.

ORONARVM autem & vnguentorũ vsus non est nobis necessarius: ad libidines enim & voluptates impellunt, maximè cũ nox propè est.

Luc. 7. Scio quòd cùm vnguenti alabastrũ ad sanctam cœnã mulier attulisset, vnxit pedes Dñi, & eum delectauit. Scio etiã veteres Hebræorũ reges auro & lapide pretioso ornata gestasse diademata. Sed mulier quidẽ Verbi nondũ fuerat particeps: erat enim adhuc peccatrix. Eo aũt quod apud se esse pulcherrimũ existimabat, nempe vnguento, honorauit Dominũ, atq; etiã ornamento corporis, nẽpe capillis suis, abstersit vnguentũ quod redundabat, libans Dño lachrymas pœnitentiæ: propterea eius peccata remissa sunt. Potest aũt hoc esse signũ ac symbolum doctrinæ Dominicæ & eius passionis: pedes enim qui vnguntur vnguento odorifero, doctrinã diuinã significant, quæ cũ insigni gloria orbẽ terræ per-

Psal. 18. uadit. Exijt enim sonus eorum in fines terræ. atq; adeò, si non nimiũ importunus vi-

Rom. 10. deor, pedes Domini sunt Apostoli prophetia delibuti, qui suaueolentis vnguenti, scilicet sancti sunt spiritus participes. Itaq; Apostoli, qui vniuersum orbẽ terræ obierunt, & Euangelium prædicarunt, per allegoriam dicuntur pedes Domini, de qui-

Psal. 131. bus per Psalmographũ quoq; prædicit Dominus: Adoremus in loco vbi steterũt pedes eius. hoc est, quò pedes eius peruenerunt, Apostoli, per quos prædicatus venit ad

A ad fines terræ. Lachrymæ autem sunt pœnitentia: & soluti capilli prædicabant liberationem à nimio amore superflui ornatus, & quæ cum prædicatione propter Dominum suscipienda erat, afflictionem in tolerantia, veteri illa per nouam fidem soluta vana gloria. Quinetiam significat passionem Domini. Mysticè sic intelligentibus, oleum est ipse Dominus, à quo ad nos pervenit misericordia. Vnguentum autem, adulterinum inquã oleum, est Iudas proditor, quo pedes vnctus est Dominus, dum à conuersatione in mundo liberabatur: vnguntur enim mortui. Lachrymæ autem sumus peccatores, qui in ipsum credidimus, quibus peccata remisit. Et capilli soluti, flens est Hierusalem, quæ inuncta fuerat, propter quam propheticæ fuerunt lamentationes. Nos autem docebit ipse Dominus Iudam esse falsum & adulterinum: Qui intinxerit mecum, dicens, in catinum, hic me tradet. Vides conuiuam dolosum. Hic ipse Iudas osculo prodidit Dominum: fuit enim idem hypocrita & simulator, fraudulentumq; ac dolosum habens osculum, alium veterem imitans hypocritam, & populum illum arguens propter quem dictum est: Hic populus labijs me honorat, cor autem eorum longè est à me. Est ergo satis probabile, eum quidem oleum significare, vt discipulum qui consecutus fuit misericordiam. Fraudulentum autem vtpote proditorem, oleum infectum ac venenatum. Hoc ergo erat quod prædicebant pedes vnguento delibuti, Iudæ nempe proditionem, cùm Dominus pergeret ad passionem. Quinetiam ipse Seruator lauans pedes discipulorum, mittens ipsos ad honestas actiones, eorum ingressum ad beneficia gentium significauit, quę
B decora & pura erant propria potestate præparans: ijs fragrauit vnguentum, & suauis odoris opus ad omnes perveniens ab ijs celebratũ est. Domini enim passio nos quidem bono odore repleuit, Hebræos verò peccato. Hoc apertissimè ostendit Apostolus, dicens: Deo gratia, qui nos semper facit triumphare in Christo, & odorẽ suæ cognitionis per nos manifestat in omni loco, quoniam Domini bonus odor sumus Deo in ijs qui salui fiunt, & in ijs qui pereũt: his quidem odor ex morte in mortem, illis verò odor ex vita in vitam. Porrò autem reges Iudæorum auro & gemmis & composita ac varia corona vtentes, Christi, Christum in capite symbolicè gestantes, imprudentes capite Domini ornabãtur. Lapis quidem certè preciosus vel margarita, vel Smaragdus, ipsum Verbum significat. Aurum autem rursus est ipsum Verbum ab interitu alienum, qui corruptionis virus minimè recipit. Atq; ipsi quidem nato aurum obtulerunt Magi, quod est regni symbolum. manet autem hæc corona immortalis ad imaginem Domini: non enim veluti flos flaccescit. Iam verò noui etiam Aristippum Cyrenæum. Molli ac luxuriosæ vitæ erat deditus Aristippus: is eiusmodi sophisticam proponebat orationem: Equus qui vnguento vngitur, in viri virtute non læditur, nec vnctus canis in virtute canis. Subiunxit, ergo nec homo: & ita conclusit syllogismum. Atqui equo quidem & cani nulla est ad vnguentum cognoscendum ratio: quibus autem sensus est ratione magis præditus, ijs illorũ vsus est magis vituperandus, vt qui pueriles odores exhibeant. Horum autem vnguentorum sunt infinitæ differentiæ: Brenthium, Metallium, & Regium, Plangonium, &
C Psagdæ Ægyptiæ. Simonides autem in Iambis non veretur dicere: Vngebar vnguẽtis & thymiamatibus, & baccari: nam quidam mercator aderat. Porrò autem vtuntur etiam vnguento ex lilijs, & vnguẽto Cyprio, & Nardus apud eos est in maximo precio: vnguentum quoq; ex rosis, & alia quibus vtũtur mulieres, & humida, & sicca, & quæ asperguntur vnguenta, & quibus fiunt suffitus: indies enim ab eis noua excogitantur, vt inexplebilem cupiditatem boni odoris insatiabilitate expleant: quocirca nimiam quandam decori pulchriq; curã redolent. Atq; eæ quidem & sua vestimenta, & vestes stragulas, domosq; suas suffumigant & aspergunt, atque adeo vel ipsas propémodum matulas olere cogunt vnguenti delitiæ. Quamobrem rectè mihi videntur nonnulli, cùm ęgreferrent tantum studij in vnguenta conferri, vt vel virilitatem ipsam effœminarent, & eorum artifices, nempe vnguentarios, à ciuitatibus quæ bonis legibus & institutis reguntur expellere, atq; adeo ipsos etiam floridarum lanarum infectores. Nefas est enim vestes dolosas & vnguenta in ciuitatem veritatis ingredi. Oportet autem viros in primis apud nos vnguenta non olere, sed vitę probitatem. Spiret autem fœmina Christum, qui est regalis vnctio, non vnguẽta & diapasmata: diuina autem semper vngatur pudicitiæ vnctione, sancto delectata vnguento, nempe spiritu. Hanc suauis odoris vnctionem hominibus notis suis Christus comparat, ex aromatibus cælestibus hoc vnguentum cõponens. Hoc aũt vnguento ipse quoq; Dominus vngitur, sicut per Dauid meminit: Propterea vnxit

Matth. 26.
Esa. 29.
2. Cor. 2.
Matth. 2.
ἐγκαλλωπισμός.
Psal. 44.

re Deus Deus tuus oleo lætitiæ præ participibus tuis. Myrrha, & stacte, & casia à ve stimentis tuis. Cęterùm ne fortè sicut vultures vnguenta abhorreamus, aut sicut scarabæi: hos enim rosaceo vnguento delibutos mori inquiunt, pauca quædam ex his vnguentis sunt eligenda fœminis, quæ virum minimè torpefaciũt. Nimiæ enim vnguentorum vnctiones, iusta quæ fiunt mortuis, potius quàm familiarem vitæ consuetudinem redolent. Quanquam ipsum quoq; oleum apibus & insectis est inimicum, verùm id prodest nonnullis hominibus, nõnullos autem ad pugnam excitat, & qui prius erant amici, id vnctos in stadijs eò deducit, vt omni contentione omnibusq; viribus in certamine depugnent: vnguentum autẽ, cùm molle sit oleum, non existimatis generosos mores posse effœminare? Quemadmodum autem delitias à gustu amouimus, ita certè à visu & odoratu sensus titillantem voluptatem amandamus, ne quam fugauimus intemperantiam, per sensus, tanquam per portas quibus desunt custodes, ei in animam aditum patefaciamus. Quòd si suauis odoris suffitum, pontificem magnum, nempe Dominum dicant Deo offerre, ne id esse sacrificium & suauis odoris suffitum intelligant, sed gratam & acceptam charitatem, spiritalem scilicet odoris suauitatem, Dominum altari offerre accipiant. Sufficit itaq; ipsum oleum & ad superficiem cutis pinguefaciendam, neruosq; relaxandos, & ad corporis grauiorem reprimendum odorem, si etiam oleo ad hoc opus habeamus. Suauis autem odoris studium, est esca ocij & mollitiei, quæ ad libidinosam & intẽperantem cupiditatem paulatim attrahit. Qui est enim intemperans, vndiquaq; ducitur ac trahitur, & à cibo, & à strato, & à conuersatione, & ab oculis, & ab auribus, & à maxillis, atq; adeò etiam à naribus. Et sicut boues annulis & funibus, ita etiam intemperans suffitibus, & vnguentis, & suaue olentibus coronarum odoribus trahitur. Quoniam autem voluptati nihil loci tribuimus, quæ ad nullum vsum qui vitæ conferat fuerit composita, agè hîc quoque eas distinguamus, id quod est vtile eligentes. Sunt enim suaues quidam odores, qui neque torporem afferũt, neque ad amores impellunt, neque impudicam coniunctionem ac meretricium contuberniũ redolent, sed sunt vnà cum temperantia salubres, & cerebrum quidem alunt quando malè affectum fuerit, et ventriculum corroborãt. Multùm ergo abest vt oporteat refrigerare floribus, quando quis vult neruos leues agilesque reddere. Nõ est enim vsus eorum omnino ablegandus, sed vnguento tanquam medicamẽto & auxilio vtendum est, & ad vires languentes excitandas, & ad catarrhos, et ad refrigerationes, & ad fastidium. Quemadmodum alicubi quoque dicit Comicus: Vnguentis manus vngitur, quod est pars sanitatis maxima, vt cerebri bonos odores faciat. Quinetiam pedum, per eorum quæ calefaciunt aut refrigerant vnctionem, fricatio exercetur vtilitatis gratia: vt scilicet ijs qui sunt repleti in capite, fiat quædam attractio & diuersio ad corporis partes quę sunt minus principales. Voluptas autem, cui nulla accedit vtilitas, meretriciorum est morũ opprobriũ, & medicamentum ad prouocandum. Omnino autẽ multùm differt μυρκλιφῶν, hoc est, esse vnguento delibutũ, ab eo quod est vngi vnguento: illud enim est effœminatum: vnguento autẽ vngi nonnunquam est vtile. Aristippus itaque Philosophus cùm vnguento vnctus esset, dicebat, malos malè perdendos esse cinædos, qui vt vnguẽti vtilitas malè audiret effecerãt. Honora aũt medicũ propter eius vtilitatẽ, inquit Scriptura: ipsum enim creauit Altissimus. A Domino aũt est medicina. Deinde subiũgit: Et vnguentarius faciet mixtionẽ. videlicet quòd data essent vnguẽta ad vtilitatem, nõ autẽ ad suauẽ sensuũ titillationẽ. In vnguentorũ enim incitamentis nequaquã ponendũ est studiũ, sed est id quod est in eis vtile eligendum, cùm etiam Deus hominibus oleũ nasci permiserit ad leuãdos labores. Desipientes autẽ mulieres, quæ canos quidẽ tingũt, capillos autem vngunt, celerius canescunt propter aromata desiccatoria. Quocirca sunt etiã qui vngũtur sicciores: facit autẽ siccitas caniores. Siue enim canities est pilorũ exiccatio, siue calidi defectus, siccitate propriũ pilorũ nutrimentũ ebibente humidum, & efficiente canos, quomodo vnguenta adhuc amauerimus propter quæ cani fiũt, qui canos fugimus? Quẽadmodũ autẽ qui naribus sunt sagacibus canes, feras odore inuestigãt: ita ex nimis curiosa vnguentorũ fragrãtia, qui moderati sunt & tẽperantes, venãtur intẽperantes. Porrò autẽ talis quoque vsus coronarũ ad comessationem, & in vino proteruiã comparatus effluxit. Ne caput mihi corona cinxeris. Ver est. In roscidis pratis & mollibus variisq; germinantibus floribus degere pulchrum est, natiua & syncera odoris suauitate apũ ritu fruẽtes. Ex puro autẽ prato contextã coronã pro ornamẽto domi circũferre non est moderatorũ hominũ. Nõ enim rosarum

A

B

C

Eccl. 38.

A rum baccis,vel violis,vel lilijs,vel aliquibus alijs eiusmodi floribus comam quæ se parat ad vinolentam petulantiam,eam herbis ac floribus variegantes,cótegere cóuenit.Alioqui enim etiam comam refrigerat circumposita corona, tum propter humiditatem,tum propter frigiditatem.Ea de causa medici cùm cerebrum esse frigidum per diligentem naturæ contemplationem cognoscant, pectora esse vngenda sentiunt & supremas nasi partes,vt sensim transiens calida exhalatio,eius frigiditatem possit rectè fouere.Longè ergo abest vt is sit floribus refrigerãdus. Accedit his, quòd florum quoq; delectationem perdunt ij qui sunt coronati.Visu enim nó fruũtur qui habent coronam supra oculos reuinctam.Sed neq; odoris suauitate, cùm instrumentis respiratorijs sint flores eis superiores. Cùm enim odor secundum naturam sursum emittatur & exhaletur, supra caput respiratio nulla delectatione fruitur,cùm suauitas odoris abripiatur.Sicut ergo pulchritudo, ita etiam flos delectat dum videtur,& oportet nos eorum quæ pulchra sunt aspectu fruentes, laude & gloria afficere opificem.Vsus autem eorum est noxius,& celeriter præterit, pœnitẽtiæ supplicio affectus.Statim autem probatur eorum vitæ breuitas:ambo enim flaccescunt,& flos,& pulchritudo.Cæterùm eos quidem qui ea contrectant, ille quidem refrigerat,hæc verò incendit & inflammat.Vt vno autem verbo absoluam,qui præter aspectum vsus eorum fruendo percipitur,petulantia est & iniuria, non autẽ delectatio.Oblectare autem nos honestè oportet tanquam in paradyso,Scripturã verè sequentes.Mulieris quidem corona vir est existimandus,viri autem matrimoni- 1.Cor.11.
B um,matrimonij autem flores,amborum liberi, quos quidem carnalium pratorum diuinus colligit agricola.Senum autem coronæ sunt filiorum filij: filijs autem gloria,inquit,sunt patres.Nobis autem Pater vniuersorum & vniuersæ ecclesiæ corona Christus est.Quemadmodum autem radices & herbæ, ita etiam flores proprias habent qualitates:& has quidem vtiles,illas verò noxias, alias autem periculosas. Hedera itaq; refrigerat:nux autem emittit spiritum qui torporem & veternum immittit,vt vel ipsa ostendit nominis etymologia. Narcissus verò flos est grauis odoris:id autem arguit nominis appellatio,vt qui neruis νάρκην, hoc est, torporem afferat.Rosarum autem & violarũ qui emittuntur odores,cùm sint modicè frigidi, grauedines capitis comprimunt,& coërcent.Nobis autem nullo modo non solùm vinà inebriari,sed ne mero quidem vti permissum est. Quinetiam crocus & flos ligustri in somnum minimè molestum deducũt. Porrò aũt multa ex ijs cerebrum quod est natura frigidum suis fouent odoribus,dum excrementa cerebri subtilia & minuta efficiunt.Hinc etiam dicunt rosam Græcè ῥόδον fuisse nominatam, quòd odoris plurimum fluxum emittat,& ideo citò marcescit. Cæterũ nec apud antiquos quidem Græcos fuit vllus adhuc coronarũ vsus.Neq; enim proci, nec qui luxuriosam vitam agebant Phæaces eis vsi sunt.In certaminibus autem primò fuit donũ Athletarum,secundò autẽ plausus & excitatio,tertiò foliorum coniectio, vltimò autem fuit corona,cùm Græciæ post tempora Medica,magna ad delitias facta esset accessio.Qui à Verbo itaq; seu ratione instituuntur,à coronis arcentur,nec existimant ra

*Prouer.17.*
*Matth.23.*
*Nux κάρυα Græcè, ἀπὸ τοῦ κάρου, hoc est à torpore aut grauedine.*
*οἰνοῦσθαι*
*ῥόδον ἀπὸ τῆς ῥοῦς ὀδωδῆς, hoc est à fluxu odoris.*
*ἄθλοις*
*ἐπιγόρμιος*
*φυλλοβολία*

C tionem esse à se alligandam quæ in cerebro sita est: non quòd conuiuialis per vinũ petulantiæ sit corona symbolũ,sed quòd ea sit dedicata simulachris.Sophocles certè Narcissum antiquam magnorum deorum coronam appellauit,id dicens de terrestribus:Sappho autẽ coronat musas rosa.Non es rosarũ Pieriarum particeps. Iunonem autẽ dicunt delectari lilio,& Dianam myrsine.Etsi enim flores quidem maximè propter hominem facti sunt,eos tamen cùm stulti accepissent, nó ad proprium vsum,quo grato animo vti poterant,sed in ingratum dæmonum ministerium abusi sunt.Ab eis ergo abstinendum est propter conscientiam.A turba autem & negotio remotæ segnitiæ corona signum est.Qua de causa mortuos quoq; coronãt, quo nomine re ipsa suo testimonio idola mortua esse asserũt:qui enim bacchãtur,nec absq; coronis orgia sua celebrant:postquam autem flores circumposuerint,postremò mirandum in modum incenduntur. Cum dæmonibus nullo modo communicandũ est.Sed nec viua Dei imago mortuorũ simulachrorum ritu est coronanda. Pulchra enim amaranti corona ei est reposita qui se rectè gesserit.Hunc florẽ terra ferre non potest:cælum solummodo eum potest producere.Accedit his, quòd à ratione alienum est,vt qui audierimus Dominũ spinis fuisse coronatum, ipsi venerabili Domini passioni per ludum insultantes, habeamus capita redimita floribus. Domini enim corona nos propheticè significabat,qui fuimus aliquando infrugiferi, qui circa illum positi fuimus per ecclesiam,cuius ipse est caput.Quinetiam est typus fidei.

*2.Cor.6.*
*ἀμάραντος & amarantum florẽ,& immarcescibilem significat.*
*Matth.27.*

Vitæ quidem,propter ligni ſubſtantiam:lætitiæ autem,propter coronæ appellatio A
nem:periculi verò,propter ſpinam:neq; enim citra ſanguinem licet ad Verbum accedere.Contexta autem corona marceſcit,& prauitatis perplexum ſertum diſſoluitur,& flos exiccatur. Marceſcit enim gloria eorum qui Domino minimè crediderunt.In altum autem elatum Ieſum coronauerunt,ſuam teſtantes inſcitiam. Hac enim ipſa de cauſa cùm duro corde ſint,ſapienter prolatam non intelligunt prophetiam,quam ipſi appellant Domini probrum & contumeliam.Non cognouit Dominum populus qui aberrauit:ratione ac conſideratione minimè fuit circuncîſus: nō fuerunt eius illuminatæ tenebræ:non nouit Deum:negauit Dominum: verum eſſe Iſraëlem perdidit:Deum perſecutus eſt:Verbum ſperauit afficerę cōtumelia: & quē tanquam maleficum crucifixit,tanquam regem coronauit. Quapropter in quē hominem non crediderunt,eum benignum Deum Dominum agnoſcent, & iuſtum. Quem exacerbauerunt vt ſe Dominum oſtenderet, hoc de eo in altum ſublato teſtati ſunt,diadema iuſtitię ei ſuper omne nomen exaltato tribuentes,per ſpinā ſemper florentem.Hoc diadema eſt inimicum ijs qui inſidiantur:ijs autem qui in eccleſia ſimul verſantur,amicū,eos circunſepſit,ac munijt. Hæc corona flos eſt eorū qui crediderunt in eum qui glorificatus eſt,cruentat autē & caſtigat eos qui nō crediderunt.Porrò autē hoc quoq; ſignum eſt rei à Domino bene geſtę,cùm ipſe ſuo capite & principali parte corporis omnia mala noſtra portauerit, propter quæ pungebamur.Cùm ipſe enim ab offenſionibus & peccatis, & eiuſmodi ſpinis, nos propria
[Heb.2.] paſsione liberaſſet,diabolūq; infirmaſſet & aboleuiſſet,orās meritò dixit: Vbi tuus B
[1.Cor.15.] ô mors ſtimulus?Atq; nos quidē vuas ex ſpinis colligimus,& ficus ex rubis : illi autem conſauciantur ac laniantur,ad quos manus extendit,nempe ad populum infidelem & infrugiferum.Poſſem aliud quoq; tibi myſticum dicere. Nam cùm omni-
[Exod.3.] potens vniuerſorum Dominus,quando cœpit per Verbum legem ferre, & Moſi ſuā
[Lucis, Græcè eſt φωτὸς, quod & lux eſt & homo.] potentiā voluit manifeſtare,ei diuina viſio oſtenditur formatæ lucis in rubo ardente.Spinoſa autē planta eſt rubus.Poſtquam Verbū legem ferre & cū hominibus cōuerſari deſijt,myſticè rurſus Dominus corona coronatur,hinc illuc vnde deſcenderat abiens,veteris deſcenſus principium inſtaurans,ac deintegro veluti * in ſummā
[*ἀνακεφαλαι ούμενος] redigens,vt quod primū per rubum Verbum viſum fuerat, per ſpinā rurſus aſſumptum oſtenderet omnia eſſe vnius potentiæ,cùm ſit vnus,& Patris qui vnus eſt,Filius,principiū & finis ſeculi.Sed digreſſus ſum à ſpecie pædagogica ad genus orationis quod verſatur in docendis dogmatibus:rurſus ergo reuertor ad propoſitum. Quòd ergo loco medicamenti,curationis gratia,& nonnunquā etiam moderatę recreationis,nō ſit reijcienda quæ ex floribus ſentitur oblectatio,& quæ ex vnguentis & ſuffitibus accipitur vtilitas,oſtendimus. Quòd ſi dixerint aliqui, qúænam eſt ergo amplius florum gratia ijs qui eis nō vtuntur?Sciant ex eis quoq; componi vnguenta,eaq; eſſe admodum vtilia.Suſinum quidem cōponitur ex lilijs & lirinis.Eſt autem calefaciens,aperiens,attrahens,humefaciens,abſtergēs, ſubtilium tenuiūq; partium,bilem mouens,molliens.Narciſsinum autē,quod cōponitur ex Narciſſo,
[μύρσινον] æquè iuuat ac Suſinū.Myrſinū verò,quod ex myrtis & myrſine conſtat, eſt conſti- C
pans:qui ex corpore autē emittuntur odores,coërcet ac cōtinet. Quod eſt ex roſis autē,eſt refrigerans.In ſumma enim,vt eis bene vtamur,ea fabricata ſunt.Exaudite
[Eccl.39.] me,inquit,& tanquam roſa plantata in fluentis aquarū germinate.Tanquā libanus ſuauem odorem emittite,& benedicite Dominum ſuper opera eius. De his autem multa dici poſſent,cùm nos flores & aromata ad neceſſarias vtilitates, non ad delitiarum inſolentiam facta eſſe dicamus.Quòd ſi eſt etiam aliquid concedendū,odore florum vti ſufficit:nequaquam aūt coronētur. Hominis enim curam gerit Pater,
[Ibidem.] & ei ſoli ſuā præbet artē propriā.Dicit itaq; Scriptura:Aqua & ignis,& ferrū,& lac, ſimila frumēti, & mel,ſanguis vuæ,& oleū,& veſtis, hæc omnia pijs ad bona ſunt.

*Quomodo ſe in ſomno gerere oporteat,* *Caput* IX.

Vomodo autem deinceps nos ad ſomnum conferemus modeſtiæ præceptorum memores,iam dicendum eſt. Poſtquam enim finito cōuiuio Deo benedixerimus,eumq; laudauerimus,quòd quæ erant noſtro vſui neceſſaria ſuppeditauerit,& eum diem tranſmitteremus cōceſſerit, nobis cōuertenda eſt ad ſomnū oratio:ſtratorū magnificentiam,puluinos auro inter-
[ξυστίδας] textos,auroq; variegatas glabras veſtes,ſtragulas,puniceasq; xyſtidas, & precioſiſ-
[γαυνάκας] ſimos gaunacas, & Poëtica purpurea Rhegea,veſtes q; ſupernè molles ac delicatas,
[ῥέγεα] & cubilia vel ipſo ſomno molliora valere iubentibus.Nam præterquā quòd vitupe
randa

A randa est hæc mollis & sensum titillãs voluptas, in lanuginosis plumis dormire est noxium, corporibus tanquam in vastum quendam hiatum cadentibus, propter stratorum mollitiem. Neq; enim eos, qui in eis versantes dormiunt, cõtinent, propterea quòd ex vtraq; parte corporis, cubile aggeris instar assurgat: neque vt cibi concoquantur permittunt, sed potius incendunt: quod quidem nutrimentum corrũpit. In planis autem & æquatis cubilibus decubitus, qui sunt somni veluti naturale gymnasium, ad nutrimentum digerendum conferunt. Qui autem possunt in alijs volutari cubilibus, somni veluti naturale hoc habentes gymnasium, alimenta facilius digerunt, & se ad omnes casus aptiores efficiunt. Præterea autem lecticę quæ pedes habent argenteos, magnam arrogantiam arguunt: & ebur quod est in lectulis, cùm elephanti corpus reliquit animam, non est vsqueadeo licitum sanctis hominibus, vt quod iners & ignauum sit quietis artificium. Nõ est ergo studium in ea conferendum: non est enim possessoribus eorum vsus prohibitus, sed quod in eis ponitur studium est prohibitum: non est enim sita in eis felicitas. Rursus autem est vanæ glorię Cynicę, ad dormiendum quemadmodum Diomedes se exercere, Agrestisq; bouis constrarat tergora subtus, nisi fortè cogat casus aliquis. Vlysses autẽ quod lecti sponsæ claudicabat, supposito lapide corrigebat: tanta frugalitas, & natiua, nec extrinsecus petita operis simplicitas, non solum apud priuatos, sed etiam apud veterũ Græcorum præfectos exercebatur. Quanquã quid de ijs mihi dicere opus est? Iacob humi dormiebat, & lapis erat ei puluinus: atq; quidem visum videre dignus est habi- *Genes.28.*
B tus, quod captum hominis superabat. Nobis autem vt rationi conuenit, simplici cubili & frugali vtendum est, quod habeat id quod nos iuuet commoderatum & conueniens: si æstus sit, quod protegat: si sit frigus, quod foueat. Sit autem lectus nõ affabrè & curiose factus, pedésq; habeat planos ac læues: nimis enim curiosæ & exquisitæ tornaturæ, sunt sæpe reptilium semitæ animantium, dum in incisuris artis circumaguntur, & minimè dilabuntur. In primis autem cubilis mollitiem commoderatè & conuenienter virilem esse oportet & masculam: non oportet enim somnum esse perfectam corporis solutionem, sed tantùm remissionem. Et ideo eum dico esse assumendum non ad ocium & socordiam, sed ad negotiorum & actionum quietem. Ita ergo dormitandum est, vt facilè excitemur. Sint enim, inquit, vestri lumbi *Luc.12.* præcincti, & lucernæ ardentes, & vos similes hominibus dominum suum expectantibus, quando redibit à nuptijs, vt cùm venerit & pulsauerit, statim illi aperiãt. Beati serui illi quos veniens Dominus inuenerit vigilantes: dormientis enim hominis nullus vsus, quemadmodum nec mortui. Quocirca sæpe etiam noctu è lecto surgendum est, Deusq; est laudandus: beati enim qui in ipsum vigilarunt, seipsos assimilãtes Angelis, quos nos ἐγρηγόρους, hoc est, vigilantes vocamus. Dormiens autem homo nullus vllius est precij, non magis quàm qui non viuit. Qui autem lucem habet, vigilat, & tenebræ eum non comprehendunt: nec itaq; somnus, quoniam non tenebræ. Ad Deum ergo vigilauit qui fuit illuminatus. Qui autem talis est, viuit. Quod *Ioan.1.* enim factum est in ipso, vita erat. Beatus homo, inquit Sapientia, qui me audiet, & *Prouer.8.*
C homo qui viãs meas custodit, vigilans in foribus meis, interdiu obseruans stationẽ mei ingressus. Ne ergo dormiamus vt cæteri, sed vigilemus, & sobrij simus. Qui e- *1.ad Thes.5.* nim dormiunt, noctu dormiunt: & qui ebrij sunt, noctu ebrij sunt: hoc est, in tenebris ignorantiæ. Nos autem qui diei sumus, sobrij simus: omnes enim vos estis filij lucis, & filij diei. Nõ sumus noctis, nec tenebrarum, sed qui vt verè viuamus, recteq; ac syncerè sentiamus, nostri maximè curã gerit, plurimo tempore vigilauit, id solũ sibi reseruans quod erat ad suam sanitatem vtile. Id autẽ non vsqueadeo est vsitatũ, sed exercitationis meditatio perpetuas vigilias gignit ex laboribus. Ne cibi ergo nos grauent, sed alleuent, vt quammaximè fieri poterit somno minimè lædamur, vt grauantur natantes quibus appenduntur onera. Rursus aũt veluti ex abysso infernè nos alleuabit sobrietas ad paratam vigiliæ stationem: est enim somnus qui nos deprimit morti similis, eò deducens per ignorationem vt sensu careamus, & clausis à cilijs oculis lucẽ abscindit. Hanc ergo lucem, qui sumus veræ lucis filij, ne foras excludamus: intus aũt ad nos conuersi, absconsi hominis visum illuminãtes, & ipsam veritatem contemplantes, & eius fluxionum effecti participes, vera somnia euidenter prudenterq; reuelemus. Eorum autem qui crapula grauantur, ructus, & eorum qui nimio cibo onusti sunt oscitationes, stragulisq; inuolutum stertere, ventrumq; in arctum compressorum murmura, oculum animæ perspicacem obruunt, impleta cogitatione varijs visionibus. Causa autem est alimentum superuacaneum, quod ra

tiocinatiuam animæ facultatem eò trahit,vt sensu priuetur penitus. Immodicus e- A
nim somnus,nec corporibus nec animis nostris vllam affert vtilitatem, nec ijs quæ circa veritatem versantur omnino conuenit actionibus,etsi sit secundum naturam.
Genes.19. Loth autem iustus(regenerationis enim œconomiæ in præsentia mitto expositionem)non ad illum nefarium inductus esset coitum,nisi inebriatus fuisset à filiabus, somnoq; oppressus & grauatus.Si ergo causas quæ ad multum ac profundum somnũ nos impellunt præciderimus,magis sobriè dormiemus: non enim oportet eos, qui inhabitantem & vigilantem intus habent rationem,tota nocte dormire. Noctu autem maximè expergiscendum est quando dies desinũt,& huic quidem danda est opera literis,illi verò ars sua est inchoanda: fœminas autem oportet aggredi lanificium.Nobis autem,vt semel dicam, omnibus aduersus somnum decertandum est, nos paulatim accessione facta assuefacientibus, vt maiori parte temporis per vigiliam simus vitæ participes.Somnus enim,non secus ac publicanus, dimidium vitæ tempus nobiscum diuidit.Longè autem abest vt permittatur interdiu dormire ijs, qui maximam noctis partem ad vigilias resecant. Tædia autem & dormitationes, pandiculationes,& oscitationes,sunt instabilia animæ fastidia.Postremò autẽ hoc sciendum est, non esse animam quæ somno indiget: ipsa enim est semper mobilis: sed corpus,quod quieti traditur,resoluitur, dum anima non amplius corporaliter operatur,sed per seipsam mente versat:quo fit vt quæ sunt vera somnia, rectè reputanti sint sobriæ animæ cogitata,vt quæ ad corporis affectiones per consensum nõ trahatur,& ipsa sibijpsi quæ sunt optima consulat.animæ autem est interitus,si ipsa B
apud se omnino quiescat:& ideo Deum mente semper versans,per continuam consuetudinem corpori vigiliam inserens,exæquat hominem angelicæ gratiæ: vitę æternitatem ex meditatione vigiliæ suscipiens.

*Quænam de procreatione liberorum tractanda sint,* Caput X.

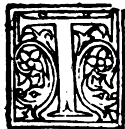
Empus autem coniunctionis considerandũ ijs solis relinquitur, qui iuncti sunt matrimonio:qui autem matrimonio iuncti sunt,ijs scopus est & institutum,liberorum susceptio:finis autem,vt boni sint liberi: quemadmodum agricolæ seminis quidem deiectionis causa est, quòd nutrimenti habendi curam gerat:ei autem agriculturæ finis est, fructuum perceptio. Multò autem melior est agricola,qui terram colit animatam: illè enim ad tempus alimentum expetens,hic verò vt vniuersum permaneat curam gerens,agricolæ officio fungitur:& ille quidem propter se,hic verò propter Deum plantat ac seminat. Dixit e-
Genes.1. nim:Crescite & multiplicemini.& subaudiendum est:Et ea ratione fit homo Dei imago,quatenus homo cooperatur ad generationem hominis. Non est quęlibet terra apta ad suscipienda semina:quòd si etiam sit quælibet,non tamen eidem agricolæ.Neq; verò seminandum est supra petram,neq; semen est iniuria afficiendũ,quod quidem dux est & princeps generationis, estq; substantia quæ simul habet insitas naturæ rationes.Quæ sunt autem secundum naturam rationes, absq; ratione præternaturalibus mandando meatibus,ignominia & probro afficere, valde est nefarium & impium.Videte itaq; quomodo sapientissimus Moses infrugiferã aliquan- C
Leuit.11. do sationem symbolicè repulit:Non comedes,inquiens,leporem,nec hyænã. Non
Deut.14. vult homines esse qualitatis eorum participes,neq; eis ęqualem gustare libidinem: hæc enim animalia ad explendum coitum venereum,feruntur insano quodam stupore.Ac leporem quidem dicunt quotannis multiplicare Venerem,pro numero annorũ quos vixit habentẽ foramina:& ea ratione dum leporis esum prohibet,significat se dehortari puerorũ amorem.Hyænam autẽ vicissim singulis annis masculinũ sexum mutare in fœmininũ:significare autẽ non esse ad adulteria prorumpendum, eum qui ab hyæna abstinet.Sed nõ oportere quidem his assimilari animalibus,per propositam prohibitionẽ sapientissimũ Mosen citra vllam dubitationẽ significare, ego quoq; assentior:non tamen eorũ quæ symbolicè dicta sunt expositioni cõsentio:nunquam enim naturæ vis potest afferri vt mutetur: quod autem semel in ipsa effictũ est,nefas est affectione in contrariũ refingi:affectio enim est,non natura.Eius enim quod formatum est adulterare charactẽrem, non autem ipsam formã potest transformare affectio.Etsi enim multæ aues dicuntur temporum vicibus mutare &
κόττυφος. vocem & colorem:quemadmodum merula ex nigra quidem flaua, ex ea autẽ quæ suauiter canebat,obstrepera & turbulẽtum sonum edens fieri dicitur: itidem etiam luscinia & colorem & vocem,cùm Solis fiunt conuersiones,mutare asseritur: cæterùm

A rum non mutant ipsam naturam, vt figura mutata fiat mas ex fœmina, sed recens quidem pennarum productio, nouæ vestis instar, quandam pennarum tincturam, tanquam flores emittit: sed ea paulò pòst minis hybernis exhalatur, sicut flos, dum color flaccescit, ipsa quoq; vox similiter frigore malè vexata, marcescit. Cùm enim exterior cutis ab aëre ambiente densatur, quæ in collo sunt arteriæ compressæ & constipatæ, spiritum quoque comprimunt: is autem in arctum valde coactus, suffocatum & oppressum edit sonum. Rursus itaque ambienti aëri assimilatur, & vere relaxatus ex angustijs liberatur spiritus, qui fertur per dilatatas, quæ tunc clausę erãt, arterias. Non profert itaq; amplius cantum flaccidum & languidum, sed iam emittit canorum: etiam vox eorum latius diffunditur: etiam auium vocis existit cantus, ver. Nequaquam ergo credendum est hyænam vnquam mutare naturam: idem enim animal non habet simul ambo pudenda masculini & fœminini, sicut nonnulli existimarunt, Hermaphroditos prodigiose narrantes, & inter masculum & fœminam, hanc ex viro & fœmina constantem naturam innouantes. Valde autem falluntur, vt qui nõ animaduerterint quàm sit filiorum amans omnium mater & genitrix natura. Quoniam enim hoc animal, hyæna inquam, est salacissimum, sub cauda ante excrementi meatum, adnatum est ei quoddam carneum tuberculum, fœminino pudendo figura persimile. Nullum autem meatum habet hęc figura carnis in vllum vsum desinens, vel in matricem inquam, vel in rectum intestinum: solam autem habet multam concauitatem, quæ inanem excipiat libidinem, quando auersi fuerint
B meatus, qui in concipiendo fœtu occupati sunt. Hoc ipsum autem & masculo & fœminæ hyænæ adnatum est, quòd sit insigniter pathica: masculus enim vicissim & agit & patitur, vnde etiam rarissimè inueniri potest hyæna fœmina. Non enim frequenter concipit hoc animal, cùm in eis tutò redundet satio præter naturam. Hac etiam ratione mihi videtur Plato in Phædro, amorem puerorum repellens, eum appellare bestiam, quòd frænum mordentes, qui se voluptatibus dedunt, libidinosi, quadrupedum more ingrediuntur, & filios seminare conantur. Impios autem tradidit Deus, vt ait Apostolus, in passiones ignominiæ: nam & fœminæ eorum mutauerunt naturalem vsum, in eum qui est præter naturam: similiter autem & masculi eorum, relicto vsu naturali, exarserunt in desiderio sui inter se inuicem, masculi in masculos turpitudinem operantes, & mercedem quam oportuit erroris sui in se recipientes. Atqui ne libidinosissimis quidem animantibus concessit natura excremẽti meatum superfluum: vrina enim in vesicam excernitur, humefactum alimentum in ventrem, lachryma verò in oculũ, sanguis in venas, sordes in aures, mucus in nares defertur: recti autem intestini fimi sedes cohæret, per quam excrementa expuũtur. Sola ergo varia in hyænis natura, superfluo coitui superfluam hanc partem excogitauit, & ideo est etiam aliquantisper concauum, vt prurientibus partibus inseruiat, exinde autem excæcatur concauitas: non fuit enim fabricata ad generationẽ. Hinc nobis manifestum atque adeo in confesso est, vitandos esse cum masculis concubitus, & infrugiferas sationes, & Venerem præposteram, & quæ natura cohære-
C re non possunt, androginorum, id est, qui viri sunt simul & mulieres, coniunctiones, ipsam naturam sequentibus, quæ per partium prohibet constitutionẽ, vt quæ masculum non ad semen suscipiendum, sed ad id effundendũ virum fecerit. Hieremias autẽ quando dicit, hoc est, per ipsum loquens Spiritus: Spelunca hyænæ facta est domus mea, quod erat ex mortuis corporibus alimentum abhorrens: sapienti allegoria reprehendit cultũ simulachrorum: verè enim oportet ab idolis esse purã domum Dei viuẽtis. Rursus Moses lepore quoq; vesci prohibet. Omni enim tempore coit lepus, & salit assidente fœmina eam à tergo aggrediens: est enim ex ijs quæ retro insiliũt. Concipit aũt singulis mensibus, & superfœtat: init aũt & parit. Postquã aũt peperit, statim initur in quocũq; fuerit leporario: neq; enim vno cõtenta est matrimonio: & rursus cõcipit adhuc lactens, habet enim matricẽ cui sunt duo sinus, & nõ vnus solus matricis vacuus sinus, est ei sufficiens sedes ad receptaculum coitus: quicquid enim est vacuum, desiderat repleri. Accidit autem vt cùm vterum gerunt, altera pars matricis desiderio teneatur, & libidine furiat, quocirca fiunt eis superfœtationes. A vehementibus ergo appetitionibus, mutuisque congressionibus, & cũ prægnantibus fœminis coniunctionibus, alternisque initibus, puerorumque stupris, adulterijs, & libidine abstinere, huius nos ęnigmatis prohibitio adhortata est. Idcirco apertè & nõ per ænigmata Moses adhuc nudo capite prohibuit: Non fornicaberis, non mœchaberis, pueris stuprum non afferes, inquiens. Verbi itaq; iussus,

Rom.1.

[illegible]

Cap.12.

Exod.20.

est omni ratione obseruandus, neq; quicquam contra leges vllo modo faciendum est, neq; sunt mandata infirmanda. Malæ enim cupiditati nomen est, petulans iniuria. & equum cupiditatis petulantem ac insolentem vocauit Plato, cùm legisset: Facti estis mihi equi furentes in fœminas. Pro probro autem petulantiq; iniuria supplicium significabant Angeli, qui Sodomam accesserunt. Ii eos qui probro & ignominia illos afficere voluerunt, vnà cum ipsa ciuitate combusserunt, euidenti hoc indicio ignem, qui est fructus libidinis, describentes. quæ enim veteribus acciderunt, sicut antè diximus, ad nos admonendos scripta sunt, ne eisdem teneamur vitijs, & caueamus ne in pœnas similes incidamus. Oportet autem filios quidem existimare, pueros: vxores autem alienas intueri tanquam proprias filias: voluptates autem continere, ventriq; & ijs quæ sunt infra ventrem dominari, est maximi imperij. Si enim ne digitũ quidem temerè mouere permittit sapienti ratio, vt confitentur Stoici, quomodo non multò magis ijs qui sapientiam persequuntur, in eam qua coitur particulam dominatus est obtinendus? Atq; hac mihi quidem de causa videtur esse nominatum pudendum, quòd hac corporis parte magis quàm qualibet alia cũ pudore vtendum sit: natura enim sicut alimentis, ita etiam legitimis nuptijs quantum cõuenit, confert & decet, nobis vti permisit: permisit autem appetere liberorũ procreationem. Quicunq; aũt quod modum excedit persequũtur, labuntur in eo quod est secundum naturam, per congressus qui sunt præter leges, seipsos lędentes. Omnino enim rectè habet nunquam cum adolescentibus, perinde ac cum fœminis, Veneris vti consuetudine. Et ideo non esse in petris & lapidibus seminandũ, dicit qui à Mose factus est Philosophus, quoniam nunquam actis radicibus genitalem sit semen naturam suscepturum. Verbũ itaq; per Mosen apertissimè præcepit: Et cũ masculo non dormies fœminino cõcubitu, est enim abominatio. Accedit his, quòd ab omni quoq; aruo fœminino, pręterquam à proprio, ex diuinis scripturis colligens, præclarus Plato consuluit, lege illinc accepta: Et vxori proximi tui non dabis concubitum seminis, vt polluaris apud ipsam. Irrita autem sunt & adulterina concubinarũ semina. Ne semina, vbi non vis tibi nasci quod seminatum est. Neq; vllam omnino tange mulierẽ, præterquam tuam ipsius vxorẽ, ex qua sola tibi licet carnis voluptates percipere ad suscipiendam legitimam successionẽ. Hæc enim rationi sola sunt legitima. Eis quidem certè qui diuini muneris, nempe opificialis sunt participes, semen non est abijciendũ, neq; iniuria afficiendũ, neq; tanquã si cornibus semẽ mandes seminandũ est. Hic ipse ergo Moses cum ipsis quoq; prohibet vxoribus cõgredi, si fortè eas detineant purgationes menstruæ. Non enim purgamento corporis, id quod est maximè genitale seminis, & quod mox homo futurum est, polluere est consentaneum: nec sordido materiæ profluuio, & quæ expurgantur inquinamẽtis inundare ac obruere. Semen autẽ generationis degenerat ineptumq; redditur, si matricis sulcis priuetur. Neq; verò vllum vnquã induxit veterum Hebræorũ coëuntem cum sua vxore prægnante. Sola enim voluptas si quis ea etiam vtatur in coniugio, est præter leges, & iniusta, & à ratione aliena. Rursus autem Moses abducit viros à prægnantibus, quousq; pepererint. Reuera enim matrix sub vesica quidẽ collocata, super intestinũ autem quod rectũ appellatur posita, extendit collũ inter humeros in vesica: & os colli, in quod venit semen, impletũ occluditur, rursusq; inane redditur partu purgato: fructu autẽ deposito, deinde semen suscipit. Neq; verò nobis turpe est ad auditorũ vtilitatem nominare partes in quibus fit fœtus conceptio, quæ quidem Deum fabricari non puduit. Matrix itaq; sitiens filiorum procreationem semen suscipit, probrosumq; & vituperandum negat coitũ, post sationem ore clauso omnino iam libidinẽ excludens. Eius autẽ appetitiones, quæ prius in amãtibus versabantur cõplexibus, intrò conuersæ, in procreatione sobolis occupatæ, operantur vnà cum opifice. Nefas est ergo operantẽ iam naturam adhuc molestia afficere, superfluè prorumpendo ad petulantẽ iniuriam: petulans aũt iniuria, & multa habet nomina, & est multiplex. Postquam autẽ ad hanc veneream conuersa fuerit immoderationẽ, Græcè λαγνεία, id est, lasciuia dicitur, quo nomine significatur libidinosa, popularis, & incesta in coitum propensio: quę cùm aucta fuerit, magna simul morborum conuenit multitudo, videndi desiderium, vinolẽtia, & amor in mulieres, luxus quoque, & simul vniuersum voluptatum studium: in quæ omnia tyrannidem obtinet cupiditas. His autem cognatæ innumerabiles augentur affectiones, ex quibus mores intemperantes ad summum prouehuntur. Dicit autem scriptura: Parantur intemperantibus flagella, & supplicia humeris insipientum: vim

Marginal notes: Hier. 5. (beside "Facti estis mihi equi"); Ezech. 23.; Genes. 19.; Leuit. 18. (beside "men naturam suscepturum"); Ibidem. (beside "præclarus Plato"); κεραμίδια (beside "pes, semen"); Ibidem. (beside "gredi, si fortè"); Prouer. 3. (beside "scriptura"). Margin letters: A, B, C.

A vim intemperantiæ,constantemq; tolerantiam,vocans humeros insipientũ. Quocirca,Amoue à seruis tuis spes inanes,& indecoras,inquit,cupiditates auerte à me. Ventris appetitio,& coitus ne me apprehendāt. Longè ergo sunt arcenda plurima insidiatorum maleficia:non ad solam enim Cratetis peram, sed etiam ad nostrā ciuitatem nō nauigat stultus parasitus,nec scortator libidinosus qui clune valde exultat,non dolosa meretrix,nec vlla eiusmodi alia voluptatis belua. Multa ergo nobis per totam vitā seminetur,quę bona sit & honesta,occupatio.In summa ergo,vel iũgi matrimonio,vel omnino à matrimonio purum & mundum esse oportet: in quęstione enim id versatur,& hoc à nobis declaratum est in libro de cōtinentia. Quòd si hoc ipsum,An ducenda sit vxor,veniat in considerationem:quomodo liberè permittetur,quemadmodum nutrimento,ita etiam coitu semper vti, tanquam necessario?Ex eo ergo videri possunt nerui tanquam stamina differri,& in vehementi congressus intensione disrumpi.Iam verò offundit etiam caliginē sensibus, robur quoque interrumpit.Patet hoc & in animantibus rationis expertibus, & in ijs quæ in exercitatione versantur corporibus:quorum hi quidem qui abstinent, in certaminibus superant aduersarios: illa verò à coitu abducuntur,atque adeo vix circumaguntur & trahuntur, omnibus viribus & omni animi impetu perfectè exinanita. Paruam epilepsiam dicebat coitum Sophista Abderites, existimans morbum immedicabilem.An non enim consequuntur resolutiones, quæ exinanitionis eiúsq; quod abscedit magnitudini ascribuntur? homo enim ex homine enascitur & e-

B uellitur.Vide damni magnitudinem: totus homo per exinanitionem coitus abstrahitur.Dicit enim: Hoc nunc os ex ossibus meis, & caro ex carne mea. Homo ergo tantum exinanitur semine, quantus videtur corpore, est enim generationis initium id quod recedit:quinetiam conturbat ebullitio materiæ,& compagem corporis labefactat & commouet.Lepidè ergo dixit ille,qui interroganti, quomodo adhuc rebus vteretur venereis,respondens:Bona verba, quæso: ego verò lubentissimè isthinc,tanquam ab agresti & insano domino profugi. Cæterùm introducatur quidem & eligatur matrimonium: vult enim Dominus humanum genus repleri: sed non dicit,Estote libidinosi:nec vos tanquam ad coitum natos voluit dedere voluptati.Pudore autem nos afficiat pædagogus clamans per Ezechielem:Circuncidamini fornicationem vestram.Aliquod tempus ad seminandum oportunum habent quoq; rationis expertia animantia.Non coire autem ad liberorum procreationem,est facere iniuriam naturæ,quam quidem oportet magistram ascíscētes, quas prudenter introducit temporis considerationes, diligenter obseruare, senectutem inquam,& puerilem ætatem.His enim nondum concessit:illos autem non vult amplius vxores ducere.Sed non vult homines semper dare operam matrimonio. Matrimonium autem est filiorum procreationis appetitio, non nullo ac incerto ordine seminis excretio,quæ est & præter leges,& à ratione aliena.Secundum naturam autem nobis vita vniuersa processerit,si & ab initio cupiditates cōtineamus, & hominum genus,quod ex diuina prouidentia nascitur,improbis & malitiosis machi-

C nationibus nō interficiamus:eæ enim sub prætextu fornicationis,vtentes medicamentis quæ omnino ad exitium attrahunt,simul cum fœtu omnē humanitatē consumunt.Cæterùm quibus vxores ducere cōcessum est,ijs pædagogo opus fuerit, vt non interdiu mystica naturæ celebrentur orgia,nec ex ecclesia,verbi gratia, aut ex foro mane rediens,galli more coëat,quando orationis,& lectionis,& efficaciũ quę interdiu fiunt operũ tempus est:vespere autem oportet post conuiuium quiescere, & post gratiarum actionem quæ fit Deo pro bonis quæ percepimus. Non semper autē concedit tempus natura,vt peragatur congressus matrimonij:est enim eo desiderabilior cōiunctio quo diuturnior.neq; verò noctu, tanquam in tenebris, se immodestè & intemperanter gerendum est,sed verecundia, tanquam lux rationis, in animo includenda est.Nihil enim à Penelope telam texente differemus, si interdiu quidem texamus dogmata tēperantiæ,noctu autem ea resoluamus, cùm in cubile venerimus.Si enim honestatem exercere oportet,multò magis tuæ vxori honestas est ostendenda,inhonestas vitando coniunctiones:& quòd castè cum proximis verseris,fide dignum è domo adsit testimonium.Non est enim,non est aliquid honestũ apud eam reputandum,apud quam honestas non est testata ac probata in acribus illis voluptatibus.Beneuolentia autem,quæ fatetur se præcipitem ferri ad congressionem,exiguo tempore floret,& cum corpore consenescit: nōnunquam autem etiam præsenescit,flaccescente iam & marcescente libidine, quando matrimonialē

Eccl.23. Genes.2. Ezech.43. Osee 2.

moderationem ac temperantiam meretriciæ voluptates iniuria affecerint. Aman- A
tium enim corda sunt volucria: amorisq; irritamenta extinguuntur sæpe pœniten-
tia: amorque sæpe vertitur in odium, quando reprehensionem senserit satietas. Im-
pudicorum verò verborum, & turpium figurarum, meretriciorumque osculorum,
& huiusmodi lasciuiarum nomina, ne sunt quidem memoria tenenda, beatum se-
*Ephes.5.* quentibus Apostolum, qui apertè dicit: Fornicatio autem, & omnis immũditia, vel
plura habendi cupiditas, ne nominetur quidem in vobis, sicut decet sanctos. Rectè
*Hoc Epicurus et similia dicit in sententijs, quas uocauit κυρίας, id est, principales.* ergo videtur dixisse quispiam: Nulli quidem profuit coitus, rectè autem cum eo agi
tur si nõ læserit. Qui enim ex lege est, est periculosus, nisi quatenus in liberorũ pro-
creatione versatur. De eo autem qui est præter leges dicit Scriptura: Mulier * mere-
trix apro similis reputabitur. Quæ autem viro subiecta est, turris est mortis ijs qui
ea vtuntur. Capro vel apro meretriciam comparauit affectionem. Mortem autẽ di-
xit petitam, adulterium quod committitur in meretrice quæ custoditur. Domũ au-
tem & vrbem, in qua suam exercent intemperãtiam. Quinetiam quæ est apud vos
*Eccle.24.25* Poëtica, quodammodo ea exprobrans, scribit:

**μισθία mercenaria.*

*Mœchus es, illicitus coitus ualdeq; nefandus*
*Fœmineusq; uirûm tecum est, ô maxima pestis.*

*Prou.5.7.25* Rursus autem pudicos & continentes admiratur:

*Quos desiderium tenuit nec turpe cubilis*
*Alterius, nec tetra inuisaq; stupra tulerunt,*
*Vlla unquam maribus.* B

Quandoquidem multi hæc sua peccata non esse præter naturam voluptates exi-
stimant: qui autem sunt his paulò meliores, esse hæc quidem peccata agnoscũt, vin-
cuntur autem à voluptatibus, & sunt eis tenebræ vitiorum integumentum: suum
enim adulterio violat matrimonium, qui id habet pro meretrice, & non audit pæ-
*Eccle.23.* dagogum clamantem: Homo qui ascendit super lectum suum, qui dicit in animo,
quis me videt? Circa me sunt tenebræ, & parietes sunt tegumenta mea, & nemo a-
spicit peccata mea. Quid vereor ne meminerit Altissimus? Is quidem est miserri-
mus, qui solos veretur hominum oculos, existimat autem fore vt Deum lateat: ne-
*Ibidem.* scit enim Scripturam dicere, Oculi Domini altissimi, dici non potest quanto sint so
le splendidiores. Qui respiciunt omnes vias hominum, & partes occultas intelli-
*Cap.29.* gunt. Itidem rursus pædagogus eis minatur per Esaiam, dicens: Væ ijs qui in occul-
to consilium capiunt, & dicunt, Quis nos videt? Sensilem enim lucem latebit for-
tasse quispiam, sed eam quæ intelligentia apprehenditur minimè latẽre potest. An
vt ait Heraclitus, id quod nunquam óccidit, possit latẽre quispiam? Tenebras ergo
*Ioan.1.* minimè obtegamus, etenim lux in nobis habitat: Et tenebrę, inquit, ipsum non cõ-
prehendunt. Ipsa autem noctem illustrat honesta ac pudica cogitatio. Bonorum au
*Psal.17.* tem virorum cogitationes lucernas quæ dormire non possunt appellauit Scriptu-
*Prou.31.* ra. Quanquam ipsum quidem conari latẽre propter ea quæ facit quispiam, peccare
est citra vllam controuersiam. Quicunque autem peccat, statim quoque facit iniu-
riam, non tam proximo, si mœchetur, quàm sibijpsi, quòd mœchatus fuerit: quin &
seipsum omnino reddit deteriorem suæque famæ detrahit. Qui enim peccat, qua- C
tenus peccat, ipse est seipso deterior, & ignominiosior: omnino autem iam ei vti-
que adest intemperantia, vt qui vincatur à turpi voluptate. Quamobrem qui for-
*λόγος ratio et uerbum.* nicatur, Deo est omnino mortuus, & à ratione tanquam à spiritu vt cadauer reli-
ctus est. Quod enim sanctum est, vt est consentaneum, pollui auersatur. Puro au-
*Herodotus dicit mulieres simul cũ tunica pudorem exuere.* tem purum semper fas est tangere. Ne simulac exuitur tunica, pudorẽ quoq; exua-
mus: nam iusto temperantiam nunquam fas est exuere. Ecce enim hoc corruptibi-
le induit incorruptionem, quando cupiditas insatiabilis, quæ fluxu quodam fer-
tur in libidinem, castigata à continentia, & à corruptionis amore aliena, æternæ
temperantiæ hominem tradiderit. In hoc enim seculo vxores ducunt, & nubunt:
*Matth.22.* abolitis autem carnis operibus, ipsa pura carne induti incorruptionẽ, id quod est
*Luc.10.* Angelis proportione commoderatũ persequimur. Hac ratione Plato quoq; in Phi-
lebo, qui fuerat barbaræ discipulus philosophiæ, impios & à Deo alienos eos mysti
*λόγος uerbum & ratio.* cè vocauit, qui Deũ in ipsis habitantẽ, nempe rationẽ, corrumpunt, & quantum in
se est, vitiorũ suorum coiunctione polluunt. Non est ergo ijs vnquã mortaliter viuẽ-
*1.Cor.6.* dum, qui Deo sanctificantur: neque, vt dicit Paulus, membra Christi facienda sunt
membra meretricis: nec Dei templum, faciendum est templum turpium affectio-
*Num.25.* num. Recordemini quatuor & viginti millia fuisse propter fornicationem extrusa.

A Ea autem quæ euenerunt ijs qui fornicati sunt, vt iam à me dictum est, sunt figuræ quæ nostras libidines corrigunt. Porrò autem pædagogus monet apertissimè: Post tua desideria ne ambules, & arcearis à tuis appetitionib. Vinũ enim & mulieres facient sapiẽtes deficere: & qui adhæret meretricibus, euadet audacior. Putredo & vermis erunt eius hæredes, & efferetur in maiori ludibrio. Et rursus, nõ cessat enim iuuare: Qui autem voluptatem aduersis oculis intuetur, coronat vitam suam. Nõ est ergo iustum vinci à rebus venereis, nec libidinibus stolidè inhiare, nec à ratione alienis appetitionibus moueri, nec desiderare pollui. Ei autem soli qui vxorẽ duxit, vt qui tunc sit agricola, serere permissum est, quando tempus sementẽ admittit. Aduersus aliam autẽ intemperantiam, optimũ quidẽ est medicamentũ, ratio. Fert etiã auxilium penuria satietatis, per quam accensæ libidines, prosiliunt ad voluptates. Ergo nec sumptuosa vestis est assumẽda, sicut nec cibus varius. Ipse certè Dominus in animum, & corpus, & tertio loco in ea quæ externa sunt præcepta diuidens, propter corpus quidem externa comparare consulit: corpus autem administrat per animam, animam autem erudit: Ne soliciti sitis animæ vestræ, inquiens, quid comedatis, neque corpori vestro quid induamini. Anima enim plus est quàm cibus, & corpus quàm vestimentum. Et subiũgit apertum doctrinæ indicium: Considerate coruos q̃, neque seminãt, neq; metunt, quibus non est penus, nec horreũ, & Deus nutrit ipsos. Non vos præstatis volucribus? Et hæc quidẽ de nutrimẽto. Similiter aũt de veste quoq; præcipit, quę rerũ externarũ tertiũ locũ obtinet: Considerate, inquiens, lilia quomodo neq; nent, neq; texũt. Dico autẽ vobis, q̃, neq; Solomõ induebatur vt vnũ ex his. De diuitijs autẽ valde se iactabat rex Solomõ. Quid est itaq; floribus pulchrius & floridius? Quid est aũt lilijs vel rosis delectabilius? Si aũt fœnũ quod hodie est in agro, & cras in clibanũ mittitur, Deus sic vestit, quãto vos magis, modicę fidei? Et vos ne quærite, quid comedatis, aut quid bibatis. Hîc, hæc particula, Quid, cibi varietatẽ expulit. Id enim significatur ex Scriptura, Ne soliciti sitis, quænã comedatis, aut quænã bibatis. De his enim esse solicitũ, est nimia plura habendi cupiditas, & delitias arguit. Sed si comedere per se solũ cogitetur, est argumẽtũ necessitatis, & defectus repletio, vt diximus. Quod est aũt amplius, est ex superfluo. Quod est autẽ ex superfluo, esse à Diabolo declarauit Scriptura. Sensum aũt planũ facit quę sequitur dictio. Cùm enim dixisset: Ne quærite quid comedatis & quid bibatis, subiũxit: Et ne sublimes efferamini. A veritate autẽ sublimes efferunt arrogãtia & delitiæ: & quæ in rebus superuacaneis versatur delectatio, abducit à veritate. Quocirca pulcherrimè quoq; dicit: Hæc autẽ omnia gẽtes mũdi quærũt. Qui immoderati sunt & insipiẽtes, gẽtes sunt. Quænã aũt hæc dicit? delitias, delectationem, cupedias, obsoniorum voracitatẽ, & ingluuiẽ. Hæc sunt illud, Quid. De solo autẽ nutrimento, sicco scilicet & humido, vt quæ sint necessaria: Scit, inquit, pater vester quid vobis opus sit. Quòd si nobis omnino innatum est vt quæramus, ne quærendi facultatem in delitijs perdamus, sed eam ad veritatem inquirendam excitemus. Quęrite enim, inquit, regnum Dei, & quæ ad alimentum pertinent adijciẽtur vobis. Si ergo de veste & delitijs, rebúsque superuacaneis, tanquam non necessariam omnino curam tollit, quid censendum est eum dicere de nimio ornatus studio, de tinctura lanarum, varietate colorum, superflua cura gemmarum, auri elaboratione, capillis artificiosis & intortis crinibus? Quid de fucata oculorum pictura, quid de vulsionibus, purpurissi ac cerussæ fucationibus, tinctisq; pilorum coloribus, improbisque huiusmodi artificiorum fraudibus? An non hoc quoque rectè conijciendum est, id quod de fœno paulò antè dictum est, de his ornamentorum amatoribus, qui à temperantia & vero animi ornatu alieni sunt, optimè posse dici? Ager enim est mundus, & nos herba, qui sumus Dei gratia irrigati: tonsi autem rursus exorimur, vt pluribus ostendetur in libro de resurrectione. Fœnum autem turba promiscua allegoricè dicitur, quæ se ad momentaneam lætitiam applicat, quæ floret paruo tẽpore, quæ superflua ornamenta, quæ gloriam, quæ quiduis potius quàm veritatem sectatur: quæ non ad aliud apta est, quàm ad ignis incendium. Homo quidam, dicit narrans Dominus, erat valde diues, qui induebatur purpura & bysso, qui oblectabatur quotidie splendidè. Hic erat fœnum. Mendicus autem quidam nomine Lazarus, abiectus erat in vestibulo diuitis, vlceratus, cupiẽs repleri ijs quæ cadebãt de mensa diuitis. Hic est herba. Sed ille quidẽ diues puniebatur ad inferos, vt qui esset ignis particeps: hic aũt rursus germinauit in sinu Patris. Laudo ergo & admiror veterẽ Lacedæmoniorũ ciuitatẽ, quæ solis meretricibus floridas vestes & aurũ mundũ

Marginal notes: 1. Cor. 10. Eccle. 18. 19. Luc. 12. παραδείγματα (line 4–5). Ad Gal. 5. B. Matth. 6. Ibidem. C. Luc. 16.

gestare permisit, à probis mulieribus mundi studium auferens, quòd solis meretricibus se ornare concederet. Contrà autem Atheniensium principes, qui ciuilem vitæ formam expulerant, togæ virilis obliti aurum gestabant, & talaribus tunicis amiciebantur: Crobulo, quod est vestimenti genus, aureo induebantur, adiunctis cicadis ornati: ortum suum reuera terrestrem, Cynedico quodã fastu & arrogantia monstrãtes. Horum autem principum æmulatio ad alios quoq; Ionas peruasit, quos Homerus esse effœminatos ostendens, vocat ἑλκεχίτωνας, hoc est, vestimenta trahentes. Ij ergo qui pulchri simulachrum, nimium scilicet ornatus studium, non autem ipsum pulchrum & honestum attendunt, specioso nomine simulachrorum cultum rursus inducentes, à veritate longè sunt relegandi, cùm opinione, non scientia, pulchri naturam somnient: & est vita quæ ab eis hîc agitur, profundus somnus ignorãtiæ. An non oportet nos excitatos, ad id quod verè pulchrum est & ornatum contendere? & id solum assequi desiderare, relinquẽtes quæ hîc sunt mundana, ipso mundo, hoc est, vero ornatu gaudentes, priusquam perfectè obdormiamus? Dico ergo hominẽ non alia de causa opus habere vestimentis, quàm vt tegatur corpus, ad maxima frigora & vehementes æstus propulsandos, ne nos lædat ambientis aëris immoderatio. Quòd si hic est vestis scopus, vide ne non alia quidem viris, alia verò fœminis vestis tribuenda sit: tegi enim vtrisque commune est, quemadmodum comedere & bibere. Cùm vsus itaque sit communis, constructionem similem comprobamus. Quẽadmodum enim vtrisque commune est vt egeant ijs quæ tegant, ita à quibus tegendi sunt esse oportet similia, etsi oporteat huiusmodi tegumẽtum assumere, quo sunt fœminarum celandi oculi. Etsi enim fœmina propter imbecillitatem longè plura concupiscat, id malæ educationis consuetudini tribuendum est, per quam sæpenumero viri in malis vitæ institutis educati, euaserunt mulieribus magis effœminati: non est igitur eis hac in re cedendum. Quòd si se eis aliquantulum accommodare oporteat, vestibus quidem paulò mollioribus eis vti concedendum est, dummodo nimis subtiliter per summam stultitiam laborata opera, curiosæq; in texturis plicaturæ, longissimè amandentur: auri fila, & Indicos seres, & operosos bombyces valere iubentibus. Est autem bombyx primùm vermis, deinde aspera ex eo nascitur eruca, post quam in tertia metamorphosi innouatur papilio, quem nonnulli Græcè appellant νεκύδαλον, ex quo longum stamen nascitur, quemadmodum ex aranea tela araneæ. Superflua enim hæc & perspicua, mentem minimè constantem arguunt, quæ exiguo expanso velo, tanquam quodam lenocinio, probrum corporis illiciũt. Non est enim amplius tegumentum mollis ac delicata vestis, quæ nudam figuram non potest occulere: eiusmodi enim vestis in corpus incidens, mollius ipsi corpori imprimitur & applicatur, figuræ carnis instar adhærens: & mulieris typum ita exprimit, vt vel non videnti manifesta sit tota constitutio corporis. Reijciendæ quoq; sunt vestimenti tincturæ: ipsæ enim & ab vsu & à veritate longè remotæ sunt, præter id quòd ex eis morum oritur reprehẽsio: neque enim est earum vsus vtilis: nam nec ad frigus propulsandum est aptus, neq; ad tegumentum habet aliquid amplius quàm alia vestis, nisi solum vituperium. Coloris autem delectans suauitas malè habet auidos, eos ad stultam impellens lippitudinem: atque eos quidem qui sunt candidi, & nõ intus adulterini, candidis & minimè curiosis ac operosis vestibus vti est conuenientissimum. Apertè certè & purè Daniel Propheta: Positi sunt, inquit, throni, & sedit super ipsos tanquam vetus dierum, & eius vestimẽtum album sicut nix. Tali veste vtentem Dominum, in visione se vidisse dicit Apocalypsis: Vidi animas eorum qui testes fuerant sub altari, & data est vnicuiq; vestis candida. Quòd si oporteat etiam aliquem alium colorem quærere, naturalis veritatis per se tinctura sufficit. Vestes autem quæ sunt floribus similes, Bacchicis nugis & initiorum mysterijs relinquendæ sunt: deinde verò purpura, & vasa argẽtea, sunt, vt dicit Comicus, Tragœdis & non vitæ vtilia. Vita autem nostra quiduis potius quàm pompa est existimanda: tinctura itaque Sardiniaca, & alia omphacina seu oleagina, & alia viridis, rosacea & coccina, & aliæ innumerabiles tincturæ, excogitatæ sunt à perniciosis delectationibus, quo fit vt visus iam sit vestis, non autem integumenti. Quæ autem ex auro affabrè facta, & quæ purpura tincta sunt, & hæ animalium quæ vento feruntur deliciæ, & ille vnguentis delibutus Crocotus, & suspiciendarum membranularũ precia ingentia, & variegatæ vestes, quę in purpura habent animalia, cum ipsa arte valere iubenda sunt. Quid enim prudenter ac præclarè fecerint mulieres, quæ, vt ait Comœdia, floribus tinctæ, Crocotũ gestãtes, atq; fucatæ sedẽt? Apertè itaq; suadet

*Sumptum ex tragœdia Euripidis Hecuba.*

*Cap. 7.*

*Cap. 6.*

A det pædagogus:In amictu vestis ne glorieris, neq; in omni gloria quæ est præter le- Eccles.11.
ges efferaris.Eos certè irridens qui mollibus vestibus induti sunt, dicit in Euange-
lio:Ecce qui in vestitu glorioso & delitijs degunt,sunt in terrenis regijs. Regias di- Matth.11.
cit terrenas,mortales ac incorruptibiles,vbi est vana honesti opinio, inanis gloriæ
ambitio,error & adulatio.Qui aulam autem cælestem obseruant quæ est circa om-
nium regem,incorruptibilem animæ vestē,nempe carnem sanctificant, & per eam
induunt incorruptionem.Quemadmodum ergo quæ non nubit, soli Deo dat ope- 1.Cor.7.
ram,& eius cura non diuiditur:pudica autem quę nupsit,vitam cum Deo & cū ma- τοῦ πάθους
rito diuidit:quæ autem aliter fertur,tota coniugij,hoc est,vitij efficitur:eodem mo-
do pudica mulier,vt ego quidem sentio,quæ marito dat operam,pia est & religiosa
citra vllam fictionem:quæ autem immoderato ornatus studio tenetur,& à Deo & à
pudico coniugio excidit,vt quæ maritum ornamento permutet. Quemadmodum
Argiua illa meretrix, Eryphile inquam, Auri quæ pretium sumpsit pro coniuge
charo. Quocirca Cæum sophistam iurè approbo, qui virtutis & improbitatis a-
ptas describit imagines: quarum hanc quidem fecit simpliciter stantem, candida
veste indutam & puram,nempe virtutem,sola verecundia ornatam:talem esse opor
tet fidelem mulierem, nempe virtute præditam cum verecundia. Alteram autem
contrà inducit,nempe improbitatē, superflua quidē & varia veste indutam, alieno
autem colore exultantem:motus eius & habitus comparatus ad delectationem de-
scribitur,non secus ac meretricis.Qui ergo rationem seu Verbum sequitur,nulli tur
B pi voluptati adhærebit.Et ideo quod in veste vsum affert præferendum est:etsi Ver- λόγος
bum hoc canit,per Dauid dicens de Domino:Delectauerunt te filię regum in hono Psalm. 44.
re.Astitit regina à dextris tuis in vestitu deaurato, & fimbrijs aureis circumamicta:
non luxuriosas ac delicatas vestes,sed integrum ac incorruptum, ex fide cōtextum
ornatum eorum qui consecuti sunt misericordiam,nempe Ecclesiæ, significauit, in
qua Iesus à dolo alienus splendet vt aurum,& fimbriæ aureę sunt electi. Quòd si et-
iam propter fœminas sit aliquid relaxandum,texenda quidem est suauis vestis & ta
ctu mollis,sed non sicut picturæ,est ad visus delectationem colorum varieganda flo
ribus.Pictura enim tempore euanescit: ablutiones autem, extersiones, ac constipa-
tiones,quæ vęnenatis tincturæ succis lanas inficiunt, imbecillas vestium texturas
efficiunt: hoc autem nec ad bonam quidem domus administrationem aptum est.
Est autem maximè ineptum & indecorum, pepla, xystides,ephaptides, lenasque
ac tunicas stupere & admirari,& quæ,vt ait Homerus, velant circumquaque pudo-
rem.Pudet me,vt verè dicam,cùm videam tantum opum effundi ad tegenda puden
da.Vetus enim homo qui erat in paradyso,ramis & folijs dimetiebatur tegumētum Genes.3.
pudoris:nunc autem cùm nobis oues fabricatæ sint,ne similiter ac oues simus insi-
pientes. A ratione autem seu Verbo instituti, sumptuosas vestes redarguamus,di-
centes,estis pili ouium.Etiamsi se iactet Miletus,etiamsi laudetur Italia,etiamsi sub
pellibus pili custodiantur, quorum nonnulli insano amore tenentur, nobis qui-
dem certè nullum est studium in ea conferendum. Beatus autem Ioannes despectis
C quoq; ouium pilis,qui delitias redolent,pilos camelorū elegit, & eis se vestijt, sim-
plicem vitam & à dolo alienam repręsentans.Mel enim comedebat & locustas,dul Matth.3.
cem & spiritalem cibum,à fastu alienas & moderatas vias Domini præparans. Se
enim certè purpurea chlamyde induisset,si vllam vrbani fastus curam gessisset: sed
cùm in solitudinū quietis,tranquillè cum Deo versaturus se recepisset, ab omni ina
ni studio,vnaq; boni specie,sordidoq; ac illiberali decore se remouit. Ouina autem
pelle Helias vtebatur indumento,& ouinam pellem stringebat zona facta ex pilis. 4.Reg.1.
Esaias verò alius propheta,nudus erat,& nullis vtebatur calceis: sæpè autem sacco Esa.20.
quoq; vtebatur,quod est indumentum humilitatis. Quòd si etiam vocas Hieremi- Hierem.13.
am, is cingulum solum habuit lineum.Quemadmodum autem bene nutrita corpo
ra,si nuda sint,vires ac vigorem apertius indicant:ita etiam pulchritudo morum, si
ineptis nugis non inuoluatur,magis indicat animi magnitudinem & magnificen-
tiam.Trahere autem vestes ad summos vsq; pedes demissas,valde est arrogans & su
perbum,quòd ambulandi actionem impedit,cùm vestis instar verriculi,quæ in soli
sunt superficie sordes secum attrahat:ne fractis quidē & eneruatis his saltatoribus,
qui Cynædicam turpitudinem mutam in scenam transferūt, vestem cum tanto de-
decore diffluentem despicantibus, quibus exquisitæ vestes, fimbriarumq; dilata-
tiones,& curiosi figurarum numeri,illiberalem ac sordidam syrmatum mollitiem
indicant.Quòd si quis talarem Domini vestem adducit,variegata illa tunica osten-

dit flores Sapientiæ, varias & quæ non flaccescunt Scripturas, eloquia Domini, A quæ veritatis splendoribus refulgent. Eiusmodi alia veste spiritus Dominum per
Psal. 103. Dauid induit, sic psallens: Confessionem & decorem indutus es, inducens lucem, sicut vestimentum. Quemadmodum ergo vestium compositionem honestam, & ab eo quod est indecorum mundam esse oportet, ita etiam vitanda est vsus immoderatio. Neq; enim, sicut Lacænas virgines, supra genu vestiri honestum est: nullam enim partem fœminę nudari decorum est. Atqui posset quidem honestè dici vrbana & faceta illa vox quæ dicta est ei qui dixerat, Pulcher cubitus: at non publicus. & tibi pulchræ sunt tibiæ dicendo, sed sunt solius mei mariti: & speciosa facies, sed est eius tantùm qui me vxorem duxit. Ego autem nolo pudicas fœminas præbere talium laudum causam ijs, qui per eiusmodi laudes vt probrum eis afferant venantur. Nec verò solum calcaneum nudare est prohibitũ, sed etiã caput tegere, & vultũ adumbrare iussum est: neq; enim honestũ est corporis pulchritudinem esse hominũ aucupium: nec par est vt purpureo vtens velo fœmina velit aspici. Atqui vtinam posset etiam à veste eximi purpura, vt non in vtentium faciem spectatores cõuerteret. Atque illæ quidem cùm reliquæ vestes admodum parum texant, fecerũt quicquid est purpureum, suas inflammantes libidines. Quæ autem his stolidis & mollibus purpuris impensè delectãtur, eas, vt sunt verba Poëtę, Purpurea arripuit mors. Propter hanc itaq; purpuram, & Tyrus, & Sidon, & quæ regio est mari propinqua Laconico, maximè desiderãtur: quinetiam earum tinctores, & purpuræ infectores, & ipsa conchylia in magno pretio habentur, propterea quòd eorum sanguis producat purpuram. At etiam auidis pannis admiscentes dolosæ mulieres, & qui sunt B ex viris effœminati, fraudulentas dolosasq; tincturas, insano quodam amore feruntur in immoderationem, non amplius lintea ex Ægypto, sed quædam alia ex terra Hebręorum & Cilicum comparantes. Amorgina autem taceo & byssina: delitiæ iam eorum appellationem immodicè ludificando transmiserunt. Porrò autem oportet, vt mihi quidem videtur, id quod tegitur, ex tegumento ostendere, se esse eo melius: vt templo imaginem, & corpore animam, & veste corpus: nunc autem contrà omnino. Si corpus quidem earum venundetur, nunquam mille drachmas Atticas inuenerit: vnam autem vestem mille talentis ementes, se esse vestibus inutiliores & viliores arguunt. Cur ergo quæ sunt rara & pretiosa, plus quàm ea quæ sunt in medio sita & vilia, persequimini? Quoniam quod verè pulchrum, & quod verè bonum est ignoratis, & pro ijs quæ sunt, ea quæ esse videntur, à stultis magno studio quæruntur, qui perinde ac insani, quæ alba sunt tanquam nigra visione apprehendunt.

ἐμπορευσάμεναι (margin)

*De calceamentis,* *Cap.* XI.

SImiliter autem in calceamentis superbæ arrogantesq; fœminæ magnam quoq; ostendunt mollitiem. Verè ergo turpia sunt illa sandalia, in quibus sunt aurea veluti donaria: quinetiam circumcirca clauos solijs infigere æquum censent. Multæ autem eis quoq; amatorias salutationes imprimunt, vt vel per terram numerosè incedentes, meretricios spiritus in incessu C insculpant. Valere ergo iubendum est aureorum & gemmeorum sandaliorum vanis artificijs, & crepidis Atticis & Sicyonijs, cothurnisq; Persicis & Hetruscis. Recto autem scopo, vt veritati nostrę mos est, proposito, id quod est secundum naturam eligendum est: calceorum enim vsus hic quidem est ad tegendos pedes: alius autem ad propulsandas offensiones, & à mõtanis asperitatibus plantam pedis conseruãs. Sunt itaq; mulieribus albi concedendi calcei, nisi iter ineant: tunc autem eis vnctis vtendum est. Neq; enim fœminam decet pedem ostendere: & alioqui mulieri tener est sensus, vt facilè lædatur. Viro autem pulchrè conuenit nullos habere calceos, preter quàm si militet. Calceatum enim esse, non paruam habet affinitatẽ cum eo quod est, esse ligatum. Optimum quidem est exercitationis genus nudis vti pedibus, & ad sanitatem & ad expeditam facilitatem, vbi non prohibeat necessitas. quòd si iter non ingrediamur, nec nudis incedere pedibus pati possimus, soleis vtendum est: eas autem Attici vocabant κονίποδας, quòd pedes, quantum ego conijcio, terræ appropinquarent. Tenuis ac simplicis calceaturæ testis sufficit Ioannes, qui dicebat se non esse dignum soluere corrigiam calceorum Domini. Non enim curiosos aut superfluos is habebat calceos, qui veræ philosophię typũ Hebręis ostendebat. Hoc autem num quid aliud significet, alibi ostendetur.

*ὑποδεδέσθαι, non multum distat ab eo quod est, δεδέσθαι. κονίποδες à puluere & pedibus componitur.*
Luc. 3.

Quòd

A *Quòd non oporteat gemmas & aureum ornatum stupere & admirari, Cap. XII.*

GEmmas autē fuscas aut virides, & quæ ab externi maris æstu expelluntur, & quæ ex terræ ramentis deteruntur, admirari & stupere est puerile. In pellucidos enim lapillos, propriosq; ac peculiares colores, atq; vitra varia magno ferri studio, nihil est aliud quàm stultorum hominum, qui trahuntur ab ijs quibus inest pellens visio. Ita etiam pueri cùm ignem aspexerint, splendore adducti ad eum feruntur, cùm q̃ sit eum tangere periculosum, propter ignorationem minimè animaduerterint. Tales stultis sunt mulieribus gemmæ monilibus alligatæ, & inclusæ torquibus, amethysi, & ceraunitæ, & iaspides, & topazion, & smaragdus Milesia, merces pretiosissima. Maximi autem pretij margarita mundum muliebrem per summam lasciuiam mirandum in modum inuasit: ea autem nascitur in quodam ostreo pinnis non absimile: magnitudo autē eius est quantus permagnus piscis oculus: nec pudet miseras totum suum studium in hoc ostreo ponere, cùm eis liceat sancta ornari gemma, nempe Verbo Dei, quod vtiq; Scriptura appellauit Margaritam, qui est pellucidus & purus Iesus, qui est in carne contemplator oculus, qui est ratio, qui perspicuus, per quem caro est pretiosa quæ aqua regeneratur. Illud enim ostreum in aqua natum carnem contegit: ex ea autem margarita concipitur. Ex sanctis autem lapidibus supernam Hierusalem fuisse constru- *Apocal. 22.*
B ctam accepimus: & duodecim portas cælestis ciuitatis, lapidibus pretiosis assimilatas, suscipiendam Apostolicæ vocis gratiam significare admittimus. In pretiosis enim lapidibus collocati sunt colores, sunt autem ij pretiosi: alia verò remanent terrestris materia: meritò ergo symbolicè sanctorū ex his ędificatur ciuitas. Ex inimitabili itaque illo flore lapidū, florem spiritus, ab interitu scilicet alienam & sanctam substantiam, intellexere. Quæ ergo quid sit in Scripturis symbolicum non intelligunt, totæ lapidibus inhiāt, admirabilem illam defensionem afferentes: Quę ostendit Dominus, cur eis non vtamur? &, Adsunt mihi, cur non eis me oblectabo? &, quibúsnam ergo facta sunt, si non nobis? Eorum qui Dei vocem planè ignorauerūt, sunt eiusmodi voces. Primùm enim quę sunt necessaria, sicut aquam & aërem, apertè omnibus suppeditat: quæcunq; autem non sunt necessaria, terra & aqua abscondit. Et ideo aurum formicæ fodiunt: aurum Gryphes custodiunt: à mari teguntur margaritæ: vos autem curam superuacaneam ponitis in ijs quæ non oportet. ecce totum cælum apertum est, & Deum non quęritis: absconsum autem aurum & lapides ij apud nos scrutantur, qui sunt damnati capitis. Quinetiam Scripturæ repugnat, cùm illa apertè clamet: Quærite primùm regnum cælorum, & hæc omnia ad- *Matth. 6.*
ijcientur vobis. Quòd si etiam vobis omnia donata sunt, & si vobis omnia concessa *1. Cor. 10.*
sunt, & si omnia vobis licent, ait Apostolus, sed non omnia expediunt. Produxit autem genus nostrum Deus ipse ad communicationem, cùm ipse prior suum filium impertijt, & suum Verbum omnibus commune subministrauit, & fecit omnia pro
C omnibus: sunt ergo omnia communia, ne plura quàm alij sibi vendicent diuites. Hoc ergo, Adsunt mihi, & supersunt, cur non me ijs oblectabo? non est humanum, nec ad societatem pertinēs. Illud autem magis charitatem arguit, Adsunt mihi, cur non impertiar pauperibus? qui enim talis est, est perfectus, qui hoc impleuit, Dili- *Rom. 12.*
ges proximum tuum sicut teipsum. Hæ sunt veræ delitiæ, hic est pretiosus thesau- *Galat. 5.*
rus. Quæ autem fiunt in cupiditates impensæ, interitus non sumptus locum obtinent. Scio enim Deum potestatem vsus nobis dedisse, verùm eum vsque ad id quod est necessarium: & vsum communem esse statuit. Absurdum est autem & turpe, vnum lautè & luxuriosè viuere, cùm multi esuriant. Quanto est enim gloriosius multis benefacere, quàm magnificè habitare? quanto autem prudentius, in homines quàm in lapides & in aurum impendere? quanto autem est vtilius ornatos habere amicos, quàm ornamenta inanima? cuinam autem agri tantum profuerint quantum gratificari? Restat ergo nobis vt illud quoq; quod obijcitur dissoluamus. Quinam ergo habebunt quæ sunt sumptuosa & magnifica, si omnes quæ sunt vilia & frugalia deligunt? Homines, dixerimus, si absq; vlla vehementi affectione & discrimine eis vtamur: sin autē fieri non potest vt sint omnes frugi & temperantes, at propter vsum rerum necessariarum, ea quę facilè parari possunt, sunt persequenda, hæc superuacanea multum valere iubētes. In summa ergo, ornamēta, vt quæ ornatus satietatem afferunt, ipsum etiam mundum recusantibus sunt omnino exterminanda:

oportet enim eas intus esse ornatas,& pulchram mulierem internam ostendere. In sola enim anima pulchritudo apparet & turpitudo: & ideo is solus qui est virtute prædicus,is verè est pulcher,bonus & honestus: & solum quod pulchrum est & honestum,bonum esse statuitur.Sola autem virtus vel per pulchrum corpus apparet, & in carne efflorescit,moderationis speciem amabilem ostendens, quando mores tanquam lux quædam in forma resplenduerint.Vniuscuiusq; enim plantę & animalis pulchritudinem, in vniuscuiusq; virtute esse euenit. Hominis autem virtus est iustitia,temperãtia,animi magnitudo,& pietas: pulcher ergo & honestus homo est qui est iustus & moderatus,& vt semel dicam,qui bonus est,non qui diues. Iam verò milites quoq; volunt auro ornari, vt qui nec illud legerint Poëticum: A

Hom.Iliad. *Quiq; aurum gestans, in bellum,ut stulta puella,*
*Ibat.*

Cæterùm ornatus quidem studium, quòd virtutis minimè curam gerit,sed corpus sibi vendicat,boni & honesti studio conuerso ad vanã gloriam,funditus expellendum est. Quæ enim corpori non conueniunt, perinde ac si ei conueniant, adiungens,mendacij meditationẽ,& consuetudinis fraudem progenerauit, non honestatem,simplicitatẽ,& à simulatione alienationem,& verè pueritiã,sed fastũ,arrogantiam,mollitiem & luxuriam ostendens. Istæ verò verã pulchritudinem obscurant, auro eam adumbrantes,nec intelligunt quantum in se delictum admittunt, se innumerabilibus vinculis alligantes, quemadmodum dicũt apud barbaros, scelestos & maleficos homines auro vinciri. Captiuos hos vinctosq; diuites videntur esse æmulatę mulieres. Annon enim colli vinculum est torques aureus,moniliaq; & quę καθετῆρες vocãtur,catenarum locum obtinent? quæ etiam Attica lingua eodem nomine, nempe ἁλύσεις,hoc est,catenę appellantur. Talares autem compedes, indecorum in pedibus fœminarum ornamentum vocauit Philæmon in Synephebo: B

*Pellucidas uestes,quendamq; compedem*
*Aureum.*

Cur ergo hic à vobis tantopere expetitur ornatus,nisi q, vos velitis,ô fœminę, videri esse compedibus astrictas? Si materia enim probrum eluit,est hoc quidem vitium quod minimè interit. Ac mihi quidem videntur sua sponte vinculis alligatæ, gloriari de suis magnis calamitatibus. Ac fortasse etiam Poëtica fabula adulterium committentem Venerem dicit fuisse comprehensam eiusmodi vinculis, nihil aliud quàm hæc ornamenta,adulterij esse signa significans. Illa enim aurea quoque fuisse dixit Homerus. Iam verò vel apertissima maligni signa nequaquam pudet eas inducere. Quemadmodum enim Euam serpens decepit, ita etiam mulieres alias mundus aureus,esca vtens serpentis figura,in probra furiosè impulit,nempe murænulas

μυραίνας, ὄφεις ornamenta muliebria. quasdam aureas & serpentes ad decorem effingens. Dicit itaq; Comicus Nicostratus, Catenas,monilia,annulos,armillas,serpentes,periscelides,elleborum. Summa autem cum earum ignominia omnem mundum muliebrem recensens Aristophanes ostendit in Thesmophoria Zusis. Adducam autem ipsa verba Comici, quæ importunum vestræ insolentiæ fastum apertè arguunt: Mitræ, redimicula, nitrum, & acus, pumex, strophium, quæ pòst locatur funda, & posterius operculum, fucus, torques, componendorumque oculorum instrumenta, subtilis vestis linea, vitta,zona,instita,prætexta,multitia,cython,baratrum,encyclon, tunica. quæ sunt autem horum non dixi maxima,inaures,gemmæ,plastra,botrylidon,fibulę,amphileæ,monilia,pedicæ,sigilla,catenæ,annuli,cataplasmata,ampullæ, capitis ligamina,olisbi,sardia,ventilabra,clincteres. Ego quidem defessus sum,& indignor,dicendo tot earum ornamentorum multitudinem. Mihi autem in mentem venit admirari,quòd eæ non enecentur,dum tantum onus baiulant. O curam valde inanem. O vanam & insanam gloriæ cupiditatem. Ritu meretricio opes effundunt in probra ac dedecora, suaq; improba & arroganti stoliditate Dei donã corrumpunt & adulterant,artem maligni imitantes. Dominus autem in Euangelio eum diuitem qui in C

Luc.12. horreis & apothecis recondebat, & apud se dicebat, Habes multa bona in multos annos reposita, comede, bibe, lætare, apertè stultum vocauit: hac enim nocte animam tuam accipiunt: quæ ergo parasti, cuius erunt? Apelles pictor cùm vidisset quendam ex suis discipulis pinxisse Helenam multo auro ornatam: O adolescens, inquit, cùm non posses pingere pulchram, fecisti diuitem. Tales sunt Helenæ, quæ nunc sunt mulieres, non verè pulchræ, sed multis effictæ & ornatæ diuitijs.

Cap.1. Eis prædicit spiritus per Sophoniam, argentum & aurum ipsarum non posse eas

exi-

A eximere in die iræ Domini. Eis autem quę à pędagogo Christo erudiuntur, non auro, sed ratione ac Verbo exornari cõuenit, per quod solũ apparet aurum. Beati quidem fuissent Hebręi veteres, si mundum mulierum abstulissent & abiecissent, vel solummodo fudissent: nunc autem cùm aureum bouem cõflassent, & in eo adorando idololatriæ peccatum admisissent, ipsi quidem nec ex arte, nec ex suo instituto commodi quicquam ceperunt, expressissima autem figura nostras mulieres docuerunt, vt ab ornamentis abstineãt. Quę itaq; cupiditas in aurum fornicatur, fit idolum quod igne examinatur: cui quidem soli reseruantur delitiæ, vt quæ sint simulachrum, non veritas. Hinc Verbum per prophetam Hebræos probris insectans: Argẽtea & aurea, inquit, fecerunt Baal, ornamenta scilicet. Et apertè cõminans: Et vindicabo, inquit, super ipsam dies Baalim, in quibus ei sacrificauit, & inaures ei apposuit, & torques suos. Et ornatus causam subiungit, dicens: Et ambulauit post amatores suos, mei autem oblita est, dicit Dominus. Ipsi ergo improbo Sophistę, diabolo scilicet, nugis dimissis, ne sint huius meretricij ornatus participes, nec per speciosum prætextum, idololatriæ crimen admittant. Admodum ergo pulchrè dixit beatus Paulus: Mulieres, inquit, similiter non implicatis crinibus, vel auro, vel margaritis, vel veste sumptuosa, sed quæ decet mulieres profitentes pietatem, per bona opera seipsas ornantes. Earum enim ornatum iurè abesse iubet. Si sunt enim pulchræ, sufficit natura: non contendat ars contra naturam: hoc est, fraus minimè litiget cum veritate. Sin autẽ sunt natura turpes, ex ijs quæ sibi applicant, quod non habent arguũt. Eas ergo quę Chri-

*Exod. 32.* — *Osee 2.13.* — *1. Tim. 2.*

B sto seruiunt, conuenit amplecti frugalitatem. Frugalitas enim reuera curam gerit sanctitatis, vt quę ea quæ redundant, & sunt immoderata, exęquet & per quęlibet, qui ex superuacaneis capitur vsum percipiat. Quod enim frugale est ac tenue, vt ipsum etiam nomen indicat, non eminet, neq; vlla in re in molem assurgit aut intumescit, sed est vniuersum planum, lene, ęquale, & minimè superfluum, & ea de causa sufficiens. Est autem sufficiẽtia habitus quidam qui ad suum finem peruenit, ita vt neq; quid desit, neq; redundet. Eorum aut mater est iustitia: nutrix autem, virtus ea quæ Græcè dicitur αὐτάρκεια, quæ est per quam contenti sumus: ea igitur est habitus ijs quę oportet contentus, & qui per se ea acquirit quæ ad beatam vitam conferunt. Sit ergo in vestrarum manuum carpis sanctus ornatus, quæ facilè impertitur communicatio, & familiæ administrandę opera. Qui enim dat pauperi, fœneratur Deo, & manus fortium ditescunt. Fortes vocat eos qui pecunias cõtemnunt, & qui sunt ad communicandum & largiendum faciles. In pedibus autem appareat impigra alacritas ad benefaciendum, & ingressus ad iustitiam. Torques autem & catenę sunt pudor & modestia: talia Deus fundit monilia. Beatus homo qui inuenit sapientiam, & mortalis qui vidit prudẽtiam, dicit spiritus per Solomonem. Eius enim est melior mercatura quàm thesauri auri & argenti. Est autem pretiosis gemmis pretiosior: hæc est enim verum ornamentum. Eis autem non perforentur aures pręter naturam, vt aureę ab eis inaures dependeant: neq; enim fas est vim afferre naturæ pręter id quod voluit. Non alius autem fuerit melior aurium ornatus, descendens ad

*λιτὸς frugalis & tenuis.* — *ἱκανὸς sufficiens, à ἱκνέομαι, quod significat peruenio.* — *Prouerb. 3.*

C meatus qui sunt secundum naturã, quàm vera Catechesis, hoc est, quæ per auditum suscipitur institutio. Oculi autem verbo inuncti, & aures ad sensum perforatę, diuinarum rerum auditorem & sanctarum rerum contemplatorem efficiunt, Verbo verè veram ostendente pulchritudinem, quam oculus non vidit, nec auris priùs audiuit.

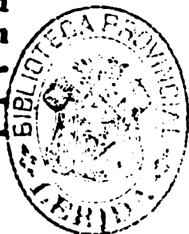

HÆC INSVNT IN TERTIO *libro Pædagogi.*

# CLEMENTIS PAEDAGOGI LIBER TERTIVS.

**De uera pulchritudine, Cap. I.**

EST ergo, vt videtur, disciplinarum omnium pulcherrima ac maxima, seipsum nosse: si quis enim seipsum norit, Deum cognoscit. quòd si Deum cognoscet, ei assimilabitur, non aurum gestans, nec talarem vestem ferens, sed benefaciens, & quàm paucissimis fieri poterit indigens. Solus autem deus nulla re omnino indiget, & maximè quidem gaudet, quando videt nos mentis ornatu mundos: deinde & eo, qui castam corporis vestem, nempe moderationem & temperantiam complectitur. Cùm sit itaq; anima triplex genere: intelligentia, quæ ratiocinandi facultas appellatur: internus homo est, qui huic homini qui videtur, imperat, eum ipsum autem alioqui deus agit. Ira autem quæ est fera & immanis, haud ita procul à furore habitat. In varias autem formas se mutans tertia est cupiditas, quæ plusquam Proteus marinus dæmon varius, nunc hanc, nunc illam, nunc aliam figuram suscipit, & ad libidines, stupra, & adulteria allicit, B

*Efficiturq; leo primum, cui barba decora est.*

Cultum & ornatum adhuc ferens. Virum autem esse, barbæ pili ostendunt:

*Sed post illa draco, uel pardus, sus quoque magnus.*

Prolapsum est nimium cultus studium ad intemperātiam. Valentem itaq; feram homo non præ se fert amplius:

*Humida lympha, arbos ramisq; fit alta proceris.*

Effunduntur affectiones, obruuntur voluptates, flaccessit pulchritudo, & citius quàm folia humi dēcidit, quando amatoriæ eius petulantiæ procellę expirauerint, & priusquam venerit autumnus, marcescit & interit. Omnia enim fit cupiditas, & omnia effingit, & vult fucum facere, vt occultet hominem: homo autem ille, cui ratio verbúmve cohabitat, non variatur, non fingitur, formam habet rationis. Deo assimilatur, pulcher est, nō vt pulcher videatur colitur. Vera est pulchritudo, est enim deus: deus aūt ille fit homo, quoniam deus vult. Rectè ergo dixit Heraclitus: Homines dij, dij homines: ratio enim hæc est euidens mysterium. Deus in homine, & homo deus: & voluntatem Patris intercessor efficit. Intercessor enim est ratio seu Verbum, quæ est communis ambobus. Dei quidem filius, seruator autem hominum: & illius quidem minister, noster autem pædagogus. Atque cùm caro quidem serua sit, quemadmodum testatur Paulus, quomodo quis iurè ancillam lenonis instar exornauerit? Quòd enim id quod carneum est, sit serui forma, dicit de Domino Apostolus, eum seipsum exinanijsse serui forma accepta, externum hominem seruum appellans priusquàm seruijsset, & carnem suscepisset Dominus. Misericors autē deus, ipse carnem effecit liberam, cumq; ab interitu acerbaque & letifera seruitute liberasset, incorruptionem ei adiunxit, sanctum hoc & æternitatis ornamentum carni, immortalitatem videlicet, apponens. Est autem alia quoq; hominum pulchritudo, charitas: Charitas aūt, vt ait Apostolus, est patiens, benigna, non ęmulatur, non agit perperàm, non inflatur. Perperàm enim agere dicitur cultus, qui superfluitatem & inutilitatem apertè indicat. Et ideo subiūgit: Non indecorè se gerit. Indecora enim est aliena, & quæ non est secundum naturam, figura: quæ autem ficta est, est aliena. Quod quidem apertè explicat, dū dicit: Non quærit quę sua sunt. Quod enim proprium est eius, est veritas. Vocat itaque quod suum est. Quod alienum est autem quærit nimium ornatus studium, vt quod sit remotum à deo, ratione, & charitate. Ipsum autem dominum fuisse aspectu deformem, testatur spiritus per Esaiam: Et vidimus ipsum, & non habebat speciem nec pulchritudinem, sed species eius vilis, diminuta præ hominibus. Quis est aūt domino pręstantior? Sed non carnis pulchritudinem quæ visione apprehenditur, sed veram animę & corporis ostendit pulchritudinem: animæ quidem, beneficentiam: carnis verò, immortalitatem.

(Marginal notes: C — Philip. 2. Hebr. 2. — 1. Cor. 13. — Cap. 53.)

Quòd

A Quòd non sit cultu utendum, Cap. II.

ON externi ergo hominis aspectus, sed animus probitatis ornamento ornandus est. Dici potest, ornandã quoq; esse carnem ornamento continentiæ. Istę autem nõ animaduertunt, dum colunt id quod est extrinsecus, quæ intus in profundo sita sunt, esse planè inculta, horrida & sterilia: cuiusmodi sunt etiam ornamenta Ægyptiorum, apud quos templa, eorumque porticus, vestibula ac luci magnificè instructi, eorumq; atria multis columnis cincta sunt: parietes autem lapidibus externis & artificiosè depictis resplendent, ita vt nihil desit: ædes autem auro, argento, & electro collucent, & ex India ac Æthiopia varijs fulgentibus lapillis: adyta verò intextis auro obumbrantur peplis. Sed si penetralia templi ambitus subieris, & ad eius quod est præstantius spectaculum properans, imaginem quę templum habitat quęsieris, sacerdos quispiam ex ijs qui in templo sacrificant graui & venerando vultu aspiciens, & Ægyptiorum lingua pæanem concinens, cùm veli aliquantum contraxerit tanquam deum ostensurus, abundè nobis suppeditat occasionem irridendi numinis: neq; enim intus invenietur deus qui quærebatur, ad quem festinabamus, sed felis, vel Crocodilus, vel serpens indigena, vel aliqua eiusmodi belua, quæ templo quidem est indigna, sed antro, speluncæ, ac cœno magis congruit. Apparet deus Ægyptiorum, belua, quæ super vestem stragulam purpuream volutatur. Ita etiam mihi videntur fœminæ quæ aurum gestant, & in crispandis crinibus exercentur, & in genis vngendis, oculisque pingendis, & B pilis tingendis versantur, & aliam mollitiem arte improba persequuntur, carnalem ambitum ornantes, & verè Ægyptios imitantes, infelices amatores attrahere. Sed si quis veli templum aperuerit, vittam inquam, vestem, aurum, fucum, tincturam, & quę eis intrita & incrustata sunt, hoc est, velamentum quod ex eis contextum est, tanquam illic veram inuenturus pulchritudinem, rectè scio eum esse abominaturum. Neque enim dei imaginem intus inueniet habitantem, quam est consentaneum: sed loco eius fornicatrix & adultera animæ occupauit adytum, & vera esse bestia conuincetur, fuco scilicet intrita & incrustata simia: & seductor ille serpens, mentis exedens intelligentiam, per gloriæ cupiditatem pro spelunca habet animam, & cùm omnia exitialibus venenis impleuerit, & erroris sui virus eructauerit, mulieres in meretrices transformat hic Draco, fungens lenonis officio: non est enim mulieris, sed meretricis, illud nimium sui ornandi studium. Quę quidem mulieres, domus apud maritos seruandæ, administrandæq; familiæ curam gerunt exiguam, sed soluta mariti crumena, quæ eis suppeditantur, conuertunt in suas cupiditates, & quòd pulchrę videãtur multos testes habeant: & ornandi artificio toto die asſidentes vacant, ære emptis mancipijs. Carnem ergo vt quæ sit visu iniucunda, mollem & suauem reddunt: & interdiu quidem in thalamis versantes, arti ornandi affixæ sunt, ne floridis coloribus depictę deprehendantur: vespere autem tanquam ex antro ad lucernam prorepit hæc adulterina pulchritudo. Nam & ebrietas, & lux exilior & paulò obscurior, incrustationi earum opem ferunt. Atq; eam quidem, quę C suos pilos reddebat flauos, Męnander Comicus domo arcet:

*At nunc recede ab his ædibus: nam fœminam*
*Pudicam non decet facere flauos pilos,*
*Sed neque genas fucare, nec oculos depingere.*

Non intelligunt autem miserę, se propriã perdere pulchritudinem, dum externã inducunt. Summo itaq; mane se lacerantes & extendentes, varijsq; ac confusis mixtionibus effingentes, viuum quidem cutis colorem refrigerant, carnem autem venenis effodiunt, curiosisq; ac superfluis absterſionibus proprium decoris florẽ corrumpunt, & marcidum efficiunt: quocirca eæ cataplasmatibus quidem cernuntur pallidæ, à morbis autem facilè arripiuntur, vt quæ adumbratam carnem venenis iam liquefactam habeant: hominum opificem contumelia afficientes, tanquam qui pro meritis non fuerit eis largitus pulchritudinem. Iurè ergo quod ad domum seruandam, & administrandam familiam attinet, sunt ociosæ, vt quę sedeant, veluti depictæ ad spectaculum, non natæ ad domus custodiam familięque administrationem. Et ideo apud Comicum dicit considerata mulier:

*Quid prouidi fecerimus nos fœminæ,*
*Vel splendidi, quæ tot colorum floribus*
*Sparsæ sedemus, liberarum mulierum*
*Typum ac figuram destruentes funditus,*

*Perniciem domorum, & coniugum exitium,*
*Et filiorum uendicantes dedecus.*

Hac etiam ratione Antiphates Comicus in Malthaca irridet meretriciam mulierum consuetudinem: dicens verba omnibus communia, aduersus illam earum fricationem & intritionem. Venit ipsa, transit, accedit, non transit, venit, adest, abest, erigitur, accedit, smegmate saponéve purgatur, pectitur, eiecit, teritur, lauatur, se contemplatur, componitur, vnguentis perfunditur, ornatur, vngitur, & si quid non habeat, enecatur. Ter enim non semel dignæ sunt quæ pereant, quæ Crocodilorum excrementis vtuntur, & spuma sæpiarum vnguntur, & supercilia fuligine illinunt, & fuco genas terunt. Quæ ergo vel Poëtis ethnicis erant odio propter mores, cur non magis à veritate reijciendæ fuerint? Alius itaque Comicus eas reprehendens, Alexis, eius enim verba afferam, quæ curiosa & superuacanea rerum explicatione, propter perpetuam & immutabilem earum impudentiam pudore eum affici ostendunt, neque enim erat quantum par fuisset curiosus, me autem pudet fœminas ita in Comœdijs rideri, si eis possem aliquid afferre auxilij. Deinde verò marito quoq; affert exitium: primùm quidem in lucro, & in spoliandis proximis: omnia alia opera ab eis fiunt obiter. Est aliqua parua, suber in calceis insuitur: longa est aliqua, tenuem gestat scalam, caput in humerum demittens egreditur, hoc ei detrahit de longitudine: depresiores coxæ & fœmora sunt alicui, eis aliquid assuit, vt qui ingrediuntur eam pulchras habere nates exclament: mollem ac prominentē habet ventrem, vt Comicorum nutrices, appositis nonnullis eum erigit: depresior est venter, veluti contis quibusdam adhibitis efficit vt is anterius procedat: supercilia flaua habet, aliqua depingunt fuligine: alicui vt ea nigra sint contigit, tollit cerusa nigrorē: sunt alicui nimis alba, farina deterit alborem: habet aliquam corporis partem candidam, eam nudam ostendit: bellos habet dentes, rideat necesse est, vt præsentes videant quàm sit ei os venustum: & quamuis læta non sit, toto tamen die ridet, in labris habens tenuem myrsinæ tabellam, vt velit nolit ea tandem cogatur diducere. Hæc ad dehortandum nimium sui ornatus studium ex mundana adduxi sapientia, cùm velit Verbum nos omni ratione conseruare: mox autem diuinis quoque Scripturis id munio. Solet autem qui non latet, propter reprehensionum dedecus abstinere à peccatis. Quemadmodum autem cui impositum est cataplasma, & cui inuncti sunt oculi, vel ipso aspectu prębet morbi suspicionem: ita fuci, tincturæ, & colores illiti, animam intrinsecus ægrotare significant. Ne ad alienũ autem fluuium accedamus, nobis suadet pædagogus: per alienum fluuium, alienam vxorem libidini deditam allegoricè significans, vt quæ ad omnes dimanet, & per meretriciam intemperantiam omnium voluptati effundatur. Ab aliena, inquit, aqua abstine, & ex fonte alieno ne biberis: titillantis sensum delectationis fluentum nos vitare admonens, vt longo tempore viuamus. Adiecti autem nobis fuerint anni vitæ, siue alienam voluptatem non venantibus, siue etiam hęreses declinantibus: atq; ebriosum quidem esse & vinosum, etsi sint magna vitia, non tamen tanta, quãtum est nimium sui ornandi studium. Mensa plena, & frequentes calices satis sunt ad implendam ingluuiem: at qui auri, purpuræ, & gemmarum nimio studio tenentur, ijs nec quod super terram, nec quod sub terra est, aurum suffecerit: neque mare Tyrium, nec quæ ab Indis & Æthiopibus deportantur onera: sed nec Pactolus, cuius sunt fluenta aurea: sed nec si quis eorum Midas fortè euaserit, is impleri potest, sed est adhuc pauper, alias opes desiderans: vnà autem cum auro vel commori parati sunt. Quòd si cæcæ sunt opes, vt reuera cæcæ sunt, quomodo non cæcæ sunt quę eas stupent, & admirantur, & in eas affectæ sunt? Dum ergo cupiditatis limites sibi non constituunt, in impudentiã impingunt. Eis enim opus est & theatro, & pompa, & spectatorum multitudine, & errore in sacris, & diuturna mora in triuijs, vt eæ sint manifestę omnibus. Ornantur enim vt alijs placeant, quę in facie, non in corde gloriantur. Sicut enim notæ inustæ fugitiuum, ita etiam floridi colores adulteram indicant: nam etsi coccino induaris, & aureo ornamento orneris, & oculos tuos vngas stibio, frustra est pulchritudo tua, dicit Verbum per Hieremiam. An verò non absurdum est equos quidem, & aues, & alia animantia, ex herba & pratis surgere ac euolare proprio ornamento lætantia, iubis & colore naturali, & pennis varijs: mulierem verò perinde ac si sit bestijs inferior, se esse adeò deformem existimare, vt externa, empticia & adumbrata pulchritudine egeat? Vittę certè, & earum permultę differentię, & curiosæ ac superuacaneæ capillorum plicaturę, & crinium innumerabiles figuræ,

Margin notes: σπαδίων (beside "beat, enecatur"); Prouerb. 9. (beside "temperantiam omnium"); Ecclesi. 25. (beside "fonte alieno"); πλοῦτος (beside "per, alias opes"); Hierem. 4. (beside "stra est pulchritudo"). Section letters: A, B, C.

A ræ,& pretiosæ speculorum structurę quibus se componunt, dum eas venantur qui pueorum more insipientium formas admirantur, sunt fœminarum quæ omnē pudorem exuerunt: quas qui meretrices vocauerit, is non aberrauerit, quę ex vultibus suis personas faciunt. Nobis autem suadet sermo, non ea considerare quæ videntur, sed ea quæ non videntur. Quæ enim vid entur sunt temporalia: quæ autem non videntur, æterna. Quo autem nihil dici aut fingi potest absurdius, fictę istius suæ formæ, perinde ac si res ab eis bene gesta & correcta sit, specula excogitarunt, cùm huic fraudi esset potius admouendum operculum. Neq; verò (vt est in Græcorum fabulis) formoso Narcisso rectè succescit, quòd suæ fuerit contemplator imaginis. Quòd si Moses pręcipit hominibus nullam facere imaginem, quę * Deum arte repręsentet: quomodo hę rectè fecerint mulieres, quę fallaci personę fictione suas per reuerberationem imitātur imagines? Cęterùm prophetę quoq; Samueli, cùm mitteretur vt vngeret in regem vnum ex filijs Iesse, & vidisset eius filium natu maximum pulchrum & magnum, quando eo lætatus Samuel chrisma protulit, dixit, inquit, ei Dominus: Ne respexeris ad aspectum eius, & altitudinem magnitudinis eius, quoniam repuli eum. Homo enim respiciet ad oculos, & Dominus ad cor. Et non vnxit eum qui erat pulcher corpore, sed eum qui pulcher erat animo. Si ergo naturalem corporis pulchritudinem minus quàm pulchritudinem animæ æstimat Dominus, quid sentit de adulterina, qui quicquid falsum est omnino expulit? Per fidem enim ambulamus, non per speciem. Apertissimè ergo do-

πρoσωπεῖον; 2. Cor. 4.; Exod. 20.; Deut. 5.; * ἢν αὐτὴν χρὴ; 1. Reg. 4.; 1. Cor. 13.

B cet Dominus per Abraham, & patriam, & cognatos, & possessiones, & omnes diuitias contemnere eum qui Deum sequitur, cùm eum fecit aduenam. Et ideo eum appellauit Amicum, vt qui suas facultates habuisset contemptui: erat enim honesto loco natus, & valde diues. Trecentis itaque & octodecim suis famulis quatuor reges subegit, qui Loth captiuum abduxerant. Solam Hester iustè inuenimus ornatam: mysticè ornabatur mulier regi suo, sed eius pulchritudo pretium inuenitur, quo liberatus fuit populus qui interficiebatur. Quòd autem cultus faciat mulieres meretrices, viros autem androgynos seu effœminatos & adulteros, testis est nobis Tragicus, sic narrans:

Genes. 14.; Hester 5.

*Venisset ast hic ex Phrygibus cùm qui Deas*
*Dijudicauit, sunt ut Argis fabulæ,*
*Lacedæmona, ornatu superbo uestium,*
*Barbarico luxuq; & auro splendidus:*
*Amans amantem ui recesit auferens*
*Helenen ad Idæ caulas, abesset cum domo*
*Menelaus.*

O ad adulteria incitantem pulchritudinē. Græciam euertit barbarum sui ornādi studium, & effœminatæ delitiæ. Laconicam pudicitiam corrupit vestis, & luxus, & pulchra species: Barbaricum sui ornandi studium meretricē probauit Iouis filiam. Non erat eis pędagogus qui rescinderet libidines, nec qui diceret, Nō mœchaberis:

C nec qui diceret, Non cōcupisces, nec ad adulterium iter ingredieris per concupiscētiam, sed neq; appetitiones inflammabis per immoderatum tui ornādi studiū. Sed hęc cuiusmodi consecutus est exitus, & quot mala senserunt qui nimium sui amorem prohibere noluerunt? Propter effręnatas voluptates Græcia & Asia commotæ sunt. A barbaro adolescentulo omnia agitantur. Tota Græcia nauigat, mare in arctū cogitur terras ferens, longum bellum excitatur, & vehementia erumpunt prælia, campiq; implentur cadaueribus, classi insultat Barbarus, dominatum obtinet iniquitas, & ficti illius Iouis oculus Thraces respicit, & fluuiorum fluenta sistūtur mortuis corporibus, pectora pulsantur planctibus, & luctus terram possidet. Idæ autem multis fontibus irriguę omnes concutiuntur pedes & omnia cacumina, Troianorum vrbes & Achiuorū naues. Quò fugiemus, ô Homere, & vbi consistemus? Osten de nobis terram quæ minimè mota sit.

*Puer ne habenas tetigeris qui es insciens,*
*Currumq; agendi ignarus, haud ascenderis.*

Duobus aurigis cælum lætatur, quibus solis ignis agitur. Mens enim à voluptate abducitur, & rationis integritas, quæ Verbo pædagogo non vtitur, labitur in libidinem: lapsus aūt mercedem recipit, quòd excidat. Harum rerum tibi sunt indicio Angeli, qui Dei reliquerunt pulchritudinem, propter pulchritudinem quę flaccessit, atqueadeo è cælis in terram ceciderunt. Quinetiam Sicimitæ puniuntur, qui lapsi

Esa. 14.; Ezech. 28.

sunt,sanctæ virgini probrum inferentes. Sepulchrum,eis est supplicium, & pœnæ monimentum nos ducit ad salutem. A

*Aduersus uiros qui se colunt,* *Cap.* III.

Ovsq; ergo processit luxus,vt non solùm fœminæ inani hoc studio laborent,sed etiam viri hoc vitium sequantur.Qui enim à corporis cultu minimè puri sunt,ij nequaquam sani sunt: ad mollitiem autem declinantes,planè effœminātur,illiberali quidem tonsu ac meretricio se tondentes:subtilibus autem ac perspicuis vestibus induti, gloriosè vndequaq; obeuntes, Mastichen rodentes,& vnguenta olentes . Quid de ijs dixerit quispiam,qui tanquā Metoposcopus,ex figura diuinat,cùm eos viderit,adulteros,androgynos atq; effœminatos,vtranq; Venerem persequentes,pilis infestos,glabros, florem virilem abhorrentes,comas autem non secus ac mulieres ornantes?in nefarijs autem & audacibus cœptis improbi ac scelerati viuētes:stolida admittunt atq; improba facta, ait Sibylla. Propter eos plenæ sunt ciuitates ijs, quos effœminatos picant,radunt,& vellunt.Officinæ autem vbique cōstructę & apertæ sunt,& huius meretriciæ fornicationis artifices multum pecuniæ lucrantur ab ijs qui seipsos pice oblinunt, & pilos vulsoribus quoquo modo præbent vellendos, quos nec eorum qui vident, nec eorum qui accedunt, nec suijpsorum qui viri sunt pudet. Tales sunt qui turpes & illiberales persequuntur affectiones, & quorum corpus violentis picis vulsionibus totum glabrum est & lęue. Nihil est certè quo possit vlterius progredi talis B impudentia.Si enim nihil ab eis infectum relinquitur, nec silentio est à me prætereundum. Quendam ex ijs qui verè sunt ignaui ac degeneres,pædagogi ritu increpans Diogenes, cùm venderetur, magno & forti animo dixit: Veni adolescens, eme tibi virum:ancipiti oratione fornicatorium eius vitæ institutum corrigens. Eos enim qui viri sunt radi ac leuigari,quomodo non est turpe ac planè illiberale? Pilos autem tingere,& canos vngere ac coloribus oblinere,quibus perditi androgyni effœminatiq; homines vtuntur, muliebresque pexus omnino dimittendi sunt. Putant enim se,sicut serpētes, posse senium capitis exuere,dū seipsos pingentes transformant ac renouant:sed & si pilos callidè circumscribant, rugas tamen non effugient:sed neque mortem latebunt,etsi tempus per artem ementiantur. Quo magis homo festinat ad finē,tanto est verè venerabilior, vt qui Deum solum habeat se seniorem.Nam ille quoq; est æternus senex,qui est ijs quę sunt antiquior. Antiquum

*Daniel.* 7. dierum illum vocauit prophetia.Et capilli capitis eius tanquam lana pura, ait Pro-
*Matth.* 5. pheta.Nullus autem alius,inquit Dominus,potest album pilum facere,vel nigrum. Quomodo ergo opus Deo contrarium fabricantur,vel potius ei per vim aduersantur impij,qui pilum transmutant qui ab eo canus factus est? Senum autem corona,
*Ecclesi.* 25. inquit Scriptura,est multa experientia:& vultus eius canities, flos est multæ experientiæ.Illi verò canorum tinctorem,qui est ætatis munus pręcipuum,dedecore afficiunt.Fieri autem non potest,nō potest,inquam,fieri, vt veram ostendat animam,
*Ephes.* 4. qui caput habet adulterinum.Vos autem non sic,inquit,Christum didicistis,si quidem ipsum audijstis,& in ipso docti estis,sicut est veritas in Iesu,vt vos deponatis se C cundum priorem conuersationem veterem hominem:non canum,sed eum qui corrumpitur secundum desideria deceptionis.Renouemini autē (non tincturis & cultibus) spiritu mentis vestræ,& induite nouum hominem,qui secūdum Deum creatus est,in iustitia & sanctitate veritatis.Eum autem qui vir est, pecti & tonderi, crines componētem ad speculum,genasq; radi,velli,ac deglabrari, quomodo non est planè muliebre?& certè nisi quis eos nudos viderit, mulieres esse putauerit. Etsi enim eis aurum gestare nō sit permissum,per muliebrem tamen libidinem,quasdam auri fimbrias & quędam fila folijs circumplectentes, vel ex eadem materia sphęricas nescio quas figuras facientes,talis appendunt,& erecto collo gestant. Hoc est inuentum fractorum hominum,qui trahuntur in gynæcium,ancipitis vitæ & ad libidinem propensarum bestiarum . Hæc est fornicatoria & impia insidiarum ratio: Deus enim voluit fœminam quidem esse glabram ac lęuem,sola coma,sicut equum iuba,sponte naturę exultantem: virum autem cùm sicut Leones barba ornasset, virilem etiam fecit hirsuto pectore,quod quidem est roboris & imperij indicium. Ita etiam gallos qui pro gallinis decertant,cristis tanquam galeis ornauit. Hos autem pilos Deus tanti facit,vt eos simul cum prudentia iubeat adesse hominibus : atque adeo honestate delectatus,grauitatem honorauit veneranda canitie.Prudentia autem

A tem,& accuratæ exactæque rationes,canæ intelligentię,vnà cum tempore ad summum suum vigorem perueniunt,& intensis multæ experientię viribus,senium confirmant ac corroborant, amabilem venerandæ prudentię florem ad fidem iurè faciendam proferentes,scilicet caniciē.Hoc viri signū,barba scilicet,per quod vir apparet,est Eua antiquius,& signū melioris naturę.Eum Deus ęquum censuit hirtum esse oportere,& per totum viri corpus pilos disseminauit:quicquid autem eius erat læue ac molle,à latere abstulit, ad seminis susceptionem tractabilem fœminam fabricatus,vt & generationis & domus custodię esset opitulatrix.Ille autem(quod lęue enim erat proiecerat)& vir mansit,& virum ostēdit,& ei agere, quemadmodum illi pati,concessum est: sunt enim natura sicciora & callidiora, quæ sunt hirsuta,lenibus.Quocirca & masculina fœminis,& coleata exectis,& perfecta imperfectis,& hirsutiora sunt & calidiora.In eo ergo violādo,quod est virilis naturæ signū, eo scilicet quod est hirsutum,contra legem facere est impium.Læuoris autem aut glabritiei ornamentum(à verbo enim inflammor)si in viros quidem,est muliérculæ: si in fœminas autem,adulteri: vtrunq; autem est à nostra republica longissimè relegandum. Quinetiam vestri quoque capitis omnes capilli numerati sunt, ait Dominus. Matth.10.
Sunt autem etiam pili in barba numerati, atqueadeo etiam quæ sunt in toto corpore: non est ergo aliquid vellendum præter Dei institutum, quod in voluntate eius annumeratum est.Nisi vtique vos ipsos non agnoscitis,inquit Dominus,quòd Ioan.14.
Christus Iesus est in vobis:quem si inhabitantem sciuissemus, nescio quomodo ipsum probro afficere in animum induxissemus.Picari autem ac velli, vereor dicere

B quàm sit indecorum & turpe factu.Auersos,incuruatos,& arcana naturę apertè denudantes,exilientes,& coxarum vertebras propémodum luxantes,& cùm erubescendæ sint eorum figuræ,ipsi non erubescentes,in ipso iuuenum cœtu & medio gymnasio vbi virtus virorum exercetur,se indecorè gerentes,hoc pręter naturam persequi exercitium,quomodo non est extremæ intemperantiæ? Qui enim in aperto hęc faciunt,vix vllos domi fuerint reueriti. Quæ in publico autem est intemperantia,testatur eam quæ est in obscuro in summa licentia libidinem. Qui enim sub solis radijs virum abnegat, clarum est eum noctu conuinci mulierem. Non erat autem,dixit Verbum per Mosen,meretrix ex filiabus Israël, & non erit scortum ex filijs Israël.At pix iuuat,inquiūt:imo verò facit vt quis malè audiat. Nemo aūt qui sapit,voluerit scortum videri,si eo morbo non laboret, & studere vt pulchra imago vituperetur.Si eos enim qui sunt vocati secundū propositū Deus præsciuit cōformes imagini sui filij,propter quos,vt vult Apostolus, præfinijt ac prędestinauit beatitudinem,vt sit ipse primogenitus in multis fratribus: quomodo non sunt impij, qui conforme Domino corpus iniuria probroq; afficiunt?Ei autem qui pulcher esse velit,quod est in homine pulcherrimum,ornandum est,nempe mens, quam oportet quotidie pulchriorem & magis decoram ostendere.Vellendi autem sunt non pili, sed cupiditates.Ego verò eorum etiam qui ab ijs qui mancipia venundant,veneunt pusionum misereor:atqui probro & iniuria non à seipsis afficiuntur, sed iussi miseri ad turpem quæstum faciendum ornantur.Qui aūt sua sponte lubentesq; ac volentes ea faciunt,quę qui iubent capite punirētur,si viri essent,quomodo non execrandi? At nunc quidem vita eò processit intemperantiæ, insultante & lasciuiente iniquitate,& quicquid est impudicum & libidinosum, diffusum est in ciuitatibus, & iam pro lege habetur.In eis stant in fornice mulieres,carnem suam ad probrum voluptatis venundantes:& pueri docti abnegare naturam,mulieres simulant. Omnia immutauit luxus:hominem probro ac dedecore affecit: mollis & luxuriosa superflua curiositas quærit omnia, omnia aggreditur, naturam coërcet, homines patiuntur muliebria,& fœminæ præter naturam viros agunt, & nubunt vxorésque ducunt fœminę: nullus est meatus ad quem non pateat aditus impudicitiæ. Iam verò eis quoq; cōmunis venus publicatur,conuiuiorū delitiæ.O miserandū spectaculum,ô nefandum studiū.Hęc ciuilis nostræ intemperantię ostenduntur trophęa: flagitia arguunt,quæ prostant in fornicibus.O quanta est hęc iniquitas.Sed neq; intelligunt miseri quātas sępe tragœdias excitet incertus coitus. Cū meritorio filio & meretricibus filiabus,sępe patres coëunt,expositorum filiorū minimè recordantes, & viros esse eos qui genuerūt ostendit nimia libidinis licentia.Hæc sapientes leges permittunt:licet autem eis peccare ex lege,& nefandam voluptatem appellant facilitatem:se esse ab adulterio liberos existimant, qui naturam adulterant. Eos autem consequitur eorum, quę flagitiosè ab eis perpetrata sunt, vltrix iustitia: & in

Deut.23. (margin, beside "Non erat autem ... ex filiabus Israël")
Rom.8. (margin, beside "imagini sui filij ... beatitudinem")
C (margin letter, beside "ri ad turpem quæstum")

seipsos ineuitabilem attrahentes calamitatem, paruo nummo mortem emunt. Harum mercium miseri mercatores, nauigant, tanquam frumentum, tanquam vinum, fornicationem importantes: alij autem longè miseriores, tanquam panem, tanquam obsonium, voluptates comparant. Et nec illud quidem Mosis eis venit in mentem: Non prophanabis filiam tuam, vt eam facias meretricem: & non fornicabitur terra, & terra implebitur iniquitate. Hęc olim propheticè dicta sunt, est autem manifestus exitus. Omnis iam terra & fornicatione & iniquitate plena est. Suspicio autem & admiror veteres Romanorum legislatores: ij muliebre & effœminatum vitæ studium odio habuerunt, & corporis cum fœmina consuetudinem præter naturæ legem, vt in terra infoderetur ex lege iustitiæ æquum existimarunt. Nefas est enim barbam vellere, quæ est pulchritudo congenita, puchritudo generosa & ingenua. A

*Leuit. 9.*

*Primum lanugo est, qua fit gratißima pubes.*

Procedens autem iam inungitur, dum barba delectatur, in quam vnguentum descendit Propheticum, dum Aaron honoratur. Oportet autem eum qui à pædagogo rectè instituitur, super quem pax habitauit, etiam cum pilis suis pacem agere. Quid non igitur admiserint fœminę ad libidinem propensæ, dum vident viros talia audere? Imò verò ij non viri, sed Batali & fœminelli dicendi sunt, quorum voces sunt compressæ & graciles, vestis autem cùm tactu tum tinctura ipsa est effœminata. Ex moribus autem externis apertè arguuntur hi homines, ex amictu, calceatu, figura & habitu, tósu, aspectu. Ex aspectu enim vir cognoscetur, inquit Scriptura, & ex occursu hominis homo agnoscetur. Vestitus viri, & gressus pedis, & risus dentium de ipso annunciabit. Ij enim etsi alijs pilis maximè cani sint, eorum qui sunt in capite solummodo curam gerunt, vittis, non secus ac fœminę, comas propémodum alligantes. Atque leones quidem de hirtis suis pilis se iactant, sed in pugna eis armantur. Capri quoque ipsi gloriantur de suis cristis, sed eos pilis inhorrescentes pertimescunt venatores. B

*Psalm. 132.*

*Batulus fuit uir effœminatißimus.*

*Ecclesi. 18.*

*Ibid. 19.*

*Lanigeræ quoque oues denso sunt uellere onustæ.*

Atqui eorum quoq; pilos multiplicauit benignus Pater in tuum, ô homo, vsum, dum te vellera tondere docuit. Et ex gentibus quidem Galli & Scythæ comam nutriunt, sed non se immodicè colunt: & terribile quidem quid præ se fert densum barbari capillitium, & flauus ille color bellum minatur, vt qui videatur cognationem habere cum sanguine. Ambo hi barbari luxũ odio habuere. Apertos testes proferẽt Germanus quidem Rhenum, Scytha verò plaustrum: nonnunquam autem euenit, vt Scytha plaustrũ quoq; contemnat. Diuitiæ barbaro eius esse videtur magnitudo, & relictis delitijs vitam agit frugalem. Domum sufficientem, & equo agiliorem, equum scilicet acceptum cõscendens Scytha, eum ducit quò vult. Fame autem laborans, petit ab equo alimentum: ille verò præbet venas, & quem solum poßidet sanguinem domino suppeditat. Porrò autem equus quoq; Nomadi est & vehiculum & cibus. Arabiorum autem (sunt hi alij Nomades) ad pugnandum apta ætas camelos conscendit: prægnantes hi camelos educunt. Illæ verò simul & pascũtur & currunt. Dominos suscipientes vnà quoq; cum eis domũ ferunt. Quòd si potus quoque barbaris defecerit, lac mulgent: exinanito autem nutrimento ne sanguini quidem parcunt, vt fertur de lupis rabie agitatis. Illæ verò barbaris mãsuetiores, etiam iniuria affectæ, mali accepti non recordantur, sed solitudinem confidenter percurrunt, dominos simul portantes & alentes. Pereant ergo immanes beluę, quibus est cibus sanguis. Neque enim hominibus fas est tangere sanguinem, quibus corpus nihil est aliud quàm caro exculta sanguine. Verbi particeps fuit humanus sanguis, & gratiæ per spiritum habet communionem. Si quis eum iniuria affecerit, non latebit: licet ei, etiam si sit nudatus figura, ipsum alloqui Dominum. Barbarorum autem probo frugalitatem: expeditam vitæ rationem diligentes barbari, reliquerunt delitias. Tales nos vocat Dominus nudos à fastu & arrogãtia, nudos à vana gloria, auulsos à peccatis, solum vitæ lignum ferentes, solam salutem obtinentes. C

### *Cum quibusnam habenda sit consuetudo,* Cap. IIII.

Erum enim uerò imprudens transilij spiritu consequentiam, ad quam rursus est reuertendum, & reprehendẽda est multorum seruorum possessio. Per se enim operari, & per se ministrare fugiẽtes, ad famulos confugiunt, obsonatorum, & mensæ structorum, eorumq; qui carnes in frusta artificiosè dissecant,

A cant, magnam ementes multitudinem. In multas autẽ & varias partes eis sunt diuisi mercenarij: ac nonnulli quidem eorum laborãt in ijs quæ ad explendam gulæ ingluuiẽ pertinent, structores, & ciborũ conditores, & alij quidem bellariorũ, alij verò liborum ac placẽtarum, & alij pulmentorum ac sorbitionum sunt compositores & architecti. Alij verò ponunt operam in vestibus superfluis: alij autem aurũ custodiunt, vt Gryphes: alij argentum seruant, & abstergunt pocula, & conuiuiorum apparatus præparant: alij fricant iumenta, & ab eis exercetur turba pocillatorum, formosorumq; adolescentum greges tanquam pecorum, à quibus emulgent pulchritudinem. Ornatores autẽ & ornatrices mulieribus ornandis deseruiunt: & hę quidẽ speculis, illæ autẽ vittis, aliæ verò præsunt pectinibus. Eunuchi multi ijq; lenones: propterea ꝙ sit probabile eos libidini non posse operam dare, ijs qui volunt vacare voluptati inseruientes citra vllam suspicionem. Eunuchus autem verus est, non qui non potest, sed qui non vult dare operã voluptati. Transgresis itaq; Iudæis per Samuelem Prophetam Verbũ protestãs, petenti Regẽ populo non humanum pollicetur Dominum, sed quendam se insolentem daturum eis minatur Tyrannum, libidini & voluptati deditum: Qui vestras, inquit, filias accipiet in vnguentarias, coquas, & panificas, vt qui belli lege eas inuaserit, nõ autem sequatur pacificam reipublicæ administrationem. Et qui mulierum quidem lecticas in altum tollant, & perniciter eas ferant, multi Galli sunt: lanificium autem, telæq; texendæ artificiũ, muliebreq; opus ac domus administratio & custodia, nusquam est: sed qui mulieribus quidem falsa narrant, toto die cum eis versantur, amatorias fabulas nugaciter referentes, earumque corpus & animas falsis factis & verbis mẽdacibus enecantes. Non eris autem, inquit, cum multis propter vitium, nec adijcieris cum multitudine: quoniã sapientia in paucis, confusio autem & immoderatio in multis cernitur. Atq; illæ quidem non propter honestatem quòd nolint aspici, qui lecticas earum portent conducunt. Rectè enim ageretur, si huic affectioni hunc afferrent prętextũ: sed per summas delitias vehuntur à famulis, per pompã traduci cupientes. Aperto itaq; velo eos qui ipsas respiciunt acrius intuentes, mores suos ostendunt: sæpe autem etiam extrà ꝓspiciunt, quæ est extrinsecus honestatẽ hac nimis lubrica & superuacanea cura pro bro afficientes. Ne respicias autẽ, inquit, in vicis ciuitatis: nec erres in eius solitudinibus: est enim verè solitudo, etiãsi sit turba incontinentium, vbi non est homo pudicus. Hæ verò circumferuntur per templa sacrificantes, & diuinantes cum præstigiatoribus & circulatoribus, & cum sceleratis vetulis, quæ domibus exitium afferunt, quotidie vnà pompam transmittentes, & aniles susurros ad pocula sustinentes, quædam amatoria & carmina in matrimonij perniciẽ composita à præstigiatoribus ediscentes: & hos quidem viros habent, illis verò adhærescunt: alios autem eis vates pollicentur, se autem falli nesciunt, & seipsas quidem tanquam vas voluptatis, ijs tradentes qui volunt explere libidinem: suam autẽ pudicitiã probro turpissimo permutantes, vituperandum imprimis exitium pro magno lucro ducunt. Multi autem sunt meretriciæ impudicitię ministri, vnus hinc, alius aliunde subeuntes. Facilè enim ad libidinẽ feruntur intẽperãtes, sicut porci ad eam aluei partẽ quę deprimitur. Vnde Scriptura constantissimè admonet: Ne introducas quẽuis hominẽ in domum tuã: dolosi enim hominis multæ sunt insidiæ. Alibi autẽ: Viri iusti, inquit, sint tui conuiuę, & in timore Domini tua permanebit gloriatio. Abeat in malã rem fornicatio. Hoc enim scitote, inquit Apostolus, quòd omnis fornicator, vel immũdus, vel auarus, qui est cultor idolorum, non habet hæreditatem in regno Christi & Dei. Istæ verò effœminatorum virorum delectantur congressibus: intrò autẽ confluunt cinædorũ turbæ lingua effrȩnatę, scelerati quidẽ corpore, & scelerati oratione, ad ministeria impudica viriles, adulterio deseruientes, impudicè ridentes, & susurrantes, & fornicatoriũ ac cinędicũ ad lasciuiam sonum per nares edentes, impudicis verbis & figuris delectare conantes, & ad risum, qui est fornicationis præcursor, prouocantes. Nonnunquã autem vel qualibet ira incensi, vel ipsi qui scorta sunt, vel qui etiam cinædorum turbam tanquam felix quid ac beatum in suam perniciẽ sectantur, naribus non secus ac ranæ plausum edũt, vt qui in naso bilem veluti inhabitantem, habeant. Quinetiam quę sunt ex eis paulò ciuiliores, aues Indicas pauonesq; Medicos nutriunt, & accumbũt quidem vnà cum acuto capite, mõstris sicinnis portẽtis lætantes, & rident quidem cùm Thersiten audiunt: ipsæ verò Thersitas maximi precij ementes, non de coniugibus, sed de illis quæ sunt terræ pondus se iactant, & modestam quidem & continentem viduam, Melitæo catello longè præstã-

Marginal notes: *1. Reg. 8.* (beside "ni & voluptati deditum"); B (beside "falsa narrant"); *7.* *17.* (beside "autem, inquit" and "tem, inquit"); *Eccl. 9.* (beside "bro afficientes"); C (beside "tes. Facilè"); *Ibid. 11.* (beside "deprimitur"); *Ibid. 9.* (beside "nẽ in domum"); *Ephe. 5.* (beside "rem fornicatio"); *σικιννοὶ saty-ri & genus satyricæ saltationis* (beside "nesq; Medicos ...").

tiorem, despiciunt, & iustum senem negligunt, qui est, vt puto, monstro aere empto magis decorus & honestus. Puerum autem orphanum non admittunt, quae psittacos & graculos enutriunt, sed filios quidem domi natos exponunt, gallinarum autem pullos excipiũt: & quae sunt expertia rationis, ijs quę ratione sunt praedita pręferunt: cùm oporteret senes alere, qui moderationem profitentur & temperantiam, & sunt, vt ego quidẽ existimo, simijs formosiores, & loqui possunt melius luscinijs, & illud in medium adducere: Foeneratur Deo qui miseretur pauperis. & hoc: Quatenus autem, inquit, vni horum minimorum fecistis, mihi fecistis. Eae autẽ contrà intemperantiam praetulerent temperantiae, vt quae suas facultates in lapides conuerterint, margaritas scilicet & smaragdos Indicos. Quinetiam in futilibus & euanidis tincturis, & in emptitijs mancipijs temerè profundunt, & pecunias abijciunt, non secus ac gallinae satiatę vitae, stercora fodientes. Paupertas autem, inquit, virum humiliat. Per paupertatem volunt dicere parsimoniam, per quam pauperes sunt ij qui sunt diuites, vt qui bona non communicent.

χαράδριος — Prouer. 19. — Matth. 25. — A

*Quomodo in balneis se gerere oporteat,*

*Cap.* V.

CVIVSMODI aũt sunt eis lauacra? Domus artificiosè compactae, perspicuae, quaeq; circunferri possunt, teguntur sindone: & cathedrae aureae, argenteae, & vasa innumerabilia aurea & argẽtea: quorum haec quidem ad propinandum, illa verò ad vescẽdum, alia autem ad lauandum circunferuntur: quinetiam carbonum craticulae. Eò enim veniunt intemperantiae, vt coenent & sint ebrię dum lauantur, & argenteam supellectilem, cum qua pompa transmittunt, arroganter in balneis proferunt, atqueadeo fortasse etiam diuitias, propter immodicam superbiam. Maximè autem voluntariam insolentiã, per quam viros pusilli & effoeminati animi arguunt, vt qui victi sint à foeminis, ostentant, & quomodocunq; seipsas non posse conuenire, nec sine multis vasis posse sudare, comprobant. Etenim quae sunt pauperes, cùm pompae non sint participes, lauacris ex aequo fruuntur: habent itaque sordes diuitiarum, opes nimias maledictorum. Hac veluti esca irretiunt miseros, auri splendorem ore hiante admirantes. Ea enim ratione eius quod bonum & honestum est ignaros in stuporem adducentes, vt ipsas mirentur amatores callido cõminiscuntur artificio, qui eis paulò pòst nudis insultant. Atque ipsae quidem suis maritis non se exuerint, simulatum pudorem probabiliter prae se ferentes. Licet autem alijs volentibus, eas quae domi sunt inclusae, nudas videre in balneis: hìc enim se exuere spectatoribus tanquam corporum cauponibus non erubescunt. Sed Hesiodus quidem,

B

*Corpus foemineo non exhilarare lauacro*

suadet. Viris autem & foeminis communia aperta sunt balnea, & ex eo exuuntur ad intemperantiam (à visu enim hominibus amor proficiscitur) perinde ac si sit eis pudor in lauacris obrutus. Quae autem non vsqueadeo omnẽ pudorem exuerunt, externos quidem excludunt: vnà autem cum suis ministris collauantur, & seruis nudae exuuntur, & ab eis fricãtur, pertimescenti libidini cõcedentes, vt securè contrectet. Qui enim nudis dominabus ad lauacrum introducuntur, student se exuere, ad cupiditatis audaciam malo more metum circunscribentes. Ac veteres quidem Athletae virum nudum ostendere erubescentes, dum certamen peragebant accinctis subligaculis seruabant verecundiam: istę autem cùm simul cum tunica pudorem exuerint, volunt quidem videri pulchrae, similiter autem malae vel inuitę conuincuntur. Etenim per ipsum corpus maximè apparet lasciua concupiscentia, quemadmodum hydropicis per cutis superficiem quod humidum continetur. quod autem in vtroque aegrotat, ex visu cognoscitur. Oportet ergo viros sepulchrum veritatis exemplum foeminis praebentes, erubescere vnà cum eis exui, lubricumq; ac periculosum aspectum effugere. Qui enim curiosius, inquit, respexit, iam peccauit. Oportet ergo domi quidem parentum & famulorum pudore affici: in vijs autem, eorũ qui fiunt obuiam: in lauacris verò, mulierum: in solitudine autem, suijpsius: vbiq; autem, Verbi, quod est vbiq;, & sine ipso factum est nihil. Hac enim solùm ratione fit vt quis nunquam labatur, si Deum sibijpsi semper adesse existimat.

C — Matth. 5. — Ioan. 1.

Quòd

A *Quòd solus Christianus sit diues,* *Cap.* VI.

SVNT itaq; habendæ diuitiæ, vt est rationi consentaneum: suntq; benignè, non aūt sordidè, nec insolenter cōmunicādę: nec est honesti studium in sui amorem superbiamq; & arrogantiam consumendum, ne fortè nobis vtiq; dicat quispiā: Equus eius est precij quindecim talentorū, vel fundus, vel seruus, vel aurū: ipse verò est tribus obolis vilior. Iam enim aufer mūdū à fœminis, & seruos à dominis, nihil inuenies dominos differre ab emptitijs mancipijs, non incessu, nō aspectu, non sermone, adeò sunt similes mancipijs. Quinetiam in hoc discrepant, q̃ sint seruis imbecilliores, & ita educti sint vt sint magis valetudinarij. Hoc ergo ex dogmatib. optimū est perpetuò canendum, quòd vir quidē bonus, qui est moderatus & iustus, in cælo recondit thesaurū pecuniæ. Is qui terrena vēdidit, & dedit pauperibus, inuenit thesaurū in quē non cadit interitus, vbi nec tinea est, nec latro. Is ergo est verè beatus, etiāsi sit paruus, imbecillus, & inglorius: isq; reuera magnas possidet diuitias. Quòd si sit vel Mida & Cynira ditior, sit aūt iniustus & insolens, quemadmodū qui purpura & bysso luxuriose vestiebatur, Lazarū aūt contemnebat, & miser est, & in mœrore viuit, neq; viuet. Diuitiæ ergo sunt serpenti similes, quem si quis nescit inoffense eminus accipere, bestiā sine periculo summa cauda apprehendēs, ea manu circūplicabitur, & mordebit: pulchrè callēt serpentū instar repentes diuitiæ, dum à perito vel ab imperito apprehendūtur, inhęrere & mordere. Sed si quis se magnificū præbens rectè & scienter eis vtatur, cū Verbi quidē carmine bestiā detraxerit, ipse verò illæsus manserit. Cæterū, vt videtur, non satis animaduertimus quis sit is solus diues, qui quæ sunt longè preciosissima possidet. Magni autem precij sunt, non gēma, non argentum, non vestis, non corporis pulchritudo, sed virtus. Ea est aūt ratio tradita per pædagogū ad exercitationem. Hæc est ratio, quæ abiurat delitias, & eam quæ per se fit operationē in ministerium euocat, laudatq; frugalitatem filium temperantiæ: Accipite, inquit, disciplinam, & non argentum, & cognitionem super aurum probatum. Melior est enim sapientia lapidibus preciosis: quicquid est autem preciosum, nequaquā est ea dignū. Et rursus: Colligite me super aurū, & lapidem preciosum, & argentū: germina enim mea meliora sunt argento electo. Quòd si etiā distinguere oporteat, sit quidem diues qui multa possidet, estq; auro onustus, vt sordidū marsupium: at in iusto quidem certè inest honestum ac decorum: decorū enim est ordo, qui in administrādo, ita vt oportet, largiendoq; definitur. Sunt enim qui seminant, & plura colligūt, de quibus scriptum est: Dispersit, dedit pauperibus, iustitia eius manet in seculum seculi. Quare non qui habet, & seruat, sed qui impertit, est diues: & impertitio ac cōmunicatio, non autem possessio, beatum reddit. Animæ autem fructus est, communicatio. Diuitię ergo sunt in anima. Atqui bona possideri solùm possunt à bonis: boni autem Christiani. Homo autem insipiens vel intemperans neq; boni sensum habuerit, neq; possessionis. A solis ergo Christianis possunt bona possideri. His autem bonis nihil est diuitius: hi sunt ergo soli diuites. Veræ enim sunt diuitiæ, iustitia, & ratio, quæ est quouis thesauro preciosior. Quæ quidem diuitiæ ex pecorib. & prædijs nō augentur, sed à Deo donantur diuitiæ quę auferri non possunt, cuius est thesaurus sola anima, possessio ei qui illā possidet optima, quæ hominē verè reddit beatum. Cui enim adest, nihil eorum expetere quæ non sunt in nostra potestate, ea autem quæ expetit consequi: quinetiam quę sanctè desiderat, ea petentem à Deo accipere? quomodo non is multa, imo verò omnia possidet, qui thesaurum æternum, nempe Deum habeat: Petenti, inquit, dabitur, & pulsanti aperietur. Si Deus nihil neget, pietate ac religione præditi viri sunt omnia.

[Margin notes: *Matth.* 6. *Ibid.* 19. — *Luc.* 16. — B — *Prouer.* 8. — *Ibidem.* — *Psal.* 111. — C — *Matt.* 7.]

*Quòd pulchrum uiaticum Christiano sit frugalitas,*
*Cap.* VII.

DELITIAE autem errātes in voluptatibus, graue sunt ac periculosum hominib. naufragium. A vero enim honesti studio, & quæ viro bono conueniunt voluptatibus, aliena est hæc iucunda, & gloriæ ac laudis expers multorū vita. Homo enim est natura excelsum & erectū animal, & quod veri quęrēdi ac inueniēdi desiderio tenetur, vt qui vnius opus sit & effectum. A diuina autem vita alienū est libidinis voluptatisq; studiū: vtpote, similiter quidē vesci ac passeres, coire aūt similiter vt hirci & sues. Voluptatem

enim bonũ existimare, est planè perfectæ eius quod honestũ est inscientiæ. Porrò au- A
tem nimia diuitiarũ cupiditas hominẽ à recta vitæ ratione dimouet, persuadens vt ad res turpes omnem planè pudorem exuat, si modò ei sicut ferę liceat quibusuis vesci, & quælibet similiter bibere, & in rebus venereis suã quacũq; ratione libidinem explere, & ideo rarissimè regni Dei fit hæres. Quorsum ergo tot parantur obsonia? an nõ vt vnum ventrem impleant? Quàm res sit immunda ingluuies, arguunt sterquilinia, in quæ ventres nostri expuunt reliquias conuiuij. Quorsum autẽ tot pocillatores congregant, cùm calice vno possint impleri? quorsum autem vestiũ arcas? quorsum vasa aurea? & quorsum ornamenta? Compilatoribus & sceleratis homini-
Eccl. 7. 17. bus hæc parantur, & oculis qui satiari nequeunt: Eleemosynę autem & fides, inquit
& 29. Scriptura, te non deserãt. Ecce igitur Heliam quoq; Thesbytem habemus pulchrũ
3. Reg. 19. exemplum frugalitatis, quando sedit sub ramno, & Angelus ei affert alimentum. E-
Matth. 10. rat subcinericius panis ordeaceus, & amphora aquæ: eiusmodi prãdiũ ad eum misit
Luc. 9. Dominus. Proficiscentes ergo nos ad veritatem, accinctos esse oportet. Ne portetis, inquit Dominus, crumenã, non peram, neq; calceamentum: hoc est, Ne possideatis diuitias quæ solùm in crumena reconduntur, ne vestra implete horrea, tanquam sementem in pera deponentes, sed ijs etiam qui egent impertite. Ne de iumentis & famulis sitis nimium soliciti, quę diuitum ingressus calceamenta, cùm onera portent, allegoricè dicta sunt. Abijcienda est ergo vasorum multitudo, & pocula aurea & argentea, & famulorum turba, cùm pulchras & venerandas pedissequas à pædagogo acceperimus, per seipsum operationem scilicet & frugalitatem. Iam verò ita incedendum est vt conuenienter Verbo ingrediamur: & si cui adsit vxor & filij, domus B
nequaquam est onus, quæ cum prudenti viatore migrare didicerit. Vxor quoq; quæ virum diligit, coërcenda est & componenda, vt similiter ac maritus iter ingrediatur. Pulchrum est viaticum viæ quæ ducit ad cælum, si frugalitatem cum vna moderata grauitate iũgamus. Mensura autem sicut pes calcei, ita etiam vniuscuiusq; possessionis est corpus. Quod aũt superabundat, quæ sunt, inquit, ornamenta & supellex diuitum, non sunt ornatus corporis. Oportet autem vi in cælos conscendere, & pulchrum baculum beneficentiam scilicęt, circunferre, & ijs qui affliguntur, elargientem veram quietem percipere. Fatetur enim Scriptura, animæ redemptionis preci-
Prouer. 13. um esse proprias diuitias: hoc est, si ditescat, saluus erit per elargitionem. Quemadmodum enim quicunq; putei scaturiunt, exhausti in pristinam mensuram reuertuntur: ita etiam elargitio, quæ est bonus fons benignitatis, potum sitientibus communicans, rursus augetur & repletur, quemadmodum ad vbera, quæ suguntur vel etiam mulgentur, solet lac cõfluere. Est enim minimè indigens, qui Deum Verbum habet omnipotentem & nullo eorum quibus opus habet vnquam eget: Verbũ enim possessio est cui nihil deest, & est causa omnis copię. Si quis autem dixerit se sępe vidisse iustum cui panis deerat, hoc quidem rarum est, & id vbi non est alius iustus. Sed
Deut. 8 tamen illud quoq; legat: Non in solo pane viuet iustus, sed in verbo Domini, qui est
Matt. 4. panis verus, panis cælestis. Vir ergo bonus nunquam laborat inopia, quandiu habuerit saluam in Deum confessionem: licet enim ei petere & accipere ea quibus in- C
diget à Patre vniuersorum, & proprijs frui, si filium custodiat. Hoc quoq; adest, nullam sentire indigentiam: hoc nostrũ Verbum fungens munere pædagogi, dat nobis diuitias, nec ditescere vlla est inuidia ijs qui per ipsum possident vt nullius egeant: qui has habet diuitias, fiat hæres regni Dei.

### *Quòd similitudines & exempla sint rectæ doctrinæ pars maxima,*
### *Cap.* VIII.

SI quis autem vestrûm delitias perpetuò fugerit, à frugalitate eductus, inuoluntarios labores facilius sustinere meditabitur, voluntarias afflictiones pro persecutionum perpetuis habens exercitijs: vt cùm ad necessarios venerit labores, & dolores ac metus, ad eos tolerandos non sit inexercitatus. Et ideo patriã non habemus in terra, vt possessiones terrenas contemnamus. Est itaq; ditissima frugalitas, quæ exæquatur expensis non deficientibus, quas conuenit pendi ad ea quę oportet & quãtum oportet. Expensæ
νίλατα δαπανήματα enim sunt pensiones. Et quomodo oporteat quidem vxorem simul cum marito viuere, & de domus administratione, & vsu famulorũ, & quomodo eam per se operari conueniat, & de tempore matrimonij, & de ijs quæ ad mulieres pertinent, disseruimus in libro de nuptijs. Quæ aũt ad pædagogicã institutionẽ pertinent, ea nũc nobis

A nobis loco descriptionis addenda sunt, Christianam vitam exprimentibus: & plurima quidem iam dicta & in formam pædagogicæ institutionis redacta sunt. Quod autem restat, subijciemus. Neq; enim parui ad salutem momenti sunt exempla.

*Vlysſis uxorem uide* (ait Tragœdia) *haud leto dedit*
*Telemachus, haud marito nanq; iunxerat*
*Maritum, ei cubile in ædibus sanctum manet.*

Flagitiosum exprobrans adulterium, pulchram temperantię imaginem ostendit, in maritum amorem. Ilotas autem (seruorum nomen sunt Ilotes) Lacedæmonij cogentes inebriari, sibijpsis sobrijs, ea quæ faciebat ebrietas, correctionis curationisq; loco ostendebant. Obseruantes ergo illorum turpitudinem, docebantur ne in idem quod damnabāt vitium inciderent, ex ebriorum probro hoc fructus consequentes, quòd ipsi non peccarent. Ex hominibus enim alij quidem docti seruati sunt: alij verò sua sponte virtutem vel amplexi sunt, vel quæsierunt.

*Optimus ille quidem est, qui percipit omnia per se.* Hesiodus.
Ipse est Abraham qui Deum quæsiuit. Genes. 17.
*Is bonus est rursus, qui paret recta monenti.*

Hi sunt discipuli, qui Verbo crediderunt: & ideo ille quidem appellatus est amicus, illi autem Apostoli. Vnum & eundem Deum ille quidem magna cura & studio inquirens, hi verò prædicantes: sunt autem ambo populi. Horum autem amborum auditores, ille quidem per inquisitionem commodum consecutus est, hic verò saluus euasit per inuentionem. Luc. 6.

B

*Sed qui nec per se apprendit, nec recta, monente*
*Hunc alio, reputat, planè uir inutilis ille.*

Populus alius est gentilis, inutilis: hic est populus, qui Christū non sequitur. Multis tamen modis iuuans pædagogus, qui est clemens & benignus, hæc quidem suasit, illa verò etiam exprobrauit. Iam verò alijs quoq; peccantibus, eorū nobis ostendit turpitudinē, & quod eā consequitur supplicium, simulq; & consolans & admonens, se esse benignū & clementem ostendit, hoc consilio vt nos à vitio auerteret, ea quę passi sunt ostendens. Per quas imagines & similitudines, vt eos quidē qui malè affecti erāt cessarēt, effecit: eos verò qui ijs similia audebant, ꝓhibuit: alios ad tolerātiam fundauit: alios à vitio repressit: alios verò etiam curauit, per contemplationē eius qđ est simile, traductos ad id quod est melius. Quis enim quēpiā in via sequens non cauerit, si prior in fossam ceciderit, vt deuitet periculum, peccati cōsequentiam fugiens? Quid verò si quis se exercet, viā quæ ducit ad gloriā didicerit, & vidēs athletam qui eum pręcessit pręmium habuisse, non contendit ad coronam, ipsum antiquiorem imitans? Multę sunt eiusmodi similitudines diuinę Sapientię. Vnius autem exempli meminero, & paucis exponā quod accidit Sodomitis, & fuit quidē ijs qui scelus admiserant iudicium, pædagogica autem institutio ijs qui audiuerint. Sodomitæ cùm propter multas delitias in libidinis & intemperantiæ vitium impegissent, adulteria quidem securè committentes, puerorum aūt insano amore ardentes, respexit eos Verbū quod videt omnia, quem latēre non possunt qui nefaria perpetrant. Neq; verò eorū libidini acquieuit vigilans humanæ naturæ custos: nos autē ab illorum imitatione auertens, ad suamq; moderationem & temperantiam instituens, aliquos inuadens peccatores, ne si impunita relinqueretur impudicitia, ea frueretur nimia securitate, iussit comburi Sodoma: prouidi illius ignis aliquid effundens in intemperantiā, ne si nō castigata esset eorum libido, fores nimis aperiret ijs qui toto impetu feruntur ad voluptatem. Fuit ergo iustum Sodomorum supplicium, salutis bene ab hominibus considerandæ imago. Qui enim non similiter peccarint ac ij qui puniti sunt, nunquam peccatoribus similes pœnas dederint, vt qui propterea quòd non peccarint ne paterentur cauerint. Volo enim vos scire, inquit Iudas, quòd Deus qui semel seruauit populum ex Ægypto, secundò perdidit eos qui non crediderunt, & Angelos qui non custodierunt suum imperium, sed reliquerunt proprium habitaculum, in iudicium magni diei, vinculis æternis sub caligine agrestium angelorum custodijt. Et paulatim eorum qui iudicantur imagines admodum ad docendum apposité explicat. Væ eis quòd in via Cain ambulauerūt, & in errore Balaam effusi sunt, & in contradictione Core perierunt. Eos enim qui ferre nō possunt libertatem adoptionis filiorum Dei, arcet metus, ne se insolenter gerant. Ideo enim sunt minæ ac supplicia, vt timentes pœnas à peccatis abstineamus. Possum tibi narrare pœnas nimiæ ornatus cupiditatis, & inanis gloriæ, non autem solius in-

Marginal notes: Genes. 19. (beside "Sodomitæ cùm propter…"); C (beside "tes, respexit eos Verbū…")

temperantiæ:& præterea maledicta afferre in eos qui propter diuitias malè ſentiũt A
& ſe gerunt,in quibus Deus terrendo prohibet à maleficijs. Cæterùm parcens prolixitati operis, adducam pædagogi præcepta quæ ſequuntur,vt minas caueant.

*Qua'nam de cauſa ſit balneum accedendum,* Cap. IX.

BALNEI ergo (ab eo enim digreſſa eſt oratio)quatuor ſunt cauſę,per quas ad ipſum accedimus.Vel enim cauſa mũditiei, vel caloris, vel ſanitatis,vel poſtremò voluptatis. Se ergo voluptatis cauſa lauare reijciendũ eſt:impudens enim voluptas eſt omnino excindenda.Sumendũ eſt autẽ lauacrum mulierib.quidem mũdationis cauſa & ſanitatis:ſolius autẽ ſanitatis cauſa,viris.Caloris verò cauſa lauari eſt ſuperfluũ, cùm quod frigore horridum euaſerit, poſsit aliter recreari. Porrò autẽ balnei frequentes vſus vires adimunt,naturalemq; roboris vehementiam relaxant,ſæpe autem diſſoluunt, & vt quis animo linquatur efficiunt. Quodammodo enim corpora, nõ ſecus ac arbores, non ſolùm ore, ſed etiam ijs qui ſunt in toto corpore meatibus inter lauandum bibunt.Huius autem rei eſt indicium, quòd qui ſæpe ſitierint, deinde in aquas deſcenderint,ſiti remedium inuenerunt.Niſi ergo ad aliquid profit lauacrum,non oportet nos eo reſoluere.Veteres ea ἀνθρωπογναφεῖα,hoc eſt,fullonicas hominum officinas vocarunt, quoniam citius quàm par erat pannoſa corpora efficiunt, & ante tempus cogunt conſeneſcere, abſtergentia, dum non ſecus ac in ferro, calore caro mollificatur.Hinc frigidi veluti tinctura & temperatura opus habemus.Neque verò ſemper B
eſt lauandum, ſed ſiue paulò fueris inanior, vel rurſus paulò repletior,reſpuendum eſt balneum: ſed eo certè vtendum eſt habita ratione ætatis, corporis & temporis anni.Non enim omnes ſemper,nec ſemper iuuat,vt qui earum rerum ſunt periti fatentur.Nobis autem ſufficit ſymmetria, quam ſemper vt vitæ noſtræ opem ferat accerſimus. Neque enim balneo adeò vtendum eſt, vt manus alterius egeamus adminiculo:neque verò aſsiduè & ſæpe in die lauandum eſt,ſicut frequenter in forum vẽtitamus.Iam verò multos quoq; habere qui miniſtrent,eſt proximos iniuria afficere per delitias: & eſt eorum qui non intelligunt oportere eſſe commune eorũ qui lauátur balneum. Oportet autem maximè quidem lauare animam purgante ratione, & nonnunquam etiam corpus,propter ſordes quæ ei adnaſcuntur.Quinetiam ſunt
*Matth. 23.* nonnunquam reſoluendi labores: Væ enim vobis ſcribæ & Phariſæi hypocritæ, dicit Dominus,quoniam ſimiles eſtis ſepulchris dealbatis. Sepulchrum pulchrum apparet extrinſecus:intus autem plenum eſt mortuis oſsibus,& omni immunditia.Et
*Ibidem.* rurſus dicit eiſdem: Væ vobis, quoniam mundatis quod eſt extrinſecus poculi & patinæ,intus autem plena ſunt immunditia: munda primùm quod intus eſt poculi, vt ſit etiam mundum quod eſt exterius. Optimum ergo lauacrum expurgat ſordes
*Eſa.4.* animæ,eſtq; ſpiritale, de quo dicit apertè Prophetia: Abluit Dominus ſordes filiorum & filiarum Iſraël,& mũdabit ſanguinem ex medio ipſorum,ſanguinẽ iniquitatis,& cædes prophetarum.Purgationis autem modum ſubiunxit Dominus dicens:
In ſpiritu iudicij,& in ſpiritu vſtionis.Quod eſt autem corporis carneum,vel per ſo- C
lam aquam abluitur,vt fit ſæpe ruri,vbi non eſt balneum.

*Quòd exercitia quoq; ſint eligenda ijs qui uitam agunt rationi conſentaneam,* Cap. X.

ADOLESCENTIBVS autem ſufficit gymnaſium,etiamſi adſit balneum:etenim hęc viris quoq; longè balneis anteferre, fortè non malum fuerit, vt quæ habeant aliquid quod iuuenib. confert ad ſanitatẽ ſtudiumq; ac laudis cupiditatẽ afferunt,vt non ſolùm bonæ corporis habitudinis, ſed etiã animi magnitudinis curã gerant. Quod ſi fiat abſq; eo q̃ à rebus melioribus abſtrahantur, ſcitum eſt & non inutile. Neq; verò hîc ſunt abducendę mulieres à labore corporis,ſed non ad luctã & curſum exhortandę ſunt: ſed in lana & tela ſunt exercendæ,& vt piſtrici adſint ſi opus ſit. Præterea autẽ ipſas per ſe vxores oportet,ex penu afferre ea quibus opus habemus,& neq; eis ad piſtrinum aut molendinum accedere turpe eſt:ſed neq; in coquendo obſonio verſari,modò id ſit marito gratum,mulieri domus cuſtodi & auxiliatrici eſt dedecus. Iam verò & per ſe veſtes ſtragulas excutere,& ſitienti marito potum præbere,cibumq; apponere honeſtiſsimè poterit,ſeq; ad moderatam ſanitatẽ ita exercuerit. Talem mulierẽ ſuſcipit pædagogus,quæ cubitos extendat ad ea quæ ſunt vtilia,manus ſuas colo fulcit,

A fulcit,easdemq; pauperi aperit,carpum verò mendico porrigit, nec, Saram imitando,viatoribus ministrandi officio fungi erubescit. Dixit enim ei Abraham: Festina & commisce tres mensuras similæ,& fac subcineritios.Rachel autem filia Laban veniebat,inquit,cum ouibus patris sui. Nec ea suffecerunt,sed docens quàm ab omni esset fastu aliena,subiunxit:Ipsa enim pascebat oues patris sui. Alia nobis innumerabilia præbent Scripturæ exempla frugalitatis, laboris, & etiam exercitij.Ex viris aũt,alij quidem nudi luctentur:alij verò paruo quoq; globo ludant eo ludo qui Phenis dicitur,maximè in sole.Alijs verò sufficit deambulatio rus euntibus, vel in vrbẽ descendentibus.Quòd si etiam ligonem tractauerint, non est hæc illiberalis nec sordida mercatura œconomica, ad agricolã pertinẽtis exercitij. Cæterùm oblitus sum propémodũ dicere,quòd Pittacus ille rex Mitylenæorũ moluit,eo efficaci vtẽs exercitio.Pulchrum est aũt etiam aquã per se haurire,& ligna scindere quibus sit vsurus. Iacob autem pascebat oues Laban quæ relictæ fuerant,regale habens signum,virgã styracinam,quæ per lignum meditabatur naturam mutare in melius. Multis quoq; quæ alta fit voce lectio,est exercitiũ.Iam verò lucta quoque quam selegimus, nõ assumatur gratia inutilis contentionis & vanæ gloriæ cupiditatis, sed vt viriles excernantur sudores. Nec verò laborandum est in ostentando ea in re artificio, sed recta lucta certandum est,collis, manibus, & lateribus implicatis. Est enim honestior & virilior, quæ cum decoro robore fit hoc modo exercitatio,quæ vtilis & conducibilis sanitatis gratia assumitur.Reliqui alij,gymnasticæ,non liberalium vitæ studiorũ meditationem profitẽtur.Modus autem est vbiq; attẽdendus. Quemadmodũ enim

Marginalia: Genes.18. · Ibid.29. · ἤλεθε · Genes.30.

B est optimum labores cibos præcedere:ita supra modũ laborare, est & pessimũ & laboriosum,& morborũ causa.Neq; ergo oportet esse omnino ociosum, neq; esse omnino nimis laboriosum.Sicut enim de alimẽto diximus,ita etiam dicendũ est vbiq; in omnibus. Non ad voluptatem luxuriosamq; vitæ rationem vita agenda est: nec rursus ad contrariam,& quæ nullum habeat temperamentũ, sed eam quæ inter hęc medium locum obtinet,estq; temperata ac moderata,& pura ab vtroq; vitio,deliciarum scilicet & parcitatis.Iam verò,sicut etiam antè diximus,virtus ea per quam contenti sumus,est exercitium à fastu alienum,& ipsum sibijpsi calceos induere, & pedes lauare,& oleo vnctum seipsum cõfricare.Porrò autem ei quoq; qui fricauit,mutuam dare operam,id quoq; est cõmunicatiuæ iustitiæ exercitium:& dormire iuxta amicum ægrotantem,quiq; non potest sibijpsi ministrare, & egenti ea quæ sunt necessaria apponere. Et apposuit eis,inquit,tribus Abraham prandium sub arbore, & adstitit eis comedentibus. Piscatio quoq;, quemadmodũ Petro,si nobis superfuerit à disciplinis ocium. Hæc est autem melior piscatio, quam Dominus largitus est discipulo,qui tanquam pisces per aquam homines piscari docuit.

Marginalia: αὐτάρκεια · Ibid.18. · Ioan.21. · Matth.4.

*Compendiosa optimæ uitæ pertractatio,* Caput XI.

C Vro circa & aurum gestare, & molliori vti veste, non omnino rescindendum est:sed frenandæ sunt rationis expertes affectiones,ne per nimiam dissolutionem abripientes ad mollem nos ac luxuriosam vitam impellant. Quæ enim in satietatem impegerunt deliciæ, mirandum in modũ exultant,& resistunt, aurigamq; & pædagogum excutiunt, qui procul habenas retinens,equum humanum fert & agit ad salutem: animæ scilicet partem à ratione alienam, quæ in voluptates,& vituperandas appetitiones, & gemmas, & aurum,& vestem variam reliquumq; luxum efferatur. Illud autem memoria maximè tenendum est,quod sanctè dictum est: Conuersationem vestram in gentibus habentes honestam,vt in quo de vobis malè loquuntur, tanquam maleficis,ex honestis operib. suspicientes,Deum glorificent.Nobis ergo concedit pædagogus frugali veste vti,albo colore, vt diximus, vt non arti varieganti, sed naturæ generanti,nos accommodantes,quicquid est fallax, & veritatem ementitur repellentes, quod est simplex & vniusmodi veritatis amplectamur.Nimis luxuriose ac delicatè viuentem reprehendens Sophocles dicit:

Marginalia: 1.Pet.2.

*Quæ fœminarum sunt amictæ uestibus,*

quas histriones referunt. Quemadmodum enim militis & nautæ, ita etiam pudicæ fœminæ est propria vestis,quæ est minimè elaborata, & est decora ac munda. Vnde etiam quæ in lege per Mosen de lepra lata est lex,reijcit id quod est variũ, & multis maculis notatũ,perinde ac nefariũ,vt quod sit serpentis varijs squamis simile. Eum

ergo qui varietate colorum minimè efflorescit, totus autem à vertice capitis vsq; ad extremos pedes est candidus, mundum esse statuit, vt quemadmodum in corpore, varia quoq; ac versipelli relicta mentis affectione, qui non est varius, nec anceps, simplicem veritatis colorem diligamus. Qui aũt in hoc quoq; Mosis est imitator longè optimus Plato, illam texturam admittit, cui non amplius operis est adhibitũ, quàm pudica mulier postulet. Albi verò colores honestati conueniunt. Alibi quoq; dicit: Et in textura nõ adhibere tincturas præterquã ad ornamenta belli. Pacificis ergo hominibus & lucidis albũ conuenit. Quemadmodũ ergo signa quæ ad causas proximè accedunt, si adsunt ipsum rei effectũ significant, vel potius indicant: quemadmodum fumus quidem ignẽ, bonus aũt color bonusq; pulsus sanitatẽ: ita etiã talis qui est apud nos amictus indicat qualis sit nostrorũ morũ constitutio. Pura aũt est & simplex moderatio & temperantia, quoniam munditia quidem est habitus puram vitę rationem præparans, & minimè mixtam turpibus. Simplicitas autem est habitus, qui tollit superflua. Solida autem vestis, & à fullonico artificio maximè est aliena, & protegit calidum quod est in corpore, non quòd in se vestis habeat caliditatem, sed quòd quæ est in corpore exeuntem reuocet, & ei nõ præbeat exitũ. Quòd si etiã aliqua in ea fortè insit, ipsam in se cõprehensam continet, & ab ipsa excalefacta corpus vicissim calefacit: quapropter hyeme ea maximè vtendum est. Ea autem est facilis: facilitas aũt est habitus, ab ijs quæ sunt superflua alienus, qui ad hoc vt nihil desit, suscipit ea quæ sufficiunt ad numerum eorum quæ pertinent ad sanitatem, & ad beatam vitam. Porrò autem vtatur etiam fœmina veste frugali & honesta, magis autem molli quàm viro conueniat, sed non quæ pudorem omnino abiecerit, nec planè mollitie diffluat. Congruant aũt vestes ætati, personæ, figuris, naturæ, studijs. Pulcherrimè enim nobis præcipit diuinus Apostolus, vt Iesum Christum induamus, & ne carnis curam geramus in desiderijs. Prohibet autem Verbum, ne auriculas sauciemus vim naturæ afferentes. Cur non enim itidem narẽ? vt illud etiã impleatur quod dictum est: Quemadmodum inauris in nare suis, ita improbæ fœminæ pulchritudo. In summa enim, si quis auro ornari existimet, is est auro inferior: qui autem est auro inferior, is non est eius dominus. Se autem Lydio ramento minus esse honestum & inferiorem fateri, quomodo non est absurdissimũ? Quemadmodum ergo polluitur aurum suis immunditia cœnum rostro suo conturbantis, ita quæ sunt paulò magis luxui deditæ mulieres, si à nimijs copijs incitentur ad libidinem & impudicitiam, probro ac dedecore veram pulchritudinem afficiunt, eam inquinamentis veneris polluentes. Dat ergo eis annulum aureum, nec eum quidem ad ornatum, sed vt ea obsignet quæ domi digna sunt quæ custodiantur, propterea quòd seruandæ domus ad eam cura pertinet. Si enim rectam pædagogi institutionem omnes propè sequerentur, nihil opus esset signaculis, cùm omnes essent ex æquo iusti & serui & domini. Sed quoniam ignorantia & mala educatio præbet occasionem propensionis ad iniuriam, fuit opus sigillis. Sed nonnunquam etiam de illa seuera & accurata vitæ ratione est aliquid remittendum: nonnunquam enim concedendum est illis, quę in coniugem minus continentem incidunt, ornari, vt marito suo placeant. Hic autem eis constituatur terminus, vt à solis suis maritis laudari, & eis placere ambiant. Atq; ego quidem nollem eas corporeum exercere decorem, sed eos quibus nupserunt pudico maritorum amore inducere, qui quidem est violentum & iustum medicamentum: sed quoniam ij volunt esse misera & infelici anima, permittatur eis, si pudicæ & castæ esse velint, à ratione alienas maritorum cupiditates & appetitiones paulatim lenire ac sedare. Ipsi autem ad frugalitatem sensim sunt inducendi, paulatim assuefaciendo ei quod est moderatius ac temperatius. Honestas enim non eius quod est importunum & immodicum adiectione, sed eius quod est superuacaneum detractione accedit. Ea ergo quæ à fœminis ad luxum comparantur, ab eis tanquam pennæ detrahenda sunt, vt quæ instabilem superbiam ac mollitiem inanesque voluptates procreent, quibus excitatæ & quodammodo alatæ, sæpe à matrimonijs resiliunt. Quocirca fœminæ honestè ornandæ, & pudico pudore astringendæ sunt, ne à veritate propter mollitiem diffluant. Atque honestum quidem est vt viri vxoribus suis fidem habentes, eis domus custodiam permittant, vt quæ eis ad id opitulatrices datæ sunt. Quòd si oporteat nos quoque, dum rempublicam gerimus, & in agris etiam alia opera exercemus, & sæpe etiam sumus sine vxoribus, nonnulla vt sint tutiora obsignare, dat nobis quoque vnum ad hoc signaculum: alij autem sunt abijciendi annuli: vt vult enim Scriptura, Aureus prudenti mundus est discipli-

Margin notes: A; B; Rom.13.; Prouerb.11.; C; Prouer.8.

A disciplina. Quæ aurum autem gestant mulieres, mihi videntur timere, ne si quis aurũ ab eis abstulerit, existimentur ancillæ, vt quæ nõ sint ornatæ. Nobilitas aũt veritatis, quæ in eo quod est natura pulchrũ ac honestũ in anima dijudicatur, nõ emptione & venditione, sed illiberali mente seruitutem discreuit. Nobis aũt non videri, sed liberos esse conuenit, qui à Deo quidem tanquam pædagogo instituti, à Deo verò adoptati sumus. Et ideo & status, & motus, & incessus, & vestitus, & vniuersa, vt semel dicam, vita est quàm maximè libera suscipiẽda. Sed neq; est à viris annulus in articulo ferendus: hoc enim est muliebre: sed in paruo digito, atqueadeo in extrema eius parte est demittendus: ita enim erit manus maximè ad operandum expedita in ijs in quibus ea egemus: neq; facilè excidet sigillũ, quod maiore articuli ligamento custoditur. Sint aũt nobis signacula, columba, vel piscis, vel nauis quæ celeri cursu à vento fertur, vel lyra musica, qua vsus est Polycrates, vel anchora nautica quã insculpebat Seleucus: & si sit piscans aliquis, meminerit Apostoli, & puerorum qui ex aqua extrahuntur. Neq; enim idolorum sunt imprimendæ facies, quibus vel solùm attendere prohibitum est: sed nec ensis, vel arcus, ijs qui pacem persequuntur: nec pocula, ijs qui sunt moderati ac temperantes. Multi autem libidinosi nudatos habent eos quos amant, vel amicas, vt ne si velint quidem, possint affectionis amoris obliuisci, quòd libido & intemperãtia eis perpetuò in mentem reuocetur. De pilis autem ita videtur. Virorum quidem sit rarum caput, nisi fortè pilos crispos habeat: barba autem hirsuta. Intorti autem capilli ne à capite nimium demittantur, in comam muliebrem dilabentes: viris enim barba sufficit. Quòd si quis etiam barbæ
B nonnihil tondeat, ea tamen non est omnino denudanda, est enim turpe spectaculum: barbæq; ad cutem vsq; tonsus, non videtur multum abesse à vulsione & læuore. Iam enim Psalmographus barbæ coma delectatus: Sicut vnguentũ, inquit, quod descendit in barbam, barbam Aaron. Is cùm barbæ conduplicatione decorem laudasset, vultum exhilarauit vnguento Domini. Quoniam autem non decoris gratia tonsus, sed propter circunstantiam accipitur, pili quidem capitis, ne si crescant, descendentes visum impediant, & fortè qui in superiori labri parte inter comedendũ polluuntur, tondendi sunt, non nouacula, est enim illiberale, sed tonsorum forficibus. Barbæ autem pili, qui nihil molestiæ afferunt, non sunt vexandi, vt qui vultui grauitatem afferant, & quendam paternum terrorem incutiant. Porrò autem multos quoq; docet non peccare figura & habitus, ne facilè deprehendantur. Iis aũt qui nolunt manifestè peccare, latère figuram & non esse insignem, est gratissimũ. Quod veriti ij quibus licet peccare, propterea quòd non cognoscantur, multis assimilati vt securè possent peccare consecuti sunt. Non solùm ergo seuerũ virum ostendit capillorum raritas, sed etiam efficit vt minus facilè lædatur cranium, cùm & frigori & æstui ipsum assuefaciat, & incommoda quæ ab eis proficiscuntur repellat, quæ quidem coma instar spongiæ in seipsam recipiens, perpetuam ex humore noxiã cerebro infligit. Mulieribus autem crines mollire sufficit, & tenui aliqua fibula comam alligare frugaliter, simplici cultura pudicas comas in verã & germanã pulchritudinem alentibus. Meretricij enim pilorum plexus, & catenarum nexus, cùm eas deformes reddunt, tum etiam pilos discerpunt, artificiosis insertis vinculis euellentes: quo fit vt ne sua quidem tangant capita, ne capillos confundant pertimescentes. Quinetiam non sine metu eas inuadit somnus, dum timent ne texturæ figuram imprudentes spolient. Alienorum autem capillorum appositiones sunt omnino reijciendæ, & externas comas capiti adhibere est maximè impium, quæ mortuis pilis cranium induunt. Cui enim manum imponit presbyter? Cui autem benedicet? Nõ mulieri quæ est ornata, sed alienis capillis, & per ipsos alij capiti. Si autem mulieris quidem caput est vir: viri autem caput est Christus: quomodo non est impium eas in duplex peccatum incidere? Per immodicam enim comam viros decipiunt: Dominum autem quantum in ipsis situm est, dedecore afficiunt, dum meretriciè ornantur in fraudem veritatis, & caput quod verè pulchrum est maledictis incessunt. Nec ergo pili sunt tingendi, nec cani colorãdi. Neq; enim vestem variare concessum est: & maximè ætatis senium, & id cui magna fides habetur, non est tegendum. Dei autẽ decus in lucem proferendum est, ad hoc vt id honorẽt adolescentes. Cùm enim impudenter se gerentibus apparuisset aliquando instar pædagogi canicies, eos traduxit ad modestiam, & visus fulgore iuuenilem terruit & repressit cupiditatem: sed neque earum vultibus sunt callidæ sapientiæ illecebræ illinendæ. Pudicum autem eis ornatum ostendemus. Pulchritudo enim optima primùm est pulchritudo animæ,

Psal. 132.
C
1. Corint. 11.

vt sæpe significauimus, quando fuerit anima ornata sancto Spiritu, & ijs quæ ab eo A
oriuntur ornata lætitijs, iustitia, prudentia, fortitudine, temperantia, bonorũ amore & pudore, quo nullus color nitidior vnquam visus est. Postea aũt exerceatur quoque pulchritudo corporis, commoderatione membrorum & partium cum bono colore. Hic est sanitatis aptus & compositus ornatus, per quem ficti simulachri accedit ad verum transitus, conuenienter figuræ quæ à Deo data est. Ad ornandum aũt secundum naturam magno prædita est artificio potus temperatura, & cibi cõmode ratio. Non solùm enim corpus ex his sanitatem obtinet, sed etiam facit vt ex his appareat pulchritudo. Ex eo enim quod est ignitum, fulgor & splendor accedit: ex humido autem, nitor & gratia: ex sicco autem, virtus & stabilitas: ex aëre autem, spirandi facilitas, & par æquilibrium: ex quibus concinna & pulchra hæc verbi seu rationis statua ornata est. Sanitatis autem liberalis flos est pulchritudo: sanitas enim intus operatur, exterius autem efflorescens pulchritudo bonum colorem manifestum ostendit. Pulcherrimæ ergo & saluberrimæ vitæ agendæ rationes, corpora exercentes, germanam & firmam efficiunt pulchritudinẽ, spiritu in seipsum attrahente succum omnem & frigidum spiritum. Ad se autem trahit caliditas ventilata motibus: postquam autem attraxerit, excalefactum, paulatim per ipsas carnes exhalat nutrimenti superabundantiam, aliquanta quidem humiditate, sed insigni caliditate: & ideo prius quoq; exinanitur nutrimentum. Corpori aũt immobili cibus minimè adhærescit, sed excidit: quemadmodum à frigido clibano panis, vel totus, vel solũ fundum relinquens. Iurè ergo ijs qui per exercitiorum abstersiones non excernunt, & B
vrinæ & stercora redundant. Redundant etiam eis alia excrementa, & præterea sudores, cùm alimentum minimè distribuatur corpori, sed effundatur in ea quæ sunt superuacanea. Hinc etiam ad partes genitales excitantur libidines, cùm cõmoderatis motibus affluat superfluitas. Quocirca liquefacere oportet hanc superfluitatem, & eam in concoctionem effundere, per quã rubescit species. Est aũt absurdũ eos qui ad Dei imaginẽ & similitudinẽ facti sunt, tanq̃ archetypum exemplar cõtemnẽtes, externum ornatum inducere, improbum humanum artificium Dei opificio præfe-
1.Tim.2. rentes. Iubet aũt pædagogus eas in vestitu honesto cum pudore & modestia seipsas exornare, subiectas viris proprijs, vt etsi qui verbo non pareant, per vxorum conuer-
1.Pet.3. sationem absq; verbo lucrifiant. Cùm viderint, inquit, castam vestram quæ est in verbo conuersationem. Quarum sit non qui est extrinsecus plicaturæ vel auri appositionis, vel vestiũ indumenti ornatus, sed occultus cordis homo in incorruptibilitate mitis & quieti spiritus, qui est coram Deo preciosus. Quæ à mulieribus autẽ per se fit operatio, eis veram & maximè germanam affert pulchritudinem, vt quæ earũ corpora exerceat, & ipsas per se ornet: non ab alijs laboratum immundum mundũ sordidumq; ac illiberalem & meretricium afferens, sed mundum vniuscuiusq; pudicæ mulieris, qui per manus eius, quãdo maximè opus fuerit, & suppeditatur & texitur. Neq; enim vnquam conuenit ijs quæ ex foro emuntur, sed proprijs ac domesticis videri ornatas operibus, quæ ex Dei legibus vitã suã instituunt. Res est enim pulcherrima, mulier domus custos, quæ & se & maritum proprijs ornamentis induit, C
per quę omnes exultant, filij quidem propter matrem, maritus aũt propter vxorem, ipsa aũt propter eos, omnes verò propter Deum. Vt paucis igitur dicam, virtutis penus est fortis mulier quæ cibos ociosa nõ comedit: eleëmosynæ aũt leges sunt in ore eius, quæ os suum sapienter & legitimè aperuit. Quã beatã dixerunt filij surgen-
Prouerb.31. tes, maritus aũt eius laudauit, vt sanctum Verbum dicit per Solomonem. Mulier e-
Ibid.12. nim pia benedicitur, ipsa autem laudet timorem Domini. Et rursus: Mulier fortis corona est marito suo. Corrigendæ autem sunt quàm maximè & figuræ & aspectus & incessus & voces. Non enim eas ita se gerere oportet vt nonnullæ, quæ gestus comœdiæ imitantes, & saltatorum fractos motus seruantes, effœminatis motibus, mollibusq; ingressibus & fictis vocibus veluti in proscenium prodeunt, scintillantib. ocu-
Ibidem 5. lis intuentes, ad inescandam voluptatem instructæ. Mel enim à labris mulieris meretricis distillat, quæ ad gratiam loquens guttur suum impinguat: at id quidem certè postea felle amarius inuenies, & magis acutum quàm gladiũ ancipitem. Insipientiæ enim pedes deducũt eos qui illa vtuntur post mortẽ ad inferos. Generosum cer-
Iudicum 14. tè Sampsonem vicit fornicaria: & virum suum totõdit alia mulier. Sed nõ ita cõcul-
Ibid.16. cauit Ioseph alia mulier, victa est aũt Ægyptia fornicatrix. & sumẽs vincula tẽperan-
Genes.39. tiæ potentior apparet soluta potestate. Optimè aũt se habere videtur id quod dictũ est. In summa, nescio ego susurrare, neq; fractus in obliquũq; reflexo collo ingredi,
quemad-

A quemadmodum alios hîc cinędos multos video in ciuitate, vulsosq; ac picatos. Muliebres autem motus, luxus, & delitiæ sunt omnino arcendæ. Mollis enim in incedendo motus, effœminateq; ac eneruatè ingredi, vt ait Anacreon, sunt valde meretricia. Dicit quidem, vt mihi videtur, Comœdia, meretricia vestigia relinquere formā & delitias. Fornicatoria autem vestigia minimè figuntur in veritate, vias enim vitæ non ingrediuntur: sunt autē lubricæ ac periculosæ eius orbitæ, & quæ non sunt cognitu faciles. Porrò aūt oculis maximè parcendum est, quoniam melius est labi pedibus quàm oculis. Dñs itaq; quàm fieri potest compendiosissimè medetur huic vitio: Si te tuus, inquiens, scandalizat oculus, excinde eum, ex imo euellens cupiditatem: lasciui autem aspectus, & versatilibus ac tanquam conniuentibus oculis intueri, nihil est aliud, quàm oculis mœchari, cùm per eos cupiditas ineat prima pugnæ præludia. Ante totum enim corpus corrumpuntur oculi. Pulchra autem ac bona cōtemplans oculus, cor lætitia afficit: hoc est, qui rectè contemplari didicit, lætitia afficit. Annuens aūt oculo cum dolo, viris dolores congregat. Talem vtiq; effœminatum Sardanapalum, regem Assyriorum, in lecto pedibus sursum sublatis sedentem, purpuram carpentem, & albuginem oculorum versantem, introducunt. Quę hæc exercent mulieres suo intuitu suijpsarum lenæ sunt: Lucerna enim corporis est oculus, inquit Scriptura, per quem apparent interna, luce quæ cernitur illustrata. Fornicatio aūt mulieris in eleuatione oculorum. Mortificate ergo mēbra vestra quæ sunt super terram, fornicationem, immunditiam, passionem, cupiditatem malam, & auaritiam, quæ est idolorum cultus, propter quæ venit ira Dei super filios inobediētiæ, clamat Apostolus. Nos autem affectiones animi excitamus, & non erubescimus: aliæ quidem ex ijs mastichem deuorantes, obeuntes, diductis labris arrident ijs qui ad eas accedunt: aliæ verò, perinde ac si digitos non haberent, fibulis quas ferunt, capita scalpentes, deliciantur, & vt eas vel ex testudine, vel elephante, vel aliquo alio animali mortuo factas habeant magno studio procurant: aliæ autem, tanquam quæ habeant pullulantes quosdē flores, vt decoræ videantur aspectantibus, illitis coloribus ornatæ vultus suos cōmaculant. Stultam & audacem vocat huiusmodi mulierem per Solomonem, quæ nescit verecundiam: Sedit in foribus domus suæ apertè super sellam, vocans eos qui in via prætereunt, eos scilicet qui vias suas dirigunt. Vocat aūt per suam speciē & vniuersam vitam, dicens scilicet: Quis est vestrûm stultissimus? ad me declinet. Iis aūt qui egent prudentia, præcipit dicens: Absconsos panes iucundè tangite, & dulcem furti aquam: furtiuam hanc dicit venerem. Hinc adiutus Boœtius Pindarus, Dulcis est, inquit, furtiua cura veneris. Miser aūt nescit quòd serpentes apud eam habitant, & q̃ vadit ad laqueum inferi. Sed resilias, inquit pædagogus, neq; in loco diutius habites, neq; in eam tuos defigas oculos: ita enim aquā alienam traijcies, & transibis Acherontem. Quocirca hæc dicit Dominus per Esaiam: Propterea quòd ambulauerunt filię Sion erecto collo, & in nutibus oculorum, & simul cum incessu trahentes tunicas, & pedibus ludentes, & humiliabit Deus filias Sion, & reuelabit figuram earum, figuram indecoram. Ego quidem censeo ne ancillas quidem quæ probas sequuntur fœminas, oportere turpia dicere aut facere: sed ipsas debere castigari à dominis. Valde itaq; acriter dicit Comicus Philemon: Cùm liceat post mulierem liberam respicientem ancillam retro sequi pulchram, & ex Platæico consequentem quempiā eam limis intueri. In dominā enim retorquetur ancillæ intemperantia, quæ concedit vt qui minora aggrediuntur, non vereantur ad maiora cōscendere, cùm eo quòd ignoscat turpibus, domina præ se ferat se eam nō damnare. Non succensere aūt ijs qui se dedunt libidini, est indicium animi ad similia propensi. Qualis enim domina, talis est (vt dicitur in prouerbio) catella. A deābulatione autem nobis procul est amandandus furiosus incessus, sed honęstus & lētus nobis est eligendus, non aūt nimis tardus. Sed neq; in via fluctuare, nec supina ceruice obuios respicere, an ipsum aspiciant, tanquā pompam in scena traducentē, & anulos ostentantem: nec si in locum decliuiorem detrudatur, eos oportet à famulis in pristinum locum reduci, vt nonnullos videmus delicatiores qui videntur esse robusti, sed sunt ab animi mollitie effœminati. In fortis autē viri vultu nullum esse oportet signum mollitiei, sed neque in vlla parte corporis. Neque ergo in motu neque in habitu inueniatur vnquā magni animi & excelsi dedecus. Neq; verò tanquā iumentis famulis vtendum est, ei qui fuerit sanæ mentis. Quemadmodum enim illis præcipitur, vt cum omni metu dominis, nō solùm bonis & clementibus, sed morosis etiā & prauis, ait Petrus, subijciātur: ita ęquitas, & patiētia, & benignitas domi-

Matth. 5. Ibid. 6. Coloss. 3. B Prouer. 9. Cap. 3. C 1. Pet. 2.

nis pulchrè conuenit. In summa, este, inquit, omnes vnamines, misericordes, fratrũ amantes, bonis visceribus præditi, humiles, & quæ sequuntur, vt bonæ cuiusdam & amabilis benedictionis hæredes sitis. Adolescentulæ imaginem volens describere Zeno Cittieus, eam ita effingit: Sit, inquit, pura facies, supercilium non demissum, nec oculus sublimis, neq; fractus, ceruix minimè supina, nec remissa membra corporis, sed erecta, & similia ei qui est in tonis, recto tono: sit in sermone acumen, & bona eorum quæ dicta fuerint memoria, habitusq; & motus qui nullam spem præbeat impudicis. Resideat quidem in vultu pudor, & viraginem aspectu præ se ferat. Procul autem absit myropolarum, aurificum, lanificum, cæterarumq; officinarum caligo, in quibus ornatu meretricio ornatæ, tanquam sedentes in prostibulo, totum diem transigunt. Neq; ergo viri in tonstrinis & cauponis versantes, suauibus blandisq; verbis nugentur, & assidentes mulieres cessent quandoq; venari, qui etiam vt risum moueant non cessant maledicere. Iam verò prohibendus quoque est tesserarum ludus: & præterea ex talorum ludo lucri studium, quod nonnulli acriter persequuntur. Talia eis bile vexatis minimè reconditæ inueniunt delitiæ: in causa autẽ est ocium. Amat autẽ quis inania quæ sunt à veritate seiuncta: neq; enim aliter possunt recreare animum absq; damno. Vniuscuiusq; autẽ hominũ mentis imitatio est vitæ electio. Cæterũ, vt est consentaneum, ea demum vitæ prodest consuetudo, quæ intercedit cum viris bonis. Rursus autem vitæ vsum cum improbis hominib. planè
*Leuit.11.* suillũ, agnoscens sapientissimus per Mosen pędagogus, seniori populo porcis vesci
*Deut.14.* prohibuit: significans nõ oportere eos qui Deum inuocãt, cũ impuris versari hominibus, qui porcorum instar corporalibus voluptatibus, obscœnisq; cibis, & impudicis titillationibus prurientes, damnosa veneris voluptate perfunduntur. Sed neque miluium, raptoq; vescentem auem, & aquilam dicit esse comedendam: Non appropinquabis ijs, inquiens, qui rapina victum sibi comparant. Porrò autẽ alia quoq; similiter eandem habent allegoriam. Cum quibúsnam aũt, nempe iustis, vitæ haben-
*Ibidem.* da sit coniunctio, rursus dicit per allegoriam: Quicquid enim bifidam habet vngulam, & ruminat, est mundum. Quod bifidam enim habet vngulam, iustitiæ ostendit æquilibrium. Quod ruminat autem, proprium iustitiæ nutrimẽtum, nempe Verbũ, quod extrinsecus quidem ingreditur per catachesin, quemadmodum nutrimentũ: ex cogitatione autem tanquam à ventre ad rationalem reminiscentiam intrinsecus reuocatur. Ruminat autem iustus spiritale nutrimentum, cùm Verbum habet in ore. Bifida autem iurè est iustitia, vt quæ & hîc sanctificet, in seculumq; futurum trãsmittat. Non ducet ergo nos pædagogus ad spectacula: nec inconcinnè stadia & theatra pestilentiæ cathedram quis vocauerit: nam hîc quoque scelestum est consilium, quemadmodũ aduersus iustum, & ideo maledictis deuouetur quod aduersus ipsum initur concilium. Magna itaq; confusione & iniquitate hi cœtus pleni sunt, & occasio conuentus causa est turpitudinis, cùm viri & fœminæ permixtim conueniant, alter ad alterius spectaculum. Hîc perperàm iam agit concilium. Dum enim lasciuiũt oculi, calescunt appetitiones, & oculi proximos impudentiùs respicere assuefacti, quòd concessum ocium habeant, intendunt cupiditates. Prohibeãtur ergo spectacula & acromata, quę nequitia, verbisq; obscœnis & vanis temerè profusis plena sunt. Quod enim turpe factum non ostenditur in theatris? quod aũt verbum impudens non proferunt qui risum mouent scurræ & histriones? qui autem ex vitio quod in se est delectationem aliquam perceperunt, euidentes domi imagines imprimunt. Cõtrà autem qui his demulceri & his affici nequeunt, in ignauis voluptatibus minimè prolabentur. Si dixerint enim, pro ludo assumi spectacula ad recreãdos animos: dicemus nõ sapere ciuitates, quibus ludus pro re seria habetur. Neq; enim ludi sunt inanis gloriæ cupiditates, quæ ad morte afficiendum adeò sunt immisericordes. Sed neq; vana studia & inconsideratæ ambitiones, & præterea suarum facultatum impensæ. Neq; verò quæ his de causis excitantur seditiones amplius ludi sunt. Vano enim studio nunquam emendum est ocium: neq; enim qui sapit, id quod est iucundum, ei quod est melius prætulerit. At non omnes, inquit, philosophamur. Nunquid ergo nec omnes vitam persequimur? Quid tu dicis? quomodo ergo credidisti? Quomodo autem præterea Deum amas & proximum, si non philosopharis? quomodo autem teipsum amas, si non sis vitæ cupidus? Literas, inquit, non didici. Sed si non didicisti legere, non est quòd de auditu te possis excusare, quoniam is nequit doceri. Fides autem non sapientum secundum mundum, sed eorum qui secundum Deum sunt sapientes, est possessio. Illa autem etiam absq; literis discitur. Eius aũt

scriptum

A scriptum quod & ad rudes ignarosq; homines pertinet, & est diuinum, vocatum est charitas, quę est decretum spiritale. Licet etiam audire diuinam sapientiam, & licet in administranda republica versari. quinetiã quæ sunt in mundo honestè ex Dei sententia auferre minimè est prohibitũ. Qui aliquid vendit aut emit, eorũ quę à se venduntur aut emuntur, nunq̃ dicat duo pretia. Vnum aũt ac simplex dicens, & vera dicere studens, si id nõ consequatur, dum veritatẽ assequitur, diues est recta animi affectione. Absit aũt iusiurãdum, author omnium quę venduntur. Absit aũt etiã in alijs iusiurandum, & ita philosophentur negociatores forenses & caupones. Non assumes nomen Domini in vano: neq; enim eum mundauerit Dominus, qui nomẽ eius in vano assumit. Eos autẽ qui pręter hęc faciunt, qui sunt auari, mendaces, hypocritæ, qui veritatẽ cauponantur, ex paterna aula expulit Dominus, nolens iniustæ negociationis, vel verborum, vel quæ ex materia consistunt possessionum domũ esse, sanctã domum Dñi. In Ecclesiam aũt venire oportet virum & mulierẽ, honestè indutos, non simulato incessu, silentium amplectentes, charitatẽ non fictã possidentes, castos corpore, castos corde, ad Deum rogãdum aptos. Hoc amplius habeat mulier: semper tecta sit, nisi domi fuerit. Est enim honestus habitus, & ex quo nihil possit offensionis suscipi. Ipsa enim nunq̃ labetur, si & verecundiã & vestẽ ante oculos posuerit: nec ad peccati lapsum alium prouocabit, dum vultũ suum operit. Hoc enim Verbum requirit, quandoquidem cõuenit eam tectam orare. Dicunt aũt Æneę vxorem propter insignem honestatem, ne cùm Troia quidẽ caperetur perterritã se detexisse: sed etiam dum ab incendio fugeret, mansisse coopertã. Oporteret autem tales in tota vita & videri & effingi eos qui Christo initiantur, quales se in ecclesijs ad grauitatẽ & honestatem cõponunt, & esse, nõ aũt videri esse tales, adeò mites, adeò pios ac religiosos, adeò charitati deditos. Nunc aũt, nescio quomodo, vnà cũ locis figuram, habitumq; & mores mutant, nõ secus ac Polypos dicunt petris quibus adhęrescunt assimilatos, videri quoq; colore esse tales. Postquã itaq; excesserũt à congregatione, deposita illa quæ in ea erat diuina inspiratione, multitudini cum qua versantur assimilantur: vel potius deposita falsa ac simulata grauitatis persona, deprehenduntur quales esse ignorabantur: & cùm qui de Deo habitus est sermonẽ venerati sunt, eum illic relinquunt vbi audiuerũt, foris aũt impijs modis & amatorijs canticis se oblectant, tibiarũ cantu, plausu, temulentia, & quouis cœno ac sorde oppleti. Hoc aũt dum cantãt & recantant, ij qui immortalitatẽ antea celebrabant, tandem perniciosissimã mali malè canunt palinodiã, Comedamus & bibamus, cras enim morimur. Ii aũt non cras verè, sed iam Deo mortui sunt, sepelientes suos mortuos, hoc est, seipsos in mortẽ infodientes. Eis aũt fortiter resistit Apostolus: Ne erretis, neq; adulteri, neq; molles, neq; masculorũ concubitores, neq; fures, neq; auari, neq; ebriosi, neq; maledici, & quęcũq; alia his adiungit, regnũ Dei possidebunt. Pręterea in regnũ Dei vocati sumus, dignè regno ambulemus, Deum diligẽtes & proximũ. Dilectio aũt non in osculo censetur, sed in beneuolẽtia. Illi aũt nihil aliud osculo q̃ ecclesias conturbant, cùm ipsam non habeant intus amicitiã. Etenim hoc vtiq; turpem mouit suspicionẽ & maledicentiã, q̃ impudenter osculo vterentur, quod esse oportebat mysticũ. Id sanctum vocauit Apostolus. Regno dignè gustato, ore modesto & clauso beneuolentiã animi ostendamus, per quod maximè se exerit mansuetudo morũ. Est aũt aliud quoq; osculum incestũ, veneno plenũ, sanctitatẽ simulans. An nescitis q̃ etiã phalangia, si ore tantùm tangant, graues dolores hominibus afferunt? Oscula aũt impudicitię sępe virus immittũt. Manifestũ itaq; nobis euasit, osculum nõ esse dilectionẽ: dilectio enim est Dei. Hęc est aũt dilectio Dei, inquit Ioannes, vt mandata seruemus: non vt nos inuicẽ ore demulceamus: & mandata eius grauia nõ sunt. Cęterùm dilectorũ quoq; in via salutationes, qui volunt per res externas euadere manifesti, ne minimã quidem habent gratiam. Si enim in adyto mysticè Deum orare cõuenit, consequens fuerit proximum quoq;, quẽ secũdo loco iubemur diligere, similiter ac Deũ, mysticè intus amanter & benignè alloqui, tempus redimentes: nos enim sumus sal terrę. Qui aũt amico mane magna voce benedixit, ab eo qui execratur & maledicit nihil videbitur differre. Videtur aũt super omnia esse auersandus mulierũ aspectus: non solùm enim si tangantur, sed etiã si spectentur, peccari potest: quę maximè vitare oportet eos qui rectè & syncerè instituũtur. Oculi enim tui recta videant, supercilia aũt recta annuant. Etsi enim fieri potest vt q̃ viderit se fortiter gerat, veruntamẽ ne cadat cauendũ est: fieri enim potest, vt q̃ viderit, labatur: sed fieri nõ potest, vt qui non viderit, cõcupiscat. Non solũ enim pudicos ac

Marginalia: B (at "texisse"); C (at "turpem mouit"); Exod. 20. Matth. 21. 1. Cor. 6. 1. Thess. 2. Cap. 4. Matth. 5. Ioan. 5.

temperâtes satis est esse puros,sed etiã adhibenda est opera,vt qđ est extrinsecus,sit A
ab omni reprehẽsione & vituperatione alienũ,omni exclusa suspicionis causa,vt in
summã quandã cõtrahatur castitas,vt non simus solũ fideles, sed etiã videamur fide
*Legitur etiã* digni.Etenim hoc quoq; cauendũ est,vt ait Apostolus,ne qs nos reprehẽdat:Proui-
*[illegible], habi* dentes enim,inquit,bona nõ solum corã Dño,sed etiã coram hominib.Auerte autẽ
*tu fideles.* oculũ à muliere gratiosa,& ne discas alienã pulchritudinẽ,inqt Scriptura.Et si cau-
*Rom. 12.* sam roges,ipse tibi enarrabit:In pulchritudine enim mulieris multi seducti sunt, &
*Ecclef.9.* ex eo,tanquã ignis,accenditur amicitia,quę ad ignẽ nunq̃ cessaturum deducit pro-
pter peccatum:amicitia,inquam,quę ex igne oritur, quam appellarunt Amorem.

*Breuis optimæ uitæ similiter pertractatio, & quot loca Scripturæ sanctæ uitam Christianorum describant,* Cap. XII.

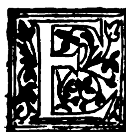
EGo verò ijs quoq; qui vxores duxerint consuluerim, ne vnquam vxores
suas coram famulis osculentur:nam nec famulis quidẽ eum vnq̃ arridere
permisit Aristoteles,tantũ abest vt in eorum conspectu videri osculari ac
complecti vxorem.Melius est autem vt à domo incipiamus honestatem
ostẽdere matrimonij:temperantię enim maxima est coniugatio, quæ puram spirat
ác redolet voluptatem.Admodum enim pulchrè dicit tragœdia:

*O fœminæ,non hominibus tantas ferunt*
*Aurum,tyrannis,ulla nec luxuria*
*Lætitias,boni ut mariti & fœminæ* B
*Piæ æqua mens fiuens mariti commodis.*

Hæc præcepta iustitię,quæ ab ijs qui mundanam sequuntur sapientiã dicta sunt,
sunt minimè recusanda. Sciẽtes ergo suum cuiusq; officiũ, in timore conuersemini
*1.Pet.1.* tẽpore vestri incolatus,scientes q̃, non corruptibilibus,argento & auro redẽpti su-
mus ex vana nostra conuersatione à patribus tradita,sed pretioso sanguine,tãquam
agni immaculati,& in quẽ nulla cadit reprehensio,Christi. Satis ergo fuit prę teritũ
tempus,ait Petrus,ad faciendam Gentium voluntatem,dum ambulauimus in lasci
uijs, concupiscentijs, temulentijs, comessationibus, potationibus, & nefarijs ido-
lorum cultibus.Limitem habemus crucem Dñi,cui crucifigimur,& à prioribus pec
catis reprimimur.Regenerati ergo,in veritate affigamur,resipiscamusq́; atq; sancti-
*Psal. 33.* ficemur:Quoniam oculi Domini super iustos,& aures eius in deprecatione ipsorũ.
Vultus aũt Domini super facientes mala.Et quis est qui sit nobis malè facturus,si bo
num secuti fuerimus?Optima autem educatio seu institutio, est moderatio, quę est
decorum vndiquaq; perfectum,firmaq; ac stabilis ordinata potestas,ea quę sunt in-
ter se inuicem coniuncta & cohærentia factis rectè distribuens, virtute insuperabi-
lis.Hęc quidem vt asperius dicerẽ adductus sum,procurans salutem correctionis, à
*Prouer. 24.* me quidem dicta sint,inquit pædagogus,quoniam Qui liberè quidẽ arguit, est pa-
*28.* cificus.Vos autem si me quidem audieritis,salui eritis.Quòd si ea quæ dicta sunt nõ
*Ibidem 4.* attenderitis,non est mihi curæ.Et tamen ei quoq; hoc modo curæ est:peccatoris e-
*Esa. 5.* nim mauult pœnitentiam quàm mortem.Sin autem me audieritis, bona terræ co- C
*Ezec. 18.33.* medetis,dicit rursus pædagogus,Bona terrę humana bona nominans,formã,diui-
*Esa.1.* tias,sanitatẽ,vires & alimentũ.Verè enim bona sunt ea quæ neq; auris audiuit,neq;
*1.Cor.2.* vnquam in cor ascenderunt.Apud eum qui verè rex est,& verè est,sunt bona quę ve
rè sunt,& nos expectant. Bonorum enim est & donator & custos. Per illorum au-
tem participationem quę hîc sunt eodem nomine appellantur, hominum imbecil-
litatem Verbo in Deo erudiente, & eos deducente à sensilibus ad intelligentiam.
Quæcunque sunt ergo domi seruanda,& quomodo vita sit corrigenda, nobis satis
disseruit pædagogus. Quæ itaque solet in via lubenter dicere pueris,donec eos ad
magistrum deduxerit, ea à nobis veluti in summa per ipsas scripturas subijciuntur
& apponuntur,nuda pręcepta adducens,tempori quidem peregrinationis accom-
modans,interpretationes autem earum magistro relinquens. Eius enim lex vult ti-
*τὸ ἑκούσιον* morem soluere,liberũ animi arbitrium ad fidem liberans.Audi,inquit,ô puer,qui re
ctè institueris,capita salutis:aperiã enim mores meos,& tibi pulchra hæc præcepta
suggeram,per quæ peruenies ad salutẽ. Duco autem te per viam salutarem: discede
*Psalm.1.* à vijs erroris,quoniam nouit Dominus viam iustorum,& via impiorum peribit. Se
quere ergo,ô puer,bonam viam,qua ego te deducã,aures mihi præbens audientes,
& dabo tibi thesauros arcanos, occultos, & qui non possunt videri à gentibus, à
nobis aũt possunt. Sapientiæ autem thesauri non possunt deficere,quos admirans
Apo-

A Apostolus: O profunditas, inquit, diuitiarum & sapientiæ. Thesauri aut multi ab vno Deo suppeditantur: hi quidé per legé, illi verò per prophetas reuelantur: alij verò ore diuino, alius verò concinens heptachordo spiritus. Cùm sit autem vnus Dominus, est idem per hos omnes pędagogus. Hîc est ergo quod omnia summatim cóplectitur præceptũ, & ad vitam pertinet admonitio: Quemadmodũ vultis vt vobis faciant homines, vos quoq; eis facite. Possunt etiá per duo omnia pręcepta comprehédi, vt dicit Dominus: Diliges Deum tuum in toto corde tuo, & in tota anima tua, & in tota virtute tua, & proximum tuum sicut teipsum. Deinde ex his infert: Ex hoc dependent tota Lex & Prophetæ. Iam verò ei qui interrogauit, quid faciá vt vitæ æternæ hęreditatem possideam? Nosti mandata, respondit. Qui cùm affirmasset: Hoc fac, inquit, & saluus eris. Veruntamen est etiam distinctiùs adducenda pædagogi benignitas per varia & salutaria præcepta, vt ex copiosa salute & scripturarũ ordinatione, ea própriùs inueniamus. Est nobis qui per Mosen datus est Decalogus, simplici & vnius generis elemento significans, salutarem peccatorũ appellationem circumscribens. Non mœchaberis. Idola non adorabis. Pueris stuprũ non inferes. Non furaberis. Non dices falsum testimonium. Honora patré tuum & matrem tuá, & ea quæ illa consequuntur, sunt à nobis seruanda, & quæcunq; in libris legendis pręcipiuntur. Porrò aũt pręcipit etiam per Esaiá: Lauamini, & mundi estote, auferte scelera ab animabus vestris coram oculis meis, discite bonum facere, quęrite iudicium, liberate eum qui iniuria afficitur, iudicate orphano, & iustificate viduá, & ve-
B nite, & disceptemus, dicit Dominus. Multa etiá apud alios præcepta inuenerimus: quemadmodum, verbi gratia, orationis quidem, circa bona opera: oratio Domino accepta, dicit Scriptura. Et exponitur etiam modus orationis: Si videris, inquit, nudum, operi eum, & necessarios seminis tui non despicies: tunc erumpet mane lumé tuum, & medelę tuę citò exorientur, & ambulabit ante te iustitia tua, & gloria Dei te cóplectetur. Quis est auté fructus huius orationis? Tunc clamabis, & Deus te exaudiet. Adhuc loquente te, dicet: Ecce adsum. De ieiunio autem: Cur nam mihi ieiunatis, ait Dominus? Non hoc ieiunium ego elegi, & diem, vt homo humiliet animá suam. Ne si collum quidem tuum flexeris vt circum, & saccum ac cineré substraueris, ne sic quidem vocabitis ieiunium acceptum. Quid ergo sibi vult ieiunium? Ecce hoc est, inquit, ieiunium quod elegi, dicit Dominus: solue omne vinculum iniquitatis: dissolue peruersos nexus violentorum contractuum, libera eos qui sunt offensi in acceptilatione, & iniustam omnem scripturam discerpe. Frange esurienti panem tuum, & pauperes qui tecto carent, introduc in domum tuam. Iam verò de sacrificijs quoq;: Quid mihi multitudo sacrificiorum vestrorum? dicit Dominus. Plenus sum holocaustis arietum, & adipem agnorum, & sanguinem taurorum & hœdorum nolo, nec veneritis vt à me videamini. Quis enim requisiuit hęc de manibus vestris? Atrium meum calcare nó adijcietis, si similam afferatis. Mane incensum mihi est abominatio, neomenias vestras & sabbata non fero. Quomodo ergo sacrificabo Domino? Sacrificium, inquit, Domino spiritus contritus. Quomodo igitur coronabo, vel
C vngam vnguento, vel Domino quódnam incensum offeram? Odor, inquit, suauitatis Deo est, cor quod glorificat eum qui ipsum fecit. Hæc sunt coronæ, & sacrificia, & aromata, & flores Dei. Præterea de patientia: Si peccauerit, inquit, frater tuus, ipsum argue, & si eum pœnituerit, ei remitte. Si septies in die in te peccauerit, & septies ad te cóuertatur, dicens, me pœnitet, ei remitte. Et ijs quidem qui militant, per Ioannem præcipit, vt sint solis stipendijs contenti. Publicanis autem, vt non amplius exigant quàm sit constitutum. Iudici aũt: Non accipies, inquit, personá in iudicio. Dona enim excæcant oculos videntium, & corrumpunt verba iusta vt liberent eos qui faciunt iniuriam. Quinetiam ijs qui student œconomiæ & domus administrationi: Possessio quæ paratur cum iniquitate, minor redditur. Quinetiam de charitate: Charitas, inquit, operit multitudinem peccatorum. Et de reipublicę administratione: Reddite quæ sunt Cæsaris, Cæsari: & quæ sunt Dei, Deo. De iureiurando autem & de iniuriæ acceptæ recordatione: Nunquid ego mandaui patribus vestris exeuntibus è terra Ægypti, vt offerrent mihi holocausta & sacrificia? Sed hoc mandaui vobis: Vnusquisq; vestrûm aduersus proximum in corde suo iniuriæ acceptæ non recordetur, falsum iusiurandum non diligat. Quinetiam mendacibus & superbis minatur: illis quidem hoc modo: Vę ijs qui dicunt dulce amarum, & amarũ dulce. His verò sic: Væ prudentes in seipsis, & coram seipsis scientes. Qui enim seipsum humiliat, exaltabitur: & qui seipsum exaltat, humiliabitur. Et misericordes quidem

*Rom.11.* *ἑπτάδι septenario numero.* *Matth.5.* *Ibid.22.* *Ibid.19.* *Exod.20.* *Deut.5.* *Cap.1.* *Actuum 10.* *Iacob.5.* *Esa.58.* *Ibidem.* *Esa.1.* *Psal.50.* *Eccles.35.* *Matth.18.* *Luc.3.* *Deute.16.* *Prou.13.28.* *Habac.2.* *1.Pet.4.* *Matth.22.* *Leuit.19.* *Ecclesi.10.* *Esa.3.* *Luc.14.* *Matth.5.*

beatos pronunciat, quoniam ipsi misericordiã consequentur. Iram aũt infelicẽ pro- A
Eccles. 30. nunciat sapientia: Quoniã ipsos quoq; prudentes perdet. Iam verò iubet quoq; inimicos diligere, & ijs qui nos execrantur benedicere, orareq; ꝑ ijs qui nobis insul-
Matth. 5. tãt, & nos iniuria afficiunt. Ei qui te, inquit, percutit in maxillã, prębe ei & alterã. Et si qs abstulerit tibi tunicã, ne ꝓhibeas quò minus tollat etiã palliũ. De fide aũt: Quę-
Ibid. 21. cunq; petieritis in oratione credentes, accipietis, inquit: infidelibus aũt nihil est fidum, vt ait Pindarus. Ac famulis quidẽ vtendũ est, tanq̃ nobis ipsis: sunt enim homines, sicut nos: Deus enim est omnibus liberis & seruis ex ęquo, si cõsideres. Oportet
Prouerb. 13. aũt fratres quoq; peccãtes nõ punire, sed reprehẽdere: Qui suo enim parcit baculo,
Matth. 23. inquit, suum odit filium. Præterea gloriæ quidẽ expellit cupiditatẽ, dicẽs: Vę vobis
Ibidem 11. Pharisęi, quoniã amatis primas sedes in synagogis, & salutationes in foro. Peccato-
Luc. 7. ris aũt amplectitur pœnitentiã, quę peccata sequitur pœnitentiã diligens. Solum e-
1. Petr. 2. nim Verbum est, in quod peccatum nõ cadit. Est enim peccare natura omnibus innatum & cõmune: post peccatum aũt resipiscere, non est cuiusuis hominis, sed eius q̃
Matth. 25. est iure magnificandus. De cõmunicatione autẽ: Venite, inquit, ad me omnes benedicti, este hęredes regni vobis parati à constitutione mundi. Esurij enim, & dedistis mihi ad comedendum: sitiui, & dedistis mihi potum: peregrinus erã, & me collegistis: nudus, & me operuistis: infirmus, & visitastis me: eram in carcere, & ad me venistis. Et quando fecimus aliquid horum Domino? Ipse rursus dicet Dominus, Fratrum beneuolentiã beneuolè in seipsum cõuertens, & dicens: Quodcunq; fecistis his paruis, mihi fecistis. Et ibunt qui tales sunt in vitam ętermã. Tales sunt Verbi le- B
ges, verba cõsolatoria, nõ in tabulis lapideis, digitis Domini scriptis, sed scriptæ in cordibus hominũ, in quas solum nõ cadit interitus. Quocirca fractę sunt tabulę eorum qui erant duri cordis, vt fides puerorũ imprimeretur in teneris mentibus. Ambę aũt leges Verbo seruiebant, ad humanæ naturæ institutionẽ: illa quidem per Mosen, hæc verò per Apostolos. Cuiusmodi autẽ tradita sit per Apostolos puerilis institutio, mihi videtur de eo quoq; genere necessariò differendum. Imo verò sui recordans dicit Pędagogus. Atq; ipsa quidẽ eius præcepta rursus exponã veluti in semi-
Zachar. 8. ne: Deposito mendacio loquimini veritatem vnusquisq; cum ꝓximo suo, quoniam
Ephes. 4. sumus alter alterius mẽbra. Sol non occidat super iracundiã vestrã, neq; locum date diabolo. Qui furabatur, non amplius furetur, sed potius laboret, operans bonum vt possit impertiri egenti. Omnis amaritudo, & ira, & excandescentia, & clamor, & maledictum tollatur à vobis cum omni vitio. Estote alter in alterum benigni, misericordes, vobis inuicem gratificãtes, quemadmodum Deus quoq; vobis in Christo
Ephes. 5. gratificatus est. Estote ergo prudentes, & Dei imitatores, sicut filij dilecti, & ambulate in dilectione, sicut & Christus dilexit vos. Mulieres quidẽ proprijs viris subijciantur, tanq̃ Domino. Mariti autẽ suas vxores diligant, sicut Christus dilexit Eccle-
Ibid. 6. siam. Se ergo inuicẽ diligent qui sunt coniuncti, sicut propria corpora. Filij obedite vestris parentibus. Patres ne prouocate ad irã filios vestros, sed educate eos in disciplina & admonitione Domini. Serui obedite dominis secundum carnẽ, cum timore & tremore in simplicitate cordis vestri, sicut Christo ex animo cum beneuolentia C
seruientes. Et domini benefacite seruis vestris, remittentes minas, scientes quòd &
Galat. 5. ipsorũ & vester Dominus est in cælis, & non est personæ acceptio. Si viuimus spiritu, spiritu & ambulemus. Ne simus vanæ gloriæ cupidi, alter alterum prouocantes,
Ibid. 6. alter alteri inuidentes. Alter alterius onera portate, & ita implete legem Christi. Ne erretis, Deus non subsannatur: quod bonum est faciẽtes, ne animo deficiamur, pro-
1. Thess. 5. prio enim tempore metemus. Non dissoluti, pacem in vobis agite. Adhortamur autem vos fratres, admonete insolentes, consolemini pusillanimes, sustinete infirmos, patientes estote erga omnes. Videte ne quis malum alicui pro malo reddat. Spiritum ne extinguatis, Prophetiam ne nihili ducatis. Omnia autem probate, & quod bonum est tenete. Ab omni specie mala abstinete. In oratione perseuerate, vigilantes in ipsa. In gratiarum actione, in sapiẽtia ambulate apud eos qui extrà sunt
Coloss. 4. tempus redimentes. Sermo vester semper in gratia, sale sit conditus, vt sciatis quo-
1. Tim. 4. modo oporteat vos vnicuiq; respondere. Enutriamini in sermonib. fidei. Exercea-
Ibid. 6. mini ad pietatẽ: corporalis enim exercitatio ad modicũ est vtilis. Pietas aũt est vtilis ad omnia, habens ꝓmissionẽ vitę, quę nũc est, & futurę. Qui fideles habẽt dños,
Rom. 12. ne cõtẽnant, quoniã fratres sunt, sed magis seruiãt, quoniã sunt fideles. Qui largitur, sit in simplicitate: qui præest, in studio: q̃ miseretur, in hilaritate: charitas non ficta, malum odio habentes, bono adhęrentes, fraterna dilectione vestri inuicẽ amantes, bono-

A honore vos inuicem præuenientes, studio non pigri, spiritu feruentes, Domino ser uientes, spe gaudentes, afflictionem sustinentes, in oratione perseuerantes, hospita litatem persequẽtes, vsibus sanctorũ cõmunicantes. Hęc pauca ex multis, exempli gratia, ex ipsis Scripturis percurrens Pædagogus, suis apponit pueris, per quæ, vt se mel dicam, funditus excinditur vitiũ, & circumscribitur iniquitas. Plurima autem alia pręcepta quæ ad electas ꝑsonas pertinẽt, in sanctis libris scripta sunt: hęc quidẽ presbyteris, alia verò Episcopis, alia diaconis, alia aũt viduis, de quib. fuerit aliud dicendi tẽpus. Multa aũt etiã per ęnigmata, multa verò per parabolas quoq; possũt ꝓdesse ijs qui in ea incidunt: sed nõ est meum, inquit Pædagogus, hæc docere, sed magistro ad sancta verba exponenda opus habemus, ad quẽ nobis eũdum est. Et iã quidẽ certè tempus est mihi quidem cessandi à pædagogia, vobis aũt audiẽdi magi strum. Cùm is autem vos exceperit in bona disciplina eductos, edocebit eloquia. Rectè autem cecinit ecclesia & sponsus, qui est solus magister, boni patris bona voluntas, sapiẽtia germana, sanctificatio cognitionis. Et ipse est ꝓpitiatio pro peccatis nostris, vt dicit Ioannes, qui medetur & corpori & animæ nostrę, proprio nẽpe homini, Iesus. Non solum autem pro peccatis nostris, sed etiam totius mundi. Et in hoc cognoscimus, quòd ipsum cognouimus, si eius mandata seruemus. Qui dicit, cognoui ipsum, & mandata eius non seruat, mendax est, & in eo veritas nõ est. Qui autem seruat eius sermonem, verè perfecta est in eo Dei dilectio: in hoc cognoscimus quòd in eo sumus. Qui dicit in ipso se manere, debet sicut ille ambulauit, ipse quoq; ambulare. O alumni beatę pædagogię, impleamus pulchram Ecclesiæ persona m, & ad bonam matrem infantes accurramus, & si simus sermonis auditores, beatam glorificemus œconomiam, humanę scilicet carnis susceptæ cõsilium, per quod tanq̃ à pædagogo quidẽ homo instituitur, sanctificatur autem tãquam Dei puellus, & in cælis quidem versatur, è terra institutus, patrem autem illic sumit, quem discit in terra. Omnia Verbum & facit, & docet, & instituit. Equus fræno ducitur, & taurus iugo, fera laqueo capitur: homo autem Verbo transformatur, quo ferę mansuescunt, inescantur natatilia, & attrahuntur volucres. Hoc Verbum seu ratio reuera equo frænum construit, tauro iugum, ferę laqueum, pisci arundinem, aui laqueum. Hoc rempublicam gerit, agros colit, imperat, & est administer, & vniuersa fabricatur. 1. Ioan. 2.

B

*Hoc terram, ac cælum, maris æquoraq; alta creauit,*
*Astraq; quæ cælum pulchra undique cuncta coronant.*

O diuina opera. O diuina præcepta. Aqua hæc in seipso fluctuet: hic ignis irã contineat: aër hic vagetur in ęthere: terra autem & concrescat & ferat. Quando ego volo hominem formare, elementa sunt mihi materia, vnà cum meo figmento cohabito. Si me cognoueris, ignis tibi seruiet. Tale ac tantum est Verbum. Hic est pædagogus, mundi & hominis opifex, & propter ipsum iam est mundi quoq; pædagogus, cuius iussu ambo constamus, expectantes iudicium. Neq; enim furtiuum fert hominibus vocale verbum. Erit verbum sapientia, vt ait Bacchylides. Irreprehensibiles autem, & integri, & inculpati Deo, vt dicit Paulus, filij, in medio generationis prauæ & peruersæ, tanquam luminaria, in mundo apparete. Quod ergo restat, propter talem Verbi celebrationem Verbum orabimus. Placare tuis ô pædagoge pueris, pater auriga, fili Israël, & pater vnum ambo, Domine. Da nobis qui tua sequimur præcepta, vt impleamus similitudinem imaginis, & pro viribus sentiamus bonũ Deum & Iudicem non acerbum: præstaq; vt omnes qui in tua pace versamur, vt in tuam ciuitatem transferamur, cùm vndas peccati absque fluctibus tranauerimus, tranquilli cum sancto Spiritu conueniamus, & ineffabili sapientia noctu & interdiu ad perfectũ vsq; diem laudantes, gratias agamus, laudemus vnũ Patrem, & filium: filium inquã pædagogũ & magistrum, vnà cum sancto Spiritu, qui vnus est omnia, in quo omnia, per quem omnia vnum, per quem est quod semper est, cuius mẽbra omnes, cuius sunt gloria & secula, qui est vndiquaq; bonus, vndiquaq; pulcher, vndiquaq; sapiens, vndiquaq; iustus: cui gloria nunc & in secula seculorum, Amen. Quoniam autem pædagogus nos duxit in Ecclesiam, ipseque sibi ipsi, Verbo inquam, quod docet, & omnia cõsiderat, assidet, bene habuerit, si nos cùm in hoc loco sumus, iustæ gratiarum actionis mercedem, pulchræ pædagogię conuenientem laudem Domino offeramus.

C Philip. 2.

HYMNVS CHRISTI SERVATORIS A SANCTO *Clemente compositus, è Græco uerbatim nulla uersus habita ratione traductus.*

FRænum pullorum indocilium,
Penna volucrum non errantium,
Verus clauus infantium,
Pastor agnorum regalium,
Tuos simplices
Pueros congrega,
Ad sanctè laudandum,
Syncerè canendum
Ore innoxio
Christum puerorum ducem.
Rex sanctorum,
Verbum, qui domas omnia,
Patris altissimi,
Sapientiæ rector,
Laborum sustentaculum,
Æuo gaudens,
Humani generis
Seruator Iesu,
Pastor, arator,
Clauus, frænum,
Penna cælestis
Sanctissimi gregis.
Piscator hominum,
Qui salui fiunt.
Pelagi vitij
Pisces castos
Vnda ex infest
Dulci vita inescans.
Sis dux ouium
Rationalium pastor
Sancte, sis dux,
Rex, puerorum intactorum.
Vestigia Christi,
Vita cælestis,
Verbum perenne,
Æuum infinitum,
Lux æterna,
Fons misericordiæ,
Operatrix virtutis,
Honestà vita,
Deum laudent, Christe Iesu.
Lac cæleste
Dulcibus vberibus
Nymphæ Gratiarum
Sapientiæ tuæ expressum,
Infantuli
Ore tenero
Enutriti,
Mammæ rationalis
Roscido spiritu
Impleti,
Laudes simplices,
Hymnos veraces,
Regi Christo,
Mercedes sanctas
Vitæ doctrinæ,
Canamus simul.
Canamus simpliciter
Puerum valentem,
Chorus pacis,
Christo geniti,
Populus modestus.
Psallamus simul Deum pacis.

PÆDAGOGIÆ LIBRI TERTII ET VLTIMI FINIS.

# COSMO MEDICI CLARISSIMO ET PRUDENTISSIMO FLORENTIAE DUCI GENTIANUS HERVETUS

S. P. D.

CUM Clementis Alexandrini Stromatũ octo libri varia & multiplici eruditione referti, è tua bibliotheca exprompti, & à tuo typographo Græcè in lucẽ aditi, à me Latinè essent versi, Clarißime princeps, non cõmittendum putaui, vt cùm ij in studiosorum manus propédiẽ essent venturi, nescirent cuinam hunc thesaurũ eos ferre acceptũ oporteret. Nam cùm multis nominibus tibi plurimùm debeant qui literarũ studijs delectantur, se quidem certè huius verè admirabilis authoris editione tibi adeò obligatos fateantur necesse est, vt diuini huius beneficij memoriã, nulla sit vnquam deletura obliuio. Est certè eiusmodi hic eius Commentarius, qui cuiusuis doctrinæ tantas cõtinet opes & tam innumerabiles, vt nullus sit vllis artibus ac disciplinis præditus, qui non sit ex eo maximã vtilitatem accepturus. Qui si interijsset, & non tua ope esset in vitã propè dixerim reuocatus, incredibilem fecisset iacturã Christiana respublica. Quo quidem nomine ipsum quoq; Clementem, quem, suũ opus ad publicam vtilitatẽ conscriptum, ab interitu esse vindicatum, gaudere est consentaneum: magnas quoq; tibi gratias & habiturum, & suis ad Deum precibus esse relaturũ, piè credendũ est. Ea verò magna laus est, optime Princeps, nõ solùm viuos, sed eos quoque qui è viuis excessere, tibi immortali tuo beneficio obstringere. Plurima sunt profectò eaq; maxima & præclarißima, quæ plurimi in te iurè suspiciunt, laudant, & admirantur: nihil est tamen quod omnes vno ore magis prædicant atq; adeo in cælum ferunt, quàm & tuũ insignem doctrinæ amorẽ, & eximiam in doctos beneuolentiam. Et meritò profectò: nam cùm in hac diuinitus ad te delata pulcherrimæ reipublicæ administratione hoc tibi proposueris, & eò omnes tuas actiones hucusque direxeris, vt, quod quidẽ est optimi & verè Christiani principis institutũ, ciues tui bene ac beatè viuant, quod tum demũ fit, cùm expulsis vitijs suus est virtuti ac dignitati locus: quid honestius & vtilius, q̃ & ex antiquorum monimentis præclara instituta & facta discere, & ad res honestas tuo exẽplo, studio & auxilio, tuos ciues incitare? Ea re certè factũ est, vt cùm peritissimi instar medici, & bene valentes ea quæ ad tuendã sanitatẽ pertinent docuisses, et ægros partim lenibus, partim acribus, prout morbus postulabat, medicamentis curasses, sit exoptata salus vestræ reddita reipublicæ. Sed quò feror, qui contrà ac statuerã in tuas laudes excurro, quas nec tã parui est ingenij, nec tam exiguæ in dicendo facultatis, minimè certè huius epistolæ breuitatis celebrare, & non potius ad Clementẽ nostrũ redeo? Quidni enim eum nostrũ vocẽ, cùm vterque in eum quod potuit contulerit? Tu eum liberaliter excepisti, fouisti, recreasti, nitidumq; & rectè curatũ in publicũ exire iußisti. Ego autẽ protinus non vulgari inita cũ eo amicitia, non satis habui eũ audire Græcè loquentẽ, nisi etiã, vt Latinis omnibus euaderet familiaris, eũ Romanè loqui docerẽ: quàm bene quidẽ, esto aliorũ iudiciũ. Neq; enim is sum, qui nesciã quàm sit difficile Græcũ senẽ sermonẽ di-

*scere peregrinum, maximè si ipse magister in ea quã ipse docet lingua sit hospes, quomodocunque tamen se habeat, ego sedulò sum conatus, & me præstitisse opinor, vt si nihil aliud, cogitata certè sua Latinè fideliter & familiariter explicet. Huius itaque Clementis quæ quidem extant opera, maximo tuo beneficio in lucem nuper edita, cùm Latinè reddidissem, & pulcherrimis typis in publicũ edenda Florentiam misissem, hoc diuinum Stromatum opus faustissimis tuis auspicijs emittendum esse censui. Quod quidem vt facerem, eo lubentiùs sum adductus, quòd cùm Petrus Victorius vir egregiè doctus, Marcello Ceruino Cardinali sanctæ Crucis, viro in primis pio & docto, in cuius sum clientela, cùm Protrepticon Clementis benignè suppeditasset, omnia eius opera dedicarit, ab officio meo non alienum fore duxi, si hæc Stromata felici tuo nomini consecrans, testatum relinquerem quàm sit bonis omnibus gratum, & immortali laude celebratum, hoc tuum doctrinæ studium, & ad bonas prouehendas artes & disciplinas inexhausta liberalitas. Vale Princeps optime, et Clementi Latinè loquenti faciles aures paulisper præbe. Eugubij, pridie Non. Iulij,*

*M. D. LI.*

# CLEMENTIS ALEXANDRINI STROMATVM LIBER PRIMVS.

*Deest principium.*

* * * *

Vt ea sub manu legas, & ea seruare possis. Vtrum autem ne omnino quidem, an est aliquibus permittendum scribere? & si prius quidem, quis est vsus literarum? sin autem alterum, aut viris bonis, aut ijs qui non sunt eiusmodi. Ridiculum quidem certè fuerit, eorum qui sunt boni ac studiosi scriptis repudiatis, eos qui tales nõ sunt componentes admittere. Sed Theopompo quidem & Timæo, qui fabulas & maledicta componunt, præterea autem Epicuro quoque qui est princeps & author impietatis, quinetiam Hipponacti & Archilocho tam turpiter scribere concedendum est, ei autem qui veritatem prædicat, prohibendum est posteris vtilitatem relinquere? Pulchrum autem esse & honestum existimo, ijs etiam qui postea futuri sunt, bonos filios relinquere. Ac filij quidem corporum, animæ autem sunt fœtus orationes. Iam Patres eos dicimus qui nos catechesi instituerunt. Philosophia autem, humana est, & se lubenter communicat. Dicit itaque Solomon: Fili, si susceptam præcepti mei dictionem apud te absconderis, exaudiet sapientiã auris tua. Sermonem qui seminatur, in eius qui discit anima abscondi dicit, tanquam in terra: & hęc est plantatio spiritalis. Vnde etiam infert: Et applicabis cor tuum ad intelligentiam, applicabis autem ipsam ad admonitionem filio tuo. Anima enim animæ, & spiritus spiritui copulatus, per sermonis seminationem id quod deiectum est augent & viuificant: filius autem est, quisquis eruditur, ex eo q ei qui eũ erudit, obediat. Fili, inquit, præscriptorum meorum ne obliuiscaris. Quòd si non est omnium cognitio, asinus ad lyram, vt ij dicunt qui prouerbijs vtuntur, vulgò sunt quæ scripta sunt. Sues quidem certè magis delectantur luto, quàm aqua munda. Propterea, inquit Dñs, loquor eis in parabolis, q videntes non vident, & audientes non audiunt, & non intelligunt: nõ quòd eis Dominus præbeat ignorationem, sic enim sentire est nepharium,

*Prouerb. 2.* *Matth. 13.*

A rium, sed quòd eam quæ inerat, Propheticè arguerit, & ea quæ dicebantur, non esse
intellecturos indicarit. Iam autem cernitur ipse Seruator, qui ex redundanti copia, Luc. 19.
pro eius qui accipit viribus, quas ex exercitatione seruis augentur, facultates distri-
buerat, reuersus cum eis rationem ponere, quando ijs quidem qui eius pecuniā au-
xerant, qui in modico fuerant fideles, exceptis, eos super multa constituturum pol-
licitus, in Domini gaudium iussit ingredi: ei autem qui pecuniam ad fœnerandum
creditam occultauerat, & eam ipsam quam acceperat absq; vllo emolumento red-
debat, Serue, inquit, nequam & ignaue, oportebat te pecuniam meam dare nūmu-
larijs, & ego veniens meā recepissem. Propter hæc seruus inutilis inijcietur in tene-
bras exteriores. Tu ergo fortis esto, ait quoq; Paulus, in gratia quæ est in Christo Ie- 2. Tim. 2.
su, & quæ audijsti à me per multos testes, ea cōmitte fidelibus hominibus, qui qui-
dem idonei erūt alios quoq; docere. Et rursus: Stude teipsum Deo probum exhibe- Ibidem.
re operarium, inconfusibilem, rectè tractantem verbum veritatis. Si ambo ergo ver-
bum prædicant, hic quidem scripto, ille verò voce, quomodo non sunt ambo admit
tendi, qui effecerunt vt fides operetur per dilectionem? A culpa autem eius qui
quod est optimum non elegit, Deus est prorsus alienus, & minimè eius causa. Iam
verò illorum quidem munus est verbum fœnerari: horum autem, probare, & aut ac-
cipere, aut non. Iudicium autem in ipsis iudicatur. Sed prædicandi quidem scientia
est quodammodo Angelica, vtrouis modo iuuans, seu per manum, seu per linguam
operetur: quoniam qui seminat in spiritū, de spiritu metet vitam æternā. Quod aūt
B bonū est facientes, ne simus pusillo & abiecto animo. In eum quidem certè qui di-
uina prouidentia in eam inciderit, confert ea quæ sunt maxima, principium fidei, vi
tæ rectè instituendæ promptum & alacre desiderium, veritatis appetitionem, & ad
eam incitationem, motum inquisitionis, vestigium cognitionis, & vt rem in pau-
ca conferam, dat materiam & occasionem salutis. Qui autem in verbis veritatis ger
manè & syncerè sunt educati, accepto vitæ æternæ viatico, sublimes in cælum fe- πτεροῦνται
runtur. Valde itaq; mirabiliter dicit Apostolus: Semper vos exhibentes vt Dei mi- 2. Cor. 6.
nistros, vt pauperes, multos autem ditantes: vt nihil habentes, & omnia possiden-
tes. Os nostrum apertum est ad vos. Testificor aūt, inquit scribens ad Timotheum, 1. Tim. 5.
coram Deo & Christo Iesu, & electis Angelis, vt hæc serues absque præiudicio, ni-
hil faciens secundum prouocationem. Necesse est ergo vtrosque eos probare sei- πρόσκλισιν
psos: illum quidem an dignus sit qui dicat & monimenta relinquat: hunc verò, an
iure possit audire & legere. Etiam Eucharistiam cùm quidam vt mos est diuiserint,
permittunt vnicuique ex populo eius partem sumere. Ad accuratè enim perfecteq;
eligendum ac fugiendum, optima est conscientia. Firmum autem eius fundamen-
tum, est recta vita, cum ea quæ conuenit doctrina: & sequi alios iam probatos & qui
se rectè gesserunt, optimum est, & ad veritatem intelligendam, & ad exequenda
mandata. Quamobrem qui comederit panem & biberit calicem Domini indignè, 1. Cor. 11.
reus erit corporis & sanguinis Domini. Probet autem homo seipsum, & sic de
pane edat & de calice bibat. Consequens est ergo, vt qui vt proximis prosit curam
C suscipit, consideret, nunquid audacter ac temerè, & aliqua in aliquos ductus æmu-
latione, ad docendum prosiluerit: num gloriam aucupetur eius verbi communica-
tio: num hanc solam accipit mercedem, eorum qui audiunt salutem: num loquen-
di ad gratiam, sordiumque acceptorum munerum criminationem effugerit, qui per
literarum monimenta loquitur. Nunquam enim in sermone adulationis fuimus, 1. Tim. 2.
sicut nouistis, inquit Apostolus, neque in prætextu auaritiæ, Deus testis, neque
quærentes gloriam ab hominibus, neque à vobis, neque ab alijs, cùm posse-
mus esse oneri vt Christi Apostoli, sed fuimus mansueti in medio vestri, sicut nutrix
fouet filios suos. Eadem autem ratione eis quoque qui sunt diuinorum verbo-
rum participes, obseruandum est, num nimium curiosi animi vitio inducti, tan-
quam vrbium ædificia visuri, ad id accedant, num veniant vt sint rerum secularium
participes, cùm audierint eos qui sunt Christo consecrati, ea quæ sunt ad victum
necessaria lubenter communicare. Sed sunt ij quidem hypocritæ, & ideo mittan-
tur. Si quis autem non videri iustus, sed esse velit, oportet vt optima is sit conscien
tia. Si est ergo messis quidem multa, operarij verò pauci, reuera orare oportet vt
maximè sit plurium operariorum copia. Est autem duplex agricultura: vna quidem
quæ scriptis non continetur, altera verò quæ continetur. Vtrouis autem modo Do-
mini operarius præclarum frumentum seminauerit, & spicas auxerit & messue-
rit, verè diuinus apparebit agricola. Operamini, inquit Dominus, non cibum Ioan. 6.

qui perit, sed qui manet in vitam æternam. Sumitur autem nutrimentum & per ci- A
[Matth. 5.] bos & per verba: & reuera beati sunt pacifici, qui eos qui in hac vita & errore ab i-
gnoratione oppugnantur, contraria docendo transmouent, & traducunt ad pacem
quæ est in Verbo, & vita quæ est ex Deo, & eos qui esuriunt iustitiam, panis distribu
tione nutriunt. Sunt enim etiam animæ propria habentes nutrimenta, & aliæ qui-
dem augentur per agnitionem & scientiam, aliæ verò per Græcam pascuntur philo
sophiam, cuius, quemadmodum nucum, non est quiduis esculentum. Qui autem
plantat & irrigat, cùm eius qui auget sint ministri, in ministerio vnum sunt. Vnus-
quisque autem propriam mercedem accipiet secundum proprium laborem. Dei
[1. Cor. 3.] enim sumus cooperatores, Dei agricultura: Dei ędificatio estis, vt ait Apostolus. Ne
que verò permittendum est auditoribus vt ex comparatione faciant probationem:
neque verbum tradendum est examinandum ijs qui educati sunt in artibus omnis
generis doctrinæ, & inflatorum argumentorum viribus animam iam habent præ-
occupatam, & nondum exinanitam. Qui autem ex fide conuiuari instituerit, is ad
[κρίσιν εὔλογον iudiciū ratio nabile: alludit autem ad λόγον.] diuinorum verborum susceptionem firmus est ac stabilis, vt qui iudicium quod bo
na nititur ratione, nempe fidem habeat. Eum autem hinc ex redundanti copia se-
quitur persuasio. Hoc itaque erat illud propheticum: Nisi credideritis, non intelli-
getis. Dum ergo tempus habemus, operemur bonum, maximè autem apud dome-
sticos fidei. Vnusquisq; autē eorum ex beati Dauidis sententia psallat gratias agens:
[Esa. 6. Galat. 6. Psalm. 50.] Asperges me Domine, hyssopo & mūdabor, lauabis me, & super niuem dealbabor.
Auditam mihi facies lætitiam, & exultatione exultabunt ossa humiliata. Auerte B
faciem tuam à peccatis meis, & iniquitates meas dele. Cor mundum crea in me
Deus, & spiritum rectum innoua in visceribus meis. Ne proijcias me à facie tua,
& spiritum sanctum tuum ne auferas à me. Redde mihi lætitiam salutaris tui, &
spiritu principali confirma me. Atque qui ad præsentes quidem dicit, & tempora
probat, & iudicio iudicat, & discernit ab alijs eum qui potest audire, obseruans o-
rationes, mores, consuetudines, vitam, motus, habitus, aspectum, sermonem, tri-
uium, petram, viam quæ conculcatur, terram fertilem, syluescentem regionem, &
regionem bonam ac feracem, & quæ colitur, & quæ potest multiplicare sementem.
[ἀφοσιοῦται] Qui autem per literarū monimenta loquitur, apud Deum sacramenti religione ob-
stringitur, hæc in scriptis vociferans: Nec lucri gratia, nec inanis gloriæ causa, non
vinci ab affectione, non quæstui seruire, non efferri voluptate, sed eorum qui le-
gunt sola frui salute, cuius nec est in præsentia particeps, sed spe expectans eam
quæ omnino reddenda est retributionem ab eo, qui operarijs pollicitus est se red-
diturum mercedem pro meritis. Sed nec eum qui in virorum numerum adscri-
ptus est, oportet desiderare remunerationem. Non enim qui sua benefacta iacta-
uit, propter gloriationem accepit retributionem. Qui autem eorum quæ opor-
tet aliquid facit propter remunerationem, aut vt rectè operans studens recipere,
aut vt maleficus pœnam vitans, an non mundana tenetur consuetudine? Opor-
tet autem Dominum, quoad eius fieri potest, imitari. Is autem fuerit qui Dei vo-
luntati inseruit, qui cùm gratis acceperit, dat gratis, satis magnam recipiens merce- C
[Deut. 23.] dem, ipsam vitæ institutionem. Non ingredietur autem, inquit, in sancta merces
[ἄλλαγμα.] meretricis. Porrò autem prohibitum est offerre altari pretium canis. Cui autem
mala educatione & doctrina obtusus est animæ oculus, vadat ad propriam lucem,
[Esa. 55.] ad veritatem, quę in scriptis ea quæ non sunt scripta indicat. Qui sititis, ite ad a-
[Prouerb. 5.] quam, dicit Esaias. Et bibite aquam de vasis vestris, monet Solomon. Plato ita-
[Pla. 3. de leg.] que qui est ex Hebræis philosophus, iubet agricolas non irrigare, neque aquam ab
[Est apud Pla.] alijs sumere, nisi cùm prius apud se foderint vsque ad terram, quę virginalis dicitur,
[τὴν κεραμῖτιδα quod Clemēs hic dicit παρθενικήν.] terram aridam & aquæ expertem inuenerint. Inopiæ enim non sucurrere, non iu-
stum est: ocio autem ac socordię viaticum suppeditare, minimè est honestum:
etiamsi onus quidem simul imponere rationi esse consentaneum, simul autem por-
tare non conuenire dicebat Pythagoras. Simul autem accendit scriptura ignicu-
lum animæ, & conuenientem oculum dirigit ad contemplationem, fortasse qui-
dem etiam aliquid immittens, vt is qui inserit agricola, id autem quod inest exci-
[1. Cor. 11.] tans. Multi enim in nobis, ex diuini Apostoli sententia, sunt infirmi & imbecilli,
& dormiunt multi. Si autem nos ipsos dijudicaremus, non dijudicaremur. Non
est autem hoc opus scriptura artificiosè comparata ad ostentationem, sed mihi ad
senectutem reconduntur monimenta, obliuionis medicamentum, verè imago &
adumbratio euidentium & animatarum illarum orationum quas dignus habitus
sum

A sum q̃ audire, & virorũ beatorũ, quiq; reuera erãt maximi pretij & æstimationis. Eorũ vnus quidẽ in Græcia, Ionicus, alij verò in magna Grecia. Alter eorũ erat ex Cœlesyria, alter ex Ægypto, alij aũt ex Oriẽte, & eius alter quidẽ Assyrius, alter verò in Palęstina Hebræus ex alto ducta origine. Cùm aũt in eum vltimũ incidissem, erat aũt primus potestate, conquieui in Ægypto, venans ea quæ latuerãt. Sicula reuera apis, Prophetici & Apostolici prati flores decerpẽs, syncerã quandã & incorruptã cognitionem ingenerauit eorũ qui audiebant animis. Sed qui verã quidẽ beatæ doctrinę seruabant traditionẽ, statim à Petro & Iacobo & Ioanne & Paulo, sanctis Apostolis, filius à Patre accipiens, pauci autem sunt patribus similes, ad nos quoq; Deo volente peruenerunt, illa à maioribus data & Apostolica depositura semina. Rectè autem scio fore vt exultent, non hac dico lætati expositione, sed sola ea obseruatione quæ est in annotatione. Est enim hæc, vt opinor, descriptio animæ desiderantis beatam ita conseruare traditionem vt non possit effugere. Filio aũt amante sapiẽtiam, pater lętitia afficietur. Putei qui exhauriuntur, emittunt aquam magis perspicuam: corrumpuntur autem ij quorum nullus est particeps. Ferrum quoque vsus seruat purius, vsus autem defectus ei generat rubiginem. Vt semel enim dicam, exercitatio salubrem habitum ingenerat & spiritibus & corporibus. Nemo accendit lucernam & ponit eam sub modio, sed super candelabrum, vt luceat omnibus qui accepti fuerint conuiuio. Quid enim iuuat sapientia, quæ non sapientem efficit eum qui potest audire? Pręterea autem semper quoque seruat Seruator, & semper operatur vt videt Patrem. Docens aliquis plus discit, & dicens sæpe vnà audit cum ijs qui ipsum audiunt. Vnus est enim magister & eius qui discit, & eius qui audit, qui & mentem irrigat & rationem. Nunquid etiam prohibuit Dominus à bono feriari & sabbatum agere? Diuinis autem mysterijs & sancta illa luce impertiri illos concessit qui ea possent capere. Iam verò non reuelauit multis ea quæ non erant multorum, sed paucis quibus sciebat conuenire, qui & ea possent accipere, & ex eis informari. Arcana autem, sicut Deus, verbo creduntur, non scripto. Quòd si quis dicat scriptum esse, Nihil occultum quod non manifestabitur: nihil opertum quod non reuelabitur: à nobis quoque audiat, ei qui occultè audit, occultum manifestatum iri: & ei qui secretè ea quæ traduntur potest seruare, apertum iri quod opertum est, vt veritas, & id quod multis est occultum, fiat paucis manifestum. Nam cur omnes nesciunt veritatem? Cur autem non est ab omnibus amata iustitia, si est omnium iustitia? Sed enim traduntur mysticè mysteria, vt sit etiam in ore loquentis id quod loquitur, potius autem non in voce, sed in intelligentia. Dedit autem Deus Ecclesiæ alios quidem Apostolos, alios verò Prophetas, alios verò Euangelistas, alios verò pastores & doctores ad perfectionem sanctorum, ad opus ministerij, ad ædificationem corporis Christi. Horum itaque meorum commentariorum scriptura, scio quàm sit imbecilla, si conferatur cum illo spiritu gratia pleno, quem vt audiremus digni sumus habiti: fuerit autem imago, archetypum in memoriam reuocans, ei qui in thyrso ictus fuerit. Sapienti enim, inquit, loquere, & erit sapientior. Quinetiam habenti adijcietur. Profitetur autem, non arcana satis posse interpretari, multum abest, sed tantum in memoriam reuocare, siue aliquando obliti fuerimus, siue ne obliuiscamur. Multa autem rectè scio effluxisse propter longitudinem temporis, vt quæ absque scriptis effugerint. Vnde memoriæ meæ imbecillitatem subleuans, expositionem capita constituentem, salutare memoriæ monimentũ mihi comparãs, hac necessariò vsus sum descriptione. Sunt ergo quædam, quorũ ne recordati q̃dem sumus: erat enim apud viros beatos magna quædam vis. Sunt etiam quædam non annotata, quæ cùm tempore mansissent, nunc effugerunt: aliqua autem quæ extinguebantur, vt quæ flaccescerent in ipsa cogitatione. Quoniam autem ijs qui non sunt probati, non facilè potest exhiberi eiusmodi ministerium: hæc monimentis suscitans, nonnulla quidem consultò prætermitto, timens scribere quæ etiam caui dicere, non vtique inuidens, neque enim fas, sed ijs timens in ea inciderent, ne in aliam fortè partem accipientes laberentur, & puero gladium, vt dicunt qui prouerbijs vtuntur, præbere inueniremur. Neque enim fieri potest vt quæ scripta sunt non elabantur, etiam si à me non edita manserint. Reuoluta autem, & vna semper voce, nempe ea quæ scripta est, vtentia, interroganti nihil amplius præter ea quæ scripta sunt, respondent. Necessariò enim semper auxilio indigent, aut eius qui scripsit aut alterius, qui eisdem insistit vestigijs, Sunt autem quędam, etiam quę mihi tacitè significabit

Græcè est ἀνδρὸς, sed puto legendũ παιδὸς.

Matth. 5.

B (margin, beside "ratur vt videt Patrem")

σαββατίζειν.

Matth. 10. Luc. 11.

Ephes. 4.

Prouerb. 1.

C (margin, beside "nim, inquit, loquere")

scriptura, & in alijs quidẽ insistet, alia verò tantùm dicet, conabitur autem & celans dicere, & occultans aperire, & tacens ostendere, & quæ ab insignibus hęresibus decreta sancita sunt adducet, & aduersus ea dicet quæcunque ante propheticam contemplationem prius dispensata esse oportet, quæ nobis procedet ex gloriosa & veneranda traditionis regula, ab ortu mundi progredientibus, ea quæ ex naturali contemplatione necessariò prius tractanda sunt prius adducens, præpurgata prius terra & à spinis & ab omni herba, agricolæ ritu, ad plantandam vineam. Certamen enim est etiam præludium certaminis, & mysteria sunt ea quæ præcedunt mysteria. Neq; verò verebuntur nostri commentarij vti ijs quæ sunt pulcherrima ex philosophia, & ijs quę præcedunt disciplinis. Non enim solũ ꝑpter Hebręos, & eos qui sunt sub lege, par est fieri Iudæum, sed etiam propter Gręcos Gręcum, vt omnes lucrifaciamus. Et in Epistola ad Colossenses: Admonentes, inquit, omnẽ hominẽ, & docentes in omni sapientia, vt exhibeamus omnem hominem perfectum in Christo. Quanquam alioqui commentariorum descriptioni conuenit splendor contemplationis. Iam verò ipsa quoque bonarum disciplinarum copia est veluti quoddam condimentum Athletæ cibo permixtum, non delitias quidem captantis, sed bonum appetitum sumentis, laudis amorem. Psallentes quidem certè, nimis intensum grauitatis sonum modulatè remittimus. Quemadmodum autem qui volunt alloqui populum, hoc sæpenumerò faciunt per pręconem, vt ea quæ dicuntur magis exaudiantur: ita hîc quoque cùm ad multos habenda sit à nobis oratio quę pręcedit traditionẽ, adducendę sunt opiniones & voces quæ eis in singulis resonant, per quas ij magis conuertentur qui audient. Et, vt paucis dicam, in multis quidem margaritis vna est. In multa autẽ piscium piscatione vnus est callionymus, tẽpore aũt & labore elucescet veritas, si bonus obtigerit adiutor. Per homines enim diuinitùs plurima beneficia suppeditantur. Atq; omnes quidẽ qui visu vtimur, ea quæ cadunt in ipsum contemplamur, sed alij aliorum gratia. Iam non similiter ouẽ contemplatur coquus & pastor. Ille quidem an sit pinguis diligenter scrutatur: hic verò lac ouis obseruat an sit generosum. Mulgeat quidem aliquis, si cibo egeat: vellus tondeat, si ei tegumento opus sit. Sic mihi etiam procedat fructus bonæ Græcorum doctrinę. Nullam enim existimo scripturam adeò fortunatã præcedere, cui nullus omnino contradicat: sed illam existimandum est esse rationi consentaneam, cui nemo iurè contradicit. Et actio simul & institutum est admittendum, non quod est à reprehensione alienum, sed quod nullus iurè reprehẽdit. Non statim autem, si quis non principaliter efficit, hoc facit quòd id deuitet: sed id agit diuinam quandam sapienter adhibens dispensationem, & se rebus accommodans, & in omnem partem versans. Neq; enim qui habet virtutem, via ad virtutem amplius opus habet: neque qui valet viribus, eget instauratione. Quemadmodum enim terram prius rigant agricolæ: ita etiam nos, eo quod ebibi potest ex Græcorum orationibus, id quod est in eis terrestre prius irrigamus, vt suscipiat spiritale semen quod deijcitur, & id facilè possit alere. Continebunt autem hæ orationes, quæ dicuntur στρωματεῖς, id est, stragulæ varieque contextæ, admixtam veritatem philosophiæ decretis, vel potius coopertam & absconsam, sicut testa operitur id quod est in nuce esculentum. Fidei enim semina, solis, vt existimo, conuenit seruari fidei agricolis. Non me autem latuerunt ea etiam quæ ab aliquibus imperitè tumultuantibus iactantur, qui dicunt oportere in ijs versari quæ sunt maximè necessaria, & quæ fidem continent: externa autem & quæ sunt superuacanea transilire, quæ nos frustra conterunt, & detinent in ijs quæ ad finem nihil conferunt. Alij autem etiam philosophiam ex malo ad hominum perniciem existimant in vitam esse ingressam, vt quæ profecta sit à maligno aliquo inuentore. Ego autem quod vitium quidem malam habeat naturam, nec alicuius boni esse agricola vnquam sustinuerit, in his totis ostendam orationibus quæ dicuntur στρωματεῖς, tacitè significans aliqua ratione diuinæ quoque prouidentię opus esse Philosophiam. De cõmentarijs autem, qui in temporibus necessarijs, Græcorum complexi sunt opinionem, tantùm dico ijs qui reprehendendi studio delectantur. Primùm quidem, etsi sit inutilis philosophia, si eam esse inutilem confirmare vtile est, est vtilis. Deinde nec fieri potest, vt ij Gręcos condemnent, qui nuda de eorum decretis dictione vtuntur, si non vnà sigillatim ad ea aperienda descẽdant vsq; ad cognitionem. Est enim vel maximè fide digna probatio quę est cum experiẽtia, quoniã vel perfectissima inuenitur demonstratio, eorũ quę sunt damnata, cognitio. Multa itaq; licet ad finẽ non conferant, artifici tñ ornamen-

Marginal notes: ὑποστελλόμενοι (?) θεωρίαν — 1. Cor. 9. — Coloss. 1. — χρηστομαθίας. — ἐντρεφομένοις (?) — καλλιχθύς. Hunc dicunt aliqui esse anthiam, alij ἱερὸν ἰχθὺν, seu sacrum piscem. — κατὰ περίστασιν. συμπεριφερόμενος.

Margin letters: A, B, C

A namentum afferunt. Et alioqui varia ac multiplex doctrina, & variè probat id quod adducitur, & Catechumenis admirationem afferens, ea quæ sunt præcipua dogmata, ad eorum qui audiunt persuasionem deducit, & ad veritatem. Est autem fide digna eiusmodi animum permouens persuasio, per quam qui sunt doctrinæ studiosi, quæ male exagitatur, suscipiunt veritatem, ad hoc vt neque ipsa Philosophia vitæ perniciem afferat, cùm sit rerum falsarum & malorum operum artifex, quam nõnulli falso affirmarunt esse euidentem veritatis imaginem, donum Gręcis datum diuinitus: neque nos à fide auellamur, à fraudulentæ artis veluti quibusdã decepti præstigijs, sed vt semel dicam, maiori integumento vtentes, exercitationem aliquam fidei demonstratiuam vtcunq; comparemus. Quinetiam ipsorum quoq; dogmatum conflictus, dum inter se conferuntur, veritatem conciliat, vnde consequitur cognitio, non quòd per principalem rationem ingressa sit Philosophia, sed quòd per eum fructum qui capitur ex cognitione, veræ comprehensionis firmam ac stabilem susci piamus persuasionem, propter eorum quæ subintelligũtur scientiam. Taceo quòd hæ orationes multiplici ac varia doctrina in vnum corpus coagmentatæ, volunt ex arte celare semina cognitionis. Quemadmodum ergo qui studio tenetur venationis, postquam quæsijt, inuestigauit, indagauit, canes qui cursu persequerentur emisit, feram capit: ita etiam apparet verum dulcedine quæsitum, & labore paratũ. Quánam ergo de causa sic tuos cõmentarios tibi ordinare visum est? Quoniam magnũ est periculum, verè arcanam veræ Philosophiæ rationem, ijs propalare, qui profuse

B quidem ac petulanter, sed non iurè volunt contra omnes dicere, omnia autem nomina ac verba turpiter & indecorè eiaculantur, & seipsos fallentes, & eorum qui sibi adhærent oculos præstringentes. Hebræi enim signa quærunt, vt ait Apostolus, Græci autem sapientiam quærunt. Magna est autem turba eiusmodi: ac eorum quidem aliqui voluptatibus mancipati, cùm velint non credere, omni veneratione dignam irrident veritatem, barbariem habentes ludibrio. Aliqui autem alij seipsos erigentes, calumnias verbis inuenire contendunt, contentiosas comparantes quæstiones, dictiuncularum venatores, pusillarum quarundam artium æmulatores, litigatores, & iurgiorum consarcinatores, vt ait ille Abderitanus:

ψυχαγωγία

ἀπεχθέσθαι

1. Cor. 2.

ἐριδαντέας καὶ ἱμαντελικτέας

*Lingua uolubilis est hominum, est & fabula multa.*
*Dictorum omnimodùm hinc atq; hinc diuisio multa est:*
*Quod uerbum edideris, te tale audire necesse est.*

Ob hanc ergo artem se efferentes Sophistæ infelices, canoris quibusdam suis nugis garrientes, cùm in nominum delectu & certa dictionum compositione & cõnexione tota vita laborant, *cicadis apparent loquaciores, eos quibus pruriũt aures, non satis, vt mihi videtur, viriliter demulcentes & titillantes.

*Verborum non stilla cadens, sed flumen, inertum.*

Et certè quomodo veterum calceorũ, imbecilla quidem sunt eis alia & diffluunt, sola autem eis restat lingua. Pulchrè autem eos insectans, scribit Solon Atheniẽsis:

*Ad linguam aspicitis, & dulcia uerba loquentis.*
*Quilibet ast uestrûm uulpis uestigia figit.*
C *Cunctis est uobis petulans mens.*

*Habetur in Græco, τρυγόνων, id est, turturibus: sed puto legendũ τεττίγων, id est cicadis.

χαῦνος νόος

Hoc vtiq; significat vox illa salutaris: Vulpes foueas habẽt, filius autem hominis non habet vbi caput reclinet. Soli enim ei, vt arbitror, qui credit, perfectè distincto ab ijs bestijs quæ dictæ sunt à Scriptura, eorum quæ sunt caput conquiescit, nempe benignum & mansuetum verbum, qui comprehendit sapientes in astutia ipsorum: Dominus enim solus cognoscit disceptationes sapientum, quòd vanæ sunt: sapientes vtiq; Scriptura vocante Sophistas, qui in dictionibus versantur & artibus superfluis. Vnde ipsi quoq; Græci, eos qui in re aliqua curiose versantur, sapiẽtes simul & Sophistas denominatiuè appellarunt. Cratinus itaq; cùm in Archilochijs Poëtas recensuisset, ait: Vobis Sophistarum examen quod prodijt? Et similiter Iophon Comicus in Aulœdis Satyris, dicit de Rapsodis & aliquibus alijs:

Matth. 8. Luc. 9.

1. Cor. 3.

*Nanque introijt*
*Vnà Sophistarum caterua plurima.*

De ijs & similibus qui se inani dicendi genere exercuerunt, pulcherrimè dicit diuina scriptura, Perdam sapientiam sapientũ, & prudentiam prudentũ abolebo. Homerus autem & fabrum vocat sapientem, & de Margite, si is vtiq; est, sic scribit:

1. Cor. 1.

*Hunc nec aratorem Dij fossorémue crearunt,*
*Vllo aliòue modo sapientem, arsq; abfuit omnis.*

A Hesiodus autem cùm Linum Citharœdum dixisset esse cuiusuis sapientiæ peritum, nautam etiam non veretur dicere sapientem, scribens:

*Nautica in arte aliquid qui nec sapit.*

Daniel. 2. Daniel autem Propheta, Mysterium, inquit, quod rex rogat, non est sapientum, magorum, incantatorum, Gazarenorum potestas vt regi annuncient, sed est Deus in cælo reuelans. Quinetiam appellat sapientes Babylonis. Quòd autem scriptura Sapientiam appellet æquiuocè omnem mundanam siue sapientiam siue artem, aliæ autem sunt quæ per additionem & compositionem humana sint ratione excogitatæ, & quòd à Deo sit quæ arte fit & est sapiens excogitatio, manifestum erit, si hanc Exod. 31. dictionem adiecerimus. Et locutus est Dominus ad Mosen, dicens: Ecce vocaui Beseleël filium Vri, filij Or de tribu Iuda, & impleui eum diuino spiritu sapientiæ, vt in omni opere excogitet & architectetur, operetur aurum & argentũ, & æs, & hyacinthum, & purpuram & coccinum, & vt operetur opera lapidea, & fabrilem artem lignorum, vsque ad illud, & omnia opera. Deinde verò generalem infert orationẽ: Et cuilibet intelligenti corde dedi intelligentiam, hoc est, ei qui potest suscipere labore & exercitatione. Rursus autem apertè scriptum est ex nomine Domini: Et tu loquere omnibus sapientibus cogitatione, quos impleui spiritu sensus. Habẽt quidem aliquam peculiarem naturæ proprietatem, qui sunt sapientes cogitatione. Duplicem autem sensus spiritum accipiunt ab ea quæ est principalis sapientia, ij qui se ipsos idoneos exhibuerunt. Qui persequũtur enim artes sordidas & illiberales, eo quod circa sensus excellit fruuntur. Auditu quidem, qui dicitur communiter musicus: tactu verò, figulus: & voce, cantor: olfactu, vnguentarius: visu, qui ea quæ in sigillis exprimuntur est tornandi facultate præditus. Qui autem in doctrina versantur, B

συναίθησιν suppeditatam habent consensionem, per quam Poëtæ modos, dictionẽ Rhetores, & syllogismos Dialectici, & Philosophi apprehendunt eam quæ ad se pertinet contemplationem. Ad inueniendum enim & excogitandum res est apta cõsensio, quæ ἐπιβάλλειν etiam probabiliter animum applicare persuadet: animi autem auget applicationẽ vnà ad scientiam quoque exercitatio. Meritò ergo Apostolus variam ac multiplicẽ dixit Dei sapientiam, vt quæ multifariam multisq; modis, per artem, per scientiam, per fidem, per Prophetiam, suam ostentat potentiam ad nostrum beneficium. Quo Eccle. 1. niam omnis sapientia à Domino, & cum ipso est in secula, vt dicit Iesu sapientia. Si Prouer. 2. enim prudentiam & sensum magna voce inuocaueris, & eam quæsieris sicut argenti thesauros, & prompto & alacri animo inuestigaris, intelliges Dei cultum, & sensum diuinum inuenies. Ad differentiam sensus qui versatur in Philosophia, dixit Propheta, quem præclarè ac magnificè docet scrutari ad profectum in Dei cultu & pietate in Deum. Ei autem opposuit sensum qui est in Dei cultu, cognitionem significans, & hæc dicens: Deus enim dat sapientiam ex ore suo, & sensum simul & prudentiam, & iustis instar thesauri recondit auxilium. Iis enim qui à Philosophia fuere iustificati, auxilium tanquam thesaurus reconditur: ea quoque consensio quæ ducit ad Dei cultum & pietatem in Deum. Atque erat quidem ante Domini aduentũ Philosophia Græcis necessaria ad iustitiam: nunc autem est vtilis ad Dei cultum & C pietatem ijs qui fidem colligunt per demonstrationem. Quoniam pes, inquit, tuus non offenderit, si quæ bona sunt ad Dei prouidentiam referas, siue Græca sint, siue nostra. Omnium enim bonorum Deus est causa: sed aliorum quidem principaliter, vt testamenti veteris & noui: aliorum autem per consequẽtiam, sicut Philosophiæ. Fortè autem principaliter tunc etiam Græcis data fuit, priusquam Dominus Græcos quoque vocasset. Nam ipsa quoq; Græcos Pædagogi more docebat, sicut lex Hebræos ad Christum. Præparat ergo Philosophia, ei viam muniens qui à Christo per Prouer. 4. ficitur. Iam sapientiam, inquit Solomon, vallo circunda, & te exaltabit, corona autẽ voluptatis te proteget. Nam cùm tu eam per Philosophiam & multam rectam eruditionem lorica munieris, Sophistis inaccessam seruaueris. Atque est quidem vna via veritatis, sed in eam tanquam in fluuium perennem alia aliunde fluenta influunt. Diuinè ergo dictum est: Audi fili mi, & mea verba suscipe, vt sint tibi multæ viæ vitæ: vias enim sapientiæ doceo te, ne te deficiant fontes qui ex ipsa terra scaturiũt. Quo quidem in loco vnius cuiusdam iusti vias plures salutares recensuit. Infert autem alias multorum multas iustorum vias, hoc modo id indicans: Viæ autem iusto-

ἀφορμαί. rum splendent sicut lux. Fuerint autem mandata quoque, & quæ prius audiuntur Luc. 13. disciplinæ, viæ & adminicula vitæ. Hierusalem Hierusalem, quoties volui congregare filios tuos, sicut gallina congregat pullos suos, Hierusalem autem exponitur

visio

A visio pacis. Significat ergo prophetice, eos qui pacifice res sacras inspexerint, ad vocationem multis modis institui. Quid ergo? voluit quidem, nō autem potuit? Quot autem modis? aut vbi? Bis, per Prophetas, & aduentum. Multiplicem ergo sapientiam ostendit dictio Quoties: & vnoquoque modo qualitatis & quantitatis omnino seruat aliquos & in tempore & in seculo: Quoniam Spiritus Domini repleuit orbem terræ. Quòd si quis vim afferens, dicat: Ne animum adhibe mulieri malæ, mel enim distillat à labijs mulieris meretricis, Græcam esse eruditionem, audiat quæ deinceps sequuntur: Quæ ad tempus vngit guttur suum. Philosophia autem non adulatur: quámnam ergo significet, eam quæ fornicata est dilucidè infert. Stultitiæ enim pedes deducunt eos qui ea vtuntur post mortem ad inferos: eius autem vestigia minimè sunt stabilia. Fac ergo vt via tua longè absit à stulta voluptate. Ne steteris ad fores domus eius, vt non tradat alijs vitam tuā. Et protestatur: Deinde te pœnitebit in senectute, quando contritæ fuerint carnes tui corporis. Hic est enim finis stultæ voluptatis. Et hæc quidem ita se habent. Cùm autem dixerit: Ne sis multùm apud alienam, vti quidem, sed non immorari & permanere in doctrina seculari admonet. Verbo enim Domini præparant, ac prius instituunt, quæ temporibus conuenientibus vnicuiq; generationi vtiliter data sunt. Iam enim quidam ancillarum inescati amatorijs, contempserunt dominam Philosophiam, & ex ipsis alij quidem consenuerunt in Musica, alij verò in Geometria, alij autem in Grammatica, plurimi autem in Rhetorica. Sed quemadmodum liberales quæ stant in circulo disciplinæ, *ὑποστᾶσαι. Sap.1. Prouer.7.*

B conferunt ad Philosophiam quæ est ipsorū domina: ita etiam ipsa Philosophia conducit ad parandam sapientiam. Est enim Philosophia quidem exercitatio, Sapientia verò scientia rerum diuinarum & humanarum, & causarum ipsarum. Est enim sapientia domina Philosophiæ, sicut illa eius quæ prius auditur disciplinæ. Si enim Philosophia profitetur continentiam & linguæ & ventris, & eorum quæ sunt sub ventrem, & est propter se eligenda: multò videbitur venerabilior & præstantior, si exerceatur propter Dei honorem & cognitionem. Eorum autē quæ dicta sunt, per hæc præbebit scriptura testimonium. Sara erat olim sterilis. Abrahæ autem vxor, cùm non pareret, Sara, ancillam suam nomine Agar Ægyptiam permittit Abrahæ ad liberorum susceptionem. Sapientia ergo quæ cum fideli cohabitat (fidelis autē & iustus reputatus est Abraham) erat adhuc sterilis & sine liberis in illa generatione, vt quæ nihil adhuc Abrahæ quod esset ex virtute peperisset: meritò autem volebat, vt qui proficiendi adhuc tempus haberet, cum mundi seu seculi disciplina (per Ægyptum autem allegoricè significatur mundus) prius congrederetur, postea autē ad eam quoque accedens diuina prouidentia gigneret Isaac. Interpretatur autem Philo Agar quidem incolatum: hîc enim dictum est, Ne multum sis apud alienam: Saram autem, meum principatum. Licet ergo ei qui disciplinis prius est institutus, venire ad sapientiam, quæ vel maximè principatum obtinet, à qua augetur genus Israëliticum. Ex quibus ostenditur sapientiam esse docendi potestate præditam, ad quam peruenit Abraham, ex contemplatione cælestium transiens ad eam quæ ex Deo est fidem & iustitiam. Per Isaac autem id quod per se didicit indicatur. Quare *φιλοσοφίας Græcè habetur, sed legendum puto σοφίας. Gen.11.et 17.*

C etiam Christi typus inuenitur. Is fuit vir vnius vxoris, nempe Rebeccæ, quam trāsferunt tolerantiam. Dicitur autem Iacob congredi cum pluribus, vt qui exponatur exercitator. fiunt autem exercitationes per plura & differentia dogmata. Vnde hîc etiam nominatur Israël, qui reuera est vi perspiciendi præditus, vt qui sit multarum rerum peritus, & ad exercendum accommodatus. Fuerit etiam aliquid aliud quod significatur per tres illos priores patres, nempe esse firmū ac validum cognitionis signaculum, quod constat ex natura, & doctrina, & exercitatione. Habueris autem etiam aliam eorum quæ dicta sunt similitudinem, Thamar quæ sedit in triuio, & visa est esse meretrix, quam studiosius Iudas (exponitur autem potens, qui nihil relinquit quod non consideret ac scrutetur) considerauit, & ad eam declinauit, seruans eam quam habuit in Deum confessionem. Vnde etiam Abraham, cùm Sara æmularetur Agar, quę erat in maiori quàm ipsa existimatione, vt qui secularis Philosophię solùm id quod est vtile elegisset, Ecce, inquit, ancilla in manibus tuis, vtere ea vt lubet. Quasi diceret: Secularem quidem amplector doctrinam, & vt iuniorē, & vt conseruam: scientiam autem tuam, vt perfectam dominam, honoro & colo. Et afflixit eam Sara, quod perinde est ac correxit & admonuit. Rectè itaque dictum est: Noli negligere disciplinam Domini, neque defatigeris cùm ab eo argueris. Quem enim diligit Dominus, castigat: flagellat autem omnem filium quem recipit. Ac prædictę *Gen.32. Ibidem 32. Ibidem 38. Gen.16. & 21. Prouer.3. Heb.12.*

quidem scripturæ in alijs locis examinatæ, alia mysteria adesse significant. Hinc ergo dicimus Philosophiam nuda ratione habere inquisitionem veritatis & naturæ eorum quæ sunt. Hæc autem est veritas de qua ipse dixit Dominus, Ego sum veritas. & rursus, Disciplinam quæ præcedit eam quæ est in Christo quietem, exercere mentem & excitare intelligentiam, generando ingenij acumen aptum ad inquirendum per veram Philosophiam, quam inuentam vel potius acceptam Mystę habent ab ipsa veritate. Multùm autem confert promptitudo, ad videndum ea quæ oportet per exercitationem: mentis autem fuerint exercitatio ea quæ mente possunt percipi. Triplex autem eorum natura, quæ in quantis continuis, & quantis discretis, & ijs quæ sunt dicenda, consideratur. Quæ enim ex demonstrationibus conficitur oratio, perfectam animę fidem facit eius quod consequitur, vt non putet id quod demonstratum est aliter se habere: nec sinit vt ijs succumbat quæ nobis per fraudem incurrunt. In his ergo disciplinis à sensilibus expurgatur & excitatur anima, vt possit veritatem perspicere. Educatio enim, & bona quæ seruatur eruditio, bonas efficit naturas: & bonæ naturæ talem suscipientes disciplinam, fiunt adhuc prioribus meliores, cùm ad alia, tum ad gignendum, quemadmodum in alijs animalibus. Vnde etiam dicit: Vade ad formicam ô piger, & efficere illa sapientior, quæ multum & omnis generis nutrimẽtum recondit tempore messis aduersus minas hyemis. aut: Vade ad apem, & disce eam esse opificem. Ipsa enim omne pratum depascẽs, vnum fauum generat. Si autem oras in cella penuaria, sicut docuit Dominus adorare spiritu, non vtique in sola domo versabitur œconomia, sed etiam in anima, quænam sint ei tribuenda, & quemadmodum, & quantum, & quænam sint reponenda, & in ipsam recondenda, & quando ea afferenda, & apud quos. Non enim natura, sed disciplina viri boni & honesti fiunt, quemadmodum medici & gubernatores. Omnes itaque communiter videmus vitem & equum, sed sciet quidem agricola, vitisne ad ferendum fructum bona sit an mala: & qui equorum habet cognitionem, facilè discernit ignauum vel celerem. Alios autem esse alijs natura ad virtutem aptiores, ostendunt quidem quædam studia eorum qui sunt alijs natura aptiores: nullam autem ex virtute perfectionem arguunt eorum qui sunt meliori natura, cùm etiã qui natura minimè apti sunt ad virtutem, eam quam par est assecuti disciplinam, vel ad omne genus probitatis & honestatis peruenerint: & contrà, qui natura apti erãt ad virtutem, euaserint mali negligentia & incuria. Nos rursus natura ad societatem & communicationem aptos iustosq; Deus fabricatus est. Vnde nec iustum ex sola impositione oriri dicendum est: ex præcepto autem bonum opificij excitari intelligẽdum est, cùm ex disciplina didicerit anima velle bonum eligere. Sed quemadmodum vel sine literis fidelem posse esse dicimus, ita quæ in fide dicuntur posse intelligere eum qui non didicit confitemur. Quæ enim bene dicuntur admittere, aliena autem non admittere, non sola fides, sed quæ circa disciplinam versatur, fides efficit. Quòd si ignorantia, imperitia simul & inscitia, rerum diuinarum & humanarũ scientiam æquè affert ac doctrina: at quemadmodum in vitæ paupertate licet rectè viuere, ita etiam licet in abundantia: & facilius simul & celerius cum præcedentibus disciplinis liberalibus posse aliquem virtutem venari confitemur, quæ tamen non est eiusmodi vt sine ijs capi non possit, sed tunc quoque ab ijs qui didicerunt, & sensus habent exercitatos. Odium enim, inquit Solomon, excitat cõtentio. Vias autẽ vitæ custodit disciplina, vt non decipiamur, neque circumueniamur ab ijs qui ad auditorum perniciem improbam artem exercuerũt. Disciplina vagatur, inquit, inconfutabilis. Oportet autem arguendi & refellendi genus persequi, vt Sophistarum fallaces repellantur opiniones. Rectè profectò ac diuinè Anaxarchus scribit in libro de Regno: Multa ac varia doctrina multùm quidem iuuat, multùm autem lædit eum qui eam possidet. Iuuat quidem eum qui dignus est, lædit autem eum qui quiduis dicit vel in vniuerso populo. Oportet autem scire mensuram temporis. Hic est autem finis sapientiæ. Quicunq; autem canunt pro foribus, etiamsi quid doctũ cecinerint, non reputati sapientes opinionem subeunt stultitiæ. Et Hesiodus:

*Musarum, reddunt hominem quæ multa loquentem*
*Diuinum, uocalem.*

In verbis enim copiosum dicit multa loquentem, acrem autem ac vehementem, vocalem, & diuinum, eum qui est peritus, & Philosophus, & sciens veritatis. Apparet itaque priores illas liberales Græcorum disciplinas vnà cum ipsa Philosophia venire diuinitus ad homines, non principaliter, sed quemadmodum imbres erumpunt

Marginal notes: A; *Ioan. 14.*; *Prouer. 6.*; *Eccles. 11.*; ταμιῶν.; *Ioan. 4.*; B; ἁπλῶς.; C; περιουσίᾳ.; *Prouer. 11.*; πολυμαθίη.; πολυφράδμοντα, αὐδήεντα, θεῖον.

A punt in terram bonam,& in fimum,& super domos. Similiter autem germinat & herba & frumentum,& nascitur etiam ficus in monimentis, & si qua est arbor impudentior.Et quæ nascuntur, emergunt in figura eorum quæ vera sunt, quoniam eandem pluuiæ virtutem sunt assecuta,sed non eandem habuere gratiam quam ea quæ in solo pingui nata sunt,vt quæ vel arefacta vel euulsa fuerint.Porrò autem hîc quoque est vtilis parabola sementis,quam Dominus est interpretatus. Vnus enim *Matth.13.* est agricola terræ quæ est in hominibus,qui ex alto seminat à constitutione mundi *Mar.4.* alentia semina,qui vnoquoque tempore verbum principale impluit,tempora autẽ & loca quæ susceperunt,genuere differentiam. Et alioqui agricola non solum frumentum,etsi eius quoq; sunt plures differentiæ,sed etiam alia semina seminat,hordeum,fabas,pisa,cicer,& semina quæ olera in hortis producunt,& flores. Eiusdem *ὄσπρ.* est autem agriculturæ,& plantandi officium,& operandi, quæcunq; pertinent ad *κηπευόμενα καὶ* ipsa plantaria,hortos,& pomaria,& in summa,ad omnis generis arbores producẽdas & alendas. *ἀνθευτικὰ σπέρματα.* Similiter autem non sola ars pascendarum ouium, sed & boũ equorumq; & canum alendorum & curandarum apum artes omnes, & vt semel dicam, quæ in curandis gregibus animalibusq; nutriendis versantur, inter se quidem differunt eo quod est magis & minus:sed sunt omnes vitæ vtiles. Philosophiam autem non dico Stoicam,nec Platonicam,aut Epicuream,& Aristotelicam, sed quæcunq; ab his sectis rectè dicta sunt,quæ docent iustitiam cum pia scientia,hoc totum selectum,dico Philosophiam:quæcunq; autem ex humanis amputata cogitatis adulterarunt,ea nunquã diuina dixerim.

B Iam verò illud quoq; consideremus, quòd si quãdo rectè viuunt qui nesciunt benefacere,áccidit enim vt benefaciant: nonulli autẽ per intelligentiam ad veritatis verbum feruntur tanquam ad scopum: Abrahã autẽ non ex operibus iustificatus est,sed ex fide:nihil ergo eis post vitæ finem proderit, etiam si nunc rectè operentur,nisi fidem habeant.Propterea enim Græca voce expositæ sunt scripturæ,vt nullum vnquam ignorantiæ possint prætextum afferre, cùm possint quæ sunt apud nos audire,si tantùm voluerint.Aliter dicit aliquis de veritate,aliter veritas seipsam interpretatur.Aliud est veritatis cóiectura, & aliud veritas, aliud similitudo,aliud idipsum quod est.Et altera quidem accedit disciplina & exercitatione,altera verò potestate & fide. Est enim donum doctrina pietatis, gratia verò fides.Facientes enim Dei voluntatem,voluntatem cognoscimus. Aperite er- *Psal.117.* go,inquit Scriptura,portas iustitiæ,vt in eas ingressus confitear Domino. Sed viæ quidem ad iustitiam,cùm Deus seruet multis modis,est enim bonus, sunt multæ & variæ,& ferentes ad viam Dominicã & portam. Quòd si viam regiam & ingressum quæris valida authoritate munitũ,audies: Hæc est porta Domini, iusti intrabũt in eam.Cùm ergo multæ apertæ sint portæ in iustitia,hęc fuit in Christo, in quam beati omnes qui intrarunt,& iter suum direxerunt in sanctitate cognoscendi potestate *γνωστικῇ.* prædita.Iam Clemens in epistola ad Corinthios,his verbis inquit, exponens differentiam eorum qui sunt probati in ecclesia:Sit aliquis fidelis,sit potens in explicanda cognitione,sit sapiens in discretione sermonum, sit stupendus in operibus. Ars autem Sophistica,quam sectati sunt Græci tanquam rem præclaram & magni faci- *γοργός.*

C endam,est potestas phantastica,seu quæ visione percipitur,verbis falsas opiniones *ἐζήλωσαν.* tanquam veras ingenerans.Prębet enim ad persuadendum quidem dicendi artem, ad cõtendendum verò,litigandi ac decertandi. *ἐριστικήν.* Artes ergo,si non fuerint cum Philosophia,fuerint cuilibet exitiales.Apertè itaq; Plato malam artem appellauit Sophisticam,& eum sequens Aristoteles,eam quandam furandi artem pronũciat, vt quæ totum sapientiæ officium probabiliter auferat,& profiteatur sapientiam in qua nõ est versata,nec in eam studium posuit.Vt paucis autem dicam: quemadmodum artis quidem dicendi principium,est id quod est probabile:officium verò, argumentum:& finis,persuasio:ita litigandi ac concertandi artis principium est id quod visum fuerit:officium verò,cõtentio:& finis,victoria. Eodem enim modo Sophisticæ quoque artis principium quidem est id quod apparet,officium verò duplex, vnum quidem ex arte dicendi,quod cernitur perpetua oratione rem persequens:alterum verò ex Dialectica,interrogans:eius verò finis est obstupefactio & deductio ad ad- *διεξοδικήν.* mirationem. *ἔκπληξις.* Et quæ rursus in scholis vulgò iactatur Dialectica,ostenditur Philosophi esse exercitatio in eo quod est opinabile,contradicendi facultatis gratia. Meritò ergo egregius Apostolus superuacaneas has artes dictionum vilipendẽs: Si quis *1.Tim.6.* non accedit,inquit,ad sanos sermones,doctrina autem aliqua est inflatus, nihil sciens,sed laborans circa quæstiones & pugnas verborum, ex quibus fit lis, inuidia,

διαπαρατριβαί. maledictum, suspiciones malę, concertationes hominũ mente corruptorũ, & priua A
torũ veritate. Vides quomodo in eos inuectus sit, Logicã, id est, quæ in sermone ver
satur, eorum artẽ morbum appellans, propter quam se efferunt, & magnificè circun
spiciunt quibus cordi est hæc ars garrula & improba, siue sint Græci, siue etiam bar
bari Sophistæ. Pulcherrimè ergo dicit Tragicus Euripides in Phœnissis:

*Iniqua uerò oratio*
*In se ægra, pharmacis eget sapientibus.*

Sanus enim dictus est sermo salutaris, cùm ipse sit veritas: & id quod sanũ est sem
per, manet immortale. Quę est autem ab eo quod est sanum & diuinum secretio, est
ψυχαγωγεῖ. impietas & letalis affectio. Hi sunt lupi rapaces tecti pellibus ouium, plagiarij, & di
serti animarum abigei, qui clàm quidem furantur: sed fures esse conuincuntur, qui
& dolo & vi nos conãtur superare, qui non delectamur superuacaneis, vtpote quòd
minus eis in dicendo valeamus.

*Vir impeditus sæpe linguæ infantia,*
*Cùm iusta dixit, at diserto habet minus.*
*Quin ore quod bellè fluit, uerißima*
*Surripiunt, appareant ut quæ haud decet,*

inquit Tragœdia. Tales autem sunt litigiosi isti, siue sectas sectẽtur, siue artes nescio
ματαιότητα, lego σπάρτια. quas exerceant dialecticas. Isti sunt qui funiculos trahunt, inquit Scriptura, & nihil
κυβείαν texunt, inanem laborem plurimi facientes, quem imposturam & astutiam ipse vo-
Tit. 1. cauit Apostolus, aptam ad erroris insidias. Sunt enim, inquit, multi inobedientes, B
φρεναπατῶντες vaniloqui, mentem decipientes. Non omnibus ergo dictum est, Vos estis sal terræ.
Matth. 6. Sunt enim aliqui etiam ex ijs qui verbum audiunt, marinis piscibus similes, qui cũ
ab ipso ortu in salso nutriantur, salibus tamen ad condiendum indigent. Ego itaq;
vel lubentissimè admitto tragœdiam quæ dicit: O fili, rectè etiam dici possunt fal-
sæ orationes, specie autem verborum verum vicerint. Sed non est hoc perfectissi-
mum verum natura & factum. Quisquis autem fuerit lingua quidem sapiens, res ta
men semper existimo esse verbis præstantiores. Multis ergo placere minimè est ex-
petendum. Quæ enim sunt illis iucunda, nos non exercemus. Quæ nos autem sci-
Gal. 5. mus, procul sunt ab illorum affectione. Ne simus, inquit Apostolus, inanis glorię cu
pidi, nos inuicem prouocantes, inuicem inuidentes. Sic itaque veri amator Plato,
veluti à Deo incitatus dicit: Ego, inquit, sum eiusmodi vt nulli alij credam nisi ratio
ni, quæ mihi consideranti optima visa fuerit. Eos ergo reprehendit qui absque men
te & scientia credunt opinionibus, vtpote quòd nõ oporteat relicta recta & sana ra-
tione, ei credere quæ est falsi particeps. A veritate enim aberrasse malum est. Vera
autem dicere, & ea quę sunt opinari, bonum. Bonis autem inuiti quidem priuantur
homines: priuantur tamen, vel circumuenti, vel præstigijs decepti, vel coacti, &
cùm non crediderint. Atque qui credidit quidem, sua sponte capitur: circumueni-
tur autem qui in contrariam persuasionem traducitur, oblitus quòd alia quidem
tempus, alia verò ratio aufert imprudenti. Cogit autem sæpe dolor, & angor, & rur-
sus contentio, & ira, postquam suscepta fuerit opinio. Postremò autem præstigijs C
decipiuntur, qui vel à voluptate sunt inducti, vel timore perterriti. Sunt autem mu-
tationes omnes voluntariæ. Atque nihil quidem eorum vnquam acceperit scien-
tia. Nonnulli autem qui se putant esse ingeniosos, nec Philosophiam attingere vo-
lunt, nec Dialecticam, sed nec contemplationẽ discere naturalem, sed solam & nu-
dam fidem requirunt, perinde ac si cùm nullam vitis curam gesserint, velint ab ini-
Ioan. 15. tio statim botros accipere. Dicitur autem Dominus vitis allegoricè, à quo cum dili
gentia, & agri colendi arte, quæ fit ratione ac sermone, fructus est vindemiandus.
Putare oportet, fodere, ligare, & reliqua facere. Falce, vt sentio, & ligone, & alijs ru-
sticis instrumentis ad vitis curam opus est, vt nobis fructum producat esculentum.
Quemadmodum autem in agricultura, ita etiam in medicina, ille vtiliter didicit
χρηστομαθής. qui varias attigit disciplinas, vt possit melius colere & curare. Ita hîc etiam eum be
ne & vtiliter eruditum existimo, qui omnia refert ad veritatem, adeò vt ex Geome-
tria & Musica & ex Grammatica & ipsa Philosophia colligens quod est vtile, nullis
insidijs interceptam seruet fidem. Porrò autem athleta, vt prius dictum est, cõtem-
nitur, qui se non prius instruxit ad certamen. Iam verò gubernatorem quoque
laudamus qui multarum rerum habet experientiam, qui mores nouit multorum
hominum, & medicum qui multa est expertus, qua ratione effingunt etiam em-
piricum. Qui autem singula refert ad rectam vitam, exempla afferens ex Græcis
&

A & ex barbaris, is valde peritus veritatis inuestigator, & multi reuera consilij, instar
lapidis Indicis (is est autem Lydius) creditur posse discernere aurum adulterinum
à probo, & aptus esse ad separandum is qui ex nobis habet multam rerum experi-
entiam & cognitionem, Sophisticam quidem à Philosophia, ornatricem autem à κομμωτικῶ.
gymnastica, & culinariam à medicina, & dicendi artem à Dialectica, quinetiam a-
lias hæreses quæ sunt in barbara Philosophia ab ipsa veritate. Quomodo autem nō
necesse est vt de ijs quæ intelligentia percipiuntur, tractet philosophando, qui Dei ἐπίβολον γενέ-
velit potētiam attingere? Quomodo autem non est etiam vtile diuidere voces quæ σθαι
sunt ancipites, & quæ in testamentis efferuntur æquiuocè? Ex amphibolia enim σοφίζεται
Dominus sapienter eludit diabolum in tempore tentationis. Nec ego hîc vtiq; vi- Matth. 4.
deo, quonam modo Philosophiæ & Dialecticæ inuentor, vt quidam existimant, in-
dúcitur deceptus tropo amphiboliæ. Si autem Prophetæ & Apostoli artes non no-
rant, per quas ostenduntur exercitationes quę sunt in Philosophia: at mens prophe
tici & docentis spiritus occultè loquens, propterea quòd non sint aures omnium
intelligentes, artificiosas doctrinas exigit ad explicationem. Securè enim noue-
runt illarum sensum Prophetæ & spiritus discipuli. Ex fide enim & quàm dici non
potest facilè, dixit spiritus, sed non tam facilè percipere possunt ij qui non didice-
runt. Præcepta autem, inquit, scribe dupliciter, nempe voluntate & cognitione re-
spondendi verba veritatis ijs qui tibi proponunt. Quænam est autem responden-
di, vel quæ etiam interrogandi scientia? Fuerit autem hæc dialectica. Quid verò, an
B non factum quoque est dicere? & facere ex verbo fit seu ratione? Si non enim verbo λόγῳ.
seu ratione agamus, citra rationem fecerimus. Opus autem rationale ex Deo effici- Ioan. 1.
tur. Et nihil sine ipso factum est, inquit: Verbo, inquam, Deo seu ratione. An non e-
tiam Dominus omnia fecit verbo seu ratione? Operantur autem etiam iumenta a- ὀρθοδοξασταὶ.
cta cogente metu. Num etiam qui vocantur Orthodoxi, bona opera aggrediuntur, Matth. 26.
nescientes quę faciunt? Propterea ergo Seruator cùm panem accepisset, primùm lo 1. Cor. 11.
cutus est, & egit gratias: deinde cùm panem fregisset apposuit, vt comedamus ex λογικῶς.
ratione, & cùm scripturas agnouerimus, vitam instituamus per obedientiam. Quē-
admodum autem qui mala vtuntur oratione, nihil differunt ab ijs qui malo facto
vtuntur: calumnia enim est ministra gladij, & affert dolorem maledictum: ex qui-
bus est vitæ euersio, hæc autem fuerint opera improbæ orationis: ita etiam qui bo-
na vtuntur oratione, propè accedunt ad eos qui bonis factis vtuntur. Recreat ita-
que animam oratio, & adhortatur ad honestatem. Beatus est autem qui pro dextra
vtraque manu vtitur. Neque ergo qui bene potest facere, est maledictis incessen-
dus ab eo qui bene potest dicere: neque est vituperandus qui bene potest dicere,
ab eo qui bene facere potest. Faciat autem vterque id quod ei à natura est insitum.
Quod autem alter factum ostendit, hoc alter loquitur, beneficentiæ veluti viam
præparans, & deducens auditores vt bene operentur. Est enim etiam salutaris ora-
tio, sicut opus salutare. Atque iustitia quidem certè non consistit absque oratione.
Quemadmodum autem beneficio affici tollitur, si auferamus bene facere: ita tolli-
C tur obedientia & fides, si nec præceptum, nec qui est ipsum explicaturus, simul assu
muntur. Nunc autem altero alterius gratia, & verbis & factis abundamus. Ars autē
contentiosa & Sophistica est penitus repudianda, quandoquidem ipsæ Sophista-
rum dictiones non solùm multorum oculos præstringunt & eos seducunt, sed nō-
nunquam etiam vim afferentes, Cadmeam referunt victoriam. Est enim longè ve- Psal. 48.
rissimus ille Psalmus: Iustus viuet in finem, quoniam non videbit interitum, quan-
do viderit sapientes morientes. Quosnam autē dicit sapientes, audi ex Iesu sapien-
tia: Non est sapientia improbitatis scientia. Eam autem dicit quam excogitarunt ar
tes quæ in dicendo & disserendo versantur. Quæres ergo apud malos sapientiam, Prouerb. 16.
& non inuenies. Et si rursus roges quænam ea est: Os iusti, inquit, distillabit tibi sa-
pientiam. Dicitur autē ars Sophistica æquiuocè cum veritate sapientia. Meum au- λόγῳ.
tem est probabile, vt existimo, institutum, verbo quidem ac ratione conuenienter
viuere, ea autem quæ significantur intelligere: eloquentiam autem nunquam ma-
gnifacientem, contentū esse si significetur id quod intelligitur. Quo aūt nomine si-
gnificetur id quod volo exponere, nihil mihi curæ est. Opē enim ferre vt seruētur ij
qui seruari cupiunt, puto esse optimū, non autē dictiunculas tanquā quædam orna
menta cōponere. Et si caueris, inquit Pythagoreus in Platonis Politico, ne sis de no τὰ κόσμια.
minibus nimiū solicitus, prudentia locupletior apparebis in senectute. Et rursus in
uenies in Theæteto; Nominum autem & verborum facilitas, & non nimis accura-

ta examinatio, vt plurimum non est sordida & illiberalis, sed eius potius contrarium: est autem nonnunquam etiam necessaria. Hęc quàm fieri potest breuissimè scriptura enunciauit, dicens: Ne multum verseris in verbis. Dictio enim est tanquã vestis in corpore: res aũt sunt carnes & nerui. Non oportet ergo maiorem vestis quàm salutis corporis curam gerere. Non solùm enim frugalis vitæ ratio, sed etiam à superuacaneo cultu ornatuq; aliena oratio, exercenda est ei qui veram vitam elegit: siquidem delitias vt dolosas & luxuriosas repudiamus, sicut vnguentum & purpuram veteres Lacedæmonij, dolosas quidem vestes, & dolosas vnctiones rectè reputantes & nominantes, quoniam nec honestus est ille cibi apparatus qui plura habet condimenta quàm ea quæ nutriunt: nec est bellus vrbanúsve orationis vsus, qui auditores magis potest delectare quàm iuuare. Musas existimare Sirenibus iucundiores admonet Pythagoras, docens non cum voluptate exercere sapientias, arguens autem deceptricem aliam animi oblectationem. Qui nauigando præteruectus est Sirenas, vnus sufficit: & qui Sphingi respondit, vnus alius, atque adeò si vultis, nullus. Non oportet ergo vnquam dilatare phylacteria vanam ambiendo & magni faciendo gloriam. Sufficit autem ei qui cognoscendi est potestate præditus, si ei vel vnus inuentus sit auditor. Potest itaque audiri Pindarus scribens Bœotius: Non apud omnes licet veterem aperire orationem, præterquam fidelissimis silentij vijs. Stimulus autem pugnæ est dominans oratio. Admodum ergo rectè nos vehementer admonet beatus Apostolus, ne verbis contendamus propter nihil vtile ad euersionem auditorum: prophanas autem vocum nouitates vitemus, ad plurimũ enim proficiunt impietatis, & sermo eorum serpit vt cancer. Hæc ergo sapientia mundi, stultitia est apud Deum. Et horum sapientum cognoscit Deus cogitationes quòd vanæ sunt. Nemo ergo glorietur humana præcellens cogitatione. Rectè enim scriptum est in Hieremia: Ne glorietur sapiens in sapientia sua, & ne glorietur fortis in fortitudine sua, & ne glorietur diues in diuitijs suis: sed in hoc glorietur qui gloriatur, quòd intelligat & cognoscat, quòd ego sum Deus faciens misericordiam & iudicium & iustitiam super terram: quoniam in his est voluntas mea, dicit Dominus. Ne confidamus in nobis ipsis, sed in Deo qui suscitat mortuos, inquit Apostolus: qui ex tanta morte nos eripuit, vt fides nostra non sit in sapientia hominum, sed in virtute Dei. Spiritalis enim dijudicat omnia, ipse autem à nullo dijudicatur. Illa quoque eius audio: Hæc autem dico ne quis vos decipiat in probabilitate sermonis, neque subingrediatur qui deprædatur. Et rursus: Videte ne quis sit qui vos seducat per Philosophiam & inanem deceptionem, secundum traditionem hominum, secundum elementa mundi, & non secundum Christum. Philosophiam quidem non omnem, sed Epicuream, cuius etiam meminit Paulus in Actibus Apostolorum, reprehendens, quæ tollit prouidentiam, & in Deorum numerum refert voluptatem, & si qua alia honore affecit elementa, quæ eis non constituens causam efficientem, ne visione quidem apprehendit opificem. Quinetiam Stoici, quorum ipse quoque meminit, non rectè dicunt, Deum, cùm sit corpus, vilissimam peruasisse materiam. Traditionem autem humanam, canoras dicit nugas quæ versantur in oratione. Quamobrem illa quoque scribit: Iuniores fugite quæstiones: sunt enim pueriles huiusmodi contentiones. Virtus autem non tenetur amore iuuenum, inquit Plato philosophus: & certamen nostrum, vt vult Gorgias Leontinus, duabus opus habet virtutibus, audacia & sapientia: audacia quidem, vt adeat periculum: sapientia autem, vt discernat ænigma. Verbum enim quemadmodum in Olympia præconium, vocat quidem eum qui vult, sed coronat eum qui potest esse inuictus, quoniam reuera Verbum non vult ociosum esse eum qui credidit. Quærite enim, inquit, & inuenietis: sed inquisitionem terminat inuentione, recẽtibus nugis exterminatis, inserta autem cõtemplatione quæ nostram fidem confirmat. Hoc autem dico ne quis vos decipiat in probabilitate sermonis, ait Apostolus, vt qui, quæ ab eis dicuntur, discernere scilicet didiceritis, & ijs quæ obijciuntur occurrere docti sitis. Sicut ergo accepistis Iesum Christum dominum, in eo ambulate radicati & superædificati in ipso, & confirmati in fide. Est autem persuasio fidei confirmatio. Videte ne quis sit qui vos abducat ab fide in Christum per philosophiam & inanem deceptionem, quæ tollit prouidentiam secundum traditionem hominum. Quę est enim secundum traditionem diuinam philosophia, constituit & confirmat prouidentiam, qua sublata videtur fabula Seruatoris œconomia, cùm nos secundum elementa huius mundi, & non secundum Christum feramur. Quæ est enim

Christo

Marginalia: μὴ πολὺς γίνε. — ψυχαγωγίαν. — 2.Tim.2. — 1.Cor.3. — Hier.9. — 1.Cor.2. — Col.2. — πιθανολογία λογικῶν. — Matth.7. — Col.2. — A — B — C

A Christo consentanea doctrina,& opificem Deum esse asserit, & deducit prouidentiam vsq; ad singularia, & talem elementorum nouit esse naturam, vt in eam cadat ortus & mutatio, eaq; docet à Deo regi ad hoc vt vim assimilantem ac dispensantem habeant, adeò vt mens principalis omnem præcedat doctrinam. Elementa autem colunt, Diogenes quidem aërem, Thales verò aquam, Hippasus verò ignem & qui principia ponunt indiuidua, philosophiæ nomen suscipientes, impij quidã homunculi & voluptati dediti. Propterea oro, inquit, vt dilectio vestra adhuc magis & magis abundet in agnitione & omni sensu, ad hoc vt vos probetis quæ sunt potiora. Nam quando eramus, inquit Apostolus, paruuli, sub elementis huius mundi eramus seruientes. Paruulus autem etiam si sit hæres, nihil differt à seruo vsq; ad præfinitum tempus patris. Paruuli ergo sunt etiam Philosophi, nisi à Christo viri fiant. Si enim non futurus sit hæres cum filio liberæ, at est quidem certè semẽ Abrahæ, quod non ex promissione donum suscepit proprium. Perfectorum autem est solidus cibus, qui propter habitum habent sensus exercitatos ad discretionem boni & mali. Quisquis enim est lactis particeps, non est peritus sermonis iustitiæ, cùm sit paruulus, & nondum sciat verbum per quod credidit & operatur, nec possit in ipso reddere rationem. Omnia autem probate, inquit Apostolus, & quod bonum est tenete. Spiritalibus dicens, qui omnia quæ dicuntur ex veritate dijudicant, vtrùm videantur, an sic veritati cohæreant. Inconfutabilis autem vagatur disciplina, & plagæ & reprehensiones dant disciplinam sapientiæ, reprehensiones scilicet quæ sunt cum

B dilectione. Cor enim rectum exquirit cognitionem, quoniam qui quærit Deum, cognitionem inuenit cum iustitia. Qui ipsam autem rectè quæsierunt, pacem inuenerunt. Et cognoscam nõ sermonem eorum qui inflati sunt, sed virtutem: eos qui sunt opinione sapientes, & se quidem esse putant, non autem sunt sapientes, impetens hæc scribit: Non enim est in sermone regnum Dei. Non inquam in eo qui non est verus, sed opinione probabilis. In virtute autem dixit, seu potentia: sola enim est potens veritas. Et rursus: Si quis putat se nosse aliquid, nondum nouit sicut nosse oportet. Nunquam est enim veritas opinio. Sed cognitionis quidem opinio inflat & fastu replet, charitas autem ædificat, quæ non in opinione versatur, sed veritate. Vnde si quis diligit, is cognitus est, inquit. Quoniam autem nõ sola traditio est publica ei qui sensit sermonis magnificentiam, occultanda est sapientia quæ dicta est in mysterio, quam docuit Dei filius. Iam enim Esaias quoq; Propheta igne linguam purgatur, vt possit dicere visionem: & nec linguam solùm, sed etiam aures castas nobis habere cõuenit, si conemur fieri veritatis participes. Hæc mihi erant impedimẽto quo minus scriberẽ, & nũc adhuc vereor, vt ait, ante porcos iácere margaritas, ne eas cõculcent pedibus, & cõuersi nos frangant. Est enim difficile de vero lumine verè puros & perspicuos ostendere sermones suillis & indoctis auditoribus. His enim vix possunt apud vulgus vlla magis audiri ridicula: rursus autem apud ingeniosos magis admirabilia & Deũ magis inspirantia. Animalis autẽ homo nõ suscipit ea quæ sunt spiritus Dei: sunt enim ei stultitia. Sapientes autẽ ore nõ proferunt quæ in con

C fessu cogitant. Sed quod auditis, inquit Dominus, in aurẽ, prædicate super tecta, arcanas traditiones veræ cognitionis, quæ excelse & excellenter explicantur, iubens suscipere, & sicut in aurẽ audiuimus, ita etiam tradere quibus oportet, nõ autẽ omnibus passim tradere quæ eis in parabolis dicta erant, præcipiens. Sed reuera commentariorũ monimentorúmve descriptio, sunt quæcunq; sparsim habent seminatã hîc & illic veritatẽ, vt eos lateant qui more graculorũ passim ac temerè verba serũt. Postq̃ autẽ agricolam bonũ nacta fuerint, producet vnũquodq; ex ijs & edet frumẽtũ. Cùm vna sit itaq; veritas (habet enim innumerabilia falsum diuerticula, quẽadmodũ Bacchæ quæ Penthei membra diuellerũt ac distulerũt) Philosophiæ tã barbaræ q̃ Græcæ hæreses, vnaquæq; id quod sortita est, tanq̃ totã iactat veritatem. Lucis autẽ, vt opinor, exortu omnia illuminantur. Vniuersi ergo Græci ac barbari quicunque veritatẽ desiderarunt, alij quidem non paucas, alij verò partẽ aliquam, si modò vllam, veritatis Verbi habere ostendi possunt. Atq; seculum quidem, temporis futurum & præsens, quinetiã præteritũ, instar momenti constituunt. Sed multò est potentior seculi veritas ad propria colligenda semina, etiamsi in terrã alienam ceciderint. Permulta enim inuenimus ex his quæ opinione recepta sunt, apud hæreses, quæ nõ sunt omnino absurdæ, nec excĩsam habẽt naturalem consequentiã, *vt quę tanquã virum fœminæ Christum exciderint, etiam si certũ sit & extra controuersiã eas esse dissimiles genere & tota veritate. Aut enim vt membrum, aut vt species, aut

ἡγεμονικόν.
Phil. 1.
Gal. 3.
1. Thess. 2.
1. Cor. 4.
ἐπιρραπίζων.
1. Cor. 8.
Matth. 7.
ἐνθουσιαστικώτερα.
1. Cor. 2.
Matth. 10.
ὑπομνήματα
σπερμολόγοι
ἀκαρής
* καθάπερ τὸν ἄνδρα αἱ γυναικωνῖτιδες ἀποκεκομμέναι τὸ γένος.

vt genus in vnum colligitur. Iam enim hypate quoq; cùm sit Nete contraria, est tamen vna harmonia, & numerus par differt ab impari: in Arithmetica tamen ambo conueniunt, quemadmodum figura circulus, & triangulus, & quadratus, & quæcúque aliæ figuræ inter se differunt. Quinetiam in mundo vniuerso partes omnes, etiam si inter se differant, seruant eam quæ est cum toto coniunctionem & conuenientiam. Sic ergo & barbara & Græca Philosophia, æternæ veritatis auulsam quandam particulam, non è Bacchi mythologia, sed ex verbi quod semper est Theologia decerpsit. Qui autem diuisa rursus composuerit, & perfectum verbum vnum fecerit, scias futurum vt veritatem citra periculum contempletur. Scriptum est itaque A.

Eccle.1. in Ecclesiaste: Et adieci sapientiam super omnes qui fuerunt ante me in Hierusalē, & cor meum vidit multa, sapientiam & cognitionem, parabolas & scientiam noui

περιέργοις præterea. Et hoc quidem est electio spiritus, quoniam in multitudine sapientiæ est multitudo cognitionis. Qui est autem omnis generis sapientia præditus, is propriè

γνωστικὸς fuerit virtutem cognoscendi assecutus. Iam verò scriptum est: Abundantia cognitionis sapientiæ, viuificabit eum qui est ex ipsa. Et rursus apertius confirmat ea quæ di-

ἐνώπια cta sunt hoc dictum: Sunt omnia in conspectu eorum qui intelligunt. Omnia autē,

Prouer.7. sunt Græca & barbara. Alterutra autem non sunt vtiq; omnia. In conspectu autem

ὀρθὰ habet exemplar Græcum, sed puto legendum ἐνώπια. ἐκ ὅτιν ἄξιον αὐτῇ

sunt ijs qui sensum volunt accipere. Eligite disciplinam, & non argentum, & cognitionem super aurū probatum. Eligite autē sensum quoq; plus quàm aurū purū: melior est enim sapientia lapidibus preciosis. Quicquid autē est preciosum, nō est precio cum ea conferendum. Dicunt autē Græci post Orpheum & Linū, & poëtas qui B apud eos fuerunt antiquissimi, in admiratione fuisse habitos propter sapientiā, primos septem qui cognominati fuerunt sapientes, quorum quatuor quidem fuerunt ex Asia, Thales Milesius, & Bias Prienus, & Pittacus Mitylenæus, & Cleobulus Lindius: duo autem ex Europa, Solon Atheniensis, & Chilo Lacedæmonius: septimum autē alij quidem dicunt esse Periandrū Corinthium, alij verò Anacharsim Scytham, alij verò Epimenidem Cretensem, quē Græcum Prophetā nouit Paulus, cuius etiā

Cap.1. meminit in epistola ad Titum sic dicens: Dixit quidam ex ipsis proprius Propheta, Cretenses semper mendaces, malæ bestiæ, ventres pigri. Et testimoniū hoc verum est. Vides quomodo etiam in Græcorū prophetis dat aliquid veritatis. Nec erube-

ἐντρέπω scit, & ad ædificationem, & ad aliquorū quam gerit curam disserens, vti Græcis poëmatibus. Itaq; ad Corinthios (non enim hîc solū) disserens de resurrectione mortuo-

1.Cor.15. rum, tragico iambo vsus est, dicens: Quid mihi prodest si mortui nō resurgunt? Man-

φθείρουσιν ἤθη χρηστὰ ὁμιλίαι κακαί.

ducemus & bibamus, cras enim moriemur. Nolite seduci, corrumpunt bonos mores colloquia praua. Alij autem Acusilaum Argiuum in septem sapientum numerū retulerunt: alij autē Pherecydē Syrum. Plato autem pro Periandro vt sapientia indigno, propterea quòd fuerit tyrannus, ponit Mysonē Cheneum. Et quòd longè quidem infra Mosis ætatem fuerint Græcorum sapientes, ostendetur paulò pòst. Quòd autem modus eius quæ fuit apud eos Philosophiæ fuerit Hebraicus & ænigmaticus, iam considerandum est. Breuitatem itaq; amplectebātur quæ est admonitoria, & quæ vtilissima. Iam Plato hunc modum dicit studiose ac diligenter fuisse cōsectatos, communiter quidem omnes Græcos, præcipuè autem Lacedæmonios & Cre- C tenses, qui optimis legibus vtebantur. Atque illud quidem, Nosce teipsum, alij quidem existimarunt Chilonis: Chamæleo autem in libro de Dijs, Thaletis: Aristoteles autē Pythiæ. Potest autem id iubere persequi cognitionem. Nam sine substantia vniuersorum non possunt nosci partes. Oportet autem ortū mundi diligenter inquirere, per quem poterit quoq; disci natura hominis. Chiloni rursus Lacedæmonio tribuunt, Ne quid nimis. Strato autem in opere de inuentis, asscribit hoc dictū Stratodemo Tegeatæ: Didymus autem id censet esse Solonis, sicut etiam Cleobuli, Modus optimus. Illud autē, Spondæ noxa præstò est, Cleomenes quidē in libro de Hesiodo, dicit prius fuisse dictū ab Homero his verbis, Δειλαί τοι δειλῶν περ καὶ ἐγγύαι ἐγγυάασθαι. Aristotelici autem existimant id fuisse Chilonis: Didymus autem dicit id fuisse admonitionem Thaletis. Et deinde illud: Omnes homines mali, vel plurimi hominū mali (hoc enim dictum duobus modis effertur) Sotades Byzantinus dicit esse Biantis. & illud: Omnia vincit diligens meditatio, volūt esse Periandri. Similiter autem admonitionem quæ dicit: Nosce occasionem, fuisse Pittaci. Solon autem leges tulit Atheniensibus, Pittacus verò Mitylenæis. Tandem autē Pythagoras Pherecydis familiaris, seipsum primus appellauit Philosophum. Philosophiæ itaq;, post viros qui prius dicti sunt, tres fuere successiones, quę nomina sumpserūt à locis in quibus ver-

A versatæ sunt. Italica quidem, quæ deriuata est à Pythagora. Ionica verò, quæ à Thalete. Eleatica autem, quæ à Xenophane. Porrò autem Mnesarchi filius, Samius quidem erat, vt dicit Hippobotus: vt autem dicit Aristoxenus in vita Pythagoræ, & Aristarchus & Theopompus, erat Tuscus: vt autem Neanthes, Syrius vel Tyrius, adeò vt ex plurimorum sententia Pythagoras esset genere barbarus. Quinetiam Thales, vt referunt Leander & Herodotus, erat Phœnix: vt aũt nonnulli existimarũt, Milesius. Hic solus videtur esse cógressus cum Prophetis Ægyptiorum. Eius autem nullus scribitur præceptor, quemadmodum nec Pherecydis Syri, cuius fuit discipulus Pythagoras. Sed Pythagorę quidem, quę Italica dicta est Philosophia, consenuit in Metapóto oppido Italię. Anaximander aũt Praxidami filius, Milesius, succedit Thaleti. Ei Anaximenes Eurystrati Milesius. Post quẽ Anaxagoras Hegesibuli Clazomenius. Hic ex Ionia scholá traduxit Athenas. Ei succedit Archelaus, quẽ audiuit Socrates. *Ex his æquiloquus declinauit lapicida.* διατρίβω. ἐννομολέσχης.

Graiũm incantator, ait Timon in Sillis, propterea quòd à Physicis declinarit ad ea quę ad mores pertinent. Socratem autem cùm audijsset, Antisthenes quidem sectam introduxit Cynicam. Plato autem secessit in Academiam. Apud Platonẽ philosophatus Aristoteles, cùm transijsset in Lyceum, hęresim creat Peripateticam. Ei succedit Theophrastus, cui Straton, cui Lycon, deinde Critolaus, deinde Diodorus. Platoni succedit Speusippus, ei Xenocrates, cui Polemon: Polemonis autẽ auditores fuere Crates & Crantor, in quos desijt vetus Academia. Crantoris autem fuit B particeps Arcesilaus, à quo vsq; ad Hegesilaũ media floruit Academia. Deinde Carneades succedit Hegesilao, & qui deinceps sequuntur. Eleaticæ autem disciplinæ princeps fuit Xenophanes Colophonius, quem dicit Timæus fuisse tempore Hieronis qui in Sicilia obtinuit dominatum, & Epicharmi Poëtæ. Apollodorus autem eum cùm natus esset quadragesima Olympiade, perueniße vsq; ad tempora Darij & Cyri. Xenophanis ergo fuit auditor Parmenides, eius Zeno, deinde Leucippus, deinde Democritus: Democriti autem auditores, Protagoras Abderitanus & Metrodorus Chius, cuius Diogenes Smyrneus, cuius Anaxarchus, eius autẽ Pyrrhon, cuius Nausiphanes: eius dicunt nonnulli discipulum fuisse Epicurũ. Et hæc est quidem successio eorum qui fuerunt apud Græcos Philosophorum, tanquam in Epitome. Tempora autem eorum qui fuerunt principes & autores ipsorum Philosophiæ, sunt dicenda consequenter, vt in conferendo ostendamus Hebræorum Philosophiam fuisse generationibus multis antiquiorem. Et de Xenophane quidem dictum est, qui fuit Eleaticæ princeps Philosophiæ. Thaletem autẽ Eudemus in historijs astrologicis dicit prędixisse defectum Solis qui fuit eo tempore quo inter se manus conseruëre Medi & Lydi, regnante quidem Cyaxare patre Astyagis in Media, Alyatte autem Crœsi, in Lydia. Ei autem congruit Herodotus quoq; in primo. Sunt autem ea tempora circa quinquagesimam Olympiadem. Pythagoras autem inuenitur tempore Polycratis tyranni circa sexagesimam secundam Olympiadem. Solonis autem æmulator fuisse scribitur Mnesiphilus, cum quo versatus est Themisto-C cles. Floruit autem Solon quadragesima sexta Olympiade. Heraclitus enim Bausonis filius persuasit Melanconiæ tyranno vt deponeret tyrannidem. Hic despexit regem Darium adhortantem vt veniret ad Persas. Hæc sunt quidem tempora eorum qui apud Græcos fuere antiquissimi sapiẽtum & Philosophorum. Quòd autẽ eorũ plurimi fuerint & genere barbari, & à barbaris eruditi, quid opus est dicere? Siquidem Tuscum fuisse Pythagoram ostensum est. Phryx autem erat Antisthenes: & Orpheus, Odrysius vel Thrax. Homerum enim plurimi ostendunt Ægyptium. Thales autem cùm esset Phœnix genere, etiam cum Ægyptiorum prophetis cógressus esse dicitur: sicut etiam Pythagoras cũ ijs ipsis, propter quos etiam fuit circuncisus, vt adyta ingrediens, Ægyptiorũ mysticam disceret Philosophiam: & cum Chaldæorum & Magorum versatus est præstantissimis: & eam quę nunc vocatur Ecclesiam, significat id quod apud ipsum est ὁμακοεῖον. Plato autem non it inficias, se ea quæ sunt præstantissima in Philosophia mercatum esse à barbaris, & se fatetur venisse in Ægyptum: in Phædone scribens, vndiquaque posse iuuari Philosophum. Magna quidem est, inquit, Græcia ô Cebes, ait ille, in qua sunt viri omni ex parte boni, multa sunt autem etiam genera barbarorum. Sic existimat Plato ex barbaris quoque esse aliquos Philosophos. Epicurus autem contrà existimat solos Grecos posse philosophari. Et in Conuiuio Plato laudans barbaros, vt qui philosophiam insigniter exercuerint, verè dicit: Et in multis alijs, & apud Græcos, & apud barbaros, quo

ἀγωγῆ. Διωάσηλ σικελίας.

ὁμακοεῖον auditorium ἀπὸ τ ὁμῶ ἀκούειν

rum etiam sacra iam multa facta sunt, propter eiusmodi filios. Clarum est autẽ barbaros eximiè semper honorasse suos legumlatores & præceptores, eos Deos appellantes. Bonas enim animas, vt dicit Plato, supercælesti loco relicto, sustinuisse venire in hunc tartarum, & corpore suscepto, malorum omnium quæ sunt in generatione fuisse participes existimant, humani generis curam gerentes, quæ & leges tulerunt, & philosophiam prædicarunt, quo maius bonum ad hominum genus nunquam venit, nec veniet. Atque mihi quidem videtur cùm sensissent magna quæ per sapientes conferebantur beneficia, & eos coluisse, & publicè esse philosophati, & Brachmanes vniuersi, & Odrysæ, & Getæ. Quinetiam genus Ægyptium diligentissimè illos in Deos retulit, & Chaldæi & Arabes qui dicti sunt Felices, & quicunque habitarunt Palæstinam, & non minimam Persici generis partem, & alia præter hæc genera innumerabilia. Clarum est autem inueniri semper Platonem magni facere barbaros, vt qui meminisset se & Pythagoram plurima eaq; præstantissima & nobilissima dogmata didicisse apud barbaros. Et ideo dixit etiam, genera barbarorum, genera philosophorum barbarorum hominum cognoscens. Et in Phædro regẽ Ægyptium, & Thoyth nobis ostendit sapientiorem: quem quidem nouit esse Mercurium. Quinetiam in Charmide videtur quosdam scire Thraces, qui dicuntur animã facere immortalem. Narratur autem Pythagoras quidem fuisse discipulus Sonchedis archiprophetæ Ægyptij: Plato autẽ Sechnuphidis Heliopolitani: Eudoxus autem Cnidius Conuphidis, qui ipse quoque fuit Ægyptius. In Dialogo autem de anima, rursus videtur Plato agnoscere Prophetiam, introducens Prophetam Lachesis orationem enunciantem, apud eas quæ sortiuntur animas prædicere: & in Timæo sapientissimum Platonem introducit discentem à barbaro. Ita autem se habet dictio: O Solon Solon, vos Græci semper estis pueri, senex autẽ nullus est Græcus, disciplinam enim nullam habetis canam. Democritus autẽ morales libros scripsit Babylonicos: dicitur enim Acicari, quam est interpretatus columnam, suis scriptis adiūxisse: & possunt hæc ex ipso obseruari. Hæc autem dicit Democritus, cùm de seipso quidem certè scriberet, & de magna sua se iactaret doctrina: Ego ex ijs qui meo tempore fuerunt, plures terras peragraui, ea quæ procul erant remota inquirens, & aëris & terræ vidi regiones plurimas, & homines doctos audiui plurimos, & in componendis cum demonstratione lineis nemo me adhuc superauit, nec qui Ægyptiorum quidem vocantur Arpedonaptæ. Cum his autem postremò octoginta annis fui in terra aliena. Adijt enim Babylonem, Persidem & Ægyptum, Magorum & Sacerdotum se præbens discipulum. Zoroastrem autem Magum Persam Pythagoras ostendit. Qui Prodici hæresim persequuntur, gloriantur se arcanos libros huius viri possidere. Alexander autem in libro de Symbolis Pythagoricis, refert Pythagoram fuisse discipulum Nazareti Assyrij. Quidam eum existimãt Ezechielem, sed non est, vt ostendetur postea: & vult præterea Pythagoram Gallos audijsse & Brachmanas. Clearchus autem Peripateticus dicit se nosse quendam Iudæum cum quo versatus est Aristoteles. Heraclitus autem non humanitus, sed diuinitus potius dicit apparuisse Sibyllam. Aiunt itaq; Delphis in curia ostendi petram quandam, super quam dicitur sedisse prima Sibylla, quæ ex Helicone venerat educata à Musis, cùm esset filia Lamiæ Sidoniæ. Serapion autem in versibus dicit ne mortuã quidem à diuinandi arte cessasse Sibyllam: & id quidem quod ex ea in aërem recessit post obitum, id esse quod in sortibus diuinat & augurijs: ex eo autem quod in terram mutatum est corpore, exorta, vt consentaneum est, herba, quæcunq; eam bestiȩ comedissent, cùm in eo loco essent, scribit perfectam futuri cognitionem per exta hominibus significasse. Eius autem animam existimat eam esse faciem quæ apparet in Luna. Et hæc quidem de Sibylla. Numa autem rex Romanorum erat quidem Pythagoreus, ex ijs autem quæ à Mose tradita sunt adiutus, prohibuit Romanis ne homini aut animali similem Dei facerent imaginem. Cùm itaque centũ & septuaginta primis annis templa ædificarent, nulla imaginem nec affictam nec depictam fecere. Occultè enim eis indicarat Numa, quòd id quod est optimum, non alia ratione quàm sola mente vlli licet attingere. Philosophia ergo, res quædam valde vtilis, olim quidem floruit apud Barbaros, per gentes resplendens: postea autem venit etiam ad Græcos. Ei autem præfuerunt & Ægyptiorum Prophetæ, & Assyriorum Chaldæi, & Gallorum Druidæ, & Semanæi Bactrorum, & Celtarum ij qui philosophati sunt, & Persarũ Magi, qui quidem Seruatoris quoq; nostri ortum significauerunt, stella eos præcedente venientes in Iudæam, & Indorum Gymnosophistæ, & alij

*Plato in Phædone.*

A B C

A alij philosophi Barbari. Est autem duplex eorum genus: alij enim ex ijs vocãtur Sarmanæ, alij verò Brachmanes. Et ex Sarmanis quidem, ij qui appellantur Allobij, neque vrbes habitant, nec domos aut tecta habent: arborum autem induuntur corticibus, & glandes arborumq; baccas comedunt, & aquam bibunt manibus: non nuptias, non liberorum norunt procreationem, quemadmodum ij qui nunc vocantur Encratitæ, id est, continentes. Sunt autem etiam ex Indis, qui Buttæ parent præceptis, quem propter insignem virtutem vt Deum honorarunt. Scytha autem erat etiam σεμνότητα Anacharsis, qui scribitur Grecorum multis antecelluisse philosophis. Hellanicus autem scribit Hyperboreos habitasse vltra Ripheos montes, doceri autem ipsos iustitiam, non vescentes carnibus, sed arborum fructibus. Ii sexagenarios extra portas ducentes, tollunt de medio. Sunt autem etiam apud Germanos sacræ quæ vocãtur mulieres, quæ fluuiorum vortices prospicientes, fluentorumq; sonitus ac circumuolutiones, futura conijciunt & prædicunt. Eæ non permiserunt vt ipsi cum Cæsare pugnarent ante quàm noua Luna illuxisset. His omnibus Iudæum genus est longè antiquius, & eam quæ apud ipsos scriptis mandata est Philosophiam, cœpisse ante Græcam, multis verbis ostendit Philo Pythagoreus. Quinetiam Aristobulus quoq; Peripateticus, & alij complures, ne in eis nominatim persequendis immorer. Apertissimè autem scriptor Megasthenes, qui vixit cum Seleuco Nicatore, scribit in tertio rerum Indicarum, omnia quidem quæ de natura dicta sunt à veteribus, dicuntur etiam ab ijs qui extra Græciam philosophantur, partim quidẽ apud Indos à Brach-
B manis, partim verò in Syria ab ijs qui vocantur Iudæi. Quidam autem fabulosius ex ijs qui Idæi appellantur Dactyli, sapientes quosdam primos exortos esse dicunt, ad quos & Ephesiarũ quæ dicuntur literarum, & eorum qui sunt in Musica numerorum refertur inuentio. Propter quam causam sunt appellati qui sunt apud musicos Dactyli. Phryges aũt erant & barbari Idæi Dactyli. Herodotus aũt refert Herculem, cùm fuisset vates & Physicus, ab Atlante Barbaro Phryge mundi suscepisse columnas. Hermippus autẽ Beryttius vocat Chironem Centaurum sapientem. De quo etiam dicit qui scripsit Titanomachiam, quòd is primus

*Ad iustum duxit mortalia secula, monstrans*
*Iusiurandum, & sacra Deûm, cœliq; figuras.*

Ab eo instituitur Achilles qui ducitur ad Ilium. Hippo autem filia Centauri, cum Æolo habitans, docuit eum naturæ contemplationem, patriam scientiam. De Hippone autem testatur quoq; sic Euripides:

*Diuina quæ primùm quidem præsagijt*
*Oraculis, atq; per ortus syderum.*

Apud hunc Æolum, Vlysses post Troiam captam hospitio excipitur. Obserua mihi tempora ad comparationem ætatis Mosis, & antiquissimę quę eius tempore fuit philosophiæ. Non solùm autem philosophiæ, sed etiam omnium ferè artium fuere inuentores Barbari. Primi itaq; Ægyptij Astrologiam ad homines deduxere. Similiter aũt etiam Chaldæi. Ægyptij rursus & lucernas primi accendere docuerunt, &
C annũ in menses duodecim diuiserunt, & in templis cum mulieribus coire prohibuerunt, neq; ad sacra ab vxore illotis adeundum esse lege sanxerunt. Et rursus inuentores fuere Geometriæ. Sunt autem qui dicunt Cares, eam quæ ex astris colligitur, inuenisse præscientiam. Auium aũt volatus primi Phryges obseruaruut. Aruspicinam autem seu extispicinam perfeçtè tenuerunt qui fuere vicini Italiæ. Isauri autẽ & Arabes augurijs studuere, sicut Telmisenses ei quæ per somnia fit diuinationi. Hetrusci tubam, & Phryges tibiam excogitauere. Phryges enim erant Olympus & Marsias. Cadmus autem erat Phœnix, qui fuit Græcis literarum inuentor, vt ait Euphorus. Vnde etiam scribit Herodotus literas appellatas fuisse Phœnicias. Alij autem dicũt Phœnices & Syros primos excogitasse literas. Medicinam autem Apim Ægyptium indigenam, priusquam Io veniret in Ægyptum: postea autem Æsculapium dicunt artem amplificasse. Atlas autem Libs, primus nauem est fabricatus, & mare nauigauit. Et rursus Celmis & Damnaneus Idęis Dactylis ferrum primi inuenerunt in Cypro. Alius autem Idæus ferri inuenit temperaturam, vt autem Hesiodus, Scytha. Ac Thraces quidem primi eam quæ ἅρπη vocatur inuenerunt: est autem incuruus gladius, & peltis primi vsi sunt in equis. Similiter autem Illyrij quoque peltam inuenerũt. Præterea Canos figulinam excogitasse & calcem dicit Sanites: is fuit qui primus excogitauit clypeum. Cadmus aũt Phœnix primus inuenit lapicidinam: in θυρεὸν monte Pangæo excogitauit auri metalla. Iam verò aliud quoq; genus, Cappadoces,

n

νάβλας. primi inuenerunt id quod Nablium appellatur, quemadmodum Assyrij quoq; Di- A
δίχορδον. chordon. Carthaginenses autem primi construxerunt quadriremem. Eam autem ex tempore, & absq; vlla præmeditatione, fabricatus est Bosphorus. Medæa autē Æetæ filia, Colchis, prima pilos tingere excogitauit. Quinetiam Noropes (est aūt gens Pæoniæ, nunc autem appellatur Norica) æs elaborarunt, & primi ferrum purgarūt: & Amycus Rex Bebrycum, lora pugilum, id est, cestus, primus excogitauit: & Olympus Mysius in musica harmoniam Lydiam artificiosè inuenit: & qui vocantur Troglodytæ, Sambucam instrumētum inuenere musicum. Aiunt autem obliquā quoq;
κρούματα fistulam Satyrum inuenisse Phrygem: κρούματα autem seu modos Olympum similiter Phrygem, quemadmodum Phrygiam harmoniam & mixophrygiam & mixolydiā Marsyam, qui erat eiusdem regionis cum ijs qui antè dicti sunt, & Doricam Thamyrim Thracem excogitasse. Persas quoq; primos audiuimus currum & lectum & pe-
ἀπήνην. dum scabellum effecisse, & Sidonios triremem nauem ædificasse. Siculi quoq; qui
τριήρετον. sunt in Italia primi inuenere Phormingem, quæ non multum differt à cithara: & in-
φόρμιγγα. uenere crepitacula quæ dicuntur Crotala. Quinetiam tempore Semiramidis Regis
κρόταλα. Ægyptiorum, narrant inuentas fuisse vestes byssinas. Et primam scripsisse epistolas Atossam Persarum reginam dicit Hellanicus. Scamon quidem Mitylinæus & Theophrastus Eresius, & Cydippus Mātinæus, & præterea Antiphanes, & Aristodemus, & Aristoteles, quinetiā Philostephanus, & Strato quoq; Peripateticus, in libris suis de ijs quæ sunt inuenta hæc narrarunt. Ex his autem pauca adieci ad cōfirmandam inuentricem. & vitæ vtilem naturam, quæ fuit apud Barbaros, à quibus, in studijs & B rebus exercendis, Græci magnam accepere vtilitatem. Si quis autem vocem repre-
σκυθίζουσι. hendit barbaram, Mihi autem, inquit Anacharsis, omnes Græci Scythæ sunt. Is autē erat qui apud Græcos in admiratione est habitus, qui dixit: Mihi indumentū est læna: cœna, lac & caseus. Vides barbaram philosophiam, quæ facta, non verba profite-
1.Cor.14. tur. Apostolus autem sic dicit: Et vos per linguam, si non rectè significantem vocem
ὡς τύχοι. dederitis, quomodo cognoscetur quod dicitur? eritis enim in aërem loquētes. Tot, verbi gratia, genera linguarum sunt in mundo, & nihil est vocis expers. Si ergo non nouero vim vocis, ero loquenti barbarus, & loquens mihi barbarus: & qui loquitur lingua, oret vt interpretetur. Vix certè tandem ad Græcos accessit componendarū orationum doctrina, & scriptura. Et Alcmæon quidem Perithoi filius, Crotoniata, primus librum scripsit de natura. Alij autem Anaxagoram Hegesibuli filium Clazo-
μέλος. menium primum librum scriptū edidisse referunt. Modos aūt poëmatibus primus
ἐμμελοποίησι. adiecit, & Lacedæmoniorum leges numerosis versibus scripsit Terpander Antissæus. Dithyrambum aūt excogitauit Lassus Hermioneus, Hymnum Stesichorus Imeræus, Choream Alcman Lacedæmonius, Amatoria Anacreon Teius ὑπόρχημα, id est, canticum ad saltandū accōmodatum Pindarus Thebanus. Et νόμους quos vocant, primos cecinit in choro & cithara Timotheus Milesius. Iam verò Iambum quidem ex-
χωλὸν ἴαμβον, scazontem puto. cogitauit Archilochus Parius. Claudum autem iambum Hipponax Ephesius. Et tragœdiam quidem Thespis Atheniensis, Comœdiam autem Sisarion Icariēus. Tempora horum tradunt Grammatici. Longum autem fuerit ea accuratè adducere, cùm C ipse mox ostendatur Dionysius, nempe Bacchus, propter quem celebrantur & Dionysia & spectacula, esse Mose posterior. Aiūt autem & quę in schola fiunt orationes, & rhetoricas proprietates, inuenisse, & mercede primū iudicialem orationem alteri tradendam conscripsisse Antiphontē tribu Rhamnusium, vt dicit Diodorus. Apollodorus autem Cumanus primus Critici nomen suscepit, & appellatus est Grāmaticus. Nonnulli aūt dicunt Eratosthenem Cyrenæū. Quoniam aūt duos edidit libros quos inscripsit Grāmaticos, nominatus est Grāmaticus, sicut nunc nominamus. Primus Praxiphanes Dionysiphanis filius Mitylenęus, & Zaleucus Locrus primus scribitur leges tulisse. Alij aūt dicunt Menotū filium Diosepilyncei, is fuit post Danaū, decima generatione ab Inacho & Mose, vt paulò inferiùs ostendemus. Lycurgus autem multis annis post Troiam captam, qui fuit centum & quinquaginta annis ante Olympiades, tulit leges Lacedæmonijs. Solonis verò tempus prius diximus. Dracon autem, qui ipse quoq; fuit legislator, inuenitur fuisse circa tricesimam nonam
ἱστορίας. Olympiadem. Antilochus autem qui scripsit de omnibus viris doctis à Pythagoræ
γαμηλιῶνος. ætate vsq; ad mortem Epicuri, quæ fuit decimo mensis Octobris, cōplectitur omnes annos trecentos duodecim. Præterea aiunt Phanotheā Icarij vxorem inuenisse Heroicum hexametrū, alij verò Themin, vnā ex Titanidibus. Didymus aūt in libro de philosophia Pythagorica, refert Theano Crotoniatidem, primam ex mulieribus esse

A esse philosophatam, & scripsisse poëmata. Græca itaq; philosophia, vt aliqui quidẽ, casu vtcunq; & exiliter veritatem, sed non omnem assequitur: vt alij autem volunt, mota est à diabolo. Nonnulli autem vniuersam Philosophiam inferiores quasdam potestates inspirasse existimant. Sed si non comprehendit quidem Græca Philosophia veritatis magnitudinem, & est adhuc imbecilla ad mandata Domini exequenda, at maximè regali quidem certè doctrinæ viam præparat, vtcunq; castigans, & mores prius formans, & ad suscipiendam veritatem confirmans eum qui opinatur prouidentiã. At, inquiunt, scriptum est, omnes qui fuerunt ante aduentum Dñi, sunt *Ioan.10.* fures & latrones. Omnes ergo hi qui in sermone continentur, qui fuerunt ante susceptam à Verbo carnem, exaudiuntur generaliter. Sed Prophetæ quidem, vt qui à Domino fuerunt missi & inspirati, non fures, sed ministri. Dicit itaq; scriptura: Misit sapientia seruos suos conuocans cũ alto præconio ad craterem vini. *Prouer.1.* Philosophia aũt non missa est à Domino, sed venit, inquit, furto surrepta, vel à fure donata. Siue ergo potestas, aut Angelus qui veritatis aliquid didicit, & in ea non mansit, hæc inspirauit, & furto surrepta docuit: hoc fecit, non quòd nescierit Dominus, qui fines eorum quæ futura sunt nouit ante constitutionem vniuscuiusq; essentiæ, sed quòd non prohibuerit. Tunc enim aliquam habuit vtilitatem furtum quod redibat ad homines, non quòd is qui surripuit vtile sibi proponeret, sed prouidentia ad vtile dirigeret audacis cœpti euentum. Scio multos in nos assiduè insurgere, & id quod non prohibet, causam esse dicere. Furti enim causam esse dicunt eum qui non seruauit, vel eum qui non prohibuit: quemadmodum incendij, eum qui ignem non extinxit

B incipientẽ: & naufragij, gubernatorẽ, qui rudentem non contraxerit. Iam verò puniũtur à lege qui horum causæ sunt: nam in cuius potestate erat situm prohibere, in eum eius quod áccidit culpa confertur. Ad eos autem dicimus, in faciendo, operando, & agendo, causam intelligi. Id autem quod nõ prohibet, hoc ipso remotũ est ab operatione. *ἀνενέργητον* Præterea causa quidem versatur in operatione, quemadmodũ nauis ędificator in eo quòd fiat scapha. Domus autem ædificator, in eo quòd ædes construatur. Id autem quod non prohibet, ab eo quod fit, separatum est. Propterea ergo perficitur, quòd id quod potest prohibere, non operatur nec prohibet. Quid enim operatur qui nõ prohibet? Iam verò ad absurdũ quoq; redit id quod ab eis dicitur: siquidem sauciationis causam esse dicent, non telũ, sed clypeum, qui non prohibuit quo minus telũ peruaderet. Neq; enim furẽ, sed eum qui furtum nõ prohibuit, reprehendent. Ergo Græcorũ quoq; naues non Hectorem dicant combussisse, sed Achillem: quoniam cùm prohibere posset Hectorẽ, non prohibuit. Sed ille quidem propter iram (in eius autem potestate non erat irasci vel non irasci) & ignem non prohibuit, & fortè adiuuans causa fuit. * Diabolus autem cùm liberum haberet arbitrium, & duci posset pœnitentia & furari, ipse quoq; furti causa est, non aũt Dominus qui nõ prohibuit. Sed nec noxium erat donũ, vt accederet prohibitio. Et si accuratè & subtiliter aduersus eos agendum est, sciant id quidem quod non prohibet, quod in furto factum esse dicimus, nullo modo esse causam: in id autem quod prohibet, causam

*Græcè est ἐπ' αὐτῷ ᾖ ἰὼν, sed puto legẽdũ ἐπ' αὐτῷ ᾖ ἐκῶν, ut opponatur ei quod sequitur, Diabolus aũt &c.*

C culpãq; conferri. Qui enim clypeo protegit, ei qui protegitur causa est ne saucietur, prohibens ipsum sauciari. Et Socrati dæmonium causa erat, non prohibens, sed adhortans, etsi non adhortaretur. Sec nec laudes, nec vituperationes, nec honores, nec supplicia iusta sunt, si anima non habeat liberam potestatem & + appetendi & aggrediendi, sed sit vitium inuoluntarium: vnde qui prohibuit quidem, causa est: qui aũt non prohibuit liberam animæ electionem, iustè iudicat, vt vel maximè quidem Deus nobis non sit causa vitij. Quoniam aũt libera electio & appetitio peccata primùm inchoat, falsa autem nonnunquã dominatur opinio, à qua, cùm sit iustitia & ignorantia, recedere negligimus, iurè infliguntur supplicia. Febrire enim est inuoluntarium, sed cùm per se & propter suam intemperantiam febrierit, eum reprehendimus, vtpote quòd vitium sit inuoluntarium. Nemo enim malum eligit, quatenus malum: sed abductus ab ea quæ inest in ipso voluptate, id bonum ratus, suscipiendũ existimat. Quæ cùm ita se habeant, & liberari ab ignoratione, & à mala & delectabili electione, & ante omnia nõ assentiri fallacibus illis phantasiis & visis, situm est in nostra potestate. Latro aũt & fur dicitur diabolus, qui Prophetis pseudoprophetas admiscuit, tanquam frumento zizania. Omnes ergo qui fuerunt ante Dominum, fures & latrones, non absolutè autem omnes homines, sed omnes pseudoprophetæ, & omnes qui non propriè ab ipso missi sunt. Habuerunt autem pseudoprophetæ quoq; furtum, Prophetæ nomen, cum Prophetæ quidem essent, sed eius qui est men

** Hinc error Origenis.*

*+ ὁρμῆς καὶ ἀφορμῆς*

*προκατάρχει τῶν ἁμαρτημάτων*

Ioan.8 dax. Dicit enim Dominus: Vos ex patre vestro diabolo estis, & desideria patris vestri vultis facere. Ille homicida erat ab initio, & in veritate non stetit, quoniá non est in ipso veritas. Cùm locutus fuerit falsum, ex proprijs loquitur, quoniá mendax est & pater eius. In falsis autem vera quoq; aliqua dicebant pseudoprophetæ. Et ij reuera prophetabant in ectasi, vt Apostatę, eius, inquam, qui defecerat, ministri. Dicit aũt Pastor quoq; Angelus pœnitentiæ, ad Hermeté, de pseudopropheta: Quędam enim verba vera dicit: diabolus enim eum implet suo spiritu, si quem possit ex iustis frangere. Omnia ergo à superis in bonum dispensantur, vt per ecclesiá cognoscatur multiplex ac varia Dei sapientia, ex seculorum præscientia, quam fecit in Christo. Deo auté nihil aduersatur, nec est quicquam ei cótrarium, vt qui sit Dñs & omnipotens. Quinetiam eorum qui defecerunt cósilia & operationes, cùm sint singulares, fiunt quidem ex mala affectione, sicut morbi corporis: ab vniuersa auté ac generali prouidentia administrantur ad finem salubrem, etiamsi causa sit morbi efficiens. Est itaq; maximum diuinæ prouidentiæ argumentum, nó sinere vt vitium quod ex voluntaria defectione ortum est, incóducibile maneat & inutile, sed nec sit omnino noxiũ. Diuinæ enim sapientiæ & virtutis & potentiæ est officium, non solùm bona facere (hæc est enim, vt semel dicam, Dei natura, vt ignis calefacere, & lucis illuminare) sed illud quoq; maximè, vt id quod per malos aliquos excogitatum est, ad bonum aliquem finem & vtilem deducat, & vtiliter ijs quæ videntur mala vtatur, sicut eo quod ex tentatione processit testimonio. Est ergo etiam in philosophia, quæ furto surrepta & veluti à Prometheo, parum ignis aptum ad lumen qui vtiliter excitatur, & vestigium aliquod sapientiæ, & motus à Deo. In his autem latrones & fures fuerint qui sunt apud Græcos Philosophi, qui ante Domini aduentum, à Prophetis Hebræis partes veritatis id minimè agnoscétes sumpserunt, sed sibi tanquá propria dogmata attribuerunt, & alia quidem adulterarunt, alia autem, superuacanea quadam diligentia, indoctè tanquam sapientes pronunciarunt, alia autem etiam inuenerunt. Forte enim sensus quoq; spiritum habuerunt. Assentitur autem scripturæ quoq; Aristoteles, qui dixit Sophisticam esse furem sapientiæ, sicut antè ostédimus. Apostolus autem: Quæ etiam loquimur, inquit, non in ijs quæ doceri possunt humanæ sapientiæ verbis, sed in ijs quæ doceri possunt, spiritus. De prophetis enim: Omnes, inquit, de plenitudine eius accepimus, Christi scilicet. Quare nó sunt fures Prophetæ. Et doctrina mea, nó est mea, inquit Dñs, sed eius qui misit me Patris. Et de furibus: Qui autem ex seipso, inquit, loquitur, gloriam propriam quærit. Tales autem sunt qui sibi placent Græci, & sunt arrogantes. Sapientes autem eos dicens scriptura, non reprehendit eos qui sunt verè sapientes, sed eos qui sibi videntur. De his autem dicit: Perdam sapientiam sapientum, & prudentiam prudentum abolebo. Infert itaq; Apostolus: Vbi sapiens? vbi scriba? vbi inquisitor huius seculi? vt à scribis distingueret, huius seculi inquisitores ponens Philosophos ex gentibus. Nónne infatuauit Deus mundi sapientiam, quod perinde est ac stultam ostendit, & non verá, vt putabant? Et si roges causam cur sibi viderentur sapientes: Propter cæcitatem cordis sui, inquiet: quoniam in sapientia Dei, hoc est, quæ per Prophetas est annunciata, non cognouit mundus, nempe per sapientiá quæ loquitur per Prophetas, ipsum scilicet Deum, ipsi Deo visum est per prædicationem stultitiæ, quæ Græcis scilicet videtur esse stultitia, saluos facere credentes. Quoniam Iudæi, inquit, signa petunt ad fidem, Græci autem quærunt sapientiam, nempe orationes quæ vocátur ἀναγκαστικαὶ, hoc est, necessariò concludentes, & alios scilicet syllogismos. Nos autem prædicamus Iesum Christum crucifixum, Iudæis quidem scandalum, quòd cùm sciát prophetiam, non credant euentui: Græcis autem stultitiam: fabulosum enim esse existimant qui sibi videntur sapientes, & per hominem filium Dei loqui, & Deum habere filium, & eum esse passum: quo fit vt suæ opinionis anticipatio eis persuadeat vt non credant. Seruatoris enim aduentus, non stultos fecit & duros corde & infideles, sed prudentes, & aptos quibus persuadeatur & præterea fideles. Ostensi sunt autem, ab eorum qui obedierunt voluntaria inclinatione separati, ij qui noluerunt parêre, & imprudentes & infideles & stulti. Ipsis autem vocatis Iudæis & Græcis Christus est Dei virtus, & Dei sapientia. Num ergo, quod est etiam melius, existimandũ est esse enunciatiuum illud: Non infatuauit Deus sapientiam mundi, perinde ac nó stultam fecit, ne causa duritiei cordis à Deo eis facta videatur qui stultam fecit sapientiam? Omnino enim etsi sapiétes essent, maiori culpę fuere obnoxij, qui prædicationi non crediderunt. Voluntaria enim est electio & delectus veritatis. Quinetiá illud:

Marginalia: A (line 1); B (at "to surrepta"); σοφιζόμενοι (at "dam diligentia"); 1.Cor.1. (at "Apostolus autem"); διδακτοῖς (at "næ sapientiæ"); Ioan.1. (at "nes, inquit"); Ioan.7. (at "phetæ"); 1.Cor.1. (at "tem dicit"); C (at "dis sui"); 1.Cor.1. (at "videtur esse stultitia").

A lud:Perdam ſapientiam ſapientum, eius quæ cōtemnitur ac deſpicitur barbaræ phi
loſophiæ oppoſitione dicit illuſtraſſe,ſicut etiam lucerna quæ à Sole illuſtratur dici
tur perijſſe,eo quòd non æqualem edat operationē. Cùm ergo omnes homines vo-
cati ſint,qui voluērunt obedire,nominati ſunt vocati.Non eſt enim apud Deum in-
iuſtitia.Iam verò qui ex vtroq; populo crediderunt,ij ſunt populus peculiaris.Et in
Actis Apoſtolorum hoc his verbis inueneris: Qui itaq; verbum eius ſuſceperunt,ba
ptizati ſunt.Qui aūt noluerunt parēre,ſeipſos ſcilicet abduxerunt. Ad eos dicit Pro
phetia:Et ſi velitis,& me audieritis,bona terræ comedetis:in nobis ſitum eſſe argu- Eſa.1.
ens & eligere & declinare.Dei aūt ſapientiam dixit Apoſtolus doctrinam quę eſt ex
Domino,vt veram philoſophiam oſtendat tradi per Dñm. Quinetiam qui ſibi vide
tur ſapiens,habet quaſdam admonitiones, quę iubent apud Apoſtolum induere no Ephe.4.
uum hominem, qui ſecundum Deum creatus eſt in iuſtitia & ſanctitate veritatis.
Quamobrem deponentes mendacium,loquimini veritatem.Ne detis locum diabo
lo.Qui furabatur,non amplius furetur,ſed potius laboret operans bonum. Opera-
ri autem eſt adlaborare quærendo veritatem,nempe cum ea quæ ſermone fit benefi τῇ λογικῇ
centia,vt impertiri poſsitis ei qui opus habet,& ſeculares copias & diuinam ſapien συνεσίᾳ.
tiam.Vult enim verbum doceri,& argentum menſis dari perfectè examinatū,vt de-
tur fœnori.Vnde infert: Turpe verbum ex ore veſtro non exeat. Id autem turpe eſt, σαπρὸς,
quod procedit ex opinione quam de ſe quis concipit: ſed ſi quod eſt bonum ad ædi putridum.
ficationem vtilitatis,vt det gratiam audientib.Boni aūt Dei, bonum ſit verbum ne- οἰήσεως.
B ceſſe eſt.Quomodo aūt non eſt bonū quod ſaluum facit?Quòd itaq; teſtimonio cō-
probetur Græcos vera quædam habere dogmata, hinc quoq; licet conſiderare. Scri
bitur in Actis Apoſt. Paulū hæc dicere ad Areopagitas : Superſtitioſiores vos video. Act.17.
Præteriens enim & videns ſimulachra veſtra, inueni & aram in qua ſcriptum erat, σεβάσματα.
Ignoto Deo.Quem ergo ignorantes colitis,eum vobis annuncio. Deus enim qui fe
cit mundum & omnia quæ in ipſo ſunt, hic cæli & terræ cùm ſit Dominus, non in
manufactis templis habitat,nec à manibus humanis colitur, indigens aliquo, cùm
ipſe det omnibus vitam & inſpirationē & omnia,fecitq; ex vno omne genus homi-
nū inhabitare ſuper vniuerſam faciē terræ,definiēs ſtatuta tempora & terminos ha-
bitationis eorum,quærere Deum ſi fortè attrectent aut inueniant,quamuis non lō-
gè ſit ab vnoquoq; noſtrûm.In ipſo enim viuimus & mouemur & ſumus,ſicut & qui
dam veſtrorum poëtarū dixerunt. Ipſius enim & genus ſumus. Ex quibus clarū eſt,
quòd etiā poëticis vtens exemplis,ex Arati Phænomenis approbat quæ apud Græ-
cos rectè dicta ſunt,& per ignotum Deum,honorari quidem per circumlocutionē à
Græcis opificem Deum ſignificauit, ex agnitione autem oportere per filium accipe
re & diſcere.Miſi ergo propterea te ad gentes,aperire,inquit,oculos eorum,vt con- Act.26.
uertantur à tenebris ad lucem, & à poteſtate Satanæ ad Deum, vt ipſi accipiant re-
miſsionem peccatorum & hæreditatem in ijs qui ſunt fide ſanctificati in me. Ii ergo
ſunt qui aperiuntur oculi cæcorum. Patris per filium agnitio, eſt circumlocutionis
Græcæ comprehenſio:& cōuerti à poteſtate Satanę, eſt mutari à peccato, per quod
C introducta erat ſeruitus.Nec tamen abſolutè omnem ſuſcipimus Philoſophiā,ſed il
lam de qua apud Platonē quoq; dicit Socrates.Sunt enim,vt aiunt,in myſterijs,mul
ti quidem qui geſtant ferulam,pauci verò Bacchi: multos quidem eſſe vocatos, pau Matt.22.
cos aūt electos tacitè ſignificans. Apertè itaq; ſubiungit: Ii autem mea quidem ſen-
tentia nō ſunt alij,quàm qui rectè ſunt philoſophati,à quibus ego quidem,quoad e-
ius à me fieri potuit, in vita nunquam abſui, ſed vt ex eis eſſem omni ratione omnē
adhibui diligentiam. An aūt rectè adhibuerim, & quid perfecerimus,cùm illuc ve-
nerimus apertè ſciemus,ſi Deus velit,paulò pòſt.An nō tibi videtur fidei ex ſcriptu-
ris Hebraicis eam quæ eſt poſt mortē iuſti ſpem declarare? Et in Demodoco,ſi mo-
dò eſt opus Platonis:Nec exiſtimes me dicere philoſophari, in artes incumbentē vi ἀπυκυλίσαντα
uere,nec multa diſcere appetentem:nam ego quidem hoc probrū eſſe ducebā.Scie-
bat enim,vt exiſtimo,eum multarū rerū ſciētem mentē iam habere qui docet, vt eſt
Heracliti ſentētia.Et in quinto de Republica:Hos ergo,inquit,omnes,& alios qua-
rundam eiuſmodi rerū, & neſcio quarū artium Mathematicos, ponemus Philoſo-
phos?Nequaquā,inquit,ſed ſimiles Philoſophis. Veros autem,inquit,quóſnam di-
cis? Eos,inquam ego,qui veritatis delectantur contemplatione. Non enim in Geo-
metria,quæ poſtulata habet & poſitiones,eſt Philoſophia.Neq; in Muſica,quę qui-
dē eſt cōiecturalis:neq; in Aſtronomia,quæ naturalibus & fluentib.& veriſimilibus
eſt referta rationibus:ſed eſt ipſius boni per ſcientiam & veritatē, cùm aliæ quidem

ἐγκύκλιον. sint boni viæ, sed tanquam ad bonũ. Quare nec ipse doctrinæ orbem, quem vocant A encyclopædian, dat ad bonum conferre, sed opem ferre ad excitandam & exercendam animam ad ea quæ percipiuntur intelligentia. Siue ergo dicunt Græcos diuinæ Philosophiæ esse casu aliquid elocutos: casus est diuinæ œconomiæ. Non enim propter eam quæ nobiscum intercedit contentionem, casum quis in Deos referet. Siue quòd præfixum scopum sint assecuti, ea assecutio non est expers prouidentiæ. Siue rursus dicat Græcos naturalẽ habuisse notionẽ, vnũ naturæ cognoscimus opificẽ, qua ratione esse quoq; naturalẽ diximus iustitiam. Siue mentẽ habuisse cõmunẽ: quisnam sit eius pater, & quæ sit in mentis distributione iustitia cõsideremus. Nam siue quis dixerit προαναφώνησιν, hoc est, prælocutionem seu prædictionem, & causetur συνεκφώνησιν, id est, coniunctam explicationem, dicit species prophetiæ. Atq; per veritatis quidem apparentem speciẽ alij dicunt quædã dicta esse à Philosophis. De nobis itaq; dicit diuinus Apostolus: Videmus enim nunc tanquã per speculum, per eã quæ est in ipso reflexionem nos ipsos cognoscentes, & ex ea quæ est in nobis diuinitate efficientem causam, quoad eius potest fieri, vnà cõtemplantes. Vidisti enim, inquit, fratrem tuum, vidisti Deum tuum, Seruatorem puto Deum nunc nobis dictum esse. Post carnem autem depositam, facie ad faciem, tunc iam definitè & cõprehẽse, quando cor purum fuerit. Et per apparentem quidẽ speciem & pellucentẽ Deũ vident, qui apud Græcos exactè sunt philosophati. Tales enim sunt quæ ex imbecillitate cernũtur phãtasiæ seu visiones, quẽadmodũ visio cernitur in aquis, & videmus per perlucida & perspicua corpora. Rectè ergo Solomõ: Qui seminat, inquit, iustitiam, operatur fidem. Sunt autem qui plura seminant, ij qui plura faciunt. Et rursus: B Curam gere eorum quæ sunt in campo viridia, & tondebis herbam, & collige fœnum maturum, vt habeas oues ad vestimẽtum. Vides quemadmodum externi quoque integumenti & custodiæ sit cura gerenda. Scienter autem agnoscas animas gregis tui. Quando enim gentes quæ legem non habent, natura quę sunt legis faciunt, ij non habentes legem sibijpsis sunt lex, præputio seruante Legis iustificationes ex sententia Apostoli, & ante Legem & ante Aduentum. Tanquam comparationem autem faciens Philosophorum cum ijs qui vocantur Hæretici, admodum dilucidè: Melior est, inquit Verbum, amicus propè, quàm frater longè habitans. Qui autem falsis innititur, is pascit ventos, & persequitur aues pennatas. Non existimo Verbũ nunc dicere Philosophiam, cùm in multis probabiliter argumentetur, & probabiliter loquatur philosophia, sed insectatur hæreses. Infert itaq;: Reliquit enim vias suę vineæ, in semitis autem propriæ agriculturæ aberrauit. Eæ autem sunt quæ ecclesiam relinquunt ab initio. Iam verò qui cécidit in hæresim, transit per solitudinem sine aqua, eo qui verè Deus est relicto, à Deo desertus, aquam quærens sine aqua, inhabitabilem & sitibundam terram peruadens, colligens manibus sterilitatem fructuum. Et ijs qui carent prudentia: Iubeo, inquit Sapientia, ijs qui versantur in hæresibus, dicens scilicet: Panes absconsos lubenter tangite, & aquam furti dulcẽ, panem & vinum, non in aliquibus alijs, quàm in ijs quæ pane & vino, in oblatione, nõ ex regula ecclesiæ, vtuntur hæresibus, apertè ponente Scriptura. Sunt enim qui sola C aqua vtuntur in Eucharistia. Sed resilias, ne diu moreris in loco eius: locum synagogam, non autem ecclesiam, æquiuocè appellauit. Deinde acclamat: Ita enim traijcies aquam alienam: baptisma hæreticum, non conuenientem & germanam aquam reputans. Et transmeabis fluuium alienum, qui in mare defert & detrahit, in quod emittitur qui diuertit ab ea stabilitate quæ est in veritate, rursus confluens ad gentiles & inordinatos vitæ fluctus. Quemadmodum autem multi homines qui nauem trahunt, non dici possunt multæ causæ, sed vna causa ex multis: non est enim vnusquisq; causa vt nauis trahatur, sed cum alijs: ita etiam Philosophia confert ad comprehendendam veritatem, cùm sit inquisitio veritatis, non quòd sit causa comprehensionis, sed causa cum alijs, & adiuuans, & fortè etiam causa adiuuans. Quemadmodum autem cùm beatum esse vnum sit, eius causæ sunt virtutes quæ sunt plures: & quemadmodũ eius quod est calefieri, & Sol & ignis & balneum & vestis: ita cùm sit vna veritas, multa sunt quæ conferunt ad eius inquisitionem, inuentio aũt est per filium. Et siquidẽ rectè consideremus, potestate vna est virtus, áccidit autẽ vt ea cùm his quidem insit rebus, dicatur prudentia, in illis autem temperantia, in alijs verò animi magnitudo vel iustitia. Eadẽ autem ratione cùm sit vna quoq; veritas, in Geometria, Geometriæ veritas, in Musica autem, Musicæ, & in recta philosophia fuerit Græca veritas. Sola autem hæc est præcipua veritas quæ manibus tradi non potest, quam

Marginal notes: κατὰ περίπτωσιν. ἐκβάσει. κατὰ συντυχίαν. προαναφώνησις. συνεκφώνησις. ἔμφασις. 1.Cor.13. ἔμφασιν καὶ διάφασιν. Prouerb.11. Prouer.27. χόρτον. Rom.2. Prouer.27. Prouer.10. Prouerb.8. Hi hæretici vocantur ὑδροπαραστάται. ἀπαραγχείριστος.

A quam docemur à Dei filio. Hoc modo dicimus de vna & eadem drachma, si data quidem fuerit nautæ, naulum: si Publicano, vectigal: & ei qui domum locat, merces conductæ domus: præceptori, operæ merces: & ei qui vendit, arrha. Vnaquæque autem siue virtus, siue etiam veritas vniuocè vocetur, causa est solius qui per se est effectus. Per coniunctum autem earum vsum fit beatè viuere. Non enim ex nominibus beati fuerimus, cùm rectam viam dicamus beatitudinem, & beatum cui virtute exornata est anima. Quòd si etiam Philosophia opem fert eminus inuentioni veritatis, varijs notionibus tendens ad nostram cognitionem quæ proximè attingit veritatem: at ei opem fert qui ex Verbo seu ratione studuerit conari apprehendere cognitionem. Et à nostra separatur Græca veritas, etiamsi sit idem nomen sortita, & propter magnitudinem cognitionis, & demonstrationem magis principalē, & diuinam virtutem, & quæ sunt similia. A Deo enim docti sumus, qui literas verè sacras à filio Dei docemur: vnde nec similiter mouent animas, sed diuersa doctrina. Quòd si propter eos qui lubenter reprehendunt, oportebit nos distinguere, cùm dicamus Philosophiam adiuuantem causam & cooperatricem veræ comprehensionis, cùm sit inquisitio veritatis, fatebimur eam esse disciplinam quæ præcedit vim cognoscendi, non causam statuentes eam quæ est causa adiuuans, neque continens, id quod adiuuat cooparatur, nec perinde ac nō sit veritas absq; philosophia. Nam omnes ferè absq; disciplinarum orbe & Græca philosophia, alij autem etiam absq; literis, diuina & barbara moti philosophia, potestate eum qui de Deo est per fidē accepimus sermonem, eruditi sapientia quæ per se operatur. Quod autem facit cum alio, cùm sit imperfectum vt per se operetur, cooperantem & adiuuātem causam dicimus, vt quod sit nominatum causa eò quòd vnà venerit cum alio, per se autem non possit prębere verum effectum. Quanquā per se quoq; aliquando Gręcos iustificabat Philosophia, sed non ad vniuersam ac generalem iustitiam, ad quam cooperatrix & adiutrix inuenitur, sicut primus & secundus gradus ei qui ascendit in cœnaculum, & Grammaticus ei qui est philosophaturus. Non quòd per eius ablationem, vniuerso ac generali verbo desit aliquid, vel perimatur veritas. Nā & visus & auditus & vox cōfert ad veritatem. Mens autem est quæ eam apposite & naturaliter cognoscit. Sed ex ijs quidē quæ adiuuant & cooperantur, alia quidem maiorem, alia verò minorem vim afferūt. Perspicuitas itaq; opem fert ad tradendā veritatē: & dialectica, ne prosternamur ab hæresibus quæ faciunt incursiones. Et est quidem per se perfecta, & nullius indiga Seruatoris doctrina, cùm sit Dei virtus & sapientia. Accedens autem Græca philosophia, nō veritatem facit potentiorem, sed debilem aduersus eā efficit Sophisticā argumentationē, & propulsans dolosas aduersus veritatē insidias, dicta est vineę apta sepes & vallus. Et quæ est quidē ex fide veritas tanquā panis necessaria est ad viuendū. Quæ autem pręcedit disciplina, est obsonio similis & bellarijs. Desinente cœna suauis est placētula, vt ait Pindarus Thebanus. Apertè autē dicit scriptura: Astutior erit simplex intelligens. Sapiens autem suscipiet cognitionem. Et: Qui à se ipso quidem accepit, gloriam propriam quærit, inquit Dominus. Qui autem quęrit C gloriā eius qui misit ipsum, verus est, & iniustitia non est in ipso. Contrà igitur se iniustè gerit qui sibi vsurpauit ea quæ sunt Barbarorum, & tanquam propriam iactās, suam agens gloriam, & ementiēs veritatem: is fur dictus est à scriptura. Dicit itaq;: Fili ne sis mendax, deducit enim mendacium ad furtum. Iam autem fur, id quod habet surreptum, verè habet, etiam si sit aurum, etiam si argentum, etiam si oratio, etiā si decretum. Ex parte ergo ea quæ suffurati sunt, vera quidem sunt, sciunt aūt per cōiecturam, & rationū moti necessitatibus. Si itaq; didicerint, agnoscent comprehendendo. Et quòd philosophorum quidem dogmata ex Hebræis surrepta fuerint, tractabimus paulò pòst. Prius autē, quod erat consequens, iam dicendum est de temporibus Mosis, per quæ ostendetur citra vllam controuersiam, Hebræorū philosophiā esse quauis Philosophia longè antiquiorem. Ac de ijs quidem accuratè dictum est à Tatiano in oratione aduersus Græcos. Dictum est autē etiam à Casiano in primo Exegeticōn: postulat tamē cōmentarius, vt nos quoq; ea percurramus quæ in loco dicta sunt. Apiō itaq; Grāmaticus, qui πλειστονίκης, id est, sępe victor est cognominatus, in quarto historiarum Ægypti, etsi esset infensus Hebræis vtpote genere Ægyptius, adeò vt etiam aduersus Iudæos librū scripserit, Amosis Ægypti Regis mentionē faciens, eius rerum gestarum testem adducit Ptolemęum Mendesium. Eius autem verba sic habent: Effodit autē Amosis Athyriam, qui fuit tempore Inachi Argiui, vt scripsit in temporibus Mendesius Ptolemæus. Hic autem Ptolemæus, fuit quidē sacer-

Marginalia: σύγκρισιν. / ἐπιβολαῖς. / λογικῶς. / τὸ γνωστικόν. / B / γραμματικός. / προσφυῶς. / σοφίσματα. / θριγκός. / φυγάλιον. / ἀκούσας. / Ecclesi. 17. / καταληπτικῶς. / συνεσυράμθαι.

dos. Regum autem Aegypti res gestas tribus libris exponens, dicit tempore Amosis Aegypti Regis Mose duce Iudæos exijsse ex Aegypto. Ex quibus cernitur Mosen floruisse tempore Inachi. Ex rebus autem Græcis, sunt antiquiores Argolicæ, eæ inquam, quæ ducunt originem ab Inacho, vt docet Dionysius Halicarnassæus in Temporibus. His autem, quatuor quidem generationibus sunt res Atticæ recentiores, quæ ducunt originē à Cecrope, qui + duplici fuit natura, & indigena, vt ijsdē verbis dicit Tatianus. Nouem verò, res Arcadicæ à Pelasgo. Dicitur autem hic quoq; indigena. His aūt sunt aliæ, quindecim recētiores, nempe Phtioticæ quæ à Deucalione. Ad tempus aūt rerum Troianarū, ab Inacho generationes quidem viginti vel plures numerantur. Sunt autem anni, vt semel dicam, quadringenti & vltrà. Iam verò res quoq; Assyriorum videbuntur rebus Græcis multis annis antiquiores, ex ijs quę dicit Ctesias. Tricesimosecundo mouit Moses ex Aegypto, tempore Amosis Aegyptij & Inachi Argiui. Fuit autem in Græcia, tēpore quidem Phoronei, qui fuit post Inachum, inundatio, quæ fuit tempore Ogygis, & regnū quod fuit Sicyone, primi quidem Aegialei, deinde Europis, deinde Telchinis, & regnū Cretis in Creta. Acusilaus enim dicit Phoroneum fuisse primum hominum. Vnde etiam Poëta Phoronidis, dixit eum fuisse patrem mortalium hominum. Hinc Plato in Timæo secutus Acusilaum, scribit: Et cū vellet eos aliquādo inducere vt dicerent de rebus antiquis huius ciuitatis, aggreditur dicere quæ sunt antiquissima, de Phoroneo, qui dictus est primus, & de Neobe, & quæ fuerūt post diluuium. Tempore autem Phorbantis fuit Actæus, à quo Actæa Attica. Tempore autem Triopæ, Prometheus & Atlas & Epimetheus, & qui duplicem naturam habebat Cecrops, & Ino. Tempore autem Crotopi, quæ Phaëtontis tempore fuit inflammatio, & quæ tempore Deucalionis fuit inundatio. Tempore autem Stheneli, & regnum Amphictyonis, & Danai in Peloponnesum aduētus, & Dardaniæ à Dardano ędificatio. A Ioue qui genitus, inquit Homerus, nouit qui cogere nubes. & ex Creta in Phœniciam deductio. Tēpore autē Lyncei, Proserpinæ raptus, & extructio templi quod est in Eleusine, & Triptolemi agricultura, & Cadmi Thebas aduentus, & regnum Minois. Tempore autem Prœti, bellum Eumolpi aduersus Athenienses. Tempore autem Acrisij, Pelopis ex Phrygia transitus, & Iouis Athenas aduentus, & secundus Cecrops, & Persei & Bacchi res gestæ, & Orpheus & Musæus. Octauodecimo autem anno regni Agamemnonis captum est Ilium regnantis Demophontis Thesei filij anno primo, duodecimo mēsis Thargelionis, vt ait Dionysius Argiuus. Aegias autē & Dercylus in tertio, octauo mensis Panemi desinentis. Hellanicus enim dicit duodecimo mense Thargelionis, & nonnulli eorū qui Attica scripserunt, octauo desinentis, postremo anno regnante Menestheo, in plenilunio. Noctis quidem erat mediū, inquit is qui paruam fecit Iliadem, & splendebat lucida Luna. Alij autem eodem die Scirrophorionis. Theseus autem qui erat æmulator Herculis, est Troianis vna generatione antiquior. Tlepolemi itaq; qui fuit filius Herculis, meminit Homerus, quòd in Ilium militauerit. Ostenditur ergo Mosen fuisse antequā Bacchus referretur in Deos, annis * sexcentis quatuor: siquidem in Deos refertur tricesimo secūdo anno regni Persei, vt ait Apollodorus in Chronicis. A Baccho autē ad Herculem, & viros illos fortes qui cum Iasone in Argo nauigarunt colligūtur anni sexaginta tres. Et Aesculapius & Dioscuri, id est Castor & Pollux, cum eis nauigarūt vt testatur Apollonius Rhodius in Argonauticis. A regno autem Herculis quod fuit Argis, vsq; ad ipsius Herculis & Aesculapij in Deos relationem, colliguntur anni triginta, vt vult Apollodorus chronographus. Hinc autem vsq; ad relationem in deos Castoris & Pollucis, sunt anni quinquaginta tres. Hoc vtiq; tempore Troia quoq; capta fuit. Quòd si Hesiodo quoque poëtæ oportet credere, eum audiamus:

*Editus estq; Ioui pulchra ex Atlantide Maia*
*Preco Deūm, fuerat cūm sacrum ingressa cubile.*
*Præclarum at peperit natum Cadmæa, coijsset*
*Cum furtim Semele, Bacchum ualde exhilarantem.*

*τεσσαράκοντα græcè est, sed legēdum esse τέσσαρσι colligitur ex supputatione.*

*+ διφυῆς.*

*Græcum habet πρωτόνικον τὰ δυεῖν, sed puto legendum πρωτικὰ δίκα.*

*θαργηλιῶνος λήγοντος. Est aūt hæc comparatio more Atheniensiū, qui post uicesimū Lunæ diem ita cōputabant, ὀγδόη φθίνοντος, ἑβδόμη φθίνοντος.*

** Est corruptus numerus, & fortè pro sexcētis legēdum est trecentis.*

*Mercurius.*

Cadmus quidē pater Semeles tēpore Lyncei venit Thebas, & fuit inuentor Gręcarum literarum. Triopas autem eodem fuit tempore cum Iside, generatione septima ab Inacho. Isidem autem dicunt eandem fuisse quæ Io, propterea quòd oberrans obierit totam terram. Ister autem in libro de Colonia Aegyptiorum, dicit eam fuisse filiam Promethei. Prometheus autem fuit tempore Triopæ, septima generatione post Mosen. Quare vel ante eam quæ ex Græcorum sententia fuit hominis generationem

A tionem, Moses videtur floruisse. Leo autẽ qui tractauit de Dijs qui sunt in Ægypto, dicit Isidem à Græcis vocari Cererem, quæ fuit tempore Lyncei, vndecima generatione post Mosen. Apis autem Rex Argorũ, ædificat Memphim, vt dicit Aristippus in primo Arcadicorum. Aristeas verò Argiuus dicit eum nominatum esse Sarapim, & eum esse quem colunt Ægyptij. Nymphodorus autem Amphipolitanus in tertio de legibus Asiæ, dicit Apim taurum mortuum & conditum loculo qui σορὸς Græcè dicitur, fuisse repositum in templo dæmonis qui colebatur, & hinc appellatum fuisse Soroapim, & postea quadam eorum qui illic habitabant consuetudine Sarapim. Est autem Apis tertius ab Inacho. Iam verò Latona fuit tempore Tityi. Nanque à Latona clara est Iouis incita coniux. Tityus autem fuit eodem tempore cum Tantalo. Meritò ergo scribit etiam Pindarus Bœotius: In tempore autem Apollo fuit genitus. Nec mirum, cùm etiam Admeto vnà cum Hercule inueniatur seruijsse mercede in magnum annum. Zethus autem & Amphion inuentores Musicæ, fuerunt circa Cadmi ætatem. Quòd si quis dicat Phemonoëm primam Acrisio responsa cecinisse, sciat quòd viginti & septem annis post Phemonoëm fuit Orpheus, & Musęus, & Linus præceptor Herculis. Homerus autem & Hesiodus fuere Iliacis multò recentiores, post quos longè fuere recentiores Græcorum legislatores Lycurgus, & Solon, & septem sapientes, & Syrius Pherecydes, & magnus Pythagoras qui longè fuerunt inferius circa Olympiadas, vt prius ostendimus. Plurimis ergo qui apud Græcos coluntur Dijs, non solùm ijs qui dicuntur Sapientes & Poëtæ, ostensum est nobis Mosen esse antiquiorem. Neque verò is solus, sed etiam Sibylla dicitur Or-

χρησμῳδῆσαι

B pheo antiquior. De eius enim cognomine, & de ijs quæ ab ea prolata sunt responsis multa dicuntur, & cùm esset Phrygia, appellatam esse Dianam, & cùm ea ad Delphos accessisset, cecinisse:

*O Delphi, Phœbi ferientis qui eminus estis*
*Serui, ueni ad uos Iouis expositura potentis*
*Mentem, in germanum cùm sim bile percita Phœbum.*

Est autem alia quoq; quę vocatur Herophile Erythręa. Harũ meminit Heraclides Ponticus in libro de Oraculis. Mitto Ægyptiam, & Italicã quę Romæ habitauit Carmentale, cuius fuit filius Euãder, qui Romæ templũ Panis, quod Lupercal appellatur, condidit. Operępreciũ est autem, cùm in hunc locum deuenerimus, aliorũ quoque Prophetarum, qui post Mosen fuerunt apud Hebræos, tempora exquirere. Post quã è vita excessit Moses, dux populi succedit Iesus, qui bellum quidem gessit lxvj. annis: in terra autem illa bona quieuit xxv. annis. Vt aũt cõtinet liber Iesu, Mosi successit vir prædictus annis xxvij. Deinde cùm peccassent Hebræi, traduntur Mesopotamiæ Regi Chusachar octo annis, vt refert liber Iudicum. Quum autem postea Deum orassent, ducem accipiunt Gothoniel, fratrem Chaleu iuniorem ex tribu Iuda, qui cùm interfecisset Regẽ Mesopotamiæ, præfuit populo annis deinceps quinquaginta. Et cùm rursus peccassent, traditi sunt Æglom Regi Moabitarum annis xxviij. Cùm autẽ rursus rediissent, eorũ dux fuit Aod annis octoginta, vir qui am-

κάρμαλιν

C babus manibus pro dextra vtebatur, ex tribu Ephraim: Is est qui Æglom de medio sustulit. Mortuo aũt Aod cùm rursus peccassent, traditi sunt Iabim Regi Chanaã xx. annis. Eius tempore fuit Prophetissa Debbora vxor Labidoth ex tribu Ephraim. erat aũt Pontifex Ozius filius Riesu. Cùm per eam exercitum duxisset Barac filius Benner ex tribu Nephtalim, acie cõgressus cum Sisara principe exercitus Iabim, potitus est victoria. Atq; hinc quidẽ populo præfuit Debbora, eum iudicans. Ea autem mortua cũ rursus peccasset populus, Madianitis traditur annis vij. Post hęc Gedeon ex tribu Manassæ, filius Ioæ, cùm ccc. in aciẽ produxisset, & centum & viginti eorũ millia cecidisset, præfuit annis xl. Post quem eius filius Achimelech tribus annis. Ei successit Boleas filius Bedan filij Charran, ex tribu Ephraim, xxiij. annis magistratum obtinẽs. Post quẽ cùm rursus peccasset populus, octodecim annis traditur Ammanitis. Cùm autem ducti fuissent pœnitẽtia, eis præest Iephte Galaadites ex tribu Manassæ, & pręfuit vj. annis, Post quem dux fuit Abatthan, qui erat ex Bethleem, de tribu Iuda, ánnis vij. Deinde Ebron Zabulonites octo annis. Deinde Æglõ ex Ephraim octo annis. Nonnulli aũt septem annis Abatthan cõiungunt quatuor annos Ebrom. Et cùm post eum rursus peccasset populus, alienigenis Philistæis subijcitur quadraginta annis. His autem reuersis, præest Sampson ex tribu Dan, cùm in bello vicisset alienigenas. Is fuit dux xx. annis. Et post eum, cùm nullus esset qui præesset, populũ iudicauit Eli sacerdos quadraginta annis. Ei succedit Samuel Propheta, cũ

*Græcè est τεσσαράκοντα lego τέσσαρα. ἀναρχίας ὄντος*

quo regnauit Saul, qui viginti septem annis regnum obtinuit. Is etiam Dauidem vnxit Regem. Mortuus est autem Samuel duobus annis ante Saulem, cùm esset Pótifex Abimelech. Is Saulem vnxit in Regem, qui primus post Iudices regnauit in Israël. Quorum vniuersus numerus vsq; ad Samuelem, anni sunt quadringenti sexaginta tres, menses septem. Deinde, vt habetur Regum primo, regnauit renouatus Saul xx. annis. Post mortem autem Saulis, regnat Dauid secundò in Chebron, filius Iesse, ex tribu Iuda, quadraginta annis, vt continet secundus Regum. Erat autem Pontifex Abiathar, filius Abimelech, ex cognatione Eli. Fuerunt autem Gad & Nathan prophetæ eius tempore. Fiunt ergo à Iesu Naue vsq; ad tempus quo Dauid regnum accepit, vt nonnulli quidem volunt, anni quadringenti quinquaginta: vt autem proposita ostendit chronographia, colliguntur anni quingenti xxiij. menses septem, vsq; ad mortē Dauidis. Postea regnauit Solomon filius Dauid annis xl. Eius tempore fuit perpetuò propheta Nathan, qui etiam eū adhortatus est vt templum extrueret. Similiter aūt Achias quoq; prophetauit in Silo. Erant autem ambo quoq; Reges, Dauid & Solomon prophetæ. Sadoc autem primus Pontifex sacrificauit in templo quod ædificauit Solomon qui erat octauus ab Aaron primo Pontifice. Sunt ergo à Mose vsq; ad ætatem Solomonis, vt dicunt quidē aliqui, anni quingenti nonaginta quinq;: vt alij autem, quingenti septuaginta sex. Si quis autem, ijs qui sunt à Iesu vsq; ad Dauid, quadringētis quinquaginta annis, quadraginta annos quibus dux fuit Moses cōnumerauerit, & alios octoginta annos quot natus erat Moses priusquàm exirent ex Ægypto Hebræi, & his adiecerit quadraginta annos regni Dauid, colliget omnes annos sexcentos decem. Accuratius autem ac perfectius procedet nostra chronographia, si quingentis & viginti tribus annis & septem mensibus vsq; ad mortem Dauidis, adiecerit quis centum & viginti annos Mosis, & Solomonis xl. Colliget enim omnes vsq; ad mortem Solomonis, annos sexcentos octoginta tres, septem mēses. Hiramus dat suam filiam Solomoni, quo tempore post Troiam captam venit Menelaus in Phœniciā, vt ait Menander Pergamenus, & Letus in Phœnicijs. Post Solomonem autem regnat Roboam, filius eius, annis septendecim. Erat autē Pontifex Abimelech filius Sadoc. Eius tempore diuiso regno in Samaria, regnat Hieroboam ex tribu Ephraim, seruus Solomonis. Prophetauit autem Achias quoq; Silonites, & Sameas filius Amame, qui etiā ex Iuda abijt ad Roboam, & prophetauit super altare. Post eum regnauit Abiu filius eius, annis xxiij. & similiter eius filius Athaman. Is in senectute laborauit podagra. Prophetauit autem eius tēpore Iehu filius Ananię. Post eum regnauit Iosaphat eius filius, annis quinq;. Eius tēpore prophetarunt Helias Thesbites, & Micheas filius Ieble, & Abdias filius Ananiæ. Tempore aūt Micheæ erat pseudopropheta Sedecias filius Chanaan. Post eos sequitur regnum Ioran filij Iosaphat ad viij. annos, cuius tempore prophetauit Helias, & post Heliam Helisæus filius Saphat. Eius tempore, ij qui erant in Samaria, comederunt stercus columbæ, & suos liberos. Tempus autem Iosaphat extenditur ab vltima parte tertij Regum vsque ad quartum. Tempore autem Ioran assumptus est Helias. Cœpit autem prophetare Elisæus filius Saphat sex annis, cùm esset natus annos xl. Deinde Ochozias regnauit anno vno. Eius tempore adhuc prophetabat Helisæus, & cū eo Abdadonæus. Post eum mater Oziæ Gotholia regnat octo annis, interfectis filijs sui fratris: erat enim ex genere Achab. Soror autem Oziæ Iesabæa suffurata est filium Oziæ, Ioas, & ei postea regnum tribuit. Tempore huius Gotholiæ adhuc prophetabat Helisæus, postquàm regnauit, vt dixi antea, Ioas, qui fuit seruatus à Iesabæa vxore Iodeæ Pontificis. Fiunt autem omnes anni xl. Colliguntur ergo à Solomone vsq; ad mortem Helisæi prophetæ, vt nonnulli quidem dicunt, centum & quinq;: vt alij autem, centum & duo: vt quæ est autem proposita ostendit chronographia, à regno Solomonis anni cētum octoginta vnus. A temporibus autem Troianis vsq; ad ortum Homeri, ex Philochori quidem sententia, fiunt centum & octoginta anni post Ionicam deductam coloniam. Aristarchus autem in commentarijs Archilochijs, dicit eum fuisse tempore deductionis coloniæ Ionicæ, quæ fuit centū & quadraginta annis post Troiana tempora. Apollodorus autē centum annis post deductam coloniam Ionicam, cùm Agesilaus Doryssæus esset Rex Lacedæmoniorum, adeò vt ad eum peruenerit Lycurgus legislator, cū esset adhuc iuuenis. Euthymenes autem in Chronicis dicit eum floruisse cum Hesiodo, tempore Acasti, & natum fuisse in Chio circiter annum cc. post Troiam captam. In hac autem sententia est etiam Archemachus in tertio Euboeicorum. Quo fit, vt ipse & Hesiodus sint Helisæo

(margin: ἀνανεωθείς; ἐπὶ Ἀκάστου αὐτοῦ.)

A ſæo propheta recentiores. Quòd ſi quis velit ſequi Grãmaticum Cratetem, & dicat fuiſſe Homerum circa reditum Heraclidarum, octoginta annis poſt captam Troiã, inuenietur rurſus Solomone poſterior, cuius tempore fuit Menelai aduetus in Phœniciam, vt antè dictum eſt. Eratoſthenes autem centeſimo anno poſt captam Troiam, refert Homeri ętatem. Quinetiã Theopompus in quadrageſimo tertio rerum Philippicarum, refert Homerum fuiſſe quingentis annis poſt eos qui in Ilio militarunt. Euphorion autem in opere de Aliadibus, dicit eum fuiſſe tempore Gygis, qui cœpit regnare octauadecima Olympiade, quem etiam dicit primum nominatum eſſe tyrannum. Soſibius autem Lacõ in deſcriptione temporum, redigit Homerum in viij. annũ regni Charilli Polydecti. Ac regnauit quidem Charillus annis ſexaginta quatuor, poſt quem filius Nicander annis xxxix. In xxxiiij. eius anno dicunt fuiſſe poſitam primam Olympiadem, adeò vt eſſet vtique Homerus nonaginta annis ante quàm poſita eſſent Olympia. Poſt Ioam regnum excipit Amaſias eius filius annis xxxix. Ei ſimiliter ſuccedit Ozias eius filius annis quinquaginta duobus. Is autem mortuus eſt leproſus. Eius autem tempore propheta runt Amos & Eſaias eius filius, & Oſee filius Beeri, & Ionas filius Amathi, qui erat ex Geth Chober, qui prædicauit Nineuitis, qui ex ventre ceti exceſsit. Deinde regnat Ioathan filius Oziæ annis xvj. Eius tempore adhuc prophetabat Eſaias & Oſee, & Micheas Moaraëthites, & Ioël filius Bathuel. Ei ſuccedit eius filius Achaz annis ſedecim. Eius tempore xv. anno abductus eſt Iſraël Babylonem, & Salmanaſar rex Aſſyriorum tranſmigrare fecit eos qui habitabant in Samaria, ad Medos & Babylonem. Achaz rurſus ſuccedit

B Oſeæ annis octo. Deinde Ezechias annis xxix. Ei propter ſanctitatem, cùm ad finẽ vitæ perueniſſet, largitur Deus per Eſaiam, vt viueret alios quindecim annos, per regreſſum Solis. Ad eum vſq; peruenerunt prophetantes Eſaias, & Oſee, & Michæas. Hi autem dicuntur fuiſſe poſt ætatem Lycurgi legiſlatoris Lacedæmoniorum. Dieuchidas enim in quarto Megaricorum, circa ducenteſimum nonageſimum annum ex quo Troia fuit ſecundò capta, dicit floruiſſe Lycurgũ. Eſaias autem à regno Solomonis, cuius tempore oſtenſum eſt Menelaum veniſſe in Phœniciam, ducenteſimo anno adhuc propheta ſſe cernitur, & cum eo Michæas & Oſee & Ioël filius Bathuel. Poſt Ezechiam autẽ, filius eius Manaſſes regnat annis quinquagintaquinq;. Deinde eius filius Amos duobus annis. Poſt quem eius filius Ioſias iuſti & æqui obſeru antiſsimus, annis triginta & vno. Is impoſuit membra hominum ſuper membra idolorum, quemadmodum ſcriptum eſt in Leuitico. Eius tempore anno xviij. paſcha actum eſt, quod à Samuele, neq; in eo quod interceſſerat tempore fuerat celebratum. Tunc etiam Chelcias ſacerdos, pater Hieremiæ Prophetæ, cùm in librum legi s incidiſſet in templo reconditum, eo tecto vitam finijt. Eius tempore prophetauit Olda, & Sophonias, & Hieremias. Tempore autẽ Hieremiæ fuit pſeudopropheta Ananias filius Ioſiæ. Is cùm non audijſſet Hieremiam prophetam, interemptus eſt à Nechao Rege Ægypti in fluuio Euphrate, cũ ei occurriſſet proficiſcenti aduerſus Ægyptios. Ioſiæ ſuccedit Ieconias, & Ioachas eius filius, menſibus tribus & decẽ

C diebus. Eum Nechao Rex Ægypti vinctum abduxit in Ægyptum, cùm pro eo conſtituiſſet Regem fratrem eius Ioachim, tributarium regionis, annis vndecim. Poſt eum Ioachim eiuſdem cum eo nominis, regnauit tribus menſibus. Deinde Sedechias annis vndecim, & ad eum vſq; peruenit prophetans Hieremias. Prophetarunt autem & Buzi & Vrias filius Samei, & cum eo Abacum. Hîc accipiunt finem Hebræi Reges. Fiunt ergo à Moſis quidem ortu vſque ad hanc tranſmigrationem, vt nonnulli quidem dicunt, anni noningenti ſeptuaginta duo: ex accurata autem & exacta chronographia, mille octogintaquinq;, ſex menſes, decem dies. A regno autem Dauidis vſq; ad captiuitatem quæ facta eſt à Chaldęis, anni quadringenti quinquaginta duo, mẽſes ſex: vt autem colligit noſtra accurata temporum ſupputatio, quadringẽti anni octogintaduo, menſes ſex, decem dies. In xij. autem anno regni Sedechiæ, Nabuchodonoſor ſeptuaginta annis ante principatum Perſarum, aduerſus Phœnicas & Iudęos bellum geſſit, vt dicit Beroſus in hiſtorijs Chaldaicis. Ioabas autem ſcribens de Aſſyrijs, fatetur ſe à Beroſo ſumpſiſſe hiſtoriam, vera eſſe quæ ab eo dicuntur teſtificans. Nabuchodonoſor ergo excæcatum Sedechiam abducit Babylonem, & totum facit populum tranſmigrare. Fuit autẽ hæc captiuitas lxx. annis, paucis exceptis, qui confugerunt in Ægyptum. Prophetarunt autem etiam tempore Sedechiæ Hieremias adhuc & Abacum. Quinto autem anno eius regni Babylone prophetauit Ezechiel. Poſt quem Naum Propheta. Deinde Daniel. Rurſus verò poſt

*Græcum habet ἐπὶ τεσσαράκοντα τρία φιλιππικῶν, ſed puto legẽdũ ὡδὶ τεσσαρακοστῷ τρίτῳ φιλιππικῶν aut fortè ὡδὶ τεσσαράκοντα τρία, id eſt, in quadraginta tribus, ut qui nõ curet exprimere in quo lib.*

τελειδίῳ

eum prophetarunt Aggæus & Zacharias, primi Darij tempore, duobus annis. Post A
*Malachias ab Hebræis uocatur Angelus.*
quem qui fuit in xij. Angelus. Post Aggæum autem & Zachariam, Neëmias, qui fuit
princeps pocillatorum Artaxerxis, filius autem Acheli Israëlitæ, ædificauit ciuitatē
Hierusalem, & templum extruxit. In hac captiuitate fuit Esther & Mardocheus, cu-
ius habetur liber, sicut etiam Maccabæorum. In hac captiuitate cùm statuā adorare
noluissent Misaël, Ananias & Azarias, iniecti in fornacem ignis, seruati sunt apparē-
te Angelo. Tunc per Draconem Daniel iniectus in lacum leonum, ab Abacum diui-
na prouidentia nutritur, septimo die seruatur. Hic etiam factum est signum Ionę, &
Tobias per Raphaëlem Angelum Saram ducit vxorem, cùm dęmon septem primos
eius procos sustulisset: & post nuptias Thobiæ, pater eius Tobet visum recipit. Hic
Zorobabel cùm aduersarios vicisset sapientia, emit à Dario renouationem Hierusa-
lem, & cùm Esdra redijt in patriam, per quem facta populi redemptio, & diuinitus
inspiratorum eloquiorum recēsio & renouatio, & pascha salutare celebratum est, &
soluta est affinitas quæ Hebræis intercesserat cū alienigenis. Publico autem præco
nio proclamauerat Darius Hebręorum restitutionem. Cùm aūt Darij tempore effe-
ctum esset quod promiserat, celebratum festum Encæniorum, sicut etiam Taberna-
culorum. Fiunt aūt anni omnes cū annis captiuitatis vsq; ad populi restitutionē, ab
ortu quidem Mosis, anni mille centū quinquagintaquinq;, menses sex, decem dies.
A regno aūt Dauid, anni, vt nōnulli quidem, trecenti quinquagintaduo: vt aūt dicā
accuratius, quingenti septuaginta duo, menses sex, decem dies. Impleta sunt ergo à
captiuitate quæ tempore Hieremiæ Prophetæ fuit Babylone, ea quę à Propheta Da B
*Daniel. 9.*
niele dicta sunt, quæ sic habent: Septuaginta hebdomades abbreuiatę sunt super po
pulum tuum, & super ciuitatem sanctam tuam, vt cōsumatur peccatum, & vt obsi-
gnet peccata & deleat iniquitates, & vt expiet, & vt agat iustitiam sempiternā, & ob
signet visionem & Prophetam, & vngat sanctum sanctorum: & cognosces & intelli-
ges ab exitu sermonis, vt respondeas, & ędifices Hierusalem. Vsq; ad Christum Du-
cem hebdomades septem & hebdomades septuaginta duæ erunt, & conuertetur &
ædificabitur platea & murus, & inanientur tempora, & post sexaginta duas hebdo-
modas exterminabitur chrisma, & iudicium non est ipsi, & ciuitatem & sanctum
destruet cum Duce veniente. Excindentur in inūdatione, & vsq; ad finē belli abbre-
*διαθήκην testamentū pactum.*
uiati deletionibus. Et confirmabit testamentum multum hebdomade vna, & in di-
midio hebdomadis tolletur sacrificium meum & libamen, & in templo abomina-
tio desolationum, & vsque ad consumationem temporis, consumatio dabitur in
desolationem. Et dimidium hebdomadis cessare faciet thymiama sacrificij: & expā-
sio destructionis vsq; ad consumationem & instar destructionis libaminis. Quòd ita
que in septem hebdomadibus ædificatum sit templum, hoc clarū est. In Esdra enim
scriptum est: Et sic fuit Christus Rex dux Iudæorum, cùm implerę essent septem heb
domades in Hierusalē, & in sexaginta duabus hebdomadibus quieuit vniuersa Iu-
dęa, & fuit absq; bellis, & Dominus noster Christus sanctus sanctorum cùm venisset,
& visionem implesset & Prophetam, in carne vnctus est patris sui spiritu. In his sexa-
ginta duabus hebdomadibus, quemadmodum dixit Propheta, & in vna hebdoma- C
de, Dominus, dimidium hebdomadis tenuit Nero regnans, & in sancta ciuitate Hie
rusalem statuit abominationem: & in dimidio hebdomadis, & ipse sublatus est, &
Otho & Galba & Vitellius. Vespasianus autem & imperium obtinuit, & Hierusalē
diruit, & sanctum desolatum reddidit. Et quòd hæc ita se habeant, ei qui potest qui-
dem intelligere, clarum est, sicut dixit Propheta. Cùm itaq; impleretur vndecimus
annus, in principio sequentis, regnante Ioachim, facta est captiuitas Babylonica à
Rege Nabuchodonosor, cùm septimo iam anno Rex esset Assyriorum, Vafreus au-
*ἄρχοντος φιλίππου*
tem secundo anno esset Rex Ægyptiorum, Philippus autem magistratum summum
gereret Athenis, primo anno quadragesimæ octauæ Olympiadis. Māsit aūt captiui
tas annis septuaginta, vt quę cessarit anno secundo Darij Hystaspis filij, qui fuit Rex
Persarum, Assyriorum & Ægyptiorum, cuius tempore, vt priùs dixi, Aggæus & Za-
charias, & qui fuit ex duodecim Angelus, prophetauere. Erat autem Pontifex Iesus
Iosedec filius. In secundo autem anno regni Darij, quem dicit Herodotus Mago-
rum dissoluisse imperium, mittitur Zorobabel filius Salathiel, vt excitet & exornet
templum quod erat Hierosolymis. Colliguntur autem sic quoq; Persarum tempo-
ra. Cyrus annis triginta: Cambyses nouendecim: Darius quadraginta sex: Xerxes
vigintisex: Artaxerxes quadraginta & vnum: Darius octo, Artaxerxes quadraginta
duos: Ochus vel Arses, tres. Colliguntur autem simul anni regum Persarum, ducen-

A ti trigintaquinq;. Cùm hunc itaq; Darium sustulisset Alexander Macedo ijs annis qui sunt adiecti regnare incipit. Similiter ergo Macedonum quoq; Regum tempora sic colliguntur. Alexāder annis decē & octo: Ptolemæus Lagi filius, annis quadraginta: Ptolemæus Philadelphus annis vigintiseptē: deinde Euergetes, annis viginti quinq;: deinde Philopater, annis septendecim: post quem Epiphanes, annis viginti quatuor: ei succedit Philomater, & regnat annis trigintaquinq;: post quē Fuscon, annis vigintinouē: deinde Lathurus, annis trigintasex: deinde qui fuit cognominatus Dionysius, annis vigintinouē: postrema regnauit Cleopatra vigintiduobus annis. Post quam fuit regnū Cappadocum octodecim dierum. Fiunt ergo simul coniuncta Macedonū tempora, anni trecenti duodecim, dies octodecim. Ostenditur ergo eos qui tempora Darij Hystaspis filij secūdo anno eius regni prophetauere, nempe Aggæū & Zachariā, & Angelum qui fuit ex duodecim, cùm in primo anno quadragesimæ octauæ Olympiadis prophetarint, esse Pythagora antiquiores, qui fertur fuisse sexagesima secunda Olympiade: & Thalete, qui ex Græcorum sapientibus fuit antiquissimus, qui fuit circa quinquagesimam Olympiadem. Qui autem cum Thalete connumerati sunt sapientes, fuerunt eodem tempore, vt ait Andrō in Tripode. Heraclitus enim cū esset Pythagora posterior, eius in suis scriptis meminit: vnde citra controuersiam, ætate eorum qui prius dicti sunt Prophetarum simul cum ijs etiam qui septem dicuntur sapientes, antiquior fuerit prima Olympias, quæ etiā ostenditur fuisse Iliacis posterior, quadringentis septem annis. Facilè ergo potest perspici,
B Solomonem qui fuit tempore Menelai (is autem fuit tēporib. Troianis) fuisse Grçcorū sapientibus multis annis antiquiorem. Eo autē rursus quot sit annis prior Moses, in ijs quæ antè dicta sunt à nobis declaratū est. Alexander autem qui Polyhistor, hoc est, Multiscius est cognominatus, in suo opere de Iudæis, aliquas scripsit epistolas, Solomonis quidem & ad Vafrem Regem Ægypti, & ad Regem Phœniciæ Tyriorum, & eorū ad Solomonē, in quibus ostenditur quidem Vafrem octoginta millia virorum Ægyptiorum ei misisse ad templi ædificationem: alterum autem totidē cum architecto Tyrio, ex matre Iudæa, ex tribu Dauid, vt illic scriptum est, cui nomen Hyperon. Quinetiam Onomacritus Atheniensis, cuius dicuntur esse poëmata quæ Orpheo adscribuntur tempore principatus Pisistratidarum, circa quinquagesimam Olympiadem inuenitur. Et Orpheus Musæi discipulus qui vnà cum Hercule nauigauit. Amphion autem duabus generationibus præcedit Iliaca. Demodocus verò & Phemius, post Troiam captam: ille quidem apud Phçacas, hic verò apud Procos, propter artē pulsandi citharā in magna erant existimatione. Iā verò quç Musæi feruntur esse respōsa, aiunt esse Onomacriti. Cratetem verò Orphei, Zopyri Heracliotæ, & descensum ad inferos esse Prodici Chij. Ion autem Chius in trigrammis refert Pythagoram hæc quoq; Orpheo tribuere. Epigenes autem in ijs quæ scripsit de poësi quæ refertur ad Orpheum, dicit esse Cercopis Pythagorei descensum ad inferos, & sacram orationē: peplum & aūt & Physica, Brontim. Porrò autem nonnulli quoq; Terpandrum inter priscos referunt. Hellanicus certè eum refert fuisse tēpore
C Medç. Phanias autem ponens Leschen Lesbium ante Terpandrum, refert Terpandrum esse Archilocho recentiorem, Leschen autē concertasse cum Arctino & vicisse. Xāthus autem Lydius circa octauamdecimam Olympiadem. Vt autem Dionysius, circa quintam decimam Olympiadem Thasum fuisse conditā, vt sit consentaneū iā cognitum fuisse Archilochum post vicesimam Olympiadem. Meminit certè & Magnetum exitij, quod paulò antè fuerat. At fertur quidem Simonides fuisse tempore Archilochi: Callinus autem non multò antiquior. Magnetum enim qui perierant meminit Archilochus. Hic verò, vt quorum essent res secundæ, meminit. Eumelus autem Corinthius cùm esset antiquior, dicitur peruenisse vsq; ad Archiam qui condidit Syracusas. Et hęc quidem inductus sum vt dicerem, quòd maximè quidem inter vetustissimos Poëtas ponant Cyclicos. Iā verò inter Græcos quoq; dicūtur fuisse multi qui responsa dederunt, sicut Bacides: vnus quidā Bœotius, alter verò Arcas, χρησμολόγοι, qui multa multis prędixerūt. Atheniensis aūt Amphileti consilio Pisistratus quoq; confirmauit tyrannidem, cùm ei inuadendi tempus significasset. Taceatur enim Cometa Cretensis, Cyniras Cyprius, Admetus Thessalus, Aristæus Cyrenæus, Amphiaraus Atheniensis, Timotheus Corcyreus, Demenetus Phocensis, Epigenes Thespiensis, Nicias Carystius, Aristo Thessalus, Dionysius Carthaginensis, Cleophon Corinthius, Hippo filia Chironis, & Bœo, & Nanto, & Sibyllarū turba, Samia, Colophonia, Cumana, Erythræa, Phyto, Taraxandra, Macetis, Thessala, Thespro-

tis: & rursus Chalchas & Mopsus qui fuerunt Troianis temporibus: antiquior autem Mopsus, vt qui nauigaret vnà cum Argonautis. Aiunt autem Battum Cyrenæum composuisse eã quæ Mopsi dicitur diuinationem. Et Dorotheus in primo libro qui inscribitur Pandecta, refert Mopsum adijsse Alcyonem & Coronem. Præscientiæ autem Pythagoras quoq; Magnus semper mẽtem adhibuit, & Abaris Hyperboreus, & Aristęas Procõnesius, & Epimenides Cretensis qui venit Spartam, & Zoroaster Medus, & Empedocles Agrigentinus, & Phormio Lacon. Quinetiam Polyaratus Thasius, & Empedotimus Syracusanus, & post hos maximè Socrates Atheniensis. Est enim mihi, inquit in Theage, qđ ab ineunte ætate diuina sorte accidit, signũ dæmonis. Id autem est vox, quæ vbi fuerit edita, retinet ne faciã quod sum facturus, hortatur aũt nunquã. Et Execestus Phocensiũ tyrãnus duos gestans * incantatos annulos, qui inter se inuicem ab eis edebatur sonitu, sciebat tempus rerum gerendarũ, mortuus tamen est dolo interfectus, etiam si id ei prius significasset sonitus, vt dicit Aristoteles in opere de Repub. Phocensium. Quinetiam ex ijs qui aliquando fuere homines in Ægypto, opinione autem hominũ Dij fuerunt, Hermes Thebanus, & Æsculapius Memphitanus, & rursus Tiresias & Manto Thebis, vt dicit Euripides. Iam Helenus & Laocoon & Oenonę & Brenus in Ilio. Crenus enim vnus Heraclidarũ dicitur insignis vates, & Iacus alius in Elide, à quo Iacidę, & Polyidus Argis & Megaris, cuius meminit Tragœdia. Quid opus est recensere Telemũ, qui cùm esset vates Cyclopum, prædixit Polyphemo ea quæ in errore Vlyssis euenerunt: aut eũ qui erat Athenis Onomacritum: aut Amphiaraum, qui cum septẽ qui aduersus Thebas bellum gesserunt, fertur Troia capta vna generatione fuisse posterior: aut Theoclymenum in Cephalenia, aut Telmessum in Caria, aut Galeum in Sicilia? Præter hos autem fuerint etiam alij, Idmon qui fuit cum Argonautis, Phemonoë Delphis, Mopsus Apollinis filius, & Manteus in Pamphylia, & Amphilochus Amphiarai filius in Cilicia, Alcmeon apud Acarnanes, Anias in Delo, Aristander Telmessensis, qui fuit cum Alexandro. Iam verò Philochorus, in primo de diuinatione, refert Orpheum fuisse Vatem. Theopompus autem & Ephorus & Timæus Orthagoram quendam Vatem fuisse scribunt, quemadmodum Pythocles Samius in quarto rerum Italicarum Caium Iulium Nepotem. Sed illi quidem fures omnes & latrones, vt dicit scriptura, plurima ex obseruatione & ex verisimilib. prędixerunt, sicut medici & Vates † qui coniectant ex regula naturæ, alij autem etiam à dæmonib. incitati, vel per aquas, & suffitus, & aërem aliqua qualitate præditum, perturbati. Apud Hebræos autem Dei virtute & inspiratione, ante legem quidem Adam, qui & in muliere & in animantum nominatione futura prædixit: & Noë, qui prædicauit pœnitentiam. Abraã, Isaac & Iacob, qui apertè non pauca ex futuris & ijs quæ iam instabant præsignificabant. Cum lege autem Moses & Aaron, post quos prophetauere Iesus filius Naue, Samuel, Gad, Achias, Amæas, Iehu, Helias, Michæas, Abdiu, Eliseus, Abdadone, Amos, Esaias, Osee, Ionas, Ioël, Hieremias, Sophonias, Buzi, Ezechiel, Vrias, Abacũ, Naũ, Daniel, Misaël * qui præerat rationibus, Aggæus, Zacharias, & qui erat ex duodecim Angelus. Sunt autem omnes Prophetę xxxv. Ex mulieribus autẽ (nam eę quoq; prophetabant) Sara, & Rebecca, & Maria, Debbora, & Olda. Deinde circa eadem tempora prophetauit Ioannes vsq; ad baptismum salutarem. Post Christi autẽ ortũ, Anna & Symeon. Zacharias enim pater Ioannis, ante filiũ quoq; in Euangelijs dicitur prophetasse. Ab alto ergo à Mose colligamus Græcorum chronographiam. Ab ortu Mosis vsq; ad Iudæorum ex Ægypto exitum, anni octoginta: & qui fuerunt vsq; ad eius mortem, alij quadraginta. Fuit Hebręorũ exitus tempore Inachi † ante Sothiacam reuelationem, egresso ex Ægypto Mose, annis prius quadringentis quadragintaquinq;. A Mosis autem principatu & Inacho vsq; ad inundationem Deucalionis, secundum, inquam, diluuium, & incendium Phaëtonis, quæ quidem tẽpore Crotopi acciderunt, enumerãtur * quatuor generationes. Ad centum autem annorũ numerum reducunrur tres generationes. Ab inundatione autem ad Idę incendium, & ferri inuentionem, & Idæos Dactylos, anni septuaginta tres, & ab Idæ incendio vsq; ad raptum Ganymedis, anni sexaginta quinque. Hinc autem ad Persei expeditionem, quando etiam Glaucus Isthmia statuit propter Melicertam, anni quindecim. A Persei autem expeditione ad Troiam conditam, anni trigintaquatuor. Hinc ad Nauis quę Argo dicta est nauigationem, anni sexagintaquatuor. Ab eo ad Theseũ & Minotaurũ anni xxxij. Deinde ad eos septem qui Thebas oppugnauere, anni decem. Ad Olympicũ autẽ certamẽ quod instituit Hercules propter Pelopẽ, anni tres: &

Right margin: A (beside line 1), B (beside "qui erat Athenis Onomacritum"), C (beside "duodecim Angelus").

*Margin notes:*

* γεγοητευμένους.

† φυσιογνωμονοῦντες.

* Græcè, ὁ τοὺς συλλογισμοὺς, sed lego ὁ ἐπὶ λογισμοὺς qui præerat rationib. Vel forsan stare etiã poterit ὁ τοὺς συλλογισμοὺς, qui syllogismos supple faciebat, quoniã cũ Magis & sapientib. disputans inuictus discesserit.

† Græcum exemplar habet πρὸ τῆς σωθιακῆς περιόδου, id est, ante Sothiacã reuolutionẽ. De ea autem meminit Plutarchus in quæstionib. conuiuialib. Existimo autẽ scripsisse Clemẽtẽ περὶ τῆς ἰλιακῆς ἁλώσεως, id est ante captam Troiam. Ab Inacho enim ad captam Troiã intercessere plus quã quadringẽti anni, ut ipse prius dixit.

* Græcũ habet τεσσαράκοντα, sed lego τέσσαρες.

A &Amazonum Athenas expeditionẽ,&Helenæ raptum à Theseo, anni nouẽ. Hinc
ad Herculis relationem in Deos,anni vndecim. Deinde ad Helenę raptũ ab Alexan
dro,anni quatuor.A Troia aũt capta ad Æneę descensum,& cõditum Lauiniũ, anni
decem,& ad Ascanij imperiũ anni octo:& ad Heraclidarũ descẽsum,anni sexaginta
vnus:& ad Iphiti Olympiadem,anni trecenti triginta octo. Eratosthenes autẽ tem-
pora sic describit.A capta quidem Troia ad Heraclidarum descensum,anni octogin
ta. Hinc autem ad conditam Ioniam anni sexaginta. Quæ autem deinceps conse-
quuntur,ad Lycurgi quidem tutelam,anni centum quinquaginta nouem. Ad annũ
autem qui prima præcedit Olympia,anni centum octo.A qua Olympiade ad trãsi-
tum Xerxis anni ducenti nonaginta septem: à quo ad principium Peloponnesiacĩ,
anni quadraginta octo:& ad cladem quam à Lacedæmonijs accepere Athenienses,
anni vigintiseptem:& ad pugnam Leuctricã anni xxx.Post quam ad Philippi mor-
tem,anni xxxv.Post hæc autem ad Alexandri obitũ,anni duodecim.Rursus à prima
Olympiade nõnulli dicunt ad Romam conditam colligi annos xxiiij. Hinc ad Ba
bylonis à Dario euersionem anni circiter ducenti quadraginta tres. A capta autem
Babylone ad mortem Alexandri,anni centũ octoginta sex.Hinc ad victoriam Augu
sti, quando Antonius sibijpsi mortẽ consciuit Alexandriæ, anni ducenti nonaginta
quatuor,cùm tunc esset Augustus iiij Consul.A quo tempore ad certamen quod Ro
mæ exhibuit Domitianus,anni centũ quatuordecim.A primo autem certamine,vs-
que ad mortẽ Cõmodi,anni centum vndecim. Sunt autem qui à Cecrope quidem
B vsq; ad Alexandrum Macedonem, colligunt annos mille octingentos viginti octo.
A Demophonte autem, mille ducentos quinquaginta: & à Troia capta ad descen-
sum Heraclidarum,annos centum viginti,vel centum octoginta. Ab eo vsque ad E-
uænetum Athenis summum gerentem magistratum,cuius tempore dicunt Alexan-
drũ traiecisse in Asiam,vt Phanias quidem,anni septingenti quindecim:vt Ephorus
autem,septingenti trigintaquinque:vt autem Timæus & Clitarchus,octingenti vi-
ginti:vt autem Eratosthenes, septingenti septuaginta tres:vt autem Duris, à Troia
capta ad Alexandri in Asiam aduentum,anni mille.Hinc ad Euęnetum qui Athenis
summum gerebat magistratum,cuius tempore obijt Alexãder, anni vndecim.Hinc
ad imperium Germanici Claudij Cæsaris, anni trecenti sexagintaquinque. A quo
tempore manifesti sunt anni,qui colliguntur vsq; ad mortem Commodi. Post Grę-
ca autem sunt etiam ex barbarorum supputatione, maxima temporum tradenda
spacia.Ab Adam quidem vsq; ad diluuiũ colliguntur anni bis mille centum quadra
ginta octo,dies quatuor.A Sem autem vsq; ad Abraam anni mille ducenti quinqua-
ginta.Ab Isaac autem vsq; ad terræ diuisionem,anni sexcenti sedecim.Deinde à Iu- κληροδοσίας
dicibus vsq; ad Samuelem, anni quadringẽti sexagintatres,menses septem. Et post
Iudices anni regnorum quingenti septuaginta duo,mẽses sex,dies decem.Post quæ
tempora, Persici regni anni ducenti triginta quinq;. Deinde Macedonici vsq; ad
mortẽ Antonij,anni trecenti duodecim,dies decem & octo. Post quod tempus, re-
gnum Romanorũ vsq; ad mortem Cõmodi,anni ducenti vigintiduo.Et rursus à ca-
C ptiuitate septuagenaria, & populi in patriã terram restitutione, ad captiuitatem
quæ fuit tempore Vespasiani, colliguntur anni quadringenti decem. Postremò au-
tem à Vespasiano vsq; ad mortem Cõmodi inueniuntur anni centum viginti vnus,
menses sex,dies vigintiquatuor.Demetrius autem dicit in libro de Regibus Iudææ,
tribum Iuda,& Beniamin,& Leui,non fuisse abductam in captiuitatẽ à Senacherib,
sed esse ab hac captiuitate vsq; ad vltimã, quã Nabuchodonosor fecit ex Hierosoly-
mis,annos cxxviij.mẽses sex.Ex quo autem decem tribus abductæ fuerunt captiuæ
ex Samaria, vsque ad Ptolemæum quartum, anni quingenti septuaginta tres, no-
uem menses. Philo autem scripsit ipse quoq; Reges Iudæorũ aliter quàm Demetri-
us.Præterea autẽ Eupolemus quoq; in simili opere dicit omnes annos ab Adam vs-
que ad quintũ annũ Demetrij,xij. anno Ptolemæi in Ægypto regnantis, colligi an-
nos quinquies M. cxlix.A' quo autẽ tempore Moses Iudæos eduxit ex Ægypto vsq;
ad prædictum tẽpus, colligi annos bis mille quingentos octoginta. Ab hoc autem
tempore vsq; ad Consules Romæ Caium Domitianũ &Casianum,colliguntur anni
cxx. Euphorus aũt &alij multi Historici, & gentes & linguas dicunt septuaginta
quinq;,cũ audijssent vocem Mosis dicentis:Erant autem omnes animæ ex Iacob se-
ptuagintaquinq;,quę descenderunt in Ægyptũ.Videntur autem ex vera ratione, lin
guæ seu dialecti, vt vocant & sermones generales esse septuaginta duæ,vt nostrę tra
dunt scripturæ.Fiunt aũt aliæ per communionem duarũ vel triũ,vel etiã plurium

διάλεκτος. dialectorum. Est autem dialectus dictio, quæ loci propriũ ostendit charactêrem: vel A
dictio, quę proprium vel cõmunem gentis charactêrem ostendit. Dicunt autem Grę
ci esse quinq; apud se dialectos, Atticam, Ionicam, Doricam, Æolicam, & quintam communem: quæ autem comprehendi nequeunt voces Barbarorum, non dici dialectos, sed linguas. Plato autem dijs quoq; quandam dialectũ attribuit, maximè quidem id conijciens ex somnijs & oraculis: aliàs autem etiam ex dæmoniacis, qui nec sua voce nec dialecto loquuntur, sed dæmonũ qui ingrediuntur. Existimat autem rationis quoq; expertium esse animantium dialectos, quas exaudiunt quæ sunt eiusdem generis. Cùm itaq; in cœnum ceciderit Elephas, & clamauerit, præsens aliquis alius id contemplatus, reuertitur paulò pòst, & secum ducit gregem Elephantũ, & eum seruat qui ceciderat. Aiunt autem Scorpiũ quoq; in Libya, si non ei succedat vt hominẽ feriat, abeuntem reuerti cum pluribus, alterũ autem ab altero instar catenę dependentem, ita moliri insidias, non obscuro nutu bestijs vtentibus, sed nec figura sibi significantibus, sed propria, vt puto, dialecto. Dicunt autem aliqui quoq; alij,
μηρίνθ. quòd si qs piscis qui euellitur, rupto laqueo euaserit, non amplius inuenietur eo die piscis eius generis. Primæ autem & generales dialecti barbaræ quidem, nomina autẽ habent natura: nam preces quoq; fatentur homines esse potentiores quæ dicũtur voce barbara. Porrò autẽ Plato in Cratylo, cum πῦρ, quod ignem significat, vellet interpretari, dicit esse nomen barbaricum. Testatur itaq; Phrygas sic vocantes, paululum quid ab eo declinare. Nihil autem, vt existimo, post hæc offecerit Romanorum quoq; Imperatorum tempora adducere, ad ortũ Seruatoris ostendẽdum. Augustus B
annis quadraginta tribus, Tiberius annis xxij. Caius annis iiij. Claudius annis xiiij. Nero annis xiiij. Galba anno vno, Vespasianus annis x. Titus annis iij. Domitianus annis xv. Nerua anno vno, Traianus annis xix. Adrianus annis xxi. Antoninus annis xxj. similiter rursus Antoninus & Commodus annis xxxij. Fiũt ab Augusto vsq; ad Cõmodum anni omnes ccxxij. & anni ab Adam vsq; ad mortẽ Cõmodi MMMMM Dcclxxxiiij. duo menses, duodecim dies. Quidam Romanorũ Imperatorũ tempora sic describunt. C. Iulius Cæsar annis tribus, quatuor mensibus, quinq; diebus. Post quem regnauit Augustus annis xlvj. mensibus quatuor, die vno. Deinde Tiberius annis xxvj. mensibus vi. diebus xix. Cui succedit C. Cæsar annis tribus, decem mensibus, viij. diebus. Ei Claudius xiij. annis, viij. mensibus, xxviij. diebus. Nero annis xiij. viij. mensibus, xxviij, diebus. Galba mensibus septem, vj. diebus. Otho v. mensibus, die vno. Vitellius vij. mensibus, die vno. Vespasianus annis xj. mensibus xj. diebus xxij. Titus ij. annis, mensibus duobus. Domitianus annis xv. mensibus viij. diebus quinq;. Nerua anno vno, mensibus iiij. diebus x. Traianus xix. annis, vij. mensibus, xv. diebus. Adrianus annis xx. mensibus decem, diebus xxviij. Antoninus annis xxij. mensibus iij. vij. diebus. Marcus Aurelius Antoninus annis xix. diebus vndecim. Cõmodus annis xij. mensibus nouem, diebus xiiij. A' Iulio ergo Cæsare vsq; ad mortem Commodi, sunt anni ccxxxvj, menses vj. Colliguntur autem omnes anni à Romulo qui vrbem condidit, vsque ad mortem Commodi, anni Dccliij. menses sex. Natus est autem Dominus noster xxviij anno, cùm primùm iusserunt censum descriptionémue fieri, tempore Augusti. Quòd autem hoc verum sit, sic scri- C
Luc. 3. tum est in Euangelio secundum Lucam: Anno autem quintodecimo Tiberij Cæsaris, factum est verbum Domini super Ioannem Zachariæ filium. Et rursus in eodẽ: Erat Iesus veniens ad baptisma, quasi triginta annorum. Et quòd anno solo oporte-
Esa. 71. ret eum prędicare, hoc quoq; sic scriptum est: Annum acceptabilem Domini prædicatum misit me. Hoc & Propheta dixit & Euangelium. Quintodecimo ergo anno Tiberij, & quintodecimo Augusti, sic implentur triginta anni vsq; ad tempus quo passus est. Ex quo autem passus est, vsq; ad euersionẽ Hierusalem, fiunt anni xlij. mẽses tres. Et ab euersione Hierusalem, vsq; ad mortem Commodi, anni cxxviij. menses decem, dies tres. Fiunt autem ex quo natus est Dominus vsq; ad mortem Cõmodi, anni omnes clxxxxiiij. mensis vnus. Sunt autem qui curiosius natali Domini nõ
πάχων, fortè nomen mensis. solùm annũ, sed etiam diem addunt, quem dicunt xxviij. anni Augusti, in xxv. πάχων. Basilidis autem sectatores, eius quoq; baptismi diem celebrant, totam præcedentẽ
προδιανυκτερεύοντες ἀναγνώσεσι. noctem in lectionibus transigentes. Dicunt autem eum esse quintumdecimum annum Tiberij, quintumdecimum mensis Tubi. Aliqui autem eum esse vndecimum eiusdem mensis. Et de eius passione subtilius differentes, aliqui quidem sextodecimo anno Tiberij Cæsaris xxv. Phamenoth, alij verò xxv. Pharmuthi, alij autem Phatmuthi xix. dicunt passum esse Dominum. Quinetiam dicunt ex ijs aliqui, eum

natum

A natum esse xxiiij. vel xxv. Pharmuthi. Præterea autem illa quoq; sunt referenda ad chronographiam, dies inquam, quos significat Daniel à desolatione Hierusalem. Vespasiani anni vij. menses vij. Duo etiam anni adiunguntur Othonis & Galbæ & Vitellij, xvij. mensibus, viij. diebus, & sic fiunt anni tres & menses vj. quod est dimidium hebdomadis, quemadmodum dixit Daniel propheta. Dixit enim bis mille trecentos dies fuisse ex quo stetit abominatio à Nerone in ciuitatem sanctam vsq; ad eius euersionem. Sic enim ostendit dictum quod subijcitur: Quousq; stabit visio sacrificium sublatum peccatum desolationis quod datum est. & potestas & sanctum cóculcabitur. Et dixit ei: Vsq; ad vesperam, dies bis mille trecenti, & tolletur sanctum. Hi ergo bis mille trecenti dies fiunt anni sex, menses quatuor: quorum dimidium tenuit Nero Imperium obtinens, & fuit dimidium hebdomadis: dimidium autem Vespasianus cum Othone, Galba & Vitellio. Et ideo dicit Daniel: Beatus qui peruenerit ad dies mille trecentos trigintaquinq;. Ad eos enim vsq; dies fuit bellũ, post hæc autem cessauit. Ostéditur autem hic quoq; numerus ex subiecto capite, quod sic habet: Et à tempore immutationis perennitatis, & quo data fuerit abominatio desolationis, dies mille ducenti nonaginta. Beatus qui sustinuerit & peruenerit ad dies mille trecentos trigintaquinq;. Flauius autem Iosephus Iudæus, qui Iudaicas composuit historias, colligens tempora, ait à Mose vsq; ad Dauid esse annos Dlxxxv. A

B Dauid vsq; ad secundum annum Vespasiani M clxxix. Deinde ab eo vsq; ad decimũ annum Antonini, anni lxxvij. ita vt à Mose vsq; ad decimũ annum Antonini sint omnes anni MD ccccxxxiij. Alij aũt numerátes ab Inacho & Mose vsq; ad mortem Commodi, dixerunt esse annos MMD ccccxlij. Alij verò MMD cccxxj. In Euangelio autem secundum Matthæum, quæ ab Abraham deducitur genealogia, vsque ad Mariam matrem Domini terminatur. Sunt enim, inquit, ab Abraham vsq; ad Dauid xiiij. generationes, & à Dauid vsque ad transmigrationem Babylonis generationes xiiij. & à transmigratione Babylonis vsq; ad Christum similiter aliæ generationes xiiij. tria mystica interualla, quæ sex complentur hebdomadibus. Et quæ de téporibus quidem variè à multis scripta, & à nobis exposita fuerunt, sic habeant. Versas autem fuisse scripturas & leges & Prophetarum ex Hebręo sermone in linguam Græcam aiunt tempore Ptolemæi Lagi filij: aut vt dicunt nonnulli, tempore eius qui fuit cognominatus Philadelphus, cùm maximam ad eam rem contulisset diligentiam Demetrius Phalereus, & vt verterentur vehementer procurasset. Nam cùm adhuc Asiam obtinerent Macedones, Rex magno studio contendens eam, quæ Alexandrię in eius potestate erat, bibliothecam omnibus scripturis exornare, voluit vt Hierosolymitani quoque eas quæ apud se erant Prophetias in sermonem Græcum interpretarentur. Illi autem, vt qui adhuc obedirent Macedonibus, ex ijs qui apud se erant probatissimi, & maximæ existimationis, Scripturarũ peritos, & Gręcæ linguæ scientes septuaginta seniores delectos ad eum miserunt cum libris diuinis. Cũ autem vnusquisque sigillatim ex sua propria interpretatus esset prophetia, conspirarunt omnes simul collatæ interpretationes & sententijs & dictionibus. Dei enim ἐν μέρει.

C erat voluntas, quæ id ad Græcorum aures consultò comparauerat. Neque verò ab inspiratione Dei erat alienum qui prophetiam dederat, vt interpretationem quoque tanquam Græcam efficeret prophetiam. Nam etiam in captiuitate Regis Nabuchodonosor, cùm interijssent Scripturæ tempore Artaxerxis Persarum regis, inspiratus Esdras Leuites, qui factus fuerat sacerdos, prophetauit, omnes veteres rursus scripturas renouans. Aristobulus autem in primo libro ad Philomatrem scribit his verbis: Secutus est autem nostras quoq; leges Plato, & satis apertè ostendit se eorum quæ in eis dicũtur fuisse admodum studiosum. Ante Demetrium autem, priusquam rerum potirentur Alexander & Persæ, versa fuerant & quæ ab Hebræis nostris gesta fuerant in exitu ex Ægypto, & quæcunq; eis insignia & facta erant & apparuerát, & regionis per vim quæsita possessio, & omnium quæ latæ sunt legum descriptio, adeò vt clarum sit antedictũ Philosophũ multa ex eis sumpsisse. Fuit enim multa doctrina præditus, sicut etiam Pythagoras multa ex nostris transtulit in suorum dogmatum traditionem. Numenius autę Philosophus Pythagoreus apertè scribit: Quid enim est Plato, nisi Moses qui loquitur Atticè? Hic Moses erat Theologus & Propheta, vt autem nonnulli, sacrarum legum interpres. Genus eius & res gestas & vitam, ipsæ scripturę quæ sunt fide dignæ prædicant: & tamen à nobis quoque dicendum est, quòd Moses cùm ex alto petita origine genere esset Chaldæus, natus est in Ægypto, cùm maiores eius propter diuturnam famé ex Babylone mi-

[Margin note beside "Neque verò ab inspiratione": μεμελετημέ- νον.]

πιμπάσαι, grassent in Ægyptum. Septima generatione genitus, & regaliter educatus, tali fortunæ casu vsus est. Cùm Hebræi in Ægypto creuissent in magnam multitudinem, veritus Rex regionis, ne eorum qui ex Hebræis nascebantur multitudo, ei pareret insidias, iubet ipsos alere quidem fœminas (est enim res ad bellũ imbecilla mulier) masculos autem interimere, suspectam habens validam iuuentutẽ. Cùm nobili autem loco esset natus puer, tribus deinceps mensibus celantes, eum parentes alebãt, naturali amore vincente tyrannicam crudelitatem. Postea autem veriti ne vnà cum puero perirent, cùm ex papyro quæ in ijs locis nascitur vas construxissent, ad palustris stagnantisq; fluuij ripas puerum impositum exponunt. Obseruabat autem soror quid esset euenturum, procul stans à puero. Regis filia, quæ longo tempore non concipiebat, filium autem desiderabat, illo die eò venit ad fluuium vt se lauaret & aspergeret. Cùm flentem autem puerum audijsset, iussit ad se adduci, eiusq; miserta quærebat nutricem. Tunc accurrens soror pueri, dixit se habere Hebræam fœminam quæ non multò antè peperisset, eamq; adducturam, si velit: quæ cùm assensa esset & rogasset, adduxit ipsius pueri matrem, tanquam aliquam aliam, mercede constituta nutricem eius futuram. Deinde puero imponit nomen Regina, Moses, apta etymologia, eo quòd eum ex aqua sustulisset. Aquam enim Moy vocant Ægyptij, *Exod. 2.* in qua moriturus fuerat expositus. Moysen enim vocant eum qui ex aqua emersus respirauerit. Clarum est ergo quòd prius circunciso puero, parentes aliquod nomen imposuerunt. Vocabatur autem Ioachim. Habuit autẽ tertium quoq; nomen in cęlo postquam assumptus est, vt dicunt Mystæ, nempe Melchi. Cùm autem ætate esset grandior, Arithmeticam & Geometriam, Rythmicam & Harmonicam, & præterea Medicinam simul & Musicam doctus est ab ijs qui erant insignes inter Ægyptios, & præterea eam quæ traditur per symbola seu signa philosophiam, quam in literis ostendunt Hieroglyphicis. Alium autem doctrinæ orbem, tanquam puerum regium, Græci eum docuere in Ægypto, vt dicit Philo in vita Mosis. Didicit autẽ literas Ægyptiorum, & rerum cælestium scientiam à Chaldęis & ab Ægyptijs. Vnde in eius rebus gestis dicitur doctus fuisse in omni sapientia Ægyptiorum. Eupolemus autẽ in libro de Iudææ regibus, dicit Mosen primum fuisse sapientem, & grãmaticam ἄξαι. primùm tradidisse Iudæis, & Phœnices accepisse à Iudæis, Græcos autem à Phœnicibus. Ad eorũ autem deductus naturam, auxit prudentiam eam, quæ erat sui generis & maiorum suorum æmulatus doctrinam, adeò vt etiam Ægyptium, qui Hebręum iniustè inuaserat, percutiens interfecerit. Aiunt autem Mystę eum solo verbo occidisse Aegyptium, sicut certè postea Petrus in Actibus fertur eos qui precium agri sibi *Act. 5.* vsurpauerant, & mentiti erant, verbo interfecisse. Artapanus certè in opere de Iudæis, refert Mosen in custodia in clusum à Nechephre rege Aegyptiorũ, eo quòd peteret vt populus liberaretur ex Aegypto: noctu aperto carcere Dei volũtate egressum, cùm in regiam accessisset, dormienti regi adstitisse, & eum excitasse: eum autem eo quòd factum fuerat stupefactum, iussisse Mosi vt diceret nomen eius qui miserat, & illum quidem cùm ad aurem se inclinasset, dixisse. Regem autem, cùm audijsset, mutum cecidisse: cùm eum autem Moses tenuisset, rursus reuixisse. De Mosis autem e- δράματι. ducatione nobiscum quoque consentiet Ezechielus Iudaiacarum tragœdiarum Poëta in Actu qui inscribitur ἐξαγωγὴ, id est, Eductio, sic scribens ex persona Mosis:

*Nostrum uideret nam genus cùm crescere,*
*Est machinatus in nos plus satis doli*
*Rex Pharao, laterum acribus laboribus,*
*Aedificiorumq; opprimens nos molibus,*
*In urbibusq; turrium ob se miseros:*
*Dein publico Hebræis iubet præconio,*
*Proijcere masculos profundum in fluuium.*
*Quæ pepererat me abscondit ast parens*
*Mensibus, ut aiebat, tribus, prodita uidens*
*Exposuit, ornatu mihi circundato,*
*Ad fluuij ripas, hispida ubi erat palus.*
*Maria soror sed nostra spectabat propè.*
*Dein nata regis quæ carebat liberis,*
*Venit aquis ut limpidis corpus suum*
*Recreet, uidens statim me sustulit.*
*Cognouit Hebræum esse, uerbaq; hæc ait.*

A *Maria soror celerem ad eam mouens pedem,*
*Tibi ex Hebræis uis'ne nutricem parem*
*Puero? puellæ nata regis annuit:*
*Profecta matri dixit, illaq; aduenit*
*Mox mater, ulnis filiumq; amplectitur.*
*At nata regis dixit: Hunc ô fœmina*
*Alas, tibi merces tua haud negabitur.*
*Nomen dedit Moses mihi, quòd ab humida*
*Ripa repertum sustulit fluminea.*
*Infantiæ at tempus mihi ubi transijt,*
*Ad regiam m[illegible]ater adduxit domum,*
*Cùm cuncta dixisset prius mihi ordine,*
*Genusq; patrium, Deiq; munera.*
*Dum pueriles nobis itaq; ætas fuit,*
*Et uictus amplus, & doctrina regia,*
*Aequè dabantur ac si essem eius filius.*
*Plenus dierum sed ubi affuit sinus,*
*Egressus ædes regias.*

Desunt uerba filiæ Pharaonis.

Deinde cùm narrasset pugnam Hebræi & Ægyptij, & sepultum in arena Ægyptium, de alia pugna sic dicit:

B *Feris cur qui te est imbecillior?*
*Nobis is autem dixit: Et quis Iudicem*
*Te huc misit, aut magistratum? Num occidere*
*Me uis, heri sicut cæcidisti uirum?*
*Timens ego dixi: Quî apertum istud fuit?*

Deinde autem ex Ægypto fugit, & oues pascit, vt qui ad pastoralem principatum prius erudiretur. Ei enim qui mansuetissimo hominũ gregi est præfuturus, est præexercitatio ouium pascendarum scientia: sicut ijs qui sunt natura bellicosi, venatura. Ab ea aũt eum ducit Deus, vt esset dux Hebræorum exercitus. Deinde sæpe quidem admonentur Ægyptij, qui sæpe fuere insipientes. Fuerunt autem Hebræi spectatores malorũ quæ patiebantur alij, Dei potẽtiam citra vllum discentes periculũ. Quoniam aũt Ægyptij potentiæ effecta auditione non accipiebant, propter insipiẽtiam stolidi non credentes, tunc, vt est in prouerbio, factum stulti cognouerunt, & postea exeuntes Hebræi magna Ægyptiorũ præda exportata recesserunt. Non propter auaritiam, vt dicunt accusatores: (neq; enim Deus eis aliena persuasit concupiscere) sed primùm quidem, earum, quas omni tempore Ægyptijs præbuerunt, operarum ac seruitiorum necessariam mercedem referentes: deinde etiam se quodammodo vlti sunt, Ægyptijs vt auaris par pari referentes prædæ exportatione, sicut illi Hebræis prius molestiam attulerant, redigendo eos in seruitutem. Siue ergo vt in bello quis hoc factum esse dixerit: res hostium victoriæ iure auferre volebant, vt potẽtiores inferiorum: belli autem iusta erat causa. Supplices propter famem Hebræi venerunt ad Ægyptios: illi autem hospites redactos in seruitutem, instar mancipiorum seruire coëgerunt, ne mercedem quidem eis soluentes. Siue vt in pace: mercedem prædam ab inuitis acceperunt, qui longo tempore non soluebant, sed ipsos ea priuabant. Est itaq; noster Moses propheticus, legum ferendarum peritus, ordinandæ & instruendæ aciei gnarus, exercitus ducendi artem tenens, politicus & philosophus. Ac quomodo quidem fuerit propheticus, post hæc dicetur quando de Prophetia tractabimus. Ordinandæ autem aciei peritia, fuerit pars artis imperatoriæ seu ducendi exercitus. Ars autem ducendi exercitus, est pars regnandi scientiæ. Et rursus legum ferendarum peritia, regnandi scientiæ pars fuerit, sicut etiam iudicandi facultas. Regnandi aũt scientiæ vna quidem pars fuerit diuina, cuiusmodi est quę est ex Deo & sancto eius filio, à quibus & quæ ex terra bona sunt, & quæ externa & perfecta suppeditatur felicitas. Petite enim, inquit, magna & parua vobis adijcientur. Secunda est autem regni species post eam administrationem quæ rationalis purè est ac diuina: ea inquam, quæ animosa seu iracunda animę parte solùm in regnando vtitur, per quam speciem Hercules quidem Argiuorum, Alexander verò rex fuit Macedonum. Tertia est, quæ vnum solum concupiscit, nempe vt vincat & euertat. vt malo autem vel bono sit victoria curam gerere, ei minimè inest: quo quidem vsi sunt Persæ cùm bellum gererent in Græciã. Iræ enim, vna quidem pars est

Margin notes: ποιμενικά. (beside "Deinde autem ex Ægypto fugit") — ῥεχθὲν δέ τε νήπιος ἔγνω, ait Hesiod. (beside "postea exeuntes") — C (beside "potẽtiores inferiorum") — προφητικὸς, τὸ νομοθετικὸς, τακτικὸς, στρατηγικός. (beside "ordinandæ & instruendæ aciei") — τῷ θυμοειδεῖ τῆς ψυχῆς. (beside "iracunda animę parte") — φιλόνεικον. φιλόνικον. (beside "Persæ cùm bellum")

solùm contentiosa, quæ quærit potentiam vt dominatum obtineat: altera verò bo- A
ni & honesti studiosa, ira vtente anima ad id quod bonum est & honestũ. Quarta au
tem regnandi species est omnium pessima, quæ statuitur ex cupiditatibus, vt regnũ
Sardanapali, & eorum qui hunc finem sibi proponunt, vt plurimum indulgeant su-
is cupiditatibus. Regnandi autem scientiæ, tam quæ virtute vincit, quàm quæ vi in-
strumentum est, aciei ordinandæ scientia. Alia autem in alia natura & materia. In ar
mis quidem & pugnacibus animalibus, per animata & inanimata, anima & mens
est id quod ordinat. In animæ autem perturbationibus, in quas virtute dominatum
obtinemus, ratiocinatio est id quod est ordinandi potestate præditum, vt quæ con-
tinentiam, & temperantiam cum sanctitate, & bonam cognitionem cum veritate
obsignet, finem ad pietatem Deique cultum referens: sic enim virtute vtentibus pru
dentia est quæ ordinat: diuina autem, sapientia: humana verò, politica, seu regenda-
rum ciuitatum scientia. Omnia autem, scientia regnandi. Rex itaq; is est qui impe-
rat ex legibus, qui est præditus scientia imperandi volentibus, cuiusmodi est Domi
Phil.2. nus, qui eos qui in ipsum & per ipsum credũt admittit. Omnia enim tradidit Deus,
& omnia Christo subiecit, regi nostro, vt in nomine Iesu omne genu flectatur, cæle-
stium, terrestrium & infernorum, & omnis lingua confiteatur quòd Dominus Iesus
ἀσφαλεῖ καὶ τῷ παραβόλῳ. Christus, in gloriam Dei Patris. Strategema autem, seu ratio ducendi exercitus, tri-
bus continetur speciebus, cautione, audacia, & quæ ex vtrisq; mixta est. Vnaquæq;
autem earum componitur ex tribus, aut per orationem, aut per facta, aut per vtrun-
que simul. Hæc autem omnia licebit efficere, vel persuadendo, vel cogendo, vel iniu
ἐμπεριέχεται. riam faciendo in ijs vlciscendis quibus expedit, vel faciendo id quod iustum est, vel B
mentiendo, vel vera dicendo, vel etiam simul vtendo aliquibus eorum in eodem
tempore. Hæc autem omnia, & quomodo oporteat vti vnoquoq; eorum, cùm Græ
ci accepissent à Mose, non paruam accepere vtilitatem. Verbi autem gratia, vnius
aut alterius imperatorij exempli meminero. Moses cùm populum eduxisset, suspi-
catus fore vt persequerentur Ægyptij, breui & compendiosa via relicta, conuersus
est in solitudinem, & maxima ex parte iter noctu faciebat. Alia enim erat œconomia
qua docebantur Hebræi, per multam solitudinem & longum tempus credere vnum
solum Deum esse, per moderatam assuefacti tolerantiam. Mosis ergo docet stratege
ma, oportere ante pericula prouidere ea quæ sunt vtilia, & sic aggredi. Et certè eue-
nit id quod suspicatus est. In equis enim & curribus persecuti sunt Ægyptij: sed citò
perierunt, cùm mare disruptum esset, & ipsos cum equis & curribus obruisset, adeò
vt eorum nullæ remanserint reliquiæ. Post hæc autem sequens columna ignis (eos
enim præcedebat) duxit Hebræos per regionem inaccessam, laboribus & itineri-
bus ad robur & fortitudinem eos exercens ac inducens, vt postquam eorum quæ vi
debantur grauia periculum fecissent, quàm bona esset appareret regio, ad quam eos
ex via inuia transmittebat. Iam verò hostes quoq; qui prius regionem insidebant, in
fugam versos occidit, cùm eos ex solitudine & via aspera (talis enim est virtus impe
ratoria) in eos inuasisset. Hoc enim erat peritiæ & ducendi exercitus sciẽtiæ, hostiũ
regionem occupasse. Hoc cùm animaduertisset Miltiades imperator exercitus Athe C
niensium, qui ea quæ in Marathone fuit pugna vicit Persas, hoc modo est imitatus.
Noctu duxit Athenienses, per loca inuia iter faciens, & eos qui ipsum obseruabant
barbaros decipiens. Hippias enim qui defecerat ab Atheniensibus, barbaros in At-
ticam induxerat, & opportuna quæ præoccupauerat loca seruabat, propterea quòd
erat peritus regionis. Ac difficile quidem erat latêre Hippiam: vnde meritò Miltia-
des & locis inuijs & nocte vsus, aggressus Persas quibus præerat Datis, in certamine
cum ijs quorum ipse dux erat, superior euasit, & rem bene ac feliciter gessit. Quine-
tiam Thrasybulo, qui exules ex Phyla reducebat, & latêre volebat, dux fit columna,
& Thrasybulo noctu per loca non trita ingredienti, cùm nec luceret Luna, hyber-
numq; cælum esset & caliginosum, videbatur ignis præcedens, qui cùm eos citra vl
lam deduxisset offensionem, defecit vbi nunc est ara τῆς φωσφόρου, id est, Luciferæ. Vel ex
hoc ergo euadant nostra Græcis credibilia, nempe quòd facere potest Deus omni-
potens vt columna ignis Hebræos noctu præcedat, quæ etiam dux sit eorum itine-
ris. Porrò autem dicitur etiam in quodam responso:

*Exhilarans Bacchus Thebanis estq; columna.*

Ex ea quæ est apud Hebræos historia. Quinetiam Euripides dicit in Antiopa:

*Intus Bubulcum ast in thalamis*
*Hedera comantem columnam Euij Dei.*

Signifi-

A Significat autem columna, Dei non posse effingi imaginem. Illuminata aũt colũna, præter hoc quòd significat non posse effingi imaginem, Dei quoq; stabilitatem significat ac firmitatem, & immutabilem eius lucem, quæq; non potest figurari. Prius itaq; q̃ accuratè perfecteq; tenerentur imaginum habitus, veteres columnas erigentes, eas colebant tanquam statuas. Atq; idcirco sic scribit qui fecit Phoronidem: ἀφιδρύματα.

*Callithoe clauem reginæ gestat Olympi,*
*Argiuæ Iunonis, sertis atq; corollis*
*Reginæ primùm est à qua exornata columna.*

Quinetiam qui fecit Europiam, significat eam quæ est in Delphis Apollinis imaginem, esse columnam, per hæc:

*Vt decimamq; Deo primos fructusq; dicemus,*
*Sedibus ex sacrosanctis celsáq; columna.*

Apollo quidem certè, qui mysticè ex priuatione multorũ intelligitur, est vnus deus. Quinetiam ignis ille qui columnæ erat similis, & ignis qui ingrediebatur per loca inuia, & ad quæ non patebat aditus, est symbolũ ac signum sanctæ Lucis quæ trãsit per terram, & in cœlum rursus recurrit per lignum, per quam etiam datum est nobis videre per intelligentiam. Plato autem philosophus, à Mose in legibus ferendis adiutus, reprehendit quidem Minois & Lycurgi Reip. administrandæ rationem, vt quæ ad solam animi magnitudinem respicerent & fortitudinem: laudauit autem vt honestiorem & magis venerandam, eam quæ vnum quid dicit, & semper ad vnum dirigitur decretum. Nam & robore & honestate & prudentia dicit nos decere ma- ἀπολλων, quasi ἄνευ πολλῶν, absq; multis.

B gis philosophari, si ad cœli dignitatem respicientes, immutabiliter & citra vllã pœnitentiam, eadem sententia, & de ijsdem vtamur. An non interpretatur ea quæ in lege dicuntur, vt ad vnum Deum respiciamus, & ea quæ iusta sunt agamus, præcipiẽs? Politici autem dicit esse duas species, vnam quidem, legitimum: alteram verò, politicum, æquiuocè nominatum. Et politicum quidem propriè significat opificem in libro eiusdem nominis, & eos qui ad ipsum respiciunt, & rectè operantur & iustè viuunt cum contemplatione, ipsos quoq; nominat politicos. Quod autem politicum vocatum est, æquè ac legitimum, & in mundanam diuidit mentis magnitudinem, & in priuatum ordinem, quem moderationem & concinnitatem vocauit, & temperantiam, quando magistratus quidem conuenientes fuerint ijs quib. imperãt, ij autem quibus imperatur, paruerint magistratibus. Quod quidem vt fiat, Mosis opus magno studio contendit. Præterea legitimum quidem ad generationem, politicum autem ad amicitiam & concordiam pertinere, dicit adiutus Plato: & legibus quidem eum qui est in Epinomide philosophum coniunxit, qui nouit transitus omnis generationis quæ fit per errantia. Philosophum autem alium Timæum, qui est & Astronomiæ peritus, & illorum motuum, & eam quæ est inter se consensionẽ & societatem cõtemplatur, cõiungit libris de Repub. Deinde, finis enim est, vt existimo, & Politici, & eius qui ex lege viuit, contemplatio. Necesse est ergo ciuitatẽ rectè administrare: optimum est autem philosophari. Qui enim sapit, omnia sua referens ad ἀμεταμέλητος.

C cognitionem vixerit, vitam quidem suam bonis factis dirigens, quæ autem sunt cõtraria despiciens, & quæ ad veritatem conferunt disciplinas persequens. Lex autem est, nõ ea quæ lege decernũtur, nam nec sunt ea quæ videntur, visus, neq; quæuis opinio: nõ enim ea quoq; quæ est mala, sed lex est opinio bona, bona est aũt quæ est vera. Bona est aũt, quæ id quod est inuenit, & id assequitur. Qui est autem, misit me, inquit Moses. Cui consequenter, bonæ scilicet opinioni, quidam dixerunt legem esse rectam rationem, quæ iubet quidem ea quæ sunt facienda, prohibet autem quę non sunt facienda. Vnde meritò dictum est, Legem datam esse per Mosen, vt quæ sit regula iustorum & iniustorum: & eum propriè νόμον, id est, ritũ, dixerimus, qui à Deo per Mosen est traditus. Habet itaq; eam quæ est ad Deum deductionem. Dicit aũt Paulus quoq;: Lex propter præuaricationes est posita, donec veniret semẽ cui promissum est. Deinde veluti sensum explicans ac prosequens, infert: Priusquam aũt veniret fides, sub lege custodiebamur, conclusi timore, ex peccatis scilicet, in eam fidem quæ erat reuelanda: quare Lex pædagogus noster fuit in Christum, vt ex fide iustificemur. Est autem legis ferendæ peritus, qui id quod conuenit, vnicuiq; animæ parti, & eius factis tribuit. Moses aũt, vt semel dicam, erat lex animata, quæ ratione bona seu verbo bono gubernabatur. Subministrauit itaq; bonã Reip. administrandæ rationem. Ea autẽ est bona educatio hominum in societate. Iam verò facultatẽ tractauit iudiciariã, quæ est scientia, peccata propter id quod est iustũ, corrigens. Eius- Exod. 3. νομῶ, etymologia. Galat. 3.

dem autem cum ea ordinis, est puniens facultas, quæ tenet scientiam moderandarũ castigationum. Cùm sit autem castigatio, est animæ correctio. Versatur aũt, vt semel dicã, tota Mosis institutio, & in docendis ijs qui possunt esse boni & honesti, & in ijs venãdis qui sunt eis similes: quæ quidem fuerit ars imperatoria. Qui aũt versatur in rectè vtendo ijs quæ ratione ac verbo capta fuerint, ea fuerit legum ferendarũ sapiẽtia. Eius enim, vt quæ sit maximè regia, est proprium & acquirere & vti. Solum itaq; sapientem Philosophi, regem, legislatorẽ, imperatorem, iustum, sanctum, Deo amicum prædicant. Si hæc aũt in Mose inuenerimus, vt ex ipsis ostenditur scripturis, rectè persuasi dixerimus, sapientẽ reuera esse Mosen. Quemadmodum ergo pastoralẽ artem ouiũ curam gerere dicimus: ita enim pastor bonus animã ponit pro ouibus: ita etiam legũ ferendarũ artẽ dicemus, virtutem hominũ comparare, humanũ bonũ pro viribus excitantem, vt quæ gregis hominũ curam gerat & prouidentiã. Quòd si grex qui à Domino dicitur allegoricè, nihil est aliud quàm grex hominum, idem erit bonus pastor & legislator. Vnius gregis, nempe earum quæ ipsum audiunt ouiũ, vnus est curator, nempe is qui perditam & quęrit & inuenit, lege & ratione: siquidẽ lex est spiritalis, & quæ ad ipsam ducit beatitudinem. Quæ enim spiritu sancto facta est, est spiritalis. Is aũt est reuera legislator, qui non solùm bona & honesta profitetur, sed scit etiam. Huius lex quoq; est, qui scientiam habet iustum salutare, vel potius, lex est iussus scientiæ. Potentia enim & sapientia est ratio seu verbum Dei. Et hic ipse rursus est legum expositor, per quem lex data est, qui est primus expositor diuinorum præceptorum, qui sinum patris explicat ac exponit, filius vnigenitus. Deinde qui legi quidem parent, quòd habeant aliquam eius cognitionem, neq; possũt non credere, nec ignorare veritatem. Qui autem non credunt, & in factis & operib. minimè esse volunt, ij quoq; si vlli alij se veritatem ignorare fatentur. Quæ'nam est ergo Græcorum incredulitas? num nolle credere veritati, quæ dicit Legem per Mosen datam esse diuinitus? cùm ipsi ex ijs quæ apud se scripta sunt Mosen honorent, & Minoëm referant ad Iouis antrum venientem, nouem annorũ spacio Leges à Ioue accepisse: & Lycurgum scribãt assiduè Delphos euntem ad Apollinem, leges ab eo didicisse: & Plato & Ephorus, & Chamæleo Heracleotes in opere de ebrietate, & Aristoteles de Republica Locrorum, Zaleucum Locrum leges à Minerua accepisse, literarum monimentis mandarunt. Qui autem Græcorum leges, vt maximè fide dignæ videantur pro viribus efferentes, ad deos referunt, ad Mosaicæ prophetiæ similitudinem, sunt ingrati, vt qui non fateantur veritatem & exemplar, archetypum eorum quæ à se narrantur. Nemo ergo propter supplicia insectetur legem, vt non bonam & honestam. Non enim qui aufert morbum corporis, beneficio afficere videbitur? qui aũt ab iustitia animam conatur liberare, non maiorẽ videbitur curam gerere, quo est anima corpore præstantior? Sed pro sanitate quidem corporis, & secari & vri, & medicamenta potare sustinemus, & qui hæc adhibet, & seruator vocatur & medicus, & nec ei inuidet, nec malè vult ægrotus, & vt artis dictat ratio partes quoq; aliquas rescindit, ne sanæ partes vnà cum eis intereant, nec tamen quis medici artem criminis arguerit. Animæ aũt gratia, non similiter tolerabimus aut exilia, aut mulctas, aut vincula, si modò quis ex iniustitia sit restituendus in iustitiam? Lex enim eorum qui ei parent curam gerens, ad pietatem in Deum instituit, & dictat ea quæ sunt facienda, & propulsat vnumquodq; peccatum, pœnas imponens ijs quæ sunt mediocria. Cùm autem viderit aliquem ita se habere, vt videatur immedicabilis, vtpote qui ad extremam prouehatur iniustitiam: tunc aliorum iam curam gerẽs, ne ab ipso corrumpantur, tanquam aliquam partem à toto corpore resecãs, sic eum qui est huiusmodi, occidit saluberrimè. Iudicati aũt à Domino, inquit Apostolus, castigamur, ne cum mundo condemnemur. Prædixit enim Propheta: Castigãs castigauit me Dñs, morti aũt non tradidit me. Vt enim te suã doceret iustitiã, castigauit te, inquit, & tẽtauit, & fame & siti te afflixit in deserto. Vt cognoscerentur omnes iustificationes & iudicia eius in corde tuo, quæcunq; ego tibi præcipio hodie, & scias in corde tuo; quòd vt si quis homo castigabit filium suum, ita castigabit te Dñs Deus noster. Quòd autem exemplum corrigat, iam malus, inquit, videns malum puniri, ipse vehementer castigatur. Nam generatio sapientiæ est timor Dñi. Est autẽ maximum & perfectissimum bonum, quando à malè faciẽdo & à re malè gerenda, ad virtutem & bonam actionem possit quis aliquẽ traducere: quod quidem lex facit. Quare etiã quando in immedicabile aliquod malum ceciderit, ab iniustitia & auaritia obsessus aliquis, beneficio afficietur si interficiatur. Lex est enim benefica, quę alios quidem

Margin notes: Ioan. 1. — Luc. 15. — 1. Cor. 11. — Psal. 117. — κακῶν πράττειν ἀπραγίαν.
Margin letters: A — B — C

A quidem poteſt iuſtos ex iniuſtis facere, ſi modò velint audire, alios verò liberat à malis præſentibus. Eos enim qui temperatè & iuſtè viuere elegerint, immortales ſatagit reddere. Noſſe autem legem eſt bonæ mentis. Et rurſus: Viri mali legem nõ intelligunt: qui autem quærunt Dominum, intelligent in omni bono. Oportet autem eam quæ adminiſtrat prouidentiam, eſſe & dominam & bonam. Vtriuſq; enim vis procurat ſalutem: illa quidem, ſupplicio caſtigans, vt domina: hæc verò, per beneficentiam commodans, vt beneficia. Licet autẽ non eſſe filiũ incredulitatis, ſed tranſire à tenebris ad vitam, & aure ſapientiæ accommodata, eſſe Dei legitimum, ſeruũ quidem primùm, deinde fidelem famulum, timentem Dominum Deum. Quòd ſi quis aſcenderit, refertur in numerum filiorum. Poſtquam autem charitas operuërit multitudinem peccatorum, beatæ ſpei perfectione, licet eum tunc auctum charitate ſuſcipere, relatum in electam filiorum adoptionem quę Dei vocata eſt amica, iam votum canentem & dicentem: Sit mihi Dominus in Deum. Legis autem beneficentiam, per eum locum in quo agit cum Iudæis, declarauit Apoſtolus ſic ſcribens: Si tu autem Iudæus cognominaris, & in lege requieſcis, & in Deo gloriaris, & cognoſcis voluntatem Dei, & probas vtiliora inſtructus per legem, & cõfidis teipſum eſſe ducem cæcorum, lumen eorum qui ſunt in tenebris, eruditorem inſipientium, magiſtrum infantium, habentem formam ſcientiæ & veritatis in lege. Hæc enim poſſe legem certum eſt, & extra controuerſiam etiam, ſi ij qui vitam ex lege non inſtituũt, ſe tanquam in lege glorientur viuere. Beatus eſt autem vir qui inuenit ſapientiam, *Rom. 2.* *Prouer. 3.*

B & mortalis qui vidit prudentiam. Ex ore autem ipſius, ſapientiæ ſcilicet, iuſtitia egreditur, legem autem & miſericordiam fert in lingua. Vnius enim eſt Domini operatio, qui eſt Dei virtus & ſapientia, Lex & Euãgelium: & quem timorem genuit lex, is eſt miſericors ad ſalutem. Eleemoſynę autem fides & veritas ne te deſerant, alliga autem eas collo tuo. Similiter autem ac Paulus, Prophetia exprobrat populo, quòd legem non intelligat. Contritio & afflictio in vijs ipſorum, & viam pacis non cognouerunt. Non eſt timor Dei ante oculos ipſorum. Dicentes ſe eſſe ſapiẽtes, ſtulti facti ſunt. Scimus autem quòd lex bona ſit, ſi quis ea legitimè vtatur. Qui autẽ volunt eſſe legis doctores, non intelligunt, inquit Apoſtolus, nec quæ dicunt, nec de quibus affirmant. Finis autem præcepti eſt charitas, ex corde puro, & conſciẽtia bona, & fide non ficta. At Moſaica quidem philoſophia quadripartitò diuiditur, & in partem hiſtoricam, & eam quæ propriè vocatur legitima, quæ quidem fuerint propriæ morum tractationis: tertiam autem eam quæ pertinet ad ſacrificia, quod quidem eſt naturæ contemplationis: & poſtremò quartam, ſpeciem theologicam, quæ eſt ſuperna contemplatio, quam dicit Plato eſſe reuera magnorum myſteriorum. Hanc autem ſpeciem vocat Ariſtoteles μετὰ τὰ φυσικά, hoc eſt, poſt naturalia. Et quę eſt quidẽ ex Platonis ſententia dialectica ſeu ars differendi, vt dicit in Politico, eſt quędam ſcientia inuentrix eorum quæ ſunt ſignificationis. A viro autem bono & moderato eſt acquirenda, non vt aliquid dicat vel faciat eorum quæ dicuntur aut fiunt apud homines (vt faciunt qui nunc ſunt Dialectici, qui verſantur in rebus Sophiſticis) *Ibidem.* *1. Timot. 1.* *ἐποπτεία.*

C ſed vt poſsint quidem dicere & facere ea quæ Deo grata ſunt, idque vniuerſum pro viribus. Cùm ſit autem vera dialectica, philoſophia permixta veritate, res conſiderans, facultateſq; & poteſtates examinans, trãſcendit ad præſtantiſsimam omnium eſſentiam, & audet etiam vltrà progredi ad Deum vniuerſorum, non rerum mortalium peritiam, ſed diuinarum cæleſtiumq; ſcientiam profitens, quam conſequitur, etiam in rebus humanis, qui in oratione & rebus agendis verſatur, proprius vſus. Meritò ergo ſcriptura quoque tales nos eſſe volens dialecticos, ſic hortatur: Efficiamini autem probi trapezitę, alia quidem reprobantes, quod autem bonum eſt tenentes. Hæc enim reuera dialectica, eſt prudentia prædita vi diuidendi ea quæ percipiuntur intelligentia, & purè ac ſyncerè citraq; omnem mixtionem oſtendendi ſubiectum eorum quæ ſunt: aut facultas quæ verſatur in rerum generibus diuidendis, deſcendens vſque ad ea quæ ſunt maximè ſpecialia, præbens vnumquodque eorum quæ ſunt, intuendum quale ſit. Quocirca ea ſola veluti manu ducit ad veram ſapientiam, quæ quidem eſt diuina poteſtas, quæ ea quæ ſunt, vt quæ ſunt cognoſcit, habens id quod eſt perfectum, libera ab omni animi perturbatione, non ſine ſeruatore, qui à noſtræ animæ videndi poteſtate, à mala conuerſatione infuſam caliginoſam ignorationem diuino verbo amouit, & reddidit id quod eſt optimũ ac præſtantiſsimum, vt rectè cognoſcamus hominemque Deumque. Is eſt qui reuera oſtendit quomodo nos ipſos cognoſcere oporteat, qui vniuerſorum patrẽ cui vult *ἠμὲν θεὸν ἠδ᾽ ἄνδρα, Homeri hemiſtichiũ.*

reuelat, & facit vt intelligat, quoad fieri potest vt humana natura comprehendat. A

Ioan.10. Nemo enim nouit filium nisi pater: neq; patrem nisi filius, & cui filius reuelauerit.

Ephe.2. Meritò ergo Apostolus dicit, per reuelationẽ se nosse mysteriũ, quemadmodũ prius scripsi in breui, vt possitis legentes intelligere intelligentiã meam in mysterio Christi. Vt possitis dixit, quoniã sciebat aliquos lac solum accepisse, nondum autem cibum, & nec lac quidem solummodo. Tribus autem modis Dei voluntas est nobis accipienda: vel vt signum aperiens, vel vt præceptum confirmans ad rectam institutionem, vel prædicens, vt prophetia. Sat autem scio esse virorum, ea quæ sunt huiusmodi discernere ac discere. Non enim vna Myconis, vniuersa ad intelligendum scriptura, vt dicunt qui vtuntur prouerbijs. Est autem quàm maximè fieri potest dialecticè ad eam accedendum, consequentiam diuinæ doctrinæ venantibus. Vnde pulcherrimè Sacerdos apud Platonem Ægyptius, O' Solon Solon, inquit, Vos Græci semper estis pueri, nullam penitus in animis per veterem auditionem antiquam habentes opinionem: ex Græcis autem nullus est senex. Senes, vt arbitror, dicens, qui antiquiora, hoc est, nostra, nouerant: vt rursus iuuenes, qui recentiora, & quæ exercebantur à Græcis, quæ heri & nuper facta fuerant, vt vetera & antiqua referebant. Subiunxit itaque: Nec disciplina vlla cana tempore, more quodam barbarico non ficta & planè pura nobis vtentibus metaphora. Qui sunt ergo viri reuera bona mente præditi & cordati, absque vllo artificio accedunt ad totum figmẽtum interpretationis. De Græcis autem dicit, eorum opinionem parum quid differre à fabulis. Non sunt enim pueriles audiendæ fabulæ, sed nec ij qui pueris fabulæ facti sunt. B Pueros autem dixit ipsas quidem certè fabulas, vtpote quòd parum videant qui se apud Græcos existimant sapientes: per canã disciplinã, tacitè significans antiquissimã quæ est apud Barbaros, veritatẽ. Cui verbo opposuit illud, puer fabula, arguẽs fabulosam recentiũ tractationem, vt quæ puerorum instar, nihil habeat antiquius: vtrunque communiter, & fabulas eorum, & orationes esse pueriles ostendens. Diuinè ergo potestas illa quæ Hermæ loquitur in reuelatione: Visiones, inquit, & reuelationes propter eos qui sunt duplici corde, qui disputant in cordibus suis, sint ea necne. Similiter autem ex redundanti quoque doctrinæ copia validas efficiunt demonstrationes, confirmantq; ac fundant rationes demonstratiuas, quatenus eorum tanquam iuuenum mentes pendent sublimes in aëre. Lucerna ergo est præceptum bonum, vt vult Scriptura. Lex autem est lumen vitæ. Vias enim vitæ arguit disciplina. Lex rex est omnium mortalium & immortalium, inquit Pindarus. Ego autem per hæc exaudio eum qui legem tulit, & Hesiodium illud dictum esse accipio de Deo vniuersorum, etiamsi ex coniectura à Poëta dictum est, non autem ex comprehensione:

*τετραχῶς habet Græcũ, sed puto legendũ τριχῶς.* *ἡ μιαμύκωνος, Nõ una Myconis, linea est subaudiẽdum. Idẽ autẽ significat quod una hirundo nõ facit uer.* *συγγόμενοι.* *λύχνος.*

Hesiodus.

*Humano generi lex nanque est à Ioue lata,*
*Pisces atque feræ uolucresq; per aera nantes*
*Sese edunt, cùm illis ulla haud sit notio iuris.*
*Ast hominum generi iustum, est res quæ optima, cessit.*

Siue ergo naturalem legem quæ est vnà cum generatione, siue eam dicat quę rursus data est, sed à Deo, & naturæ & disciplinæ vna est lex, vt etiam Plato in Politico dicit vnum legislatorem: in Legibus autem, vnum ea quæ ad Musicam pertinent intellecturum, per hæc docens vnam esse rationem & Deum vnum. Moses autem videtur Dominum apppellare διαθήκην, hoc est, pactum seu testamentum. Ecce ego, dicens, pactum meum tecum. Nam prius quoque dixit pactum ipsum non esse quęrẽdum in scriptura. Est enim pactum quod Deus statuit, qui est author vniuersi. Deus autem Græcè θεὸς dictus, παρὰ τὴν θέσιν, hoc est, expositione, ordine & administratione. In Petri autem prædicatione inueneris Dominum vocari Legem & Rationem. Sed qui ex vera quidem sumitur philosophia, cognitionis monimentorum primus liber Stromateus hîc terminetur. C

*διαθήκη, ἀπὸ τοῦ τίθεσθαι. θεὸς, ἀπὸ τοῦ τιθέναι.*

# A CLEMENTIS ALEXANDRINI STROMATVM LIBER SECVNDVS.

DEINCEPS autem fuerit tractandum, quoniam barbaræ philosophiæ fures Scriptura Græcos esse dixit, quemadmodum hoc paucis ostendatur. Non solùm enim ex ijs quæ à nobis narrantur, ea quę sunt admirabilia & præter fidem imitantes, scripsisse ostendemus, sed etiam principalia dogmata surripientes, eáque adulterantes, cùm nostræ sint, vt demonstrauimus, scripturæ antiquiores, conuincemus, nempe & in decretis de fide, & de sapientia, & spe, & charitate, & de pœnitentia, & continentia, quinetiam de Dei timore. Examen certè virtutum veritatis, & quæcunq; postulabit quæ in proposito loco fit adnotatio, comprehendentur, & quòd maximè occultum barbaræ philosophiæ symbolicum hoc & ęnigmaticum genus sunt ęmulati, qui actione & exercitatione priscam sunt sectati philosophiam, quod quidem genus est vtilissimum, atque adeo maximè necessarium cognitioni veritatis. πραγματικοῦ. Post hæc existimo esse consequens ijs respondere quæ dicunt Græci dum in nos inuehuntur, paucas
B adducendo scripturas, si fortè contingat, vt Iudæus quoque paulatim exaudiens, ex ijs quæ credidit, possit conuerti ad eum quem non credidit. Præclaros autem egregiosq; philosophos meritò excipiet, à charitate profecta, eorum vitæ & inuentionis nouarum dogmatum reprehensio, non vlciscentibus quidem nobis inimicos, multum quidem abest, cùm etiam eis bene precari ac benedicere didicerimus qui nos execrantur, etiam si in nos maledictis inuehantur: sed vt illi conuertantur, si fortè erubuerint qui omni sunt ex parte sapientes, per barbaram correcti reprehensionem, vt possint tandem perspicere, cuiusmodi sint disciplinæ, quarum gratia peregrinando transmarinas obeunt regiones. Quorum enim sunt fures, ea quoque sunt demonstranda, eis nimio sui amore detracto, & maiori quàm par sit de se persuasione: quæ autem ipsi quærentes, gloriantur se inuenisse, ea sunt reprehendenda. Consequens autem est, vt disciplinarum qui vocatur orbis, ostendamus quàm sit inutilis, & de Astrologia, Mathematica, Magica, & arte præstringẽdi oculos, quæ dicitur γοητεία, cursim est à nobis tractandum. De ijs enim tanquam maximis scientijs, omnes Græci se iactant, & sibi placent. Qui autem liberè & audacter reprehẽdit, est pacificus. Sæpe autem diximus, neque nos vt Græci essemus exercuisse, neque in eo studium ponere. Hoc enim sufficit ad multos populari quadam persuasione à veritate abducendos. Quæ verè est autem philosophia, non in lingua, sed in mente iuuabit eos qui audierint. Oportet autem, vt opinor, eum qui curam gerit veritatis, non insidiosè captoq; consilio ac cura adhibita dictionem componere, sed conari
C tantùm id quod vult quomodo potest exponere. Eos enim qui hærent dictionibus, & in eis sunt occupati, res ipsę effugiunt. Atq; agricolę quidem est proprium, rosam quæ in spinis nascitur citra noxam carpere: similiter & artificis, eam quæ in ostrei carne infossa est margaritam inuenire. Aiunt autem gallinas quoque carnem habere suauissimam, quando eis non copioso apposito nutrimento, & eæ pedibus fodientes, cum labore alimentum colligunt. Si quis ergo eius quod est simile contemplandi potestate præditus, cupit in multis probabilibus ijsque Græcis, id quod verum est persequi, tanquam sub laruis verum vultum studiosè perscrutatus, venabitur. Dicit enim quæ Hermæ in visione apparuit potestas: Quod tibi contingit reuelari, reuelabitur. Propter tuam autem ne efferaris sapientiam, dicunt Prouerbia. In omnibus autem vijs cognosce ipsam, vt recto tramite dirigat vias tuas, pes autem tuus ne offendat. Vult enim per hæc ostendere, oportere opera esse verbo cõsequentia. Iam verò ostendit nos oportere ex omni doctrina eligendo habere id quod est vtile. Sunt autem viæ sapientiæ variæ, vt recto tramite incedamus ad viam veritatis. Via autem est fides. Pes autem tuus non offendat, ait de aliquibus qui videbantur aduersari vni eiq; diuinæ quæ prouidet administrationi. Vnde subiungit: Ne sis sapiens apud teipsum, per impias rationes, quæ seditionem agitant aduersus Dei œconomiam ac dispensationem. Time autem Deum, qui solus est potens: cui est cõsequens, Deo nihil aduersari. Et alioqui apertè quoq; docet

Marginal notes: ἀγαπητικός. A charitate profecta, aut si dici posset, charitatiua. — διαπονητέος. — φιλαυτίας. — εἰρωνικά. — ἀποδημαγωγία γὰρ τῆς ἀληθείας. — μορμολυκείοις. — ὀρθοτομεῖ.

Hebr. 12. inductio, quòd Dei timor, est mali declinatio. Dicit enim: Et declina ab omni malo. Hęc est disciplina Domini. Quem enim diligit Dominus, castigat, efficiens quidem vt doleat, ad hoc vt intelligat, restituens autem ad pacem & incorruptionem. Barbara itaque quam nos persequimur philosophia, reuera est perfecta & vera. Dicit itaque in Sapientia: Ipse mihi dedit non falsam eorum quę sunt cognitionem, vt cognoscam mundi constitutionem. & ea quæ deinceps sequuntur, vsque ad illud, Et vires radicum. In his omnibus naturalem comprehendit contemplationem, quę est omnium quę facta sunt in mundo sensili. Deinceps autem tacitè quoq; de ijs significat quę cōprehenduntur intelligentia, per ea quę subiungit: Et quęcunq; sunt occulta & aperta cognoui. Quę est enim omnium artifex, me docuit Sapientia. Paucis habes quid nostra profiteatur Sapientia. Horũ aũt disciplina quæ cum recta vitę institutione fuerit exercitata, per omnium artificem sapientiam, erigit ad eũ qui est dux & princeps vniuersi, qui est res apprehensu & venatu difficilis, quę semper recedit, & pcul abest ab eo qui persequitur. Ipse aũt cùm procul sit, incedit vel propinquissimè. res certè ineffabilis. Deus appropinquans ego, inquit Dominus, procul quidem essentia. Quomodo enim quod est genitum, appropinquarit ingenito? Proximè autem est potestate, qua sinu suo omnia complectitur. Si clanculum quis fecerit, inquit, & non videbo eum? Atqui & vidente, & benefaciente, & docente quæ nos tangit potestate, semper adest Dei potētia. Vnde Moses cùm persuasum haberet Deum nunquam humana cognitum iri sapientia, Ostende te mihi, inquit: & in caliginem, vbi erat Dei vox, ingredi cogitur, hoc est, ad arcanas & informes de eo quod est notiones. Non est enim in caligine Deus, aut in loco, sed supra locum, & tempus, & proprietatem eorum quę facta sunt: quare nunquam est in parte, nec vt continens, nec vt qui contineatur, aut per circumscriptionem, aut per sectionem. Quam enim domum ędificabitis mihi? inquit Dominus. Sed nec sibi ædificauit cùm capi non possit. Et quamuis cælum dicatur eius sedes, nec sic quidem continetur, sed requiescit delectatus opificio. Clarum est ergo occultatam nobis esse veritatem, & si id iam vno exemplo ostensum est, id quoq; paulo pòst monstrabitur pluribus. Quomodo autem nō sunt meritò excipiendi, qui & discere volunt, & ex sententia Solomonis possunt nosse sapientiam & disciplinam, & intelligere rationes prudentiæ, & suscipere strophas orationum, & veram intelligere iustitiam? vtpote quòd sit alia, quę non ex veritate docetur à Gręcis legibus & alijs philosophis. Et iudicia, inquit, dirigere, non iudicialia, sed quod est in nobis iudicium sanum & ab errore alienum oportere nos habere significat: Vt det simplicibus astutiã, puero aũt nuper nato sensum & beneuolẽtiam. Hęc enim cùm audierit sapiens, qui persuasum habet obedire pręceptis, erit per cognitionem sapientior. Qui est autem intelligens, acquiret gubernationem, & intelliget parabolam & obscurum sermonem, & sapientum dicta & ænigmata. Non enim adulterinas proferunt rationes, qui sunt à Deo inspirati, nec ij qui ab eis mercantur: sed nec laqueos quibus multi Sophistę adolescentes implicant, nulli rei quę vera sit vacantes. Sed qui spiritum quidem sanctum possident, profunda Dei scrutantur, hoc est, ij qui ea assequuntur quę latent in prophetis. Sanctis autem canes impertire vetatur, donec bestię manserint. Non oportet enim inuidiosis & perturbatis, & adhuc infidelibus & impudentibus moribus, ad latrandum aduersus inquisitionem, vnquam temperare diuinum & purum fluentum aquæ viuę. Ne effundantur, inquit, aquę extra fontem tuum, in tuas autem plateas transeant aquę tuę. Non enim hæc multi percipiunt qui in ea incidunt. Sed nec cùm didicerint cognoscũt, vt ait egregius Heraclitus. An non is quoq; tibi videtur eos qui non credunt vituperare? Iustus autem meus ex fide viuet, dixit Propheta. Dicit autem alius quoq; propheta: Nisi credideritis, non intelligetis. Quomodo enim admirabilem & supernaturalem eorum cōtemplationem capere potuerit anima, si intus in eis discendis depugnet incredulitas? Fides autem, quam Gręci calumniantur, existimãtes inanem & barbaram, est voluntaria anticipatio, pietatis assensio, rerum quæ sperantur substantia, argumentum earum quę non videntur, vt est sententia diuini Apostoli. Per eam enim maximè testimonium acceperunt antiquiores. Sine fide autem impossibile est Deo placere. Alij autem, rei non apparentis vnientem assensionem tradiderunt esse fidem sicut certè demonstrationem, rei quę ignoratur manifestam assensionem. Si itaq; voluntaria electio est alicuius appetens, versatur nunc appetitio in cogitatione. Quoniam autem actionis principium est electio voluntaria, inuenitur fides es-

Marginalia: Eccles. 1. 2. & 15. — Hierem. 23. — Exod. 33. — Esa. 66. — Prouerb. 1. — ibid. — Prouerb. 5. — Abacum 2. — Esa. 6. — Hebr. 11. — A, B, C

A se principium actionis, fundamentum prudentis electionis, aliquo ei prius per fidē ostendente demonstrationem. Volentem autem sequi id quod est vtile, est principium prudentiæ. Magnum itaq; momentum ad cognitionem affert, quæ diuelli non potest voluntaria electio. Iam fidei meditatio fit sciētia, quę stabili ac firmo innixa est fundamento. Scientiam itaq; definiunt philosophi, habitum qui transmoueri nō potest à ratione. Est ergo aliquis alius eiusmodi verus status pietatis ac Dei cultus, cuius sola est magistra ratio. Non ego quidem, sed, vt arbitror, Theophrastus dicit sensum esse fidei principium. Ab eo enim porriguntur principia ad eam quæ est in nobis rationem & cogitationem. Qui diuinis ergo credidit Scripturis, firmū habens iudicium cui contradici nequit, demonstrationem eius qui Scripturas dedit vocem accipit. Non vtiq; fit ergo fides munita per demonstrationem. Beati itaque qui non viderunt & crediderunt. Ac Sirenū quidem cantus efficaces, vim plusquam humanam ostendentes, eos qui in eas inciderant obstupefaciebant, vt ea quę dicebantur exciperent, propémodum inuitos inducētes. Hic fidem esse naturalem existimant Basilidis sectatores, quatenus eam etiam in electione collocant, vt quæ intelligente comprehensione, disciplinas inueniat citra demonstrationem. Valentiniani autem cùm nobis quidem simplicibus fidem tribuerint, sibi qui natura salui fiunt, volunt esse cognitionem ex excellentis abundantia seminis, dicentes eam esse longè magis à fide separatam, quàm spiritale ab animali. Præterea dicunt Basilidei, fidem simul & electionem esse propriam in vnoquoque spacio: rursus autem ex
B consequentia supermundanę electionis, consequi mundanam totius naturę fidem, & pro modo spei vniuscuiusq; conueniens quoque esse donum fidei. Voluntariæ ergò ac liberæ electionis non est fides vtique officium, si est naturæ commodum, nec iustam consequetur retributionem, nec qui non credidit cuius culpa id non euenit, nec is qui credidit, qui causa non fuit. Omnis autem fidei & incredulitatis proprietas & differentia, nec laudi, nec vituperationi fuerit obnoxia, rectè considerantibus, cùm habeat præcedentem naturalem necessitatem, quæ orta est ab eo qui potest omnia. Quòd si nos, tanquam inanima, naturalibus operationibus veluti funibus trahamur, superuacaneum est inuoluntarium, & appetitio quæ ea pręcedit. Nec ego illud vtiq; esse animal intelligo, cuius vim appetendi, quæ ab externa causa mouetur, sortita est nessitas. Vbi autem est amplius eius qui fuit aliquando incredulus pœnitentia, per quam remissio peccatorum? Quare nec amplius baptismus rationi consentaneus, nec beatum signaculum, nec filius, nec pater, sed est eis impia, vt existimo, naturarum distributio, quæ fundamentum salutis non habet fidem voluntariam. Nos autem qui libera & absoluta potestate eligere & vitare à Domino datum esse hominibus, à Scripturis accepimus, iudicio quod transmoueri & excidere non potest, fidei acquiescamus, alacrem & promptum ostendendo spiritum, quoniam vitam elegimus, & Deo per vocem illius credidimus, & qui verbo credidit, nouit rem esse veram. Verbum enim est veritas. Qui autem non credidit dicenti, Deo non credidit. Fide intelligamus aptata esse secula verbo Dei, vt ex in-
C uisibilibus visibilia fierent, inquit Apostolus. Fide maiorem hostiam Abel quàm Cain obtulit, per quam testimonium est consecutus quod esset iustus, testimonium perhibēte muneribus eius Deo, & per illam defunctus adhuc loquitur, & quæ deinceps sequuntur, vsq; ad illud, quàm temporalis peccati habere iucunditatem. Hos ergo cùm etiam ante legem fides iustificasset constituit hæredes diuinæ promissionis. Quid ergo adhuc fidei ex nostra historia recensens adduco testimonia? Deficiet enim me tempus enarrantē de Gedeon, Barac, Sampson, Iephtæ, Dauid, Samuel & Prophetis, & quæ sequuntur. Cùm autem sint quatuor in quibus verum consistit, sensus, intelligentia, scientia, opinio, natura quidem prima est mens seu intelligentia: nobis autem & ad nos relatus, sensus. Ex sensu autem & intelligentia consistit scientiæ essentia. Intelligentiæ autem & sensus commune est id quod est euidens. Sed sensus quidem est basis scientiæ. Fides autem progressa per sensilia, relinquit opinionem: contendit autem ad ea quæ sunt à falso aliena, & permanet in veritate. Si quis autem dicat scientiam demonstrare cum ratione, audiat, quòd sunt etiam principia quæ demonstrari nequeunt: neque enim cognosci possunt arte nec prudentia. Hæc enim versatur in ijs quæ contingit se aliter habere: illa autem est efficiens & propémodum contemplans. Fide ergo sola existimant se consequi princicipium vniuersorum. Quæuis enim scientia doceri potest. Quod autem doceri potest, docetur ex eo quod prius cognoscitur. Non prius autem cognoscebatur à Græ-

*Fides principium actionis, fundamētum electionis.*

*Ioan. 20.*

*Pœnitentia.*

*Baptismus.*

*Beatū signaculum.*

*Heb. 11.*

*ὑπόληψις.*

*ἐνάργεια.*

cis principium vniuersorum. Neque ergo à Thalete qui aquam sciebat primam causam, neque ab alijs qui deinceps consecuti sunt Physicis. Primus enim Anaxagoras mentem rebus adhibuit. Sed nec ille dignitatem seruauit efficientem, nescio quas amentes describens reuolutiones, cum mentis ab agendo cessatione & amentia. Quocirca verbum quoque dicit: Ne dixeritis vobis magistrum super terram. Quæ est enim scientia, est habitus demonstratiuus. Fides autem, gratia, quæ ex ijs quæ demonstrari nequeunt, deducit ad id quod est simplex, generale, & vniuersum, quod neque est cum materia, neque materia, neque sub materia. Increduli autẽ, vt videtur, ex cælo, & ex eo quod aspectari non potest, omnia trahunt in terram, manibus reuera petras & quercus apprehendentes, vt ait Plato. Omnia enim quæ sunt eiusmodi attingentes, hoc solum esse affirmant, quod habet applicationem & contactum eiusmodi, idem definientes corpus & essentiam. Aduersus eos ab alto decertantes, ex eo quod non est aspectabile, alicunde eos piè admodum vlciscuntur, incorporeas quasdam, & quæ intelligentia percipiuntur, formas, vrgentes veram esse essentiam. Ecce facio noua, ait Verbum, quę oculus non vidit, nec auris audiuit, nec in cor hominis ascenderunt. Nouo oculo, noua aure, nouo corde, quæcunque videri & audiri possunt, sunt per fidem & intelligentiam comprehendenda, spiritaliter dicentibus, audientibus, agentibus Domini discipulis. Est enim probus nummus, & alius adulterinus, qui nihilo secius rudes decipit & ignaros, sed non argentarios, qui sciunt cùm didicerint separare & discernere probum à reprobo, eoque qui est malæ notæ. Sic argentarius rudi & ignaro solum dicit nummum esse adulterinum. Quomodo autem, solus scit argentarij familiaris, & qui in eo est exercitatus. Aristoteles autem, id quod consequitur scientiam, iudicium, quòd verum sit hoc quidpiam, dicit esse fidem. Est ergo fides scientia præstantior, & eius iudex. Fidem autem imitatur coniectura, quæ est imbecilla opinio, sicut adulator amicum, & lupus canem. Quoniam autem videt faber quòd qui aliqua didicit, fit artifex, & gubernator doctus artem, gubernare poterit, non satis esse reputans fieri bonum & honestum: necesse est eum qui paret, discere: parêre autem Verbo, quem magistrum esse diximus, est illi credere, in nulla re repugnando, aut contradicendo. Quomodo enim fieri potest vt aduersus Deum aliquid sciamus? est ergo fidelis cognitio. Potest autem cognosci fides diuina quadam consecutione & mutua consequentia. Iam verò Epicurus quoque, qui veritati maximè prætulit voluptatem, cogitationis anticipationem existimat esse fidem. Anticipationem autem definit, applicationem ad aliquid euidens, & ad euidentem rei intelligentiam: neminem autem posse nec quærere, nec dubitare, neque verò opinari, sed neque probare aut arguere, absque anticipatione. Quomodo autem non habens quis anticipationem eius quod desiderat, didicerit id de quo quærit? Qui autem didicit anticipationem, iam facit comprehensionem. Si autem is qui discit, non discit absque anticipatione, quæ possit ea quæ dicuntur suscipere, ipse quidem habet aures præditas facultate audiendæ veritatis. Beatus est autem qui dicit in aures audientium. sicut certè beatus quoque est is qui est obedientiæ. Audire autem est intelligere. Si ergo fides nihil est aliud quàm anticipatio cogitationis circa ea quæ dicuntur, & hoc dictum est obedientia, & intelligentia persuasio, sine fide autem non discet aliquis, quoniá nec sine anticipatione, verum ergo omnino ostenditur quod à Propheta dictum est, Nisi credideritis, non intelligetis. Hoc eloquium Heraclitus quoque Ephesius circumloquens dixit: Nisi speret, id quod est insperatum non inueniet, cùm sit & inscrutabile, & nullus ad id pateat aditus. Sed Plato quoque Philosophus, in Legibus, eum qui beatus & felix est futurus, dicit oportere esse ab initio participem veritatis, vt cùm sit verus, plurimo viuat tempore: fidelis enim. Infidelis autem est, cui voluntarium placet falsum. Cui autem inuoluntarium, cùm sit amens, non est animal. Neutrum ergo est expetendum. Ingratus enim est quisquis est infidelis & ignarus. Nunquid autem in Euthydemo occultè hanc esse dicis regalem sapientiam? In Politico quidem certè his verbis: Quare veri Regis regalis est sapientia, & qui eam possederit, siue princeps, siue priuatus fuerit, omnino ex hac quidem arte βασιλικὸς, id est, regalis, seu regnandi peritus, rectè appellabitur. Iam qui in Christum crediderunt, Christi, id est, vncti, & sunt, & dicuntur: sicut ij qui sunt reuera regales, Regi curæ sunt. Sicut enim sapientes sunt sapientia sapientes, & qui sunt iusti, iure iusti sunt: ita etiam sunt à Christo Rege reges, & qui Christi sunt, sunt Christiani. Deinde inferiùs apertè subiungit; Quod rectum est autem

Margin: A (beside "cis principium"); Matth. 23. (beside "mentia"); *Fides, gratia quæ ex his, quæ demonstrari nequeunt, deducit ad id quod est simplex, generale, & uniuersum.*; Esa. 43. (beside "tes veram"); 1. Cor. 9. (beside "ris audiuit"); ἀργυραμοιβὸς. παρακεχαραγμένον. (beside "probus nummus"); B (beside "probo, eoque"); εἰκασία. (beside "& eius iudex"); πρόληψιν. πρόληψιν. κατάληψιν. (beside "voluptatem"); C (beside "res audientium"); Esa. 6. (beside "tur quod à Propheta"); ἄφιλος. (beside "rium, cùm sit amens"); νόμῳ νόμιμοι. (beside "pientes, & qui sunt iusti").

A autem fuerit legitimum, & lex cùm sit natura, est recta ratio, & non in scriptis, neque in alijs. Et hospes Eleates virum regalem & politicum, legem animatam pronunciat. Talis autem est qui legem quidem implet, facit autem voluntatem patris, apertè in excelso aliquo ligno inscriptus, diuinæ virtutis exemplar expositus ijs qui possunt perspicere. Sciunt autem Græci, Ephororum Lacedæmoniorum scytalas fuisse lege in lignis inscriptas. Lex autem mea, vt prius dictum est, est & regia & animata, & recta ratio. Lex, quæ est Rex omnium mortalium & immortalium, vt canit Pindarus Bœotius. Speusippus autem in primo aduersus Cleophontem, videtur dicere similia Platoni, sic scribens: Si enim regnum res bona est, & sapiens solus est Rex & Princeps: lex cùm sit recta ratio, bona fuerit. quæ quidem ita se habent. His consequentia statuunt philosophi Stoici, qui regnum, sacerdotium, Propheriam, legis ferendę scientiam, diuitias, veram pulchritudinem, nobilitatem, libertatem, soli sapienti tribuunt. Fatentur autem ipsi quoq; eum inueniri difficiliter. Videntur ergo omnia quæ prius dicta sunt dogmata, à magno Mose Græcis esse tradita. Et omnia quidem esse sapientis per hæc docet: Et quoniam misertus est mei Deus, mihi sunt omnia. Eum autem Deo esse amicum significat, dicens: Deus Abraham, Deus Isaac, Deus Iacob. Ipse autem inuenitur apertè vocatus amicus. Qui autem videt Deum, nomen mutasse ostenditur, & Isaac tanquam victimam consecratam allegoricè sibi delegit, typum futuram salutaris œconomiæ. Et à Græcis celebratur Rex Minos, qui nouem annis familiariter cum *Exod.13.*
B Ioue est versatus, cùm audiuissent quemadmodum Deus cum Mose loquebatur, vt si quis cum suo amico loqueretur. Erat autem Moses quidem sapiens, Rex, legislator. Seruator autem noster humanam omnem naturam superat. Pulcher quidem, vt à nobis solus ametur, qui veram desideramus pulchritudinem: erat enim lux vera. Rex autem & à pueris imperitis, & à non credentibus Iudæis & ignorantibus vocatus, & ab ipsis Prophetis prædicatus ostenditur. Adeò autem diues, vt omnem terram, & quod super terram, & sub terra est, aurum, quæ ei cum omni gloria ab aduersario dabantur, despexerit. Quid attinet dicere, quòd sit solus Pontifex, qui solus Dei cultus tenet scientiam? Rex pacis Melchisedech, qui solus est vel omnium aptissimus vt præsit humano generi. Legislator autem, vt qui dat legem in ore Prophetarum, quæ sunt agenda, & quę non, apertissimè præcipiens & docens. Quis aũt ex eo fuerit nobilior, cuius solus pater est Deus? Agè verò ostendamus Platonem quoq; eisdem suffragari dogmatibus. Sapientem in Phædro quidem dixit esse diuitem, dicens: O dilecte Pan, & quicunque alij dij hîc adestis, date mihi vt sim pulcher in ijs quæ sunt intrinsecus, extrinsecus autem quæcunque habeo sint mihi amica ijs quæ sunt intrinsecus, sapientem autem diuitem existimem. Hospes autem Atheniensis, eos reprehendens qui existimabant illos esse diuites qui multas possident pecunias, sic dicit: Vt autem valdè sint diuites & boni, nequit fieri, ij quidem quos diuites vulgus numerat. Dicit autem eos qui in paucis hominum maximi precij possessiones possident, quas etiam
C malus aliquis possidet. Fidelis est, totus mundus pecuniarum, ait Solomon: infidelis autem, ne obulus quidem. Multò ergo magis Scripturæ credendum est, quæ dicit fore vt celerius camelus per foramen acus transeat, quàm vt diues philosophetur. Contrà autem pauperes Plato beatos censet, vt intellexit, dicens: Paupertas autem est existimanda, non facultates diminuere, sed augere insatiabilitatem. Non est enim paupertas, pecuniæ paucitas, sed insatiabilitas: quę si recesserit, qui bonus est diues quoque fuerit. Et in Alcibiade, rem quidem seruilem dicit vitium, virtutem verò rem liberalem. Tollite, inquit, à vobis iugum graue, & sumite leue, ait Scriptura, quemadmodum vocant etiam Poëtæ iugum seruile. Et illud, Venundati estis peccatis vestris, ijs quæ prius dicta sunt conuenit. Omnis ergo qui facit peccatum, seruus est: qui est autem seruus, non manet in domo in æternum. Si autem filius vos liberauerit, liberi eritis, & veritas liberabit vos. Pulchrum autem esse sapientem, sic dicit hospes Atheniensis. Quòd si quis affirmet iustos, etsi sint deformes corpore, quatenus quidem sunt mores iustissimi, ea ratione esse pulchros: propémodum nullus sic dicens videri possit malè dicere. Et species eius deficiebat præter omnes filios hominum, prædixit Prophetia. Plato autem sapientem dixit Regem in Politico, vt prius iam dictum est. His autem demonstratis reuertamur ad susceptam de fide orationem. Iam verò Plato quoque omni ostendit demonstratione, quòd vbique fide opus sit. Ex verbis simul pacem. Fidelis enim & syncerus in

*Celerius camelus per foramen, &c. Matth.19. Marc.10.*

*Ioan.8.*

*Esa.53.*

seditionibus nunquam fuerit absque omni virtute. Pugnaces autem vel in bello A
mori volunt permulti mercenarij, quorum plerique ferè omnes sunt audaces & iniusti, insolentes, & prudentiæ expertes, paucis admodum exceptis. Si hæc autem rectè dicuntur, quiuis legislator, qui est alicuius momenti, ad maximam virtutem maximè respiciens, feret leges. Ea est autem fidelitas, qua in omni tempore opus habemus, & in pace, & in bello, & in alia vniuersa denique vita: videtur enim alias simul comprehensas continere. Quod optimum est autem, non est bellum, nec seditio: ijs enim opus habere deprecandum fuerit. Pax autem inter se inuicem & beneuolentia, res est longè optima. Ex his quidem constat, maximè esse optandum pacem habere, ex Platonis sententia: maximè autem mater virtutum est fides. Meritò ergo dictum est apud Solomonem: Sapientia est in ore fidelium. Nam Xenocrates quoque in libro de Prudentia, sapientiam dicit esse scientiam primarum causarum, & essentiæ quæ percipitur intelligentia: existimans esse duplicem prudentiam, vnam quidem quæ versatur in agendo, alteram quæ in contemplando, quam quidem esse dicit humanam sapientiam. Quocirca sapientia quidem est prudentia, sed non quæuis prudentia est sapientia. Ostensum est autem, principij vniuersorum esse eam quæ fide habetur scientiam, non autem demonstrationem. Absurdum enim fuerit Pythagoræ quidem Samij sectatores, recusatis eorum quæ quærebantur demonstrationibus, illud, Ipse dixit, fidem facere arbitrari, & ad ea quæ audierunt confirmanda, hanc vocem satis esse ducere: eos autem qui contemplandæ veritatis tenentur desiderio, fide digno magistro soli Seruatori Deo fidem non ha- B
bere, aggredientes eorum quæ dicuntur probationes ab eo exigere. Qui autem ha-
Epicharmus. bet aures audiendi, audiat. Et quis is? Dicat Epicharmus: Mens videt, mens au-
ἐπιτύφων. dit: alia autem sunt surda & cæca. Aliquos incredulos arguens Heraclitus, dicit:
Heraclitus. Audire nescientes, nec dicere. Adiutus vtique à Solomone dicente: Si dilexeris audire, suscipies, & si inclinaueris aurem tuam, eris sapiens. Domine quis credidit au-
Esa. 53. ditui nostro? inquit Esaias. Fides enim est ex auditu: auditus autem per Verbum
Rom. 10. Dei, inquit Apostolus. Quomodo ergo inuocabunt, in quem non crediderunt? Quomodo autem credent ei, quem non audierunt? Quomodo autem audient sine prædicante? Quomodo autem prædicabunt, nisi missi fuerint? Quemadmodum scriptum est: Quàm speciosi pedes euangelizantium bona. Vides quomodo per auditum, & prædicationem Apostolorum, fidem erigit ad Verbum Domini & filium Dei? Nondum intelligimus demonstrationem esse verbum Domini. Quemadmodum ergo sphæra ludere, non solum dependet ab eo qui mittit sphæram, sed ei etiam eo opus est qui illam numerosè excipiat, vt ex sphæræ legibus peragatur ludi exercitatio: ita etiam vt sit doctrina fide digna accidit, quando fides eorum qui audiunt, quæ est ars, vt semel dicam, naturalis, confert ad disciplinam. Adiuuat ique terra quoque fertilis ad seminum deiectionem. Neque enim optimæ doctrinæ est aliqua vtilitas, nisi adsit eius qui discit susceptio: neque prophetiæ, nisi adsit obedientia eorum qui audiunt. Aridæ enim festucæ, quæ sunt paratæ ad suscipiendam vrendi facultatem, facilius accenduntur: & lapis qui vulgò iactatur, ferrum tra- C
σούχιον. hit propter cognationem, & lachryma succini attrahit festucas, & electrum mo-
ἀχυρμίας. uet paleas. Eis autem parent quæ trahuntur, qui dici non potest tracta spiritu, non vt principales causæ, sed vt adiuuantes. Cùm sit ergo duplex vitij genus: vnum quidem, quod cum fraude & clanculum, alterum autem quod cum vi fert & trahit, diuinum Verbum clamauit omnes simul vocans, eos quidem vel maximè cognoscẽs qui non erant udituri: & tamen quoniam est in nostra potestate parêre & non parêre, vt nulli possint causari prętextum ignorantiæ, iustam fecit vocationem. Quod
τὸ κατὰ δύναμιν. autem præstare possunt vniuscuiusque vires, exigit. Nonnullis enim simul adest & velle & posse, vt ijs qui per exercitationem eò peruenerint & purgati sint. Alij autem etsi nondum possint, iam tamen habent velle. Est autem velle quidem, mu-
ἔλαβεν σύνεσιν μετέγνω. nus animæ: agere autem, non sine corpore, neque verò solus finis res dimetitur, sed eæ etiam vniuscuiusque electione dijudicantur: si facilè elegit, si peccatorum suorum ductus est pœnitentia, si propter ea in quibus lapsus est eũ remordet conscien-
κατόρθωμα. tia, & errorẽ recognouit, quod est, postea cognouit. Est enim tarda cognitio pœnitentia. Cognitio autem, est prima à peccato cessatio. Fidei ergo officium quoque & opus est pœnitentia. Nisi enim crediderit esse peccatum quo prius tenebatur, nõ dimouebitur: & nisi crediderit, ei quidẽ qui delinquit, impẽdêre suppliciũ: paratam aũt esse salutem ei qui ex præceptis viuit, ne sic quidem mutabitur. Iam autem spes

quoq;

A quoq; consistit ex fide. Definiunt itaq; fidem sectatores Basilidis, animæ assensioně alicui eorum quæ sensum non mouent, propterea quòd non adsunt. Spes autem est boni acquirendi expectatio. Fidelem autem necesse est esse expectationem. Fidelis autem est, qui citra transgresionem ea seruat quæ sunt ei tradita. Nobis autem traduntur quæ de Deo dicuntur, & verba diuina, nempe mandata, cum executione præceptorum. Hic est seruus fidelis qui laudatur à Domino. Cùm autem dixerit, fidelis Deus, cuinam pronuncianti par sit credere significat, & is fuerit Deus fidelis. Quomodo ergo, si credere est opinari aut existimare, quæ à se dicuntur Philosophi firma esse existimant? Non est enim opinio aut existimatio, ea quæ est voluntaria demonstrationis præcedentis assensio, sed alicui valido ac potenti assensio. Quis autem Deo fuerit potentior? Infidelitas autem, est eius quod oppositum imbecilla enunciatiua opinio seu existimatio: quemadmodum credendi difficultas quæ dicitur δυσπιστία, est habitus qui fidem difficiliter admittit. Et fides quidem est voluntaria existimatio, & anticipatio prudentis pręcomprehensionis. Expectatio autem est opinio futuri. Aliorum autem expectatio, est incerti opinio. Fiducia autem est firma de aliquo apprehensio. Quare ei credimus in quo fiduciam habuimus in gloriam diuinam & salutem. In solo autem Deo fiduciam habuimus, quem scimus non transgressurum ea quæ sunt pulchrè nobis promissa, & ideo creata, & ab ipso beneuolè nobis data. Est autem beneuolentia, bonorum voluntas, alteri illius ipsius gratia. Ille enim nullius indiget. In nos autem desinit beneficentia, & quæ

B est à Domino benignitas, cùm sit diuina beneuolentia, & beneuolentia ad hoc vt bene faciat. Si autem Abrahæ qui credidit reputatum est ad iustitiam, semen autem Abrahæ sumus nos, per auditum quoque nobis est credendum. Israëlitæ enim sumus nos, qui non per signa, sed per auditum credimus. Propterea lætare sterilis quæ non paris, erumpe & clama, inquit, quę non parturis, quoniam multi sunt filij desertę magis quàm eius quę habet virum. Vixisti in circuitu populi, benedicti sunt filij tui in tabernaculis patrum tuorum. Si autem eędem mansiones à Prophetia & nobis & rursus Patriarchis annunciantur: ostenditur vnum esse Deum vtriusque testamenti. Subiungit itaque manifestius: Hęreditasti testamentum Israël, dicens ei quæ est ex gentibus vocationi, quæ erat aliquando sterilis huius viri, qui est verbũ, quæ prius fuerat deserta à sponso. Iustus autem ex fide viuet, quæ est in testamento & præceptis, quoniam hæc duo, nomine & tempore, ætate & profectu, data œconomicè, cùm potestate quidem vnum sint, illud quidem nouum, hoc verò vetus, per filiũ ab vno Deo suppeditantur. Qua ratione dicit etiam Apostolus in Epistola ad Romanos, Iustitia enim Dei in ipso reuelatur ex fide in fidem vnam, quæ ex Prophetia perficitur in Euangelio per vnum & eundem dominũ docens salutem. Hoc, inquit, pręceptum commendo tibi fili Timothee, secundum pręcedentes in te prophetias, vt milites in illis bonam militiam, habens fidem & bonam conscientiam, quam quidem repellentes, circa fidem naufragauerunt, quoniam quæ à Deo venit conscientiam polluerunt infidelitate. Non est ergo amplius fides meritò temerè re

C prehendenda, vt & facilis & vulgaris, & quæ sit quorumlibet. Si humanum enim esset studium, vt existimabant Gręci, etiam extinctum esset. Sin autem augetur, non est vbi non sit. Dico ergo fidem, siue fundata sit à charitate, siue etiam à timore, vt dicunt accusatores, esse diuinũ aliquid, vt quæ neq; ab alia mundana amicitia diuellatur, neq; à timore pręsente dissoluatur. Charitas enim, ea, quæ illi cum fide intercedit amicitia, facit fideles. Fides autem est basis ac stabilimentum charitatis, vicissim inducens beneficentiam, quando etiam legis pædagogus timor, propterea quòd credatur, timor quoque esse creditur. Si enim in operando, quòd is sit ostenditur. Qui autem facturus est & minatur, non autem operans & præsens creditur, non ipse fidem procreat, qui esse fide dignus est ab ipsa probatus. Diuina ergo est tanta mutatio, vt qui ex infidelitate fidelis factus fuerit, spei quoq; credat & timori. At prima quidem ad salutem inclinatio nobis fides apparet, post quã timor & spes & pœnitentia, cum continentia & tolerantia proficientes, nos ducunt ad charitatem & ad cognitionem. Meritò ergo Barnabas apostolus, Ex qua parte, inquit, studui paulatim ad vos mittere, vt cum fide vestra perfectam etiam habeatis cognitionem. Fidei ergo nostrę coadiutores sunt timor & tolerãtia: quę autem nobis opem ferunt, sunt longanimitas & continentia. His ergo, inquit, in ijs quæ ad Dominum pertinent, castè manentibus, vnà cum eis lætantur sapientia, intelligentia, scientia, cognitio. Cùm itaque prius dictę virtutes sint elementa cognitionis, euenit vt si-

[Margin notes: ὑπολαμβάνειν. — Esa. 54. Galat. 4. — ἀπὸ τοῦ περιφέρειν (?) — νόσον.]

des sit magis elementaris, quæ ei qui est cognoscendi potestate præditus, est æquè necessaria, ac ei qui in hoc mundo viuit, ad viuẽdum respiratio. Vt autem absq; qua- A
*ἀέρα* tuor elementis non licet viuere, ita nec absque fide licet assequi cognitionem. Hæc est ergo basis veritatis. Qui timorem autem accusant, legem insectantur. Quòd si legem, clarum est quòd illum quoque qui legem dedit. Hæc enim tria necesse est consistant in subiecto: is qui administrat, administratio, & id quod administratur. Si ergo legem per positionem abstulerint, necesse est vtique vt vnusquisque qui ducitur à cupiditate, voluptati obsequens, id quidem quod rectè honesteque se habet negligat, Deum autem despiciat, absque metu autem simul sit impius & iniustus, vt qui à veritate exiluerit. At certè, inquiunt, timor est à ratione aliena declinatio, & animi perturbatio. Quid tu dicis? & quomodo tibi amplius seruari possit hæc definitio, cùm præceptum mihi per rationem seu verbum datum sit? Præceptum autem timorem pronunciat per disciplinam, eum qui id suscipit, parans vt corrigatur. Non est ergo timor à ratione alienus: est itaque rationi consentaneus. Quid ni enim, cùm adhortetur, Non occides, non mœchaberis, non furaberis, non falsum dices testimonium. Sed si nomina astutè excogitant, *εὐλάβειαν*, id est, cautionem, vocent legis timorem philosophi, quæ est consentanea rationi declinatio. Hos Critolaus Phaselites non ineptè vocauit *ὀνοματομάχους*, id est, qui depugnant de nominibus. Pulchrum ergo, atque adeò pulcherrimum, ijs qui nos accusant præceptum apparuit, excogitata mutatione nominis. Cautio ergo esse rationi consentanea ostenditur, cùm sit eius quod lædit declinatio, ex qua exoritur eorum quæ præcesserunt B
Psalm. 110. peccatorum pœnitentia. Principium enim sapientiæ est timor Domini. Intellectus
*ποιοῦσιν*. autem bonus omnibus facientibus eum. Sapientiam vocat effectionem, quæ est timor Domini, deducens ad sapientiam. Si autem lex affert timorem, principium sapientiæ est legis cognitio, & non est sapiens absque lege. Insipientes ergo sunt qui legem recusant, cui est consequens vt ipsi reputentur *ἄθεοι* seu impij. Disciplina autem est principium sapientiæ. Sapientiam autẽ & disciplinam impij nihili pendent, ait Scriptura. Videamus autem quęnam esse timenda lex annunciet. Si ea quidem quæ sunt media inter virtutem & vitium, vt paupertatem & morbum, & ignominiam, & ignobilitatem, & quæ sunt his similia: hæc quidem etiam quæ sunt in ci
*περιπατητικοῖς*. uitate leges proponentes laudantur, & Peripateticis, qui tria bonorum genera introducunt, & eorum contraria mala esse reputant, ea conuenit opinio. Nobis autem data lex, ea quæ verè mala sunt iubet fugere, adulterium, petulantiam, puerorum amorem, ignorantiam, iniustitiam, morbum, animę mortem, non eam quę soluit animam à corpore, sed eam quæ animam dissoluit à veritate. Hæc sunt enim grauia & verè timenda vitia, & quę ex eis proficiscuntur operationes. Verumenimuerò iniustè pennatis tendi retia dicunt diuina responsa. Ipsi enim dum sunt sanguinum participes, mala sibi instar thesauri recondunt. Quomodo ergo à nonnullis hęresibus lex adhuc mala dicitur? vociferantibus dicere Apostolum: Per legem enim cognitio peccati. Quibus dicimus: Lex peccatum non fecit, sed ostendit. Cùm enim ea quæ sunt facienda iusserit, reprehendit ea quæ non sunt facienda. Boni au- C
tem est, id quod salutare quidem est docere, quod exitiale autem ostendere, & illo quidem vti consulere, hoc verò iubere fugere. Iam Apostolus, quem non intelligunt dixit peccati cognitionem per legem esse manifestatam, non autem accepisse substantiam. Quomodo autem non est bona lex, quæ erudit ac castigat, & quæ data
*παιδαγωγικῶς*. est pædagogus ad Christum, vt dum per timorem castigationis ratione dirigimur,
Ezec. 18. ad eam quæ est per Christum perfectionem cõuertamur? Nolo, inquit, mortem peccatoris, sed eius pœnitentiam. Pœnitentiam autem efficit præceptum, quod ea quidem prohibet, quę non sunt facienda, benefacta autem profitetur. Mortem autem, vt arbitror, dicit ignorantiam. Et qui est prope Dominum, est plenus flagellis. Qui cognitioni scilicet appropinquat, periculis, timoribus, molestijs, afflictionibus vti-
*παιδευόμενος* castigatus, eruditus. tur, propter desiderium veritatis. Filius enim castigatus euasit sapiens, & seruatus est ab æstu filius intelligens. Filius autem intelligens suscipiet præcepta. Et Barnabas Apostolus: Væ qui sunt intelligentes apud seipsos, & coram se scientes. Et paulo pòst subiunxit: Efficiamur spiritales, templum Deo perfectum, quatenus est in nobis, Dei timorem meditemur, & eius præcepta seruare contendamus, vt lætemur in eius iustificationibus. Vnde sapientiæ principium timor Dei diuinæ dictus est. Hic Basilidis sectatores hoc dictum exponentes, dicunt i-
*φάσιν*. psum Principem cùm exaudijsset dictionem spiritus qui ministrabatur, propter auditio-

A ditionem & spectaculum fuisse obstupefactum, cùm ei præter spem annunciatum esset Euangelium, & eius obstupefactionem appellatam esse timorem, qui fuit principium sapientiæ genera dijudicantis, & discernentis, & perficientis, & restituentis. Cùm enim non solum mundum, sed etiam electionem discreuisset, eum postremò amandat. Videtur autem Valentinus quoque in quadam epistola talia quædam mente apprehendisse. His enim verbis scribit: Et sic ex illo figmento terrore affectus fuit author Angelorum, quando maiora elocutus est quàm quæ conuenirent effictioni, propter eum qui in ipso inaspectabiliter dederat semen supernæ essentię, & liberè loquebatur. Ita etiam in mundanorum hominum generationibus, timores fuerunt opera hominum ijs qui ea faciebant: quemadmodum statuæ & imagines, & omnium manus efficiunt in nomine Dei. In nomine enim hominis formatus Adam, timorem præbuit eius qui prius erat hominis, vt qui ipse esset in ipso cōstitutus, & obstupuerunt, & opus citò aboleuerunt. Sed cùm sit vnum principium, vt ostendetur paulo pòst, canoras quasdam nugas & figmenta videbuntur isti homines effingere. Quoniam autem à lege & Prophetis prius erudiri ac castigari vtile esse Deo visum est, principium sapientiæ dictus est timor Domini, qui à Domino per Mosen datus est ijs qui non obediunt, & sunt duri corde. Quos enim non expugnat ratio, eos mansuefacit metus. Quod quidem cùm ab alto præuidisset Verbum quod erudit ac castigat, vtroque modo aptè ac conuenienter expurgans, ad pietatem concinnauit instrumentum. Est igitur obstupefactio, timor ex insueta vi-

B sione seu phantasia, vel propter inexpactatam visionem, tanquam nuncium. Timor autem est insignis admiratio, tanquam ob id quod vel factum est, vel est. Non animaduertunt itaque se affectionibus ac perturbationibus fecisse obnoxium, maximum, & qui ab eis celebratur Deum, per obstupefactionem, & ante obstupefactionem versatum esse in ignoratione, si quidem ignoratio fuit ante obstupefactionem. Si autem obstupefactio, & timor fuit Dei sapientiæ principium, magnum est periculum, ne & ante Dei sapientiam & totius mundi creationem, quinetiam restitutionem & ipsam electionem quæ erat causa, fuerit ignoratio. Vtrum ergo rerum bonarum aut malarum est ignoratio? Sed si rerum quidem bonarum aliquid cessat obstupefactione, eis & minister cessat, & prædicatio, & baptisma: sin autem malarum, quomodo est malum causa rerum optimarum? Si enim non prior fuisset ignoratio, non descendisset minister. Sed nec obstupefactio cœpisset principem, vt ipsi dicunt: neq; sapientiæ principium cœpisset ex timore ad electionem & mundana dijudicanda. Si autem metus eius qui prius erat hominis, fecit sui figmenti insidiatores Angelos, vtpote quòd inaspectabile supernæ substantiæ semen collocaretur intus in opificio, aut ex inani opinione, quod quidem est incredibile, æmulatione perciti sunt in Angelos, propter opificium, cuius tanquam filij alicuius crediti sunt esse authores, adeò vt nulla non in eos cadat ignorantia, aut moti sunt cùm tenerentur præscientia. Sed non insidiati essent, per id quod aggressi sunt, ei quod prescivuerunt, neque ob suum opus obstupefacti essent, cùm ex præscientia semen

C supernũ intellexissent, aut postremò freti cognitione ausi essent, quod ipsum quoq; non potest fieri, cùm didicissent id quod est in pleromate homini insidiari. Præterea & id quod est ad imaginem, in quo est etiam exemplar, & id quod cum reliqua cognitione est ab interitu alienũ, assumpserunt. His ergo ipsis, & aliquibus alijs, maximè aũt Marcionistis, non audientibus clamat Scriptura: Qui aũt me audit, requiescet in pace cōfidens, & sine metu cessabit ab omni malo. Quid ergo hi legē esse volunt? Malam quidem non inquient, sed iustam, bonum à iusto discernentes. Dominus autem iubens timere malum, non malũ malo liberat, sed dissoluit contrarium cōtrario. Bono aũt malũ est contrarium, vt iustum iniusto. Si ergo malorũ dixit principium metus vacuitatem, quam facit Domini timor: timor bonum est, & qui est ex lege metus, non solùm est iustus, sed etiam bonus, vt qui auferat vitium. Metu autē inducit metus vacuitatem, nō animi perturbatione impatibilitatem: disciplina aũt ingenerat affectionum moderationem. Cùm itaq; audierimus, honora Dominum, & eris fortis, pręter ipsum aũt ne time alium: timere peccare, sequi autē quæ à Deo data sunt pręcepta, Dei honorem accipimus. Δέος autem est Dei metus. Sed etsi timor est affectio, vt volunt aliqui timorem esse affectionem, non est quiuis metus affectio. Superstitio quidem quę vocatur δεισιδαιμονία, est affectio vt quæ sit dæmonum metus, qui affectionibus susq; deq; feruntur & agitantur. Rursus autē Dei impatibilis metus est impatibilis. Timet enim quis non Deum, sed à Deo excidere. Qui autē

φιλοκρινητικῶς ἐπὶ πᾶσιν.

ὑπὲρ τοῖς ἀγγέλοις.

ἐκπλήξει.

διάκονος.

πληρώματι.

Prouerb. 7.

ἐκπαθὴς καὶ ἐμπαθής.

hoc veretur, nempe ne in mala incidat, mala timet & veretur. Qui autem timet ne cadat, se esse ab interitu alienum vult & impatibilem. Sapiens timens declinauit à malo. Insipiens autē confidens aggreditur, ait Scriptura. Et rursus: In timore Domini est, inquit, spes fortitudinis. Deducit ergo talis metus & ad pœnitentiam & ad spem. Spes autem est expectatio bonorum, vel absentis boni bona speratio. Certè casus quoq; vel ad bonam spem assumitur, quem ad charitatē deducere didicimus. Charitas autem fuerit consensio eorum quæ sunt in ratione & vita & moribus: aut, vt paucis dicam, vitæ societas, vel amicitiæ & beneuolentiæ extensio, cum recta ratione ad vsum amicorum ac familiarium qui ἑταῖροι vocantur (dicitur autem ἑταῖρος, quasi ἕτερος ἐγὼ, id est, ego alter) qua etiā eos fratres appellamus, qui sunt eodem verbo regenerati. Adhæret autem charitati & hospitalitas, quæ est artificium amicitiæ circa vsum hospitum. Hospites autem sunt, quorum sunt externa quæ sunt mundana. Mundanos enim eos qui in terram sperant, & concupiscentias carnales exaudimus: Nolite conformari, inquit Apostolus, huic seculo, sed transformemini renouatione mentis, ad hoc vt vos probetis quæ sit voluntas Dei bona, bene placens, & perfecta. Versabitur ergo hospitalitas in eo quod est vtile hospitibus. Hospites autē sunt qui etiam dicuntur ἐπίξενοι. ἐπίξενοι autem sunt amici. Amici autem sunt fratres. Frater amice, inquit Homerus. & humanitas, quæ est amicus vsus hominum, & bona affectio, quæ est quoddam amicitiæ artificium in amicorum vel necessariorum dilectiones, comitantur charitatem. Si autem reuera homo qui est in nobis, est spiritalis, humanitas est fraternitas ijs, qui sunt eiusdem spiritus participes. Affectio autem rursus est conseruatio beneuolentiæ vel dilectionis. Dilectio autem est perfecta & absoluta demonstratio: & diligi, quod est ἀγαπᾶσθαι, est placere moribus ducique & abduci. In idem autem ducuntur, quæ est scientia communium bonorum. Consensio enim, quæ ὁμογνωμοσύνη, est concentus in animis. Et non ficta, inquit, charitas sit nobis, & odio habentes malum, adhæreamus bono & fraternitati, & quæ sequuntur vsq; ad illud: Si possibile est, quantum in vobis est, cum omnibus hominibus pacem habentes. Deinde: Ne vincaris, inquit, à malo, sed vince in bono malum. Et idem Apostolus fatetur se Iudæis ferre testimonium, quòd zelum Dei habeant, sed non secundum scientiam. Ignorantes enim Dei iustitiam, & propriam quærentes statuere, Dei iustitiæ non fuere subiecti. Non enim Dei voluntatem cognouerunt & fecerunt, sed quod ipsi existimauerunt, hoc etiam legē velle putarunt. Neque legi tanquam prophetanti crediderunt, sed sermoni solummodo & timori, non autem affectioni & fidei crediderunt. Finis enim legis est Christus ad iustitiam, qui est à lege prædictus, omni credenti. Vnde eis dictum est à Mose: Ego æmulatione vos prouocabo in non gente, in populo stulto vos ad iram irritabo, qui fuit scilicet paratus ad obediendum. Et per Esaiam: Inuentus sum, inquit, ijs qui me non credunt, manifestus fui ijs qui me non interrogant: ante Domini aduentum scilicet, post quem Israëli quoque illa quæ prædicta sunt conuenienter dicuntur: Expandi manus meas toto die ad populum inobedientem & contradicentem. Vides causam vocationis gentium, apertè à Propheta dictam esse, populi inobedientiam & contradictionem. Deinde, in his quoq; Dei ostenditur bonitas. Dicit enim Apostolus: Sed eorum delicto salus gentibus, ad hoc vt eos æmulatione prouocarent, & vt vellent ipsi duci pœnitentia. Pastor autem cùm solummodo de ijs qui dormijssent posuisset dictionem, nouit quosdam iustos in gentibus & in Iudæis, non solùm ante aduentū Domini, sed etiam ante legem, ex eo quòd Deo grati acceptiq; fuerint, vt Abel, vt Noē, vt si quis alius iustus. Dicit ergo Apostolos & doctores filij Dei, etiam cùm dormijssent, potestate & fide prædicasse ijs qui prius dormierant. Deinde subiungit: Et ipsi dederunt ipsis signaculum prædicationis. Descenderunt ergo cum ipsis in aquam, & rursus ascenderunt. Sed hi viuentes descenderunt, & rursus viuentes ascenderunt: illi autem qui prius dormierant, mortui descenderunt, viui autem ascenderunt. Per hos ergo viuificati sunt, & agnouerunt nomē filij Dei, & ideo vnà quoq; cum illis ascenderunt, & eos compegerunt in turris ædificationem, & qui in lapides cæli non poterant, coædificati sunt. In iustitia dormierunt, & in magna puritate. Solum autem hoc signaculum non habebant. Quando enim gentes legem non habentes, natura quę sunt legis faciunt, ij legem non habentes sibijpsi sunt lex, vt ait Apostolus. Quòd itaq; virtutes se inuicē consequuntur, quid opus est dicere, cùm iam ostenderimus q, fides quidem sperat propter pœnitentiā, pietas aūt ꝑpter fidem, & quę in ijs est perseuerātia & exercitatio, vnà cum disciplina terminatur in charitate,

[Margin notes: Prouer. 14. — μέγιστη. — ἐμπειρία. — φιλοτεχνία. — Rom. 10. — ἐπίξενοι. — φιλανθρωπία. — φιλοστοργία. — στέρξις, ἀγαπᾶν ἀπὸ τοῦ ἄγεσθαι ἢ ἀνάγεσθαι. — Rom. 12. — Rom. 10. — διαθέσει. — Deute. 32. — Esa. 65. — Rom. 11. — ἀλατόμητοι. — Rom. 2. — εὐλάβεια.]

[Section letters in right margin: A, B, C]

A charitate,illa verò perficitur cognitione.Illud autem necessariò adnotandum est, q. solus Deus est intelligendus natura esse sapiens. Quare sapientia quoque Dei virtus,quę docuit veritatem,hîc quoq; assumpta est perfectio cognitionis. Amat autē & diligit veritatem philosophus, eo quòd sit verus ac germanus famulus, iam propter charitatem existimatus amicus. Eius aūt est principium,res admirari,vt dicit Plato in Theętero. Et Matthias adhortans in traditionibus, Admirare pręsentia,cū esse primum gradum statuens vlterioris cognitionis. Qua ratione etiam scriptum est in Euangelio secundum Hebręos:Qui admiratus fuerit,regnabit, & qui regnauit,requiescet. Fieri ergo non potest vt philosophetur qui est rudis & ignarus: porrò aūt non potest fieri vt philosophetur is qui sapientiæ notionem nō ceperit, cùm philosophia sit eius quod verè est appetitio,& earum quæ ad id tendunt disciplinarum.Et quamuis in rectè agendo se aliqui exercuerint, vt sciatur tamen quomodo sit vtendum,& faciendū est & adlaborandum,quatenus Deo quoq; assimilatur aliquis,Deo inquam seruatori,colens Deum Seruatorem per Verbum Pontificem,per quem videntur quæ in veritate sunt honesta & iusta.Religio est actio quę Deum sequitur.Hæc ergo tria noster sibi vendicat Philosophus: primùm quidem contemplationem:secundò autem,præceptorum executionem:tertiò verò,bonorum virorum cōstitutionem.Quæ quidem cùm conuenerint,efficiunt virum cognoscēdi potestate pręditum. Vnde diuinè dixit Scriptura: Et dixit Dominus ad Mosen dicens: Loquere filijs Israël,& dices illis,Ego Dominus Deus vester.Secundum studia terræ Ægypti in qua habitastis in ea,non facietis, & secundum studia terræ Chanaam, in quam vos ego illuc introduco, non facietis, & in eorum legitimis non incedetis.Iudicia mea facietis,& præcepta mea seruabitis.Ambulate in eis.Ego Dominus Deus vester,& seruabitis omnia præcepta mea,& facietis ea.Qui fecerit ea,viuet in eis.Ego Dominus Deus vester.An autem mundi & deceptionis,an animi perturbationum & vitiorum sit signum ac symbolum Ægyptus & terra Chanaam,nunc quidem est prætermittendum.Quęnam autem sint exercenda vt diuina & non mundana,nobis ostendit eloquium. Cùm autem dicit:Qui fecerit homo,viuet in eis:& ipsorum Hebręorum correctionem, & proximorum nostrorum & nostram exercitationem & profectum,ipsorum vitam dicit & nostrā.Qui enim sunt mortui delictis, conuiuificantur Christo per nostrum testamentum.Sępe autem repetens Scriptura illud, Ego Deus vester,pudore afficiendo pulcherrimè hortatur,docens sequi Deū, qui dedit præcepta.Admonet autem sensim Deum quęrere,& quoad eius fieri potest,conari cognoscere: quę quidem fuerit maxima contemplatio, quæ est reuera scientia supernę speculationis,à qua nunquam separatur iusta operatio.Sed eorum quidem qui se sapientes existimant,siue sint barbarę hæreses, siue Græcorum philosophi,inflat scientia,ex sententia Apostoli. Fidelis est autem cognitio, quæ fuerit ex scientia demonstratio eorum quę traduntur in vera philosophia. Dixerimus autem eam esse orationē quę ijs de quibus dubitatur, ex ijs quę sunt certa & extra controuersiam,fidem facit.Cùm sit autem duplex fides,vna quidem quę est ex scientia, altera verò quæ ex opinione:nihil obstat quo minus duplex nominetur quoq; demonstratio:vna ex sciētia,ex opinione altera:quandoquidē cognitio quoq;,& pręcognitio duplex dicitur:vna quidem quę accuratā & exactam habet suam naturā: altera verò quæ mancam. Nunquid autem ea sola quæ est apud nos vera fuerit demonstratio,vt quæ ex diuinis suppeditetur Scripturis,quæ sunt sacrę literę,& ex ea quæ à Deo docetur sapientia,vt ait Apostolus?Disciplina ergo,& parēre præceptis, quod est Deo credere,& fides Dei potentia,quę est vis veritatis,statim dicit: Si habeatis fidem vt granum sinapis,montem transferetis. Et rursus: Secundum fidem tuam fiat tibi.& vnus quidem curatur, suscepta per fidem curatione: mortuus autem resurgit per vim eius qui crediderat quòd esset resurrecturus. Quę est aūt ex opinione demonstratio,est & humana,& fit ex argumentis rhetoricis,vel etiam dialecticis syllogismis.Suprema enim demonstratio,quam ex scientia esse demonstrauimus,fidem inserit per allationem & apertionem scripturarum,animis eorum qui discere cupiunt, quæ quidem fuerit cognitio. Si enim quę assumuntur ad id quod quęritur,vera sumuntur,vt quę sunt diuina & prophetica: clarū est vtriq; quòd quæ etiam eis infertur conclusio, vera inferetur, & rectè nobis demonstratio fuerit cognitio.Cùm itaq; diuini & cælestis nutrimenti monimentum in vrna aurea consecrare iubebatur,Gomor,inquit,erat decima trium mēsura. In nobis enim ipsis tres mensuræ tria significant iudicia:sensus quidē sensilium; eorum autem quæ dicun-

Margin notes: σύνβασις (at "Religio est actio"); γνωστικόν (at "cognoscēdi potestate"); Leuit.18.; B (at "ræ Ægypti"); νομίμοις (at "legitimis"); ἐποπτικὴ θεωρία (at "contemplatio"); 1.Cor.8.; C (at "altera verò"); Marc.4.; Luc.17.; Matth.9.; Exod.17.

tur nominum & verborum, ratio: eorum autem quæ percipiũtur intelligentia, mẽs. A
γνωστικὸς. Qui est ergo cognoscendi potestate præditus, abstinebit quidem à peccatis quæ fiunt & sermone, & cogitatione, & sensu, & opere, cùm audierit, quemadmodum
Matth. 5. qui vidit ad concupiscendum, mœchatus est: & animo perceperit, quòd beati sunt
Matth. 15. qui sunt mundo corde, quoniam ipsi Deum videbunt: illud quoque sciens, quòd nõ quæ intrant per os, coinquinant hominem, sed illa quæ per os exeunt hominem coinquinant. Ex corde enim exeunt cogitationes. Hæc est, vt existimo, quæ ex Deo est vera & iusta mensura, quæ metitur ea quæ veniunt in dimensionem, ea quæ hominem continet decas, quam in summa tres prius dictæ significarunt mensuræ. Fuerit autem corpus & anima, & quinque sensus, & vocis edendæ potestas, visq; seminaria, & cogitandi seu spiritalis facultas, aut quocunque alio nomine vis vocare. Oportet autem, vt vno verbo dicam, alia omnia transcendentes, in mente sistere: sicut certè in mundo quoque, cùm nouem partes transilierimus, primam quidem quę est per quatuor elementa quæ in vno loco ponuntur propter mutationem, deinde septem errantes, & nonam inerrantem, venire ad perfectum numerum qui est super deos, nempe decimam partem, & vt semel dicam, ad Dei cognitionem, post creaturam desiderando effectorem. Propterea offerebantur Deo decimæ Oephi, & hostiarum, & paschæ dies festus incipiebat à decima, quæ est cuiusuis perturbationis
γνωστικὸς. & cuiusuis sensilis transitus. Fide ergo consistit is qui est cognoscendi potestate prę ditus. Qui se aũt existimat sapientem, ea quæ sunt veritatis non attingit, infirmis
ὁρμαῖς. & instabilibus vtens impulsionibus. Iurè ergo scriptum est: Egressus est autẽ Cain B
à facie Dei, & habitauit in terra Naid, contra Edem. Interpretatio autem Naid est fluctus: Edem autem, delitiæ. Fides autem & cognitio & pax sunt delitiæ, quam qui non audijt, eijcitur. Qui se autem existimat sapientem, ne omnino quidem diuina
σάλος vult audire præcepta, sed tanquã qui per se didicerit, effrænatus fertur in salum fluctuans, descendens ad mortalia, & ea quæ sunt generabilia, à cognitione ingeniti, aliàs alia opinans. Quibus autem non inest gubernatio, ij cadunt sicut folia. Ratio & quæ est pars principalis animæ, quæq; eam ducit ac regit, dicta est eius gubernator. Est enim reuera immutabiliter ad id quod est immutabile deductio. Sic Abra-
Genes. 18. ham stabat rectus ex aduerso Domini, & appropinquans dixit. Et dicitur Mosi, tu
Exod. 34. autem sta hic mecum. Simonis autem sectatores, stanti quem colunt, volunt assimilari moribus. Fides ergo & cognitio veritatis efficiunt, vt quæ eas acceperit anima, eodem modo & semper similiter se habeat. Cum falso autem cognatione coniuncta sunt transitio, declinatio & defectio, sicut vi cognoscendi tranquillitas, quies & pax. Quemadmodum ergo insectatur philosophiam arrogantia & gloriosa de se persuasio: ita etiam cognitionem falsa cognitio, & quæ appellatur æquiuocè. De
2. Tim. 1. qua scribens Apostolus, O Timothee, inquit, depositum custodi, deuitans prophanas vocum nouitates & oppositiones falsi nominis scientiæ, quam quidam promittentes circa fidem exciderunt. Cùm ab hac voce conuincantur hæretici, epistolas ad Timotheum abrogant. Age ergo, si Dominus est veritas, & sapientia, & Dei virtus, sicut est: ostendatur quòd reuera is est cognoscendi potestate prędituss, qui eum C
Prouer. 10. cognouit, & per ipsum, eius patrem. Sentit enim vnà eum qui dicit: Labia iustorum sciunt excelsa. Cùm autem fides sicut etiam tempus sit duplex, inuenerimus duas virtutes quæ simul habitant. Tempori enim quod est præteritum, est memoria: ei autem quod futurũ est, spes. Credimus enim fuisse pręterita, & fore ea quę futura sunt. Et rursus diligimus, sic se præterita habere fide persuasi, futura spe expectantes. Ei enim qui est cognoscendi potestate præditus, omnia persuasit dilectio, vt qui vnum Deum sciuerit. Et ecce omnia quæcunq; est architectatus erant valde bona,
θαυμάζει & nouit & admiratur. Pietas autem adijcit vitæ lõgitudinem, & timor Domini adijcit dies. Quemadmodum ergo dies sunt pars vitæ quæ pergit ascendere: ita etiam timor est principium dilectionis, qui fit per incrementum fides, deinde dilectio. Sed nõ sicut feram & timeo & odi, ita etiam patrẽ vereor quem timeo & amo. Rursus timens ne castiger, meipsum diligo, timorem eligens. Qui timet offendere patrem, seipsum diligit. Beatus ergo qui inuenitur fidelis, dilectione & timore cõtemperatus. Fides autem est virtus ad salutem, & potentia ad vitam æternam. Rursus, Prophetia est præcognitio: cognitio autem, est prophetiæ intelligentia. Veluti cognitio illorum quæ illis prius fuere cognita, à Domino, qui omnia prius manifestat. Cognitio ergo eorũ quæ prædicta sunt, triplicem ostẽdit euentum: aut eum qui fuit olim, aut eum qui iam est præsens, aut eum qui est futurus. Deinde extrema qui-

A quidem sub fidem cadunt, vel eorum quæ sunt perfecta, vel eorum quæ sperantur. Ad confirmanda autem ambo extrema, affert persuasionem præsens operatio. Si enim cùm vna sit prophetia, eius quidem vna pars perficitur, altera verò pars est impleta, hinc fit credibile & id quod speratur, & verum quod præterijt. Prius enim erat præsens, deinde nobis præterijt, adeò vt sit etiam fides præteritorum, præteriti comprehensio, & spes quidem futura, comprehensio rei futuræ. Assensiones autem, non solùm Platonici, sed etiam Stoici, dicunt esse in nostra potestate. Omnis ergo opinio, & iudicium, & existimatio, & disciplina, quibus viuimus, & semper sumus cum humano genere, est assensio. Ea autem nihil fuerit aliud quàm fides. Et incredulitas seu infidelitas, quæ est fidei interemptio aut destructio, ostendit posse esse assensionem aut fidem. Eius enim quæ esse non potuerit, nō fuerit priuatio. Et si quis verum consideret, inueniet hominem quidem malè audire ex eo quòd falso assentiatur: multa autem habere quæ eum moueant & incitent ad veri fidem. Quæ ergo Ecclesiam continet, vt Pastor inquit, virtus, est fides, per quam seruantur electi Dei: ea autem se viriliter ac fortiter gerens, est continentia. Eas autem consequitur simplicitas, scientia, innocentia, honestas, dilectio. Hæ autē sunt filiæ fidei. Et rursus: Præcedit quidem fides, timor autem ædificat, perficit autem dilectio. Dicit itaq; timendum esse Dominum ad ædificationem, sed non diabolum ad euersionē. Contrà autem opera quidem Domini, hoc est, præcepta esse diligenda & facienda, opera autem diaboli esse timenda, & non facienda. Timor enim Dei erudit ac castigat, & in B dilectionem restituit: timor autem operum diaboli, habet etiam odium cohabitās. Idem autem dicit etiam pœnitentiam esse magnam intelligentiam. Qui enim eorū quæ fecit, ducitur pœnitentia, non amplius facit vel dicit. Propterea autem quæ peccauit torquens animam, bona facit. Remissio ergo peccatorum differt à pœnitentia: ambo autem ea ostendit in nostra potestate. Eum ergo qui accepit remissionem peccatorum, non oportet amplius peccare, nempe in prima & sola peccatorū pœnitentia: ea autem fuerit eorum quæ prius fuerūt in gentili & prima vita: ea inquā, quæ fuit in ignorantia. Iam ijs qui vocati sunt, proponitur pœnitentia, expurgans locum animæ à peccatis, vt fides fundetur. Cùm autem sit Dominus cognitor cordium, & futura præsciat, facilem hominis mutationem, & ad reuertendum propensionem, & diaboli calliditatem ab alto vidit à principio, qui homini inuidens propter remissionem peccatorum, aliquas peccatorum causas seruis Dei suggeret, astute hoc moliens, vt ipsi quoque cum eo cadant. Dedit ergo cùm sit multæ misericordiæ, ijs etiam qui fide in aliquod peccatum incidunt, secundam pœnitentiā, quam, si quis tentatus fuerit post vocationem, coactus & callidè circumuentus, vnam adhuc impœnitendam acceperit pœnitentiam. Voluntariè enim peccantibus nobis, postquam acceperimus agnitionem veritatis, non amplius relinquitur pro peccatis hostia, terribilis autem quædam expectatio iudicij, & zelus ignis qui est deuoraturus aduersarios. Continuæ autem & se vicissim excipientes propter peccata pœnitentiæ, nihil differunt ab ijs qui omnino non crediderunt, præterquam in eo solo quòd se peccare senserunt: neq; scio vtrum sit deterius, pudentémne ac scientem C peccare, an cùm pro ijs quæ peccauit pœnitentia ductus fuerit, rursus peccare. Eo enim quòd vtrinque arguatur peccatum apparet: illud quidem condemnatum, propterea quòd factum sit ab operario iniquitatis, hoc verò, ab eo qui præscit id quod est faciendum, aggrediente vt malum. Et ille quidem iræ fortasse & voluptati obsequitur, non ignorans quibus gratificetur: hic autem qui cùm ductus sit pœnitentia propterea quòd sit gratificatus, deinde rursus recurrerit ad voluptatem, ei cōiungitur qui ab initio peccat voluntariè. Cuius enim ductus est aliquis pœnitentia, hoc rursus faciens, quod à se condemnatū facit, hoc sua sponte peragit. Ille ergo ex gentibus & priore illa vita ad fidem incitatus, remissionem peccatorum semel est consecutus: hic autem qui etiam postea peccauit, deinde pœnitentia ducitur, etiam si veniam assequatur, debet erubescere, vt qui non amplius lauetur in remissionē peccatorum. Oportet enim nō solùm idola relinquere quæ prius pro dijs habebat, sed etiam facta prioris vitæ, eum qui non est ex sanguinibus neque volūtate carnis, sed in spiritu regeneratur, quod quidem fuerit, non in idem reuolutum peccatum, duci pœnitentia. Est enim rursus meditatio peccatorum, sæpe pœnitere, & ad facilem mutationem aptitudo ex defectu exercitationis. Apparet ergo, sed non est pœnitentia, sæpe petere veniam de ijs quæ sæpe peccamus. Iustitia autem munit vias à reprehensione alienas. Et rursus: Viri innocentis iustitia diriget viam suam. Quinetiā

Marginalia: ἀπιστία, συγκατάθεσις. / ἀσυναρξία, sed lego, ἀσυναρξίας. / ἀκατάστατος. / Heb. 10. / ὑπεναντίους. / Prouer. 13. / Psal. 102.

Psal. 125. sicut pater miseretur filiorum suorum, misertus est Dominus timentium eum, scri- A
Psal. 113. bit Dauid. Qui seminant ergo in lachrymis, in exultatione metent, de ijs loquens qui confitentur in pœnitentia. Beati enim omnes qui timẽt Dominum. Vides eam quæ est in Euangelio similem beatitudinem. Ne timeas, inquit, quando diues fuerit homo, & quando multiplicata fuerit gloria domus eius. Quoniam dum ipse mo-
Psal. 48. ritur, non sumet omnia, neq; descendet cum eo gloria eius. Ego autem in misericordia tua introibo in domum tuam, adorabo ad templum sanctum tuũ in timore tuo. Domine deduc me in iustitia tua. Atq; est quidem timorem incutiens, mentis ad aliquid vel ab aliquo impulsio. Affectio autem seu perturbatio est nimia impulsio, vel quæ plus quàm par sit extendit mensuras rationis: vel impulsio quæ effertur, & nõ paret rationi. Præter naturam ergo animæ motus, ex ea quæ est rationi inobedientia, sunt perturbationes seu animi affectiones. Defectio autem & recessus & inobedientia sunt in nostra potestate, sicut etiam est in nostra potestate obedientia. Quocirca iudicantur etiam quæ sunt voluntaria. Iam si quis persequatur vnamquanque animi perturbationem, eas à ratione alienas inuenerit. Non iudicatur ergo, id quod est inuoluntarium. Id autem est duplex, vnum quidem quod fit ex ignoratione, alterum verò, necessitate. Nam quomodo iudicaueris de ijs qui dicuntur peccare modis inuoluntarijs? Aut enim qui seipsum ignorauit, vt Cleomenes & Athemas qui erãt correpti furore: aut rem quam facit, vt Aeschylus qui in scena effatus mysteria in Areopago dicta causa fuit absolutus, cùm ostendisset se non esse mysterijs initiatum: aut ignorans id quod agitur, vt qui emisit aduersarium, & domesticum occidit B
pro inimico: aut id in quo agitur, vt qui orbiculatis exercetur lanceis, & aliquem interfecit, cùm orbem emisisset lancea: aut ignorans quemadmodum esset faciẽdum, vt qui in stadio occidit aduersarium, non enim vt occideret, sed vt vinceret certabatur: aut id cuius gratia agitur, quemadmodum dedit Medicus salubre antidotum, & occidit. Is autem non ea de causa dedit, sed vt eum seruaret. Ac puniebat quidem tunc quoq; lex eum qui non spontè interfecit, vt eum qui nõ spontè laborabat profluuio seminis: sed non æquè atq; eum qui spontè. Quanquam ille quoq; punietur tanquam propter voluntarium, si quis animi perturbationem traduxerit ad veritatem. Reuera enim est puniendus is qui est verbi genitalis incontinens, quod ipsum quoque est animi affectio aliena à ratione, quæ propè accedit ad futilem loquacitatem. Fidelis autem eligit res celare spiritu. Quæ spontè ergo & ex electione suscipiuntur, puniuntur. Dominus enim scrutatur corda & renes, & iudicatur is, qui respo-
Exod. 20. xit ad concupiscentiam. Quare etiam dicit, Ne concupiscas. Et hic populus, inquit,
Marci 10. honorat me labijs: cor autem ipsorum procul est à me. Deus enim respicit ad ani-
Genes. 19. mum. Nam vxorem quoq; Loth quæ sua sponte solum erat conuersa ad mundanũ
λίθον ἁλάτινον. vitium, reliquit insensilem, efficiens eam vt petram salis, & statuens, ne vlterius progrederetur, non stultam & quæ nihil efficeret imaginem, sed quæ condire & confirmare posset eum qui potest perspicere spiritaliter. Voluntarium autem est, vel quod est ex appetitione, vel quod ex instituto ac electione, vel quod ex cogitatione. Iam verò hæc quodammodo inter se propè sita sunt, peccatum, infortunium, scelus seu C
ἁμάρτημα. ἀτύχημα. ἀδίκημα. iniustè factum. Et est peccatum quidem, verbi gratia, luxuriose & intemperanter viuere. Infortunium autem, amicum tanquam inimicum inscienter occidere. Scelus autem est, sepulchrorum effossio, aut sacrilegium. Peccare autem cõstat ex eo quòd nesciat iudicare, quídnam facere oporteat: sicut certè in fossam quoque incidit aliquis; vel quòd ignorauerit, vel quòd transilire non potuerit propter imbecillitatem corporis. Sed in nostra quidem certè est potestate, & ad nostram deduci disciplinã, & parère præceptis, quoniam nisi voluerimus esse participes, iræ & voluptati nos ipsos dedentes, peccabimus, vel potius iniuria nostram afficiemus animam. Laius enim ille dicit in tragœdia:

*Quorum monet latuit nihil me penitus.*
*Mihi tamen scienti affert natura uim.*

Hoc est, vt dedat animi perturbationi. Medea quoq; ipsa similiter clamat in scena:

*Factura quænam sim satis scio mala:*
*Consilio meo est ira ast potentior.*

Sed nec tacet Aiax, sed sibi manus illaturus vociferatur:

*Res ergo mentem est nulla quæ sic liberi*
*Mordet uiri, ac iniqua iniusta infamia.*
*Affectus ipse sic sum ego, me inuoluens*

Con-

A *Condensa labes, ex profundo commouet*
*Stimulis furoris concitum peracribus.*

Atq; hos quidem irá, alios verò innumerabiles cupiditas deducit in tragœdiam, Phædram, Anthiam, Eriphylem,

*Quæ sibi dilecti preciosum acceperat aurum.*

Comicum enim Thrasonidem alia scena: Puellula, inquit, vilis me sibi seruum fecit. Infortunium autem, est peccatũ mentis præter ratione. Peccatum auté est volũtaria iniustitia. Iniustitia auté est vitium voluntariũ. Est ergo peccatũ quidem meũ vol untarium. Et ideo dicit: Peccatum vobis nõ dominabitur. Non enim estis sub lege, sed sub gratia, dicens ijs qui iam crediderant. Quoniam eius nos liuore sanati sumus. Infortunium autem est alterius in me actio inuoluntaria. Iniustitia autem inuenitur solùm voluntaria, siue sit mea, siue alterius. Has autem peccatorum differentias significat Psalmographus, beatos dicens quorum Deus deleuit iniquitates, texit auté peccata, & alia non imputauit, & dimisit reliqua. Scriptum est enim: Beatus cui non imputauerit Dominus peccatũ, nec est in spiritu eius dolus. Hęc beatitudo facta est super electos à Deo per Iesum Christum dominũ nostrũ. Operit enim charitas multitudinem peccatorum. Delet auté is, qui magis vult pœnitentiã quàm mortem peccatoris. Non imputantur auté quæ non constant ex instituto & libera electione. Qui enim cõcupiuit, iam, inquit, mœchatus est. Et remittit peccata Verbum illuminans. Et in tempore illo, inquit Dominus, quærent iniustitiam Israël, & non erit, & peccata Iudæ, & non inuenientur. Quoniam quis sicut ego, & quis stabit cõtra faciem meam? Vides vnũ Deum annunciari bonum, qui retribuit pro meritis, & peccata remittit. Videtur autem Ioannes quoq; in maiore epistola, in his peccatorũ docere differentias. Si quis viderit fratré suum peccanté, peccatum nõ ad mortem, petet, & dabit ei vitã. Peccantibus non ad morté, inquit. Est enim peccatũ ad mortem: non de illo dico vt roget quis. Omnis iniustitia est peccatũ. Et est peccatũ non ad morté. Sed & Dauid, & ante Dauid Moses, per hæc, trium dogmatũ ostendũt cognitioné. Beatus vir qui non ambulauit in via impiorũ, sicut pisces ambulant in tenebris in profundo. Qui enim squamas non habent, quos prohibet Moses tangere, pascuntur in profundo maris. Neq; in via peccatorũ stetit, sicut ij qui cùm Dominũ videantur timere, peccant, vt porcus. Esuriens enim clamat: repletus auté nõ agnoscit Dominũ. Neq; sedit super cathedram pestilentiæ, sicut volucres paratæ ad rapinam. Suasit auté Moses non vesci porco, nec aquila, nec accipitre, neq; coruo, neq; quouis pisce qui non habet squamas. Hæc quidem Barnabas. Audiui autem ego virum in his rebus doctũ, dicentem esse quidem gentes consilium impiorũ. Viam aũt peccatorũ, Iudaicam opinioné: & pestilentiæ cathedram accipienté hæreses. Alius auté dicebat magis propriè, positam quidem esse primam beatitudiné, in ijs qui nõ sunt sceleratas secuti sententias, quæ à Deo defecerunt. Secundam auté, eorum qui in lata via manent, vel eorũ qui nutriti sunt in lege, vel etiam eorum qui ex gentibus non sunt ducti pœnitentia. Cathedra auté pœnitentiæ & theatra fuerint & iudicia, vbi magis sequuntur improbas & exitiales potestates, & operũ eorum societatem. Sed in lege Domini voluntas eius. Petrus in prædicatione legem & verbũ appellauit Dominũ. videtur auté aliter quoq; legislator docere tres modos quibus accipitur peccatũ. Eorum quidem quæ in sermone fiunt, per pisces mutos: est enim reuera vbi silentium est sermone præstantius: est etiam silentij munus expers periculi. Eorũ autem quæ sunt in facto, per aues rapaces & carniuoras. Porcus cœno & stercore delectatur, & oportet ne conscientiam quidem habere pollutam. Meritò ergo dicit Propheta: Non sic, inquit, impij, sed tanquã puluis qué proijcit ventus à facie terræ. Propterea non resurgent impij in iudicio, qui iam sunt cõdemnati: quoniam qui non credit, iam iudicatus est. Neq; peccatores in consilio iustorũ, qui iam sunt damnati ad hoc, vt nõ vniantur ijs qui citra vllum lapsum vixerũt. Quoniam nouit Dominus viam iustorũ, & via peccatorũ peribit. Rursus Dominus apertè ostendit in nostra esse potestate delicta & peccata, ponens modos curationis animi morbis cõuenientes, volens nos à Pastoribus corrigi per Ezechielem: accusans, opinor, eorum aliquos, quòd præcepta non seruauerint. Quod imbecillum fuit non confirmastis, & quæ deinceps consequuntur, vsq; ad illud, Et non erat qui requireret, nec auerteret. Magnum est enim gaudium apud patrem, vno peccatore seruato, inquit Dominus. Ea ratione magis est laudandus Abraham, qui ambulauit sicut locutus est ei Dominus. Cùm hinc hausisset quidam ex Græcorum sapientibus, illud di-

Marginal references: Rom. 6. — Esa. 53. — 1. Pet. 2. — Psal. 31. — 1. Pet. 4. — Hiere. 50. — Naum 1. — B — 1. Ioan. 3. — Psal. 1. — C — Ezech. 34. — Lucæ 15.

*Antiquũ dictum, Deum sequere, unde sumptum.* A ctum protulit, Deum sequere. Pij autem, inquit Esaias, ea quæ sunt, sapientia consultarunt. Consilium aũt est quæstio, quomodo in præsentibus rebus rectè transegerimus. εὐβουλία autem, id est, bona consultatio, est prudentia in consilijs. Quid verò, an non Deus quoq; post Cain datam veniam, consequenter non multò pòst introducit Enoch, qui ductus fuerat pœnitentia, significans solere pœnitẽtiam generare veniam? *συγγνώμη.* Consistit autem venia non ex remissione, sed ex medicatione. Hoc ipsum etiam fit apud Aaron in fabricatione vituli. Hinc quidam ex Græcorum sapientibus dixit: Venia est melior supplicio. sicut certè illud quoq;: Sponde, noxa præstò est, ex voce Salomone dicentis: Fili si pro amico tuo fideiusseris, trades manum inimico. *Prouer. 6.* Laqueus enim viro validus labia propria, & capitur verbis oris proprij. Paulò autẽ iam magis mysticè illinc sumptum est illud, Nosce teipsum. Vidisti fratrem tuum, vidisti Deum tuum. Hac vtiq; ratione diliges Dominum Deum tuum ex toto corde tuo, & proximum tuum sicut teipsum. *Matth. 21. & Gal. 5.* In his dicit præceptis totam legẽ & Prophetas pendêre. His illa quoque concinunt: *Ioan. 15.* Hæc locutus sum vobis, vt gaudium meũ impleretur. Hoc autem est præceptum meum, vt vos inuicem diligatis, sicut dilexi vos: est enim misericors & miserator Dominus Christus vniuersis. Apertius autem, Nosce teipsum, præcipiens Moses, sæpe dicit: Attende tibi ipsi. *Eleemosynis et fide expurgantur peccata.* Eleemosynis ergo & fide expurgãtur peccata: timore autem Domini quilibet à malo declinat. Timor autem Domini est disciplina & sapientia. Hîc rursus exoriuntur accusatores, gaudium & tristitiam dicentes esse animi perturbationes. Gaudium enim definiunt elationem rationi consentaneam: *χαρὰν.* & exultare, *ἀγάλλιᾶσθαι.* propter ea quæ sunt bona lætari: misericordiam autem, tristitiam propter eum qui indignè mala patitur: animæ autẽ esse mutationes & motus ea quæ sunt eiusmodi. B Nos autem, vt videtur, hæc non cessamus carnaliter intelligere, & ex nostris animi affectionibus deducere scripturas, & Dei impatibilis voluntatem nostris motionibus similem accipere. Vt nos autẽ audire possumus, ita in omnipotente habere existimãtes, impiè aberramus: sed vt nos audire poteramus qui carne eramus illigati, ita nobis sunt locuti Prophetæ, Domino se salubriter accommodante ac demittente ad hominum imbecillitatem. Quoniam igitur est Dei voluntas vt seruetur is, qui paret præceptis, & suorum peccatorum ducitur pœnitentia, gaudemus autem propter nostram salutem: id quod nobis adfert lætitiam, sibi vt proprium attribuit Dominus qui locutus est per Prophetas, *Matth. 25.* quemadmodum humanè dicens in Euangelio: Esuriui, & dedistis mihi manducare: sitiui, & dedistis mihi bibere: quod enim vni horum minimorum fecistis, mihi fecistis. Quemadmodum ergo nutritur, qui non nutritur, propterea quòd sit nutritus is quem velit: ita non mutatus gauisus est propterea quòd gaudio affectus sit is qui pœnitẽtia ductus est, vt volebat. Qui autem affatim *πλουσίως.* miseretur Deus cùm sit bonus, & præcepta dans per legem & Prophetas, & iam propinquius per filij aduentũ seruans & miserans eos quos est miseratus: & propriè miseretur maior minoris. Et homo quidem non fuerit homine maior, quatenus homo natus est: est autem Deus homine maior in omnibus. Si ergo qui est maior, miseretur minoris, solus Deus nostrî miserebitur. Homo enim fit à iustitia libenter communicans, & ea impertit quæ à C Deo accepit, & propter naturalem beneuolentiam & habitudinem, & propter præcepta quibus paret. Deus autem nullam habet in nos naturalem habitudinem seu relationem, vt volunt hæresum conditores, nec si faciat ex ijs quæ non sunt: nec si fabricetur ex materia, quandoquidem illud quidem ne omnino quidem est, hæc verò est à Deo diuersa in omnibus, nisi quis ipsam eius esse partem, & esse nos eiusdẽ cum Deo essentiæ ausit dicere. Nescio quomodo quis ita accipiens, Deũ nosse possit sustinere, respiciens ad nostram vitam in quot versemur malis. Sic enim fuerit, quod nefas est dicere, Deus peccans in singulis partibus, siquidem partes sunt totius partes, & totum complent. Sin autem non complent, ne partes quidem fuerint. Verumenimuerò cùm natura Deus sit diues misericordia, nostrî propter suam bonitatem curam gerit, qui nec sumus eius partes, nec filij natura. Et est hoc quidem certè maximum Dei in nos bonitatis indicium, quòd cùm sic in ipsum nos geramus, et natura simus omnino alieni, nostrî tamen curam gerat. Ac naturalis quidem est amantibus in suos fœtus affectio, & quę ex consuetudine oritur amicitia, ijs qui sunt eiusdem sententię. Est autem in nos copiosa Dei misericordia, qui nihil ad eum attinemus, vel essentia inquam nostra, vel natura, vel propria nostræ essentiæ facultate, sed eo tantum quod simus opus eius voluntatis. Atque adeò eum qui sua sponte cum exercitatione & doctrina cognitionem accepit veritatis, vocat adoptionem,

quæ

A quæ est maximus omnium profectus,capiunt autem iniquitates:suis autem peccatorum catenis vnusquisq; astringitur,nec eorum causa Deo est adscribenda.Et reuera beatus est vir,qui omnia veretur propter pietatem. Quemadmodum ergo scientia est habitus qui facit sistere,à quo scire euenit:fit autem ei comprehensio quæ dimoueri non potest à ratione:ita etiam ignoratio est phantasia seu visio cedens, quæ dimoueri potest à ratione.Quod autem dimouetur,vt id quod constituitur ac confirmatur à ratione,est in nostra potestate.Scientiæ autem est adiuncta, & experientia,& quæ Græcè dicitur εἴδησις,& quæ σύνεσις,& intelligentia,& cognitio. Et fuerit quidem εἴδησις,vniuersorum scientia per speciem.Experientia autem,scientia comprehendens,adeò vt etiam diligenter perscrutetur quale sit vnumquodq;.Intelligẽtia autem est scientia eius quod mente intelligitur.Et σύνεσις est scientia eius quod est comparabile,aut comparatio quæ dimoueri non potest,aut comparatiua facultas eorum quorum est prudentia & scientia,& vniuscuiusq;, & omnium quæ in vnam conferuntur rationem.Cognitio autem est eius ipsius quod est scientia,aut scientia quæ ijs quæ fiunt congruit.Veritas autem,veri scientia. Habitus autem veritatis,est scientia verorum.Scientia autem consistit per rationem,& alia ratione dimoueri non potest,& hic de cognitione diligenter inquirit. Quæ autem non facimus, ea aut non facimus propterea quòd non possimus, aut propterea quòd nolimus, aut propter vtrunque.Non volamus itaque,quoniam nec possumus, nec volumus. Non natamus autem modò,verbi gratia,quoniam possumus quidem,sed non volu-

Prouer.3. ἀπαρτικὴ ἕξις. συναγωγὸς μῆκος (?) πολυπραγμοσύνη (?)

B mus.Non sumus autem sicut Dominus,quoniam volumus quidem,sed non possumus.Nullus est enim discipulus super magistrum.Satis est autem si facti fuerimus sicut Dominus,non essentia:fieri enim non potest vt id quod est adoptione,sit essentia æquale ei quod est natura,sed quòd facti simus sempiterni,& contemplationem eorum quæ sunt cognouerimus,& filij appellati simus,& patrem ex ijs quæ sunt ei coniuncta solùm videamus.Velle ergo omnia antecedit:rationales enim facultates sunt eius quod est velle,ministræ.Velis,inquit,& poteris.Eius autem qui est cognoscendi potestate præditus,& voluntas,& iudicium,& exercitatio est eadem.Si sunt enim eædem propositiones,eadem sunt & dogmata & iudicia,vt ei sint & verba, & vita,& mores instituto argumento consequẽtes.Cor autem rectum exquirit cognitiones,& illas exaudit.Deus docuit me sapientiam,& noui sanctorum cognitionẽ. Clarum est ergo omnes quoque alias virtutes quæ scriptæ sunt apud Mosem, præbuisse Græcis principium totius loci moralis,magni,inquam,animi virtutem,& tẽperantiam,& prudentiam,& iustitiam,fortitudinem & tolerantiam, & honestatẽ, & continentiam,& quæ eas superat religionẽ. Sed religio quidem est cuilibet manifesta,quæ supremam & antiquissimam causam docet colere & honorare.Eadem quoque lex exhibet iustitiam,docens etiam & prudentiam per abstinentiam à simulachris sensilibus,& ad vniuersorum effectorem & patrem euocationem.ex qua quidem,tanquam ex fonte aliquo,sententia,augetur omnis intelligentia.Sacrificia enim iniquorum,sunt Domino abominatio:vota autem eorum qui recta via incedunt,sunt ei accepta.Deo enim magis est accepta iustitia quàm sacrificium. Talia

ἀπὸ τ̃ εἰδέναι (?) τῇ ἐντάσει (?) τὴν ὑπὲρ πάντα (?)

C sunt etiam ea quæ sunt apud Esaiam:Quid mihi multitudo sacrificiorum vestrorũ, & vniuersa victimarum mactatio?& cætera quæ sequuntur. Solue omne vinculum iniquitatis:hoc enim sacrificium est Deo acceptum.Cor contritum & quærens eũ qui formauit.Trutinæ dolosæ abominatio coram Domino : statera autem iusta est Domino accepta.Hinc suadet Pythagoras stateram non transilire.Dolosa autem iustitia dicta est,professio hæresum.Et lingua quidem iniustorum peribit, os autem iustorum distillat sapientiam:sed enim sapientes & prudentes, stultos appellant. Longum autem fuerit de his virtutibus testimonia adducere,cùm vniuersa eas celebret scriptura.Quoniam autem magni quidem animi virtutem definiunt scientiã eorum quæ sunt grauia & non grauia:& eorum quæ sunt intermedia: temperantiã autem,habitum,qui eligendo & vitando seruat iudicia prudentiæ:adiungitur magni quidem & excelsi animi, virtuti, & tolerantia, quam appellant fortitudinem, scientiam eorum quæ sunt sustinenda & quæ non:& celsitudo mentis,scientiam eorum quæ accidunt,ea transcendens.Quinetiam temperantiæ,cautio,quæ est declinatio cum ratione.Custodia autem præceptorum,cum sit innoxia eorum obseruatio,est securitatis vitæ acquisitio.Nec potest esse quis tolerans absque magni animi virtute,neque continens absque temperantia.Se autem inuicem consequuntur virtute,& apud quem sunt virtutum consequentiæ,apud eum est etiam salus, quæ

Esa.1. Prouerb.10. φαῦλος. μεγαλοψυχία σωφροσύνη (?)

est eius quod rectè habet conseruatio. Iure ergo si de his virtutibus adhuc tractauerimus, de omnibus considerauerimus: quoniam qui habet vnam cognoscendo virtutem, omnes per mutuam habet consequentiam. Iam continentia est affectio, quæ non transiluerit ea quæ visa fuerint ex recta ratione. Continens autem est is qui continet eas appetitiones quæ sunt præter rectam rationem: vel qui seipsum continet, ne appetitione efferatur præter rectam rationem. Temperantia autem ipsa non est sine magni animi virtute, quandoquidem ex præceptis oritur, sequens Deum qui ordinauit, & prudentia, & quæ diuinum statum imitatur iustitia, per quam cùm simus continentes, mundi ad pietatem ac religionem, & quæ Deum consequenter sequitur, actionem tendimus, assimilati Domino, quoad eius fieri potest à nobis caducis & morti obnoxijs. Id autem est, iustum & sanctum fieri cum prudentia. Deus enim nullius rei indiget, & est impatibilis: vnde nec est propriè continens. In eum enim nulla vnquam cadit affectio aut perturbatio, vt eam superet. Nostra autem natura, quæ est obnoxia affectionibus & animi perturbationibus, opus habet continentia, per quam dum exercetur vt paucis indigeat, conatur habitu ad diuinam naturam accedere. Vir enim bonus paucis indiget, vt qui sit in confinio naturæ mortalis & immortalis: egens quidem & propter corpus, & propter ipsam generationem: paucis autem egere doctus, propter susceptam ratione continentiam. Quámnam enim habet rationem, quòd lex viro prohibet, ne vestem induat muliebrem? An non nos vult esse viros, & nec corpore, nec factis, nec mente, nec verbis effœminari? Vult enim eum esse masculum qui veritati dat operam in ferendis laboribus & perpessionibus, in vita & moribus, & in sermone & exercitatione, noctu & interdiu, & sicubi testimonio seu martyrio opus sit quod procedat per sanguinem. Rursus, si quis, inquit, domum à se nuper ædificatam nondum habitauit, aut vitem nuper plantatam operatus, fructus nondum fuit particeps: aut sibi desponsæ virgini nondum nupsit, eos vult humana lex esse immunes à militia, & prudenter vt decuit Imperatorem, ne dum auellimur à cupiditatibus, ignauo & deiecto animo demus operam militiæ: sunt enim liberi ab appetitionibus, qui citra vllam excusationem quæuis grauia pericula adeunt: humanè autem quoniam incertos bellorum casus reputans, iniquũ esse duxit vt hic quidem suis non frueretur laboribus, alter autem citra vllum laborem ea perciperet quæ sunt eorum qui laborarunt. Videtur autem lex quoque indicare animi magnitudinem, statuens oportere eum qui plantauit fructum percipere, & eum qui ædificauit habitare, & eum qui puellam ambijt, vxorem ducere. Iis enim qui se exercuerunt, spes non reddit irritas ex ratione cognitionis: nam & mortui & viuentis boni viri spes non perit. Ego eos qui me diligunt, amo, inquit sapientia: qui autem me quærunt, inueniunt pacem. & ea quæ sequuntur. Quid verò, an non mulieres Madianitarum sua pulchritudine bellantes Hebręos à temperantia per incontinentiam deduxerunt ad impietatem? Meretricijs enim illecebris à graui & honesta exercitatione ad meretricias voluptates forma inescantes, ad sacrificia idolorum, & ad externas mulieres veluti quodam furore percitos deduxerunt. A mulieribus autem simul victi & voluptate, à Deo quidem defecerunt & à lege: & propémodum vniuersus populus in hostium manus venit ac potestatem muliebri strategemate, donec ipsos in periculum adductos exemit timor admonens. Iam verò ij qui reliqui erant, magno & lubenter pericula adeunte animo, pro pietate ac religione certamen suscipientes, euaserunt hostibus superiores. Sapientiæ ergo principium est religio. Intelligentia autem est rerum sanctarum cura & prouidentia. Nosse autem legem est bonæ mentis. Qui ergo existimarunt legem efficere timorem in quem cadit perturbatio, nec sunt intelligentes, nec legem reuera perceperunt. Timor enim Domini viuificat. Qui autem errat, affligetur in laboribus quos non considerat nec reputat cognitio. Mysticè profectò Barnabas: Deus qui est vniuersi mundi Dominus, inquit, det etiam nobis sapientiam & intelligentiam, scientiam, cognitionem iustificationum eius, tolerantiam. Efficiamini ergo à Deo docti, requirentes quid à vobis quærat Dominus, vt inueniatis in die iudicij horum insidiatores. Dilectionis & pacis filios appellauit ex cognitione. De elargitione autem & communicatione cùm multa dici possint, sufficit hoc dicere, quòd lex prohibet fratri fœnerari, fratrem nominans non eum solum qui est ex ijsdem natus parentibus, sed etiam qui fuerit eiusdem tribus, eiusdemque sententiæ, & eiusdem verbi particeps: non æquum censens vt ex

Margin notes: γνῶναι. — ἐπιτυχεῖς. — Deut. 22. — Deut. 24. — Immunes à malitia. — Num. 25. — Timor Domini uiuificat. — Deut. 23. — Frater quis. — A — B — C

A ex pecunijs vsuras, sed laxis manibus & animis gratificari egentibus. Deus enim est talis doni conditor. Iam verò qui lubenter largitur, satis magnas accipit vsuras, ea quæ sunt apud homines preciosissima, nempe mansuetudinem, benignitatem, magnificentiam, bonam famam, laudemque & gloriam. An non hoc tibi videtur esse præceptum humanitatis, sicut illud, Mercedem pauperis ipso die reddere, docet oportere sine mora exoluere mercedem ministris. Remittitur enim, vt opinor, ad id quod sequitur faciendum pauperis alacritas, si desit alimentũ. Præterea fœnerator, inquit, ne ingrediatur domum debitoris, vi pignus accepturus, sed ille quidem iubeat extra proferre: qui verò habet, ne recuset. & in messi ea quæ à manipulis excidunt tollere prohibet possessores, sicut etiam in metendo iubet aliquid insectum relinquere, per hoc possessores valde exercens ad communicationem & magnificentiam, ex eo quòd ex proprijs aliquid dimittant egentibus, pauperibus autem præbens materiam sibi quærendi victus. Vides quomodo lex Dei simul annunciat iustitiam & bonitatem, qui omnibus alimenta abundè suppeditat: & in ipsis vindemijs regredi vt carpant ea quæ sunt relicta, & vuas quæ excidunt colligere prohibet. Eadem etiam præcipit ijs qui colligunt oleas. Iam verò decimæ quoque fructuum & pecorum, docebant & pios esse in Deum, & non esse lucro omnino deditos, & proximos humanitatis efficere participes. Ex his enim, vt puto, & primitijs alebantur sacerdotes. Iam ergo intelligimus nos per legem erudiri ad pietatem & communicationem, & ad iustitiam & humanitatem. An non enim septimo quoque anno iubet agrum relinqui ociosum? pauperes autem ijs qui diuinitus producti fuerint fructibus securè frui præcepit, agrum colente natura volentibus. Quomodo ergo non est bona lex, & magistra iustitiæ? Et rursus quinquagesimo anno iubet eadem facere quæ septimo: præterea reddens vnicuique proprium, si cui casu aliquo ablatus esset fundus: & eorum cupiditatem qui possidere desiderant, dimenso vtendi fruendi tempore circumscribens: & eos qui propter longam paupertatem pœnas dederunt, nolens perpetuò puniri. Eleemosynæ autem & fides custodiæ regiæ. Benedictio autem in caput eius qui elargitur, & qui miseretur mendicorum beabitur, quoniam charitatem ostendit in sibi similem, propter eam quam habet charitatem in opificem humani generis. Habent autem ea quæ prius dicta sunt, alias quoque magis naturales expositiones, de quiete & receptione hæreditatis, sed non dicta sunt in præsentia. Multis autem modis intelligitur charitas, per mansuetudinem, per benignitatem, per tolerantiam, per inuidiæ & æmulationis vacuitatem, per odij remotionem, per iniuriæ obliuionem. Est eiusmodi in omnibus vt diuidi & discerni non possit, sua lubenter communicans. Rursus si videris, inquit, iumentum necessariorum aut amicorum, aut eorum quos cognoscis hominum, errans in solitudine, abduc ipsum & redde, & si procul abfuerit dominus, postquam seruaueris cum tuis donec redierit, redde, naturalem docet societatem, nempe vt inuentum existimemus depositum, & nec simus memores iniuriæ ab inimico acceptæ. Præceptum Domini, quod est reuera fons vitæ, facit declinare à laqueo mortis. Quid verò, an non iubet diligere aduenas, non solùm vt amicos & cognatos, sed etiam vt nos ipsos & animo & corpore? Iam verò gentes quoque honorauit, & nec in eos qui malè fecerunt infenso est animo. Apertè itaque dicit, non abominaberis Ægyptium, quoniam fuisti aduena in terra Ægypti: vel gentilem, vel quemuis etiam mundanum vocans Ægyptium: & hostes, etiamsi muris immineant, conantes vrbem capere, nondum hostes vult existimare, priusquam missis ad eos legatis ad pacem prouocauerint. Quinetiam ne cum captiua quidem vult insolẽtem ac cõtumeliosam esse consuetudinem. Sed cùm ei, inquit, permiseris triginta diebus vt vult lugere, cum eius postea vestes mutaueris, tanquã cum vxore lege cum ea congredere. Non erit enim amplius cõtumeliosa consuetudo. Sed nec mercede, tanquã meretricis, sed propter solam liberorum procreationem vult esse consuetudinem. Vides vnà cum continentia humanitatem. Domino amanti captiuam, non permittit explere voluptatem, sed præstituto spacio resecat cupiditatem: & præterea tondet etiam captiuæ pilos, vt probrosum auersetur amorem. Si enim ei suadet ratio vt vxorem ducat, eam retinebit etiam si turpis euaserit. Deinde si quis expleta cupiditate, noluerit amplius cum captiua habere consuetudinem: neque eam ei licere vendere constituit, sed neque amplius habere ancillam, sed vult esse liberã, & liberari à seruitute, ne si alia fuerit ingressa mulier, ei graue aliquid & intolerabile acci-

Margin notes: Leuit. 19. (beside "docet oportere sine mora…"); B (beside "tatem. An non enim septimo…"); Leuit. 25. (beside "grum colente natura…"); C (beside "ptæ. Præceptum Domini…"); Deu. 24. 28 (beside "tis. Quid verò…"); Leuit. 29. (beside "sed etiam vt nos ipsos…"); Deut. 21. (beside "tis ad pacem prouocauerint…")

dat ex zelotypia. Quid verò, inimicorum quoque iumenta onere pressa alleuare & erigere præcipit, eminus nos docens Dominus, non amplecti exultationem in malis, neque inimicorum insultare miserijs eisq; lętari, vt in his exercitatos pro inimicis quoque doceat orare. Neque enim inuidere, & propter proximi bona dolore affici conuenit, neque propter mala proximi, gaudij vsuram percipere. Quòd si alicuius, inquit, inimici errans iumentum inueneris, contentionis interno relicto incendio, ipsum abduc & redde. Iniuriæ enim & obliuionem consequitur vera vitæ probitas: & eam, inimicitiarum dissolutio. Hinc perfectè & integrè deducimur ad concordiã, ea verò nos veluti manu deducit ad beatitudinẽ. Et si aliquem ex moribus inimicum existimaueris: eum autem vel à cupiditate, vel ira citra rationem decipi deprehenderis, conuerte ad vitæ probitatem. Iámne videtur humana lex & benigna, quæ est pędagogus ad Christum? & Deus idem bonus cum iustitia, ab initio vsque ad finem vnoquoq; genere aptè vsus ad salutem? Misereminì, inquit Dominus, vt misericordiam consequamini: remittite vt remittatur vobis: vt facitis, ita fiet vobis: vt datis, ita dabitur vobis: vt iudicatis, ita iudicamini: vt benigni estis, ita vobiscum agetur benignè. Qua mensura mensi fueritis, remetietur vobis. Pręterea eis qui victui seruiunt, infamiam omnino irrogari prohibet: & ijs qui propter debita redacti sunt in seruitutem, septimo anno dat omnino inducias. Quinetiam prohibet supplices dare ad supplicium. Est ergo verissimum illud eloquium: Sicut probatur aurum & argentum in fornace, ita Dominus eligit corda hominum. Et vir quidem misericors est longanimis, & in quolibet qui est solicitus, inest sapientia. In virum enim intelligentem cadit solicitudo: & qui est solicitus ac curam gerit, vitam quæret: & qui Deum quærit, inueniet cognitionem cum iustitia. Qui eum autem rectè quæsierunt, pacem inuenerunt. Mihi autem videtur etiam Pythagoras suam in animantes rationis expertes mansuetudinem à lege accepisse. Iam ijs quæ in ouium & caprarum gregibus boumque armentis nascuntur, protinus vti interdixit, ne prætextu quidem sacrificiorum patrum & matrum gratia, hominem ad mansuetudinem vel ex infimis à brutis animantibus educens. Concede, inquit, matri fœtum vel septem primis diebus. Si enim nihil fit sine causa: & enixis animantibus lac redundat ad fœtus nutriendos: qui à dispensatione lactis fœtum auellit, naturam afficit contumelia. Erubescant ergo Græci, & si quis est alius, legem insectari, si ea quidem vel in bestias benigna sit: illi autem vel hominum fœtus exponunt, quanquam longè antè & propheticè eorum feritatem lex per hoc præceptum excinderet. Si enim fœtus bestiarum à matre separari prohibet ante lactis effusionem, multò magis in hominibus crudeli & immani menti præparat remedium, vt etsi naturam, disciplinam certè nõ negligant. Hœdis enim & agnis eis impleri permissum est. Et aliqua quidem fortasse fuerit excusatio ei qui fœtum à matre separat: infantis autem expositionis quænam causa fuerit? Ab initio enim oportebat nè vxorem quidem ducere, ei qui non cupiebat procreare liberos, potius quàm per voluptatis intemperantiam, filij fieri homicidam. Rursus autem benigna lex prohibet eodem die fœtum & matrem sacrificare. Hinc etiam Romani, si qua mulier prægnans fuerit damnata capitis, non prius permittunt vt supplicium subeat quàm pepererit. Apertè itaque quæcunque vterum gerunt animalia, ea lex non prius mactari permittit, quàm pepererint, eminus retardans hominum ad iniuriam faciendã propensionem. Ita vel vsq; ad bruta animantia extendit benignitatẽ, vt cùm eam in ijs quæ sunt diuersi generis exercuerimus, longè maiori humanitate vtamur in ijs quæ sunt eiusdem generis. Qui autem in aliquorum animantium ventres ante partum calces impingunt, vt cõtemperata lacte carne vescantur, matricem quę est creata ad generationem, faciunt sepulchrum fœtus qui gestatur in vtero, cùm lex apertè iubet. Sed neque coques agnum in lacte matris suæ. Non fiat enim, inquit, id quod est viuentis nutrimentum, interempti animalis condimentum: neque quod est vitæ causa, opem ferat ad consumptionem corporis. Eadem autem lex edicit, ne alligetur os boui trituranti. Oportet enim operarium dignum censere nutrimento. Et prohibet simul in aratro coniungere bouem & asinum: fortasse quidem etiam coniectans, quàm nulla sit inter eas animantes cõuenientia: simul autem significans, nullum oportere ex diuersis gentibus iniuria afficere, neq; iugo subiũgere, si nullius alterius rei eos possimus insimulare quàm quòd sint diuersi generis: quod quidem culpa caret, nec fit vitio, nec ex vitio proficiscitur. Mihi autem videtur quoq; significare allegoria, verbi culturam non esse ex æquo cõmunicandam mundo & immundo, *fideli*

&

Marginal notes: *Exod.23.* (beside "cuius, inquit, inimici errans…"); *Marci 4.* (beside "biscum agetur benignè"); *Deut.14.* (beside "matri fœtum vel septem…"); *L. prægnantis. ff. de pœnis.* (beside "die fœtum & matrem…"); *Deut.14.* (beside "neque coques agnum…"). Section letters A, B, C in right margin.

A &infideli:quoniam bos quidem est mundus,in immundis autem reputatus est asinus.Redundanti autem quadam humanitate bona lex vtens, nec quæ sunt domesticæ mitisque materiæ arbores docet esse excindendas, neque segetem ante messem tondendam ad perniciem: sed neque fructum mitem omnino interimendum, neque terræ neque animæ.Neque enim agros hostium permittit excindere. Iam verò qui sunt etiam studiosi agriculturæ,in his quoque possunt vtilitatem à lege accipere.Iubet enim arbores nuper plantatas,tribus annis ordine sequētibus fouere & alere,superfluas quæ adnascuntur excindendo propagines, ne nimis grauatæ opprimantur,& ne alimento minutatim diuiso imbecillæ fiant propter inopiam,areq ue & circumfodere,vt nihil propè germinans ac pullulans prohibeat incrementum:& fructum non finit imperfectum colligi ex imperfectis, sed post triennium cùm quarto anno Deo consecrarit primitias,postquam arbor perfecta fuerit. Fuerit autem hæc agriculturæ figura,modus doctrinæ,docens oportere excindere peccatorum propagines,& quæ vnà cum genitali fructu pullulant inanes herbas cogitationis,donec perficiatur & firmum fiat germen fidei. Quarto enim anno, quoniam tempore quoque opus est ei qui stabiliter per catechesim instituitur quaternio virtutum Deo consecratur,cùm tertia iam sola coniungatur cum quarta Domini hypostasi.Sacrificium autem laudis super holocausta. Hic enim, inquit, dat tibi vires faciendi virtutem.Sin autem res tibi illuminatæ fuerint:cùm vires acceperis,& acquisieris,fac tibi in cognitione virtutem.Per hæc enim ostendit & bona & dona à Leuit.19. Hinc error Nestorij.

B Deo suppeditari,& oportere nos cùm ministri facti simus diuinæ gratiæ, seminare Dei beneficia,& eos qui appropinquant, bonos & honestos reddere, vt quàm maximè quidem temperans,continentes:qui est autem magni & excelsi animi, fortes: & sapiens,intelligentes: & iustus, iustos efficiat. Hic est qui ad imaginem & similitudinem est cognoscendi potestate præditus,qui Deum imitatur quoad eius fieri potest, nihil prætermittens eorum quæ faciunt ad eam quæ contingere potest similitudinem, continens, sustinens, iustè viuens, imperans animi perturbationibus, ea quæ habet impertiens, pro viribus benefaciens & verbo & opere. Hic est, inquit, maximus in regno, qui fecerit & docuerit, Deum imitans,eo quòd gratificetur consimiliter. Sunt enim communiter vtilia Dei bona.Quicunque autem cum superbia aliquid agere aggressus fuerit,Deum,inquit,irritat. Est enim arrogantia animæ vitium, cuius & aliorum vitiorum iubet duci pœnitentia, ijs qui ex inconcinnitate & mala conuenientia concinnantur ad meliorem mutationem, per hæc tria, os, cor, manus. Symbolum autem signumque hæc fuerint, actionis quidem, manus: cor autem, consilij:& os,sermonis. Rectè ergo dictum est de pœnitentibus illud eloquium: Deum elegisti hodie vt esset Deus tuus,& Dominus elegit te hodie,vt esses eius populus.Eum enim qui studium adhibet, vt medeatur ei qui est famulus,Deus suum facit familiarem: & si vnus fuerit numero, æquè ac populus est honoratus. Cùm enim sit pars populi,eum adimplet, in eum ex quo erat, restitutus.Vocatur autem ex parte quoque totum.Ipsa autem nobilitas ostenditur in eo,quòd quæ sunt pulcherrima honestissimaque eligat ac exerceat. Quid Matth.5. Leuit.16.

C enim Adæ profuit talis eius nobilitas, & quòd eius nullus esset pater mortalis? Ipse enim pater hominum qui sunt in generatione, turpia quidem prompto & alacri animo delegit,vxorem sequens:vera autem & honesta neglexit, quo factum est vt vitam immortalem mortali commutaret, sed non in perpetuum.Noê autem qui non sic factus est vt Adam, cura ac prouidentia diuina conseruatur: se enim Deo obtulit ac dedicauit.Et Abrahæ qui ex tribus vxoribus liberos susceperat, non vt frueretur voluptate,sed quòd speraret,vt puto,in principio genus multiplicare, vnus solus hæres succedit bonis paternis, alij autem diuisi sunt à cognatione. Et cùm ex eo nati essent gemini, est hæres iunior qui patri complacuit, & vota suscipit:ei autem seruit is qui erat ætate maior.Malo enim bonum est maximũ, id quod non est in sua potestate.Hæc autem œconomia est & Prophetica & typica. Quòd autem sunt omnia sapientis, apertè indicat dicens: Quoniam Deus mei misertus est,sunt mihi omnia.Vnum enim oportere docet expetere, per quem facta sunt omnia,ex ijs qui digni sunt promissa tribuit. Eum ergo qui bonus fuerit, regni hæredem & ciuem,per diuinam describit sapientiam, & eorum qui olim fuere iusti, qui & in lege,& ante legem iustè vixere,quorum actiones sunt nobis pro legibus. Et sapientem rursus docēs esse Regem,eos qui sunt diuersi generis facit ei dicētes: Rex à Deo tu es in nobis ijs qui ab eo reguntur,propter zelũ virtutis viro bono sua Gen.23.

ſponte parentibus. Plato autem Philoſophus finem ponens beatitudinis, dicit eam A
eſſe Deo aſsimilationem, quoad eius fieri poteſt, ſiue cum legis decreto quodam-
modo concurrens: magnæ enim naturæ & liberæ ab animi perturbationibus, ne-
ſcio quomodo feruntur ad ſcopum veritatis, vt dicit Philo Pythagoreus, Moſis res
geſtas deſcribens, ſiue etiam doctus ab aliquibus quæ tunc erant diuinis eloquijs,
vt qui doctrinæ ſiti ſemper teneretur. Dicit enim lex: Poſt Dominum Deum veſtrũ
ambulate, & mandata mea ſeruate. Aſsimilationem enim lex nominat conſectatio
*Lucæ 6.* nem. Talis autem conſectatio, quoad eius fieri poteſt, aſsimilat. Eſtote, inquit Do-
minus, miſericordes ſicut pater veſter cœleſtis miſericors. Hinc Stoici quoque, na-
turæ conſequenter viuere, finem eſſe ſtatuerunt, eleganter Dei nomine tranſmuta-
to in naturam: quoniam natura & ad plantas, & ad ea quæ ſeminantur, & ad arbo-
res & lapides extenditur. Apertè ergo dictum eſt: Viri mali legem non intelligunt:
qui autem legem diligunt, ſibi muri propugnaculum muniunt. Aſtutorum enim ſa
pientia agnoſcet vias ſuas. Ignorantia autem ſapientum erit in errore. Super quem
*προβάλλουσιν* enim reſpiciam, niſi ſuper mitem & manſuetum & trementem verba mea? ait Pro-
*ἑαυτοῖς τεῖχος* phetia. Docemur autem eſſe triplex genus amicitiæ: & eorum primum quidem eſt,
*Eſa. 66.* idque optimum ac præſtantiſsimum, id quod eſt ex virtute: valida enim eſt, quæ eſt
ex ratione dilectio. Secundum autem ac medium, ex remuneratione: eſt autem hoc
genus aptum ad ſocietatem ac communicationem, lubenter impertiens, & vitæ
conducibile. Communis enim eſt quæ ex gratia amicitia. Vltimum autem ac ter-
tium, nos quidem dicimus id quod eſt ex conſuetudine. Illi verò, id quod ex vo- B
luptate verti ac mutari poteſt. Ac mihi quidem pulcherrimè Hippodamus Pytha-
goreus videtur deſcribere amicitias. Vna quidem eſt ex ſcientia deorum: altera ve-
rò, ex hominum ſuppeditatione: tertia verò, ex voluptate animantium. Eſt ergo v-
na quidem Philoſophi amicitia, altera verò hominis, tertia autem animalis. Reue-
ra enim Dei eſt imago homo benefaciens: qua in re ipſe etiam beneficio afficitur,
ſicut gubernator ſimul ſeruat, & ſeruatur. Et ideo cùm quis petens fuerit conſecu-
*καλῶς ἔλαβες* tus, nõ dicit danti, Rectè dediſti, ſed, Rectè accepiſti. Ita accipit quidem qui dat, dat
*καλῶς ἔδωκας* autem qui accipit. Iuſti autem miſerentur. Benigni autem erunt habitatores ter-
ræ: innocentes autem relinquentur in ea: qui autem iniquè ſe gerunt, extermi-
nabuntur ab ea. Ac mihi videtur Homerus fidelem prædiuinans, dixiſſe: Da ami-
co. Inimico autem ferendum eſt auxilium, ne maneat inimicus. Auxilio enim vin
citur quidem beneuolentia, diſſoluuntur verò inimicitiæ. Sed ſi proponatur qui-
dem promptitudo & animi alacritas, quatenus habet eſt accepta, non quatenus
2. Cor. 8. non habet. Non enim vt alijs remiſsio, vobis autem afflictio, ſed ex æqualitate in
Pſal. 111. præſenti tempore, & quæ ſequuntur. Diſperſit, dedit pauperibus, iuſtitia eius ma-
net in ſeculum ſeculi, ait Scriptura. Quod enim eſt ad imaginem & ſimilitudinem,
ſicut etiam prius diximus, non ex corpore ſignificatur (nefas enim eſt, mortale aſ-
ſimilari immortali) ſed mente ac ratione: qua & eam quæ eſt in benefaciendo, &
eam quæ in imperando, obſignat Dominus ſimilitudinem. Non enim principa-
tus corporum qualitatibus, ſed iudicio mentis rectè geruntur. Sanctorum enim vi-
rorum conſilijs ciuitates rectè adminiſtrantur, & rectè domus. Porrò autem animi C
fortitudo ipſa quoque reducitur ad diuinam ſimilitudinem, vt quæ impatibilitate
*ἔναυλα.* fruatur per tolerantiam, ſi cui audita adhuc reſonant ea quæ narrantur de Anania,
quorum vnus quoque fuit Daniel Propheta, diuina fide plenus. Babylonem habita
bat Daniel, ſicut Loth quidem Sodoma, Chaldæorum autem terram Abraham, qui
paulò pòſt fuit Dei amicus. In antrum feris plenum adduxit Danielem rex Babylo
niorum: ipſum autem eduxit illæſum, qui Rex eſt vniuerſorum, qui fidelis Domi-
nus. Hanc poſsidebit tolerantiam is qui eſt cognoſcendi poteſtate præditus, quate
nus eſt eiuſmodi. Si tentatur, benedicet vt generoſi animi Iob: ſi deuoretur à cete,
vt Ionas precabitur, & fides eum reſtituet prædicentem Nineuitis: & ſi incluſus fue
rit cum leonibus, feras manſuefaciet: & ſi in ignem fuerit iniectus, rore recreabi-
*μαρτυρήσει, erit martyr ſeu teſtis.* tur, non igne exuretur. Noctu erit teſtis, interdiu teſtis, in ſermone, in vita, in mori-
bus erit teſtis. Cum Domino cohabitans, eoq; familiariter vtens, in ſpiritu perma-
net, mundus quidem carne, mundus autem corde, ſanctificatus ſermone. Mundus,
inquit, ei crucifixus eſt, & ipſe mundo. Is crucem Domini circunferens, Domini ſe-
quitur veſtigia, tanquam Deus, effectus ſanctus ſanctorum. Omnis ergo virtutis re-
cordata lex diuina, hominem maximè exercet ad continentiam, eam ſtatuens fun-
damentum virtutum: atque adeò nos præerudit ad continentiam acquirendam,
ex

A ex vsu animantium, ijs vesci prohibens quæ sunt natura pinguia, quemadmodum genus suum, quod carnis habet plurimum. Delicatis enim ac luxuriosis suppeditatur talis vsus. Dicitur itaq; quidam Philosophus suis afferens etymologiam, qui ὗς dicitur, ὗς dixisse quasi θῦς, vt qui ad θύειν, hoc est, ad sacrificandum & mactandum aptus esset solummodo. Datam enim esse huic animali ad nihil aliud animam, quàm vt carnes luxuriarent. Et similiter nostras cupiditates reprimens, prohibuit illis vesci piscibus, qui nec pinnas habent nec squamas. Carniū enim bonitate & pinguedine hi alijs piscibus antecellunt. Hinc existimo mysteria quoq; non solùm prohibere aliqua tangere animalia, sed etiam nonnullas eorum quæ sacrificantur eximere vsus partes, propter eas quas Mystæ sciunt causas. Si est itaq; venter cōtinendus, & ea quæ sunt subter ventrem, clarum est quòd iam olim à Domino accepimus per legem excindere cupiditatem. Id autem perfectè fiet, si cupiditatis fomitem, voluptatem inquam, non fictè damnauerimus. Dicunt eius hanc esse notionem, lenē & blandum motum cum aliquo sensu. Ei seruientem Menelaum post Troiam captam dicunt, cùm impetu ferretur ad occidendam Helenam, vt quæ tot & tantorum fuisse t causa malorum, id tamen non potuisse efficere, victum pulchritudine, per quam in mentem venit recordatio pristinæ voluptatis. Vnde ludificantes Tragici, cū probro ac dedecore in eum exclamant: ἄνωθεν

*Mamilla ubi uisa est, reiecto gladio,*
*Adblandiens cani perditæ, osculum accipis.* Et rursus:
B *Ergo hebetantur enses pulchritudine.*

Ergo verò Antistheni assentior qui dicit: Ego Venerem si acciperem, iaculis confoderem, quòd multas nostras pulchras ac bonas vxores corruperit: & naturæ vitium dicit Cupidinem, à quo cùm vincuntur miseri, morbum Deum appellant. Per hæc enim ostenditur vinci imperitiores, propter ignorationem voluptatis, quæ nō est admittenda, etsi dea dicatur, hoc est, etsi diuinitus data sit ad vsum liberorū procreationis. Et Xenophon voluptatem apertè vitium dicens, inquit: O misera, quid verò tu bonum nosti, aut quid sit honestum consideras, quæ ne eorum quidem quæ sunt iucunda expectas cupiditatem? priusquam esurias quidem comedens: priusquam autem sitias, bibens: & iucundè quidem vescaris, obsoniorum cōditores excogitans: vt autem suauiter bibas, sumptuosa vina comparas, & æstate circumcursans niuem quæris. Vt autem iucundè dormias, non solùm molles lectos, sed etiam quæ lectis supponantur fulcra paras. Vnde, vt dicebat Aristo, ad totum tetrachordon, voluptatem, inquam, & dolorem, metum & cupiditatem, exercitatione magna & pugna opus est: τετράχορδον

*Hi nanq; uel per interiora uiscera*
*Vsque meant, hominumq; corda exagitant.*

Eos enim qui magni & excelsi animi existimantur, voluptas facit cereos, ex sententia Platonis: quoniam vnaquæq; voluptas, & vnusquisq; dolor corpori affigit animā, eius qui nō se separat ab animi perturbationibus, easq; cruci affigit. Qui perdiderit animā suam, inquit Dominus, seruabit ipsam: aut eam tradens, lubenter adeundo pro Domino pericula, aut eam perdens, ex ea quæ est ei cum hac vita cōsuetudine. Si enim soluere, abducere, & segregare (id enim crux significat) animam volueris ab ea quæ est in hac vita voluptate & delectatione, habebis eam, in ea quæ expectatur spe inuentam & conquiescentem. Hoc enim fuerit meditatio mortis, si solis ijs quæ sunt secundum naturam dimensæ appetitionibus, quæ ea quę sunt secūdum naturam nihil excedunt, declinando ad id quod exuperat, vel quod est præter naturam, in quo peccandi enascitur potestas, contenti esse velimus. Oportet ergo nos Dei induere armaturam, ad hoc vt possimus resistere insidijs diaboli: quoniam arma militiæ nostræ non sunt carnalia, sed Deo potentia, ad destructionem munitionum, cogitationes destruentes, & omnem altitudinem se extollentem aduersus Dei cognitionem, & captiuantes omnem intellectum ad obediendum fidei, ait diuinus Apostolus. Viro vtique opus est qui admirabiliter & inconfuse ijs rebus sit vsurus, à quibus proficiscuntur animi perturbationes, vtpote diuitijs & paupertate, gloria & ignominia, sanitate & morbo, vita & morte, labore & voluptate. Vt enim indifferenter vtamur differentibus, magna nobis opus est differētia, vt qui multa imbecillitate prius malè affecti simus, & in mala educatione, & institutione prius versati cum ignoratione. Simplex ergo ratio nostræ philosophiæ, dicit omnes animi perturbationes & vitia, esse impressiones mollis & cedentis animæ,

Matth. 10.
C
Ephes. 6.

ἐναποβάσματα. ἐναποσφραγίσματα. & veluti obsignationes potestatum spiritalium, aduersus quas nobis est colluctatio. Maleficarum enim, vt puto, potestatum est opus, proprij habitus aliquid conari, sigillatim operari, vt nos qui eas abrenunciauimus, in certamine superet, & suos efficiant. Est ergo iure consequens, vt aliqui quidem in lucta prosternantur. Quicunque autem certamen magis athletice aggrediuntur, omni contentione decertantes, ad coronam vsq; peruenient: prædictæ autem potestates in multo sudore & cruore ἐν πολλῷ τῷ λύθρῳ. tunc deficiunt, victores admirantes. Eorum enim quæ mouentur, alia quidem ex appetitione mouentur & visione, sicut animalia: alia autem per translationem, sicut inanimata: ex inanimis autem plantas quoq; dicunt moueri transeundo ad augmentum, si quis eis esse plantas inanimas concesserit. Et habitum quidem lapides, naturam verò plantæ & appetitionem & visionem, & ea rursus quæ prius dicta sunt, bruta quoq; participant. Ratiocinandi autē potestas, quæ est propria humanæ animæ, non debet similiter impelli atq; animantia ratione carentia, sed visa quæ impellūt discernere, & non ab eis abduci. Hæ ergo de quibus diximus potestates, pulchritudines & glorias, & adulteria & voluptates, & tales eiusmodi inescantes visiones, ijs quæ facilè seduci possunt, animabus protendunt, quemadmodum qui pecora abiθαλλὸς. gunt, eis frondes porrigunt. Deinde cùm eos astu circumuenerint, qui non possunt veram voluptatem à falsa discernere, fluxamq; ac caducam iniuriæq; obnoxiam à sancta pulchritudine, ducunt redactos in seruitutem. Vnaquæque autem deceptio assiduè premens animam, in ea imprimit visionem: & imprudens insciensque anima perturbationis ac vitij circunfert imaginem, cùm causa oriatur ex inescatione B & nostra assensione. Basilidis autem sectatores vitia & animi perturbationes cōsueuerunt vocare προσαρτήματα, id est, appendices: & ea esse quosdam in essentia spiritus appensos animæ ratione præditæ per quandam conturbationem & confusionem principalem: & alias rursus spirituum adulterinas & diuersi generis naturas ijs adnasci, vtpote lupi, simiæ, leonis, vrsi: quorum proprietates quæ visione in anima apprehenduntur, animæ cupiditates animantibus dicunt assimilare. Quarum enim ferunt proprietates, earum opera factaque imitantur. Et non solùm cum rationis expertium animantium appetitionibus & visionibus coniunctionem ineunt & familiaritatem, sed etiam plantarum æmulantur motus & pulchritudines, propterea quòd plantarum quoque ferant appensas proprietates: habere autem etiam habitus proprietates, vtpote duritiem Adamantis. Sed aduersus hoc dogma quidem postea differemus, quando de anima tractabimus: nunc autem hoc solum adnotandum est, quòd Durij equi, vt est in poëticis fabulis, imaginem seruat homo ex sententia Basilidis, vt qui in vno corpore tot diuersorum spirituum exercitum habeat insinuatum. Ipse itaque filius Basilidis Isidorus, in libro de Adnata anima, cùm dogma animaduertisset, scribit his verbis, veluti seipsum accusans: Si enim alicui persuaseris non esse animam vnius partis, vi autem appendicum fieri ea quæ sunt deteriorum vitia ac perturbationes, non leuem prætextum habebunt homines scelerati, dicendi, Coactus sum, abductus sum, coactus feci, non volens operatus sum: cùm ipse dux fuerit malorum cupiditatis, & cum appendicum violentia non depugnarit. Oportet autem cùm parte ratiocinatiua facti simus superiores, minorem quæ C est in nobis creaturam videri superare. Is enim duas quoque in nobis ponit animas, sicut Pythagorei, de quibus postea considerabimus. Quinetiam Valentinus scribens ad aliquos, his verbis scribit de appendicibus: Est autem vnus bonus, cuius fiducia est ea quæ fit per filium manifestatio, & per eum solum potest cor fieri mundum, ex corde extruso omni maligno spiritu. Multi enim in eo habitantes spiritus, id mundum esse non sinunt. Vnusquisque autem eorum propria efficit opera, sæpe non conuenientibus insultans cupiditatibus. Ac mihi quidem videtur cor non esse absimile diuersorio: illud enim perforatur & effoditur, & stercore sæpe repletur, cùm homines se petulanter gerant, & locum nihil omnino curēt, vt qui sit alienus. Eodem modo cor quoque, cùm, quandiu nulla eius cura geritur, sit immundum & multorum dæmonum habitaculum: postquam autem id inuiserit qui solus est bonus pater, sanctificatum est, & luce resplendet: & sic qui tali corde est præditus, beatur, quoniam Deum videbit. Quænam est ergo causa, quòd non ab initio talis animæ cura ac prouidentia geratur, dicant nobis. Aut enim non est digna, & quomodo sicut ex pœnitentia accedit ad eam prouidētia, vel natura, vt ipse vult, seruatur? & necesse est eam cùm ab initio eius cura geratur propter cognationē, immundis spiritibus nullum dare aditum, nisi ei vis afferatur, & imbe-

A imbecilla probetur. Si enim dederit, cùm ea pœnitentia ducta sit, eligere quæ sunt meliora: ille inuitus dicet, id quod decernit quæ est apud nos veritas, ex obediente mutatione, nó autem ex natura, esse salutem. Quemadmodum enim exhalationes, quæ & è terra & ex lacunis ac voraginibus oriuntur conflatur in caliginem & nymphosam vertiginem: ita etiam carnalium cupiditatum vapores malam animæ inurūt habitudinem, voluptatis spectra animæ repræsentantes, & ante eam effundentes. Intelligenti itaq; luci tenebras offundunt, attrahente anima vapores qui oriuntur ex cupiditate & perpetuitate voluptatum condensante vitiorum vertigines. Aurum è terra non tollitur gleba, sed cocta percolatur: deinde cùm munda fuerit, aurum vocatur, vt quæ sit terra mundata. Petite enim, & dabitur vobis, ijs qui ex seipsis possunt ea quę sunt optima eligere, dicitur. Quomodo autem nos diaboli operationes, & spiritus immundos in peccatoris animam seminare dicamus, non mihi pluribus verbis opus est, si adduxero testem Barnabam Apostolicū (erat autem is ex septuaginta, & Pauli audiutor) his verbis sic dicentem: Antequam nos Deo crederemus, erat nostrum cordis habitaculum interitui obnoxium & imbecillum, verè templum manu ædificatum: quia erat quidem plenum cultu idolorum, & erat domus dæmonum, quod faceret quæcunq; Deo sunt contraria. Operationes ergo dæmonibus conuenientes dicit peccatores efficere: non autem ait ipsos spiritus habitare in anima infidelis. Et ideo subiungit: Attēdite vt templū Domini gloriose ædificetur. Discite vos accepisse remissionem peccatorū, & sperasse in nomen. Efficiamur rursus noui, creati ab initio. Non enim dæmones à nobis expelluntur, sed peccata, inquit, remittuntur, quæ similiter atque illi faciebamus priusquam crederemus. Meritò ergo contrà opposuit ea quæ subiunguntur: Quare in nostro habitaculo verè Deus inhabitat: in nobis est quodammodo Verbum eius fidei, vocatio eius promissionis, sapientia iustificationum mandata doctrinæ. Scio me in quandā incidisse hęresim: qui autem ei præerat, dicebat se per vsum voluptatis pugnare cum voluptate, per simulatam pugnam ad voluptatem transfugiens præclarus hic gnosticus. Se enim dicebat esse gnosticum, id est, cognoscendi potestate pręditum: dicebat enim, non esse magnum abstinere à voluptate qui eam non esset expertus, sed eum qui in ea versatus esset non vinci. Vnde propter eam dicebat se in ea exerceri. Seipsum autem miser imprudens decipiebat arte voluptaria. In eandē ergo, vt patet, venit sententiam Aristippus quoq; Cyreneus, in quam sophista qui se iactat tenere veritatē. Cùm itaq; probro ei daretur, quòd cum meretrice Corinthia assiduè versaretur: Habeo, inquiebat, Laidem, sed ab ipsa nó habeor. Tales autem sunt etiam qui dicunt se sequi Nicolaum, adducentes eius viri aliquid literarum monimentis mandatū, sed ab eis detortum, nempe oportere carne vti. Sed ille quidem vir præclarus significabat oportere voluptates arcere & cupiditates, & hac exercitatione marcidas flaccidasq; reddere carnis appetitiones & insultus. Qui autē instar hircorum sunt profusi ad voluptatē, veluti corpus contumelia afficientes, suaui fruuntur delectatione, nescientes quòd id quidem, cùm sit natura fluxum, sentum, squallidum pannosumq; redditur: ipsorum autem infossa est anima in cœno vitij, vt qui decretum ipsius voluptatis, non autem viri Apostolici sequantur. Quid hi enim differunt à Sardanapalo? cuius vitam significat epigramma:

*Hæc habeo quæ edi, quæq; exaturata libido*
*Hausit, at illa iacent multa & præclara relicta.*

Non est omnino necessaria affectio voluptatis, sed accessio quædam & assectatio vsibus quibusdam naturalibus, fami, siti, frigori, matrimonio. Si itaq; fieri posset vt, absq; ea vel biberetur, vel alimentum susciperetur, vel liberi procrearentur, nó posset ostendi alius eius vsus. Neq; enim operatio, neque affectio, sed neq; aliqua pars nostri est voluptas, sed vicarij ministerij gratia in vitam accessit, quemadmodum dicunt accessisse sales nutrimenti concoquendi causa. Quæ est autem effrænata, & domus administrationem vi sibi vsurpauit, primam generat cupiditatē, quę est desiderium, & appetitus à ratione alienus, eius qui est ei gratificatus. Ea Epicuro persuasit vt philosophi finem poneret voluptatem. Diuinam itaq; rem is esse statuit, firmam ac stabilem bonam carnis constitutionem, & quòd ea ita sit futura spem fide dignam. Quid enim est aliud delitiæ, quàm libidinosa liguritio, superuacanea redundātia eorum qui sunt dissoluti ad suauem sensum delectationis? significanter scribit Diogenes in quadam tragœdia:

*Effœminatis quis merè ac cinædicis,*

τιλμάτων.
ἰναλίσεις.
φιληδόνῳ.
ἀπομνημονεύματι.
ἐκπαρατρεπῦς
παραχρῆσθαι.
καθηδυπαθοῦσιν ῥακοῦται.
ὑπουργίας.
δεάζει.
λιχνεία,
διεσκαπανημένους.

B

C

*Cor alligatum est suauibus delitijs,* A

*Qui laborare tantillum haud uolunt.*

& quæ deinceps sequuntur, quæ turpiter quidem dicta sunt, sed pro meritis eorum qui sunt dediti voluptati. Diuinè itaq; mihi videtur lex voluisse vt metus impenderet necessariò, vt cautione & attentione hoc sibi pararet & cõseruaret philosophus, vt esset minimè sollicitus, à lapsu alienus, & peccato nõ affinis, in omnib. permanẽs. Pax enim & libertas non aliter accedit, quàm per perpetuam & indefatigabilem aduersus animi nostri motus repugnantiã. Sunt enim hi aduersarij crassi & Olympici, & vespis, vt vno verbo dicã, acriores: & maximè voluptas, quæ non solùm interdiu, sed etiam noctu in ipsis insomnijs, nos cum præstigijs inescando, insidiatur & mordet. Quomodo ergo possunt adhuc Græci iure legem insectari, cùm ipsi quoq; voluptatem doceant seruire metui? Socrates itaq; iubet ea cauere quæ persuadẽt vt non esurientes comedant, & bibant non sitientes: & pulchros aspectus & oscula, vt quæ scorpijs & araneis grauius venenum naturaliter emittant. Antisthenes autem vult potius insanire, quàm voluptate affici. Et Crates Thebanus:

ἀμεριμνίαν.

*Hæc uincas rectis exultans moribus, atq;*
*Te auro haud addicens, cupidis nec amoribus unquam*
*Seruam: nec mercatores sunt amplius ulli.*

Et totum colligit veluti in epilogum:

*Mancipat at quem non turpis tangitq; uoluptas,*
*Regnum immortale, & libertas huic quoq; amatur.* B

Hic autem alibi rectè admodum scribit, rerum venerearum effrænati desiderij cataplasma esse famẽ: sin minus autem, laqueum. Zenonis autem Stoici quæ'nam esset doctrina, testantur Comici, licet ei detrahentes, hoc modo:

*Vir philosophatur Zeno iste philosophiam*
*Vanam: docet nam esuriem discipulos.*
*Panis sit unus, caricaq;, & potus aquæ.*

Hi omnes vtiq; non erubescunt apertè confiteri eã quæ ex cautione accipitur vtilitatem. Quæ est autem vera, & non expers rationis, sapientia, non solis verbis confidẽs & decretis, sed tegumentis inuulnerabilibus & mysterijs efficacibus, & in diuinis præceptis meditans & se exercens, vim diuinam per eam quæ ex ipsa inspiratur partem, à verbo seu ratione accipit. Iam verò Poëtici quoq; Iouis describunt ægidem:

*Terribilem, quæ albo penitus redimita timore est.*
*Lis quoq; inest, & uis urgens, & frigidus horror,*
*Gorgoneumq; caput, monstrum olim quod fuit ingens,*
*Terribile, horrendum, ostentum Iouis ægiferentis.*

Iis autẽ, qui id quod est salutare rectè possunt perspicere, nescio an quid videbitur amabilius honestate ac grauitate legis, & eius filia cautiõe ac religione. Verũenimvero quando aliquid nimis intensum, & quod iustũ tonũ excedat, dicetur canere, sicut etiã Dominus in aliquos, ne aliqui ex ijs qui eum æmulantur ac sequũtur, aliquid canant quod à tono fidiumq; concẽtu discrepet: sic audio, non vt quod sit nimis intensum, & quod iustum tonum excedat, sed quod sit eiusmodi ijs qui diuinum nolũt iugum tollere. Iis enim qui sunt remissi & imbecilli, id quod est moderatũ, videtur nimis intensum, & tonum excedere: & id quod est æquum, videtur esse summum ius: quoscunq; enim propterea quòd peccati amore tenentur, subit indulgentia, ij veritatem existimant esse molestiam, & seueritatem sæuitiã: & eum qui non simul peccat & vnà deorsum trahitur, immisericordẽ. Rectè ergo sic scribit de Plutone tragœdia: C

ἐπιλαμβάν. ὑπέρτονον. ἐκτονον ᾄσαι χορδήν.

*Venturus ad quem Dæmonem tu sis rogas?*
*Qui haud nouit æquum, sed neq; ullam gratiam:*
*Solummodo ast illi placet iustitia.*

Etsi enim nondum potestis facere quæ à lege imperantur, attamẽ considerantes esse nobis proposita pulcherrima exemplaria libertatis, amorem in ipsa nutrire & augere possumus, & ea ratione promptiori & alacriori animo iuuabimur, alia quidem prouocantes, alia verò imitantes, & alia reuerentes. Neq; enim veteres illos qui ex lege vixerunt,

*Annosa aut quercus genuit præruptáue petra,*

sed eo quòd syncerè ac germanè vellent philosophari, totos seipsos Deo obtulerũt ac dedicarunt, & in fidei rationẽ relati sunt. Pulchrè de Indis dicebat Zeno, se vnum malle Indum videre qui torreatur, quàm omnes de laboris perpessione discere probationes.

A tiones. Nobis autem sunt quotidie redundantes. Martyrum seu testium fontes, qui nostris spectantur oculis, qui torrentur, torquentur & capite truncantur. Eos omnes legis metus, qui veluti pædagogus ad Christum deduxit, exercuit, vt pietatem vel per sanguinem ostenderent. Deus stetit in synagoga deorum, in medio autẽ deos dijudicat. Quosnam? Eos qui sunt voluptate superiores, qui vincunt animi motus ac perturbationes qui sciunt vnumquodq; eorum quæ faciũt eos qui sunt Gnostici, id est, cognoscendi potestate præditi, qui mundo sunt maiores. Et rursus: Ego dixi, dij estis, & filij Altissimi omnes. Quibusnã dicit Dominus? Ijs qui, quoad eius fieri potest, mortalia omnia repudiant. Et dicit Apostolus: Vos autem non amplius estis in carne, sed in spiritu. Et rursus dicit: In carne cùm simus, non secundum carnẽ militamus. Caro enim & sanguis regnũ Dei non possunt possidere, neq; curruptio possidet incorruptionẽ. Ecce tãquã homines moriemini, nos arguẽs dixit spiritus. Oportet ergo nos exercere ad ea cauenda quæ sunt obonoxia vitijs, fugiendo, vt ij qui verè sunt pholosophi, eos cibos qui incitãt ad libidinem, & eam quæ est in cubili dissolutam remissionẽ & delectationẽ: & agendo, vt ea quidem quæ in voluptate explẽda fruendisq; delitijs accidunt sint alijs magnũ præmiũ, nobis autẽ non itidem. Est enim donum Dei maximũ temperãtia. Ipse enim dixit, Nõ te dimitto nec te derelinquo, vt qui te dignum iudicauerim propter veram ac germanam electionem. Sic ergo nos piè ac cautè accedere conantes, excipiet benignum ac suaue iugũ Domini, à fide in fidem, vno auriga, per profectum, vnumquenq; nostrûm agente ad B salutem, vt accedat is quẽ par est, fructus beatitudinis. Fit autem exercitatio, ex sententia Coi Hippocratis, non solùm corporis sanitas, sed etiam animæ, impigra laborum susceptio, & nõ nimia nutrimenti exaturatio. Epicurus autẽ, in non esuriendo, nec sitiendo, nec frigendo, ponens beatitudinem, vocem illam Deo parem exclamauit, impiè dicens, se pro his vel cum Ioue patre esse pugnaturum, tanquam porcorũ stercoribus vescentium, & non ratione præditorum & Philosophorum, beatam decernens victoriam. Ex ijs enim qui voluptati parent, constat esse Cyreniacos & Epicurum. Eos enim apertè dicere, finem esse iucundè viuere. Perfectum autem bonum solum esse voluptatem. Epicurus autem doloris quoq; amotionem dicit esse voluptatem: eligendum autem & experendum esset dicit, id quod primùm à seipso trahit ad seipsum, quod videlicet est omnino in motu. Dinomachus autẽ & Callipho dixerunt esse finẽ, quicquid in se est facere gratiæ consequendæ & fruendæ voluptatis. Et Hieronymus Peripateticus, finem quidẽ esse viuere sine molestia ac perurbatione: extremum autẽ, seu ad finem spectans, bonum, esse felicitatem. Et Diodorus, qui similiter fuit ex eadem hæresi, finem esse pronunciat, citra vllã molestiam & honestè viuere. Atq; Epicurus quidem & Cyrenaici, id quod est primum naturæ proprium & conueniens, dicunt esse voluptatem. Voluptatis enim causa accedens, inquiunt, virtus, peperit voluptatẽ. Ex Calliphonis autem sententia, voluptatis quidẽ causa accessit virtus, procedente autem tempore cùm suam vidisset pulchritudinẽ, C effecit vt principio, hoc est, voluptati, esset honore æqualis. Aristotelei autem finem esset tradunt, viuere ex virtute. Sed nec felicitatem nec finem adesse cuilibet qui habeat virtutem. Sapientem enim qui vexatur, & in varios casus præter volũtatem incidit, & ideo vult lubenter è vita effugere, nec esse beatum nec felicem. Virtute autem tempore quoque aliquo opus est: non enim accedit vno die, quæ etiam in perfecto consistit: quandoquidem non est vnquam, vt aiunt, puer beatus. perfectum autẽ tempus fuerit vita hominis: compleri itaq; beatitudinem ex triplici genere bonorum. Neque ergo pauper, nec inglorius, sed nec valetudinarius, sed nec si quis fuerit seruus, est beatus ex eorum sentẽtia. Rursus autem Zeno quidem Stoicus finem esse putat ex virtute viuere. Cleanthes autem naturæ conuenienter viuere, in bene ratiocinando: quod in ijs quæ sunt secundum naturam eligendis situm esse statuit. Et Antipater eius familiaris, in ijs quidem quæ sunt secundum naturam assiduè & absque vlla prolapsione deligendis, ijs autem quæ sunt præter naturam reijciendis, positum esse existimat. Et rursus Archedemus sic finem esse exponebat, in ijs quæ sunt secundum naturam maxima & præcipua deligendis, non posse transilire. Præter hos autem Panætius, conuenienter viuere appetitionibus quę datę sunt nobis à natura. Postremò autem Posidonius, viuere contemplando vniuersorum veritatem & ordinem, & se, quoad eius fieri potest, ita instituere, vt nulla in re ducatur à parte animæ quæ caret ratione. Quidam autem ex recentioribus Stoicis, finem esse tradiderunt, viuere consequenter constitutioni hominis. Quid tibi Aristonem recenseã?

Rom. 8

ἐν τῷ ἐκλογίζεσθαι

is finem dicebat esse ἀδιαφορίαν, id est, indifferentiam: indifferens autem planè relinquit indifferens: aut ea quæ ab Herillo dicuntur in medium adducā? Ex scientia viuere ponit Herillus finem. Ex Academia enim recentiores volunt nonnulli finē tradere, firmā ac stabilem à visis abstinentiam. Quinetiā Lycus Peripateticus verā animæ lætitiam dicebat esse finē, quemadmodum Leucimus eam quę ex honestis proficiscitur. Critolaus autem qui ipse quoq; fuit Peripateticus, dicebat esse perfectionem vitę rectè fluentis secundū naturā, quæ completur ex tribus generibus, à maioribus per manus traditam significans perfectionem. Neq; verò nobis his contentis quiescendum est, sed quàm maximè contendendum est, ea quoq; quæ à Physicis de re proposita decernūtur adducere. Anaxagoram enim Clazomeniū aiunt dixisse cōtemplationem esse vitæ finem, & eam quæ ex ea procedit libertatem. Heraclitum autem Ephesium εὐαρέστησιν. Pythagoram autem refert Heraclides Ponticus, scientiā perfectionis virtutum animæ tradidisse esse beatitudinē. Quinetiam Abderitani docēt esse finem. Democritus quidem in libro de Fine, animi tranquillitatē, quam etiā appellauit εὐεστώ, & sæpe exclamat, Delectatio & eius priuatio sunt eorum terminus qui ad ipsum florem peruenerunt. Hecatæus autem sufficientiam. Quinetiam Apollodorus Cyzicenus animi delectationem, quemadmodū Nausiphanes admirationē vel obstupefactionem. Eam enim dicit à Democrito vocari ἀθαμβίην. Præter hos autē Diotimus absolutā omniū bonorum perfectionem, quam dicit appellari εὐεστώ, finem pronūciauit. Rursus Antisthenes quidem factus vacuitatē. Qui autem vocantur Annicerei ex successione Cyrenaica, nullum totius vitæ finem terminatū statuerunt: vniuscuiusq; aūt actiones proprium esse finem, nempe eam quæ ex actione efficitur voluptatem. Hi Cyrenaici, Epicuri voluptatis terminum, hoc est, doloris ablationē, infirmant & abrogant, eam constitutionem mortui appellantes: non solùm enim nos gaudio affici propter voluptates, sed etiam propter consuetudines & honores. Epicurus autem existimat omnem effici lætitiam ex carne primò affecta. Metrodorus aūt in opere quod inscribitur, Maiorem esse causam ad felicitatem eam quæ est ex nobis, ea quæ ex rebus oritur, Animæ, inquit, bonum quid est aliud, quàm firma stabilis ac bona carnis cōstitutio, & spes fide digna quòd ea sic futura sit? At verò Plato Philosophus finem dicit esse duplicem. Vnum quidem, id quod est participabile & primū in ipsis formis, quod quidem nominat bonum. Alterū aūt id quod est illius particeps, & quæ ab eo proficiscitur accipit similitudinē, quod quidem est in hominibus qui virtutē & verā philosophiā sibi vendicāt. Quare Cleanthes quoq; in secundo de voluptate, dicit Socratē vbique docere, eundem esse virum iustum & beatum: & eum execrari qui primus diuisit iustum ab vtili, vt qui rem fecerit impiam. Reuera enim sunt impij, qui vtile à iusto quod est ex lege separant. Ipse autem Plato dicit beatitudinem, quæ est εὐδαιμονία, esse, bene habere Dæmonem. Dici autem Dæmonē, principalem animę nostrę partem. Beatitudinē autem, esse perfectissimum bonū & plenissimum. Aliquando autem vocat vitam sibi consentientē & conuenientem, & nonnūquam id quod est ex virtute perfectissimū. Id autem ponit in scientia boni, & in ea quæ est cum Deo similitudine: similitudinē pronuncians esse iustum & sanctū cum prudentia. An non sic quidam ex nostris, ad imaginem quidem statim in ortu accepisse hominem, ad similitudinem autem per perfectionem postea esse accepturum, intelligunt? Iam verò docēs Plato hanc similitudinē viro bono futuram esse cū humilitate, illud vtiq; interpretatur. Omnis qui seipsum humiliat, exaltabitur. Dicit itaq; in Legibus: Deus quidem certè, vt vetus est oratio, tenēs principium & medium & finem vniuersorū, rectà pergit secundum naturam circumiens. Eum autem semper consequitur iustitia, vltrix eorum qui à lege diuina deficiunt. Vides quo modo ipse quoq; legi diuinæ inducit religionem. Subiungit itaq;: Cui qui beatus quidem est futurus, adhærens, sequitur humilis & moderatus. Deinde cùm his ea quæ sunt consequentia coniunxisset, & timore adhibito admonuisset, subiungit: Quænam est ergo actio Deo amica & consentiens? Vna, & quæ vnum quidem verbum habet vetus, nempe quod simili quidem quod est moderatum, simile fuerit amicū: quæ sunt autem immoderata, neq; sibi inuicem, neq; moderatis. Hac itaq; ratione noster temperans, est Deo amicus, est enim similis: qui nō est autem temperans, dissimilis & diuersus. Hoc autē vetus decretū esse dicens, eam quæ à lege ad ipsum peruenit, doctrinā tacitè significauit. Et in Theæteto, cùm mala circa mortalē naturā & hunc locū necessariò circūcursare dedisset, subiungit: Quare oportet tentare hinc illuc fugere quā celerrimè. Fuga autē est, Deo quoad eius fieri potest assimilatio: assimilatio

Margin notes: A; εὐαρέστησιν. (beside "autem Ephesium"); εὐεστώ quid. περιμανίτην κατάληψιν. (beside "qui ad ipsum florem"); ἀπονίαν. (beside "pronūciauit"); B; C; Luc. 14. & 18. (beside "humilitate")

A milatio autē, iustum & sanctū fieri cum prudētia. Et Speusippus Platonis ex sorore filius, dicit beatitudinē esse perfectū habitum in ijs quæ sunt secundū naturā: aut habitū bonorum, quam constitutionē omnes quidē homines appetere: cōiectare autem bonos molestię & conturbationis vacuitatem, fuerint autē virtutes effectrices felicitatis. Xenocrates verò Chalcedonensis definit beatitudinē, propriæ virtutis possesionē, & eius quæ ei inseruit facultatis: deinde vt in quo quidem sit, videtur dicere animam: vt autē à quibus, virtutes: vt autē ex quibus tanquā partibus, bonas actiones, & honestos habitus, & affectiones, & motus, & habitudines: vtpote quòd nō sine his sint ea quę sunt corporis & externa. Xenocratis enim familiaris Polemo, videtur velle beatitudinem esse sufficiētiam omnium bonorum, vel plurimorum & maximorum. Decernit itaq; sine virtute quidem nō futuram vnquam beatitudinē, absq; bonis autem corporis & externis, virtutem esse sufficiētem ab beatitudinem. Et hæc quidem sic habeant. Quæ autem dicuntur aduersus eas quæ dictæ sunt sententias, dicentur suo tempore. Nobis autem est propositum peruenire ad finem minimè finiendum, mandata, hoc est Deum, sequentibus, & ex eis, sine reprehensione & scienter, per diuinæ voluntatis cognitionem viuentibus. Rectè autem rationi seu verbo, quoad eius fieri potest, assimilatio, est finis, & in perfectam adoptionem per filium restitutio, Patrem semper glorificans per magnum Pōtificem, qui nos fratres & cohęredes dignatus est appellare. Et Apostolus quidem breuiter finem de scribēs in epistola ad Romanos, dicit: Nunc autem liberati à peccatis, Deo autem seruiētes, habetis fructum vestrum in sanctificationem: finem autem, vitam æternam. Cùm *Rom.6.*

B autem spem nouisset duplicem, vnam quidem quæ expectatur, alteram verò quæ minis intēditur, iā finem docet fidei restitutionem. Patientia enim, inquit, probationem: probatio verò spem: spes autem non confundit: quoniam charitas Dei diffusa est in cordibus nostris per spiritum sanctum, qui datus est nobis. Propter quam charitatē est etiam in spem restitutio, quam requiē dicit alibi nobis esse repositam. Similia etiam inueneris apud Ezechielem, quæ sic habent: Anima peccās ipsa morietur. &: Vir qui fuerit iustus, & fecerit iudicium & iustitiam, supra montes non comedit, & suos oculos non sustulit ad idola domus Israël, & vxorē proximi sui non polluit, & ad vxorē in tēpore immunditiei suæ non accessit (non vult enim semen hominis ꝓbro ac vituperio affici) & virū, inquit, nō malè afficiet, pignus debitoris reddet, raptum non rapiet: panem suum dabit esurienti, & plura habendi cupiditatem non sumet, ab iniquitate auertet manum suam, verum faciet iudicium inter virum & ꝓximum, in iustificationibus meis ambulabit, & iustificationes meas custodiet. Ad faciendam veritatem est iustus, vita viuet, dicit Adonai Dominus. Et Esaias, eum quidem qui credidit, ad vitæ honestatem: eum autem qui est cognoscendi potestate præditus, ad scientiam adhortans, ostendens non esse eandem hominis & Dei virtutem, sic inquit: Quærite Dominum, & in inueniendo ipsum inuocate. Quando autē vobis appropinquauerit, relinquat impius vias suas, & cōuertatur ad Dominum, & misericordiam consequetur, vsq; ad, Cogitata vestra à cogitatione mea. Nos ergo *Rom.5.* *Ezech.18.* *πλεονεκτεῖν.* *Esa.55.* *Gala.6.*

C ex præclari Apostoli sententia, ex fide spē iustitię expectamus. In Christo enim neq; circuncisio aliquid valet, neq; præputium, sed fides quæ per dilectionem operatur. Cupimus autem vnumquenq; vestrûm eandem ostendere solicitudinē ad expletionem spei, vsq; ad illud, secundum ordinem Melchizedec factus Pontifex in æternū. Paulo quoq; similia dicit Sapientia, quæ est omni virtute plena. Qui autem me audit, habitabit in spe confidens. Spei enim restitutio, spes dicta est æquiuocè: propterea huic dictioni, Habitabit, pulcherrimè adiecit, Confidens: ostendens eum qui est huiusmodi, requieuisse, recepta ea spe quam sperabat. Quare etiā subiungit: Et quiescet securè ab omni malo. Apertè autē dicit Apostolus in priori ad Corinthios: Imitatores mei estote, sicut & ego Christi: vt illud efficiatur, Si vos mei, ego autē Christi, vos ergo estis Christi imitatores, Christus verò Dei. Deo ergo assimilari, vt quoad eius fieri potest, fiat quis iustus & sanctus cum prudētia, statuit esse scopum fidei: finem autem, eam quę fit propter fidem promissi restitutionē. Ex his ergo fontes eorum qui de fine decreuerunt, quos prius diximus, scaturiūt. Sed de his quidem satis est. Quoniam autem voluptas & cupiditas videtur cadere in matrimonium, de his quoq; tractandum est. Est ergo matrimonium, prima legitima viri & mulieris cōiunctio, ad liberorum procreationē. Menander itaq; Comicus: Ad seminandos liberos tibi, inquit, meam trado filiam. Quærimus autem an sit vxor ducenda, quod quidē est ex ijs quę dicta sunt aliquo modo referri ad aliquid. Est enim alicui ducēda vxor, *Heb.7.* *Cap.11.* *Finis Christiano homini quis.* *De Matrimonio.*

quod quidẽ est ac si dicas, aliquo modo se habenti, & aliqua vxor ducenda, & quæ quo modo se habeat. Neq; enim est vxor ducẽda cuilibet, neq; semper: sed tempus quoq; est, in quo conuenit: & persona cui cõuenit: & ętas ad certum vsq; terminum. Neq; ergo est cuilibet vxor ducenda, neq; semper: sed neq; omnino & impudenter ac temerè, sed ei qui aliquo modo se habet, & qualis, & quando oportet, & liberorũ gratia, & ea quæ est in omnibus similis, & non vi aut necessitate virum amantẽ diligit. Vnde dicit Abraham, de vxore, vt quæ soror esset, considerans: Mihi soror est ex patre, sed non ex matre, fuit autem mihi quoq; in vxorem: docens eas quæ ex eadẽ matre natæ sunt, nõ esse ducẽdas vxores. Paucis autem hanc persequemur historiã. Plato ergo matrimoniũ collocat in bonis externis, adstruens nostri generis immortalitatẽ, & quandam filiorum perpetuitatẽ, quæ filijs veluti lampas traditur. Democritus autem repudiat matrimoniũ, & procreationẽ liberorum, propter multas quæ ex ipsis oriuntur molestias, & quòd abstrahant ab ijs quæ sunt magis necessaria. Ei autẽ Epicurus quoq; assentitur, & quicunq; in voluptate molestiæque & doloris vacuitate bonum collocant. Prętera ex Stoicorum quidem sententia est indifferẽs, & matrimonium & liberorum susceptio, ex Peripateticorum verò, bonum. Vt semel autem dicam, dogmata lingua tenus deducẽtes, voluptatibus seruierunt, alij quidẽ pellicibus, alij verò meretricibus, plurimi autem vtentes adolescẽtulis. Sapiens aũt ille quaternio, in horto cum meretrice factis voluptatem gloria afficiebat. Nõ ergo eam quæ est de boue iungendo effugerint execrationem, qui cùm sibi aliqua non conferre iudicent, alios ea hortentur facere, vel contrà. Hoc breuiter scriptura significauit, dicens: Quod odio habes, alij ne feceris. Cæterùm qui matrimonium approbant, Nos, inquiunt, fecit natura aptos ad matrimonium, vt liquet ex compositione corporũ masculorum & fœminarum: & frequenter illud acclamant, Crescite & multiplicamini. Si autem hæc quoq; ita se habent, ipsis tamen turpe videtur, quòd homo quem Deus est architectatus, sit animantibus brutis intemperantior, quæ cum multis & impudenter non congrediuntur, sed cum vno, & quod est eiusdem generis: cuiusmodi sunt columbæ & palumbes, & genus turturũ, & quæ sunt his similia. Præterea, inquiunt, qui caret liberis, est ea perfectione defectus quæ est secundum naturã, vt qui suum successorem in suum locum non substituerit. Perfectus enim est qui ex seipso fecit similẽ: vel potius quando illum idem fecisse viderit, hoc est, quando in eandem peruenerit naturã filius, cuius est qui eum genuit. Est ergo omnino vxor ducenda, & patriæ causa & liberorũ successionis, & mundi, quantũ est in nobis, perfectionis. Nam alicuius etiam matrimonij miserẽtur poëtæ, quod est semiperfectum & caret liberis: beatum aũt ducunt id quod floret & germinat vndiquaq;. Morbi autem corporis maximè indicãt necessarium esse matrimonium. Vxoris enim cura, & assidua eius perseuerantia, videtur, aliorũ necessariorũ & amicorum tantũ superare tolerantiã, quanto ea mutua doloris consensione & misericordia antecellit, & vult omniũ maximè lubenter assidere. Et reuera ex scripturæ sententia est necessaria adiutrix. Menãder itaq; Comicus cùm matrimonium esset insectatus, alia etiã vtilia opponens, respondet ei qui dixerat: C

Gen. 20. | μιταλαμπαδευόμενον. | βούζυγον. | Matth. 7. | B | ἀμφιθαλῆ. | συμπαθεία.

*Affectus in rem sum ego*
*Non bene, finistrè eam nam tu quidem capis.*

Deinde subiungit:

*Grauia fuerunt & molesta quæ tibi,*
*Vides in ipso, sed bona non aspicis.*

& quæ deinçeps sequuntur. Fert autem opem quoq; matrimonium ijs qui ætate processerunt, vt quòd exhibeat vxorem curam gerentem, & alat qui ex ea suscepti sunt liberos, vt in senectute parentes suos nutriant.

καλλίνις.

*Viro autem gloriæ, qui siet in terra, ei fuerint filij.*
*Vt subera atq; imo ex profundo rete, agent,*

ἀλίστομα.

Et quæ plagas seruant lino, ex Tragici Sophoclis sententia, Non permittunt autem Legislatores maximos magistratus gerere ijs qui vxorem nõ duxerint. Iam verò Laconum Legislator, non solùm pœnam imposuit ei qui vxorem non duxisset, sed etiam ei qui vnam tantùm, & ei qui duxisset serius, & ei qui solus viueret. Præclarus autem Plato iubet vxoris quoq; alimentum publico pẽdere ærario, eum qui vxorẽ non duxisset, & sumptus quos oportet dare magistratibus. Si enim ductis vxorib. liberos non susceperint, quod in eis quidẽ situm est, hominum raritatem inuehent, & ciuitates dissoluẽt, & qui ex eis constat ornatũ: est aũt eiusmodi eorum impietas, qui

A qui diuinam dissoluunt generationem. Iam verò est ignaui & imbecilli animi, fugere conuictum & vitæ consuetudinem cum vxore & liberis. Cuius enim est amissio malum, eius omnino possessio bonum est: ita autem se habet etiã in reliquis. Atqui liberorum amisio, inquiunt, est ex supremis malis: filiorum ergo possessio, bonum est: quod si ita est, etiam matrimonium.

*Absq; genitore (inquit) nunquam fuerit filius.*
*Nec absq; matre filij conceptio.*
*Patrem, uir ut matrem, efficit coniugium.*

Maximum itaq; votum statuit Homerus, virum & familiam, sed non absolutè, verùm cũ bona consensione & concordia. Nam aliorum quidem matrimonium in voluptate consentit & delectatione: eorum aũt qui philosophantur matrimonium, deducit ad eum qui est in Verbo consensum, quod nõ formã, sed mores permittit ornare mulieribus: & præcipit maritis ne vtantur vxoribus tanquã ijs quæ amantur mulieribus, vnum scopum sibi proponendo vt corpori probrũ afferant, sed ad totius vitæ auxilium, & optimã temperantiã, matrimoniũ vsurpent. Frumẽti enim & ordei, vt arbitror, seminibus, quæ conuenientib. deijciuntur temporibus, præstantior est ac preciosior homo qui seminatur, cui omnia à natura producuntur. Atq; illa quidẽ semina agricolæ sobrij deijciũt. Si quod sit ergo sordidũ & spurcũ studiũ, id est à matrimonio expurgandum, ne nobis probro dari posSit, quòd brutorum animantium cõgressus magis naturæ cõueniat, quàm humana coniunctio in ipso calore veneris.
B Nonnulla certè eorum quo tempore iubentur statim recedunt, relinquentia administrationi opificium. A tragicis autem scriptum est, Polyxenam, etsi interficeretur, moriendo tamen magnã adhibuisse diligentiam vt honestè caderet: Illa tegens mares quæ haud licuit cernere. Fuit aũt illi quoq; calamitas matrimonium. Succumbere itaq; & cedere vitijs & animi perturbationibus, est extrema seruitus: sicut ea certè vincere, sola est libertas. Diuina itaq; scriptura, eos qui præcepta transilierunt, dicit esse venundatos alienigenis, hoc est, peccatis quæ naturæ nõ conueniunt, donec cõuersi agant pœnitentiam. Conseruandum est ergo matrimonium, tanquam sacra aliqua statua, mundum ab ijs quæ polluunt, vtpote qui à somnio quidẽ expergiscamur cum Domino, eamus autem dormitum cum gratiarum actione, & oremus,

*Cumq; cubile tenet, lux & cùm fulserit alma,*

tota nostra vita Dominum testantes: pietatem quidem ac religionem anima possidentes, temperantiam autem etiam vsq; ad corpus deducẽtes. Deo enim reuera gratum est, à lingua ad opera traducere moderationem. Ad impudentiam autem via est turpis sermo: & vtriusq; finis est turpium rerũ perpetratio. Quòd aũt consulat scriptura vxorem ducere, & nec à coniugio vnquam permittat discedere, legem apertè constituit: Non dimittes vxorem, præterquam propter fornicationem. Adulterium autem existimat coniungi matrimonio, viuo altero ex separatis. A suspicione autẽ & criminatione alienam ostendit vxorẽ, eo quòd non ornetur ac cometur plus quã sit decorum, assiduè attendendo precibus & orationibus: multos autem domus exitus custodiat: à sui autem aspectu, quoad eius fieri potest, excludens eos qui ad eam non attinet, ducendo domus custodiam intempestiuis nugis cõducibiliorem. Qui autem dimissam accipit vxorem, mœchatur, inquit: si quis enim dimiserit vxorem, mœchatur ipsam, hoc est, cogit eam mœchari. Non solùm autem qui dimisit, est eius causa, sed etiam qui eam suscepit, præbens mulieri peccandi occasionem: si enim nõ suscipiat, reuertetur ad virum. Quid verò lex? Ad reprimendam ad vitia propensionem, iubet de medio tolli eam quæ adulterata, & adulterij fuerit cõuicta: sin autem fuerit vxor Sacerdotis, iubet eam igni tradi. Obruitur autem adulter quoq; lapidibus, sed non in eodem loco, ne mors quidem sit eis communis. Neq; verò lex cum Euangelio pugnat, sed ei consentit: quidni enim? cùm sit vtriusq; vnus suppeditator Dominus. Quæ enim est fornicata, viuit quidem peccato, sed mortua est mandatis: quæ autem ducta est pœnitentia, vt quæ sit regenerata per vitæ conuersionem, habet vitæ regenerationem. mortua quidem vetere fornicatrice, in vitam autem rursus ingressa ea quæ genita est per pœnitentiam. Iis quæ dicta sunt fert spiritus testimonium dicens per Ezechielem: Nolo mortem peccatoris, sed vt conuertatur. Iam verò obruuntur lapidibus, vt qui propter duritiem cordis sint legi mortui, cui non paruerũt. Sacerdotis autem vxori augetur supplicium, quia cui plus datum est, plus ab eo exigetur. Terminetur hic quoq; secunda quæ στρωματεὺς dicitur Oratio, propter prolixitatẽ capitum & multitudinem.

[Margin notes: αἰσχρολογία, sed lego, αἰσχροποιΐα. — Mar. 10. Luc. 16. — Ezech. 18.]

C (margin marker beside "tus custodiat")

# CLEMENTIS ALE- XANDRINI STROMATVM LIBER TERTIVS.

A

C Valentiniani quidē, qui ab alto ex diuinis productionibus deduxere coniugationes, acceptum habēt matrimonium. Basilidis autem sectatores, cùm interrogassent, inquiunt, Apostoli, num sit melius vxorem non ducere, dicunt respondisse Dominū: Non omnes capiunt ver- *Matth.19.* bum hoc. Sunt enim eunuchi alij quidem ab ortu, alij verò à necessitate. Hoc dictum autem sic interpretantur: Quidam ex quo nati sunt, naturaliter fœminam auersantur, qui quidem hac naturali vtentes contemperatura, rectè faciunt si vxorem non ducant. Hi, inquiunt, eunuchi sunt ex quo nati sunt. Qui autem sunt à necessitate, ij sunt theatrici exercitatores, qui vt sibi bonam famam & gloriam attrahant, se continent. Qui autem excisi sunt impellente aliqua necessitate, eunuchi facti sunt per necessitatē. Qui itaq; eunuchi fiunt per necessitatem, non fiunt eunuchi per verbum seu rationem. Qui autem regni cœlestis gratia seipsos castrarūt, propter ea, inquiunt, quæ ex matrimonio eueniunt, cogitationem hanc suscipiunt, in neces- *1.Cor.7.* sarijs rebus comparandis veriti negocia. Et illud: Melius est nubere quàm vri, aiunt dicere Apostolum. Ne animam tuam in ignem inijcias, noctu & interdiu resistens, B & timens ne à continentia excidas. Nam cùm in resistendo occupata fuerit anima, à spe est diuisa. Apprehēde ergo, inquit his verbis Isidorus in Moralibus, robustam *πῦρ ἀποσπερματίσας.* mulierem, ne à Dei gratia auellaris, & cùm ignem in semine excreueris, cum bona ores conscientia. Quando aūt, inquit, tua gratiarum actio inciderit in petitionem, & destiteris deinceps non rectè agere, sed non errare, duc vxorem. Sed est aliquis iuuenis, vel pauper, vel ad venerem procliuis, & non vult verbo seu rationi conueniē- *κατωφερὴς κατὰ λόγον.* ter vxorem ducere, is à fratre ne separetur: dicat, ingressus in sancta, nihil possum pati. Sed si habeat suspicionem, dicat, Frater impone mihi manum, vt non peccem: & accipiet auxilium tam quod mente potest percipi, quàm sensile. Velit tantum quod bonum est petere, & assequetur. Nonnunquam autem ore quidem dicimus, nolumus peccare: cogitatio autem nostra defixa est in peccato. Qui est eiusmodi, propter metum quod vult non facit, ne ei imponatur supplicium. Humanitas autem habet quædam necessaria & solùm naturalia. Quòd indumentis egeat, habet & necessariū & naturale: est autem res venerea naturalis, sed non necessaria. Has voces adduxi ad reprehendendum Basilidianos qui non rectè viuunt, vel vt qui peccādi potestatem habeant propter perfectionem, vel omnino quidem natura salui futuri sint, & si peccent, propter innatam electionem, quoniam nec hæc quidem eis facere concedunt eorum dogmatis primi parentes. Ne ergo Christi nomen suscipientes, & ijs qui sunt in gentibus intemperantissimi incontinentius viuentes, nomini maledictum inurant. Qui enim sunt eiusmodi, pseudapostoli, operarij dolosi, vsq; ad illud, Quorum C *2.Cor.11.* finis erit secundum opera eorum. Est ergo continentia, corporis despicientia cōue- *Votum Castitatis.* nienter pactis conuentis cum Deo initis: non solùm enim in rebus venereis, sed etiā in alijs quæ anima perperam concupiscit, non contenta necessarijs, versatur continentia. Est autem & in lingua, & in acquirendo, & in vtendo, & in concupiscendo continentia. Non docet aūt ea solummodo esse temperantes, siquidē præbet nobis temperantiā, vt quæ sit diuina potestas & gratia. Dicendū est ergo, quid nam nostris *Castitas.* videatur, de eo quod est propositū. Nos quidē castitatē, & eos quibus hoc à Deo da- *Monogamia* tum est, beatos dicimus: monogamiam aūt, & quę cōsistit in vno solū matrimonio, honestatē admiramur, dicentes tamen oportere aliorum misereri, & alterum alteri- *Polygamia.* us onera portare, ne quis cùm rectè stare videatur, ipse quoq; cadat. De secundis aūt nuptijs: Si vraris, inquit Apostolus, iungere matrimonio. Qui aūt à Carpocrate descendunt & Epiphane, censent oportere vxores esse communes, à quibus in nomen maximū emanauit probrū. Hic aūt Epiphanes, cuius etiam scripta feruntur, filius erat Carpocratis, & matris Alexandriæ nomine, ex patre quidem Alexandrinus, ex matre verò Cephaleneus. Vixit aūt solum septendecim annis, & Samæ, quæ est vrbs Cephaleniæ, vt Deus est honore affectus, quo in loco templum ex ingentibus lapidibus, altaria, delubra, musæum, ædificatum est & consecratum, & cùm est noua Luna, cōuenientes Cephalenei, natalē in deos relationē Epiphani sacrificant, libantq;

&

A &c conuiuantur,&c hymnos canunt.A patre aũt didicit &c orbem disciplinarũ, &c Platonis philosophiã.Fuit aũt author &c princeps monadicę cognitionis. A quo etiam profluxit hæresis eorum qui nunc sunt Carpocratianorum. Is ergo dicit in libro de iustitia,iustitiam Dei esse quandam cum æqualitate cõmunionem.Æquale quidem certè cælum vndiquaq; extensum,totam terram continet in orbem, &c nox ex ęquo stellas oẽs ostendit,&c diei authorẽ &c lucis patrẽ,solem, Deus ex alto æqualem effudit omnib.qui possunt aspicere.Illi aũt omnes cõmuniter respiciunt,quoniã non discernit diuitẽ vel pauperem vel populi principem, insipientes &c sapiẽtes, fœminas &c masculos,liberos,seruos.Sed neq; secus facit in brutis. Cùm aũt omnibus animãtibus æquè ipsum cõmunem effuderit,bonis &c malis firmam ac solidam efficit iustitiã,cùm nemo possit plus habere,neq; auferre à proximo, vt ipse illius lucem habeat duplicatã.Sol facit omnibus animantib. communia exoriri nutrimenta, cõmuni iustitia ex æquo data omnibus:&c ad ea quæ sunt huiusmodi similiter fit genus boũ, vt boues,&c suum,vt sues,&c ouium,vt oues,&c reliqua omnia.Iustitia enim in ijs apparet cõmunitas. Deinde per communitatem omnia similiter seminantur in genere,&c commune nutrimentum apertum est humi pascentibus iumentis omnibus,&c omnibus ex æquo,vt quod nulla lege teneatur: eius autem qui donat iubentis suppeditatione,conuenienter iusteq; adsit omnibus.Sed neq; habent scriptã legem generationis,esset enim abolita:ex æquo aũt seminant &c generant,habentia innatam à iustitia communionem:ex æquo cõmuniter omnibus oculum ad videndum, creator &c pater omnium, sua iustitia legem ferens præbuit, non discernens fœminam à masculo, non id quod est rationis particeps ab experte rationis: &c vt semel dicam, nullum à nullo,ęqualitate autem&c communitate visum similiter diuidens,vno iussu omnibus est largitus.Leges autem,inquit,hominum,cùm ignorationem castigare non possent,contra leges facere docuerunt: legum enim proprietas dissecuit diuinæ legis communionem,&c arrodit,nõ intelligens dictum Apostoli dicentis: Per legem peccatum cognoui.Et meum &c tuum dicit subijsse per leges, vt quæ non amplius cõmuniter fruantur (sunt enim communia) neq; terra, neq; possessionibus, sed neq; matrimonio. Fecit enim vites communiter omnibus, quæ neq; passerem, neq; furem abnegant,&c frumentum similiter, &c alios fructus. Violata autem communio &c æqualitas,genuit furem pecorum &c fructuum. Cùm ergo Deus communiter omnia fecisset homini, &c fœminam cum masculo communiter coniunxisset, &c omnia similiter animantia conglutinasset,pronunciauit iustitiam,communionẽ cum æqualitate. Qui autem sic nati sunt, communionem, quæ eorum conciliat generationem,abnegauerunt. Et dicit, si vnam ducens habeat, cùm omnium possint esse participes,sicut reliqua fecit animantia. Hæc cùm his verbis dixisset, subiungit rursus his verbis: Intensam enim &c vehementiorem ingenerauit masculis cupiditatem ad generis perpetuitatem,quam nec lex,nec mos,nec aliquid aliud potest abolere:est enim Dei decretum. Et quomodo amplius hîc in nostra examinetur oratione,cùm legem &c Euangelium per hæc apertè destruat. Illa enim dicit: Non mœchaberis. hoc autem dicit,Quicunque respicit ad concupiscentiam,iam mœchatus est. Illud enim,Non concupisces,quod à Lege dicitur,ostendit vnũ esse Deum,qui prædicatur per Legem &c Prophetas &c Euangelium.Dicit enim,Non concupisces vxorem proximi tui.Proximus autem non est Iudæus Iudæo: frater enim est, &c eundẽ habet spiritum: restat ergo vt propinquum dicat eum qui est alterius gentis. Quomodo autem non propinquus, qui potest spiritus esse particeps? Non solum enim Hebræorum,sed etiam gentium pater est Abraham. Si autem quæ est adulterata, &c qui in eam fornicatus est,capite punitur: clarum est vtique præceptum quod dicit, Non concupisces vxorem propinqui tui, loqui de Gẽtibus: vt cùm quis ex Lege &c ab vxore proximi &c à sorore abstinuerit, apertè audiat à Domino, Ego autem dico non concupisces.Additio autem huius particulæ,Ego,ostendit præcepti operationem esse magis. Quòd autem cum Deo bellum gerat Carpocrates &c Epiphanes in eo qui vulgo iactatur libro de Iustitia,patet ex eo quod subiungit his verbis:Hinc vt qui ridiculum dixerit,legislatoris hoc verbum audiendum est, Non concupisces,&c vt magis ridiculè diceret:Res,inquit,proximi tui.Ipse enim qui dedit cupiditatem, vt quæ contineat generationem,iubet eam auferre,eam à nullo animali auferens.Illud autem,Vxorem proximi tui,communionem cogens ad proprietatem, dixit adhuc magis ridiculè.Et hæc quidẽ dogmata constituunt egregij Carpocratiani. Hos dicunt &c aliquos alios similium malorum ęmulatores,ad cœnas conuenientes(ne-

Marginalia: B (beside "tor & pater omnium"); C (beside "beris. hoc autem dicit"); μὴ γεγράφθαι γὰρ ἄν. (beside "peditatione"); Rom.3. (beside "legem peccatum cognoui"); Exod.20. (beside "ne,cùm legem"); Matth.5. (beside "beris"); Deut.5. (beside "rem proximi tui").

que enim dixerim agapen eorum congresſionem) viros ſimul & mulieres, poſtquã ſatietate venerem excitante exatiati fuerint,lumine amoto, quod eorum fornicato riam hanc iuſtitiam pudore afficiebat,auerſa lucerna coire quomodo velint,& cum quibus velint:meditatos autẽ in eiuſmodi agape cõmunionem,interdiu iam,à quibus velint mulierib.exigere Carpocrateæ (diuinæ enim nefas eſt dicere) legis obedientiam.Has leges,vt ſentio, ferre oportuit Carpocratem, canum & ſuum & hirco rum libidinibus.Mihi autem videtur, Platonem quoq; malè audijſſe in Republica, dicentem oportere eſſe cõmunes omnium vxores,vt qui diceret eas quidẽ quæ nõdum nupſerant,eſſe cõmunes eorum qui eſſent petituri, quemadmodum theatrum quoque eſt commune ſpectatorum:eſſe autem vnamquamq; vniuſcuiuſq; qui præ- A

Xanthus. occupaſſet,& non amplius cõmunem eſſe eam quæ nupſiſſet. Xanthus autem in ijs quæ inſcribuntur Magica:Coëunt aũt,inquit, Magi cum matribus & filiabus, & fas eſſe coire cum ſororibus, & cõmunes eſſe vxores non vi & clàm, ſed vtriſq; conſentientibus,cùm velit alter ducere vxorem alterius.De his & ſimilibus hæreſibus, exiſtimo Iudam Prophetice dixiſſe in epiſtola:Similiter quidem hi quoq; ſomniantes, non enim reuera ad veritatem ſe applicant,vſq; ad illud,Et os eorum loquitur ſuper ba.Iam verò ſi & ipſe Plato & Pythagorei,ſicut etiam poſtea Marcioniſtæ, malã exiſtimarunt eſſe generationẽ,longè abfuit vt cõmunes ipſe poneret vxores. Sed Marcioniſtæ quidem dicunt malam eſſe naturam,ex mala materia, & à iuſto factam opi fice ac creatore. Qua quidem ratione nolẽtes implere mundum qui factus eſt à crea tore,volunt abſtinere à nuptijs,reſiſtentes ſuo creatori, & contendentes ad bonum B qui vocauit:ſed non ad eum qui,vt dicunt, Deus eſt alio modo. Vnde cùm nihil hîc velint relinquere proprium, non ſunt ex electione & ex inſtituto continentes, ſed propter odium conceptum aduerſum eum qui creauit, nolentes ijs vti quæ ab ipſo ſunt creata. Sed hi quidem qui propter impium quod aduerſus Deum gerunt bellũ, emoti ſunt ab ijs cogitationibus quæ ſunt ſecundum naturam, Dei longanimitatẽ contemnentes & benignitatem,etſi nolunt vxorẽ ducere, cibis tamen vtuntur crea tis, & aërem reſpirant creatoris, vt qui & eius ſint opera, & in ijs quæ ſunt eius permaneant,& nouam quandam & alienam,vt aiunt,annunciant cognitionem,etiam ſi hoc nomine mundi Domino deberent agere gratias,quòd hîc acceperint Euangelium. Sed aduerſus eos quidem cùm de principijs tractabimus, accuratiſsimè diſſeremus. Philoſophi autem quorum mentionem fecimus, à quibus cùm malam eſſe generationem impiè didiciſſent Marcioniſtæ, tanquam ſuo dogmate gloriantur, non eam uolunt eſſe natura malam,ſed anima quæ id quod verum eſt tradidit.Animam enim quæ eſt diuina,in hunc mundum deducũt tanquam in locum ſupplicij. Oportet autem animas in corpus immiſſas expiari ex eorum ſententia. Non conue-

ἐνσωματοῦσθαι. nit autem amplius hoc dogma Marcioniſtis, ſed ijs qui cenſent in corpora intrudi,

ἐνδεῖσθαι. & ijs alligari,& appropinquare animas. Aduerſus quos fuerit aliud dicẽdi tempus,

μετεγγίζεσθαι. quando de anima tractabimus. Videtur itaq; Heraclitus,maledictis inſequi generationem. Quoniam autem, inquit, nati volunt viuere,& mortes habere, vel potius quieſcere,filios quoq; relinquunt vt mortes fiant. Clarum eſt autem cum eo conue- C

μίξει. nire Empedoclem quoq; dicentem:

*Defleui & luxi,inſolita eſt cùm regio uiſa.* Et amplius:
*Mortua nam ex uiuis fecit,mutanſq; uiciſsim.* Et rurſus:
*Hei mihi quàm infelix hominum genus atq; miſellum,*
*Litibus ex quantis prognati & planctibus eſtis.*

Dicit autem Sibylla quoque:

*Mortales homines,caro qui tantùm,& nihil eſtis.*

Similiter atq; poëta qui ſcribit:

*Haud homine infelix tellus mage quicquam alit alma.*

Quinetiam Theognis malam oſtendit eſſe generationem,dicens hoc modo:

*Optima non naſci res in terreſtribus eſſet,*
*Nec nitidi Solis luce micante frui,*
*Extemplò aut natum transferre ſe ad oſtia Ditis.*

His autem conſequentia ſcribit quoq; Euripides poëta tragicus:

*Nam nos oporteret conuentu in celebri*
*Deflere natum,ut ueniat qui ad tot mala.*
*Aſt mortuum,cuiq; à malis data eſt quies,*
*Lætos domo lætis efferre canticis.* Et rurſus:

Quis

A *Quis nouit an uiuere quidem fit mori,*
*Si et mori autem uiuere?*

Idem quod hi, videtur Herodotus quoque inducere dicentem Solonem: O Crœse, quiuis homo nihil est aliud quàm calamitas. Iam verò de Cleobide & Bitone fabula apertè nihil vult aliud quàm vituperare quidem generationem, laudare autem mortem.

*Et qualis foliũm, est hominum generatio talis,*

Ait Homerus. Plato aũt in Cratylo, Orpheo tribuit id quod dicitur, quòd anima puniatur in corpore. Etenim nonnulli ipsum dicunt esse monimentum animæ, vt quæ in præsentia sit sepulta: & quoniam id significat quę significat anima, ideo rectè appellari σῶμα. Videtur quidẽ certè Orpheus hoc nomen maximè imposuisse, vt quæ eorum propter quæ luit, luat pœnas. Operæprecium est autem meminisse etiam eorũ quæ dicit Philolaus. Sic enim dicit hic Pythagoreus: Testantur aũt veteres quoq; Theologi & vates, quòd propter aliqua luenda supplicia anima coniuncta sit corpori, & in eo tanquã in aliquo monimento sit sepulta. Quinetiam Pindarus de ijs quę sunt in Eleusine mysterijs loquẽs, infert: Beatus, qui cùm illa sub terra viderit cõmunia, nouit quidẽ vitæ finem, nouit aũt datũ Iouis imperiũ. Et Plato consequenter in Phædone nõ veretur hoc modo scribere: Porrò autem hi nobis his cõstitutis mysterijs, non aliquid aliud, &c. vsq; ad, Et cũ dijs habitatione. Quid verò cùm dicit: Donec corpus habuerimus, & cõfusa nostra fuerit anima cũ eiusmodi malo, illud quod B desideramus, nunquã satis possederimus: an nõ significat generationem esse causam maximorum malorũ? Iam verò in Phædone quoq; attestatur: Euenit enim vt qui rectè philosophantur, non animaduertantur ab alijs in nullam rem aliam suum studiũ conferre, quàm vt emoriantur & sint mortui. Et rursus: Ergo hìc quoq; philosophi anima corpus maximè vilipendit, & ab eo fugit, ipsa autem per se esse quærit. Nunquid autem consentit cũ diuino Apostolo, qui dicit: Infelix ego homo quis me liberabit de corpore mortis huius? nisi fortè eorum consensione qui detrahuntur in vitium, corpus mortis dicit tropicè. Atq; coitum quoq;, qui est principium generationis, vel ante Marcionẽ videtur Plato auersari in primo de Republica: infert enim laudans senectutem: Velim scias quòd quo magis flaccescunt aliæ voluptates, eo magis studiorum ac doctrinæ cupiditates crescunt & voluptates. Et cùm rei venereæ iniecta esset mentio: Bona verba quæso, inquit: ego verò lubenter isthinc tanquã ab insano aliquo & agresti domino effugi. Rursus dicit in Phędone, generationẽ maledictis insequens: Quæ ergo de his in arcanis dicitur, hæc est oratio, quòd nos homines sumus in custodia aliqua. Qui aũt visi fuerint in vita sanctè agenda excelluisse, ij sunt qui ab ijs quidem quæ sunt in terra locis, tanquã à carceribus, liberantur & soluuntur: ad puram autem sursum veniunt habitationem. Sed tamen quãuis ita se habeat, rectè se gerentẽ administrationẽ sentit & prouidentiã, & dicit: Non oportet aũt seipsum soluere & effugere. Et vt paucis dicam, non dedit Marcioni occasionẽ vt malam existimaret materiam, cùm ipse piè de mundo hæc dixerit: Ab eo enim qui con C struxit, habet omnia bona: à priori aũt habitu, quæcunq; in cœlo fiunt grauia & iniusta, ea & ipsum ex illo habet, & efficit in animãtib. Adhuc aũt subiungit manifestius: Eorum aũt ei causa est corporea cõtẽperatura, quæ coalita est cũ ea quæ olim fuit natura, quoniã magnæ cõfusionis & perturbationis erat particeps, priusquam veniret in eum qui nunc est mundũ. Nihilominus aũt in legibus quoq; deflet humanum genus, sic dicens: Dij miserti hominũ generis quod fuerat natum laboriosum, vt à laboribus conquiescerent, dierũ festorũ constituerunt eis vicissitudines. Et in Epinomide sic quoq; persequitur causas cur sint miserti, & sic dicit: Ab initio ipsum esse genitum, est graue cuilibet animanti: primùm quidem esse participem eorum quæ gestantur in vtero, deinde ipsum nasci, & præterea nutriri & erudiri, per innumerabiles labores vniuersa fiunt, vt omnes dicimus. Quid verò, nõ Heraclitus generationem quoq; dicit esse mortem? Pythagoras autem similiter atq; Socrates in Gorgia, cùm dicit: Mors est quæcunq; experrecti videmus: quæcunque autem dormientes, somnus. Sed de his quidem satis. Quando autem tractabimus de principijs, tunc & has repugnantias quas & tacitè significant philosophi, & suis dogmatib. decernunt Marcionistæ, considerabimus. Cæterũ satis dilucidè ostensum esse existimo, externorum alienorũq; dogmatum occasiones, Marcionem ingratè & indoctè accepisse à Platone. Nobis autem procedat sermo de cõtinentia. Dicebamus autem Græcos, cùm haberent suspectam in vtendo difficultatem, in filiorum generationem multa

σῶμα ἀπὸ τοῦ σημαίνειν, à significando.

Rom. 7.

δυσχρηστίας.

dixisse: cùm ea autem impiè excepissent Marcionistæ, eos fuisse ingratos in creatorem. Dicit enim tragœdia: A

*Non nasci er præstat homines quàm nasci er.*
*Dein filios acerbis cum doloribus*
*Enitor, enixa at stultos si pepererim,*
*Afflictor improbos uidens, cùm nil iuuet.*
*Rursusq;, si perdam bonos: salui at sient,*
*Mihi misellum cor timore liquitur.*
*Quid hoc uerò boni? non sufficit unam*
*Perdere animam, nisi te afflictes amplius?*

Et adhuc similiter:

*Mihi stet uetusq; persuasio,*
*Plantare filios nunquam hominem oportuit,*
*Dum cernit ad quot illos gignimus mala.*

In his autem quæ deinceps sequuntur, malorum quoq; causam euidenter reducit ad principia, sic dicens:

*O qui miser natus malisq; obnoxius*
*Editus homo es, uitæ tuæq; miseriam*
*Inde habuisti, cœpit æther omnibus*
*Spiramen unde alens tradere mortalibus.*
*Mortalis ergo cùm sis, ne sis immemor.* B

Rursus autem his similia sic tradit:

*Mortalium omnium beatus non fuit*
*Quisquam, molestia & nemo carens fuit.*

Et deinde rursus:

*Heu generi humano quot & quanta accidunt,*
*Quot species malorum, neq; finis datur.*

Et adhuc similiter:

*Inter homines beatus quis perpetuò non est.*

Hac itaq; ratione dicunt etiam Pythagoreos abstinere à rebus venereis. Mihi autem contrà videntur vxores quidem ducere vt liberos suscipiãt, velle autem à venerea voluptate se continere post susceptos liberos. Hac ratione mysticè vti fabis prohibent, non quòd sit legumen flatum excitans & concoctu difficile, & somnos efficiat turbulentos, neque quòd hominis capiti sit assimilata, vt vult ille versiculus,

*Idem est nam fabam atq; caput corrodere patris.*

sed potius quòd fabæ, si comedantur, steriles efficiant mulieres. Theophrastus quidem certè in libro de Causis naturalibus, fabarum siliquas, si ponantur ad radices arborum quæ nuper sunt plantatæ, refert plantas exiccare. quinetiam gallinæ domesticæ quæ eas assiduè comedunt, efficiuntur steriles. Ex ijs autem qui ab hæresi agũtur, Marcionis quidem Pontici fecimus mentionem, propter ab eo susceptam aduersus Creatorem concertationem, vt qui mundanarum rerum vsum recuset. Ei autem C continentiæ causa est, si modò est ea dicenda continentia, ipse creator, cui se aduersari existimans, Gigas iste cum Deo pugnans, est inuitus continens, in creaturam & Dei opus inuehens. Qui si vsurpent vocẽ Domini, qui dicit Philippo: Sine mortuos sepelire mortuos suos, tu autem sequere me. At illud considerent, quòd simile carnis figmentum fert quoq; Philippus, non habens cadauer infectum. Quomodo ergo cùm carnem haberet, non habuit mortuum? Quoniam surrexit ex monimento Domini, quod vitia morte affecit, vixit autem Christo. Meminimus autem nefariæ quoq; ex Carpocratis sententia mulierum communionis. Cùm autem de dicto Nicolai loqueremur, illud prætermisimus. Cùm formosam, inquiunt, haberet vxorem, & post Seruatoris assumptionẽ ei fuisset ab Apostolis exprobrata zelotypia, in medium adducta muliere, permisit cui vellet eam nubere. Aiunt enim hanc actionem illi voci consentaneam, quæ dicit, quòd carne vti oporteat: eiusq; factum & dictum absolutè & inconsideratè sequentes, qui eius hæresim persequũtur, impudenter effuseq; fornicantur. Ego autem audio Nicolaum quidem nulla vnquam alia, quàm ea quæ ei nupserat, vxore vsum esse, & ex illius liberis filias quidem consenuisse virgines, filium autem permansisse incorruptum. Quæ cùm ita se habeant, vitij erat depulsio atq; expurgatio, in medium Apostolorum circumactio vxoris, cuius dicebatur laborare zelotypia: & continentia à voluptatibus quæ magno studio parantur, docebat

Matth. 8.

A docebat illud, Vti carne, hoc est, exercere carnem. Neque enim, vt existimo, volebāt
conuenienter Domini præcepto, duobus Dominis seruire, voluptati & Deo. Di- *Matth.6.*
cunt itaq; Matthiam quoq; sic docuisse. Cum carne quidem pugnare, & ea vti, nihil
ei impudicum largiendo ad voluptatem, augere autem animam per fidem & cogni
tionē. Sunt autem qui etiam publicam venerem pronunciāt mysticam communio-
nem. Dicitur enim facere aliquid mali, operari: sicut etiam aliquid boni facere. simi-
liter æquiuocè operari. Similiter autem communio quoq;, bonum quidem est in
communicatione pecuniæ, nutrimenti, & vestitus: illi autem quamlibet rei venereę
coniunctionem, impiè vocauerunt communionem. Dicunt itaq; ex ijs quendam,
cùm ad nostram virginem vultu formosam accessisset, dixisse: Scriptum est, Da om-
ni à te petenti: illam autem honestè admodum respondisse, vt quæ non intelligeret
hominis petulantiam: At tu matrem conueni de matrimonio. O impietatem, etiam
voces Domini ementiūtur isti intemperantiæ communicatores, fratresq; libidinis,
non solùm probrum philosophiæ, sed etiam totius vitæ, qui veritatem, quantum in
eis situm est, adulterant ac corrumpunt, vel potius defodiunt, qui omnium homi-
num infelicissimi, carnis & coitus coniunctionem esse pronunciant sacram cōmu- *ἱεροφαντοῦσι*
nionem, & eam existimant deducere ad regnum Dei in fornices quidem & prosti- *τὴν κοινωνί-*
bula deducit hæc communio, & eius cum eis participes fuerint sues & hirci. In ma- *αν.*
iori autem spe apud eos fuerint, quę præsunt lupanari meretrices, impudēter quos-
libet qui volunt admittentes. Vos autem non sic Christum didicistis, siquidē ipsum *Eph.4.*
B audijstis, & in eo docti estis, quemadmodum est veritas in Christo Iesu, vt deponatis
quæ sunt secundum veterem conuersationem, veterem hominē, qui corrumpitur se
cundum desideria deceptionis. Renouamini autem spiritu mentis vestræ, & indua-
tis nouū hominem qui creatus est secundum Deum in iustitia & sanctitate veritatis, *Eph.5*
ad Dei similitudinē. Efficimini ergo Dei imitatores, vt filij dilecti, & ambulate in di
lectione, sicut Christus quoq; dilexit nos: & tradidit seipsum pro nobis oblationē
& hostiam Deo in odorem suauitatis. Fornicatio autem, & omnis immūditia, vel a-
uaritia, ne nominetur quidem in vobis, sicut decet sanctos, & turpitudo & stultilo-
quium. Etenim docens Apostolus meditari vel ex voce esse castos, scribit: Hoc enim
scitote quòd omnis fornicator, & cætera, vsq; ad illud: Magis autem arguite. Efflu-
xit autem eis dogma ex quodam arcano, atq; adeò afferam dictionem, matrem eorū
intemperantię: & siue ipsi huius libri scriptionis fuere autores, vide arogātiam, siqui
dem de Deo mentiuntur propter intemperantiā: siue cùm in alios incidissent, mor-
bo præclari huius dogmatis laborarūt, ij peruersè audiuère. Ita autē se habet dictio.
Vnum erant omnia: postquam autem eius vnitati visum est non esse solam, exijt ab
eo inspiratio, & cum ea coniunctionem inijt & cōmunionem, & fecit dilectum. Ex-
hinc autem egressa est ab ipso inspiratio, cum qua cùm consuetudinem habuisset &
coniunctionem, fecit potestates, quæ nec possunt videri nec audiri, vsq; ad illud, V-
namquanq; in nomine proprio. Si enim hi quoq;, sicut Valentiniani, spiritales posu
issent cōmuniones, suscepisset fortè aliquis eorum opinionem. Carnalis autem pro
C bri cōmunionem ad sanctā extollere prophetiam, est eius qui desperat salutem, ta-
lia autem statuunt Prodici quoq; asseclæ, qui seipsos falso nomine vocāt Gnosticos,
seipsos quidem dicentes esse natura filios primi Dei. Nobilitate autem & libertate
abutentes, viuunt vt volunt. Volunt autem libidinose, se nulla re teneri arbitrari, vt
domini sabbati, & qui sint quouis genere superiores, filij regales. Regi autem, inqui
unt, lex scripta non est.* Primum quidem, quòd non faciant omnia quę volunt: mul ** Videtur ta*
ta enim eos prohibebunt etsi cupiant, & conentur. Quinetiam quæ faciunt, non fa- *le quid dees-*
ciunt vt reges, sed vt mastigiæ: clāculum enim cōmittunt adulteria, timentes ne de- *se: Quàm fal*
prehendantur, & vitantes ne cōdemnentur, & metuentes ne supplicio afficiantur. *sa sunt quæ*
Quomodo autem res est libera, intēperantia & turpis sermo? Omnis enim qui pec- *dicūt, ex his*
cat, est seruus, inquit Apostolus. Sed quomodo vitā ex Deo instituit, qui seipsum prę *constat. Pri-*
buit dedititium cuiuis concupiscentię? cùm dixerit Dominus: Ego aūt dico, Ne cō- *mū, &c. uel*
cupiscas. Vult autē quis sua sponte peccare, & fert decretum vt adulteria cōmittat, *id consultò*
voluptatibusq; & delitijs se expleat, & aliorum violet matrimonia? Cùm aliorum *prætermisis-*
autē qui inuiti peccant misereamur si in externum mundum venerint, qui in alieno *se, usus qua-*
non fuerint fideles, eis fides non habebitur. Afficit autem hospes aliquis ciues con- *dam breuita-*
tumelia, & eis iniuriā facit: non autem vt peregrinus, vtens necessarijs, viuit, ciues *te, morte*
non offendens. Quomodo aūt cùm eadē faciant, quæ qui odio habentur gentibus, *Thucydidis.*
propterea q; non faciant ea quæ edicta sunt legibus, nempe iniqui, & incontinētes,

& auari, & adulteri, dicunt se solos Deũ nosse? Oporteret enim eos etiã cùm in alienis adsunt rectè viuere, vt reuera regiam virtutem ostenderent. Iam verò & humanis legislatoribus, & diuinæ legi odio habentur, cùm iniquè & præter leges viuere instituerint. Is certè qui scortatorē confodit, à Deo pius esse ostenditur in Numeris. Et si dixerimus, inquit Ioannes in epistola, quòd societatē habemus cum eo, nempe Deo, & in tenebris ambulamus, mētimur, & veritatē non facimus. Si autem in luce ambulamus, sicut & ipse est in luce, societatem habemus cum ipso, & sanguis Iesu filij eius emundat nos à peccato. Quomodo ergo sunt hi huius mùndi seu seculi hominibus meliores, qui vel pessimis huius mundi sunt similes? sunt enim, vt arbitror, similes natura, qui sunt facti similes. Quibus autem se esse censent nobilitate superiores, eos debent etiam superare moribus, vt vitēt ne includātur in carcere. Re uera enim, vt dixit Dominus, nisi abundauerit iustitia vestra plusquam scribarum & Pharisæorum, non intrabitis in regnum Dei. De abstinentia autem à cibis ostēditur à Daniele. Vt semel autem dicam, de obedientia dicit psallens Dauid: In quo dirigit iunior viam suã? Et statim audit: In custodiendo sermones tuos in toto corde. Et di cit Hieremias: Hæc autem dicit Dominus: Per vias gentium ne ambulaueritis. Hinc moti aliqui alij, pusilli & nullius precij, dicunt formatum fuisse hominem à diuersis potestatibus: & quæ sunt quidem vsq; ad vmbilicum, esse artis diuinioris: quæ autē subter minoris, qua de causa coitum quoq; appetere. Non animaduertũt aũt, quòd superiores quoq; partes nutrimentũ appetunt, & quibusdam libidinantur. Aduersantur autem Christo quoq;, qui dixit Pharisæis, eundem Deum & internum nostrũ & externum fecisse hominem. Quinetiam appetitio nō est corporis, etsi fiat per corpus. Quidam alij, quos etiam vocamus Antitactas, hoc est, aduersarios & repugnantes, dicunt quòd Deus quidem, pater vniuersorum, noster est natura, & omnia quæcunq; fecit bona sunt: vnus autem quispiam ex ijs qui ab ipso facti sunt, seminauit zizania, malorum naturam generans: quibus etiam nos omnes implicauit, nos efficiens patri aduersarios. Quare nos etiã ipsi huic aduersamur ad patrem vlcisendum, contra secundi uoluntatē faciētes. Quoniam ergo hic dixit: Non mœchaberis: nos, inquiunt, mœchamur, vt eius mandatũ dissoluamus. Dixerimus autē ad eos quoq;, quòd si pseudoprophetas, & eos qui veritatem simulant, ex operib. cognosci accepimus: malè audiunt autem & vituperantur vestra opera, quomodo adhuc dicetis vos veritatem tenere? Aut enim nullum est malũ, & non est vtiq; dignus reprehensione is quem vos insimulatis, vt qui Deo sit aduersatus, neq; fuit alicuius mali effector: vnà enim cum malo arbor quoq; interimitur: aut si est malum ac consistit, dicant nobis quid dicant esse ea quæ data sunt præcepta, de iustitia, de continentia, de tolerãtia, de patientia, & ijs quæ sunt huiusmodi, bona an mala: & si fuerit quidem malum præceptum, quod plurima prohibet facere turpia, aduersus seipsum legem feret vitium, vt seipsum dissoluat, quod quidem nō potest fieri: sin autem bonum, cũ bonis aduersentur præceptis, bono aduersari, & mala facere cōfitentur. Iam verò ipse quoque Seruator, cui soli censent esse parendum, odio habere, & maledictis insequi prohibuit: Et cum aduersario, inquit, vadens, eius amicus conare discedere. Aut ergo Christi quoque negabunt suasionem, aduersantes aduersario: aut si sint amici, non eum contrà afficient iniuria. Quid verò, an nescitis viri egregij (loquor enim tanquã præsentibus) quòd cùm præceptis quæ se rectè habent pugnantes, propriæ saluti resistitis? Non enim ea quę sunt vtiliter edicta, sed vos ipsos euertitis. Et Dominus, luceant quidem, inquit, bona vestra opera: vos autem libidines & intemperantias vestras manifestas redditis. Et alioqui si vultis legislatoris pręcepta dissoluere, quanã de causa, illud quidem, Non mœchaberis: & hoc, Stuprum puero non inferes, & quę cunque ad continentiam conferunt, dissoluere conamini, propter vestram intemperantiam: non dissoluitis autem quæ ab ipso fit hyemem, vt media adhuc hyeme æstatem faciatis: neque terram nauigabilem, mare autem quòd pedibus obiri possit, facitis, vt qui historias composuerunt, barbarum Xerxem dicunt voluisse facere? Cur verò non omnibus præceptis repugnatis? Nam cùm ille dicat. Crescite & multiplicamini, oporteret vos qui aduersamini, nullo modo vti coitu. & cùm dixit, Dedi vobis omnia ad vescendum & fruendum, vos nullo frui oportuit. Quinetiam eo dicente, oculum pro oculo, non oportuit vos decertationem contraria rependere decertatione. Et cùm furem iusserit reddere quadruplum, oportuit vos furi aliquid etiam addere. Rursus verò similiter, cùm pręcepto, Diliges Deum tuum ex toto corde tuo, repugnetis, oportuit nec vniuersorum quidem Deum diligere. Et rursus cũ dixerit,
Non

Marginalia: A; Num. 25.; 1. Ioan. 1.; Matth. 5.; Psal. 118.; B; Matth. 5.; Luc. 12.; C; Matth. 5.

A Non facies sculptile neq; fusile, consequens erat vt etiam sculptilia adoraretis. Quo modo ergo non impiè facitis, qui Creatori quidem, vt dicitis, resistitis, quæ sunt aũt meretricibus & adulteris similia sectamini? Quomodo autem non sentitis vos eum maiorem facere, quem vt imbecillum existimatis, siquidem id fit quod vult, non autem illud quod voluit bonus? contrà enim ostenditur quodam modo à vobis ipsis, imbecillem esse vestrum patrem, vt dicitis. Recẽsent etiam ex quibusdam locis Propheticis decerptas dictiones, & malè cõsarcinatas, quę allegoricè dicta sunt tanquã recto ductu & citra figuram dicta sumentes. Dicunt enim scriptum esse, Deo restiterunt, & salui facti sunt. Illi autem & Deo impudenti hoc tribuunt, & hoc eloquium tanquam consilium præceptum accipiunt: & hoc suę saluti adscribunt, quòd creatori resistant. At impudenti quidem Deo non scriptum est. Si autem sic quoq; habeat, eum qui vocatus est diabolus intelligite impudẽtem: vel vt qui accuset peccatores, vel vt qui defecerit, & sit apostata. Populus ergo de quo hoc dictum est, cùm castigantur propter sua peccata, ægrè ferentes & gementes, his verbis quæ dicta sunt murmurabant, quòd aliæ quidem gentes cùm iniquè se gerant non puniantur, ipsi autem in singulis vexentur, adeò vt Hieremias quoque dixerit: Cur via impiorũ ꝓsperatur? quod simile est ei quod dictum est apud Malachiam, Deo restiterunt, & salui facti sunt. Nã qui dicuntur Prophetæ, nõ dicunt solùm se aliqua à Deo audire, sed & ipsi etiam ostendũtur annunciare per αἰδυνηφοραν ea quæ vulgo iactantur à populo, tanquam quæstiones quasdam quæ fiunt ab hominibus afferentes, ex quibus est etiam dictum propositum. Malach. 3. Hier. 12. αἰδυνηφορά.

B Nunquid autem ad hos verba sua dirigens, scribit Apostolus in Epistola ad Romanos: Et non sicut blasphemamur, & sicut dicunt aliqui nos dicere, Faciamus mala, vt veniant bona, quorum iusta est damnatio? Ij sunt qui in legendo tono vocis peruertunt scripturas ad proprias voluptates, & aliquorum accentuũ & punctorũ transpositione, quæ moderatè & vtiliter præcepta sunt, ad suas trahũt delitias. Qui irritatis Deũ sermonibus vestris, inquit Malachias, & dicitis, in quonam eum irritauimus? Dum vos dicitis, Quicunq; facit malum, bonus est coram Domino, & ipse in eis complacuit, & vbi est Deus iustitiæ? Ne ergo hunc locum vngue amplius fodicantes, plurium absurdarum hæresum meminerimus: nec rursus dum in singulis aduersus vnamquanq; dicere necesse habentes, propterea pudore afficiamur, & nimis prolixos hos faciamus commentarios, agè in duo diuidentes omnes hæreses, eis respondeamus. Aut enim docent in differenter viuere: aut modũ tonumq; excedentes, per impietatem & odiũ profitentur continentiam. Prius autem tractandum est de prima parte. Si omnem vitam licet eligere, eam scilicet etiã licet, quæ est cũ continentia: & si quæuis vita nulla est periculo obnoxia, electa scilicet cum virtute & tẽperantia, multò minus. Ei enim qui est Dominus Sabbati data potestate, si vitæ intemperanter actæ nulla est reddenda ratio, multò magis qui vitam moderatè & temperatè instituit, nulli erit rationi reddendæ obnoxius. Omnia enim licent, sed non omnia expediunt, ait Apostolus. Quòd si omnia licent, videlicet moderatũ quoq; esse & temperantem. Rom. 3. Mala. 2. ἐγχέοντες. ὑπέρτονον. 1. Cor. 10.

C Quemadmodum ergo is est laudandus, qui libertate vsus est ad viuendum ex virtute: ita multò magis qui dedit nobis liberam & nostri iuris potestatem, & concesit nobis viuere vt vellemus, est venerãdus & adorandus, vt qui non permiserit vt nostra electio & vitatio seruiret necessariò. Si est autem vterque ęquè securus, & qui incontinentiam, & qui continentiam elegerit, non est tamen ex æquo honestum & decorum. Qui enim impegit in voluptates, gratificatur corpori: temperans autem, animam corporis dominam liberat à vitijs. Et si dicant nos vocatos fuisse in libertatem: solũmodo ne præbeamus libertatem, in occasionem carni, ex sententia Apostoli. Si autem cupiditati est obsequendum, & quæ probrosa est & turpis vita vt indifferens est eligenda, vt ipsi dicũt, aut cupiditatibus est omnino parendũ: & si hoc ita est, facienda sunt quæuis impudicissima & maximè nefaria, eos sequendo qui nobis persuadẽt: aut sunt aliquæ declinãdæ cupiditates, & non est amplius viuendum indifferenter: neq; est impudenter seruiendum vilissimis & abiectissimis nostris partibus, ventri & pudendis, propter cupiditatẽ nostro blãdiendo cadaueri. Nutritur enim & viuificatur cupiditas, dũ ei vt optatis fruatur inseruitur: quemadmodũ rursus fiarceatur & interturbetur, flaccessit. Quomodo aũt fieri potest, vt q victus est à voluptatib. Domino assimiletur, aut Dei habeat cognitionem? Omnis enim voluptatis principium est cupiditas: cupiditas aũt est molestia, & solicitudo, quæ propter egestatem aliquid appetit: quare nihil aliud mihi videntur, qui hanc vitæ rationem suscipiunt, quàm quod dicitur, Galat. 5.

*Vltra ignominiam sæuos sentire dolores.* A
vt qui attrahendum ad se malum nunc & in posterum eligant. Si ergo omnia licerent, nec timendum esset, ne à spe excideremus propter malas actiones, esset fortasse eis aliquis prætextus, cur malè viueret & miserabiliter. Quoniam autem vita quędam beata nobis ostensa est per præcepta, quam oportet omnes sequentes, nec aliquid eorum quæ dicta sunt perperam audientes, nec eorum quæ conuenit aliquid, etsi sit vel minimũ, contemnẽtes, sequi quò verbum ducit: cùm si ab eo exciderimus, in malum immortale incidamus necesse est: si diuinam autem scripturam secuti fuerimus, per quam ingrediuntur qui crediderunt, vt Domino, quoad eius fieri potest, assimilentur, non est viuendũ indifferenter, sed pro viribus mundos esse oportet à voluptatibus & cupiditatibus, & cura est gerenda animæ. Mens enim quæ est munda & ab omni vitio libera, est quodammodo apta ad potestatem Dei suscipiendam,
*1. Ioan. 3.* cùm diuina in eo assurgat imago: & quicunque habet hanc spem in Domino se-
** Clemens legit ἁγνίζει, noster autem interpres ἁγιάζει: uertit enim sanctificat.* ipsum, inquit, * mundum castumq; facit, quatenus ille est castus. Vt ij autem accipiant Dei cognitionem qui adhuc ducũtur à vitijs, minimè potest fieri: ergo nec vt finem assequantur, qui nullam habent Dei cognitionem. Et eum quidem qui hunc finem non assequitur, accusare videtur Dei ignoratio: vt Deus autem ignoretur, efficit vitæ institutio. Omnino enim fieri nõ potest, vt quis simul sit & scientia præditus, & blandiri corpori non erubescat. Neq; enim potest vnquam conuenire, quòd voluptas sit bonum, cum eo, quòd bonũ sit solum pulchrũ & honestum: vel etiã cũ eo, q, solus sit pulcher Dominus, & solus bonus Deus & solus amabilis. In Christo autem B
*Coloss. 2.* circuncisi estis, circuncisione non manu facta, in expoliatione corporis carnis, in circuncisione Christi. Si ergo cum Christo consurrexistis, quæ sursum sunt quærite, quæ sursum sunt sapite, non quæ sunt super terram. Mortui enim estis, & vita vestra absconsa est cum Christo Deo: non autem ea quam exercent fornicatio. Mortificate ergo membra quæ sunt super terram, fornicationem, immunditiam, passionem, desiderium, propter quæ venit ira. Deponant ergo ipsi quoq; iram, indignationem, vitium, maledictum, turpem sermonem ex ore suo, exuentes veterem hominem cum concupiscentijs, & induentes nouum qui renouatur in agnitionem, ad imaginem eius qui creauit ipsum. Vitæ enim institutio apertè eos arguit qui mandata nouere: qualis enim sermo, talis est vita. Arbor autem cognoscitur ex fructibus, non ex floribus & folijs ac ramis. Cognitio ergo est ex fructu & vitæ institutione, non ex verbo & flore. Non enim solum verbum dicimus esse cognitionem, sed aliquam diuinam scientiam, & lucem illam quæ innata fuerit in anima ex præceptorum obedientia, quæ facit omnia manifesta quę sunt in generatione, & hominem instruit vt seipsum cognoscat, & docet hominem, vt ad Deum suas cognitiones dirigat. Quod enim oculus est in corpore, hoc est in mente cognitio. Neq; dicant libertatem eam quæ est sub voluptate seruitutem, sicut ij qui bilem dicunt dulcem. Nos enim didicimus libertaté, qua Dominus noster nos liberat, soluens à voluptatib. & à cupiditatibus, & alijs vitijs animiq; perturbationibus. Qui dicit, Noui Dominũ, & mandata eius non
*1. Ioan. 1.* seruat, mendax est, & in eo veritas non est, ait Ioannes. Iis aũt qui speciosis quibus- C
dam verbis, per continentiam, sunt impij & in creaturam & sanctam opificem, qui est solus Deus omnipotens: & dicunt non esse admittendum matrimonium & liberorum procreationem, nec in mundum esse inducendos alios infelices futuros, nec suppetitandum esse morti nutrimentum, illa sunt dicenda. Primùm quidem illud
*1. Ioan. 2.* Ioannis: Et nunc Antichristi multi facti sunt, vnde scimus quòd nouissima hora est. Ex nobis exierunt, sed nõ erant ex nobis. Nónne si fuissent ex nobis, permansissent vtique nobiscum? Deinde sunt etiã euertenda & dissoluenda quæ ab eis afferuntur, hoc modo. Salomæ interroganti, quousque vigebit mors, non quasi vita esset mala, & mala creatura, Dominus, quoadusque, inquit, vos mulieres paritis, sed quasi naturalem docens consequentiam. Ortum enim omnino sequitur interitus. Vult ergo lex quidem vos à delitijs omnique probro & dedecore educere. Et hic est eius finis, ab iniustitia ad iustitiam deducere, honesta ac moderata eligendo matrimonia, & liberorum procreationem, bonamq; vitæ institutionẽ. Dominus aũt non venit ad soluendã legem, sed ad implendam: ad implendam aũt, nõ vt cui aliquid deesset, sed quòd perfectæ fuerint legis prophetiæ in eius aduẽtu. Nam recta vitæ institutio, ijs etiam qui iustè vixerunt, ante legem per verbum prædicabatur. Vulgus ergo hominum quod non nouit continentiam, corpore vitam degit, sed non spiritu: sine spiritu autem corpus est terra & cinis. Iam adulteriũ iudicat Dominus ex cogitatione.
Quid

A Quid enim, an non licet etiam continenter vti matrimonio, & non conari dissoluere quod coniunxit Dominus? Talia enim docent coniugij diuisores, propter quod nomē probris ac maledictis appetitur inter gentes. Sceleratum autem dicentes isti esse coitum, qui ipsi quoq; vt consisterent, ex coitu accepere, quomodo non fuerint scelerati? Eorum autem qui sunt sanctificati, sanctum quoque, vt puto, semen est. Ac nobis quidem debet esse sanctificatus, non solùm spiritus, sed & mores, & vita, & corpus. Nam quanam ratione dicit Paulus Apostolus esse sanctificatam mulierem à viro, aut virum à muliere? Quid est aūt quod Dominus quoq; dixit ijs qui interrogabant de diuortio, an liceat vxorē dimittere, cùm Moses id permiserit? Ad duritiā cordis vestri, inquit, Moses hæc scripsit. Vos autem non legistis quòd protoplasto Deus dixit, Eritis duo in carne vna. Quare q dimittit vxorē, prçterquā fornicationis causa, facit eam mœchari. Sed post resurrectionem, inquit, nec vxores ducunt, nec nubunt. Etenim de ventre & cibis dictū est. Escæ ventri, & venter escis. Deus autē & illum & has * destruet, hos impetens, qui instar caprorum & hircorum sibi viuendum esse cēsent, ne securè ac sine terrore comessent & coirent. Si resurrectionem itaq; acceperunt, vt ipsi dicūt, & ideo matrimoniū infirmant & abrogant: nec comedant, nec bibant. Ociosum enim esse, cessareque ventrem & cibos dicit Apostolus in resurrectione. Quomodo ergo esuriunt, & sitiunt, & carnis patiuntur affectiones, & alia quæ non patietur, qui per Christum, accepit perfectam, quæ speratur, resurrectionem? Quinetiam ij qui colunt idola, à cibis & venere abstinent. Non est autem, inquit, re-

1.Cor.7. Matth.19. Marci 10. Luc.20. 1.Cor.5. * καταργήσει ociosa reddet, & cessare faciet. Rom.14.

B gnum Dei cibus & potus. Certè Magis quoque curæ est, qui Angelos colunt & dæmones, simul à vino & animatis & rebus abstinere venereis. Quemadmodum autē humilitas est mansuetudo, non autem afflictio corporis: ita etiam continentia est animæ virtus, quæ non est in manifesto, sed in occulto. Sunt autem etiam qui matrimonium apertè dicunt fornicationem, & decernunt id traditū esse diabolo. Dicunt autem gloriosi isti iactatores se imitari Dominum, qui neque vxorem duxit, neq; in mundo aliquid possedit, se magis quàm alij Euangelium intellexisse gloriantes. Eis autem dicit Scriptura: Deus superbis resistit, humilibus autem dat gratiam. Deinde nesciunt causam cur Dominus vxorem non duxerit. Primùm quidem propriam sponsam habuit Ecclesiam: deinde verò nec homo erat communis, vt opus haberet etiam adiutore aliquo secundum carnem: neque erat ei necesse procreare filios qui manet in æternū, & natus est solus Dei filius. Hic ipse autem Dominus dicit: Quod Deus coniunxit, homo ne separet. Et rursus: Sicut autem erat in diebus Noë, erant nubentes, & nuptui dantes, ædificantes & plantantes, & sicut erat in diebus Loth, ita erit aduentus filij hominis. Et quod non dicit ad gentes, subiungit: Num cùm venerit filius hominis, inueniet fidem in terra? Et rursus: Væ prægnantibus & lactantibus in illis diebus. Quanquam hæc quoque dicuntur allegoricè. Propterea nec tēpora præfinijt, quæ pater posuit in sua potestate: vt permaneret mundus per generationes. Illud autem, Non omnes capiunt verbum hoc: sunt enim eunuchi qui sic

Matth.19. Mar.10. Matth.24. Luc.18. Luc.21. Matth.19.

C nati sunt, & sunt enuchi qui castrati sunt ab hominibus, & sunt enuchi qui seipsos castrarunt propter regnum cælorum. Qui potest capere, capiat: nesciunt quòd postquā de diuortio esset locutus, cùm quidam rogassent, Si sic sit causa vxoris, non expedit homini vxorem ducere: tunc dixit Dominus: Non omnes capiunt verbum hoc, sed quibus datum est. Hoc autem qui rogabant, volebant ex eo scire, an vxore damnata & eiecta propter fornicationem, concedat aliam ducere. Aiunt autem Athletas quoque non paucos abstinere à Venere, propter exercitationem corporis continentes: quemadmodum Crotoniatem Ascylum, & Crisonem Imeræum. Quinetiam Amœbeus citharœdus, cùm recenter vxorem duxisset, à sponsa abstinuit: & Cyrenæus Aristoteles amantem Laidem solus despexit. Cùm meretrici itaque iurasset se eam esse in patriam abducturum, si ei aduersus decertantes aduersarios in aliquibus opem tulisset, postquam id perfecit, lepidè à se scriptum iusiurandum exequens, eius quamsimillimam Cyrenæ statuit imaginem, vt scribit Ister in libro de Proprietate certaminum. Quare nec castitas est bonum & ex virtute, nisi fiat propter dilectionem in Deum. Iam de ijs qui matrimonium abhorrent dicit beatus Paulus: In nouissimis diebus deficient quidam à fide, attendentes spiritibus erroris, & doctrinis dæmoniorum, prohibentium nubere, abstinere à cibis. Et rursus dicit: Nemo vos seducat volens in humilitate & religione & parsimonia corporis. Idem autem illa quoq; scribit: Alligatus es vxori, ne quæras solutionem. Solutus es ab vxore, ne quæras vxorem. Et rursus: Vnusquisq; autem suam vxorē habeat, ne

ἰδιότητα? 1.Timo.4. Coloss.2. 1.Cor.7.

tentet vos Satanas. Quid verò, non etiam iusti veteres creaturam cum gratiarum actione participabant? Aliqui autem etiam liberos susceperunt, cũ continenter versati essent in matrimonio. Et Heliæ quidem corui alimentum afferebant, & panes & carnes. Quinetiam Samuel propheta, armum, quem ex ijs quę comedebat reliquerat, allatum, dedit edendum Sauli. Hi autem qui se eos dicunt vitæ institutis excellere, cum illorum actionibus ne potuerũt quidem conferri. Qui itaq; non comedit, comedentem ne spernat. Qui autem comedit, eum qui non comedit non iudicet: Deus enim ipsum accepit. Quinetiã Dominus de seipso dicens; Venit, inquit, Ioannes, nec comedens nec bibens, & dicunt, dæmonium habet: venit filius hominis comedens & bibens, & dicunt, ecce homo vorax & vini potor, amicus publicanorum & peccatorum. An etiam reprobat Apostolos? Petrus enim & Philippus filios procrearunt: Philippus autem filias quoq; suas viris tradidit. Et Paulus quidem certè non veretur in quadam epistola suam appellare coniugem, quam nõ circumferebat, quòd non magno ei esset opus ministerio. Dicit itaq; in quadã epistola: Non habemus potestatem sororem mulierem circunducendi sicut & reliqui Apostoli? Sed hi quidem vt erat cõsentaneũ, ministerio quod diuelli nõ poterat, prædicationi scilicet attendentes, non vt vxores, sed vt sorores circunducebant mulieres, quæ vnà ministraturæ essent apud mulieres, quæ domos custodiebant: per quas etiã in gynæceũ, absq; vlla reprehẽsione maláue suspicione, ingredi posset doctrina Domini. Atqui hic ipse exclamauit: Non est regnũ Dei esca & potus: neq; verò abstinentia à vino & carnib. sed iustitia, & pax, & gaudiũ in spiritu sancto. Quis eorum ouilla pelle indutus, & zona pellicea accinctus, circuit vt Helias? vel subligaculum tantũ habens lineũ, vt Hieremias? Ioannis autem vitę institutũ cognitione, præditum quis imitabitur? Sed hic quoq; viuentes gratias creatori agebant beati Prophetæ. Carpocratis aũt iustitia, & eorum qui æquè atq; ipse impudicam & intemperantem persequũtur communionem, hoc modo dissoluitur. Simul enim ac dixerit, A te petenti des: subiungit, & eũ qui velit mutuò accipere ne auerseris, hanc docens cõmunicationẽ, non aũt illam incestã & impudicam coniunctionẽ. Quomodo aũt fuerit is qui petit & accipit, is qui mutuatur, si nullus sit qui habeat & det mutuò? Quid verò quando dicit Dominus: Esuriui, & me pauistis: sitij, & potũ mihi dedistis: hospes eram, & me collegistis: nudus, & me vestijstis? Deinde subiũgit: quatenus fecistis vni horũ minimorũ, mihi fecistis: nunquid easdẽ quoq; tulit leges in veteri Testamẽto? Qui dat mendico, fœneratur Deo. &: Ne abstinueris à benefaciẽdo egeno, inquit. Et rursus: Eleemosynæ & fides ne te deficiant, inquit. Paupertas autẽ virum humiliat, ditant aũt manus virorum. Subiungit aũt: Qui pecuniã suam non dedit ad vsuram, fit acceptus. &: Precium redemptionis animæ propriæ inducantur diuitiæ. An non apertè indicat, quòd sicut mundus componitur ex contrarijs, nẽpe ex calido & frigido, humido & sicco, ita etiã ex ijs qui dant, & ex ijs qui accipiunt? Et rursus cùm dixit: Si vis perfectus esse, vende quæ habes, & da pauperib. refellit eũ qui gloriatur quòd omnia à iuuẽtute pręcepta seruauerit. Nõ enim impleuerat illud, Diliges proximũ tuũ sicut teipsum. Tunc aũt vt qui à Domino perficeretur, docebatur cõmunicare & impertiri per charitatem. Pulchrè ergo nõ prohibuit esse diuitem, sed esse diuitem iniustè & inexplebiliter. Possessio enim quæ cum iniquitate acceleratur, minor redditur. Sunt enim qui seminãtes multiplicant, & qui colligentes minus habẽt. De quibus scriptum est: Dispersit, dedit pauperipus, iustitia eius manet in seculum seculi. Qui enim seminat & plura colligit, is est qui per terrenam & temporalẽ communicationẽ ac distributionem, cœlestia acquirit & æterna. Est autem alius qui incassum nemini impertit, & thesauros in terra colligit, vbi ærugo & tinea destruunt. De quo scriptum est: Qui colligit mercedes, colligit in saccum perforatum. Huius agrum Dominus in Euanlio Dicit fuisse fertilem: Deinde cùm vellet fructus reponere, & esset maiora horrea & apothecas sibi ædificaturus, sibi dixisse per prosopopœiam, Habes bona multa reposita tibi in multos annos, ede, bibe, lætare: Stulte ergo, inquit, hac nocte animã tuam à te repetunt: quæ ergo parasti, cuius erunt? Humana ergo cõtinentia, ea inquam quæ est ex sententia Philosophorum Græcorum, profitetur pugnare cum cupiditate, & in factis ei non inseruire. Quæ est autem ex nostra sententia continentia, non concupiscere: non vt quis concupiscens se fortiter gerat, sed vt etiam à concupiscendo se contineat. Non potest autem ea aliter accipi continentia, nisi gratia Dei. Et ideo dixit: Petite, & dabitur vobis. Hanc gratiã Moses quoq; accepit, qui indigo corpore erat indutus, vt quadraginta diebus neq; esuriret neq; sitiret. Queadmodũ autem

Marginalia: Roma. 14. — Matth. 11. — Philip. 4. σύζυγον. — Rom. 14. — Luc. 6. — Matth. 25. — Prouer. 19. — Psal. 14. — Psalm. 48. — Matth. 19. — Psal. 111. — Agg. 1. — Luc. 12. — Matth. 7. — Luc. 11. — A — B — C

A tem melius est sanum esse, quàm ęgrotantem differere de sanitate: ita lucem esse, quã
loqui de luce: & quae est ex veritate continentia, ea quae docetur à Philosophis. Non
enim vbi est lux, illic tenebrae. Vbi autẽ sola insidet cupiditas, etiamsi quiescat ab ea
quae per corpus fit operatione, at memoria quidem certè cum eo quod non est prae-
sens cõgreditur. In summa aũt & generaliter nobis procedat oratio de matrimonio,
nutrimento, & alijs, vt nihil faciamus ex cupiditate, velimus aũt ea sola quae sunt ne
cessaria. Non sumus enim filij cupiditatis, sed voluptatis: &, eum qui vxorem duxit
pro liberorum procreatione, exercere oportet continentiã, vt ne suã quidem concu
piscat vxorem, quam debet diligere, honesta & moderata voluntate operam dans li
beris. Non enim carnis curam gerere ad concupiscentias didicimus: honestè aũt tan
quã in die Christo, & dominica lucida vitae institutione ac conuersatione ambulan-
tes, nõ in comessationib. & ebrietatibus, nõ in cubilib. & impudicitijs, nõ in litibus
& cõtentionibus. Verumenimuerò nõ oportet cõsiderare continentiã in vno solùm
genere, nempe in rebus venereis, sed etiam in quibuscunq; alijs quae luxuriosa con-
cupiscit anima, non contenta necessarijs, sed solicita de delitijs. Continentia est pe-
cuniã despicere, voluptatem, possessionem, spectaculum magno & excelso animo
contemnere, os cõtinere, ratione quae sunt mala vincere. Iam verò angeli quoq; qui-
dam cùm fuissent incontinentes, victi cupiditate, huc è cœlo descenderunt. Valenti
nus aũt in epistola ad Agathopodem: Cùm omnia, inquit, sustinuisset, erat continẽs,
diuinitatem operabatur Iesus: edebat & bibebat propriè, non reddens cibos: tanta
B ei inerat vis continentiae, vt etiã nutrimentum in eo non interierit, quoniã ipse non
habuit interitũ. Nos ergo propter dilectionẽ in Dominum, & propter ipsum hone-
stum, amplectimur continentiã, templũ spiritus sanctificantes. Honestum enim est,
propter regnum cœlorum seipsum castrare ab omni cupiditate, & emundare consci
entiam à mortuis operibus, ad seruiendum Deo viuenti. Qui autem propter odium
aduersus carnem susceptũ, à coniugali coniunctione, & eorũ qui cõueniunt ciborũ
participatione, liberari desiderant, indocti sunt & impij, & absq; ratione continen-
tes, sicut aliae gẽtes plurimę. Brachmanes quidẽ certè neq; animatũ comedunt, neq;
vinũ bibũt: sed aliqui quidẽ ex ijs, quotidie sicut nos cibum capiunt: nõnulli aũt ex
ijs tertio quoq; die, vt ait Alexander Polyhistor in lib. de rebus Indicis: mortẽ aũt cõ
temnunt, & viuere nihili faciunt: credunt enim esse regenerationem: ali qui aũt co-
lunt Herculẽ & Panẽ. Qui aũt ex Indis vocantur σεμνοί, hoc est, honesti ac venerandi,
nudi totã vitam transigunt: ij veritatẽ exercent, & futura praedicunt, & colunt quan
dam pyramidẽ, sub qua existimant alicuius Dei ossa reposita. Neq; verò Gymnoso-
phistae, nec qui dicuntur σεμνοί, id est, venerandi, vtuntur mulieribus, hoc enim prae-
ter naturã & iniquũ esse existimant: qua de causa seipsos castos cõseruant. Virgines
aũt sunt etiã mulieres quae dicuntur σεμναί, hoc est, venerandae. Videntur aũt obserua
re cœlestia, & per eorũ significationẽ quaedam futura praedicere. Quoniã aũt qui in-
troducunt indifferentiã, paucas quasdã scripturas detorquentes, titillanti suae volu-
ptati ea suffragari existimant: quinetiam illam quoq;, Peccatum enim vestrî nõ do-
C minabitur: nõ estis enim sub lege, sed sub gratia: & aliquas alias huiusmodi, quarũ Rom. 6.
propter haec non est rationi consentaneum vt faciam mentionem: nõ enim nauem
instruo piraticam: agè paucis eorum argumentũ perfringamus. Ipse enim egregius
Apostolus, praedictae dictioni subiungens, intentati criminis afferet solutionẽ. Quid
ergo peccabimus, quia non sumus sub lege, sed sub gratia? Absit. adeò diuinè & pro-
pheticè euestigiò dissoluit artẽ voluptatis sophisticã. Non intelligunt ergo, vt vide-
tur, quòd omnes nos oportet manifestari ante tribunal Christi, vt referat vnusquisq; 2. Cor. 5.
per corpus ea quae fecit, siue bonum, siue malum: vt quae per corpus fecit aliquis reci
piat. Quare si qua est in Christo noua creatura, ea nõ est amplius peccatis dedita. Ve ἁμαρτητική.
tera praeterierunt. Vitam antiquã exuimus: ecce enim noua facta sunt, castitas ex for 2. Cor. 6.
nicatione, & cõtinentia ex incõtinẽtia, iustitia ex iniustitia. Quae est enim participa
tio iustitiae & iniustitiae? aut quę luci cũ tenebris societas? quae est aũt cõuentio Chri 1. Cor. 7.
sto cũ Belial? quae pars est fideli cũ infideli? quae est aũt consensio tẽplo Dei cum ido
lis? Has ergo habentes promissiones, mundemus nos ipsos ab omni inquinamen-
to carnis & spiritus, perficientes sanctitatem in timore Dei. Qui autẽ Dei creaturae
resistunt per speciosam illam continentiam, illa quoq; dicunt, quae ad Salomen di-
cta sunt, quorum prius meminimus: habentur autem, vt existimo, in Euãgelio secun Euangelium
dum Ægyptios. Aiunt enim ipsum dixisse Seruatorem: Veni ad dissoluẽdum opera secundũ Ae-
fœminae: fœminae quidem, cupiditatis: opera autem generationem & interitum. gyptios.

Quid ergo dixerint, Soluta est hæc administratio? Non dixerint: manet enim mundus in eadẽ œconomia. Sed non falsum dixit Dominus. Reuera enim opera dissoluit cupiditatis, auaritiam, contentionem, gloriæ cupiditatem, mulierum insanum amorem, pædicatum, ingluuiem, luxum & profusionẽ, & quæ sunt his similia. Horum aũt ortus, est animæ interitus: siquidem delictis mortui efficimur. Ea verò fœmina est intemperantia. Ortum autem & interitũ, qui est in creatura, principaliter fieri necesse est, vsq; ad perfectam & omni ex parte absolutam distinctionem, & electionis restitutionem, per quam, quæ etiam sunt mundo permixtæ & confusæ substantiæ, proprietati suæ restituuntur. Vnde meritò cùm de consummatione verbũ significasset, ait Salome: Quousq; morientur homines? Hominem autem vocat scriptura dupliciter: & eum qui apparet, & animã: & eum rursus qui seruatur, & eum qui non. Mors autem animæ dicitur peccatum. Quare cautè & consideratè respondet Dominus: Quoadusq; pepererint mulieres, hoc est, quandiu operabuntur cupiditates. Et
Rom. 5. ideo quemadmodum per vnum hominem peccatum ingressum est in mundum, per
ἐφ᾽ ᾧ. peccatum quoq; mors ad omnes homines peruasit, quatenus omnes peccauerunt. Et regnauit mors ab Adam vsq; ad Mosen, inquit Apostolus: naturali autem diuinæ œconomiæ necessitate, mors sequitur generationem: & corporis & animæ coniunctionem consequitur eorum dissolutio. Si est autem propter doctrinam & agnitionem generatio, restitutionis autem est dissolutio. Quomodo autem existimatur mulier causa mortis, propterea quòd pariat: ita etiam dicetur dux vitæ propter eandem causam. Iam quæ prior inchoauit transgressionem vita est appellata, propter causam successionis: & eorum qui generantur, tam iustorum, quàm iniustorum, mater est, vnoquoq; nostrûm seipsum iustificante, vel contrà inobedientem seipsum constituente. Vnde non ego quidem arbitror Apostolum abhorrere vitam quę est in car-
Philip. 1. ne, cùm dicit: Sed in omni fiducia, vt semper, nunc quoq; Christus magnificabitur in corpore meo, siue per vitam, siue per mortem. Mihi enim viuere Christus, & mori lucrum. Si aũt viuere in carne est hoc quoq; mihi fructus operis, quid eligam nescio, & coarctor ex duobus, cupiens resolui, & esse cum Christo: multò enim melius: manere autem in carne, est magis necessarium propter vos. Per hæc enim, vt puto, apertè ostendit, exitus quidem corporis perfectionem, esse in Deum dilectionẽ: eius autem præsentia in carne, ex grato animo profectam tolerantiam, propter eos qui opus habent vt salui fiant. Quid verò, non etiã ea quæ deinceps sequuntur, ex ijs quæ dicta sunt ad Salomen subiungũt ij, qui quiduis potius quàm quæ est ex veritate Euangelicam regulam sunt secuti? Cùm ea enim dixisset, Rectè ergo feci quæ non peperi: vtpote quòd non vt oportet assumeretur generatio, excipit Dominus, dicens: Omni herba vescere, ea autem quæ habet amaritudinem ne vescaris. Per hæc enim significat, esse in nostra potestate, & non esse necessariam ex prohibitione præcepti, vel continẽtiam, vel etiam matrimonium: & quòd matrimonium creationi aliquid
συνεργάζεταί affert auxilij, præterea explicans. Nemo ergo peccatum existimet matrimonium
τικτίσα. quod est ex ratione seu per verbum, nisi existimat esse amaram filiorum educationẽ:
κατὰ λόγον. multis enim contrà, carere liberis videtur esse molestissimum. Neq; amara videatur
διὰ τὰς χρειώδεις ἀσχολίας. alicui liberorum procreatio, à diuinis abstrahens propter ea quę ad vsum necessaria geruntur negocia. Hic autem non facilè ferens vitam solitariam, desiderat matrimo-
ἀνάριστον. nium: quandoquidem id quod cordi est, cum temperantia est innoxium: & habet vnusquisque nostrûm potestatem eligendi an velit gignere filios. Considero autem quemadmodum aliqui quidem qui prætextu matrimonij difficultatum ab eo abstinuerunt, non conuenienter sanctæ cognitioni, ad inhumanitatem & odium homi-
μισανθρωπίαν num defluxerunt, & perit apud ipsos charitas. Aliqui autem qui legis concessioni acquiescentes sunt alligati, & titillati sensuum voluptate perfusi, fuerunt, vt ait Pro-
Matth. 18. pheta, assimilati iumentis. Quinam sunt autem illi duo & tres, qui congregantur in nomine Domini, in quorum medio est Dominus? an non virum & mulierem & filium tres dicit, quoniam mulier cum viro per Deum coniungitur? Sed si accinctus quis esse velit & expeditus, non volens procreare liberos, propter eam quæ est in procreandis liberis molestiam & occupationem, maneat, inquit Apostolus, cœlebs
ἄγαμος. vt ego. Velle enim dicere Dominum exponunt, cum pluribus quidem esse creatorẽ,
1. Cor. 7. effectorem Deum generationis: cum vna aũt, nempe electo, Seruatorem, qui est alterius scilicet Dei, qui bonus est, filius. Hoc aũt non ita habet: sed est quidem etiam cũ ijs qui honestè ac moderatè in matrimonio versati sunt, & liberos susceperunt, De-
λογικῶς. us per filium: est autem etiam cum eo qui rationi seu verbo conuenienter fuit con-

tinens

A tinès idem Deus similiter. Fuerint autem aliter quoq; tres quidem, ira, cupiditas, & ratio: caro autem & anima & spiritus alia ratione. Fortè autem & vocationem & electionem secundam, & tertium genus quod in primo honore collocatur, tacitè significat trias quæ prius dicta est: cū quibus est quę omnia considerat Dei potestas, absq; diuisione cadens in diuisionem. Qui ergo animæ quæ sunt secundum naturam ita vt oportet vtitur operationibus, desiderat quidem ea quæ sunt conuenientia, odio autem habet ea quæ lędunt, sicut iubent mandata. Benedices enim, inquit, benedicenti, & maledices maledicenti. Quando autem hæc transiliens, iram scilicet & cupiditatem, creaturam reuera amauerit, propter eum qui est Deus & effector omniū, is ex recta viuet cognitione, non laborioso continentiæ habitu acquisito per eam quæ est seruatori assimilationem, vnita cognitione, fide, dilectione: vt qui finis iudicio vnus sit, & verè spiritalis, quæ ex ira & cupiditate procedunt cogitationes omnino non admittens, qui ad Domini imaginem ab ipso artifice efficitur homo perfectus, dignus iam qui frater à Domino nominetur, is simul est amicus & filius. Sic ergo duo & tres in eodē congregantur, nempe in homine cognitione prædito. Fuerit autem multorū quoq; concordia ex tribus numerata, cum quibus est Dominus, vna Ecclesia, vnus homo, genus vnum. An non cum vno quidem Iudæo erat Dominus legem ferens. Iam autem prophetans, & Hieremiam mittens Babylonem, quinetiam eos qui erant ex gentibus vocans per prophetiam, congregauit duos populos. Tertius autem est vnus, qui ex duobus creatur in nouum hominem, quo inambulat & inhabitat in ipsa ecclesia. Et lex simul & Prophetæ, vnà cum Euangelio, in nomine Christi congregantur in vnam cognitionem. Qui ergo propter odium vxorem non ducunt, vel propter concupiscentiam carne indifferenter abutuntur, non sunt in numero illorum qui seruantur, cum quibus est Dominus. His sic ostensis, agè quæcunq; scripturæ aduersantur ijs Sophistis qui sunt ex hæresibus, iam adducamus, declarantes regulam continentiæ quæ rationi seu Verbo conuenienter obseruatur. Vnaquæq; autem hæresis scripturam habet quæ sibi conuenienter affertur. Qui autem intelligit, opportunè eligens, vtetur ad eos confutandos qui pręter pręcepta decreta constituunt. Atq; vt ab alto rem repetamus, lex quidem sicut prius diximus, illud, Non concupisces vxorem proximi tui, prius exclamauit ante propinquam & cohærentem Domini vocem, quæ dicit ex sua ipsius persona: Audiuistis legem præcipientem, Non mœchaberis. Ego autē dico, non concupisces. Quòd enim vellet lex viros vti moderatè vxoribus, & propter solam liberorum susceptionem, ex eo clarum est, quòd prohibet quidem eum qui non habet vxorem, statim cum captiua habere consuetudinem. Quòd si semel desiderauerit, ei cùm tonsa fuerit capillos, permittere vt lugeat triginta diebus. Si autem ne sic quidem emarcescat cupiditas, tunc liberis operam dare, cùm quæ dominatur impulsio, probata sit præfinito tempore consentanea rationi appetitio. Vnde nullum ex veteribus ex scriptura ostēderis, qui cum prægnante rem habuerit, sed postquam gestauit vterum, & postquam editum fœtum à lacte depulit, rursus à viris cognitas fuisse vxores. Iam hunc scopum & institutum inuenies seruantem Mosis patrem, cùm triennium post Aaronem editum intermisisset, genuisse Mosem. Et rursus Leuitica tribus seruans hanc naturæ legem à Deo traditam, alijs numero minor ingressa est in terrā promissam. Non enim facilè multiplicatur genus, cùm viri quidem seminant qui legitimum ineunt matrimonium, expectant aūt non solùm vteri gestationem, sed etiam à lacte depulsionē. Vnde meritò Moses quoq; Iudæos paulatim prouehens ad continentiā, cùm tribus diebus deinceps consequentibus à venerea voluptate abstinuissent, iussit audire verba Dei. Nos ergo Dei templa sumus, sicut dixit Propheta: Inhabitabo in eis, & inambulabo, & ero eorum Deus, & ipsi erunt meus populus: si ex præceptis vitam instituamus, siue vnusquisque nostrum, siue tota simul ecclesia. Quare egredimini è medio ipsorum, & separamini, dicit Dominus, & immūdum ne tangatis, & ego vos suscipiam, & ero vobis in patrem, & vos eritis mihi in filios & filias, dicit Dominus omnipotens. Non ab ijs qui vxores duxerunt, vt aiunt, sed à gentibus quæ adhuc viuebant in fornicatione, pręterea autem à prius quoq; dictis hæresibus, vt immundis & impijs, prophetice nos iubet separari. Vnde etiam Paulus quoq; verba dirigēs ad eos, qui erāt ijs qui dicti sunt similes: Has ergo promissiones habete, inquit, dilecti: mundemus corda nostra ab omni inquinamento carnis & spiritus, perficientes sanctitatem in timore Dei. Zelo enim vos zelo Dei: despondi enim vos vni viro virginem castam exhibere Christo. Ecclesia autē alij non iungitur matrimonio, sponsum

Marginalia: ἀμερῶς μεριστῶ (beside "diuisione cadens in diuisionem"); B (beside "nomine Christi congregantur"); Matth. 5. (beside "quam & cohærentem Domini vocem"); C (beside "& institutum inuenies"); γαλακτοχίαν (beside "Vnde meritò Moses"); Leuit. 16. (beside "verba Dei"); 2. Cor. 6. (beside "inambulabo"); Esa. 52. (beside "instituamus"); 2. Cor. 6. (beside "medio ipsorum"); 2. Cor. 7. (beside "eos, qui erāt"); 2. Cor. 11. (beside "ctitatem in timore Dei")

posſidens. Sed vnuſquiſq; noſtrũ habet, ſi velit, poteſtatem ducendi legitimam vxorem, in primis, inquam, nuptijs. Vereor aũt ne ſicut ſerpens ſeduxit Euam in aſtutia, corrumpantur ſenſus veſtri à ſimplicitate quæ eſt in Chriſto, piè admodũ & doctoris inſtar dixit Apoſtolus. Quocirca admirabilis quoq; Petrus, Chariſsimi, inquit, obſecro vos tanquam aduenas & peregrinos, abſtinete vos à carnalibus deſiderijs, quæ militant aduerſus animã, conuerſationẽ veſtram inter gentes habentes bonã: quoniã ſic eſt voluntas Dei, vt bene facientes obmuteſcere faciatis imprudentiũ hominũ * ignorantiam, quaſi liberi, & non quaſi velamen habentes malitiæ libertatẽ, ſed vt ſerui Dei. Similiter etiam ſcribit Paulus in epiſtola ad Romanos: Qui mortui ſumus peccato, quomodo adhuc viuemus in ipſo? Quoniam vetus homo noſter ſimul eſt crucifixus, vt deſtruatur corpus peccati, vſq; ad illud: Neq; exhibete mẽbra veſtra arma iniuſtitię peccato. Atque adeò cùm in hunc locũ deuenerim, videor mihi nõ eſſe innotatũ prætermiſſurus, quòd eundem Deũ per legem & Prophetas & Euangeliũ prædicet Apoſtolus. Illud enim, Non cõcupiſces, quod ſcriptũ eſt in Euãgelio, legi attribuit in Epiſtola ad Romanos, ſciens eſſe vnũ eum qui prædicauit per legem & Prophetas, & patrem, qui per ipſum eſt annunciatus. Dicit enim, Quid dicemus? Lex eſt ne peccatum? Abſit. Sed peccatum nõ cognoui niſi per legem. Cõcupiſcentiã enim nõ cognouiſſem, niſi lex diceret, Non concupiſces. etiamſi ij qui ſunt diuerſæ ſententiæ, repugnantes, exiſtiment Paulum verba ſua dirigentem aduerſus Creatorem, dixiſſe ea quæ deinceps ſequuntur: Noui enim quòd non habitat in me, hoc eſt, in carne mea, bonum. Sed legant ea quæ prius dicta ſunt, & ea quæ conſequuntur. Prius enim dixit, Sed inhabitans in me peccatum: propter quod conſentaneum erat dicere illud: Non habitat in carne mea bonum. Conſequenter ſubiunxit: Si aũt quod nolo, hoc ego facio, non vtiq; ego id operor, ſed quod inhabitat in me peccatum: quod repugnans, inquit, legi Dei & legi mentis meæ, captiuat me in lege peccati quæ eſt in mẽbris meis. Miſer ego homo quis me liberabit de corpore mortis huius? Et rurſus (nunquam enim quouis modo iuuãdo defatigatur) non veretur veluti concludere: Lex enim ſpiritus liberauit me à lege peccati & mortis: quoniam per filium Deus condemnauit peccatum in carne, vt iuſtificatio legis impleatur in nobis, qui nõ ſecundum carnem ambulamus, ſed ſecundũ ſpiritum. Præter hæc adhuc declarans ea quæ prius dicta ſunt, exclamat: Corpus quidẽ mortuũ propter peccatum: ſignificans id non eſſe templum, ſed animæ ſepulchrum. Quando enim ſanctificatum fuerit Deo, ſpiritus eius qui ſuſcitauit Ieſum à mortuis, habitat in nobis. Qui viuificabit etiam mortalia veſtra corpora, per eius ſpiritũ qui habitat in vobis. Rurſus itaq; voluptarios increpans, illa adijcit: Prudẽtia enim carnis, mors: quoniã qui ex carne viuunt, ea quę ſunt carnis cogitant: & prudentia carnis eſt cum Deo gerere inimicitias: legi enim Dei non ſubijcitur. Qui autem ſunt in carne, non vt quidam decernunt, Deo placere non poſſunt, ſed vt prius diximus. Deinde vt eos diſtinguat, dicit eccleſię: Vos autem non eſtis in carne, ſed in ſpiritu, ſiquidem ſpiritus Dei habitat in vobis. Si quis autem ſpiritum Chriſti non habet, is non eſt eius. Si autem Chriſtus in vobis, corpus quidem eſt mortuũ per peccatũ, ſpiritus autẽ viuus per iuſtitiam. Debitores itaq; ſumus fratres, nõ carni, vt ſecundum carnem viuamus. Si enim ſecũdum carnem viuitis, eſtis morituri: ſi verò ſpiritu facta carnis mortificaueritis, viuetis. Quicunq; enim ſpiritu Dei aguntur, ij ſunt filij Dei. Et aduerſus nobilitatem & aduerſus libertatem, quæ execrabiliter ab ijs qui ſunt diuerſæ ſententiæ introducitur, qui propter libidinem & intemperantiam gloriantur, ſubiungit dicens: Non enim accepiſtis ſpiritum ſeruitutis rurſus in timorem, ſed accepiſtis ſpiritum adoptionis filiorum, in quo clamamus abba pater: hoc eſt, ad hoc accepimus, vt cognoſcamus eum quem oramus, qui eſt verè pater, qui eorũ quæ ſunt ſolus eſt pater, qui ad ſalutem erudit & caſtigat vt pater, & timorem minatur. Quod aũt ex conſenſu ad tempus orationi vacat coniugium, doctrina eſt cõtinentiæ. Adiecit enim illud quidem, Ex conſenſu, ne quis diſſolueret matrimonium. Ad tempus autẽ, ne ex neceſsitate exercens continentiam is qui vxorem duxerit, aliquando labatur in peccatum, vt qui in id incidat vt ſuo quidem coniugio parcat, alienum autem cõcupiſcat. Qua ratione eum etiam qui ſe turpiter & indecorè gerere exiſtimat, quòd virginem alat, rectè eam dicit eſſe nuptum daturum. Propoſitum autem vniuſcuiuſque, tam eius qui ſeipſum caſtrauit, hoc eſt, qui caſtitatem delegit, & qui rurſus propter liberorum procreationem ſeipſum coniunxit matrimonio, debet perſeuerare, non cedens & acquieſcens ei quod eſt minus ac inferius. Si enim vitæ ſuæ aliquid incrementi

Margin notes: 1. Pet. 2. — ἀγνωσίαν habet Græcum Clementis. — Rom. 6. — Rom. 7. — ἐπιλέγων. — Rom. 8. — Deeſt aliquid. — 1. Cor. 7. — A — B — C

A menti poterit adijcere, ipse sibi in Deo maiorem acquiret dignitatem, vt qui purè simul & consideratè fuerit continens. Si aũt eam quam elegit regulam superauerit, in maiorẽ deinde ad spem gloriã recidet. Habet enim sicut castitas, ita etiam matrimonium propria munera & ministeria, quæ ad Dominũ pertinent, filiorum, inquàm, curã gerere & vxoris. Quod enim honestè causatur is qui est in matrimonio perfectus, est coniugij necessitudo, vt qui omnium curam ac prouidentiã in domo communi ostenderit. Iam episcopos, inquit, oportet constitui, qui ex domo propria toti quoq; ecclesiæ præesse sint meditati. Vnusquisq; ergo in quo vocatus est opere ministerium peragat, vt liber in Christo fiat. Et rursus de lege disserẽs, vtens allegoria: Nam quæ sub viro est mulier, viuente viro alligata est legi, & quæ sequuntur. Et rursus: Mulier est alligata, quandiu uiuit vir eius: sin autem mortuus fuerit, libera est vt nubat, modò in Domino. Beata est autem si sic permanserit, mea quidem sententia. Sed in priore quidem particula: Mortificati estis, inquit, legi, nõ matrimonio, vt efficiamini vos alteri, qui excitatus est ex mortuis, sponsa & ecclesia, quã castam esse oportet, & ab ijs quæ sunt intus cogitationibus, quæ sunt contrariæ veritati, & ab ijs qui tentant extrinsecus, hoc est, ab ijs qui sectantur hæreses, & persuadent vobis fornicari ab vno viro, nempe omnipotenti Deo: ne sicut serpens decepit Euam, quæ vita dicitur, nos quoq; inducti à callidis hæresum illecebris, transgrediamur mandata. Secunda autem particula statuit monogamiam. Non enim, vt quidam existimarunt, mulieris cum viro alligationẽ, carnis cum interitu connexionẽ, significari putandũ est. Impiorũ enim hominũ, qui matrimonij inuentionẽ diabolo apertè tribuunt, reprehendit, & in periculũ venit Legislator ne incessatur maledictis. Tatianum arbitror Syrum talia audere dogmata decernere. His verbis quidem certè scribit in libro de Perfectione secundum seruatorem: Consensum quidem coniungit orationi: cõmunio autem seu coniunctio, interitus soluit interpellationem. Admodũ certè circumspectè arcet per concessionem. Nam cùm rursus permisit simul conuenire propter Satanam & intemperantiã, pronunciauit eum qui est pariturus, seruiturum duobus Dominis: per consensum quidẽ, Deo: per dissensionẽ aũt, intemperantiæ & fornicationi & diabolo. Hæc aũt dicit, Apostolũ exponens. Sophisticè autẽ eludit veritatem, per verũ falsum cõfirmans: intemperantiam enim & fornicationẽ, diabolica vitia & affectiones nos quoq; confitemur. Moderati aũt matrimonij intercedit consensio, & ad precationem continenter deducens, & ad procreandos liberos cũ honestate concilians. Cognitio quidem certè à scriptura dictum est tempus liberorũ procreationis, cùm dixit: Cognouit aũt Adam Euam vxorem suã, & concepit, & peperit filium, & nominauit nomen eius Seth: suscitauit enim mihi Deus aliud semen pro Abel. Vides quem'nam maledictis incessant, qui honestã ac moderatã incessunt seminationem, & diabolo attribuunt generationẽ. Non enim Deũ absolutè dixit, qui articuli adiectione, nempe τὸν dicens, significauit eum qui est omnipotẽs. Quod ab Apostolo aũt subiungitur: Et rursus, simul conuenire propter Satanã, illud prius rescindit, ne vnquã ad alias declinent cupiditates. Non enim perfectè repellit
C naturæ appetitiones, qui à verecundia motus fit ad tempus consensus, per quẽ rursus inducit coniugationem matrimonij, nõ ad intemperantiã & fornicationẽ & opus diaboli, sed ne subiungetur intemperãtiæ, fornicationi & diabolo. Separat aũt veterẽ quoq; hominẽ & nouum Tatianus, sed nõ vt nos dicimus. Veterẽ quidem virum, legem: nouum aũt, Euangeliũ, ei assentimur, nos quoq; dicentes, sed nõ eo modo quo vult ille, dissoluens legẽ vt alterius Dei. Sed idẽ vir & Dominus vetera renouans, non amplius concedit polygamiam. Tunc enim id exigebat Deus, quando oportebat augeri & multiplicari. Monogamiam aũt introducit propter liberorũ procreationem, & domus curam gerendã, ad quam data est mulier adiutrix. & si cui Apostolus propter intemperantiã & vstionem, ex venia secundũ concedit matrimoniũ: nã hic quoq; nõ peccat quidẽ ex testamento: nõ est enim à lege prohibitus: non implet aũt summã illam vitæ perfectionem quæ agitur ex Euangelio. Gloriam aũt sibi acquirit cælestem, qui apud se manserit, eam quæ est morte dissoluta impollutam seruans coniunctionem, & grato ac lubente animo paret œconomiæ, per quã effectum est vt diuelli non possit à Domini ministerio. Sed nec eum qui ex coniugali surgit cubili, similiter vt olim, tingi nunc quoq; iubet diuina per Dominum prouidentia: non enim necessariò à liberorum abducit procreatione, qui credentes per vnum baptismum, ad consuetudinem omni ex parte perfectã abluit Dominus, qui etiam multa Mosis baptismata per vnũ comprehendit baptismum. Olim itaq;

1.Tim.3.
Rom.7.
ἀσυμφωνίαι.
λουτρὰ.

lex, per carnalem generationem, nostram prædicens regenerationem, propter generantem seminis facultatem adhibebat baptismum, non abhorrens hominis generationem. Quod enim apparet homo generatus, hoc potest seminis deiectio. Nō sunt ergo multi coitus genitales, sed matricis susceptio profitetur generationem, in naturæ officina semine formato in fœtum. Quomodo autem vetus quidem est solum matrimoniū & legis inuentū, alienum aūt est quod est ex Domino matrimoniū, cùm idem Deus seruetur à nobis? Non enim quod Deus coniunxit, homo iurè dissoluerit. Multò aūt magis quæ iussit Pater, seruabit quoq; filius. Si autē idem simul est & legislator & Euangelista, nunquam ipse secum pugnat. Viuit enim lex cùm sit spiritalis, & intelligatur ex cognitione. Nos autem mortui sumus legi per corpus Christi, vt gigneremur alteri qui resurrexit ex mortuis, qui prædictus fuit à lege, vt Deo fructificaremus. Quare lex quidem est sancta, & mandatum sanctum & iustum & bonum. Mortui ergo sumus legi, hoc est, peccato quod à lege significatur: quod ostendit, non autem generat lex, per iussionem eorum quæ sunt facienda, & prohibitionem eorū quæ non facienda: reprehendens subiectum peccatum vt appareat peccatum. Si autem peccatum est matrimonium quod est ex lege, nescio quomodo quis dicet se Deum nosse, dicens Dei iussum esse peccatum. Quòd si lex sancta est, sanctum est matrimonium. Sacramentum ergo hoc ad Christum & ecclesiam ducit Apostolus. Quemadmodum quod ex carne generatur, caro est: ita quod ex spiritu, spiritus, non solùm in pariendo, sed etiam in discendo. Iam sancti sunt filij, Deo gratæ oblectationes verborum Dominicorum, quæ desponderunt animam. Sunt ergo separata fornicatio & matrimonium, quoniam à Deo longè abest diabolus. Et vos ergo mortui estis legi per corpus Christi, vt vos gigneremini alteri, qui surrexit à mortuis. Simul autem proximè exauditur, si fuerimus obedientes: quandoquidem etiam ex veritate legis, eidem Domino obedimus qui præcipit eminus. Nunquid autem de eiusmodi hominibus meritò apertè dicit spiritus? In posterioribus temporibus deficient quidam à fide, attendentes spiritibus erroris, & doctrinis dæmoniorum, in hypocrisi falsiloquorum, cauteriatam habentium conscientiam, & prohibētium nubere, abstinere à cibis quos Deus creauit ad participationem cū gratiarum actione, fidelibus, & qui agnouerunt veritatem, quòd omnis creatura Dei bona est, & nihil est reijciendum quod sumitur cum gratiarum actione. Sanctificatur enim per verbum Dei & orationem. Necessariò ergo non est prohibendum iungi matrimonio, neq; carnibus vesci, aut vinum bibere. Scriptum est enim: Bonum est carnē non comedere, nec vinum bibere, si comedat per offendiculum. Et: Bonum est manere sicut ego: sed & qui vtitur, cum gratiarum actione, & qui rursus non vtitur, ipse quoq; cum gratiarum actione, & cum moderata ac temperanti viuat perceptione, rationi conuenienter. Et vt in summa dicam, omnes Apostoli epistolæ, quæ moderationem docent & continentiam, cùm & de matrimonio, & de liberorum procreatione, & de domus administratione innumerabilia præcepta contineant, nusquam honestum moderatumq; matrimonium prohibuerunt aut abrogarunt, sed legis cū Euangelio seruantes conuenientiam, vtrunq; admittunt: & eum, qui Deo agendo gratias, moderatè vtitur matrimonio: & eum qui, vt vult Dominus, viuit in castitate, quemadmodum vocatus est vnusquisq; inoffense & perfectè eligens. Et erat terra Iacob laudata supra omnem terram, inquit Propheta, ipse vas spiritus gloria afficiens. Insectatur autem aliquis generationem, in eam dicēs interitum cadere eamque perire: & vim affert ac detorquet aliquis, dicens de filiorum procreatione dixisse seruatorem: Non oportere in terra thesauros recondere, vbi tinea & ærugo demolitur: nec erubescit his addere ea quæ dicit Propheta: Omnes vos sicut vestimentum veterascetis, & tinea vos exedet. Sed neq; nos contradicimus scripturæ, in nostra corpora cadere interitum, eaq; esse fluxa. Fortasse autem ijs cum quibus disseruit, vtpote peccatoribus, prædicit interitum. Seruator autem non dixit de liberorum procreatione, sed ad impertiēdum ac cōmunicandū eos adhortans, qui solùm opibus abundare, egentibus autem nolunt opem ferre. Quamobrem dicit: Operamini non cibum qui perit, sed eum qui manet in vitam æternam. Similiter autem afferunt etiam illud dictum de resurrectione mortuorum: Filij illius seculi nec nubunt nec nubuntur. Sed hanc interrogationem & eos qui interrogant, si quis ruminauerit, inueniet Dominum nō reprobare matrimonium, sed remedium afferre expectationi carnalis cupiditatis in resurrectione. Illud autem, Filij huius seculi non dixit ad distinctionem alicuius alius seculi, sed perinde ac si diceret: Qui in hoc nati sunt

[Margin notes: Rom.7. γεννικῶς. — A — τῷ ἐκ διαρπύσεως (?) — B — 1.Tim.4. πλάνοις, planis deceptoribus. — Rom.14. — 1.Cor.7. — C — Marc.6. — Luc.12. — Ioan.6. — Matth.22. — Luc.20.]

A ſunt ſeculo, cùm propter generationem ſint filij, & gignunt & gignuntur: quoniam
non abſque generatione hanc quis vitam prætergredietur. Sed hęc generatio ſimi-
lem ſuſcipiens interitum, non amplius expectat eum qui ab hac vita eſt ſeparatus.
Vnus eſt ergo pater noſter qui eſt in cælis. Sed is ipſe quoque pater eſt omnium per
creationem. Ne vocaueritis ergo, inquit, vobis patrem ſuper terram. Quaſi diceret: *Matth.23.*
Ne exiſtimetis eum qui carnali vos ſeuit ſatu, authorem & cauſam veſtræ eſſentiæ,
ſed adiuuantem cauſam generationis, vel miniſtrum potius. Sic ergo nos rurſus cō-
uerſos vult effici vt pueros, eum qui verè pater eſt agnoſcentes, vt qui ſimus regene-
rati per aquā, cùm hæc ſit alia ſatio in creatione. At, inquit, qui eſt cœlebs curat quæ *1. Cor.7.*
ſunt Domini: qui autem duxit vxorem, quomodo placebit vxori. Quid verò, an nō
licet etiam eis qui ex Deo placent vxori, Deo gratias agere? An non permittitur e-
tiam ei qui vxorem duxit, vnà cum coniugio, etiam eſſe ſolicitum de ijs quæ ſunt
Domini? Sed quemadmodum quæ non nupſit ſolicita eſt de ijs quæ ſunt Domini,
vt ſit ſancta corpore & ſpiritu: ita etiam quæ nupſit, & de ijs quæ ſunt mariti,
& de ijs quæ ſunt Domini, & in Domino ſolicita, vt ſit ſancta & corpore & ſpiri-
tu. Ambæ enim ſunt ſanctæ in Domino: hæc quidem vt vxor, illa verò vt vir-
go. Ad eos autem pudore afficiendos & reprimendos qui ſunt procliues ad ſe-
cundas nuptias, aptè Apoſtolus alto quodam tono eloquitur. Iam, inquit, o- *1. Cor.6.*
mne peccatum eſt extra corpus: qui autem fornicatur, in proprium corpus pec-
cat. Si quis autem matrimonium audet dicere fornicationem, rurſus legem & Do-
B minum inſectans, maledictis impetit. Quemadmodū enim auaritia & plura haben-
di cupiditas dicitur fornicatio, vt quę aduerſetur ſufficientię: & vt idololatria eſt ex
vno in multos Dei attributio: ita fornicatio eſt ab vno matrimonio ad plura prola-
pſio. Tribus enim modis, vt diximus, fornicatio & adulterium ſumitur apud Apo
ſtolum. De his dicit Propheta: Peccatis veſtris venundati eſtis. Et rurſus: Pollutus es
in terra aliena: coniunctionem ſceleratam exiſtimans, quæ cum alieno corpore fa- *1. Tim. 5.*
cta eſt, & non cum eo quod datur in coniugio ad liberorum procreationem. Vnde
etiam Apoſtolus: Volo, inquit, iuniores nubere, filios procreare, domui præeſſe, nul *1. Tim.3.*
lam dare occaſionem aduerſario maledicti gratia. Iam enim quædam diuerterunt *1. Tim.2.*
poſt Satanam. Iam verò vnius quoque vxoris virum vtique admittit, ſeu ſit presby- *Matth.12.*
ter, ſeu diaconus, ſeu laicus, vtens matrimonio citra reprehenſionem. Seruabitur au
tem per filiorum procreationem. Et rurſus Seruator dicens Iudæos generatio-
nem prauam & adulteram, docet eos legem non cognouiſſe, vt lex vult: ſed ſe-
niorum traditionem, & hominum præcepta ſequentes, adulterare legem non vt
quæ data ſit vir & dominus eorum virginitatis. Fortaſſe autem eos quoque no-
uit alienis mancipatos cupiditatibus propter quas aſsiduè quoque ſeruientes
peccatis, vendebantur alienigenis. Nam apud Iudæos non erant admiſſæ com- *Luc.14.*
munes mulieres: quinetiam prohibitum erat adulterium. Qui autem dicit, V-
xorem duxi, non poſſum venire ad diuinam cœnam, eſt quidem exemplum ad
eos arguendos, qui propter voluptates abſtinent à diuino mandato: nam hac ra-
C tione nec qui iuſti fuere ante aduentum, nec qui poſt aduentum vxores duxe-
runt, ſeruabuntur, etiam ſi ſint Apoſtoli. Quòd ſi illud attulerint, quod Prophe-
ta quoque dicit: Inueteraui inter omnes inimicos meos, inimicos peccata au-
diant. Vnum quoddam autem eſt peccatum, non matrimoniū, ſed fornicatio. Non *τῆς δοκήσεως,*
ſic quoque dicant peccatum generationem, & creatorem generationis. Talibus *hoc eſt, ſectæ*
argumentis vtitur quoque Iulius Caſsianus, qui fuit princeps viſionis ſeu phan- *Docitarum,*
taſiæ. In opere certè de Continentia, vel de Caſtitate, his verbis dicit: Nec di- *qui dicebant*
cat aliquis quòd quoniam tales habemus partes, vt ſic ſit quidem figurata fœ- *Dominū cor*
mina, ſic verò maſculus: illa quidem ad ſuſcipiendum, hic verò ad ſeminandum, *puſſumpſiſſe*
conceſſam eſſe à Deo conſuetudinem. Si enim à Deo, ad quem tendimus, eſſet hæc *phantaſticū.*
conſtitutio, non beatos dixiſſet eſſe eunuchos, neque Propheta dixiſſet eos non eſ-
ſe arborem infrugiferam: transferens ab arbore ad hominem qui ſua ſponte & ex
inſtituto ſe caſtrat tali cogitatione. Et pro impia opinione adhuc decertans, ſub-
iungit: Quomodo autem non iurè quis reprehenderit Seruatorem, ſi nos transfor-
mauit, & ab errore liberauit, & à coniunctione partium & additamentorum & pu-
dendorum? in hoc eadem decernens cum Tatiano: hic autem prodijt ex ſchola Va-
lentini. Propterea dicit Caſsianus: Cùm interogaret Salome, quādo cognoſcentur
ea de quibus interrogabat, ait Dominus: Quando pudoris indumentum conculca-

ueritis,& quando duo facta fuerint vnum, & masculum cum fœmina, nec mascu- A
lum nec fœmininum. Primùm quidem in nobis traditis quatuor Euangelijs, non habemus hoc dictum, sed in eo quod est secundum Ægyptios. Deinde mihi videtur ignorare, iram quidem masculam appetitionem, fœminam verò significare cupiditatem: quę cùm operata fuerint, pœnitentia & pudor consequitur. Cùm quis ergo neque iræ neque cupiditati obsequens, quæ quidem & ex consuetudine & ex mala aucta educatione, obumbrant & contegunt rationem, sed quæ ex ijs proficiscitur exuens caliginem, & pudore affectus ex pœnitentia spiritum & animam vnierit in obedientia rationis: tunc, vt ait Paulus, non inest in nobis nec masculus nec fœmina. Recedens enim anima ab ea figura qua discernitur masculus & fœmina, traducitur ad vnionem, cùm neutrũ sit. Existimat autem hic vir præclarus plus quàm par sit Platonicè, animam quæ est ab initio diuina, cupiditate effœminatam, huc venire ad generationem & interitum. Iam verò vel inuitum cogit Paulum dicere, generatio-
2. Cor.11. nem ex errore cõstare, cùm dicit: Vereor autem ne sicut serpens Euam decepit, corrupti sint sensus vestri à simplicitate quæ est in Christo. Sed certum est Dominum quoque venisse ad ea quæ aberrauerant. Aberrauerant autem non ab alto repetita origine, in ea quæ hîc est generatione: est enim generatio creatura omnipotentis, qui nunquam ex melioribus ad deteriora deduxerit animam: sed ad eos qui sensibus seu cogitationibus aberrauerant, ad nos inquam venit Seruator: quæ quidem ex nostra in præceptis inobedientia corrupta sunt, dum nimis auidè voluptatem persequeremur, cùm vtique protoplastus noster tempus pręuenisset, & non in tem-
pore matrimonij gratiam appetijsset, & aberrasset: quoniam quicunque aspicit mu- B
lierem, ad concupiscendum eam, iam mœchatus est in corde suo, vt qui voluntatis tempus non expectauerit. Is ipse ergo erat Dominus, qui tunc quoque damnabat
Ephes.4. cupiditatem quæ præuenit matrimonium. Cùm ergo dixit Apostolus, Induite nouum hominem qui secundum Deum creatur, nobis dicit, qui ab omnipotentis voluntate effecti sumus, sicut sumus effecti. Veterem autem dixit, non respiciens ad generationem & regenerationem, sed ad vitam quæ est in inobedientia, & obedientia. Pelliceas autem tunicas existimat Cassianus esse corpora: de quibus postea & eum, & qui idem cum eo sentiunt aberrasse ostendemus, cùm de ortu hominis, ijs consequenter quæ prius dicenda sunt, aggredimur expositionem. Quoniam, inquit, qui à terrenis reguntur & generant & generantur: nostra autem habitatio est in cælo, ex quo etiam Saluatorem expectamus. Rectè ergo nos hæc quoque dicta esse scimus, quoniam vt hospites & aduenæ peregrinantes debemus vitam instituere: qui vxorem habent, vt non habentes: qui possident, vt non possidentes. Qui liberos procreant, vt mortales gignentes, vt relicturi possessiones, vt etiam sine vxore victuri, si opus sit: non cum affectione possessione vtentes, sed cùm gratiarum actione, & magna quædam ac præclara ani-
1.Cor. 7. mo agitantes. Et rursus cùm dicit: Bonum est homini vxorem non tangere, sed propter fornicationes vnusquisq; suam vxorem habeat: id veluti exponẽs rursus dicit,
Ne vos tentet Satanas. Non enim ijs qui continenter vtuntur matrimonio propter C
solam liberorum procreationem, dicit, Propter intemperantiam: sed ijs qui etiam finem liberorum procreationis cupiunt transilire: ne cùm nimium annuerit noster aduersarius, excitet appetitionem ad alienas voluptates. Fortasse autem quoniam ijs qui iustè viuunt resistit propter æmulationem, & aduersus eos contendit, volens eos ad suos ordines traducere, per laboriosam continentiam eis vult præbere occasionem. Meritò ergo dicit, Melius est matrimonio iungi quàm vri, vt vir reddat debitum vxori, & vxor viro, & ne frustrentur inuicem hoc diuino ad generationem dato auxilio. Qui autem, inquiunt, non oderit
Luc. 14. patrem, vel matrem, vel vxorem, vel filios, non potest meus esse discipulus. Non
Exod. 20. iubet odisse genus: Honora enim, inquit, patrem & matrem, vt tibi bene sit: sed ne abducaris, inquit, ab ea ratione alienis appetitionibus: sed neque cum ciuilibus moribus coniungaris. Domus enim constat ex genere, ciuitates autem
1.Cor.7. ex domibus, quemadmodum Paulus quoque eos qui occupantur in matrimonio, mundo dixit placere. Rursus dicit Dominus: Qui vxorem duxit, ne expellat: & qui non duxit, ne ducat. Qui ex proposito castitatis, professus est vxorem non ducere, maneat cœlebs. Vtrisq; ergo idem Dominus per prophetam E-
Esa. 56. saiam cõuenientes dat promissiones, sic dicens: Ne dicat Eunuchus, sum lignum aridum. Hęc autem dicit Dominus eunuchis: Si custodieritis sabbata mea, & feceritis

A ceritis quæcunque præcipio, dabo vobis locum meliorem filijs & filiabus. Non sola enim iustificat castitas, sed nec sabbatum eunuchi, nisi fecerit mandata. Infert autem ijs qui vxorem duxerunt, & dicit: Electi mei non laborabunt in vanum, neque procreabunt filios in execrationem, quia semen est benedictum à Domino. Ei auté qui verbo seu rationi conuenienter filios procreauit & educauit & erudiuit in Domino, sicut etiam ei qui genuit per veram catechesim & institutionem, merces quædam est proposita, sicut etiam electo semini. Alij autem execrationem accipiunt liberorum procreationem, & non intelligunt aduersus illos ipsos dicere scripturam. Qui enim sunt reuera electi Domini, non dogmata decernunt, nec filios progignunt qui sunt ad execrationem, vt hæreses. Eunuchus ergo non qui per vim excisas habet partes, sed nec qui cœlebs est, dictus est, sed qui non gignit. Veritatis lignum hic prius erat aridum: si autem verbo obedierit, & sabbata custodierit per abstinentiam à peccatis, & fecerit mandata, erit honorabilior ijs qui absque recta vitę institutione solo verbo erudiũtur. Filioli, modicum adhuc sum vobiscum, inquit magister. *Ioan. 13.* Quare Paulus quoque scribens ad Galatas, dicit: Filioli mei, quos iterum parturio, donec formetur in vobis Christus. Si enim decies mille pędagogos, inquit, habeatis in Christo, sed non multos patres. *Galat. 4.* In Christo enim per Euangelium ego vos genui. Propterea non ingredietur eunuchus in ecclesiam Dei, qui est sterilis, & non fert fructum, nec vitæ institutione, nec sermone. Sed qui se quidem castrarunt ab omni peccato propter regnum cęlorum, ij sunt beati qui à mundo ieiunant. *Hierem. 20.*

B Execranda autem dies in qua natus sum, & non sit optanda, inquit Hieremias: non absolutè execrandam dicens generationem, sed populi peccata ægreferens & inobedientiam. Subiungit itaque: Cur enim natus sum vt viderem labores & dolores, & in perpetuo probro fuerunt dies mei? Iam omnes qui prædicabant veritatem, ꝓpter eorum qui audiebant inobedientiam, quęrebantur ad pœnam, & veniebant in periculum. Cur enim non fuit vterus matris meæ sepulchrum, ne viderem afflictionem Iacob, & laborem generis Israël? ait Esdras propheta. Nullus est à sorde mundus, ait Iob, nec si sit quidem vna dies vitæ eius. *Iob 25.* Dicat ergo nobis, vbi fornicatus est infans natus? vel quomodo sub Adę cecidit execrationem, qui nihil est operatus? Restat ergo eis, vt videtur, consequenter, vt dicat malam esse generationem, nó solum eam quæ est corporis, sed etiam quæ est animę, propter quã etiam corpus. Ea quando dixit Dauid, in peccatis conceptus sum, & in iniquitatibus concepit me mater mea: *Psalm. 50.* dicit Propheticè quidem matrem Euam, sed Eua fuit mater viuentium: & si in peccatis fuit conceptus, sed non ipse in peccato, neque verò ipse peccatum. Si auté quicunq; etiam à peccato ad fidem conuertitur, à peccatoris cõsuetudine tanquam à matre conuertitur ad vitam, feret mihi testimonium vnus ex duodecim prophetis, qui dixit: Videam primogenita pro impietate fructum ventris mei, pro peccatis animæ meę. Non accuset eum qui dixit, Crescite & multiplicamini: sed primas impulsiones & motus ex generatione, per quos Deum non cognoscimus, dicit impietates. Si quis autem ea ratione dicit malam generationem, illa etiam ratione dicat

C bonam, quatenus in ipso veritatem cognoscimus. Abluamini iustè, & ne peccetis. Ignorationem .n. Dei quidam habent, videlicet qui peccãt. Quoniã nobis est colluctatio non aduersus carnem & sanguinem, sed aduersus spiritalia. Possunt auté tentare principes tenebrarum huius mundi, & ideo datur venia. Et ideo Paulus quoq;: Corpus meum, inquit, castigo, & in seruitutem redigo. *1. Cor. 9.* Quoniam qui certat, in omnibus abstinet, hoc est, est ad omnia continens, non ab omnibus abstinens, sed continenter vtens ijs quę vtenda iudicauit: illi quidem vt corruptibilem coronam accipiant: nos autem vt incorruptibilem, in lucta vincentes, non autem sine puluere coronam accipientes. Iam nonnulli quoque præferunt viduam virgini incontinenti, vt quæ, quam experta est voluptatem, magno & excelso animo contempserit. Sin autem malum est generatio, in malo dicant fuisse Dominum qui fuit particeps generationis, in malo virginem quæ genuit. Hei mihi quot & quanta mala: Dei voluntatem maledictis incessunt, & mysterium creationis, dum inuehuntur in generationem. Et ideo visio seu phantasia Cassiano, ideo etiam Marcioni & Valentino quoque corpus animale: quoniam homo, inquiunt, assimilatus est iumentis, veniens ad coitum. Sed quando aliena inire cubilia, vera insania percitus, voluerit, tunc reuera qui talis est efferatur. Et qui in fœminas furentes facti sunt, vnusquisque hinniebat ad vxorem proximi sui. Et si cùm ex brutis animantibus insidiosi consilij rationem

*οἴμοι τῶν κακῶν. δόκησις. δοκῖται autem dicti sunt hæretici qui dicebant Christum habuisse corpus phantasticũ.*

cepisset serpens, & persuasisset, dicat Adã assensum esse cum Eua cõiunctioni, nempe quòd hac natura aliàs vsi non essent Protoplasti, vt nonnulli existimant: rursus maledictis incesitur creatio, vt quæ rationis expertium animantium natura homines fecerit imbecilliores, quas consecuti sunt qui à Deo primi formati fuere. Sin autem natura quidem eos sicut bruta deduxit ad filiorum procreationem: moti autem sunt citius quàm oportuit, fraude inducti cùm adhuc essent iuuenes, iustum quidẽ est Dei iudicium in eos qui non expectarunt voluntatem: sancta est autem generatio, per quam mundus constitit, per quam essentiæ, per quam naturæ, per quam Angeli, per quam potestates, per quam animæ, per quam præcepta, per quam lex, per quam Euangelium, per quam Dei cognitio. Et omnis caro fœnum, & omnis gloria A
*Esa. 40.* eius quasi flos fœni: & fœnum quidem exiccatur, flos autem decidit, sed verbum Domini manet, quod vnxit animam & vnijt spiritui. Quomodo autem quæ est in Ecclesia apud nos œconomia accepisset finem absque corpore, cùm etiam ipse qui est caput ecclesiæ, in carne quidem informis & specie carens transijt, docens nos respicere ad id quod est diuinæ causæ informe & incorporeum? Arbor enim vitæ, inquit Propheta, est in bono desiderio, docens bona & munda desideria quæ sunt in Domino viuenti. Iam verò volunt viri cum vxore in matrimonio consuetudinem, quæ dicta est cognitio, esse peccatum: eam enim significari ex esu ligni boni & mali, per significationem huius vocabuli Cognouit, significantem mandati transgresionem. Si autem hoc ita est, veritatis quoque cognitio, est esus ligni vitæ. Potest ergo honestum ac moderatum matrimonium illius quoq; ligni esse particeps. B
Nobis autem prius dictum est, quòd licet bene & malè vti matrimonio. Et hoc est lignum cognitionis, si non transgrediamur leges matrimonij. Quid verò, num Seruator noster, sicut animam, ita etiam corpus curauit ab affectionibus? Neque verò si esset caro inimica animæ, inimicam aduersus ipsam munijsset, per sanitatem
*Græcũ habet ἐπισκιάζων, sed puto legendum, ἐπισκευάζων instruens.* * instruens. Hoc autem dico, fratres, quòd caro & sanguis regnum Dei non possunt posidere, neque corruptio posidet incorruptionẽ. Peccatum enim cùm sit corruptio, non potest habere societatẽ cũ incorruptione, quę est iustitia. Adeò stulti, inqt, estis, cùm spiritu cœperitis, nunc carne cõsummamini. Iustitiã ergo & salutaris harmoniam, quæ est ùeneranda firmaque ac stabilis, alij quidem, vt ostendimus, nimium intenderunt, blasphemè ac maledicè cum quauis impietate suscipientes continentiam, cùm liceret ex sana regula castitatem eligere cum pietate, gratias quidem agendo propter datam gratiam, non habendo autem odio creaturam, neque eos aspernando qui iuncti sunt matrimonio. Est enim creatus mundus, creata est etiam castitas. Ambo autem agant gratias in ijs, in quibus sunt collocati, si modò ea quoque norunt in quibus sunt collocati. Alij autem effręnati se petulanter & insolenter gesserunt, reuera effecti equi in fœminas insanientes, & ad proximorum suorum vxores hinnientes, vt qui & ipsi contineri non posint, & proximis suis persuadeant vt dent operam voluptati, infeliciter illas audientes scripturas: Quæ tibi obtigit partem pone nobiscum, crumenam autem vnam posideamus
*Prouerb. 1.* communem, & vnum fiat nobis marsupium. Propter eos idem Propheta dicit nobis consulens: Ne ambulaueris in via cum ipsis, declina pedẽ tuum à semitis eorum. C
Non enim iniustè tenduntur retia pennatis. Ipsi enim cùm sint sanguinum participes, thesauros malorum sibi recondunt, hoc est, sibi vendicantes immunditiam, & proximos similia docentes, bellatores, percussores caudis suis, vt ait Propheta, quas quidem Gręci κίρκας appellant. Fuerint autem ij quos significat prophetia ad malum procliues, intemperantes, qui sunt caudis suis pugnaces, tenebrarum iræq; filij, manus sibi afferentes, & homicidę propinquorum: Expurgate ergo vetus fermentum,
*1. Cor. 5.* vt sitis noua consperio, nobis exclamat Apostolus. Et rursus propter quosdam eiusmodi homines indignans, præcipit ne conuersari quidem, si quis frater nominetur vel fornicator, vel auarus, vel idololatra, vel maledicus, vel ebriosus, vel raptor, cum
*Galat. 2.* eo q̃ est talis ne vnà quidẽ comedere. Ego enim per legẽ legi mortuus sum, inquit, vt Deo viuam, cum Christo sum crucifixus: viuo aũt non amplius ego, vt viuebã per cupiditates, viuit autem in me Christus castè & beatè per obedientiam præceptorum. Quare tunc quidem viuebam carnaliter: quod autẽ nunc viuo in carne, in fide
*Matth. 10.* viuo filij Dei. In viam gentiũ ne abieritis, & ne ingrediamini in vrbem Samaritanorum, à cõtraria vitę institutione nos dehortans dicit Dominus: quoniã iniquorũ virorum mala est conuersatio. Et hę sunt vię omnium qui ea quæ sunt iniqua efficiũt.

Væ

A Vę homini illi, inquit Dominus, bonum esset ei si non natus esset, quàm vt vnum ex electis meis scandalizaret. Melius esset vt ei mola imponeretur, & in mari demergeretur, quàm vt vnum ex meis peruerteret. Nomen enim Dei blasphematur propter ipsos. Vnde præclarè Apostolus: Scripsi, inquit, vobis in Epistola, non conuersari cum fornicatoribus, vsque ad illud, corpus autem non fornicationi, sed Domino, & Dominus corpori. Et quòd matrimonium non dicat fornicationem, subiungit: An nescitis quòd qui adhæret meretrici, vnum ést corpus? aut meretricem quis dicet virginem priusquam nubat? Et ne fraudetis, inquit, vos inuicem, nisi ex consensu ad tempus. Per dictionem, Fraudetis, ostẽdens matrimonij debitum esse liberorum procreationem: quod quidem in ijs quę pręcedunt ostendit, dicens: Mulieri vir debitum reddat: similiter autem mulier quoque viro: post quam exolutionem, in domo custodienda, & in ea quæ est in Christo fide, adiutrix. Et si quid apertius dicens ijs qui sunt iuncti matrimonio, pręcipio, inquit, non ego, sed Dominus, vxorem à viro non separari. Sin autem separata fuerit, maneat innupta, vel viro reconcilietur. Et virum vxorem non dimittere. Reliquis autem dico ego, non Dominus. Si quis autem frater, vsque ad illud, nunc autem sancta est. Quid autem ad hęc dicunt qui in legem inuehuntur, & in matrimonium, vt quod sit solum à lege concessum, non autem etiam in nouo Testamento? Quid ad has leges latas possunt dicere, qui sationem abhorrent & generationem, cùm Episcopum quoque qui domui rectè præsit, Ecclesiæ ducem constituat? Domum autem dominicam vnius mulieris constituit coniugium. Omnia ergo dicit esse munda mundis. Pollutis autem & infidelibus nihil est mundum, sed polluta est eorum & mens & conscientia. De ea autem voluptate quæ est præter regulam: Ne erretis, inquit, nec fornicatores, nec idololatrę, nec adulteri, nec molles, nec masculorum concubitores, neque fures, neque ebriosi, neque maledici, nec raptores, regnum Dei possidebunt. Et nos quidem abluti sumus qui in his eramus. Qui autem in hanc tingunt intemperantiam, ex temperantia in fornicationem baptizant, voluptatibus & vitijs esse indulgendum decernentes, incontinentes ex moderatis esse docentes, & spem suam membrorum suorum impudentiæ attribuentes, vt à regno Dei abdicentur, non autem vt inscribantur qui ad eos ventitant efficientes, falsò nominatę cognitionis appellatione, eam quæ ad exteriores ducit tenebras viam ingredientes. Quod reliquum est, fratres, quęcunque vera, quęcunque honesta, quęcunque iusta, quęcunque casta, quęcunque bonę famę: si qua virtus, & si qua laus, ea considerate quę & didicistis, quę etiam accepistis & audijstis & vidistis in me, ea facite, & Deus pacis erit vobiscum. Et Petrus similia dicit in Epistola: Vt fides vestra & spes sit in Deum, cùm animas vestras castas effeceritis in obedientia veritatis: quasi filij obedientię, non configurati prioribus desiderijs quæ fuerunt in ignorantia, sed secundum eum qui vocauit vos sanctum, & ipsi sancti sitis in omni conuersatione. Quoniam scriptum est, sancti eritis, quoniam ego sanctus sum. Sedenim quæ aduersus eos qui cognitionem falso nomine simulant, necessariò suscepta est à nobis disputatio, nos longius quàm par sit abduxit, & orationem effecit prolixiorem. Vnde tertius quoq; liber Stromateus, eorum quæ sunt in vera philosophia cognitionis monimentorum, hunc finem habeat.

Matth. 18. Marc. 9. 1. Cor. 6. Tit. 1. 1. Cor. 6. Philip. 4. 1. Pet. 1.

B C

FINIS LIBRI TERtij Stromatum.

# CLEMENTIS ALE- A
# XANDRINI STROMATVM
## LIBER QVARTVS.

ONSEQVENS aũt deinceps esse existimo, vt de martyrio tractemus, & quisnam sit perfectus. Quibus comprehendentur ea quæ consequuntur, ex eo ꝗ exigunt illa quæ sunt dicenda: & ꝗ æquè sit philosophandũ & seruo & libero, siue sit vir sexu, siue fœmina. Et cũ quæ dein ceps sequuntur, & de fide & de inquirendo absoluerimus, genus symbolicum add ucemus, vt cùm concluserimus, orationẽ quæ ad mores pertinet, summatim ostendamus vtilitatem quæ allata est Græcis à barbara philosophia. Quam quidem postquam oculis subiecero, & aduersus Græcos & aduersus Iudæos tradetur compendiosa scripturarum expositio, & quęcunq; in libris pręcedentibus, cùm in prooemij ingressu, vno Commentario statuissemus perficere, rerum autem multitudini necessariò seruierimus, non licuit comprehendere. Post hęc à nobis, quoad eius fieri potest, rerum propositarum impleta declaratione, quę de naturalibus prin cipijs & à Græcis & ab alijs barbaris, prout ad nos peruenerunt opiniones, tradita sunt, oportet recensere, & aduersus præcipua eorum quæ sunt excogitata à philoso B phis argumentari. Quibus fuerit consequens, vt postquam Theologiam cursim percurrerimus, ea quæ in prophetijs tradita sunt tractemus: vt cùm etiam Scripturas quibus credidimus, validas ac ratas esse omnipotenti authoritate ostẽderimus, serie possimus per ipsas progredi, & hinc omnibus hæresibus vnum Deum ostendere, & Dominum omnipotentem, qui per legem & prophetas & beatum etiam Euangelium fuit syncerè ac germanè prædicatus. Multa autem sequuntur dicenda aduersus eos qui sunt diuersi opinionis, cùm conamur ea dissoluere, quæ in scriptis ab ipsis afferuntur, & vel inuitis persuadere, per ipsas conuincendo scripturas. Perfecto itaq; nobis vniuerso proposito, ijs quibus voluerit spiritus commentarijs ad vsum instantem adiuti (quædam enim ante veritatem omnino præfari necesse est) tunc reuera gnosticam, id est, homini cognoscendi potestate prædito conuenientẽ, ἱεροφαντεία. naturæ aggredimur contemplationem, paruis ante magna initiati mysteria, vt verè diuinæ sacrorum interpretationi nihil sit impedimento, prius expurgatis atque in- φυσιολογία. formatis ijs quę oportet antè sciri & tradi. Quæ est ergo ex veritatis regula gnosti- μᾶλλον δ' ἐποπτεία. cę traditionis naturę contemplatio, vel potius superna quædam speculatio, depen- der ex ea oratione quę traditur de ortu mundi, hinc ad formam ascendens theolo- προφητευθείσης gicam, seu quę in diuinitatis consistit contẽplatione. Vnde ab eo ortu qui propheticè est literis mãdatus, nẽpe à Genesi, in parte principiũ ducemus traditionis, & quæ ab ijs, qui diuersa sentiunt, dicuntur adducentes, & quoad eius à nobis fieri poterit dissoluentes. Sed hoc quidem mox scribetur, si Deus velit, & nos inspirauerit. C Nunc autem aggrediendum est id quod est propositum, & absoluẽda est ea quæ ad mores pertinet oratio. Sint autem nostra, vt sæpe diximus, Commentaria, propter eos qui impudenter ac imperitè ad ea legenda sunt accessuri, varia, & vt ipsum nomen indicat, contexta, ab vno ad aliud continens transeuntia, & per verborum quidem seriem ac contextũ aliud significantia, aliud verò indicantia. Qui enim aurum, inquit Heraclitus, quærunt, multum terræ fodiunt, & parum inueniunt: qui aũt id quod verè aurei generis cognatũ est scrutatur, multũ in pauco inueniẽt: inueniet enim Scriptura vnũ qui sit eam intellecturus. Iuuant ergo & ad reuocandũ in memoriam, & ad veritatẽ apertè declarandã, ei qui potest quęrere cum ratione, Stromata Cõmentariorum. Oportet aũt nos quoq; adlaborare, & his alia adinuenire, quoniã ijs qui ea via abeunt quã nesciunt, sufficit eam quę ducit solummodo indicare, postea aũt iam est ingrediendum, & reliquum vię inueniendũ. Quemadmodũ dicunt, seruo quoq; aliquando sciscitanti, quidnam agens Domino sit placiturus, respõdisse Pythiam, inuenies si quęsieris. Et est quidem reuera, vt videtur, difficile, pulchrũ & honestum quod latet inuenire, quoniam sudor ante virtutem est positus:

Hesiodus.
*Via longa est atque accliuis ad ipsam.*
*Ardua nanque prius, sed cum ad fastigia uentum,*
*Fit facilis, quæ difficilis ualde antè clueret.*

Est

A Est enim reuera arcta & angusta via Domini, & regnũ Dei est violentorum. Vnde quære, inquit, & inuenies, tenens viam verè regiam, & non prætercurrens. Est ergo in exiguo quidem spacio multa genitalis copia seminum dogmatũ quæ cõprehenduntur in hoc opere, tanquam ager omnibus herbis plenus, ait Scriptura. Aut etiam propriam habent inscriptionem Stromata Commentariorum, reuera multùm similem illi veteri floridæ oblationi, de qua scribit Sophocles: Matth. 7. Matth. 11. παμβόταινος τῷ ἀγρῷ.

*Quis enim erat uellus, eratq; uitium*
*Libamen, uuaq; & probè recondita.*
*Eratq; fructus mixtus omnis generis,*
*Pingueq; oliuum uariumq; maximè*
*Flauæ quod apis munere fit cereum.*

Iam Stromata nostra, vt inquit agricola Timoclis Comici, ficus, oleum, caricas, mel reddunt tanquam ex agro feracissimo, propter quam feracitatem subiungit:

*Iresionem, non agrum cultum refers.*

Consueuerant enim acclamare Athenienses:

*Fert ficus pingues, & panes Iresione,* εἰρεσιώνη.
*Mella quoque in catino, atque oleum quo te ungere poßis.* κοτύλη

Sæpè ergo oportet tanquã ex variè contextis capillis, multa eaq; confusa semina excutiendo ac iaciendo, frumentum legere. Multi autem habent affectionem non absimilem constitutioni hyemis, instabilem & inconsiderabilem. Multa incredulitas fecit bona, fides mala. Et Epicharmus: Non crede, sunt articuli hi præcordium. Iam non credere quidem veritati affert mortem, sicut credere vitam. Contrà autem, falso credere, non credere autem veritati, trahit in exitium. Eadem est ratio de continentia & incontinentia. Si continere quidem est bonum opus, malum autẽ opus non continere: ab iniustitia autem abstinere est principium salutis. Ac mihi quidem videtur Sabbatum per abstinentiam à malis significare continentiam. Et quidnam est in quo differt homo à bestijs, & eo rursus Dei angeli sapientiores? Minuisti eum, inquit, paulò minus ab Angelis. De Domino enim non accipiunt Scriptura, quanquam ille quoq; carnem ferebat, sed de eo qui est perfectus & gnosticus, seu cognoscendi potestate prædicus, qui & tempore & indumento diminutus est ab Angelis. Sapientiam ergo nihil aliud dico quàm scientiam, quoniam vita non differt à vita. Naturæ enim humanę, hoc est, homini, cum eo quod dignum habitũ est immortalitate, cõmune est viuere, & habitus contemplationis & continentię, cùm sit alterum prę̃stãtius. Ac mihi quidẽ certè videtur Pythagoras solũ Deum sapientẽ esse dicere. Nam Apostolus quoq; scribit in epistola ad Romanos: Ad obedientiam fidei in omnes gentes, cogniti soli sapienti Deo per Iesum Christum. Propter eam autem quæ illi cum Deo intercedebat amicitiam, vocabat se philosophum. Loquebatur itaque cum Mose, inquit Deus, vt amicus cum amico. Itaque verum, quod Deo est manifestum, generat veritatem: Gnosticus autem, seu qui est cognitionis potestate præditus, amat veritatẽ. Vade, inquit, ad formicã ô piger, & apis efficere discipulus, ait Solomon. μὴ πιστεύειν τὰ ἄρθρα τῶν φρενῶν In nõ credendo summa sita est prudentia. B Psalm. 8. Rom. 16. Exod. 33. Prouerb. 6.

C Si enim vniuscuiusq; ꝓprię naturę vnũ est munus, & bouis similiter & equi & canis, quodnam dicemus esse proprium munus hominis? Videtur aũt, vt opinor, esse similis centauro, figmento Thessalico, vt qui sit cõpositus ex rationis participe, & experte rationis, anima & corpore. Sed corpus quidem & terrã operatur, & tendit ad terrã: anima autem ad Deum extollitur: quæ quidem per veram erudita philosophiam, contendit ad suos qui suprà sunt cognatos, auersa à corporis cupiditatibus, & præterea à labore & metu: quanquã bonum esse & tolerantiam & metum ostendimus. Si enim per legẽ est agnitio peccati, vt dicunt qui legẽ insectantur, & vsque ad legem peccatum fuit in mundo, sed sine lege mortuum est peccatum: nos eis contrà occinamus, Si enim timoris causam peccatum abstuleris, aufer etiam timorem: multò aũt magis supplicium, cùm id abfuerit cui innatũ est vt cõcupiscat. Iusto enim, Scriptura inquit, lex non est posita. Pulchrè ergo Heraclitus: Iustitiæ, inquit, nomen non alligassent, si hæc non essent. Socrates autem dicit: Legem non fuisse factam propter bonos. Sed neque hoc cognouerunt accusatores quomodo dicit Apostolus, quòd qui propinquum suum diligit, malum non operatur. Illud enim, Non occides, nõ mœchaberis, non furtum facies, & si quod sit aliud præceptũ, in hoc solo sermone in vnã veluti summam redigitur, Diliges proximum tuum sicut teipsum. Hac vtique ratione diliges, inquit, dominũ Deum tuum, ex toto corde tuo: & diliges proximum tuũ sicut teipsum; siquidem qui proximum diligit, malũ Rom. 3. Rom. 5. 1. Tim. 1. Rom. 13. Matth. 22.

non agit:& omne præceptum in hoc veluti in summam redigitur, in diligēdo ꝓxi- A
mum. Quę aūt prę̨cepta efficiūt vt metus impendeat, ea dilectionē pariūt, nō odiū.
Vitiū ergo non est lex, quę timorē procreat: quare lex est sancta, & reuera spiritalis
Rom. 7. ex sentētia Apostoli. Oportet aūt, vt est consentaneū, cùm & corporis naturā, & ani
mæ essentiā diligenter inquisierimus, vtriusq; finē comprehendere, & non mortem
Rom. 6. malum esse putare. Quādo enim serui eratis peccati, inquit Apostolus, liberi fuistis
iustitiæ: quem ergo fructū tunc habuistis ex ijs propter quæ non erubescitis? Finis
enim illorum est mors. Nunc aūt liberati à peccato, Deo aūt serui effecti, habetis fru
ctum vestrum in sanctificationē: finem aūt, vitam ęternam. Stipēdium enim peccati
mors est. Gratia aūt Dei, vita æterna in Christo Iesu Domino nostro. Res itaq; eò vi
detur esse deducta, vt ostensum sit, mortem quidem esse eam in corpore animę con-
iunctionem, quæ est dedita peccato: vitam autē à peccato separationē. Multi autem
nos impediunt valli & fossæ cupiditatis, iræq; & excandescentiæ voragines, quas
transilire necesse est, & omnem insidiarum effugere molitionem, eum qui non est
amplius per speculum visurus Dei cognitionem.

*Altitonansq; uiro uirtutis Iuppiter aufert*
*Dimidium, quem alij miserè seruire necesse est.*

Seruos autem eos qui sunt sub peccato, & qui peccatis sunt venundati, qui volu-
ptati & libidini sunt dediti, & tenentur amore corporis, nouit scriptura: & bestias
Hierem. 5. potius quàm homines eos qui sunt assimilati iumentis, equos in fœminas insanien
tes, ad proximorū vxores hinnientes. Est asinus insolens is qui est intemperans: effe B
ratus lupus, auarus: & serpens, is qui est impostor & fraudulentus. Corporis ergo ab
anima separatio, quam toto vitæ tēpore meditatur philosophus, quādam cognitio-
ne præditam parit animi alacritatem, vt possit facile ferre mortem naturæ, quę est
Galat. 6. solutio vinculorum animę à corpore. Mihi enim crucifixus est mundus, & ego mun
do, inquit. Viuo autem iam cùm sim in carne, vt si in cælo versarer. Vnde meritò qui
Gnosticus vocatur facilè exaudit, & ei qui corporeum quid petit donat offerens, &
huius carunculæ affectiones prius exuens, tentatorem non iniuria afficiens, sed si-
mul docens & arguens,

*Et quantis opibus quàm magno & lapsus honore,*

vt ait Empedocles, hic deinceps versetur cum mortalibus. Is verò feret testimoniū,
sibi quidem, quòd sit in Deum syncerus & germanus, fidelis: tentatori autem, quòd
frustra sit æmulatione percitus in eum, qui est fidelis per dilectionem. Domino
autem, quòd à Deo sit inspirata doctrinæ persuasio, à qua non deficiet metu mortis:
quinetiam facto confirmat veritatem prædicationis, potentem eum esse ostendens
ad quem contendit. Mireris eius dilectionem, quam docet euidenter, ei quod est co
gnatum & vnius generis grato animo vnitus, quinetiam precioso sanguine infide-
les pudore afficiens. Is ergo metu propter præceptum declinat Christum negare, vt
metu fiat testis. Sed neque propter spem donorum paratorum fidem vendens: sed
propter suam in Dominum dilectionem, lubentissimè ab hac vita liberabitur, ha-
bens fortasse gratiam, & ei qui causam præbuit vt hinc exiret, & ei qui molitus est C
insidias, honesta accepta occasione, quam ipse non præbuit, seipsum ostendendi
quisnam sit, illi quidem per tolerantiam, Domino verò per charitatem, per quam o-
stendebatur Domino, qui etiam antequam nascatur, nouit institutum & liberam a-
nimi voluntatem eius qui tulit testimonium. Bono itaque animo venit ad amicum
Dominum, pro quo & corpus atque etiam animam, vt iudices expectabant, tradi-
τελείωσιν. dit, & à Seruatore nostro, ô frater dilecte, vt dicam poëticè, compellatur. Iam con-
summationem vocamus martyrium, non quòd vitæ finem homo acceperit, vt reli-
qui, sed quòd perfectum opus ostenderit charitatis. Porrò autem Græci quoque ve-
teres laudant finem eorum qui mortui sunt in bello, non mortem violentam consu
lentes, sed quòd qui in bello vitam finit, mortem non timens recessit, amputatus à
corpore, cùm nec prius animo laborasset, nec emollitus esset, cuiusmodi solent in
morbis accidere hominibus: recedūt enim effœminati & viuere cupientes, & ideo
neque puram emittunt animam, sed quæ, veluti notas plumbeas, secum effert cupi
ditates, nisi fuerint eorum aliqui docti & ex virtute considerati. Sunt etiam qui mo-
riuntur in bello cum cupiditatibus, quod perinde est ac si morbo contabuerint. Si
itaq; quæ est apud Deum confessio, est testimonium, quæcūq; anima se purè & syn
cerè gessit cum Dei agnitione, & quæ præceptis paruit, & vita & sermone est testis,
quomodocūq; liberetur à corpore, fidem, tanquam sanguinem, per totam vitam, &
etiam

A in exitu profundens. Iam dicit Dominus in Euangelio: Qui reliquerit patrē vel matrem vel fratres, & quæ deinceps sequuntur, propter Euangelium & nomen meum, is est beatus: non quoduis significans testimoniū, sed quod est ex cognitione, vt qui ex regula Euangelij vitam egerit propter dilectionem in Dominum. Cognitionem enim significat perceptio nominis & intelligentia Euangelij, sed non nudam ac simplicem appellationē, relinquere quidem genus mundanum, relinquere autem facultates & omnem possessionem, propterea quòd viuat citra vllam ad ea affectionem. Dicitur quidem certè patria mater & nutrix allegoricè, patres autem leges ciuiles: quæ quidem grato animo sunt contemnenda viro iusto, qui est magni & excelsi animi, vt Deo fiat amicus, & consequatur dexteras partes sanctificationis, sicut etiam fecerunt Apostoli. Deinde dicit quidem Heraclitus: Marte cæsos dij honorant & homines. Et scribit Plato in quinto de Republica: Eorum autē qui in bello mortui fuerint, qui præclarè se gerens obierit an non primùm quidem dicemus eum esse aurei generis? Omnium maximè. Aureum aūt genus per deos est ex ijs qui sunt in cælo & in sphæra inerrante, qui maximè principatū obtinent in homines prouidētiæ. Quidam aūt ex hæreticis, cùm malè Dominū audijssent, impiè simul & timidè vitæ tenētur cupiditate, dicentes verū esse testimonium, eius qui verè est Deus cognitionem: quod quidē nos quoq; fatemur: eum aūt esse sui occisorem & sibi mortem cōsciscere, qui per mortem fuerit confessus: & alia eiusmodi sophismata callidaq; cōmenta timiditatis in medium afferunt. Aduersus quos dicetur cùm tempus postulauerit: dissident enim à nobis in principijs. Dicimus autem nos quoq; eos qui de industria

B mortem quærunt (sunt enim quidam non nostri, sed tātùm nominis participes, qui quidem seipsos magno studio contendunt tradere, propter odium in Creatorē miseri mortem cupientes) eos, inquam, dicimus seipsos producere absque vllo martyrio ac testificatione, etsi publicè puniantur. Fidelis enim testimonij non seruant charactêrem, qui eum qui verè Deus est, non cognouere. Vanæ autem morti seipsos tradunt, sicut se temerè in ignem conijciunt Indorum Gymnosophistæ. Quoniam aūt isti qui falsum sibi nomen sumpserunt, in corpus inuehūtur, discant quòd bona corporis compages, & recta compositio animo confert ad ingenij solertiam. Quare in tertio de Republica Plato, quem maximè citant testem ad vituperandam generationem, dixit oportere curam gerere corporis propter harmoniam animæ, per quod licet & viuere & rectè viuere ei qui annunciat prædicationem veritatis. Per vitam enim & sanitatem ingredientes, ediscimus cognitionem. Cui enim nihil penitus licet in altum progredi absq; eo quòd sit in necessarijs, & per ea facere omnia quæ tendunt ad cognitionem, ei rectè viuere quomodo non est eligendum? In viuēdo ergo, bene viuere rectè se gerit, & ad æternitatis habitum transmittitur, qui per corpus ad bene viuendum se exercuit. Æquum est aūt Stoicos quoq; admirari, qui dicunt animam nihil affici à corpore, neq; ad vitium à morbo, neq; ad virtutem à sanitate, sed vtraq; hæc dicunt esse indifferentia. Quanquam Iob quoq; propter insignem continentiam & fidem eximiam, vt qui pauper quidem ex diuite, ex illustri abiectus, ex

C pulchro deformis, ex sano morbidus factus sit, est nobis præclarum exemplar propositus, pudore afficiens eum qui tentauerat, benedicens ei qui formauerat, secunda ita ferens vt prima, rectè docens Peripateticos, eum qui est cognitione præditus rectè posse vti omnibus. Et quòd quæ à veteribus rectè & ex virtute gesta sunt, ad nostras bonas actiones, propositæ sint imagines, ostendens Apostolus: Vt mea, inquit, vincula fuerint in Christo manifesta in omni prætorio & reliquis, & plures fratres in Domino, confisi meis vinculis, auderent abundantius absq; metu loqui verbum Dei: quandoquidem martyria quoq; sunt exemplaria conuersionis, gloriose sanctificata. Quæcunq; enim, inquit, scripta sunt, ad nostram doctrinam scripta sunt, vt per patientiam & consolationem scripturarum, spem habeamus consolationis. Videtur autem si adsit dolor, anima quodammodo ab ipso declinare, & magnifacere à præsenti liberari molestia. Illo certè tempore quiescit etiam à disciplinis, quando aliæ quoq; contemptæ sunt virtutes. Non autem vtiq; dicimus ipsam pati virtutem, nam nec ægrotat virtus. Qui est autem vtriusq; particeps & virtutis & morbi, ab eo quod vrget premitur: & si non fuerit magni & excelsi animi qui nondum continentiæ habitū acquisijt, loco pellitur, & instar fugæ inuenitur non tolerare. Eadem est aūt etiam ratio de paupertate. Nam ipsa quoq; à necessarijs, contemplatione inquā, & pura peccati amotione cessare cogit animam, vt quæ versandi in acquirendo necessitatem afferat ei qui nō se totum Deo dedicauerit. Sicut rursus sanitas & rerum

Matth. 10.
νόμος lex, Græcè est masculini generis.
ἀρειφάτους.
Iob. 1.
Philip. 1.
Rom. 15.

necessariarum copia, liberam custodit animam, & quæ nullum habeat impedimentum, & sciat rectè vti rebus præsentibus. Tribulationem enim carnis habebunt, inquit Apostolus, qui sunt huiusmodi. Ego autem vobis parco: volo enim vos esse nō solicitos ad hoc vt decorè & honestè domino indiuulsè assideatis. Hæc sunt ergo retinenda non propter se, sed propter corpus: habetur autem cura corporis propter animam, ad quam fit relatio. Necesse est enim eum, qui vitam instituit ex cognitione, in ea discere ea quæ conuenit: nam bonum quidem non esse voluptatem, patet ex eo quòd malę sint quædam voluptates. Hac ratione apparet bonum esse malum, & malum bonum. Pręterea autem si aliquas quidem expetimus voluptates, aliquas verò fugimus, non est quæuis voluptas malum. Similiter autem eadem quoque est ratio in doloribus, quorum alios quidem toleramus, alios verò fugimus. Fit autem electio & fuga ex scientia, adeò vt bonum sit scientia, non voluptas, propter quam, voluptatem quoq; aliquam nonnunquam eligimus. Iam Martyr, id est, testis, eam quæ propter spem capitur voluptatem, eligit atq; expetit per præsentem dolorem. Si autem in siti quidem dolor intelligitur, in potu autem voluptas: dolor qui præcessit fuerit efficiēs voluptatis: boni autem malum non fuerit efficiens: neutrum ergo est malum. Ac Simonides quidem, sicut etiā Aristoteles, scribit homini quidem esse optimum, sanum esse: secundum autem, ad bonum & honestum natura & ingenio esse aptum: tertium autem, absque dolo & fraude esse diuitem. Et Theognis Megarensis: A

1.Cor.7.

*Pauperiem ut fugias piscosi & in æquora ponti,*
*Te & Cyrne aerijs deijcito ex scopulis.* B

Contrà autem Antiphanes Comicus: Plutus, inquit, id est, diuitiæ, cùm plus alijs videntes acceperit aliquos, cæcos facit. Iam à Poëtis prædicatur ab ortu esse cæcus. Et ei genuit natum, qui Solem non vidit, ait Euphorion Chalcidensis:

ἠλίκτορα.

*Virtus docetur permalè à diuitijs,*
*Et quæ uiris modum superant delitijs,*

Dixit de Alexandro Euripides. Dictum certè est, paupertati obtigit sapientia propter cognationem: amor autem pecuniæ non solùm Spartam, sed etiam quamuis vrbem ceperit. Non est ergo hîc solum nummus, album argentum vel aurum, sed etiam virtus mortalibus, vt ait Sophocles. Seruator autem noster ille sanctus, & in spiritalibus & in sensilibus collocauit paupertatem & diuitias, & quę sunt his similia. Cùm enim dixit: Beati qui persecutionem patiuntur propter iustitiam, nos apertè docet in omni casu quærere martyrem, qui si fuerit pauper propter iustitiam, testatur esse bonum quam dilexit iustitiam. Et si esuriat & sitiat propter iustitiam, iustitiam assequi testatur esse optimum. Similiter autem qui flet quoq; & luget propter iustitiam, testatur optimam legem esse pulchram & honestam. Quemadmodū ergo eos qui persecutionem patiuntur, ita etiam qui esuriunt & sitiunt propter iustitiam, beatos dicit, qui syncerum ac germanum suscipit desiderium, quod ne fames quidem potuit perfringere, & si ipsam sitiant iustitiam, beati. Beati sunt autem pauperes quoque, siue spiritu, siue facultatibus, propter iustitiam videlicet. Num ergo non absolutè pauperes, sed eos qui propter iustitiam voluerint fieri pauperes, eos beatos esse dicit, qui eos qui hîc sunt honores contempserunt vt bonum acquirerent? Similiter autem eos quoq; qui pulchris moribus & corpore fuere propter castitatem, clarosq; & illustres qui propter iustitiam prouecti sunt ad filiorum adoptionem, & ideo acceperunt potestatem vt filij Dei fierent, & super serpentes & scorpios ambularent, & in dæmones & in aduersarij copias dominatum obtinerent. Et vt in summa dicam, Dominica exercitatio gratè ac lubenter animam abducit à corpore, si quidem ipsa quoq; seipsam transferendo auellit. Qui enim amat animam suam, perdet illam: & qui perdidit, inueniet ipsam, si modò nostram fragilitatem applicemus ad Dei incorruptionem. Dei autem voluntas, est Dei agnitio, quæ est communicatio incorruptionis. Qui ergo per pœnitentiæ rationem peccatricem agnoscit animam, perdet ipsam à peccato à quo est auulsa: perditam autem inueniet per obedientiam, vt quæ fidei quidem vixerit, mortua autem sit peccato. Hoc est ergo inuenire animam, nosse seipsum. Eam autem quæ fit ad diuina cōuersionem, Stoici quidem dicunt factam esse ex mutatione, mutata anima in sapientiam. Plato autem, animæ ad meliora circumactionem, quæ etiam accepit conuersionem ex nocturno quodam die. Iam etiam viro bono permittunt philosophi, vt liceat animam iusta de causa educere, si quis ab agendo adeò fuerit remotus, C

Matth.5.

Ioan.1.

Matth.10.
Mar.8.
Luc.9.
Ioan.12.

vt

A vt nulla ei spes amplius reliqua sit actionis. Iudex autem qui vim intulit vt negaretur dilectus, videtur probare quisnam sit Deo amicus, & quis non. Hîc autẽ ne comparatio quidem relinquitur, quid quisnam magis elegerit; minásne hominum, an Dei dilectionem. Et abstinentia à malis actionibus, inuenitur quodammodo diminutio & extinctio malorum, dum eorum tollitur operatio per cessationem ab agendo. Et hoc est, Vende omnia quæ habes, & da pauperibus, & veni & sequere me, hoc est, sequere ea quæ dicuntur à Dño. Et cùm Græcè sit ὑπάρχοντα, quod & ea quæ sunt, & facultates quas habemus significat, nõnulli dicũt eum dixisse ea quę sunt aliena, in anima, & quomodo ea distribuit pauperibus minimè possunt dicere. Sed. n. Deus omnia omnibus distribuit pro meritis, cùm iusta sit dispẽsatio & œconomia. Facultatibus ergo, inquit, contemptis, quas Deus distribuit propter tuam magnificentiam, sequere ea quæ à me dicuntur, cõtende ad ascensum spiritus, non solùm iustificatus per abstinentiã à malis, sed etiam Dominica consummatus beneficentia. Iam verò eum qui gloriabatur se legis præcepta perfectè adimplesse, refellit, vt qui nõ dilexisset proximũ. Beneficẽtiam aũt profitetur charitas, quę dominatur Sabbato per ascensum cognitionis. Existimo aũt oportere, neque propter metum supplicij, neq; propter aliquam doni promissionem, sed propter ipsum bonũ accedere ad verbum salutare. Qui autem tales sunt, stant à dextris sanctuarij. Qui autem pro donatione eorum in quæ cadit corruptio & interitus, existimant se vicissim accepturos incorruptionem, in duorum fratrum parabola vocati sunt mercenarij. Et nunquid

Matth. 19. Marc. 10. ἀγλαισμα

B hîc quoq; illud, ad similitudinẽ & imaginem reducitur? vt illi quidem ex ea quæ est cum Seruatore similitudine, simul cum eo versentur. Qui aũt stãt à sinistris, ad imaginem. Tria ergo sunt, cùm à veritate ambobus sit vna subiecta radix, non sit aũt ęqualis electio, vel potius non sit ęqualis quæ est ex electione differentia. Differt aũt, vt existimo, elegisse ex imitatione, ab eo quod elegit ex cognitione, vt id quod est ignitum, & id quod illuminatũ. Lumen ergo eius quę est ex scriptura similitudinis, est Israël, alius aũt imago. Quid autem sibi vult Lazari parabola, ostendens Domino similitudinem diuitis & pauperis? Quid verò, Nemo potest duobus dominis seruire, Deo & Mammonæ, cùm pecuniæ amorem sic vocasset Dominus? Iam qui suarum possessionum amore tenebantur, ad cœnam uocati nõ veniunt, non ꝗ possiderent, sed ꝗ possiderent cum affectione. Vulpes itaq; foueas habent, eos qui in effodiẽdis & infodiendis versantur diuitijs, homines prauos & planè terrę filios, vulpes appellauit. Similiter etiã de Herode. Abite, dicite huic vulpi, ecce dæmonia eijcio, & curationes efficio hodie & cras, & tertio consummor. Volucres enim cæli, eos qui cælo ab alijs auibus sunt distincti, qui reuera sunt mundi, qui ad cęlestis verbi cognitionẽ euolare possunt, vocauit. Non solùm enim diuitiarum, gloriæ, & matrimonij, sed etiã paupertatis, ei qui non fert, innumerabiles sunt solicitudines. Atq; has quidẽ curas significauit in parabola seminis quadripartiti, dicẽs semẽ verbi qđ cecidit in spinas & sepes, fuisse ab eis suffocatũ, & fructũ nequiuisse producere. Discere ergo necesse est quomodo vnoquoq; eorũ quę accidũt vtendũ sit, vt per bonã vitã ex cogni-

Luc. 16. Matth. 8. Luc. 9. Matth. 13. Luc. 13. Luc. 8. Psal. 36.

C tione agendã, ad habitũ vitæ æternæ exerceamur. Vidi enim, inquit, impium qui superexaltabatur & efferebatur super cedros libani, & transij, inquit scriptura, & ecce non erat, & quęsiui ipsum, & non est inuẽtus locus eius. Custodi innocentiã, & vide rectitudinẽ, quoniã sunt reliquię homini pacifico. Is aũt fuerit ꝗ non simulatè credit ex toto corde, & toto est animo tranquillus. Alius enim populus me labijs honorat, cor verò eius longè abest à Dño: ore suo benedicunt, corde verò suo execrantur. Dilexerunt eum in ore suo, & lingua sua mẽtiti sunt ei. Cor aũt eorũ nõ erat rectũ cum ipso, neq; fideles fuerunt in testamẽto suo. Et ideo muta fiant labia dolosa, & linguã magniloquam, qui dixerunt, linguam nostram magnificabimus, Labia nostra à nobis sunt, quis est noster Dominus? Ab afflictione inopũ, & eiulatu pauperum nuncexurgam, dicit Dominus, ponam in salutari, liberè agam cũ ipso. Est enim Christus eorum qui humiliter se gerunt, non eorum qui eriguntur in gregem suum. Ne thesaurizate ergo vobis thesauros in terra, vbi tinea & ęrugo demolitur, & fures effodiunt & suffurantur: fortasse quidem eos insectans, qui tenẽtur amore possessionum, id dicit Dominus: fortasse autem eos etiam qui sunt absolutè soliciti & curis affecti. Iam verò eos quoq; qui tenẽtur amore corporis. Amores enim & morbi, & malę cogitationes, rationem & totũ hominẽ perfodiũt. Est autem reuera noster thesaurus, vbi est mentis cognatio: quandoquidem communicantem ac distribuentẽ vim tradit iustitię, indicans oportere reddere cõsuetudini veteris conuersationis, ea quę ab ipsa sunt nobis acquisita, & ad Deum recurrere, petentes misericordiam. Is est reue-

Esa. 29. Mar. 7. Psalm. 77. Psal. 30. Psal. 11. Marc. 6.

ra crumena quæ non veterascit, viaticum vitæ æternæ, thesaurus in cœlo non defi- A
ciens. Quoniã miserens miserebor cuius miserebor, ait Dominus. Dicunt aũt hęc ijs
*Exod. 33.* quoq; qui volunt esse pauperes propter iustitiam. Audierunt enim per mandatũ, la-
*Rom. 9.* tam & spaciosam esse viam quę ducit ad interitum, & multi qui per eam trãseunt, de
nullo alio loquuntur, quàm de luxu, & amore mulierum, gloriæ cupiditate & ambi
tione, & similibus animi vitijs & pturbationibus. Stulte enim, sic inquit, hac nocte
*Luc. 12.* animam tuam repetunt: quæ autem ei parasti, cuius erunt? Et mandatum quidẽ his
verbis & hoc modo se habet. Cauete ergo ab omni auaritia & plura habendi cupidi
tate, quoniam non in eo quòd alicui abundent facultates, vita eius. Quid enim pro-
dest homini si totum mundum lucretur, animæ autem suæ detrimentum faciat? aut
quod dabit homo precium pro anima sua? Et ideo dicit: Ne soliciti sitis animę vestrę
*Matth. 6.* quid comedatis, neq; corpori quid induamini. Anima enim est plus quàm cibus, &
corpus quàm indumentum. Et rursus: Scit enim pater vester quòd his omnib. opus
habetis. Quærite autem primùm regnum cœlorum & iustitiã, ea enim magna sunt:
parua autem & quæ ad victum pertinent, ea adijcientur vobis. An non apertè nos
iubet persequi vitam quæ ex cognitione instituitur, & verbo & facto hortatur quæ-
rere veritatem? Diuitem ergo non ex donatione, sed ex instituto ac voluntate docet
Christus animã instituens. Zachęum ergo, alij autem dicunt Matthiam publicano-
*Luc. 19.* rum principẽ, cùm audijsset Dominum qui dignatus fuerat esse apud ipsum, dixisse,
Domine dimidium bonorum meorum do eleëmosynam, & si alicuius aliquid ha-
bui per calumniam, reddo quadruplum. De quo etiam dixit Seruator: Filius homi- B
nis cùm venisset hodie, inuenit quod perierat. Et rursus cùm vidisset in gazophyla-
*Luc. 21.* cium iecisse quidem diuitem conuenienter suis facultatibus, viduã autẽ duos num-
mos, dixit viduam iecisse plus quàm omnes. Ille enim ex abundantia, hæc verò ex
egestate contulit. Quoniam autem reduxit ad animæ institutionem, Beati, inquit,
mites, quoniam ipsi possidebunt terram. Mites autem sunt, qui infidam quæ est in
anima pugnã sedauerunt, iræ & cupiditatis, & eorum quę sub eas cadunt. Mites aũt
laudat eos qui tales sunt sponte & ex animi instituto, non autem eos qui ex necessi-
tate. Sunt enim apud Dñm complures mercedes & mansiones, ex vitæ eorum pro-
*Matth. 10.* portione. Qui enim, inquit, prophetam in nomine prophetæ susceperit, mercedem
prophetæ accipiet: & qui iustum in nomine iusti, mercedem iusti accipiet: & qui su-
sceperit vnum ex paruis his discipulis, non amittit mercedem. Et rursus, virtutis p
meritis differentias, & præclaras remunerationes, per horas numero non æquales.
Præterea aũt & vnicuiq; operariorum ęqualis redditę mercedis, hoc est, salutis, quã
*Matt. 20.* significat denarius, ęquũ ius significauit, per eos qui operati sunt horis inter se mini
mè conuenientibus. Operabuntur ergo conuenienter mansionibus quę proportio-
ne respondent ijs quibus dignati sunt præmijs, ineffabilis œconomiæ & muneris
adiutores. Qui autem, inquit Plato, visi fuerint insigniter euocati ad hoc vt sanctè
viuant, ij sunt qui ab ijs quę sunt in terra, tanq̃ à carceribus, liberantur & soluuntur,
sursum autem ad supernam veniunt habitationem. Et rursus apertius idem dicit:
Ex ijs autem ipsis, qui in philosophia satis sunt expurgati, & sine corporibus omni- C
no viuunt in vniuersum tempus. Quanquam figuras quasdam illis adijcit, alijs qui-
dem ex ipsis, aëreas, alijs verò etiam igneas. Subiungit præterea: Et veniunt in ha-
bitationes adhuc his pulchriores, quæ nec sunt explicatu faciles, nec tempus ad id
sufficit in pręsentia. Vnde meritò dicit: Beati qui lugent, quoniam ipsi consolationẽ
*Matth. 5.* accipient. Qui enim malè actæ vitæ ducti sunt pœnitentia, aderunt ad vocationem.
Hoc enim sibi vult παρακληθῆναι, quod & consolationẽ accipere significat, & aduocatũ
esse. Duo autem sunt modi eius qui ducitur pœnitentia: vnus quidem communior
timor propter ea quæ facta sunt: alter autem magis proprius, animæ apud seipsam
verecundia ex conscientia. Siue ergo hîc, siue etiam alibi: quoniam nullus locus va-
cat Dei misericordia. Rursus dicit: Beati misericordes, quoniam ipsi misericordiam
consequentur. Misericordia aũt non est, vt quidam existimarunt philosophi, mole-
stia propter alienas calamitates, sed est potius quid *diuinũ, vt dicunt prophetę. Mi
*ἀστεῖον Græcè,* sericordiã, inquit, volo, & non sacrificium. Misericordes autem esse vult, non solùm
*id est, Vrba-* qui faciunt misericordiã, sed etiam qui misereri volunt, etsi non possint, quibus ad-
*num. sed lege* est vt sponte & libera voluntate operentur. Nonnunquam enim volumus, vel dãdo
*θεῖον, diuinũ.* pecuniam, vel corpoream dando operam, facere misericordiã, vtpote egenti opem
*Oseæ 6.* ferre, vel ęgrotanti inseruire, vel ei adesse qui est in aliqua calamitate, nec possumus
*Matth. 9.* vel propter paupertatem, vel morbũ vel senectutem (nam ea quoq; morbus est na-
tu-

A turalis(exequi institutum,ea quæ cupimus,& ad quæ interno animi motu ferimur, non potentes efficere.Eundem autem honorē consequentur ij qui voluerunt, cū ijs qui potuerunt,quorū est voluntas æqualis,etsi alij superent facultatibus.Quoniam aūt eorum quę ad salutis ducūt perfectionē duæ viæ inueniuntur,opera & cognitio beatos dixit eos qui sunt mundi corde,quoniā ipsi Deum videbunt.Et si reuera verū cōsideremus, cognitio est principalis animæ partis purgatio, & est bona operatio. Ac bona quidem sunt,alia quidem ipsa per se: alia autem, vt quæ bona participent, vt bonas dicimus actiones. Absq; ijs autem quæ intercedunt, quæ quidem obtinēt locum materiæ,neq; bonæ neq; malæ constant actiones,vtpote, verbi gratia,vita & sanitate,& alijs quæ vel sunt necessaria, vel circumsistentia. Corporeis ergo cupiditatibus & sanctis cogitationibus vult esse mundos eos qui veniunt ad Dei agnitionē,quando animę facultas principalis, nihil habet adulterinum quod se ei obijciat, & eam impediat.Quando ergo versatus & immoratus fuerit in contēplatione,cum Deo puram habens consuetudinē, qui est ex cognitione sanctę qualitatis particeps, propinquius accedit ad habitum impatibilis identitatis: vt non habeat amplius scientiam, & possideat cognitionē,sed sit scientia & cognitio. Beati ergo pacifici, qui legem mentis nostræ sententiæ repugnantē,iræ minas,& cupiditatis escas, & alias affectiones quæ rationem oppugnant,mansuefecerunt, quietasq; reddiderunt,qui cùm scientia bonorum operum & veræ rationis vixerint,restituentur in amiciorem & gratiorem filiorum adoptionem. Fuerit autem perfecta pacificatio, quæ in quocunq; casu pacificum seruat immutabilem, sanctamq; & honestam dicens administrationē,posita in rerū diuinarum & humanarū scientia, per quam eas quæ sunt in mundo repugnantias,creaturæ pulcherrimā existimat harmoniam ac concordiam. Pacificant autem eos quoq; qui hic oppugnantur à belli duce peccato,eos docentes vt ad fidem pacemq; transeant. Totius autē virtutis summa est, vt existimo, Dominus docens oportere ex cognitione,propter charitatem in Deum, nos mortem contemnere.Beati, inquit, qui persecutionē patiuntur propter iustitiā, quoniam ipsi filij Dei vocabuntur: vel, vt nonulli ex ijs qui Euangelia transponunt, Beati, inquit, quos persequitur iustitia,quoniam ipsi erunt perfecti. &: Beati qui persecutionem patiuntur propter me, quoniam locum habebūt ad quem nō perueniet persecutio. &:Beati eritis,quādo vos homines odio habuerint, quando exterminauerint,quando nomen vestrum vt sceleratū expunxerint, propter filium hominis: si eos videlicet qui nos persequuntur non abominemur, & sustineamus quæ ab eis infliguntur supplicia, nequaquam eos odio habentes, cogitantes nos esse tentatos tardius quā expectauimus.Sed illud quoq; sciētes, martyrij occasionē esse quamuis tentationē. Deinde,qui mentitus quidem est,& seipsum ostendit infidelē, & ad diaboli transfugit exercitum in quanto eum malo versari credimus? Mentitur itaque Domino, vel potius spei suæ mentitur, eamq; frustratur, qui Deo non credit. Non credit autem, qui nō facit ea quæ mādauerat.Quid verò,an non seipsum negat, qui negat Dominum?Domino enim non aufert dominiū, qui se ea quę cum illo intercedit priuat necessitudine.Qui negat ergo Seruatorē,negat vitam,quoniam lux erat vita.Eos quidem non dicit esse modicæ fidei,sed infideles & hypocritas,qui nominis quidem suscipiunt inscriptionē,fideles autem esse abnegant. Fidelis aūt dictus est & seruus & amicus.Quare si quis seipsum diligit,diligit Dominum, & confitetur salutem,vt suam seruet animā.Atqui si vel pro proximo moriaris propter charitatē,existimes seruatorē nostrum esse propinquū. Deus enim appropinquans dictus est is qui seruat, & qui seruatur,mortem eligens propter vitam,& propter teipsum potius,quàm propter illum patiēs.Et nunquid propterea dictus est frater, qui passus propter suam in Deum dilectionem,passus propter propriam salutem,& qui rursus moritur propter propriam salutem, sustinet propter dilectionem Domini? Etenim ipse cùm esset vita,propter nos pati voluit,vt eius passione viueremus.Quid mihi dicitis,inquit,Domine Domine, & non facitis quæ dico? Qui enim labijs diligit populus, cor autem longè habet à Domino,est alius alio persuasus,& ei se sua sponte vendidit.Quicunque autem Seruatoris mandata exequuntur, in vnaquaque actione sunt martyres, id est, testes facientes quidem quod vult, consequenter autē nominantes Dominū, & reipsa testantes ei cui credunt esse carnē,cùm eam cruci affixerint cum vitijs & cōcupiscentijs.Si spiritu viuimus,inquit,spiritu ambulemus. Qui seminat in suam carnem,ex carne metet corruptionē.Qui aūt seminat in spiritum,ex spiritu metet vitā æternam.Miseris autem hominibus, quod præbetur per sanguinē de Domino testi

[Margin notes: ἐνεργητικῶν (beside "sanitate"); ταυτότητος (beside "particeps"); B (beside "cunq; casu"); C (beside "cessitudine"); Matth. 7. (beside "ta,propter nos"); Matth. 15. (beside "longè habet"); Galat. 6. (beside "cupiscentijs")]

moniũ, videtur esse mors violentissima, nescientibus hanc mortis ianuã, esse verę vitæ principium. Et nec honores post mortem eorum qui sanctè vixerunt, nec supplicia eorum qui iniustè & libidinose se gesserunt, volunt intelligere, non ex nostris solùm dico scripturis, hęc enim omnia ferè mandata significant, sed nec suorum scriptis volunt aures præbere. Scribit enim Theanò Pythagorica: Esset enim reuera pulchris vita conuiuiũ, ijs qui se scelerate gesserunt, deinde moriuntur, si non esset anima immortalis mors esset lucrum. Et Plato in Phædone: Si esset enim mors à toto liberatio, & quę deinceps sequuntur. Non est ergo cogitandum ex sententia Telephi apud Æschylum, simplicem ac vnicã viam ferre ad inferos: sunt enim viæ multæ, & multa quæ abducunt peccata. Errabundos hos, vt est, verisimile, infideles comicè ludificans Aristophanes: Agitè, inquit, obscuræ vitæ homines, generationi foliorum similes, imbecilli, ceræ figmẽta, folia instar vmbræ reddentia, euanidi, inuolucres, vnius tantũ diei vitam habentes. Et Epicharmus: Ipsa, inquit, hominũ vita sunt vtres
Matth.26. inflati. Nobis aũt dixit Seruator: Spiritus prõptus, caro infirma, quoniam prudẽtia
Rom.8. carnis est Deo inimica; vt exponit Apostolus: Legi enim Dei non subijcitur, neq; enim potest. Qui autem in carne sunt, Deo placere non possunt. Et id amplius explicans subiungit, ne quis ingrato animo, vt Marcion, esse malam accipiat creaturã. Si autẽ Christus est in nobis, corpus quidem mortuum est propter peccatũ, spiritus autem viuit propter iustitiam. Et rursus: Si enim secundum carnem viuitis, estis morituri. Considero enim quòd non sunt condignæ passiones huius mundi ad gloriam quæ reuelanda est in nobis, si quidem compatimur, vt & conglorificemur, vt cohæredes Christi. Scimus autem quòd diligentibus Deum omnia cooperantur in bonum, ijs qui vocati sunt secundum propositum. Quoniam quos præsciuit, eos & prędestinauit conformes imagini filij Dei, vt sit ipse primogenitus in multis fratribus. Quos autem prædestinauit, eos & vocauit. Quos autem vocauit, eos & iustificauit. Quos autem iustificauit, eos & glorificauit. Vides per dilectionem doceri martyrium. Quòd si velis martyr esse, & testimonium ferre propter bonorum remunerationem, rursus audies: Spe enim salui facti sumus. Spes autem quę videtur, non est spes. Quod enim videt quis, quid sperat? Si autem quod non videmus speramus, per pa-
1.Pet.3. tientiam expectamus. Sed etsi patimur propter iustitiam, inquit Petrus, beati. Timorem autem eorum ne timueritis, neq; conturbemini. Dominum autem Christũ sanctificate in cordibus vestris. Parati autem semper ad satisfactionem omni poscenti vos rationem de ea quæ in vobis est spe, sed cum modestia & timore, conscientiã habentes bonam, vt in quo detrahunt vobis, confundãtur, qui calumniãtur vestram bonam in Christo conuersationem. Melius est enim benefacientes, si voluntas Dei velit, pati, quàm malefacientes. Et si quis altercans dicat: Et quomodo fieri potest vt caro imbecilla resistat potestatibus & spiritib. dominationum? Illud sciat, quòd
Esa.58. omnipotenti & Domino freti in eoq; habentes fiduciã, aduersamur potestatibus tenebrarum & morti. Adhuc te loquente, inquit, dicet, Ecce adsum. Vides adiutorem
1.Pet.1. inuictum, qui nos defendit. Ne vobis noua & aliena, inquit Petrus, videatur quæ ad tentationẽ vobis fit per ignem probatio, sed quatenus cõmunicatis Christi passionibus, gaudete, vt etiam in reuelatione eius gloriæ gaudeatis, exultantes si in nomine Christi probris afficimini: beati, quòd gloriæ & Dei spiritus super vos requiescit,
Psal.43 sicut scriptũ est, Propter te mortificamur tota die: reputati sumus vt oues occisionis.
Rom.8. Sed in his omnibus superamus propter eum qui nos dilexit.

*Ex mente sed mea quæ uis rescifcere,*
*Non audies, nec si cremes: ferras graues*
*Nec capite summo si ad pedes imos liges,*
*Duris nec omnibus si uinclis uincias:*

Vt dicit in Tragœdia fœmina se gerens viriliter. Et Antigone Creontis edictum despiciens dicit audacter:

*Non, Iuppiter nanq; mihi hæc edixerat.*

Rom.10. Sed Deus nobis edicit & prædicat, eique est parendum. Corde enim creditur ad iustitiam, ore autem fit confessio ad salutem. Dicit itaque scriptura: Omnis qui credit in eum, pudore non afficietur. Meritò ergo scribit Simonides: Fertur virtus habitare in rupibus aditu difficilibus, nunc autem eam celerem castum locum tenere, & quæ nec aspici possit omnium mortalium cilijs, sed ab eo demùm ad quem sudor venerit, qui medetur iracundiæ, & processerit ad summam animi magnitudinẽ. Et Pindarus: Iuuenum autem curæ quę versantur cum laboribus, gloriam inueniũt.

Tempore

A Tempore autem resplendet facta in æthere illustrata. Hanc cùm apprehendisset sententiam Æschylus, dicit:

*Laborem qui perpetitur,*
*Debetur huic laboris natus, gloria.*

Maiori enim morti maiores partes obtingunt, ex sententia Heracliti.

*Qui mortis est seruus, timore is haud uacat.*

Non enim dedit nobis Deus spiritum seruitutis rursus in timorē, sed virtutis & dilectionis & sobrietatis. Ne ergo te pudeat mei qui sum eius vinctus, scribit ad Timotheū. Fuerit autem huiusmodi qui bono adhæret, ex sententia Apostoli, odio habēs malum, habens charitatem non fictam. Qui enim alterum diligit, legem impleuit. Si est autem Deus spei, is cuius testes sumus, sicut est, spem nostram confitemur, ad spē contendentes, & quod est bonitatis maximum, impleri, inquit, omni cognitione. Indorum Philosophi dicunt Alexandro Macedonum: Traduces quidem corpora de loco, animas autē nostras nō coges facere quæ nolumus. Ignis est hominibus maximus cruciatus, eum nos contēnimus. Hinc Heraclitus vnam gloriam omnibus prę-posuit, profitetur autem se vulgo cedere, vt se expleant tanquam pecora: 2. Timot. 1.

*Multi labores gratia sunt corporis,*
*Propter id & fortes domos inuenimus*
*Effodere argentum, & agros colere,*
*Aliaq; quæ nos nouimus nominibus.*

B Vulgo ergo inanis hic labor videtur expetendus. Nobis autē minimè, inquit Apostolus. Hoc autem scimus, quòd vetus noster homo simul est crucifixus, vt aboleatur corpus peccati, vt non amplius seruiamus peccato. An non illa quoq; apertè subiungit Apostolus, ostendens quàm sit fides apud multos verecunda? Puto enim quòd Deus nos Apostolos nouissimos ostendit, tāquam morti destinatos. Quia spectaculum facti sumus mundo, & angelis & hominibus. Vsq; in hāc horam & esurimus, & sitimus, & nudi sumus, & colaphis cædimur, & instabiles sumus, & laboramus operantes manibus nostris, maledicimur & benedicimus, persecutionem patimur, & sustinemus. Tanquam purgamenta huius mundi facti sumus. Talia sunt ea etiam quæ dicit Plato in Republica, etiamsi torqueatur iustus, etiamsi ei effodiantur oculi, eum futurum esse beatum. Is ergo qui est cognitione præditus, nunquam finem habebit positum in anima, sed in eo quòd sit semper felix & beatus, & regius Dei amicus: & licet quis ei inurat ignominiam, eumq; & exilio & publicatione facultatum, & postremò morte afficiat, nunquam auelletur à libertate, & præcipua in Deum charitate. Omnia sustinet, & omnia suffert charitas, quòd ei sit persuasum diuinam prouidētiā omnia rectè administrare. Rogo ergo vos, inquit, imitatores mei estote. Primus ergo gradus corporis, est doctrina cum timore, per quam abstinemus ab iniuria: secūdus autem est spes, per quam desideramus quæ sunt optima: perficit autem, vt est consentaneum, charitas, quæ iam docet per viam cognitionis. Gētiles enim, nescio C quomodo, cùm necessitati quæ caret ratione, ea quæ eueniant tribuerint, inuiti se parēre confitentur. Dicit certè Euripides: Rom. 6. 1. Cor. 4. 2. Cor. 13. 1. Cor. 4.

*Quæ tibi suado mulier ea accipe.*
*Qui non laboret nullus est mortalium.*
*Humet natos, nouos & dein ferat,*
*Atq; obeat mortem. Hæc ægrè homines ferunt.* Deinde subiungit
*Oportet hæc natura quæ uult perpeti.* Ast eò decet
*Migrare, nil ubi necessarium graue est.*

Iis autem qui tendunt ad perfectionem est proposita cognitio rationalis, cuius fundamentum est sancta trinitas, fides, spes, charitas, maior aūt horū charitas. Omnia quidem certè licent, sed non omnia expediunt. Omnia licent, sed non omnia ędificant, inquit Apostolus. &: Nemo quærat quod est suum solūmodo, sed etiā quod alterius, vt possit simul & facere & docere, ædificans & superædificans. Quod enim Domini sit terra, & plenitudo eius, certum est & extra controuersiam. Sed infirmi sustinetur conscientia. Conscientiā autem dico, non suam, sed alterius. Cur enim libertas mea iudicatur ab alia cōscientia? Si ego gratia participo, cur vituperor propter id propter quod gratias ago? Siue ergo comeditis, siue bibitis, siue aliqd facitis, omnia ad gloriam Dei facite. In carne enim ambulantes, non secundum carnem militamus. Arma enim militiæ nostræ nō sunt carnalia, sed potentia Deo ad destructionē munimentorū, cogitationes destruentes, & omnē altitudinem se extollentē aduer- 1. Cor. 10.

ſus cognitionem Domini.His armis munitus is qui eſt cognitione prædiuus, ô Domine,inquit,da caſum & afflictionem, & accipe oſtenſionem, accedat hoc graue & formidabile.Pericula ego diſpicio propter meam in te dilectionem: A

*Nam ſola uirtus,rebus in mortalium,*
*Non præmia ex clypeis capit militiæ,*
*Sed ipſa ſeipſam habet laborum præmium.*

Induite ergo,ſicut electi Dei,ſancti & dilecti, viſcera miſericordiarũ, benignitatẽ humilitatem,manſuetudinẽ,lenitatem.Super omnia aũt hæc,charitatẽ, quæ eſt vinculum prefectionis, & pax Chriſti regnet in cordibus veſtris, in qua etiam vocati eſtis in vno corpore: & grati eſtote, qui adhuc eſtis in corpore, ſicut veteres iuſti, percipientes animæ impatibilitatem & vacuitatẽ perturbationis. Nam nõ ſolùm Aſopij & Macedones & Lacones dum torquẽtur fortiter tolerãt, vt ait Eratoſthenes in ijs quæ ſcribit de bonis & malis, ſed Zeno quoq; eleates dum cogeretur arcanum aliquid enunciare,reſtitit tormentis nihil confitens,qui etiam poſtremò linguam erodens,eam expuit in tyrãnum, quem alij quidem Nearchum,alij verò Demylum appellãt.Similiter aũt facit etiam Theodotus Pythagoręus,& Paulus Lacydis familiaris,vt dicit Timotheus Pergameus in libro de Magnitudine animi philoſophorũ,& Achaicus in Moralib.Quinetiã Poſthumus Romanus captus à Peucetione, nõ modò nihil ex ijs quæ erant occulta aperuit, ſed cùm etiam manum in ignem tanquam in æs,immiſiſſet, conſtitit vultu firmo & planè immutabili. Taceo Anaxarchum exclamantẽ,Tunde Anaxarchi capſam, Anaxarchũ enim non tundis,cùm piſtillis ferreis tunderetur à tyranno. Neque ergo ſpes felicitatis,neq; in Deum charitas,ægrè fert ea quæ accidũt,manet autem libera, etiamſi in beſtias incidat immaniſsimas,& in ignem voraciſsimũ, & licet tyrannicis conficiatur tormentis, à diuinis pendens amicitijs,minimè redacta in ſeruitutẽ, ſuperas obit regiones corpore ijs tradito qui id ſolũ poſſunt tenere.Dicitur aũt gens barbara nõ aliena à guſtu philoſophię, quot annis eligere legatum ad Zamolxim Heroëm: erat aũt Zamolxis vnus ex familiarib.Pythagoræ.Mactatur ergo is qui fuerit iudicatus probatiſsimus, ijs qui ſunt philoſophati quidem,ſed non electi,mœrentibus, vt qui ſint repulſi à beato miniſterio. Plena eſt ergo tota eccleſia ijs qui per omnem vitam ſunt meditati mortem, quæ excitat ad Chriſtum, ſicut virorum, ita etiam mulierum temperantium. Licet enim ei qui ex more noſtro vitam inſtituit,etiam abſq; literis philoſophari,ſeu ſit barbarus, ſeu Græcus,ſeu ſeruus,ſeu ſenex,ſeu puellus,ſeu mulier. Eſt enim temperantia communis omnium hominum, qui eam ſuo arbitrio delegerint.Eſt autẽ apud nos extra cõtrouerſiam,eandem naturam in vnoquoq; genere,eandem etiam habere virtutẽ. Non aliam ergo habet naturam mulier,quod attinet ad humanitatem,aliam verò videtur vir habere,ſed eandem: quare etiam virtutem. Si autem viri vtriq; virtus eſt tẽperantia & iuſtitia, & quæcunq; eas conſequi exiſtimantur: ſoli viro conuenit eſſe virtute præditum,imtemperantẽ autem & iniuſtam mulierẽ,ſed turpe eſt hoc vel dicere.Temperantiæ ergo & iuſtitiæ,& cuiuſuis alterius virtutis,ſimiliter quidem virum & mulierem, liberũ & ſeruum, curam oportet gerere, quoniã accidit vt ſit vna & eadem virtus eiuſdem naturæ. Atq; quòd ſit quidem eadem natura fœminæ quæ viri, quatenus eſt fœmina, non dicimus. Omnino enim conuenit vtriq; eorum eſſe aliquam differentiam,per quam vnum quidem eorum fœmineũ, alterum verò factũ eſt maſculinũ.Vterũ ergo geſtare & pãrere,fœminæ adeſſe dicimus, quatenus eſt fœmina,non quatenus eſt homo. Si aũt viri & fœminæ nulla eſſet differentia, vtrunq; eorum eadem ageret & pateretur. Quatenus ergo eſt idẽ, eò quòd ſit eadem anima, veniet ad eandẽ virtutem:quatenus aũt diuerſum per proprietatem corporis,ad vtero geſtandos fœtus,& ſeruandam domum. Volo enim, inquit Apoſtolus, vos ſcire, quòd cuiuſuis viri caput eſt Chriſtus,caput aũt mulieris vir. Non eſt enim vir ex muliere,ſed mulier ex viro.Sed neq; mulier eſt ſeparata à viro, neq; vir ſeparatus à muliere in Domino.Sicut enim virum tẽperantem,& vincere voluptates oportere dicimus:ita etiam cenſuerimus mulierem eſſe oportere temperantem, & in pugna aduerſus voluptates exercitatam. Dico autem, ſpiritu ambulate, & deſiderium carnis non feceritis, præceptum conſulit Apoſtolicum. Caro enim concupiſcit aduerſus ſpiritum, Spiritus autem aduerſus carnem. Hæc ergo opponuntur, non vt malum bono,ſed vt quæ pugnant vtiliter. Subiungit itaq;: Vt non quæ volueritis ea faciatis.Manifeſta autem ſunt opera carnis,quæ ſunt,fornicatio,immunditia,impudicitia,idolorũ cultus,veneficia,inimicitiæ,cõtentiones,æmulationes,iræ,rixæ,diſſenſiones,

B (margin, beside "clamantẽ,Tunde Anaxarchi capſam")

C (margin, beside "rum & mulierem, liberũ & ſeruum")

1.Cor.11. (margin, beside "ro geſtandos fœtus")

Gal.5. (margin, beside "uerſus voluptates exercitatam")

A siones, sectæ, inuidiæ, ebrietates, comessationes, & his similia, quæ prædico vobis, quòd qui talia agunt, regnum Dei non possidebunt. Fructus autem spiritus est charitas, gaudium, pax, patientia, benignitas, continentia, bonitas, fides, mãsuetudo. Carnem, vt existimo, peccatores, vt spiritum iustos dixit. Iam verò assumenda est fortitudo & magni animi virtus, pro animi fiducia & pro tolerantia, vt ei qui pulsat maxillam porrigatur alia, & ei qui aufert pallium, cedatur etiam tunica, iram coërcendo fortiter. Non enim Amazones aliquas ad bellicam virtutem exercemus fœminas, cùm etiam homines velimus esse pacificos. Audio autem mulieres quoq; Sauromatidas, non minus belligerari quàm viros: & alias Sacides, quæ à tergo sagittant, simulantes fugere, æquè atque viri. Scio etiam fœminas Iberie propinquas, & factis & laboribus virilibus vtentes, etiamsi vterum gestent & iam parturiant, nihil de ijs quæ sunt agenda remittere, sed sæpe in ipsa laborum contentione, mulier quæ peperit, infantem sublatum domum portat. Iam ergo mulieres, nõ minus quàm masculi, & domum custodiunt, & venantur, & greges pascunt,

*Acriter & cerui uestigia Cressa secuta est.*

Est ergo philosophandum mulieribus similiter ac viris, etiamsi præstantiores masculi primas in omnibus partes ferant, nisi euaserint molles & effœminati. Vniuerso ergo hominum generi necessaria est disciplina & virtus, si quidem tendant ad felicitatem. Quomodo autem non temerè variè scribit Euripides, aliquando quidẽ, Est quæuis viro coniux deterior, etiamsi optimus ducat probatissimam. aliquando au-
B tem: Quæuis pudica mulier est viri serua. Quæ autem non est pudica, eum qui vnà versatur superat amentia.

*Nam melius nec præstantius ullum est,*
*Concordes quàm cùm in tecto uersantur eodem*
*Vir simul & mulier.*

Caput ergo est id quod est principale, & quod principatum obtinet. Si est autẽ Dominus viri caput, mulieris autem vir, vir est Dominus vxoris, vt qui sit imago & gloria Dei. Quocirca dicit etiam in epistola ad Ephesios, subiecti inuicẽ in timore Dei. *Eph.* 5.
Mulieres suis viris subiectæ sint, sicut Domino, quoniam vir est caput mulieris, vt etiam Christus caput ecclesiæ, ipse Saluator corporis: sed sicut ecclesia subiecta est Christo, ita etiam mulieres proprijs viris in omnibus. Viri diligite vxores vestras, sicut Christus dilexit ecclesiam. Ita etiam viri debent diligere suas vxores, vt sua corpora. Qui suam vxorem diligit, seipsum diligit. Nemo enim carnem suam vnquam odio habuit. Iam verò in epistola quoque ad Colossenses inquit: Mulieres subditæ estote viris, sicut oportet, in Domino. Viri diligite vxores, & nolite esse amari in illas. *Col.* 3.
Filij obedite parẽtib. per omnia, hoc enim beneplacitum est in Domino. Patres, nolite & ad indignationem prouocare filios uestros, vt non pusillo animo fiant. Serui obedite per omnia dominis carnalibus, non ad oculum seruientes, tanquàm hominibus placentes, sed in simplicitate cordis, timentes Dominum. Et quodcunque facitis, ex animo operamini, sicut Domino seruientes, & non hominibus, scientes
C quòd à Domino accipietis retributionem hæreditatis. Domino enim Christo seruitis. Qui enim iniuriam facit, recipiet id quod iniquè gessit: & nõ est personarũ acceptio apud Deum. *Col.* 4.
Domini, quod iustum est & æquũ, seruis prẹstate, scientes quòd & vos Dominum habetis in cœlo, vbi non est Grẹcus nec Iudæus, circuncisio & prẹputiũ, nec Barbarus nec Scytha, nec seruus nec liber, sed omnia & in omnib. Christus. *Col.* 3
Cœlestis aũt ecclesiæ imago est terrestris. Quocirca precamur etiam in terra fieri voluntatem Dei sicut in cœlo, induentes viscera miserationis, benignitatem humilitatem, mansuetudinem, lenitatem, sustinentes nos inuicem, & cõdonantes nobis inuicem, si quis aduersus aliquem habeat querelam, sicut Christus condonauit nobis, ita & nos. Super hæc autem omnia charitas, quod est vinculum perfectionis, & pax Christi regat in cordibus nostris, ad quam etiam vocati estis in vno corpore & grati estote. Nihil enim vetat quo minus sæpe eadem adducatur scriptura, vt pudeat Marcionem, si qua fortè ratione persuasus mutetur, sciens oportere fidelem esse gratum in opificẽ qui nos vocauit, & nobis Euangelium annunciauit in corpore. Ex his ergo nobis est aperta quæ est ex fide vnitas, & ostẽsum est quis sit perfectus. Quare vel inuitis aliquibus & valde resistentibus, etiamsi à marito vel à Domino impendeant supplicia, philosophabitur seruus & mulier. Quinetiam liber quoque, etiamsi tyrannus ei mortem minitetur, etiamsi ducatur ad iudicia, & trahatur ad vltima supplicia, & de facultatibus ac fortunis suis omnibus veniat in periculum, nullo modo

abstinebit à pietate & vero Dei cultu, neq; vnquam ab eo dissentiet: mulier quidem A
quę cum malo marito habitat, filius autem si malum habeat patrem, vel improbum dominũ seruus, forti ac generosi animo virtutẽ persequẽtes. Sed vt viro pulchrum & honestum, & pro virtute, & pro libertate, & pro seipso mori, ita etiam mulieri. Nõ est enim hoc proprium masculorũ naturæ, sed bonorum. Et senex ergo & iuuenis, & mulier & seruus mandatis obediẽs fideliter viuet, & si opus fuerit, morietur, quod quidem fuerit per mortem viuificari. Scimus quidem certè & filios & mulieres & seruos sæpe inuitis parentibus & maritis & dominis euasisse optimos. Nõ minus ergo prompto & alacri animo eos esse oportet qui piè vitam sunt acturi, cùm vi si fuerint aliqui eos arcere: sed multò magis conuenit contendere & egregiè decertare, ne victi excidant ab optimis & maximè necessarijs consilijs. Neq; enim existimo vllam admittere comparationẽ, vtrum sit melius adscribi in consortiũ omnipotentis, an dæmonũ tenebras eligere. Quæ enim à nobis aguntur propter alios, ea semper egerimus, ad illos conantes respicere propter quos videntur fieri, mensuram esse ducẽtes id quod est illis gratum. Quæ aũt propter nosipsos potius quàm propter alios aguntur, æquali studio à nobis fiant, siue videantur aliquibus placere, siue non videantur. Quòd si nõnulla ex ijs quæ sunt indifferẽtia, tantũ honorẽ sunt assecuta, vt etiam aliquibus inuitis videantur esse expetenda ac eligẽda, multò magis existimandũ est esse pro virtute decertandũ, nõ aliquid aliud respiciendo, quàm id quòd rectè honesteq; geri potest, siue id aliquibus alijs videatur, siue nõ. Pulchrè ergo Epicurus quoq; dicit, scribens ad Menœceum: Nec si sit aliquis iuuenis, differat philoso B
phari: neq; si sit senex, defatigetur philosophando: nam nec est aliquis immaturus, neq; nimis prouectæ & exhaustæ ætatis, ad adipiscendam animi sanitatem. Qui aũt dicit nondũ esse vel præterijsse tempus philosophandi, similis est ei qui dicit ad beatitudinẽ vel nondum adesse tempus, vel tempus præterijsse. Quare & iuniori philosophandum est & seni: huic quidem vt senescens iuuenescat bonis, per gratiam eorum quæ facta fuerint: illi autem, vt sit simul iuuenis & senex, per futurorũ metus vacuitatem. De martyrio autem seu testimonio apertè dixit Dominus (ea autem simul coniungemus quæ diuersis in locis scripta sunt) Dico autem vobis, quicun-
Matth. 10. que in me confessus fuerit coram hominibus, filius etiam hominis confitebitur in
Marc. 8. eo coram Angelis Dei. Qui autem me negauerit coram hominibus, negabo ipsum coram Angelis. Quem enim mei vel meorum verborum puduerit in hac generatione adultera & peccatrice, filium quoq; hominis eius pudebit, quando venerit in glo
Matth. 10. riam patris sui cum Angelis suis. Quicunq; ergo in me confessus fuerit coram homi
Luc. 12. nibus, ego quoq; in eo confitebor coram patre meo qui est in cœlis. Cùm autem induxerint vos in synagogas & ad magistratus & potestates, ne prius soliciti sitis quomodo respondeatis, aut quid loquamini. Spiritus enim sanctus docebit vos in ipsa hora quid loquamini. Hunc locum exponens Heracleon, cuius in schola Valentini fuit maxima existimatio, his verbis dicit confessionem quidem vnam esse fide & vitæ institutione, alteram verò voce. Atque quæ fit quidem voce confessio, fit etiam apud potestates, quam solam, inquit, multi non rectè confessionem esse existimant. C
Possunt autem hac confessione vti etiam hypocritæ: sed nec hæc oratio inuenietur dicta esse vniuersè ac generaliter. Nõ enim omnes qui salui fiunt, ea cõfessione quę voce fit vsi sunt, & excessere, ex quibus est Matthæus, Philippus, Thomas, Leuis & alij multi. & est quæ voce fit confessio, non vniuersa ac generalis sed singularis. Vniuersam autem ac generalem nunc dicit eam quæ fit factis & operibus, ei quæ est in ipsum fidei congruentibus. Hanc autem confessionẽ sequitur etiã singularis quę fit apud potestates, si opus fuerit, & ratio impulerit. Nam is voce quoq; rectè confitebitur, cum affectione prius rectè fuerit confessus. Pulchrè autem in ijs qui confitentur quidẽ, In me, dixit: in ijs autem qui negant, adiecit illud, me. Nam ij etsi ipsum voce confessi fuerint, ipsum negant, actione minimè confitentes. Ij autẽ soli in ipso confitentur, qui in ea quæ est in ipsum confessione & actione viuunt, vtpote quòd & ipse ijs implicetur quæ confitetur, & ab ijs teneatur. Quocirca nunquam potest seipsum negare. Eum autem negant qui non sunt in ipso. Non enim dixit, Qui negauerit in me, sed me. Nullus enim vnquam qui est in ipso, ipsum negat. Illud autem, coram hominibus, & ijs qui salui fiunt, & etiam gentilibus similiter, apud alios quidẽ vitæ institutione, apud alios verò etiam voce. Quamobrem nunquam possunt ipsi negare: eum autem negant qui non sunt in ipso. Hæc quidem Heracleon: & in alijs quidem videtur nobiscũ sentire in hac parte. Illud autem nõ aduertit, quòd etsi non
actione

A actione aliqua & vita confessi sunt Christum coram hominibus, eò tamen quòd voce confiteantur in iudicijs, & vsq; ad mortem cruciati non negent, ex affectione credidisse cernuntur. Confitens autem affectio, & maximè quæ ne morte quidem mutatur, omnia vitia quę gignebantur per cupiditatem corporis, omnino rescindit. Est enim, vt semel dicã, repentè accumulata per actionẽ pœnitentia, & vera in Christum confessio, voce testificante. Si aũt spiritus patris in nobis testificatur, quomodo sumus adhuc hypocritæ, quos dixit sola voce testari? Dabitur aũt aliquib. si expediat respondere ac defendere, vt & per testimoniũ & confessionem omnes iuuentur, dũ confirmãtur quidem qui sunt in ecclesia, admirantur autem & ad fidẽ deducuntur, qui ex gentibus salutem curiose quæsierint, reliqui aũt stupore afficiuntur. Quãobrem oportet omnino confiteri, id enim situm est in nostra potestate: respondere aũt & defendere, non omnino. Non est enim hoc quoq; situm in nostra potestate. Qui aũt sustinuerit in finẽ, is saluus erit. Nam quis ex ijs qui sapiunt, non potius elegerit in Deo regnare, quàm seruire? Deũ ergo confitentur quidam nosse, vt dicit Apostolus, factis aũt negant, cùm sint abominandi, increduli, & ad omne opus bonum reprobi. Illi aũt etsi hoc solum confessi fuerint, aliquod vnũ bonũ effecerint in fine. Videtur ergo Martyrium esse expurgatio peccatorũ cum gloria. Iam verò dicit pastor: Effugietis operationem ferę agrestis, si cor vestrũ fuerit mundum & ab omni reprehensione alienum. Quinetiã ipse Dominus, Expetiuit, inquit, vos Satanas vt cribraret, ego aũt rogaui. Solus ergo Dñs propter eorũ qui ei insidiabantur hominũ, & infidelium expurgationẽ, bibit calicem. Quem imitantes Apostoli, vt qui reuera essent cognitione præditi & perfecti, pro ecclesijs quas fundarũt passi sunt. Sic ergo ij qui sunt cognitione præditi, vestigijs insistentes Apostolicis, debent ita se gerere vt in eos non cadat peccatum, & propter dilectionem in Dominum, diligant etiã proximum, vt si casus aliquis pro ecclesia euocet, citra offensionem patientes afflictiones bibant calicem. Quicũq; autem factis quidem in vita, verbis autem in iudicio ferũt testimonium, & spem expectantes, & timorem reformidantes, ij sunt meliores ijs qui ore solùm confitentur salutem. Quòd si quis etiam transierit ad charitatem, is re uera est beatus & germanus testis, vt qui sit perfectè confessus, & præceptis & Deo, per Dominum, quem diligens significauit esse fratrem, totum seipsum tradiderit, propter Deum, tanquam depositum, gratè & amanter reddens hominem qui exigitur. Cùm autem rursus dixerit, Quando vos persecuti fuerint in hac ciuitate, fugite in aliam: non suadet fugere, tanquam malum sit pati persecutionem: nec vt mortem extimescentes, iubet nos eam fuga declinare. Vult aũt nos nulli esse autores, neq; alicuius mali causa adiutores, nec nobisipsis, nec ei qui persequitur, nec ei qui interimit. Denunciat enim quodammodo vt caueat. Qui aũt non obedit, est audax & temerarius, & inconsultè se in manifesta pericula conijciens. Si autem qui hominem Dei interimit, in Deum peccat, is quoq; eius cędis reus tenetur qui se offert iudicio. Is autem fuerit qui non vitat persecutionem, se capiendum præbens per audaciam. Is est, qui quantum in se est, adiuuat improbitatem eius qui persequitur. Quòd si etiam ipse causam præbens, feram planè irritet, similiter etiam si præbeat aliquam pugnæ causam, vel damni, vel iudicij, vel inimicitiarum, is occasionem peperit persecutionis. Et ideo iussi sumus nihil retinere ex ijs quæ ad hanc vitam pertinent: sed ei qui tollit pallium, præterea etiam dare tunicam: non solùm vt permaneamus obnoxij nullis animi perturbationibus, sed ne ea vendicantes, eos qui in iudicio contendunt, in nos reddamus efferatos, & per nos eos commoueamus vt nomen maledictis appetant. At inquiunt: Si Deus vestrî curam gerit, cur patimini persecutionem, & morte afficimini? an ipse vos eis tradit? Nos autem nõ sic existimamus, velle Dominum vt in casus incidamus, sed propheticè prædixisse ea quæ essent euentura: fore scilicet vt propter nomẽ eius pateremur persecutionem, vt occideremur, & vt suspenderemur. Quamobrem noluit nos pati persecutionem, sed ea quæ passuri sumus prius significauit, per eam quòd sint euentura prædictionem, exercens ad tolerantiam, cui promisit hæreditatem. Quanquam non soli, sed cum multis supplicio afficimur. At illi, inquiunt, cùm sint malefici, iure luũt pœnas: ergo vel inuiti nobis iustitiam suo testimonio tribuunt, qui iniustè propter iustitiã punimur. Sed neq; iniuria iudicis attingit Dei prouidentiam. Oportet enim iudicem in sua potestate habere sui animi sententiam, non qui instar animatorum quodammodo trahatur funibus, vt qui ab externa fortasse solùm causa capiat occasiones. Examinatur ergo & probatur ipse sicut nos, in eo quod iudicat, & per eorum quæ sunt eligenda, ele-

Matth. 24.
Tit. 1.
Luc. 22.
B
Matth. 10.
C

ctionem,& per patientiā. Quamuis aūt nō faciamus iniuriam, tanquam tamen iniu A
riā facientes,nos intuetur Iudex.Neq; enim nostra nouit,neq; vult scire, quodā aūt inani præoccupato abripitur præiudicio,quocirca etiam iudicatur.Nos ergo persequuntur, non vt qui nos esse iniustos deprehenderint, sed quòd nos vitæ humanæ iniuriam facere existiment,eò quòd simus Christiani, & ipsos inquam qui sic vitam instituimus,& alios quos adhortamur vt vitam degant similem. Cur aūt, inquiunt, cùm vos persequuntur,nihil vobis affertur auxilij?Quid enim,quod ad nos quidem attinet,nobis fit iniuriȩ,cùm morte dissoluamur ituri ad Dominum,& veluti ȩtatis, vitæ sustinentes mutationem? Si aūt sapuerimus, ijs gratias habebimus qui nobis præbuerint occasionē celeris migrationis, si testimonium feramus propter dilectionem. Si aūt mali quidam homines nos multis esse visi sumus, si ipsi quoq; nouissent veritatē, omnes quidē in viam insilijssent, non fuisset aūt electio. Sed enim nostra fides,cùm sit lux mundi,arguit infidelitatem. Nam me Anytus quidē & Melitus interfecerint,nullo aūt modo me læserit quispiam. Neq; enim fas esse existimo, vt id quod est melius,lædatur ab eo quod est deterius,adeò vt vnusquisq; ex nobis securè
*Psal.117.* dicat & cōfidenter:Dn̄s mihi adiutor,non timebo quid faciat mihi homo.Iustorum
*Sap.3.* enim animæ in manu Dei sunt,& non tanget eas tormentum. Basilides autem in vicesimotertio Exegeticôn,de ijs qui in martyrio puniuntur, his verbis hæc dicit:Dico enim,quicunq; incidunt in eas quæ dicuntur afflictiones, siue cùm imprudentes peccauerint in alijs lapsibus,ad hoc bonum deducuntur, benignitate eius qui adducit,cum reuera alia ex alijs crimina intententur,ne patiātur ob ea quæ mala esse cer- B
tū est & extra omnē controuersiā,neq; maledictis appetiti vt adulter,vel occisor,sed accusati quòd sint Christiani:quod quidem eos consolabitur, vt ne videantur quidē pati.Si quis,qui omnino non peccauerit,accesserit ad patiendū, rarū id quidem, ne is quidē aliquid patietur ex paratis à potestate insidijs, sed patietur vt passus est infans qui videbatur nihil peccasse.Deinde paulò inferius subiūgit: Sicut ergo infans qui prius nō peccauit,aut actu quidem in se nihil peccauit,sed quòd habeat id quod peccauit,postquam coniectus fuerit ad patiendum,afficitur beneficio, vt qui lucretur multa quæ sunt difficilia: ita etiam si perfectus quoq; qui actu nihil peccauerit, patiatur, & passus fuerit,passus est similiter atq; infans,in se quidem habens peccandi potestatem,non accepta aūt occasione ad peccandum non peccauit: quare nō est sibi imputandū,quòd nō peccauerit.Quomodo enim qui vult adulterium admittere,est adulter,etiamsi non consequatur effectus? & qui vult cædem facere,est homicida, etiamsi non possit occidere? Ita etiā eum quem dico non peccasse si videro patientem,etiamsi nihil mali fecerit,malū dicam,eo quòd velit peccare. Quiduis enim dicam potius,quàm malum id quod prouidet. Deinde inferius,apertè quoq; de Domino dicit tanquam de homine:Sin autem his omnibus prætermissis orationibus, accesseris ad hoc vt mihi adducta aliquarum personarum reuerentia dicas,verbi causa,hic ergo peccauit,hic enim est passus: si permittas quidem dicam, Non peccauit quidem,sed erat similis infanti qui patiebatur.Sed si vehementius vrgeas,dicā,quēcunq; hominem nominaueris,eum esse hominē,iustum aūt Deum. Nullus enim est C
mundus,vt dixit quispiam,à sorde. Sed Basilidis fundamentū dicit animā quȩ prius peccauerat in alia vita,hîc pati suppliciū,electam quidem,vt puniatur,aliam autem, vt quæ suo purgetur supplicio. Quomodo autem hoc verum est, cùm in nostra potestate situm sit confiteri & puniri,aut non? In eo enim qui est negaturus,soluitur ea quæ est ex Basilidis sententia prouidentia.Rogabo ergo eum in eo qui tenetur confessore,vtrum feret testimonium,& punietur ex prouidentia,an non. Nam si neget, non punietur:sin autem & exitus,& quòd non oporteat eum puniri,dicet esse interitum eorum qui sunt negaturi,ex prouidentia,inuitus feret testimonium. Quomodo autem adhuc in cœlis reponetur gloriosissima merces ei qui testimoniū tulerit, propterea quòd fuerit testis? Sin autem eum qui erat peccandi potestate præditus, non siuit prouidentia venire ad peccandum, in vtroq; est iniusta, & quòd eum non liberet qui propter iustitiam trahitur ad suppliciū, & quòd eum qui volebat iniuriam facere liberauerit,cùm ille quidem fecerit propterea quòd voluit,hęc verò opus prohibuerit, & non iure ei faueat qui est peccandi potestate præditus. Quomodo autē non est verè impius & à Deo alienus, qui diabolum quidē in Deos referat, hominē aūt peccandi potestate præditum,ausus est dicere Dominū?Est enim tentator diabolus, sciens quidem quòd sumus, nesciens autem an tolerabimus:sed nos volēs à fide excutere,ad se etiam conatur adducere, quod quidem est ei solum permissum,

A sum,& propterea quòd nos,quòd ex nobis ipsis saluos esse oporteat, occasiones ex præceptis acceperimus:& propter eius probrum ac ignominiã qui tentauit, & non est assecutus:& propter eorum confirmationem qui sunt in ecclesia, & propter eorũ conscientiam qui sunt admirati tolerantiam.Si aũt martyrium est retributio per supliciũ:& fides quoq; & doctrina,per quas est martyrium. Sunt ergo hæ quoq; adiutrices supplicij,quo quidnam aliud possit esse absurdius?Sed ad illa quidem dogmata,an à corporib.in corpora migret anima,& de diabolo,dicetur suo tempore.Nunc autem ijs quæ dicta sunt, hæc quoq; adijciamus. Vbi est adhuc fides,si pro luendis pœnis eorum quæ prius peccata sunt subeatur martyrium?Vbi est autem charitas in Deum,qui propter veritatem persecutionem patitur & sustinet? Vbi est autem laus eius qui confessus est,& vituperatio eius qui abnegauit?Ad quid autem est adhuc vtilis recta vitæ institutio,morte afficere cupiditates, & nullam odisse creaturam? Si aũt vt ipse dicit Basilides,vnam partem ex Dei quæ dicitur voluntate, existimamus omnia diligere, quòd omnia rationem ac proportionem conseruent ad vniuersum: alteram autem,nihil concupiscere, & tertiam nihil odisse, voluntate Dei erunt etiã supplicia,quod quidem impiũ est cogitare.Neq; enim Dominus passus est voluntate Patris,nec qui patiuntur persecutionem, eam Dei voluntate patiuntur. Nam ex duobus alterum,aut bonum quid & honestum erit persecutio propter Dei voluntatem,aut erunt insontes qui eos afficiunt & affligunt.Sed nihil fit sine voluntate Domini vniuersorum.Restat itaq;,vt breuiter dicamus,ea quæ sunt huiusmodi, euenire Deo non prohibente. Hoc enim solum seruat & prouidentiam, & Dei bonitatem.Non est ergo existimandum eum operando exercere afflictiones, neque enim hoc cogitare licuerit:sed non prohibere eos qui eas exercent,persuasum habere cõuenit,& ad bonum vti audacibus cœptis aduersariorum.Destruam,inquit,murum, & erit in conculcationem, cùm eiusmodi ars erudiens sit ipsa prouidentia: in alijs quidem propter sua vniuscuiusq; peccata: in Domino aũt & apostolis, propter nostra.Iam verò diuinus Apostolus:Hæc enim est,inquit,Dei voluntas sanctificatio vestra,vt vos abstineatis à fornicatione, & sciat vnusquisq; vestrûm vas suũ possidere in sanctificatione & honore,non in affectione cupiditatis sicut gentes quæ non norunt Dominũ:& nõ exuperet, & per auaritiã circumscribat in negocio fratrem suũ, quoniam vindex est Dominus de his omnibus,sicut etiam vobis prædiximus, & testificati sumus.Non enim vocauit nos Deus propter immunditiam,sed in sanctificatione.Itaq; qui spernit,non hominem spernit, sed Deum, qui dedit nobis spiritum suum sanctum. Propter hanc ergo sanctificationem nostram, non prohibitus fuit pati Dominus.Si quis autem ex eis respondens,dicat puniri quidem Martyrẽ,propter peccata quæ sunt admissa ante hanc in corpus migrationem:fructum aũt rursus esse percepturum vitæ quæ hìc acta fuerit: sic enim constitutam esse administrationem: eum rogabimus an remuneratio fiat ex prouidentia. Nam si quidem nõ fuerit diuinæ administrationis,perit consilium & dispensatio expiationis,& eis suum excidit argumentum,& fundamentũ eorum opinionis.Si aũt à prouidentiã sunt expiationes,sunt punitiones quoq; ex prouidentia:prouidentia autem etsi à Principe, vt ita dicam,moueri incipit,immixta tamen est & insita in substantijs, cum eo quòd etiã facta est substantiarũ à Deo vniuersorum. Quæ cùm ita habeant,necesse est vt ipsi fateantur,vel non esse iniustam punitionem,& rectè iusteq; se gerunt qui condemnãt & persequuntur Martyres:aut ex Dei voluntate exerceri persecutiones.Non vtique ergo labor & metus rebus accidit,vt ipsi dicunt, tanquam rubigo ferro, sed ex propria voluntate accedit ad animam. Sed de his quidem multa reseruantur dicenda, quod ad eorum,quæ quidem postea fiet, attinet considerationem, eam in tempore tractantibus. Valentinus autem in quadam homilia scribit his verbis:Ab initio estis immortales,& filij estis vitæ æternæ, & mortem voluistis inter vos ipsos dispertiri, vt eam consumeretis,& mors in vobis moreretur,& per vos. Quando enim mundũ quidem soluitis,vos autem non dissoluimini,estis domini creaturæ,& cuiusuis interitus.Natura enim fieri saluum,genus ponit ipse quoq; similiter atque Basilides: ad nos autem desuper huc venire hoc diuersum genus, ad mortem de medio tollendã: mortis autem ortum,esse opus eius qui creauit mundum.Quamobrem sic etiã accipit illam scripturã,Nemo videbit faciem Dei, & viuet, vt qui sit autor & causa mortis.De hoc Deo illa tacitè innuit,scribẽs his verbis:Quo est minor imago viua facie, eo est minor mũdus,viuo æone.Quæ'nam est ergo causa imaginis? Faciei maiestas, quæ pictori exhibuit figuram, vt per eius nomen honoraretur. Non enim ex se & sua

B, C (marginal section letters)

Marginal notes: *Esa.4.* — *1.Thess.4.* — *Gen.33.* — *αἰών, æuum, seculum.*

sua authoritate fuit forma inuenta, sed impleuit nomē quod erat defectū in latitudi- A
ne. Adiuuat aūt quod Dei quoq; est inaspectabile, ad fidē eius quod effictū est. Creatorem enim, vt qui Deus & pater sit vocatus, veri Dei imaginem & Prophetam appellauit: pictorem autem, sapientiā, cuius figmentum est imago, ad gloriam eius qui est inaspectabilis. Nam quęcūq; procedunt ex coniugatione, ea sunt pleromata, id est, implementa: quęcunq; aūt ab vno, imagines. Quoniā aūt nō est id quod eius apparet: quæ est ex dimidio anima venit, nempe id quod est differens, & hoc est, insufflatio differentis spiritus, & in summa id quod inspiratur in animam imaginem spiritus. Et vt in summa dicam, quæ dicuntur de creatore qui factus est ad imaginem, ea in imagine sensili in generatione dicunt fuisse prædicta de generatione hominis. quinetiam ad seipsos quoq; transferunt similitudinem, eius qui differt spiritus interiectionem Creatori fuisse ignotam tradentes. Atq; quādo q, sit quidē vnus Deus qui prædicatur per legem & Prophetas & Euangelium, tractabimus, aduersus hoc quoq; differemus: est enim oratio principalis. Ei autem quod vrget est occurrendū. Si ad dissoluendam mortem venit genus differens, Christus mortem non aboleuit, nisi ipse quoq; dicatur eiusdē cum eis essentiæ: si aūt vnus eam aboleuit, ita vt genus nō attingeret differens, nō isti mortē abolent qui sunt ęmuli Creatoris, qui eius quę est ex dimidio animæ suæ inspirāt imagini vitam supernam, conuenienter ei quod à se susceptum est dogmati, etiamsi hoc dicant euenire per matrē. Sed etsi dicant vnà cum Christo aduersus mortem belligerari: occultum confiteantur decretū, quòd audeant Creatoris diuinam insectari potentiam, corrigentes eius creaturam, tanquam potentioris, quam ipse non potuit liberare ab interitu. Fuerit autem Dominus quoq; Deo creatore melior ac præstantior. Nūquam enim filius cum patre contenderit, idq; inter Deos. Quòd autem hic sit pater filij, Creator vniuersorū Dominus omnipotens, ad illam differamus contemplationē, in qua aduersus hæreses disserere promisimus, ostendentes eum esse solum qui est ab ipso prædicatus. Sed nobis quidē scribens Apostolus ad tolerātiam afflictionū: Et hoc, inquit, ex Deo quod vobis donatū est pro Christo, vt non solùm in ipsum credatis, sed etiā pro eo patiamini, idem habentes certamen, quale vidistis in me, & nunc auditis in me. Si qua est ergo consolatio in Christo, si quod solatium charitatis, si qua societas spiritus, si qua viscera & miserationes, implete meum gaudium, vt idem sentiatis, eandem habentes charitatem, vnanimes, idem sentientes. Si autem immolatur super sacrificio & ministerio fidei gaudens & congratulans, eos ad quos loquitur Apostolus, Philippēses vocans gratiæ consortes & socios, quomodo ipsos dicit vnanimes & animales? Similiter etiam de Timotheo quoq; scribens & seipso: Neminem enim, inquit, habeo tam vnanimem, qui germanè de vobis futurus sit solicitus. Omnes enim quæ sua sunt quærunt, non quæ Iesu Christi. Ne ij ergo qui prius dicti sunt, probri instar nos animales dicant. Quinetiam Phryges: iam enim ij quoq; illos qui nouam non attendunt Prophetiā, animales appellant, aduersus quos differemus, cùm agemus de Prophetia. Eum ergo qui est perfectus, oportet exercere charitatem, & hinc ad diuinam tendere amicitiam, per charitatem exequendo mandata. Diligere autem inimicos, nō dicit malum amare, neq; impietatem, vel adulterium, vel furtum, sed furem, & impium, & adulterum non quatenus peccat, & aliqua actione inquinat hominis appellationem, sed quatenus est homo, & opus Dei. Peccare certè inter actiones ponitur, non inter substantias, quamobrem nec Dei est opus. Dei autem inimici dicti sunt peccatores, qui sunt inimici mandatorū quibus non obediunt, sicut amici qui audiunt: hi quidem propter coniunctionem, illi verò propter alienationem ex libero animi arbitrio profectam, appellati. Nihil enim sunt inimicitiæ neq; peccatum, absq; inimico & peccatore: & nihil concupiscere, nō tanquam sint aliena quæ sunt desiderabilia, docet non affici desiderio, vt existimarunt qui Creatorem alium esse à primo Deo discernunt: neq; tanquam sit execranda & mala generatio: eæ enim sunt impiæ opiniones. Quæ aūt sunt mundi, aliena dicimus, non vt quæ sint absurda, nec vt quæ non sunt Dei Domini vniuersorum, sed quoniam per totum seculum non in eis permanemus, vt quæ possessione sint aliena, & successorum: vsu verò sint vniuscuiusq; nostrûm propria, propter quos etiā facta sunt: sed tamen eatenus, quatenus vnà cum eis esse nobis necesse est. Igitur conuenienter naturali appetitioni, rectè vtendum est ijs quæ sunt prohibita, cauendo ne quouis modo nimium dilabamur, & supra modum in ea afficiamur. Porrò autem quanta est etiam benignitas? Diligite, inquit, inimicos vestros. Benedicite ijs qui vos execrantur, & orate pro eis, qui vos afficiunt

Marginalia: B (beside "audeant Creatoris"); Philip. 1. (beside "vobis donatū"); Philip. 2. (beside "mini, idem"); C (beside "Prophetia. Eum ergo"); Luc. 6. (beside "supra modum"); Matth. 5. (beside "inquit, inimicos").

A afficiunt cōtumelijs,& similia. Quibus adijcit: Vt sitis similes patris vestri qui est in cœlis,significans eam quæ Deo fit asimilationem. Rursus aūt inquit:Sis citò beneuolus aduersario tuo,donec es in via cū ipso. Aduersarius aūt non est corpus,vt quidam volunt,sed diabolus,& qui ei assimilātur, qui vnà nobiscum in via ingreditur, per homines qui eius facta imitantur in hac vita terrena. Fieri ergo nō potest,vt non patiātur inimicissima,qui se Christi quidem esse cōfitentur,in diaboli aūt versantur operib. Scriptum est enim:Ne fortè te tradat Iudici, Iudex aūt ministro imperij diaboli. Persuasum enim habeo,quòd neque mors, quam afferunt ij qui persequuntur, neq; vita quæ hîc agitur,neq; Angeli qui defecerunt,neq; principatus (Satanæ autē principatus est vita quam eligit:tales enim sunt,qui sunt ex eo principatus,& potestates tenebrarū) neq; præsentia, in quibus sumus tempore huius vitæ, vt spes quidem militis,lucrum verò mercatoris: neq; altitudo, neq; profunditas,neque aliqua alia creatura, quæ per propriam homini operationem resistit fidei eius qui suo eligit arbitrio. Creatura autem dicitur vniuocè operatio,vt quæ sit nostrum opus,non poterit nos separare à charitate Dei,quæ est in Christo Iesu Domino nostro. Habes summam Martyris cognitione præditi. Scimus autem quòd omnes habemus cognitionem quæ est in communibus, & quòd vnus sit Deus. Scribebat enim ad fideles, vnde infert: Sed non est in omnibus cognitio, quæ traditur in paucis. Sunt autem qui dicunt eam,quæ est de ijs quę simulachris immolata sunt,cognitionem nō ferre in omnibus,ne fortè potestas nostra fiat offendiculum infirmis:perit enim infirmus Matth. 5. Rom. 8. 1. Cor. 8.

B tua cognitione. Quòd si dicant, oportere emere quicquid venditur in macello, per interrogationem subiungentes illud,nihil interrogantes, æquè ac interrogantes, ridiculam afferunt interpretationem: dicit enim Apostolus: Omnia alia ex macello emite,nihil interrogantes, conuenienter exceptioni eorum quæ ostenduntur in generali omniū Apostolorum epistola, quæ, quòd ita visum sit spiritui sancto, scripta quidē est in Actis Apostolorū:lata aūt fuit ad fideles per ipsum Paulum qui ministrabat: significarunt enim oportere necessariò abstinere ab immolatis,& sanguine, & suffocatis,& fornicatione,à quibus se conseruantes,rectè esse facturos. Aliud ergo est quod dictum est ab Apostolo:Nunquid non habemus potestatem comedendi & bibendi? Nunquid nō habemus potestatē sororē mulierē circunducendi, vt etiā reliqui Apostoli,& fratres Domini,& Cephas? sed non vsi sumus,inquit,hac potestate, sed omnia sustinemus,ne demus offensionem Euangelio Christi,aut onera circumferentes,cùm oporteat esse expeditos ad omnia, aut effecti exemplum ijs qui volūt continere,vt qui non ita instructi simus,vt quæ nobis apponuntur nō libēter comedamus,& temerè cum muliere habeamus consuetudinem. Maximè aūt eos quibus est credita tanta dispensatio, conuenit esse purū, & nulla labe pollutū exemplar discentibus. Nam cùm liber,inquit,essem ex omnibus, omniū me seruum feci,vt omnes lucrifacerē. Omnis aūt qui in certamine contendit, est continens in omnibus. Sed Domini est terra & plenitudo eius. Propter conscientiam ergo abstinendū est Act. 15. 1. Cor. 9.

C ab ijs,à quibus est abstinendum:conscientiā autem dico,non suam,est enim cognitione prædita,sed alterius,ne malè ædificetur per ignorationem,imitando id quod non cognoscit,& pro magni & excelsi animi viro fiat contemptor. Cur enim mea libertas iudicatur ab alia conscientia? Si ego cum gratia participo,cur maledictis appetor pro eo pro quo gratias ago? Omnia ergo quæ facitis,in gloriā Dei facite,quæ scilicet à regula fidei permissum est facere. Corde quidem creditur ad iustitiam, ore autē fit confessio ad salutē. Dicit itaq; Scriptura: Quisquis credit in ipsum,pudore non afficietur. Hoc est verbum fidei quod prædicamus: quòd si confessus fueris verbum in ore tuo,quòd Dominus Iesus: & credideris in corde tuo,quòd Deus eum suscitauit à mortuis,saluus eris:euidenter perfectam describit iustitiam, & opere impletam & contemplatione. Benedicere ergo oportet ijs qui persequuntur. Benedicite,& nolite execrari. Gloriatio enim nostra hæc est,testimoniū cōscientiæ nostrę, q, in sanctitate & synceritate Deum cognouimus:per hanc paruā occasionem,opus ostendentes charitatis, quòd non in sapientia carnali, sed in gratia Dei conuersati sumus in mundo. Hæc Apostolus quidem de cognitione. Communem autem fidei doctrinam,dixit odorem cognitionis, in secunda epistola ad Corinth. Nam in hodiernū vsq; diem, idem velum multis in lectione veteris Testamēti manet, vt quod non sit apertum per conuersionem ad Dominum. Propterea ostendit etiam resurrectionem,ijs qui possunt perspicere eam quæ est adhuc in carne,vitæ serpentis super ventrem. Vnde etiam eos qui sunt eiusmodi, vocauit fœtus viperarū,libidinosos,ac Rom. 10. 2. Cor. 1. 2. Cor. 2. 2. Cor. 3.

voluptarios, ventriq; & peni seruientes, & propter mundanas cupiditates sua inui- A
1.Ioan.2. cem capita abscindentes. Filioli, ne diligamus sermone, nec lingua, ait Ioannes, perfectos esse docés, sed opere & veritate. In hoc cognoscemus, quòd ex veritate sumus. Si aūt Dei est charitas, charitas quoq; est pietas ac Dei cultus. Timor non est in charitate: sed perfecta charitas extrà mittit timorem. Hæc est charitas Dei, vt eius pręcepta seruemus. Et rursus, ei qui cupit fieri cognitione prædi tus, scriptū est: Sed sis forma fideliū, in sermone, in conuersatione, in charitate, in fide & castitate. Fidei enim, vt arbitror, perfectio, distinguitur à cōmuni fide. Porrò autem diuinus quoq; Apostolus per hæc tradit regulā eius qui est prædi tus cognitione, sic scribens: Ego enim didici in ijs in quibus sum esse contentus. Scio & esse humilis, scio & abūdare. Vbiq; & in omnibus sum institutus, & satiari, & esurire, & abūdare, & penuriam pati. Omnia possum in eo qui mihi dat vires. Iam verò cum alijs quoq; disserés, vt eos arguat & admoneat, non veretur dicere: Recordemini autem priorum dierum, in quibus illuminati magnum certamen sustinuistis passionum, partim quidem opprobrijs & afflictionibus facti spectaculum, partim autem socij taliter cōuersantium effecti. Nā & vincula mea commiserati estis, & rapinam bonorū vestrorum cum gaudio suscepistis, cognoscentes vos habere meliores & manentes facultates. Nolite itaq; amittere confidentiam vestram, quæ magnam habet remunerationem: opus enim habetis patientia, vt cùm Dei voluntatem feceritis, reportetis promissionem. Adhuc enim parumper: Qui venit veniet, & non tardabit. Iustus autem meus ex fide viuet. Quòd si subtraxerit se, nō placebit animæ meę. Nos autem non sumus subtractionis B ad perditionem, sed fidei ad acquisitionem animæ. Deinde adducit tibi examen exemplorum diuinorum. An non, inquit, fide se rectè gesserunt, qui ludibria & flagella, & vincula præterea & carcerē experti sunt? Lapidati fuerunt, tentati sunt, in cęde gladij mortui sunt, circuierunt in ouinis & caprinis pellibus, egentes, afflicti, vexati, quibus dignus non erat mundus: in solitudinibus errantes, & montibus, & speluncis, & foraminibus terræ. Et hi omnes testimonio fidei probati, non acceperunt promissionem. Restat intelligendum quod per παρασιώπησιν, id est, reticētiam dictum est, soli. Subiūgit itaq;: Cùm de nobis melius aliquid Deus præuidisset, bonus *enim* erat, vt non sine nobis consummarentur. Itaq; cùm & nos circa nos habeamus tantam nubem sanctam & pellucidam testium, deponentes omne pondus, & nos facilè circunstans peccatum, per patientiam curramus ad nobis propositum certamen, respicientes ad fidei autorem & consummatorem Iesum. Et quòd vnam quidem dicit salutem in Christo, & iustorum, & nostram, prius quidem dixit apertè: nihilo tamen secius de Mose quoq; dicens, subiungit: Maiores existimans diuitias quàm thesauros Ægypti, Christi improperium: respiciebat enim remunerationem. Fide reliquit Ægyptum, non veritus iram Regis. Inuisibilem enim tanquam qui videret, sustinuit. Diuina sapientia dicit de Martyribus: Visi sunt in oculis insipientium mori, & reputata est vexatio eorum exitus, & à nobis discessus, contritio: illi verò sunt in pace. Etenim si in oculis hominum supplicijs affecti fuerint, spes eorum plena est
Sap.3. immortalitatis. Deinde subiungit, gloriosam expurgationem docens esse martyrium: & in paucis castigati, magnis afficientur beneficijs, quoniam Deus tentauit eos, hoc est, ad eorum probationem: & vt pudore afficiatur tentator, siuit eos tentari. Et inuenit eos se dignos, vt scilicet vocentur filij. Tanquam aurum in fornace probauit eos, & tanquam solidam sacrificij oblationem excepit eos, & in tempore inspectionis eorum fulgebunt, & tanquam scintillæ in stipula percurrent. Iudicabunt gentes, & dominabuntur populis, & Rex eorum erit Dominus in secula. Porrò autem Clemens quoq; Apostolus in Epistola ad Corinthios, ipse quoque nobis quandam formam eius qui est prædi tus cognitione describens, dicit: Quis *enim* apud vos versatus, omni virtute perfectam, firmamq; ac stabilem fidem vestram non probauit? temperantemq; ac moderatam vestram in Christo pietatem non est admiratus? & vestri in hospites amoris magnificos vestros mores non prædicauit? & perfectam firmamq; ac stabilem cognitionem non beatam esse censuit? nam citra personarum acceptionem omnia fecistis, & in Dei legitimis ambulastis. Deinde apertius: Fixis ergo oculis eos intueamur, qui magnificæ eius gloriæ perfectè seruierunt. Accipiamus Enoch, qui in obedientia iustus inuentus fuit translatus: & Noë, qui cùm credidisset, fuit seruatus. Et Abraham, qui propter fidem & hospitalitatem Dei amicus, pater autem Isaac est appellatus. Propter hospitalitatem veramq; religionem, Loth fuit seruatus ex Sodomis. Propter fidem & hospitalitatem seruata est
Raab

Marginal references: 1.Tim.4. (at "pta seruemus"); Philip.4. (at "vt arbitror"); Heb.10. (at "& admoneat"); Heb.11. (at "la, & vincula"); C (at "immortalitatis")

A Raab meretrix. Propter patientiam & fidem, in pellibus caprinis & ouinis, & ex camelorum pilis contextis vestibus ambularunt, prædicantes regnum Christi: dicimus autem Eliam & Elisæum, Ezechielem & Ioãnem, Prophetas. Qui enim Dei amicus, propter fidem liberam, vocatus est Abraham, non fuit gloria elatus, sed magna vtens modestia, dixit: Ego autem sum terra & cinis. Et de Iob sic scriptũ est: Iob *Gen. 18.*
autem erat iustus, & reprehensioni non obnoxius, Deũ ritè colens, abstinens ab omni malo. Is qui sua patientia superauit tentatorem, & simul fuit testis, & à Deo accepit testimonium, humilitatem amplectitur, & dicit: Nullus est mundus à sorde, ne si sit quidem vnius diei vita eius. Moses fidelis seruus in tota domo eius, dixit ad eũ qui ex rubo dabat responsa: Quis ego sum, quòd me mittis? Ego autem sum & voce tenui, & lingua tardiori, vt Domini vocem ministrem per linguam humanã. Et rursus: Ego autem sum vapor ex olla. Deus enim superbis resistit, humilibus dat gratiã. Iam verò Dauid quoque, de quo testimonium ferens dicit Dominus: Inueni hominem secundum cor meũ, Dauid Iesse filium, in oleo sancto vnxi eum: sed ipse quoq; dicit ad Deum, Miserere mei Deus, secundum magnam misericordiam tuam. Et secundum multitudinem miserationum tuarum dele iniquitatem meam. Amplius laua me ab iniquitate mea, & à peccato meo munda me. Quoniam iniquitatẽ meam ego cognosco, & peccatum meum in conspectu meo est semper. Deinde tacitè significans peccatum quod legi non subijcitur, scitè suam ostendens modestiam, subiungit: Tibi soli peccaui, & malum coram te feci. Dicit enim alicubi scriptura: Spiritus
*Iob 1.* *Iob 25.* *Exod. 3.* *Iacob. 4.* *Psal. 50.*

B Domini lucerna, scrutans ventris penetralia. Et quò quis se iustè gerens, euadit maiori cognitione præditus, eò est ei propinquior spiritus lucidus. Sic iustis appropinquat Dominus, & nihil eum latet ex nostris cogitationibus, & quas facimus disputationibus. Dominum Iesum dico, qui omnipotenti sua voluntate corda nostra intuetur, cuius sanguis fuit pro nobis sanctificatus. Obseruemus ergo eos qui nobis præsunt, & reuereamur seniores, honoremus iuuenes, Dei doceamus disciplinam. Beatus enim qui docuerit & fecerit quæ sunt Domini, pro dignitate. est autẽ præclaræ magnificæq; notionis, & contemplantis veritatis. Vxores nostras ad id quod bonum est corrigamus: amabiles, inquit, mores castitatis ostendant: puram & synceram suæ mansuetudinis demonstrent voluntatem: linguæ suę moderationem, silentio efficiant manifestam: charitatem suam non per prouocationes, sed omnibus qui timent Dominum, sanctè præbeant æqualem. Filij nostri sint disciplinæ Domini participes, discãt quid valeat apud Deum humilitas, quid possit casta apud Deũ dilectio, quomodo timor Domini bonus & magnus, seruans omnes qui in ipso sanctè versantur in puro corde. Est enim scrutator cogitationum, & mentis consiliorũ, cuius spiritus est in nobis, & cùm voluerit, eum aufert. Hęc autem omnia confirmat fides quæ est in Christo. Adeste filij, audite me, ait Dominus, timorem Domini docebo vos. Quis est homo qui vult vitam, diligit dies videre bonos? Deinde hebdomadis & ogdoadis, septenarij, inquam, & octonarij numeri subiũgit mysterium quod inducit cognitionem. Cohibe linguam tuam à malo, & labia tua ne loquantur dolum. Declina à malo, & fac bonum: quære pacem, & persequere eam. Per hæc enim *Psal. 33.*

C significat cognitionem, cum abstinentia à malis, & cum operatione bonorum, [illegible] cens perfici & opere & sermone. Oculi Domini super iustos, & aures eius ad preces eorum. Vultus autem Domini super facientes mala, vt perdat de terra memoriam eorum. Clamauit autem Dominus, & exaudijt, & ex omnibus afflictionibus liberauit eum. Nam multa quidem flagella peccatorum: sperantes autem in Domino misericordia circundabit. A multitudine misericordiæ contineri dicit eum qui germanè & syncerè sperat: quoniam scriptũ est in epistola ad Corinthios: Per Iesum Christum insipiens & obscurata mens nostra in lucem pullulat. Per eum voluit Dominus nos immortalem gustare cognitionem. Vnde etiam euidentius ostendens proprietatem cognitionis, subiunxit: Cùm hæc ergo sint manifesta, vel procumbentes in profundum diuinæ cognitionis, debemus omnia ritè & ordine facere, quæ nos iussit Dominus peragere, ordinatis temporibus. Sapiens ergo suam ostendat sapientiam, non verbis solùm, sed in bonis operibus. Humilis ferat testimonium, nõ sibi, sed in eo quòd ipse testimonium accipiat ab alio. Qui est carne castus, non insolescat, sciens esse alium qui ei suppeditat continentiam. Videte fratres, quò maiori cognitione digni sumus habiti, eò maius subimus periculum. Venerabilis ergo & casta institutio nostræ benignitatis, ex sententia Clementis, quærit id quod est cõmuniter vtile, siue testimonium præbeat, siue doceat opere & sermone: eoq; dupli- *Psal. 31.*

ci,& non scripto,& scripto. Hæc est charitas, diligere Deum & proximum: ea extollit in altitudinem quæ non potest explicari. Charitas operit multitudinem peccatorum: charitas omnia sustinet, in omnibus est patiens: charitas nos Deo conglutinat, omnia facit in concordia. In charitate consummati sunt omnes electi Dei: absque charitate nihil est gratum Deo: eius perfectionis nō est, inquit, explicatio. Quis est idoneus vt in ipsa inueniatur, nisi quos ipse Deus dignos esse censuerit? Iam verò apostolus Paulus, Si corpus meum, inquit, tradidero, charitatem autem non habeam, sum æs resonans, & cymbalum tinniens. Si non ex affectione electa, inquit, per charitatem cognitione præditam, tulero testimonium, propter metum autem forte, & eam quæ expectatur mercedem, labra mouens ad testimonium, fuero confessus Dominum, sum homo communis, Dominum resonans, non cognoscens. Est enim & populus qui diligit labijs: est etiam alius qui tradit corpus vt comburatur. Et si distribuero omnes facultates meas ad alendos pauperes, inquit, non ex ratione communicationis quæ proficiscitur à charitate, sed ratione remunerationis, quę vel ab ipso qui beneficio afficitur, vel à Domino qui promisit, expectatur: & si habeā omnem fidem, vt montes transferam, & vitia quæ tenebras offundunt abijciam, nō fuero autem fidelis Domino propter charitatem, nihil sum, vt qui si conferar cum eo qui ex cognitione in vulgus fert testimonium, nihil reputer egregium. Omnes autem generationes ab Adam in hodiernum vsque diem præterierunt: sed qui per Dei gratiam consummati sunt in charitate, habent locum piorum, qui manifestabū tur in visitatione regni Christi. Charitas non finit peccare. Quòd si etiam inuitus in aliquem talem casum inciderit per suggestiones aduersarij, Dauid imitans psallet: Confitebor Domino, & placebit ipsi super vitulum nouellum cornua producētem & vngulas. Videant pauperes, & lætentur. Dicit enim: Sacrifica Deo sacrificium laudis, & redde Domino vota tua, & inuoca me in die afflictionis tuæ, & liberabo te, & glorificabis me. Sacrificium enim Deo spiritus cōtritus. Charitas ergo etiam Deus dicitur cùm sit bonus: cuius charitas proximo malum non operatur, neque iniuriā faciens, nec referens: omnibus autem, vt semel dicam, bene faciens, ad Dei imaginem. Plenitudo ergo legis est charitas: sicut Christus, hoc est, præsentia Domini qui nos diligit, & quæ est nostra ex Christo doctrina charitatis, & vitæ institutio. Charitas ergo perficit non mœchandi præceptum, & præceptū vxorem proximi nō concupiscendi, quod prius metu fuerat prohibitum. Idem ergo factum refert, an factū sit per metum, an perfectum per charitatem, & an per fidem, an etiam ex cognitione exerceatur. Meritò ergo conuenienter eorum differentiæ, ei quidem qui est prę ditus cognitione, parata sunt quæ nec oculus vidit, nec auris audiuit, nec in cor hominis ascenderunt. Ei autem qui nudè & solummodo credidit, concedit suo testimonio centum partibus plura, quàm ea essent quæ reliquit: quam promissionem contingit cadere in hominum intelligentiam. Hoc in loco mihi venit in mentem cuiusdam, qui se dicebat esse gnosticum, id est, cognitione præditum. Exponens enim illud, Ego autem dico, qui aspexit mulierem ad concupiscentiam, iam mœchatus est, non censebat nudam iudicare cupiditatem, sed si per cupiditatem, quod ex ea fit opus procedēs vltra cupiditatem, in ipsa peragatur. Aut enim in somnis simul visione vtitur, aut etiā corpore. Atque qui historias quidem conscripsere, iusti Bocchoridis tale referunt iudicium. Adolescens captus amore meretricis, persuadet certa quadam mercede constituta, vt postridie puella ad eum veniat: cùm autem eum in somnis præuenisset cupiditas, præter spem expleta libidine, puellam quam amabat ad se venientem, vt constitutum fuerat, arcet aditu. Illa autem cùm id quod euenerat didicisset, exigebat mercedem, dicens se ea ratione amatoris explesse cupiditatem. Venerunt ergo ad iudicem. Is iusso adolescente crumenam in qua erat merces, in sole extendere, iussit meretricem vmbram apprehendere: lepidè imperans, vt simulachrum mercedis redderet pro simulachro complexus. Atque somniat quidem aliquis visioni assentiente anima. Verè autem somniat, qui aspicit ad concupiscentiam, non solùm vt ille dicebat gnosticus, si simulatq; viderit, cùm muliere consuetudinem animo comprehendat, hoc enim iam est cupiditatis opus vt cupiditatis: sed si corporis respexerit pulchritudinem, ait verbum, & ei ex libidine ac cupiditate caro pulchra visa fuerit, cùm carnaliter & propenso animo ad peccandum viderit, propterea quòd eam sit admiratus, condemnatur. Contrà autem, qui per castam aspicit dilectionem, non carnem, sed animam pulchram esse existimat, corpus, mea quidem sententia, admirans tanquam statuam, per quam pulchritudinē ipse quoq; seipsum

Marginalia: 1. Cor. 13. — Psal. 68. — Psal. 80. — Psal. 50. — Ioan. 4. — Rom. 13. — A — B — C

A seipsum transmittit ad artificem, & id quod est verè pulchrum, sanctum signum, lucidum iustitiæ charactêrem ostendens Angelis qui præsunt assensui, vnctionem dico bene compositæ & quæ Deo placet mentis, qualitatem affectionis inditam animæ quæ gestit & exultat propter inhabitationem sancti Spiritus. Hanc gloriã quæ in Mosis facie refulserat, non poterat populus intueri, & ideo gloriæ velamen assumebat apud eos qui intuebantur carnaliter. Eos enim qui aliqua inducũt ex rebus mundanis, ij detinent qui vectigal exigunt ab ijs qui suis grauantur vitijs & animi perturbationibus: eum autem qui nudus quidem est ab ijs in quę cadit vectigal, est autem plenus cognitione & ea quæ est ex operibus iustitia, simul precantes virum transmittunt, eum cum opere beatum pronunciantes. Et eius folium non defluet, Psal. 1. ligni, inquam, vitalis quod est nutritum secus decursus aquarum. Comparatur autem iustus arboribus frugiferis, non ijs solis quæ sublimè feruntur sacrificijs. Erant autem in sacrificiorum quoq; oblationibus, penes legem qui hostiarum vitia considerabant. Appetitionem itaq; discernunt à cupiditate, qui sunt in his rebus cognoscendis pulchrè exercitati: & hanc quidem voluptati tribuunt & intemperantię, appetitionem autem esse statuunt in ijs quæ sunt secundum naturam, vt qui sit motus qui est ex ratione. Huius perfectionis potest & vir & mulier æquè esse particeps. Iam uerò non solus Moses qui audiuit à Deo, Locutus sum ad te semel & bis, dicẽs: Vidi populum hunc, & ecce est dura ceruice, sine me eos perdere, & delebo nomen Exod. 32. eorum sub cælo, & faciam te in gentem magnam & admirabilem, & longè magis

B quàm hanc: respondet rogans, non id quod suum erat spectans, sed communem salutem: Nequaquam Domine, mitte peccatum huic populo, aut dele me etiam de libro viuentium: tanta fuit eius perfectio, vt maluerit vnà mori cũ populo, quàm solus esse saluus. Sed etiam Iudith quę consummata fuit in mulieribus, cùm esset vrbs circumsessa, precata seniores, ingreditur quidẽ in castra alienigenarũ, omne periculum contemnens pro patria, seipsam tradens hostibus in fide Dei: pręmia autem fidei mox accipit, cum mulier in hostem fidei se præclarè gesserit, & potita sit capite Holophernis. Et rursus perfecta illa in fide Esther, Israëlem à tyrannica potestate liberans, & à crudelitate Satrapæ, sola mulier afflicta ieiunijs, restitit armatis copijs innumerabilibus, tyrannicum per fidẽ soluens decretũ, & tyrannum quidem mitigauit: Aman uerò repressit, & Israëlem perfecta ad Deum oratione illæsum conseruauit. Taceo enim Susannam & Mosis sororem, quòd hæc quidem vnà duxit exercitum cũ Propheta, princeps omnium mulierũ quæ apud Hebræos erant insignes sapientia: illa verò per summam honestatem, vel ad mortem vsq; procedens, cũ ab intemperantibus condemnaretur amatoribus, perstitit firma & constans testis pudicitiæ. Dion certè Philosophus refert quandam mulierem Lysidisam, propter insignem pudorem, se lauasse cum ipsa tunica: Philoteram aũt, cùm esset ingressura so-

C lium, paulatim contraxisse tunicam, quantum quæ nuda erant tegebantur ab aqua: deinde rursus paulatim ascendentem induisse. An non enim tormenta quoq; tulit fortiter Leæna Attica, quæ cùm esset conscia insidiarum quæ ab Armodio & Aristogitone parabantur in Hipparchum, nihil omnino est elocuta, etsi valde cruciaretur? Aiunt autẽ Argolicas quoq;, Telesilla poëtria duce, Spartanos qui magna erant virtute in rebus bellicis, cumprimum se eis ostendisset, fugasse, & effecisse vt illæ mortem nihil extimescerent. De filiabus quoq; Danai dicit similia is qui fecit Danaidẽ:

*Tuncq; citò Danai sumpserunt arma puellæ,*
*In ripis pulchro labentis flumine Nili.* & quæ sequuntur.

Canunt autem reliqui Poëtę velocitatem Atalantæ in venatione, & egregiam Anticleæ amicitiam, & Alcestidis in maritum amorem, & Macæriæ & Hyacinthidum magnum & excelsum animum. Quid uerò non Theanò quidem Pythagorica eò processit philosophiæ, vt ei qui ipsam curiose aspexerat, & dixerat, Pulcher cubitus responderit, At non publicus? Eiusdem grauitatis fertur illud quoq; dictum. Rogata enim Postæa mulier à quo viro descenderit in Thesmophorium, A proprio quidem, inquit: & statim subiunxit, Nunquam autem ab alieno. Quinetiam Themisto quoq; Zoili filia Lampsacena, vxor Leontiei Lampsaceni, dabat operam philosophiæ Epicureæ: sicut Myia Theanûs filia, Pythagoreæ, & Arginete quæ scripsit res gestas Dionysij. Filię autem Diodori, cui fuit cognomen Saturnus, fuerunt omnes dialecticæ, ut ait Philo dialecticus in Menexeno, quarum hæc feruntur esse nomina Menexene, Argia, Theognis, Artemesia, Pantaclea. Memini autem etiam Cynicæ cuiusdam. Hipparchia autem vocabatur Maronitis, vxor Cratetis, propter quam in

Poëcile quoq; celebrata fuere Cynogamia. Arete autem Aristippi Cyrenaica, erudijt Aristippum qui μητροδίδακτος, id est, à matre doctus, fuit cognominatus. Apud Platonem etiam philosophabantur Lasthenia Arcadia, & Axiothea Phliasia. Aspasia autem Milesia, de qua multa quoq; conscribunt Comici, vsus quidem est Socrates, ad Philosophiam: Pericles autem, ad rhetoricam. Prætermitto alias, ne sit prolixior oratio, neque recensens Poëtrias, Corynnam & Telesillam, Myiam & Sappho, aut pictrices, vt Irenem Cratini filiam, & Anaxandrā Nealcis, vt dicit Dydimus in Symposiacis. Cleoboli autem sapientis & Lyndiorum monarchæ filiam, non pudebat lauare pedes paternorum hospitum. Nam Abrahæ quoq; vxor beata Sarra, parauit ipsa Angelis panes subcineritios: & puellæ regiæ pascebant oues apud Hebræos. Vnde etiam quæ est apud Homerum Nausicaa, iuerat ad pannos lauandos. Velit ergo pudica mulier, primùm quidem si fieri posit marito persuadere, vt sit ei socius eorum quæ ferunt ad beatitudinem: si id autem non posit efficere, sola contendat ad virtutem, marito quidem parens in omnibus, vt inuito illo nihil vnquam faciat, præter ea quæ censentur pertinere ad virtutem & salutem. Sed & si quis citra vllam pergentem simulationem, aut vxorem, aut etiam ancillam, arceat à tali affectione, nihil aliud videtur is tunc facere, quàm à iustitia quidem & temperantia statuisse abducere: iniustam autem simul & intemperantem voluisse domum suam efficere. Fieri ergo non potest vt nec vir, nec mulier, sit in vlla re doctus, qui non fuerit vsus disciplina, meditationeque & exercitatione. Virtutem autem non in aliquibus alijs, sed vel in nobis maximè sitam esse dicimus. Itaque alia quidem potest quis arcere bellum gerens, quod autem in nostra situm est potestate, nequaquam, nec si maximè quidem institerit. Est enim donum datum diuinitus, & quod non alicui alij subijcitur. Vnde intemperantia quidem non videri potuerit esse alicuius malum, quàm eius qui se gerit intemperanter. Temperantia autem rursus eius bonum qui potest se temperare. Mulierem autem quæ cum honestate amat maritum, describit Euripides, sic monens: B

*Bonisq; uerbis prosequi*
*Videri oportet si quid coniux dixerit:*
*Si haud dixerit; laborare ut ad gratiam*
*Dicat mariti.* Et his rursus vtiq; similia:
*Dulce estq; coniugem, mali*
*Si euenerit quid, cum uiro tristarier,*
*Doloris esse gaudij participem.*

Sic morum mansuetudinem ostendens & beneuolentiam esse vel in calamitatibus. Deinde subiungit:

*Aegrotus & si sis, ægra simul feram*
*Tuaq; patiar mala: & certè mihi,*
*Non quicquam acerbi: unà cum amicis nam decet*
*Fieri beatos: quid nisi hoc amicitia est?*

Sanctificatur itaq; etiam quod per Verbum perficitur matrimonium, si coniugium se Deo submittat, & cum vero corde administretur in fidei certitudine, sanctificatorum corda à mala conscientia, & ablutorum corpus aqua mūda, & habentium confessionem fidei. Fidelis enim est qui promisit. Oportet autem felix matrimonium, neq; vnquam diuitijs, nec pulchritudine censeri, sed virtute. C

*Nulli quidem* (ait tragœdia)
*Coniugi in maritum pulchra forma profuit,*
*Multis autem uirtus profuit.* Quæuis enim bona mulier, quæ viro adhæret, scit esse temperans. Deinde veluti dans admonitiones, ait:

*Hoc primum adest, nam deformis maritus si siet,*
*Formosum ei quæ sapit decet uiderier.*
*Non oculus, sed mens ea est quæ iudicat:*

& quæ consequuntur. Valde autem propriè dixit scriptura mulierem datam esse à Deo adiutricem. Clarum est ergo, quòd vnicuiq; ex ijs quæ à marito eueniunt molestijs, ratione cum persuasione mederi apud se constituet. Sin autem non obediat, tunc iam conabitur, quoad eius fieri potest, ab humana natura, vitam nulli peccató affinem transigere, & seu cum Verbo mori oporteat, seu viuere, talis actionis adiutorem & socium Deum esse existimans, qui reuera & adest, & est Seruator, & in præsentia & in futuro, illumq; ducem & principem cuiusuis actionis constituens, temperan-

A perantiam quidem & iustitiam suum esse munus existimans, religionem autem & in Deum pietatem & amorem finem suum esse statuens. Eleganter itaq; Apostolus in epistola ad Titum dicit, anus debere esse in habitu sancto, nõ calumniatrices, non vino multo seruientes, vt erudiant adolescentes, vt sint virorũ suorũ amantes, & filios suos diligant, prudentes, castæ & sobriæ, domus curã habentes, benignę, subditæ viris suis, ne verbũ Dei blasphemetur. Potius aũt, inquit, pacẽ persequimini cum omnibus, & sanctificationem, sine quo nemo videbit Dominũ: attendentes ne quis fornicator aut ꝓphanus, vt Esau, qui pro cibo vno vendidit sua primogenita: ne qua radix amaritudinis sursum nascens molestiam afferat, & per eam inquinentur multi. Deinde veluti colophonem imponens quęstioni de matrimonio, subiungit: Honorabile connubium in omnibus, & torus immaculatus. Fornicatores aũt & adulteros iudicabit deus. Cùm vnus vtiq; scopus & vnus finis, & viro & mulieri sit ostensus, de eo qui est perfectus dicit Petrus in Epistola: Modicũ nunc si oportet tristitia affecti in varijs tentationibus, vt probatio vestræ fidei multò preciosior auro quod perit, & per ignem est probatum, inueniatur, in laudẽ & gloriam in reuelatione Iesu Christi, quem cùm non videritis, diligitis: in quem nunc cùm nõ videatis, credatis autem, exultatis lætitia inenarrabili & glorificata, reportantes finem fidei, salutem animarum. Quamobrem Paulus quoq; gloriatur se propter Christum fuisse in laboribus abundantius, in plagis supra modum, in mortibus frequenter. Hîc inuenio perfectũ multis modis accipi, prout is est qui in vnaquaq; virtute se rectè gerit. *Tit.2.* *Heb.12.* *Heb.13.* *1.Pet.1.* *1.Cor.11.*

B Perficitur itaq; & consumatur aliquis, & vt pius ac religiosus, & vt tolerans, & vt continens, & vt operarius, & vt martyr, & vt cognitione præditus. In omnibus aũt simul perfectus, nescio an vllus sit qui est adhuc homo, nisi solùm is qui propter nos induit hominem. Quanquam ex nuda lege fuerit quis vtiq; perfectus, qui profitetur abstinentiam à malis. Ea autem est via ad Euangelium, & ad bene faciendũ. Sed legis quidem ex cognitione perfectio, est assumptio Euangelij, vt fiat is qui est ex lege perfectus. Ita enim prędixit is qui est ex lege Moses, esse audiendũ vt accipiamus ex Apostoli sententia, Christũ legis plenitudinem. In Euangelio aũt iam proficit is qui est cognitione præditus, non solùm vtens lege tanquã gradu, sed eam ꝑcipiens & mente intelligens, vt tradidit Apostolis qui dedit testamenta Dominus. Quòd si etiam rectè vitam instituerit, sicut certè fieri non potest vt in bene operando difficultatem cõsequatur cognitio, & pręterea rectissimè cõfessus, Martyr seu testis fiat, maximam vt inter homines dignitatẽ meritumq; accipiens, ne sic quidẽ eò perueniet, vt vocetur in carne perfectus, quoniã hanc appellationem pręoccupauit vitæ finis, cùm, qui est testis ex cognitione, iam eò peruenerit vt perfectum opus ostenderet & propriè produceret, sanguine per charitatẽ ex cognitione profectã benignè donato emittens spiritum: beatus aũt hinc fuerit & iurè perfectus vocetur, vt sublimitas

C potestatis sit Dei, & non ex nobis, vt dicit Apostolus. Solùm conseruemus liberum eligendi arbitrium & charitatem: in quolibet afflicti, sed non redacti in angustias: egentes, sed non oppressi egestate: persecutionem patientes, sed non derelicti: deiecti, sed non perditi. Oportet enim eos qui ex sententia Apostoli contendunt ad consumationem, nullam in nulla re dare offensionem, sed in re qualibet commendare seipsos non hominibus, sed Deo. Sit autem accessio & additamentum parêre etiam hominibus: etenim his etiam parêre est cõsentaneum, propter ea quę insectantur maledicta. Commendatio aũt in tolerantia multa, in afflictionibus, in necessitatibus, in angustijs, in plagis, in carceribus, in seditionibus, in laboribus, in vigilijs, in ieiunijs, in castitate, in cognitione, in patientia, in benignitate, in sancto spiritu, in charitate non ficta, in verbo veritatis, in virtute Dei, vt simus templa Dei emundata ab omni inquinamento carnis & spiritus. Et ego, inquit, vos accipiam, & ero vobis in patrem, & vos eritis mihi in filios & filias, ait Dominus omnipotens. Perficiamus ergo, inquit, sanctitatem in timore Dei. Nam etsi tristitiam timor generat, gaudeo, inquam, non quòd tristitia affecti estis, sed quòd tristitia affecti estis ad pœnitentiam. Tristitia enim affecti estis secundum Deum, vt in nullo detrimentum à nobis accipiatis. Nam quę est secundum Deum tristitia, pœnitentiam ad salutem operatur impœnitẽdam. Tristitia aũt mundi, mortẽ operatur. Etenim hoc ipsum quòd tristitia affecti estis secundum Deũ, quantum in vobis operatur studium, sed defensionem, sed indignationem, sed timorẽ, sed desiderium, sed æmulationem, sed vindictam? In omni exhibuistis vos esse castos negotio. Hęc sunt exercitationis quę ex cognitione proficiscitur pręexercitamẽta. Quoniam aũt Deus ipse omnipotens dedit *2.Cor.4.* *2.Cor.10.* *2.Cor.6.* *2.Cor.7.*

Ephe. 4. alios quidem Apostolos, alios verò Prophetas, alios autem Euangelistas, alios autem pastores & doctores ad perfectionem sanctorum, ad opus ministerij, ad ædificationem corporis Christi, donec occurramus omnes in vnitatem fidei & agnitionis Dei filij Dei in virum perfectum, in mensuram ætatis plenitudinis Christi: studendum est viri euadere ex cognitione, & quammaximè perfici adhuc in carne manentes, ex perfecta hîc concordia & consensione, meditantes cum Dei voluntate concurrere, ad restitutionem eius quæ verè est perfecta nobilitatis & cognationis, in plenitudinem Christi quæ ex perfectione perfecta est absolutè. Iam cernimus quanam ratione & quomodo & quando perfectum dicit diuinus Apostolus, & vt A
1. Cor. 12. perfectorum ostendit differentias. Et rursus: Vnicuique datur manifestatio spiritus ad vtilitatem, alij quidem datur per spiritum sermo sapientiæ, alij autem sermo scientiæ secundum eundem spiritum, alteri fides in eodem spiritu, alij autem gratię sanitatum in eodem spiritu, alij verò operationes virtutum, alij prophetia, alij discretio spirituum, alij genera linguarum, alij autem interpretatio linguarum. Omnia autem hæc operatur vnus & idem spiritus, diuidens seorsum vnicuiq; prout vult. Quæ cùm ita se habeant, Prophetæ quidem perfecti sunt in prophetia, iusti autem in iustitia, & martyres in confessione. Alij autem in prædicatione, nô expertes quidem virtutum cōmunium, sed rectè se gerentes in ijs in quibus sunt ordinati. Quis enim sanæ mentis dixerit Prophetam non esse iustum? Quid enim, non iusti quoq; sicut Abraham prophetarunt?

*Bellica nanq; Deus dedit huic ut munera obiret,* B
*Illi ut saltaret, cithara cantúue sonaret,*

ait Homerus. Sed vnusquisq; habet proprium donum à Deo, hic quidem sic, ille verò sic: Apostoli autem fuere pleni in omnibus. Inuenies itaque, si voluëris, ex eorum rebus gestis & scriptis, eorum cognitionem, vitam, prædicationem, iustitiam, castitatem, prophetiam. Sciendum est autem quòd etsi Paulus sit tempore recentior, vt qui statim floruerit post Domini assumptionem: eius tamen scriptura dependet ex veteri testamento, illinc & spirans & loquens. Quæ est enim in Christum fides,
Esa. 7. & Euangelij cognitio, est expositio, & legis adimpletio. & ideo dictum est Hebręis: nisi credideritis, non intelligetis: hoc est, nisi ei credideritis qui per legem est prędictus, & à legis oraculo est significatus, non intelligetis vetus testamentum, quod ipse per propriam exposuit præsentiam: quocirca intelligens & perspicax quoque est hic, qui est cognitione præditus. Est autem eius opus non à malis abstinentia, ea est enim basis maximi profectus, sed nec aliquid boni facere, vel propter metum.
Psal. 136. Scriptum est enim: Quò fugiam, & vbi abscondar à facie tua? Si ascendero in cælum, tu illic es: si abiero ad extrema maris, illic est dextera tua: si descendero in a-
Apoc. 22. byssos, illic spiritus tuus. Sed neque propter spem promissi honoris: dictum est e-
1. Cor. 3. nim, Ecce Dominus, & merces eius à facie eius, vt reddat vnicuique secundum opera sua, quæ oculus non vidit, & auris non audiuit, & in cor hominis non ascenderunt, quæ præparauit Deus ijs qui ipsum diligunt. Sola autem quæ propter charitatem fit beneficentia, propter ipsum honestum est expetenda ei qui est cognitio- C
Psal. 2. ne præditus. Iam verò ex persona Dei, Domino dictum est: Pete à me, & dabo tibi gentes hęreditatem tuam. Petitio maximè regia, quæ docet hominum salutem peti sine mercede, vt nos simus hæredes & possideamus Dominum. Contrà enim alicuius vsus gratia, nempe vt hoc fiat, vel illud non fiat, eam quæ circa Deum versatur desiderare scientiam, non est proprium eius qui est cognitione præditus: causa autem contemplationis ei sufficit, ipsa cognitio. Ausim enim dicere, non eò quòd velit saluus esse, eliget cognitionem, qui persequitur cognitionem propter iustam diuinam scientiam. Intelligentia enim semper versare, extenditur ad id quod est semper versare intelligentia: illud autem semper versare intelligentia, cùm per temperationem nullis interuallis disiunctam, facta fuerit eius qui cognoscit essentia, & perpetua contemplatio manet viua substantia. Si quis ergo per positionem ei qui est cognitione prędictus proposuerit, vtrum malit, Dei cognitionem, an salutem æternam, sint autem ea separata, cùm sint omnino eadem, nihil penitus dubitans elegerit Dei cognitionem, propter se iudicans esse expetendā eam quæ fidem transcendit per charitatē ad cognitionē, proprietatē. Hęc est ergo prima eius qui est perfectus beneficentia, quando non fit propter aliquē vsum eorum quę ad se pertinent. Cùm aūt iudicauerit pulchrum esse & honestum id quod bonū est facere, vehementer incitata operatio bene se gerit in omni actione, non in aliqua quidē rectè, in ali-

A quà verò non, sed in benefaciendi habitu constituta, neque præterea propter gloriam, aut vt philosophi dicunt εὔκλειαν, id est, famam illustrem, neque propter mercedem aut ab hominibus, aut à Deo, ad imaginem & similitudinem Domini vitam peregerit. Et si aliqua ratione ei bonum operanti aliquid contrarium occurrerit, talionem parisque pari relationem vt bonam, citra vllam acceptæ iniuriæ recordationé, proijciet, vt q erga iustos & iniustos, existat iustus & bonus. Eis qui sunt eiusmodi dicit Dominus: Estote sicut pater vester perfectus. Ei caro est mortua, viuit autem ipse solus, vt qui sepulchrum in sanctum templum Domino consecrauerit, veterem peccatis obnoxiam animam ad Deum conuertens. Is non est amplius continens, sed peruenit ad habitum impatibilitatis, vt diuinam figuram induat expectans. Si eleëmosynam, inquit, feceris, nemo sciat: & si ieiunaueris, vngere, vt Deus solus cognoscat, nullus autem homo. Sed neque ipse qui miseretur, debet scire se misereri: sic enim erit aliquando quidem misericors, aliquando verò non. Cùm autem ex habitu fecerit id quod est beneficum, naturam boni imitabitur. Affectio autem & natura erit & exercitatio. Non oportet autem elatos transmoueri, sed ingredientes peruenire quò oportet. Hoc est enim trahi à patre, dignum effici vt gratiæ virtutem à Deo accipiat, & currat citra impedimentum: & si electum odio habeant aliqui, is nouit eorum inscitiam, animi eorum miserens ignorationis. Meritò ergo ipsa diligit cognitio, & eos qui ignorant docet & erudit omnem Dei omnipotentis honorare creaturam, siquidé Deum didicit diligere. Is non ita habebit virtutem B vt ea vel vigilando possit amitti, vel in somnijs, vel vlla visione, quoniam nec à seipso vnquam excedit habitus, ab eo quod est esse habitũ, éxcidens. Siue ergo cognitio dicatur esse habitus vel affectio, eò quòd nunquã subeant diuersæ notiones, principalis pars animæ manens non alterabilis, non assumit aliquam visorum diuersitatem, quæ ex diurnis motibus fiunt simulachra somnians. Propterea certè Dominus quoq; præcipit vigilare, vt nec nostra quidem in somnis vnquam moueatur anima animi perturbationibus, sed noctis quoq; vitæ institutionem, tanquam quæ interdiu operetur, duram & immaculatã imperat custodire. Hęc est enim quæ fit, quoad eius fieri potest, Deo assimilatio, menté conseruare in ea habitudine ac relatione q̃ fit in ijs quę sunt eadem: hęc est aũt mentis habitudo, tanquam mentis. Varia autem affectio, fit per eam quę est erga res materiales affectionem. Qua quidem ratione mihi videntur noctem vocasse εὐφρόνην, quoniam anima tunc cessans à sensibus conuertitur ad seipsam, & est magis prudentiæ particeps. Propterea ergo sacra quoq; mysteria maximè noctu fiunt, significantia eam quæ noctu fit, animæ à corpore contractionem. Ne dormiamus igitur vt reliqui, sed vigilemus & sobrij simus. Qui enim dormiunt, noctu dormiunt: & qui inebriantur, noctu inebriantur: nos auté cùm simus diei, sobrij simus, induentes loricam fidei & charitatis, & galeam spem salutis. Quęcunq; aũt dicunt de somno, eadem etiam oportet exaudire de morte: vtrunq; enim significat abscessum animę, mors quidem magis, somnus verò minus: quod quidem potest etiam accipi ab Heraclito. Homo in lætitia tangit lucem sibi mortuus, extin- C ctus: viuus autem tangit mortuum, dormiens extinctus oculos. Vigilans tangit dormienté: Beati enim qui viderunt Dominum, ex sententia Apostoli. Quoniam tempus est iam nos ex somno surgere: nunc enim est propius nostra salus, quàm quãdo credidimus. Nox processit, dies appropinquauit. Deponamus ergo opera tenebrarum, & induamur arma lucis. Diem autem allegoricè dicit filium & lucem, & rursus præcepta arma lucis metaphoricé. Hac ratione dicunt oportere nos ablutos, ad sacrificia & preces ire mundos & splendidos, & hoc quidem fieri symboli signíve gratia, esse scilicet extrinsecus ornatum & emundatum. Emundatio autem est, ea quæ sunt sancta animo agitare & sentire. Quinetiam imago quoq; fuerit baptismatis, quæ etiam à Mose poëtis tradita fuit hoc modo:

*Cùm hausit aquam, mundas gestans in corpore uestes,*
*Penelope uenit ad preces, Telemachus autem*
*Ablutusq; manus pelago, edit uota Mineruæ.*

Hic erat mos Iudæorum, vt etiam sæpe in lecto tingerentur. Bene ergo illud quoq; dictum est: Non lauacro mundus esto, sed animo. Est enim perfecta, vt sentio, mundities, quæ est mentis & operum & cogitationum, & præterea sermonis quoq; synceritas, & vltima peccati in insomnijs vacuitas. Est autem sufficiens, vt ego quidem opinor, homini purgatio, perfecta firmaq; ac stabilis pœnitentia, si cùm de præcedentibus nos damnauerimus actionibus, anterius procedamus, postea intelligétes,

*Matth. 5.*

*Matth. 6.*

*εὐφρόνη nox dicitur à bene prouidendo.*

*1. Thess. 5.*

& mentem immersam sustollentes, tam ab ijs quæ per sensum delectant, quàm A
prioribus delictis. Si itaq; scientiæ quæ dicitur ἐπιστήμη, danda est etymologia ex statione & quiete, quæ dicitur στάσις, eius sumenda est explicatio, quoniam nostram in rebus sistit mentem, quę prius aliàs aliter ferebatur. Similiter fidei quoq;, πίστις inquam, danda est etymologia, animæ nostræ περὶ τὸ ὂν στάσις, id est, circa id quod est statio & quies. Nos autem eum qui semper & in omnibus est iustus scire cupimus, qui nec timēs supplicia quæ à lege statuuntur, nec eorū cum quibus versatur, & qui peccata persequuntur, odium vitans in improbos, nec quod ex ipsis sceleribus & flagitijs impendet periculum reformidans, iustus permanet. Qui enim propter hęc abstinet à faciendo aliquid ex ijs quæ sunt iniusta, non est sua sponte, sed metu bonus. Atq; Epicurus quidē ait eum qui est ex eius sententia sapiens, velle propter aliquod lucrum facere iniuriam. Non posse enim sibi persuadere fore vt lateat. Quare si sciuerit fore vt lateat, faciet iniuriam, vt est eius sententia. Et hęc quidē sunt tenebricosa dogmata. Si autem ab iniuria facienda abstinuerit propter spē remunerationis à Deo consequendę ob ea quæ iustè fecerit, ne sic quidem sua sponte est bonus. Sicut enim illum metus, sic hunc quoq; merces iustum facit, vel potius efficit vt videatur iustus. Eam autem spem quæ est post mortem, non solùm sciunt qui barbaram persequuntur philosophiam, bonis quidem bonam, malis autem cōtrariam, sed etiam Pythagoræi: nam illi quoq; spem in fine denunciabant ijs qui philosophabantur, cùm etiam Socrates dicat in Phędone, bonas animas hinc cum bona spe excedere:
& rursus malos vituperans, ei opponit: viuunt enim cū mala spe, dicens. Ei videtur B
etiā consentire Heraclitus, per ea quæ dicit differens de hominibus: Homines mortuos manent quæ non sperant, nec expectant. Diuinè ergo Paulus apertè scribit ad Romanos: Afflictio patientiam operatur, patientia verò probationem, probatio autem spem, spes verò pudore non afficit. Propter spē enim futuram est patientia: spes autem est etiā æquiuocè spei redditio & restitutio, quæ etiam pudore non afficit, vt quæ probris & contumelijs non amplius afficiatur. Qui aūt nudæ vocationi, quatenus vocatus est, obedit, is neque propter timorem, neq; propter voluptates, tendit ad cognitionem. Non enim considerat an aliquod vtile lucrum vel delectatio aliqua extrinsecus consequatur, sed tractus à dilectione eius qui verè est amatoris, & ad id quod fieri oportet adductus, pius est Dei cultor. Vnde nec si per positionem à Deo acceperit potestatem faciendi ea quæ sunt prohibita, citra vllam pœnam: neq; si propterea beatorū bona accepturum eum esse ei promissum fuerit: sed nec si persuasum habuerit fore, vt Deum lateant ea quæ gerit (quod quidem fieri non potest) in animum vnquam esse inducturum, vt aliquid agat præter rectam rationem, cùm id quod verè est honestum, & ex seipso eligendum, & ea ratione expetendum amandumq;, semel elegerit. Nō enim in esca ventris esse quod bonum est accepimus.
Audiuit aūt ille quòd cibus nos nō cōmendabit, neq; matrimonium, sed neq; abstinen C
tia à matrimonio in ignoratione: sed opus ex virtute quod fit per cognitionē. Nam canis quoq; qui est animal expers rationis, sic dicatur esse continens, dū eum timet qui tollit baculum, & ideo à cibo abstinet. Horum ergo scias quòd ablata quæ facta est promissio, & circūscriptus is cuius minę intentatæ sunt metus, & separatū quod impendet periculum, arguit propositū. Non enim ipsi rei naturę se propriè coniungunt & accommodant, vt reuera cōprehendant per cognitionem, esse quidē bona omnia quæ creata sunt ad vsum nostrū: vt matrimonium, verbi gratia, & liberorum procreationem, si adsumptæ sint cū temperantia: bona autem esse melius, per eam quæ est Deo assimilationem, euadere impatibilem & virtute præditum: sed ex ijs quæ extrinsecus adducuntur bonis vel malis, ab alijs quidem abstinent, ab alijs verò minimé. Quinetiam ea à quibus abstinent abhorrentes, creaturam & opificē cernuntur accusare: & licet ipsa specie versentur fideliter, habent tamen impium iudicium. Illud autem, Non cōcupisces, neq; necessitate eget quæ est ex timore, quæ cogit abstinere à suauibus: neq; mercede, quæ per promissionem persuadet reprimere appetitiones. Neq; obedientiam propter mandatum, sed propter promissionem eligunt, qui Deo propter promissa obediunt, à voluptate inescati. Sed neq; auersatio à rebus sensilibus, effecerit consequenter coniunctionem cum ijs quæ percipiuntur intelligentia. Contrà autem, cum ijs quę intelligentia percipiuntur coniunctio, ei qui est cognitione præditus, secundum naturam deducitur à rebus sensilibus, vt qui per eorum quæ sunt pulchra electionem, bonum scienter elegerit, & admiretur quidem generationē & sanctificet Creatorē: sanctificet autem eam quæ fit Deo assimilatio-

Rom. 5.

1. Cor. 8.

A milatio nem. Sed ego me liberabo, dixerit, à cupiditate, ô Domine, vt mihi tecũ intercedat coniunctio: pulchra enim est quę vtiq; creata est dispensatio, & omnia rectè administrantur, & nihil fit sine causa. In tuis me esse oportet, ô Omnipotens, & licet hîc fuero, sum apud te. Volo autẽ expers esse metus, vt ad te possim appropinquare, meditans vt tua paucis contenta sit electio, quę iusta est, eorum quae sunt bonę ex similibus. Mysticè admodũ & sanctissimè nos docens Apostolus, eam quę verè grata est electionem, nõ quòd alia tanquã mala reprobet, sed quòd bonis censeat esse meliora, significauit dicens: Quare & qui matrimonia iungit virginẽ suam, bene facit: & qui nõ iungit, melius facit, ad id quod honestum est, & facultatẽ præbet indiuulsè Domino assidendi. 1. Cor. 7. Scimus aũt ea quę difficulter quidem parari possunt, non esse necessaria: quę autẽ sunt necessaria, paratu facilia benignè facta esse à Deo. Quamobrem bene dicit Democritus, naturam & doctrinam rem esse persimilem. Causam autem breuiter reddimus. Natura enim hominem concinnat & componit: concinnans autem ac componens, naturam ei tribuit: neque interest an fuerit natura effectus talis, an tempore & disciplina transformatus: vtrunque autem prębuit Dominus, illud quidem per creationem, hoc verò per recreationem & renouationem quae fit ex testamento. Quod autem conducit ei quod est magis principale, id est magis eligendum: est autem omnium maximè principale, mens: sic ergo videntur reuera honesta esse iucundissima, & ex se præbere eum quẽ desiderant fructum, nempe animæ tranquillitatem. Qui autem me audit, inquit, requiescet in pace con- Prouerb. 1.
B fidens, & sine metu conquiescet ab omni malo. Confide in toto corde tuo & mente Psal. 8.
tua in Deo. Hoc modo fieri potest vt qui est cognitione prȩditus, iam deus euaserit. Ioan. 10.
Ego dixi Dij estis, & filij Altissimi. Dicit autem Empedocles quoq; sapientum animas Deos fieri, hoc modo scribens:

*Postremò uates, & qui hymnos carmine cantant,*
*Et medici in seclis hominum t..restribus insunt:*
*Hinc existunt Dij, sunt quorum maximi honores.*

Atq; homo quidem qui est in genere, fingitur ex idea spiritus qui est cõgenitus. Neque enim informis & figurę expers creatur in officina naturæ, vbi hominis generatio mysticè perficitur, cùm sit communis & ars & essentia. Homo autem hic quispiam, seu homo singularis, charactêrem suscipit ex forma animæ insita eorum quę eligerit. Qua ratione Adam quoque dicimus fuisse perfectum, quod attinet ad formationem: nihil enim ei defuit ex ijs quæ homini formæ & speciei charactêrem tribuunt. Ille autem dum fieret, accepit perfectionem, & iustificatus est per obedientiam. Hoc erat quod in virum crescebat, nempe id quod in eius potestate erat situm, seu liberum arbitrium. Quòd autem elegerit, atque adeo id quod erat vetitum elegerit, non est culpa in Deum conferenda. Duplex enim est generatio, vna quidem eorum quæ gignuntur, altera verò eorum quæ fiunt: & hominis quidem magni & fortis animi virtus cùm sit, vt aiunt, sua essentia perturbationibus ac motibus animi obnoxius, reddit metus expertem & insuperabilem eum qui èst eius particeps,
C & est ira mentis satelles in patientia, & tolerantia, & ijs quæ sunt similia. Sub cupiditate autem collocatur etiam temperantia, & salutaris prudentia. Deus autem est impatibilis, iræque expers & cupiditatis, & non per eam est metus expers, aut ea declinat quę sunt molesta & grauia. Sed neque est temperans aut imperat cupiditatibus: neque enim in graue aliquod aut molestum Dei natura inciderit. Neque fugit Deus timorem, sicut nec concupiscet, vt etiam imperet cupiditati. Mysticè ergo apud nos quoque dictum est illud Pythagoræum, Oportere hominem quoque fieri vnum. Nam ipse quoque Pontifex est vnus, cùm sit vnus Deus per immutabilem huius habitum, quòd bona scilicet semper currant. Iam verò Seruator per cupiditatem vnà etiam sustulit iram, quæ est vindictæ cupiditas. In summa enim, patibilitas est per quoduis genus cupiditatis. Qui autem ad impatibilitatem deductus homo, Deus efficitur citra vllum inquinamentum, fit vnicus. θεὸς Deus, ἀπὸ τοῦ θεῖν, quod est currere. Quomodo ergo qui in mari ab anchora stabiliuntur, trahunt quidem anchoram, non illam autem attrahunt, sed seipsos ad anchoram: ita qui per vitam quæ proficiscitur à cognitione, Deum attrahunt imprudentes, & non aduertentes, seipsos ad Deũ adducũt. Qui enim deũ colit, seipsum colit. In vita ergo quę versatur in cõtemplatione, sui quis curam gerit, dum deũ veneratur, & per suam syncerã purgationẽ deum sanctũ sanctè contemplatur. Quæ enim assistit temperantia, seipsam assiduè considerans & contemplans, Deo quoad eius fieri potest, assimilatur. Iã verò id est in nostra potestate,

cuius ex æquo sumus Domini, & eius quod ei aduersatur, vt philosophari, vel non: A
& credere, aut non credere. Per hoc ergo quòd sumus æquè participes vtriusq; eorum quæ inter se aduersantur, inuenitur fieri posse id quod est in nostra potestate. Quinetiam præcepta sunt eiusmodi vt à nobis possint fieri & non fieri, quæ consentaneum est vt consequatur laus & vituperatio: & qui rursus puniuntur propter ea quę ab ipsis admissa sunt peccata, propter ipsa sola puniuntur. Prętererunt enim ea quæ facta sunt, neq; fieri potest vt sit vnquam infectum quod factum est. Dimittuntur ergo quæ facta sunt ante fidem, non vt non facta sint, sed tanquam non facta sint. Sed ne omnia quidem, dicit Basilides, sed sola dimitti in voluntaria, & quę fiunt per ignorationem, perinde ac si homo aliquis, non Deus, tam magnum prę beret donũ.
Psal. 49. Huic dicit Scriptura: Existimasti ô impie, quòd ero tui similis? Sed etsi punimur propter voluntaria, non vt nō facta fuerint, sed quòd facta sint punimur. Punitio autem non iuuat eum qui peccauit ad hoc vt nō fecerit, sed ad hoc vt non peccet amplius, neq; vllus alius incidat in similia. Hîc ergo bonus Deus castigat propter has tres causas: primùm quidem, vt is qui castigatur, seipso melior euadat: deinde, vt ij qui possunt salui fieri per exempla, præparentur admoniti: & tertiò, ne is qui iniuria afficitur, contemptui habeatur, & aptus sit ad iniuriam accipiendã. Sunt autẽ duo quoq; modi correctionis: vnus quidem, docendo: alter verò, corrigendo, quem etiam castigantem diximus. Sciendum est autem eos qui post lauacrũ in peccata incidunt, eos esse qui castigantur. Quæ enim prius facta sunt, dimissa sunt: quæ autem postea fiũt, expurgantur. De incredulis dictum est, eos esse reputatos tãquam puluerem quem B
Psal. 1. proijcit ventus à facie terræ, & guttam quę à cado excidit. Beatus est qui habet sci-
Esa. 40. entiæ disciplinam, & neq; ad damna ciuiũ, neq; ad iniustas impellitur actiones, sed immortalis naturę senij expertem intuetur ornatum, quanam ratione, & quo pacto, quóue modo constiterit. Iis autem qui sunt eiusmodi, nunquam turpium factorũ insidet meditatio. Meritò ergo Plato quoq; eum qui ideas contemplatur, dicit victurum esse Deum inter homines: mens autem est locus idearum, mens verò est Deus. Eum qui Deum in quem non cadit aspectus contemplatur, dixit Deum viuentẽ in-
Hesiodus. ter homines. Porrò aũt in Sophista quoq; Eleatem hospitem qui erat dialecticus, Socrates Deum nominauit, quales sunt dijs externis hospitibus similes, qui in vrbes ventitant. Quando enim anima quæ transcendit generationem, per se fuerit, & cum formis seu ideis versatur, qualis est qui est dux chori in Theętero, is factus tanquam angelus, erit cum Christo, vt qui versetur in contemplatione, semper Dei volunta-
Math. 8. tem considerans: reuera hic solus prudens, isti volitant velut vmbræ. Mortui enim sepeliunt mortuos suos. Vnde dicit Hieremias: Implebo ipsam mortuis terra genitis, quos percussit ira mea. Atq; Deus quidem cùm demonstrari nequeat, non efficit scientiam: filius autem est & sapientia, & scientia, & veritas, & quæcunq; cum his vllam habent cognationem. Quinetiam habet demonstrationem, & vim ratiocinãdi. C
Omnes autem spiritus potestates, cùm simul vna res factæ fuerint, ad idem conferunt, nempe ad filium. Est autẽ indefinitus vnaquaq; suarum potestatum notione. Quanquam nō sit verè vnum vt vnũ, neq; multa vt partes filius, sed vt omnia vnum, vnde etiam omnia. Est enim idem circulus omnium potestatum, quæ in vnum circumuoluuntur & vniuntur. Et ideo Verbum dictum est Alpha & ω, cuius solius finis sit principium, & rursus desinit in id quod est desuper principiũ, nusquã distantiam accipiens & dimensionẽ. Quamobrem & in ipsum & per ipsum credere, est vnicum fieri scilicet in ipso indiuulse vnitum: non credere autem, est dubitare, spacioq; ac interuallo disiungi & diuidi. Propterea hæc dicit Dominus: Omnis filius alienigena, est incircuncisus corde, & incircuncisus carne, hoc est, immundus & corpore & spiritu. Non ingredietur in sancta ex alienigenis in medio domus Israël, præter-
Ezech. 44 quam Leuitę. Alienigenas autem dixit eos qui noluerunt credere, sed volunt esse increduli: soli ergo ij qui purã agunt vitam, verè sunt Dei sacerdotes. Ea de causa cùm omnes tribus circunciderentur, reputatæ sunt sanctiores quæ vngebantur in Pontifices, & Reges, & Prophetas. Vnde eis pręcipit ne tangere quidem mortuos, nec ingredi ad obeuntes, non quòd sit sceleratum corpus, sed quòd peccatum & inobedientia sit carnalis, & in corpore versetur, sitq; mortua, & ideo abominanda. Ad solum ergo patrem & matrem filiumq; & filiam mortuam permissum est ingredi sacerdoti, quoniam hi soli sunt cognati carnis & seminis, à quibus proximam & continentem causam ingressus in vitam accepit quoque sacerdos. Mundantur autem hi quoque septem diebus, per quot dies perficitur generatio: septimo enim quies celebratur,

A celebratur, octauo autem offert propitiationem, vt scriptum est in Ezechiele, per quam propitiationem potest accipi promissio. Perfecta est autem, vt existimo, purgatio ac emundatio, quæ per legem & prophetas est propitia fides in Euangelium, & quæ est per omnem obedientiam puritas, cum rerum quoque mundanarum depositione, vsque ad gratam tabernaculi redditionem à iucundo vsu animæ. Siue ergo fuerit tempus quod per septem quæ enumerantur periodos, in summam redit quietem: siue septem cœli, quos quidem per ascensum numerant: siue etiam inerrás regio, quæ appropinquat mundo qui percipitur intelligentia, dicatur Octaua: dicit tamen oportere eum qui est præditus cognitione, ex generatione emergere & ex peccato: septem itaq; diebus sacrificantur hostiæ pro peccatis. Cautio enim mutationis adhuc tangit septimum ambitum. Iob autem iustus: Ipse, inquit, nudus sum egressus ex vtero matris meæ, & nudus illuc reuertar: non nudus à possessionibus, hoc enim est & paruum & commune, sed vt iustus recedit nudus à vitio & peccato, & ab informi simulachro, quod eos consequitur qui iniustè vixerũt. Hoc enim fuit quod dictum est: Nisi conuersi effecti fueritis vt puelli, mundi quidem carne, sancti verò anima, per abstinentiam à malis operibus: ostendens quòd nos tales esse vult, quales etiam genuit ex matrice aquæ. Generatio enim excipiens generationẽ, vult immortales reddere per profectum: impiorum autem lucerna extinguetur. Porrò autem castitatem in corpore & anima, quam is persequitur qui est cognitione præditus, sapientissimus Moses pulchrè epanalepsi seu repetitione vsus, significauit, Iob 1. Matth. 18.

B corporis & animæ incorruptionem describens in Rebecca hoc modo: Virgo autem erat pulchra, vir non cognouit ipsam. Rebecca autem exponitur Dei gloira: Dei autem gloria est incorruptio. Hæc est quę verè est iustitia, nolle rei alterius plus quàm par sit habere, sed totum esse templum Domini sanctificatum. Iustitia ergo est pax vitæ & stabilitas ac tranquillitas, ad quam Dominus amandauit dicens, Abi in pacem. Salem enim pax exponitur, cuius noster Seruator Rex describitur, quem dicit Moses, Melchizedech, Rex Salem, Sacerdos Dei altissimi, qui vinum & panem sanctificatum dedit nutrimentum, in typum Eucharistiæ. Quinetiã Melchizedech exponitur Rex iustus. Vniuoca autem sunt iustitia & pax. Basilides autem qui defecit, iustitiam, & eius filiam pacem, existimat manere collocatas in octaua. Transeundũ est autem à naturalioribus ad moralia, quæ sunt apertiora. Quæ enim de illis habetur oratio, sequetur post eam quæ est in manibus tractationem. Verè ergo Seruator noster nos mysterijs initiat, conuenienter ijs quæ dicit tragœdia, Gen. 24.

*Videns uidentes, donat & ipsa Orgia.*

Quòd si roges, hæc orgia quámnam tibi habeant speciem, rursus audies:

*Arcana non bacchantibus scire haud licet.*

Quòd si quis rursus curiose scrutetur cuiusmodi ea sint, rursus audiat:

*Te scire nefas, sed scire operæprecium est.*
*Qui est impius, sunt huic Dei infesta Orgia.*

Deus autem est expers principij, perfectũ & omni ex parte absolutum vniuersorum principium, principij efficiens: & quatenus quidem est essentia, est principium loci efficientis: quatenus autem est bonum, moralis: quatenus autẽ rursus est mens, ratiocinantis loci & iudicantis. Vnde etiam solus est magister, qui est solus altissimi casti patris, qui erudit hominem. Non ergo rectè faciunt, qui figmẽtum insectantur, & corpus vituperant, non considerantes corporis constitutionem rectam factam esse ad cœlum contemplandum: & instrumentorum sensuum effectionem tendere ad cognitionem, & membra & partes aptè esse compositas ad honestum, non ad voluptatem. Vnde suscipit hoc habitaculum animam Deo preciosissimam, & spiritu sancto dignum censetur per animæ & corporis sanctificationem, vt quod perfectione Seruatoris perficiatur. Quinetiam mutua trium virtutum consequentia inuenitur in homine cognitione prædito, qui moraliter, naturaliter & logicè circa Deum versatur. Sapientia enim est scientia rerum diuinarum & humanarum. Iustitia autem est concentus partium animę. Sanctitas autem est Dei cultus. Si quis autem dicat se accusare carnem, & propter ipsam generationem, adducens Esaiam qui dicit: Omnis caro fœnum, & omnis gloria hominis tanquam flos fœni. Exiccatum est fœnum, & flos cecidit, verbum autem Domini manet in æternum: audiat spiritum per Hieremiam interpretantem id quod quæritur: Et dispersi ipsos tanquam paleas quæ à vento agitatæ volant in solitudinem. Hæc est sors & pars vestrę incredulitatis, dicit Dominus. Sicut oblitus es mei, & sperasti in falsis, ego quoque Esa. 40.

C

reuelabo posteriora tua super faciem tuam,& videbitur ignominia tua,adulterium A
tuum,& hinnitus tuus,& quæ deinceps consequuntur.Hic est enim flos fœni, & se cundum carnẽ ambulare,& carnales esse ex Apostoli sententia,eos qui sunt in peccatis.Præstantiorem quidem hominis partem esse animam, est extra controuersiã, corpus autem deteriorem.Sed neque anima bonum est natura,neq; rursus malum natura corpus.Neq; verò quod non est bonum,hoc est protinus malum: sunt enim quædam quæ medium locum obtinent,& in medijs sunt * præposita & reiecta. Oportebat ergo hominis compositionem,quæ est in sensilibus,consistere ex diuersis, sed non ex contrarijs,corpore & anima. Semper ergo bonæ actiones, vt meliores, attribuuntur ei quod est præstantius,nempe spiritui principali:voluptuariæ autem & peccantes,ei quod est deterius,nempe peccanti spiritui. Iam verò sapientis anima,& eius qui est cognitione præditus, vt quæ in corpore peregrinetur, eo seuerè & austerè vtitur,non in ipsum nimiam affectionem ostendens aut indulgentiam,vt quæ sit euestigiò relictura tabernaculum,si excedendi & migrandi tempus eam vocauerit.Aduena,inquit,sum in terra,& peregrinus sum ego vobiscum.Et hinc externam mundi electionem Basilides eam dicit accepisse,vt quæ sit natura supramundana.Hoc autem non ita se habet:vnius enim Dei sunt omnia,& non fuerit aliquis natura mundi hospes,cùm sit vna quidem essentia,vnus autem Deus. Sed electus vitã agit tanquam hospes,sciens omnia quæ sunt acquirenda,& quæ reijcienda:quęcũque autem bona triplicia esse volunt Peripatetici,eis vtitur:quinetiam corpore,sicut aliquis qui procul peregrè proficiscitur,diuersorijs & habitaculis quę ei in via oc B
currunt,curam quidem gerens etiam rerum mundanarum loci in quo diuersatur, habitationem autem & possessionem,sicut etiam vsum,relinquens,nulla motus affectione:prompto & alacri animo eum sequens qui è vita abducit: nulla occasione se vnquam retrò conuertens,de incolatu quidem agens gratias, benedicens autem propter exitum,cœlestem amplectens mansionem.Scimus enim quòd si terrena nostra habitatio tabernaculi dissoluta fuerit,ædificium à Deo habemus,domum non manu factam æternam in cœlis.Etenim in hoc ingemiscimus, habitaculum nostrũ quod est ex cœlo superindui cupientes, siquidem etiam induti non nudi inueniemur.Per fidem enim ambulamus,non per speciem,vt ait Apostolus:magis autẽ volumus peregrinari à corpore,& apud Deum versari. Magis autem est in cõparatione:comparatio autem est in ijs quæ cadunt in similitudinem,vt fortior fortibus fortior,fortium autem fortissimus. Vnde subiunxit: Quamobrem contendimus, siue peregrinãtes,siue apud eum versantes ei placere,vni scilicet Deo, cuius omnia sunt opus & creatura,& mundus,& supermundana. Admiror Epicharmum qui apertè dicit:Si fueris mente pius,nihil mali patieris mortuus.Superius manet in cœlo spiritus.Et poëtam lyricum canentem:Impiorũ autem animæ sub cœlo volant in cruentis doloribus,sub malorum iugis ineuitabilibus:piorum autẽ,in cœlis habitant, cantibus beatum,magnum canẽtes in hymnis. Non ergo huc de cœlis anima ad ea quæ sunt deteriora demittitur:Deus enim facit omnia ad ea quæ sunt meliora, sed ea quæ vitam elegit optimam ex Deo & iustitia,cœlum terra commutat.Meritò ergo Iob qui peruenit ad cognitionem:Nunc,inquit,scio quòd omnia potes,nihil est C
autem quod tu non possis.Quis enim annunciat mihi quæ non nouerã, magna & admirabilia quæ nesciebam?Ego autem meipsum vilipendi, existimans meipsum esse terram & cinerem.Nam qui est in ignoratione,est peccato obnoxius,& terra & cinis:qui consistit autem in cognitione, Deo quantum potest assimilatus, iam est spiritalis,& ideo electus.Quòd autem amentes & inobedientes terram vocet scriptura,planum faciet Hieremias propheta de Ioachim & eius fratribus,dicens:Terra,terra,audi verbum Domini,scribe virum hunc hominem abdicatum. Alius autẽ rursus propheta dicit,Audi cœlum,& ausculta terra:auditum appellans intelligentiam,& cœlum animam eius qui est præditus cognitione,qui cœli & rerum diuinarum suscepit contemplationem,& ea ratione factus est Israëlita. Contrà enim eum qui elegerat inscitiam & cordis duritiem,terram dixit. Et illud, Ausculta, appellauit ab auribus quæ sunt instrumenta auditus,carnalia attribuens ijs qui rebus attẽdunt sensilibus.Hi sunt de quibus dicit Micheas propheta: Audite populi verbum Domini,qui cohabitatis simul cum doloribus.Et Abraham: Nequaquam,dixit Dominus qui iudicat terram.Nam qui non credidit,conuenienter salutari voci iam iudicatus est.Scriptum est autem in libris quoque Regum iudicium & sententia Domini,quæ sic habet:Iustos exaudit Deus,impios autem non seruat,eò quòd ipsi nolint

*προηγμένα καὶ ἀποπροηγμένα, sunt Stoicorum uocabula, de quibus Cicero 3. de Finibus.*

2.Cor.5. — Iob 42. — Hier.22. — Esa.1. — Miche.3. — Gen.18. — Ioan.3.

A lint nosse Deum. Absurda enim nō faciet omnipotens.] Quid ad hanc vocem adhuc dicunt hæreses, cùm omnipotentem bonum Deum prędicet scriptura, & vitij & iniustitię minimè esse authorem? siquidem ignorantia quidem propterea oritur quòd non cognoscat, Deus autem nihil facit absurdum. Hic est enim, inquit, Deus noster, Esa. 45.
& non est pręter eum qui seruet. Non est enim apud Deum iniustitia, ex sentētia Apostoli. Rom. 9.
Apertè aūt adhuc propheta Dei consilium, & cognitionis profectū per hęc docet: Et nunc Israël, quid Dominus Deus tuus à te petit, nisi vt timeas Dominum Deute. 10.
Deum tuū, & ambules in omnibus vijs eius? Vt & eum diligas, & illi soli seruias, petitur à te qui habes potestatem eligendæ salutis. Quid ergo sibi volētes Pythagorȩi, iubent cum voce precari? non quòd, vt mihi quidem videtur, existimarent Deū non posse exaudire eos qui tacitè loquuntur, sed quòd iustas vellent esse preces, quas nō vereretur quis fundere multis eas sciētibus. Nos autem de precatione quidem, procedente oratione, in tempore tractabimus. Debemus autem habere opera clamantia, tanquā in die ambulantes. Rom. 13.
Luceant enim opera tua. Et ecce homo, & opera eius Matth. 5.
ante faciē eius. Ecce enim Deus, & opera eius. Deum oportet imitari, quoad eius fieri potest ab eo qui est cognitione prædirus. Mihi aūt videntur poëtæ quoq; electos appellare θεοειδεῖς, id est, Deiformes, & δίους, id est, diuos, & ἀντιθέους, hoc est, Deo ęquales, & Διὶ μῆτιν ἀτάλαντος, hoc est, cōsilio Ioui pares, & θεοῖς ἐναλίγκια μήδε' ἔχοντας, hoc est, Est quorum similis prudētia diuis: & θεοείκελος, id est, Deo similis, corrodentes illud, ad imaginem & similitudinē. Euripides itaq;, In meo, inquit, tergo sunt pennę aureę, & aptātur grata Sirenum talaria, Iboq; in immensum sublatus ęthera, Iouem conuenturus.
B Ego autem Christi spiritum orauerim, vt me in meam sustollat Hierusalem. Dicunt enim Stoici quoq;, cælum quidem propriè esse ciuitatem, quæ autem sunt hîc in terra, non vtiq; ciuitates: dici enim, sed non esse. Res enim bona est ciuitas, & populus, honestus aliquis cœtus, & multitudo hominum quæ regitur lege, sicut verbo ecclesia, ciuitas quæ nō potest circumsideri, nec opprimi tyrānide. In terra diuina voluntas, in terra sicut in cælo. Huius autem ciuitatis imagines poëtę quoq; condunt, scribentes: Hyperboreæ enim & Arimaspiæ ciuitates, & campi Elysij, sunt Reipublicæ & ciuitatis iustorum instituta. Scimus autem Platonis quoq; Rempublicam esse positam in cælo vt exemplar.

# CLEMENTIS ALEXANDRINI STROMATVM LIBER QVINTVS.

DE eo quidem qui est cognitione præditus, hęc quodammodo cursim sumus persecuti: iam autem pergamus ad ea quę deinceps consequuntur.
C Atq; fides quidem rursus est consideranda: sunt enim qui fidē quidem nostram esse de filio, cognitionem autem de spiritu, distinguant. Non animaduerterunt autem quòd verè quidem credere oportet filio, & quòd filius, & quòd venerit, & quo modo, & propter quid, & de passione. Nosse autem necesse est quis sit filius Dei. Iam verò neque est cognitio sine fide, neque fides sine cognitione. Sed neque pater est sine filio: simul enim cum eo quod est pater, est filij pater. Filius autem verus est de patre magister. Et vt credat quis filio, oportet nosse patrem, ad quē refertur etiam filius. Et rursus, vt patrem prius cognoscamus, oportet credere filio, quoniam docet Dei filius. Ex fide enim ad cognitionem per filiū pater. Cognitio aūt filij & patris, quæ est ex cognoscendi regula, quæ verè est regula cognitionis, est aggresio & tractatio veritatis per veritatem. Nos ergo sumus, qui sumus fideles in eo quod non creditur, & qui sumus cognitione præditi, in eo quod non cognoscitur: hoc est, in eo quod ignoratur & non creditur ab omnibus: cognitione autem præditi, in eo quod à paucis creditur, & cognoscitur. Cognitione autem præditi, non oratione opera describentes, sed ipsa contemplatione. Beatus qui dicit in aures audientium. Fides autem, sunt aures animæ. Hanc autem fidem tacitè innuit Dominus, dicens: Qui habet aures audiendi, audiat, vt Luc. 8.
cùm crediderit, intelligat ea quæ dicit, vt dicit. Cæterùm Homerus quoq; poëta-

rum antiquissimus, pro eo quod est sentire, verbo audire, speciẽ pro genere vsus, scribit: Cùm audiebãt maximè & ipsi. In summa enim, concentus & consensio fidei amborum, in vno fine versatur, nempe salute. Verus autem nobis testis est Apostolus, dicens: Desidero enim videre vos, vt aliquod vobis donum impertiar spiritale, vt vos confirmemini. Hoc autem est, vt simul consolationem in vobis accipiatis per eam quæ est inter nos inuicem fidem, vestram & meam. Et rursus paulò inferius subiungit: Iustitia autem Dei in ipso reuelatur ex fide in fidem. Videtur ergo Apostolus duplicem fidem annunciare, vel potius vnam, quæ augmẽtum suscipit & perfectionem. Nam communis quidem fides subijcitur tanquam fundamentum. Iis quidem certè qui cupiebant curari, vt qui fideliter mouerentur, dicebat: Fides tua te saluum fecit. Quæ autem eximiè superædificatur, fideli consummatur, & rursus perficitur per eam quæ accedit ex doctrina, & ratione peragendi mandata, quales erant Apostoli, de quibus dictum est, fidem montes transmouere, & arbores transplantare. Vnde cùm sensissent magnitudinem potestatis, rogabant vt adderetur eis fides, quæ vt granum sinapis morderet vtiliter animam, & in ipsa adeò cresceret, vt in ipsa requiescerent de rebus sublimibus rationes. Si quis enim Deum scit natura, vt existimat Basilides, intelligentiam eximiam fidem simul & regnum vocans, & creaturam essentia dignam, prope eum qui fecit ipsam esse interpretans essentiam, sed nõ potestatem: & naturam, & substantiam, & creaturæ quæ superari non potest indefinitam pulchritudinem, non autem libero arbitrio vtentis rationalem assensionẽ dicit fidem: sunt ergo superuacanea pręcepta tam in veteri quàm in nouo Testamento, cùm natura saluus fiat aliquis, vt vult Valentinus, & sit natura fidelis & electus, vt putat Basilides: fieri autem poterat vt absque aduentu Seruatoris aliquo tandem tempore posset natura resplendescere. Sin autem necessarium dixerint aduentum Domini, eis euanescunt naturæ proprietates, cùm doctrina & purgatione & bonorum operum effectione, non autem natura, seruetur electio. Abraham itaque qui per auditum credidit voci quę sub quercu, quę erat in Mambræ, est pollicita: Do tibi terram hanc & semini tuo, electus ne erat, an non? Sed si non erat quidem, quomodo statim credidit tanquam naturaliter? sin autem erat electus, solutum est eorum fundamentum, cùm inueniatur atq; etiam salua fiat electio ante aduentum Domini: Reputatum est enim ei ad iustitiam. Si quis enim ausit dicere, sequens Marcionem, Creatorem seruare eum qui in ipsum credidit etiam ante aduentum Domini, cùm propria eius salute seruetur etiam electio: plus quàm par sit ab eo commendabitur boni potestas, vt quę serò, & post eum, qui ab eis iactatur, Creatorem, ipsa quoq; salutem dare aggrediatur, vel doctrina, vel etiam eius imitatione. Sed etiam si ita se habens, det salutem bonus, ex eorum sententia: neq; suos, neque cum eius voluntate qui fecit creaturam aggreditur dare salutem, sed vi, vel dolo. Et quomodo erit vtique bonus qui sic facit, & est posterior? Si autem differt locus, & mansio omnipotentis remota est à mansione boni: at eius qui dat salutem voluntas non est remota à bono? vt quæ prior cœperit. Ex ijs ergo quæ peregimus infideles, esse amentes ostenditur. Semitæ enim eorum sunt peruersæ, & nesciunt pacem, inquit Propheta. Stultas autem & ineruditas quæstiones vitare diuinus suasit Paulus, quoniam generant pugnas: & clamat Æschylus,

Rom. 1.

Genes. 15.

2. Tim. 2.

*Ne in ijs labores temerè quæ nihil iuuant.*

Nam eam quidem quæ vnà cum fide conuenit quæstionem, quę supra fundamentum fidei superædificat, splendidam ac magnificam veritatis cognitionem, optimã esse scimus. Scimus autem quòd neque ea vtique quæruntur quę sunt manifesta, vt, exempli causa, an sit dies, cùm sit dies. Neque ea quæ sunt incerta, & nunquam futura sunt manifesta, vt illud, sint ne stellæ pares an impares. Sed neque ea quę conuertuntur: quę etiam ab ijs qui aduersantur in differendo, ex ęquo dici possunt, vt illud, an sit animal quod est in vtero, an non animal. Quartus modus est, quando ex alterutra horum parte producitur argumentum, contra quod dici, & quod solui non potest. Si ergo quærendi causa omnibus modis de medio tollitur, fides firmatur ac stabilitur. Eis ergo illud producimus, contra quod dici non potest, quòd Deus est qui dicit, & de vnoquoque eorum de quibus quæro traditum adducit in scriptis. Quis est ergo adeò impius & à Deo alienus, vt Deo non credat, & probationes à Deo postulet tãquam ab hominibus? Rursus ex quæstionibus, aliæ quidem sensu indigent, vt si quis quærat an ignis sit calidus, aut nix alba. Aliquæ verò admonitione & increpatione, vt ait Aristoteles: vt illa interrogatio, an oporteat honorare parẽtes. Sũt etiam

A etiam quædã dignæ quæ puniantur,cuiusmodi est,quærere probationes,an sit prouidentia. Cùm sit ergo prouidentia,nõ ex prouidentia factam fuisse & prophetiam, & eam quæ in Seruatorem facta est œconomiam diuinamq; dispensationem, putare,est nefarium. Et fortasse ne conari quidem oportet hæc probare, cùm sit manifesta diuina prouidentia,ex aspectu omnium quæ videntur effectorum,quæ arte constat & sapientia,quorum alia quidem fiunt ordine, alia verò ordine manifestantur. Qui nos autem essentia & vita impertijt, dedit etiam verbum seu rationem,nos simul conuenienter rationi volens & bene viuere. Verbum enim patris vniuersorum, nõ est hoc quod profertur,sed sapiẽtia,& Dei bonitas manifestissima:& rursus omnipotens potestas & verè diuina,quæ non est eiusmodi vt intelligentia cõprehendi non possit vel ab ijs qui non cõfitentur,voluntas quæ oĩa cõtinet sua omnipotẽtia. Quoniam autem partim quidem infideles, partim verò contentiosi, non omnes assequuntur boni perfectionem. Nam neq; fieri potest, vt sine libero animi nostri arbitrio & instituto consequamur: neque vniuersum est positum in nostra voluntate, quale sit quod est euenturum: gratia enim seruamur, sed non absque bonis operibus: sed oportet quidem cùm natura apti simus ad bonum, ad id aliquod adhibere studium. Oportet autem mentem quoq; habere sanam, & quę nulla retardetur pœnitentia à boni venatione, ad quod quidem maximè diuina opus habemus gratia, rectaque doctrina,castaque & munda animi affectione,& patris ad ipsum attractione. Terreno enim corpori illigati,sensilia quidem per corpus apprehendimus: quæ

B intelligentia autem percipiuntur,per ipsam vim rationis. Si quis autem expectauerit fore vt omnia sensiliter comprehendat,longè à veritate excidit. Spiritaliter quidem certè scribit Apostolus de Dei cognitione: Videmus enim nunc tanquam per speculum,tũc autem facie ad faciem. Paucis enim datum est spectaculum veritatis. Dicit itaq; Plato quoq; in Epinomide: Non dico fieri posse vt omnes homines sint beati & felices,præterquam pauci:donec vixero,hoc definio. Bona autem spes est fore,vt postquam excessero omnia consequar. Eadem sibi volunt quæ dicũtur apud Mosem:Nemo videbit faciem meam,& viuet. Clarum est enim neminem vnquam vitæ tempore posse Deum euidenter comprehendere. Qui sunt autem mundi corde,Deum videbunt,postquam ad extremam peruenerint perfectionem. Cum enim ad ea quæ sunt comprehendenda imbecillis esset anima,& diuino magistro egeremus,deorsum mittitur Seruator, boni possessionis & doctor & suppeditator,arcanum magnę prouidentiæ,sanctumq; signum & indicium. Vbi est ergo scriba?vbi inquisitor huius seculi?non infatuauit,inquit,Deus stultitiam huius mũdi? Et rursus: Perdam sapientiam sapientum,& intelligentiam intelligentium reprobabo, horũ scilicet qui sibi videntur sapientes,& sunt contentiosi. Pulcherrimè itaque dicit Hieremias:Hæc dicit Dominus:State in vijs,& interrogate semitas æternas quęnam sit via bona,& in ea ambulate,& inuenietis expiationem animabus vestris. Interrogate,inquit,& audite ab ijs qui norunt,citra contentionem & decertationem. Cùm didicerimus autem viam veritatis, rectà ingrediamur, minimè nos retrò conuertentes, donec consecuti simus id quod desideratur. Meritò ergo rex quidem Romanorum,Numa erat ei nomen,cùm esset Pythagorçus,primus ex omnibus hominibus posuit templum fidei & pacis. Abrahæ autem qui credidit reputata fuit iustitia. Is cùm sublimem eorum quæ in aëre eueniunt, & excelsam eorum quę in cælo mouentur persequeretur philosophiam,vocabatur Abram, quod exponitur Pater sublimis. Postea aũt cùm in cælum suspexisset,siue viso in spiritu filio,vt quidam exponunt,siue glorioso angelo,siue etiam aliàs cognito Deo creatura præstantiore, & quolibet qui est in ipsa ordine, assumit alpha,nempe cognitionẽ vnius & solius Dei,& dicitur Abraam,vt qui pro naturæ indagatore,sapiens, piusque in Deum, & eius amicus factus est. Exponitur.n. pater electus,sonitus. Verbũ enim factũ sonat. Huius aũt pater,est mens:eius aũt qui est virtute prædictus,est mens electa. Mihi aũt venit in mentem Agrigentinum poëtam laudare,qui fidem laudibus sic celebrat:

1.Cor.13.

1.Cor.1.

Hierem.6.

C

*Dilecti,scio quòd uerum sermonibus insit*
*Quos dico,res difficilis sed & ardua ualde,*
*Aegrè hominum est subiens,fidei est impulsio,mentes.*

Propterea hortatur quoq; Apostolus,vt fides nostra non sit in sapientia hominũ, qui profitentur persuadere, sed in Dei virtute, quæ sola & absque demonstrationibus,per solam fidem potest dare salutem. Eorum enim qui sunt probati, probatissimus nouit seruare. Quinetiam falsorum quoq; architectos & testes comprehen- 1.Cor.2.

de iustitia, inquit Ephesius. Nã hic quoq; nouit, vt qui ex barbara didicerit philosophia, eam quę fit per ignem expurgationẽ eorum qui malè vixerunt, quã ἐκπύρωσιν, hoc est, exustionem seu inflammationem postea vocarunt Stoici: qua ratione eum etiam, qui est propriè certa prędirus qualitate, statuunt futurum vt resurgat, eo ipso tuentes resurrectionem. Plato autem terram quibusdam temporibus dicit per ignem & aquam expurgari, hoc modo: Multi sæpe fuerunt hominum interitus, & erunt igne quidem & aqua maximi: quinetiam alijs quoque innumerabilibus alij breuiores. Et paulo pòst subiungit: Reuera autem est eorum quæ terram & cælum obeunt immutatio, & qui post longa temporum interualla, eorum quæ sunt in terra multo igne fit interitus. Deinde subiungit de diluuio: Quando autem rursus dij terram aquis expurgantes inundant, qui sunt quidẽ in montibus bubulci & pastores, conseruantur: qui autem sunt in ijs quæ sunt apud nos vrbibus, in mare feruntur à fluuijs. Ostendimus autem in primo Stromate, Gręcorum philosophos dici fures, qui à Mose & Prophetis præcipua dogmata non gratè acceperunt. Quibus illud quoq; adiecimus, quòd angeli illi quibus superna sors obtigerat, delapsi ad voluptates, enunciarunt arcana mulieribus, & quæcunq; ad eorum venerunt cognitionem, cùm alij celarent angeli, vel potius reseruarent in aduentum Domini. Illinc profluxit doctrina prouidẽtię, & sublimium rerum reuelatio. Cùm autem prophetia iam Græcis esset tradita, tractatio de dogmatibus suscepta est à philosophis, alicubi quidem vera rectè, alicubi verò falsa & quæ aberrabant coniectantibus, cùm q̃ allegoria occultaretur prophetica minimè intelligerent, quod etiam paucis propositum est adnotare, ea quæ vrgent persequentibus. Fidem ergo non ociosam & solã, sed cum inquisitione ostendere oportere dicimus. Non hoc enim dico, non oportere omnino quærere. Quære enim, inquit, & inuenies. A B

Luc.11.

*Quod autem quæritur,*
*Capi potest, quod negligitur verò effugit,* vt ait Sophocles.

Similia aũt dicit etiam Menander Comicus. Quęcunq; aũt quęruntur studio & solicitudine opus habere dicunt qui sunt sapientissimi: sed perspicientem quidem animæ facultatem ad inuentionem oportet dirigere, & quæ impedimentum afferunt expurgare: & rursus contentionem, inuidiam, & ipsam litem pessimè perdendam abijcere. Pulcherrimè enim scribit Timon Phliasius:

*Pernities hominum resonans lis uenit inane,*
*Cui soror & socia est faciens contentio cædes,*
*Cunctas res alias quæ circumuoluitur: at dein*
*Ceruicem obfirmans, hominem ad spes trudit inanes.*

Deinde paulò inferius subiungit:

*Quis pugnaturos lite hos commisit acerba?*
*Concurrens cum Echo turba indignata, silentes*
*Vlta uiros morbum immisit, multiq; cadebant.*

κερατίνου. διαλεληθότος. κροκοδειλίνου. ἐγκεκαλυμμένου. Psal.23.

De oratione falsa negante,* & ceratine & latente, & crocodiline, & sorite pręterea, & de ea quę est detecta, & de ambiguitatibus & sophismatibus. De Deo ergo quærere, si non ad litem, sed ad inuentionem tendat, est salutare. Scriptum est enim in Dauid: Comedent pauperes, & implebuntur, & laudabunt Dominum qui quærunt ipsum, viuet cor ipsorum in seculum seculi. Qui enim quærunt vera inquisitione, laudantes Dominum, implebuntur dono quòd à Deo proficiscitur, hoc est, cognitione, & viuet anima eorum. Anima enim per allegoriam dicitur cor, quę vitam suppeditauit, quoniam pater per filium cognoscitur. Sed nec omnibus qui impudenter & temerè dicunt & scribunt, oportet aures præbere. Nam calices quoque qui à multis sumuntur per aures, hoc est, ansas, aures quidem amittunt, præterea autem etiam ipsi excidentes confringuntur. Eodem modo ij quoque qui multis nugis fidei castam incestarint auditionem, ad veritatem iam tandem obsurdescentes, & inutiles fiunt, & in terram decidunt. Non ergo temerè pueris pręcipimus, auribus eos apprehendentes, vt osculentur eos qui ad ipsos attinent, hoc vtiq; tacitè significantes, ingenerari per auditum sensum dilectionis. Deus autem est dilectio, qui cognosci potest ab ijs qui diligunt, sicut Deus est fidelis qui fidelibus traditur per disciplinam, & oportet nos ei effici coniunctos ac familiares per diuinam dilectionem, vt simile simili contemplemur, purè & citra fraudem verbum audiẽtes veritatis, instar puerorum qui nobis obediunt. Hoc autem erat quod tacitè significabat, quicunque is fuerit qui inscripsit in aditu templi in Epidauro; C

Esse

A *Esse decet castum, sancti qui limina templi*
*Ingreditur.*

Castitas aũt est, sancta cogitare. Quòd si nõ facti, inq̃t, fueritis vt hi puelli, nõ intrabitis in regnũ cælorũ. Hîc enim Dei tẽplum tribus cernitur fundatũ fundamentis, fide, spe, charitate. Atq; de fide quidẽ satis testimoniũ adduximus earũ quę sunt apud Grecos scripturarũ. Ne aũt sit nostra prolixior ꝓgresſio, si de spe & charitate plurima conemur colligere, sufficiet hęc sola dicere, q̃ Socrates in Critone, bene viuere & mori vitæ præpõnẽs, aliquã spem alterius vitæ se post mortem habere existimat. Etenim in Phędro quoq; dicens ipsam animã cùm per se fuerit, solam posse verę sapientię, & quę vires humanas superat, esse participem, & quando ipsam qui hinc sumitur amor in cælum sustulerit, per philosophicã charitatem ad spei finẽ peruenientem, dicit accipere preciũ alterius vitæ æternæ. In conuiuio aũt dicit, omnibus quidem esse immixtum naturalem amorem generandi simile, & hominibus quidem solùm homines, viro aũt bono, similem: hoc autem non potest vir bonus efficere, qui non perfectas habeat virtutes, per quas sit erudíturus iuuenes qui ad eum ventitant: & vt dicit in Theęteto, generabit, & homines efficiet. Alios enim procreare quidem corpore, alios verò anima. Nam apud barbaros quoq; philosophos, per auditũ instituere & illuminare, dicitur regenerare. Et ego genui vos in Christo Iesu, dicit alicubi pręclarus Apostolus. Empedocles aũt in principijs cõnumerat etiam amicitiam, intelligens quandam charitatem quæ cogit ac conciliat: Matth. 18. Galat. 4.

B *Quam mente aspicias, oculis nec cernere cures.*

Quinetiam Parmenides in suo poëmate de spe tacitè significans, hæc dicit:

*Attamen & quæ absunt, cum ijs quæ sunt mente videto*
*Firma, nanque quod est ab eo nunquam resecabit,*
*Vbique nec toto quod dispergebatur in orbe.*
*Nec quod consistat.*

Nam is qui sperat, sicut etiã qui credit, mente videt ea quæ perspiciũtur intelligẽtia, & ea quæ sunt futura. Si ergo dicimus aliquid esse iustum, dicimus aũt etiam esse pulchrum & honestum: quinetiã veritatẽ aliquid esse dicimus: ex his aũt nihil oculis vnq̃ vidimus, præterq̃ sola mente. Verbum aũt Dei, Ego sum, inquit, veritas: est ergo verbum mente considerandum. Veros aũt, inquit, philosophos quosnam dicis? Eos, dixi ego, qui sunt studiosi contemplandæ veritatis. In Phædro autem Plato veritatem declarauit esse ideam. Idea aũt est Dei intelligẽtia, seu q̃ à mente diuina intelligitur, quod quidẽ Barbari dixerunt λόγον θεῦ, id est, Dei verbum seu rationẽ. Eius aũt sic habet dictio: Audẽdum enim est verum dicere, maximè cùm dicatur de veritate. Quę enim est coloris & figurę expers, & nõ tactilis, & quę verè est animę essentia, à solo gubernatore Deo potest aspici. Progressum autẽ verbum opificij causa est & creationis. Deinde etiam seipsum generat quando verbum caro factum fuerit, vt etiam cadat sub aspectum. Iustus ergo quęret inuentionem quæ oritur ex charitate, ad quam cõtendens, efficitur fortunatus. Pulsanti enim, inquit, aperietur. Petite, dabitur vobis. Qui enim regnum rapiunt, sunt violenti, non contentiosis orationibus, sed rectę vitæ assiduitate, & orationibus quę fiunt sine intermisſione, dicti sunt vim afferre, vt qui ex prioribus peccatis contractas abstulerint maculas. Ioan. 1. ἀγαπητικὴν. Luc. 11. C Matth. 11.

*Turmatim uitium certè uel pendere posſis,*
*Deus laboranti nam fert auxilium.*

Non enim expugnatu difficilia Musarum dona in medio sita, sunt à quolibet auferenda. Ignorationis itaq; animaduerso est prima disciplina ei qui verbo seu rationi conuenienter ambulat. Cùm ignorasset quispiam, quæsiuit: & cùm quæsijsset, inuenit magistrũ: & cùm inuenisset, credidit: & cùm credidisset, sperauit: & cùm hinc dilexisset, dilectio similis efficitur, hoc esse studens quod prius dilexit. Hanc viã & rationem Socrates indicat Alcibiadi, sic roganti. Non aliter existimas me de ijs quæ sunt iusta cognoscere? Certè, si quidem inueneris. Sed non putas me posse inuenire? & maximè quidem, si quæsieris. Deinde existimas me non posse quęrere? Ego quidẽ existimo, si putaris te non nosse. Hac ratione sunt etiam prudentum virginũ lampades, quæ noctu sunt accensæ in densis tenebris castitatis, quas esse noctẽ tacitè significauit scriptura. Prudentes animæ mundæ vt virgines, cùm intelligãt se esse sitas in mundana inscitia, lumen accendunt, & mentem excitant, & tenebras illuminant, & ignorationem expellunt, & quærunt veritatem, & expectant aduentum præceptoris. Fieri ergo non potest, inquam ego, vt sit vulgus philosophum.

*Thyrsigeri multi, pauci sunt re quoque Bacchi,* A

Matt. 20. Ex Platonis sententia. Multi enim sunt vocati, pauci verò electi. Et non est in omni-
2. Theß. 3. bus, inquit Apostolus, cognitio. Orate autem vt liberemur à prauis & peruersis hominibus. Non est enim omnium fides. Quinetiam Cleanthis quoq; Stoici philosophi Poëtica, hoc modo scribit similia:

*Ne spectes famam, dum uis sophos esse repentè,*
*Terreat amentis nec te sententia uulgi.*
*Iudicium sapiens & iustum non habet ullum*
*Vulgus, & in paucis uix hoc reperire licebit.*

Magis autem sententiosè & breuiter Comicus:

*Pulchra in tumultu iudicare non decet.*

Audierunt enim, vt existimo, pulchram illam quæ nobis dicit sapientiam: In medio insipientum, obserua occasionem. In medio autem cogitantium versare perpetuò. Et rursus: Sapientes occultabant sapientiam. Pignus enim veritatis exigit vulgus probationem, non contenti nuda quæ ex fide salute.

*In prauis sed qui uincunt non credere ualde est,*
*Præcipit at nostræ tibi sic persuasio musæ.*
*Dissecto noscas intra tua uiscera uerbo.*

Prauis. n. inqt Empedocles, hoc est familiare, velle quę sunt vera vincere ex eo q̃ nõ credãt. Quòd aũt nostra sint ꝓbabilia, & digna quę credãtur, cognoscent Gręci si verbũ magis examinetur, per ea quę consequũtur. Simili enim edocemur simile. Dicit B
Prouerb. 26. enim Solomon: Respõde stulto secundũ stultitiã suã. Quocirca ijs quoq; qui petunt eam quę est apud ipsos sapientiã, ea sunt exhibenda quę eis cõueniunt & sunt familiaria, vt facillimè per propria veniant, vt est consentaneũ, ad fidẽ veritatis. Omni-
1. Cor. 8. bus enim omnia factus sum, inquit, vt omnes lucrifaciam. Nam imber quoq; diuinę
Matth. 5. gratię, super iustos & iniustos demittitur. Num Iudæorum solùm est Deus, non etiã
Rom. 3. gentium? Certè etiam gẽtium, siquidẽ vnus est Deus, egregius clamauit Apostolus. Sed quoniam nec bono iustè, nec cognitione ad salutem volunt credere, nos ipsi ea quæ sunt illorũ propria existimantes, quoniã Dei sunt omnia, quoniã quę sunt pulchra & honesta à nobis ad Græcos peruenerunt, ea aggrediamur provt ipsi apti sunt ad audiendum. Sapientiam enim vel iustitiam, non ex veritate, sed ex ijs quibus delectatur, maxima pars vulgi metitur. Delectatur aũt non magis alijs, q̃ ijs quę sunt ei similia. Quicquid enim est adhuc surdum & cęcum, & nec habet intelligentiam, neque animę contẽplandi cupidæ interitum & perspicacem aspectũ, quem solus præbet Seruator, sicut in mysterijs prophanum, vel in choreis musicæ imperitum, nondum mundum, nec casta veritate dignum, inconcinnumq; & inordinatum & adhuc materiale, stare oportet extra chorum diuinum. Spiritalibus enim spiritalia compa-
1. Cor. 2. ramus. Propterea certè per modum occultationis qui est verè diuinus, & maximè nobis necessarius, in adyto veritatis repositum verbum reuera sacrum, Ægyptij quidem per ea quæ apud ipsos vocantur adyta, Hebræi autem per velum significarunt licere solis ijs adire, qui erant ex ipsis consecrati, hoc est, Deo dedicati, quibus erant C
circumcisæ vitiorum cupiditates, per suã in solum Deum charitatem. Non mundo enim mundũ tangere, Platoni quoq; videbatur esse nephariũ. Hinc prophetiæ & responsa dantur per ænigmata. Nec ostenduntur mysteria ijs, qui temerè & impudenter accedunt, sed cum quibusdã expiationibus & prædictionibus. Musa enim non erat tum quæstuosa, neq; operaria, neq; dulcia venduntur mellisona, à Terpsichore vultu deargentata, mollia carmina. Iam verò qui docentur ab Ægyptijs, primùm quidem docent Ægyptiarum literarum viam ac rationem quæ vocatur ἐπιστολογραφικὴ, hoc est, apta ad scribendas epistolas: secundam autem Sacerdotalem, qua vtuntur ἱερογραμματεῖς, id est, qui de rebus sacris scribunt: vltimam autem ἱερογλυφικὴν, id est, sacrã quæ insculpitur scripturam, cuius vna quidem est per prima elementa κυριολογικὴ, id est, propriè loquens, altera verò symbolica, id est, per signa significans. Symbolicę autem vna quidem propriè loquitur per imitationem, alia verò scribitur veluti tropicè, alia verò apertè sumitur allegoricè per quædam ænigmata. Qui solem itaq; volunt scribere, faciunt circulum: lunam autem, figuram lunę cornuum formam pręse ferentem, conuenienter ei formę quæ propriè dicitur. Tropicè autẽ, per conuenientiam traducentes & transferentes, & alia quidem immutantes, alia verò multis modis transfigurantes, imprimunt. Regum itaq; laudes fabulis per quas in deos referuntur mandantes, insculptis inscribunt notis. Tertij autem generis quod fit per ænigmata,

A nigmata, hoc sit indicium. Alia quidem astra propter obliquam conuersionem, assimilabant corporibus serpentum: Solem verò, Scarabei, quoniam cùm rotundam ex bubulo stercore effinxit figuram, eam vultu aduerso côuoluit. Aiunt aũt hoc quoq; animal sex quidem mensibus sub terra, alterã verò partem anni vitam degere super terram, & semen in globum emittere, & gignere, & non nasci fœminam scarabeum. Omnes ergo, vt semel dicam, qui de rebus diuinis tractarunt, tam barbari quàm Græci, rerum quidẽ principia occultauerunt: veritatem autem ænigmatibus, signisq; ac symbolis, & allegorijs rursus & metaphoris, & quibusdam talibus tropis modisq; tradiderũt, cuiusmodi sunt etiam apud Græcos oracula: & Apollo quidem Pythius dicitur λοξίας, id est, obliquus. Quinetiam dicta eorum qui apud Græcos vocantur sapientes, paucis dictionibus rem maiorem significant: cuiusmodi certè est illud, Parce tempori: aut quoniam vita est breuis, & non est hoc tempus temerè consumendum, aut contrà parcendum priuatis sumptibus, vt, etsi, inquit, multos annos vixeris, non desint tibi necessaria. Similiter etiam illud, Nosce teipsum, multa indicat: & quòd sis mortalis, & quòd homo natus es, & quòd si fiat collatio aliorum quæ sunt in vita præstantissima & excellentissima, nullam esse tui putes habendam rationẽ, si dicas te gloria insignem vel diuitem: vel contrà, quòd cùm sis diues & gloria insignis, non de solis commodis quibus alios superas, te iactare oporteat, & ad quid natus sis, inquit, cognosce, & cuius sis imago, & quænam sit tua essentia, & quod opificium, & quænã cum Deo coniunctio & affinitas, & quæ sunt his similia. Dicit aũt per

B Esaiam quoq; prophetã spiritus: Dabo tibi thesauros tenebrosos, occultos. Dei aũt thesauri, & quæ non deficiunt diuitiæ, est quæ est venatu difficilis sapientiã. Quinetiam poetæ qui à prophetis didicere Theologiam, per arcana sensa multa philosophantur, Orpheus, inquam, Linus, Musæus, Homerus & Hesiodus, & qui ea sunt ratione sapientes. Velum aũt eis apud vulgus est poëtica delectatio, somniaq; & symbola, quæ sunt omnia hominibus obscuriora, non propter inuidiã, nephas enim est Deum intelligere patibilem, sed vt ænigmatum notionem subiens inquisitio, ad inueniendam recurrat veritatem. Ea ratione dicit vtiq; Sophocles poëta tragicus: Esa. 45.

*Eiusmodiq; ego cognoui esse Deum.*
*Diuina semper exhibet sapientibus:*
*Prauis malus sed est, magisterq; breuis:*

malũ ponens pro simplici. Apertè itaq; de tota nostra Scriptura in Psalmis scriptũ est, vt quæ dicta sit in parabola: Audite populus meus legẽ meam, inclinate aurẽ vestram in verba oris mei. Aperiã in parabolis os meũ, loquar propositiones ab initio. Præclarus quoq; Apostolus sic dicit quodãmodo similia: Loquimur aũt sapientiã inter perfectos. Sapientiã aũt non huius seculi, neq; principũ huius mundi qui destruuntur: sed loquimur Dei sapientiam in mysterio absconsam, quã præfinijt Deus ante secula in gloriam nostrã, quam nullus ex principibus huius seculi cognouit. Si enim cognouissent, Dñm gloriæ non crucifixissent. Philosophi aũt non laborarunt vt aduentum Dñi afficerent ignominia. Restat ergo vt impugnet & inuehatur Apostolus in Psal. 77. 1. Cor. 2.

C vanã persuasionem eorũ qui erant sapiẽtes apud Iudæos. Et ideo subiungit: Sed prædicamus, inquit, vt scriptum est, quæ oculus non vidit, & auris non audiuit, & in cor hominis non ascẽderunt, quæ præparauit Deus ijs qui ipsum diligunt. Nobis enim reuelauit Deus per spiritum. Spiritus enim omnia scrutatur, etiam profunda Dei. Spiritalem enim & cognitione præditum nouit sancti spiritus discipulum qui à Deo suppeditatur, qui est Christi intelligentia: animalis aũt homo non suscipit ea quæ sunt spiritus: est enim ei stultitia. Iam verò Apostolus ad distinctionem perfectionis quæ existit ex cognitione, cômunem fidem alicubi quidẽ dicit fundamentũ, alicubi verò lac, scribens hoc modo: Fratres, non potui loqui vobis tanquam spiritalibus, sed tanquam carnalibus: tanquam infantibus in Christo lac vobis potum dedi, non cibum, nondum enim poteratis, sed neq; adhuc nunc potestis, adhuc enim carnales estis. Vbi enim inter vos est æmulatio & contentio, nónne carnales estis, & secundum hominem ambulatis? quæ quidem eliguntur & spontè suscipiuntur ab hominibus peccatoribus. Qui autẽ ab eis abstinuerunt, quæ sunt diuina cogitant, & cognitionis cibi sunt participes. Secundum gratiam, inquit, mihi datam, vt sapiẽs architectus posui fundamentũ. Alius aũt superædificat aurũ, & argentũ, lapides preciosos. Hæc sunt ædificia cognitionis, quæ ponũtur super fundamentũ fidei quæ est in Christo Iesu. Stipula aũt sunt quæ offerũtur & dedicãtur ab hæresibus, & ligna & fœnũ. Quale aũt sit vniuscuiusq; opus, ignis probabit. Cognitionis ædificiũ in epi- 1. Cor. 3.

Rom.1. stola quoq; ad Romanos tacitè significans, inquit: Desidero enim videre vos, vt aliquod vobis donũ impertiar spiritale, vt vos confirmemini. Non poterant apertè literis scribi eiusmodi dona. Iam verò à barbara philosophia admodum occultè dependent symbola Pythagorica. Suadet itaq; Samius domi non habere hirundinem, hoc est, loquacem, & susurronem, & effrenatæ linguę hominem, qui non potest con- A

Hierem. 8. tinere, nec capere ea quæ illic fuerint communicata. Hirundo enim & turtur, passeres agri, nouerunt tempora suorum ingressuum, inquit scriptura: nec oportet vnquã simul habitare cum nugis. Iam verò turtur murmurans, querelæ ingratam ostẽdens maledicentiam, ædibus meritò expellitur,

*Edatis uarios mihi ne hinc illincq; susurros.*

Hirundo aũt quę tacitè innuit fabulã Pandionis, deprecãda sunt & expianda quæ ꝓpter illã vulgò iactantur accidisse: ex quibus Tereũ alia quidẽ esse passum, alia verò etiã fecisse accepimus. Persequitur aũt cicadas quoq; musicas, vnde meritò expellitur qui verbũ persequitur, per eam quæ Olympum despicit sceptriferã Iunonem.

*Est mihi in lingua fidele penarium,* ait poëtica & Æschylus:

*Mihi quoque in lingua est clauis custodiens.*

Rursus Pythagoras, olla ab igne sublata, pręcipit non relinquere figuram in cinere, sed eam confundere: & qui surgunt è cubili, conturbare stragula. Tacitè enim significabat, non solùm esse delendũ fastum & superbiam, sed ne iræ quidẽ esse relinquendum vestigium. Cùm autem ebullire cessauerit, eam esse componendam & o-

Ephes. 5. mnem esse delendam iniuriæ memoriam. Sol autem vobis ne occidat super iracundiam vestram, inquit Scriptura. Et qui dixit, Non concupisces, sustulit omnem acceptæ iniuriæ recordationem. Ira enim inuenitur impulsio cupiditatis mansuetę animæ, vltionem citra rationem supra modum desiderans. Similiter etiam suadetur vt cubile quoq; conturbetur, vt nec alicuius somni nec insomnij interdiu, sed nec alicuius quę fuit in nocte voluptatis meminerimus. Fortè autem caliginosam quoque phantasiam, significabat oportere luce veritatis cõfundere. Irascimini, & nolite pec- B

Psalm. 4. care, inquit Dauid: non assentiri viso, neq; factum inducere, iram confirmãdo, oportere docens. Rursus super terram non esse nauigandum, est symbolum Pythagoricum. Significat autem, vectigalia, & similes cõductiones, quæ sunt turbulentę & instabiles, esse recusandas: propterea dicit verbum Publicanos difficiliter salutem assecuturos. Rursus autem non esse gestandos annulos, neq; Deorũ imagines esse eis

Exod. 20. insculpendas, præcipit Pythagoras: sicut Moses multis antè seculis apertè legem sanxit, nullam oportere sculptilem vel fusilem vel fictam vel pictam imaginem simulachrúmue facere, vt sensilia minimè attenderemus, sed ad ea transiremus quæ percipiuntur intelligentia. Vt Dei enim maiestas vilis & contempta reddatur, efficit quæ est in promptu videndi consuetudo: & quæ intelligentia percipitur essentiam colere per materiam, est eam per sensum vilipendere. Quocirca Ægyptiorum quoque Sacerdotum sapientissimi, Mineruæ ædem sub dio esse constituerunt, vt Hebręi qui templum posuerunt absque imagine. Sunt autem qui Deum colentes, facta

Græcũ exemplar habet ὀρανοῦ, id est, cæli: sed credo legendum esse ἀνθρώπου, id est, hominis: alioqui aut nullus, aut frigidus est sensus.

* hominis effigie quæ astra continet, eum adorant, cùm nostra quidem certè dicat scriptura, Faciamus hominem ad imaginem & similitudinem nostram. Operępretium autem existimo Eurysi quoq; Pythagorei vocem adducere, quæ sic habet: qui cùm in opere de fortuna dixisset, opificem seipso exemplari vtentem fecisse hominem, subiunxit: Tabernaculum autem est reliquis simile, vt quod factum fuerit ex eadem materia: à præstantissimo autem effectum artifice, qui ipsum est fabricatus seipso vsus archetypo. Et in summa, Pythagoras, & qui sunt ex eo cognominati, vnà etiam cum Platone maximè aliorum philosophorum, vsi sunt legislatore, vt cõijci potest ex ipsis dogmatibus: & cùm per rectè coniectantem famam diuinationis, nõ absq; instinctu diuino concurrissent, in quibusdam vocibus propheticis, veritatem per partes & species tractatam, non obscuris appellationibus, nec extra rerum declarationem ingredientibus, honorarunt, cùm accepissent manifestationem cõiunctionis quæ intercedit cum veritate. Vnde Gręca quidem philosophia est similis illuminationi quæ fit ex scirpo, quem homines accẽdunt, lucem artificiosè à sole suffurantes. Verbo aũt prędicato, vniuersa illa sancta lux eluxit. Deinde furtũ quidẽ nocti vtile est in ędibus, interdiu aũt illustratur ignis, & vniuersa nox illuminatur tãto sole lucis quę ꝑcipitur intelligẽtia. Iam verò eorũ quæ à Mose dicta sunt de iustitia, cõpendium fecit Pythagoras, dicens staterã non esse trasiliendã: hoc est, non pręteregrediendam esse ęqualitatem quę versatur in distributionibus, honorãdo iustitiam. C

Amicis

A *Amicis semper colligat,*
*Simulq; amicos, atque etiam oppida oppidis,*
*Ac socios socijs: ius est æqualitas.*
*Hominibus infestum est ei quod amplius,*
*Minus, odioq; hostili ipsum persequitur,* vt habet venustas poëtica.

Propterea Dominus, Tollite, inquit, iugum meum, quoniam benignum est & leue: & ijs qui de primatu contendunt familiaribus, cum simplicitate præcipit æqualitatem, dicens oportere eos fieri vt puellos. Similiter etiam Apostolus scribit, nullum esse in Christo seruum, vel liberum, vel Græcum, vel Iudæum. Noua est enim creatura quæ est in Christo, contentione & auaritia vacua, & iusta æqualitas. Stat enim inuidia extra chorum diuinum, & æmulatio, & tristitia. Qua ratione mystæ quoque prohibent vesci corde, docentes non oportere animum mordere & exedere socordia & dolore, propter ea quæ præter consilium & opinionem eueniunt. Miser ergo ille est, quem Homerus quoque dicit solum errantem, suum animum exedere. Rursus verò cùm duas vias ponat Euangelium, & Apostoli, atque omnes Prophetæ: & vnam quidem vocent arctam & angustam, vt quæ contracta sit in præceptis & prohibitionibus, alteram verò contrariam, latam & spaciosam, & cui nihil obsistit: & dicant, Beatus vir qui non ambulauit in consilio impiorum, & in via peccatorum non stetit: hinc & Prodici Chij proficiscitur fabula de virtute & vitio: & Pythagoras iubens ingredi via regia, non veretur prohibere sequi vulgi sententiam B quæ caret iudicio, & non est sine controuersia. Aristocritus autem in primo libro eorum quæ sentit contra Heracleodorum, meminit cuiusdam epistolæ quæ sic habet: Rex Scytharum Atœas populo Byzantino: Nolite afferre detrimẽtum meis vectigalibus, ne mei equi aquam vestram bibant. Symbolicè enim bellum quod eis erat illaturus significauit barbarus. Similiter Euphorion quoque Poëta inducit dicentem Nestorem: Matth. 11. Galat. 6. Matth. 7. Psal. 1.

*Mouimus à fluuio nondum Simoente caballos.*

Et ideo Ægyptij quoq; in sacris ponunt Sphingas, vtpote quòd de Deo oratio sit ænigmatica & obscura. Fortè autem quòd Deum oporteat amare & timere: amare quidem, vt sanctis benignum & propitium: timere autem, vt qui sit impijs iustus inexorabiliter. Feræ enim simul & hominis imaginem Sphinx significat. Longum autem fuerit omnia persequi Prophetica & legalia, ea afferendo quæ dicta sunt per ænigmata: ferè enim vniuersa hoc modo loquitur diuina scriptura. Ei autem qui est sanæ mentis, ad ostendendum id quod est propositum, sufficiunt, vt existimo, pauca quædam exempla exposita. Iam enim confitetur ocultationẽ, quæ in veteri templo narratur septem ambituum quæ ad aliquid spectabat apud Hebræos relatio, & quæ erat in talari per varia symbola compositio, quæ referuntur ad ea quæ apparent, significans compositionem quæ à cælo ad terram vsque pertingit. Et operimẽtum & velum hyacintho & purpura & cocco & bysso erat variatum. Significabat autem, quòd natura elementorum obtinet Dei reuelationẽ. Purpura enim est ex aqua, C & byssus ex terra: & hyacinthus assimilatus est aëri, cũ sit ater & obscurus, sicut coccus igni. In medio aũt operimenti & veli, quo licebat ingredi Sacerdotibus, erat situm thuribulũ, symbolũ terrę quę est sita in hoc mũdo medio, ex qua oriuntur exhalationes. Ille quoq; locus medius q̃ est intra velũ, in quẽ soli permissum erat Põtifici ingredi statis diebus, & exterius atriũ quod patebat omnibus Hebræis, dicunt esse medium cæli & terrę. Alij aũt dicunt esse symbolũ mũdi qui intelligẽtia p̃cipitur, & sensilis. Operculũ ergo quo arcebatur populi infidelitas, expãsum erat ante quinq; columnas, arcens eos qui erant in ambitu. Ea ratione valde mysticè frangũtur quinque panes à Seruatore, & multiplicantur eorum qui audiunt multitudini. Multi enim solis attendunt sensilibus, vt quę sola sint. Vide autem circumspiciens, inquit Plato, ne quis exaudiat ex ijs qui nõ sunt mysterijs initiati. Sunt autẽ ij q̃ nihil aliud esse putant, nisi id quod possint manibus tenaciter apprehendere: actiones autem, & generationes, & quicquid non est aspectabile, nõ admittentes in ordinẽ substantię. Tales.n. sunt qui attendunt solum sensuum quinarium: Auditus aũt, & quę sunt eius generis, adire non possunt Dei intelligentiã. Hinc facies patris dictus est filius, sensuũ quinario effectus, carnem gestans verbum, qui & index paternæ proprietatis. Si autem spiritu viuimus, spiritu & ambulemus. Per fidem ambulamus, non per speciem, egregius dicit Apostolus. Igitur intra operimentum abditum fuit Sacerdotale ministerium, & eos qui in ipso laborant, longè arcet ab ijs qui sunt extrinsecus. Exo. 25. 26. Ioan. 6. Galat. 5. 2. Cor. 5.

Rurſus velum adytus ad ſancta ſanctorũ,quatuor illic colũnæ declarant ſanctũ qua- A
ternionẽ veterum teſtamentorũ.Quinetiã myſticũ illud nomẽ tetragrammatũ, qđ
ijs ſolis imponebatur qui poterant ingredi adytũ,dicitur aũt Iehoua,qđ exponitur,
ꝗ eſt,& qui eſt futurus.Quinetiã apud Gręcos nomẽ θεὸς,id eſt,Deus,literarũ cõtinet
quaternionẽ.Cùm aũt in mũdo qui percipitur intelligentia ſolus fuiſſet Dñs, ingre
ditur perpeſsiones,ſubiens cognitionẽ eius quod eſt ineffabile, exuperãs omne no
men quod voce cognoſcitur.Iam verò candelabrũ quoq; erat ſitũ in auſtralibus par
tibus thuribuli,per quod declarati ſunt motus ſeptẽ luminariũ quę auſtrales faciũt
cõuerſiones. Ex vtraq;.n.parte candelabri tres inſerti ſunt rami,& in ipſis lucernæ,
quoniã Sol quoq; tanꝗ candelabrũ collocatus in medio aliarũ errantium, & ijs qui
Exo.25.26. ſunt ſuper ipſum,& ijs qui ſunt ſub ipſo,diuina quadã muſica lucẽ indit.Habet autẽ
aliud quoq; ęnigma,aureum candelabrũ,ſigni Chriſti,nõ figura ſola,ſed eò etiam ꝙ
lucẽ immittat multifariã multiſq; modis in eos qui in ipſum credunt,ſperant,& re-
ſpiciunt,per miniſterium eorum quæ ſunt primò creata.Dicunt aũt eſſe ſeptem ocu
Eſa.11. los Dñi,ſeptẽ ſpiritus,requieſcentes in virga quę floret ex radice Ieſſe. Ad Boreales
aũt partes thuribuli,ſita erant menſa ſuper quam panũ erat ꝓpoſitio,quoniã ex ſpi-
ritibus maximè nutriunt Boreales.Fuerint aũt quędã manſiones eccleſiarũ quę con
ſpirant in vnũ corpus & vnum cœtũ. Quæ aũt de ſancta arca narrantur, ſignificant
mundum qui percipitur intelligentia,qui eſt occultus & vulgo occluſus. Porrò au-
tem aureæ illę imagines,vtraq; ſex habens alas,aut duas vrſas,vt quidam volunt, ſi-
gnificat,aut, quod magis quadrat,duo hemiſphæria.Vult autem nomen Cherubim B
ſignificare multam cognitionem.Sed habent ambo duodecim alas,& per circulum
Zodiacum,& tempus quod in ipſo fertur,ſignificant mundum ſenſilem. De his,vt
exiſtimo,dicit etiam tragœdia loquens naturaliter:Et indefeſſum tempus perrenni
fluento plenum circuit,ipſum ſeipſum pariens.Et geminæ vrſæ perniciter erranti-
bus alarum motionibus Atlanticum ſeruant polum. Atlas autem qui non patitur,
poteſt quidem eſſe polus,& inerrans ſphæra: melius eſt autem fortaſſe intelligi æ-
uum immobile.Melius autem exiſtimo arcam quæ ex Hebraico nomine appella-
tur Thebota,aliquid aliud ſignificare.Exponitur autem vnum pro vno ex omnibus
locis.An ergo ogdoas,id eſt,octonarius,& mundus qui percipitur intelligentia, an
etiam qui omnia comprehendit,eſtq; figuræ expers,& non cadit ſub aſpectum,De-
us ſignificetur,in pręſentia dicere differatur.Cæterùm ſignificat quietem quæ eſt cũ
ſpiritibus glorificantibus,quos ſignificat Cherubim. Nunꝗ enim ꝗ ne ſculptile qui-
dem fabricari ſuaſit ſimulachrum,ipſe ſanctorum effinxiſſet imaginem.Neq; eſt om
nino compoſitum & ſenſile aliquod in cælo animal, quod ita ſe habeat. Eſt autem
facies quidem ſymbolum animæ prędicæ ratione. Alæ autem ſunt miniſteria & o-
perationes ſublimes, dexterarum ſimul & ſiniſtrarum poteſtatum. Vox autem eſt
gratæ mentis gloria,in contemplatione, quæ non poteſt ceſſare. Sufficit myſticam
interpretationem huc vſq; procedere.Pontificis autem veſtis talaris eſt ſignum mũ-
di ſenſilis.Septem quidem errantium,quinq; gemmę,& duo carbunculi,propter Sa
turnum & Lunam. Ille enim eſt meridionalis quidem, & humidus & terreſtris, & C
grauis:hæc verò aëria:vnde à nonnullis dicta eſt ἄρτεμις quaſi ἀεροτόμος, hoc eſt, ſecans
aërem:eſt autem aër obſcurus.Eos autem qui conferunt ad eorum quæ hîc ſunt ge-
nerationem,eos,inquam,qui præſunt ſtellis errantibus, diuina prouidentia & in
pectore & in humeris meritò deſcribit fuiſſe poſitos, per quos actio effectrix gene-
rationis eſt primus ſeptenarius. Pectus autem eſt habitaculum cordis & animæ.
Fuerint autem aliàs quoque gemmæ varij modi ſalutis: aliæ quidem in ſuperemi-
nentibus,aliæ verò in inferioribus partibus poſitæ cuiuſuis corporis quod ſalutem
aſſequitur.Trecenta autem ſexaginta ſex tintinabula quæ pendent à veſte talari,eſt
tempus annuum:annus,inquam,Domini acceptus, prædicans & reſonans maxi-
mum aduentum Seruatoris.Quinetiam pileus aureus qui eſt extenſus,ſignificat re-
galem Dñi poteſtatem:ſiquidem caput eccleſiæ eſt Seruator. Signũ certè principa-
1.Cor.11. lis imperij,eſt pileus capiti impoſitus:& alioqui audiuimus,Et Chriſti caput eſt De-
us,& pater Domini noſtri Ieſu Chriſti.Iam verò Pectorale quidem conſtat, & ex ſu-
perhumerali,quod eſt ſymbolum operis, & ex rationali: hoc aũt ſignificat rationẽ,
& eſt imago cęli, qđ ratione ſeu verbo factũ eſt, & ſubijcitur omniũ capiti Chriſto,
vt quod ſimiliter & eodem modo mouetur. Lucidæ verò ſmaragdi gemmæ quæ
ſunt ſuper ſuperhumerale,ſignificant Solem & Lunam,qui ſunt adiutores naturæ.
Manus autem,vt opinor,principium eſt humerus. Duodecim autem illæ quæ ſunt
in

A in quatuor ordinibus locatæ super pectus, describunt nobis circulum zodiacũ, conuenienter quatuor anni conuersionibus. Et alioqui oportebat capiti Dñico, legem quidem subijci & Prophetas, propterea q iusti significantur in vtrisq; testamentis. Prophetas enim simul & iustos dicentes esse Apostolos, rectè dixerimus, cùm vnus & idem sanctus spiritus operetur per omnes. Quomodo autem Dominus est supra mundum vniuersum, atqueadeo vltra mundum qui percipitur intelligentia: ita etiã nomen quod inscriptum est in lamina, dignum fuit habitum quod esset super omnẽ principatum & potestatem. Inscriptum est autem & propter præcepta mandata literis, & propter sensilem præsentiam. Dictum est autem nomen Dei, quoniam sicut filius aspicit bonitatem Patris, operatur Deus Seruator vocatus, qui est vniuersorũ principium, quod ex Deo quidem quod nõ cadit sub aspectum, imago effectum est primùm, & ante secula. Figurauit autem omnia quæ post se facta sunt. Iam verò rationale, Prophetiam quæ per verbum clamat & prædicat, & futurum iudicium significat. Nam idem est verbum quod simul prædicit, & iudicat, & singula discernit. Aiunt autem indumentum, vestem inquam talarem, prædicere carnis susceptæ dispensationem, per quam in mundo visus est propinquius. Ea certè ratione sanctificatam exuens Pontifex tunicam (mundus aũt, & quæ est in mundo creatura, sanctificata est ab eo, qui quæ facta sunt bona simul composuit) lauatur, & induitur aliam sanctam sancti, vt ita dicam, tunicam, quæ vnà cum eo ingreditur in adyta, ostẽdens, vt mihi videtur, leuitam, & cognitione præditum, vt qui sit princeps aliorum Sacer

B dotum, cùm illi quidem aqua sint abluti, & sola fide induti, & propriam expectant mansionem, ipsum cum ea quæ percipiuntur intelligentia discreuerit sensilibus, superatis alijs Sacerdotibus, contendentem ad peruadendum id quod percipitur intelligentia, ab ijs quę hîc sunt elui, non amplius aqua emundatum, vt prius, cùm in tribus Leuiticæ referretur ordinem. Sed cùm iam verbo cognitionis toto quidẽ corde sit mũdus, valde aũt se rectè gesserit, & vitæ institutionem in extremis à Sacerdote datam in maius auxerit, reuera & verbo & vita sanctificatus, indutus exultatione gloriæ, spiritalis illius & perfecti viri arcana accepta hæreditate, quam oculus non vidit, & auris non audiuit, & in cor hominis non ascendit, effectus filius & amicus, facie iam ad faciẽ impletur contemplatione quę non potest satiari. Sed nihil melius fuerit quàm ipsum audire Verbum, quod per scripturam, maiorem affert intelligentiam. Sic enim dicit: Et exuet vestem lineam, quã induerat cùm ingrederetur in sancta, & eam illic deponet, & lauabit corpus suum aqua in loco sancto, & induet vestẽ suam. Aliter autem, vt opinor, Dominus exuit & induit, descendens ad sensum: aliter autem qui per ipsum credidit, exuit & induit, vt etiam significauit Apostolus, vestem sanctificatam. Hinc ad imaginem Domini eligebantur Pontifices qui erãt probatissimi ex tribu sanctificata: & qui ad regnum, & qui ad Prophetiam erant electi, vngebantur. Vnde etiam Ægyptij non quibuslibet ea quæ erant apud ipsos committebant mysteria: neque rerum diuinarum cognitionem deferebant ad prophanos: sed ad eos solos qui erant ad regnum peruenturi, & ex Sacerdotibus ijs qui iu-

C dicati fuerant probatissimi, & educatione, & doctrina, & genere. Ergo quod attinet ad occultationem, sunt Hebraicis similia Ægyptiorum ænigmata. Ex Ægyptijs alij quidem in nauigio, alij verò in Crocodilo Solem ostendunt. Significant autem quòd Sol per aërem dulcem & humidum ingrediens, gignit tempus, quod ænigmaticè significat Crocodilus per quendam aliam Sacerdotalem historiam. Porrò autem Diospoli quoque, quæ est vrbs Ægypti, in æde sacra quæ vocatur Pylon, figuratus quidẽ est puellus, signum generationis: senex verò, interitus: & rursus Dei symbolũ, accipiter, vt piscis symbolũ odij. Et in alio rursus significato, Crocodilus est signum impudentiæ. Videtur ergo vniuersum hoc symbolum simul positum hoc significare: O qui nascimini & interitis, Deus odio habet impudentiam. Et aures & oculos fabricantes ex materia preciosa, consecrant Dij dedicantes, hoc vtique tacitè significantes, quod Deus omnia videt & audit. His accedit, quòd roboris quidem & fortitudinis signum est eis Leo: sicut certè & ipsius terræ, & agriculturæ, & alimẽti, est bos: magniq; animi virtutis & libertatis, equus: roboris autem rursus cum ingenij solertia, sphinx, quæ totum quidem corpus habet Leonis, faciem autem hominis. His quoq; similiter, ingenij solertiam & mentem & vires potentiamq; & artem homo significans, ab eis in sacris insculpitur. Iam verò in ijs quoq; quę ab ipsis vocãtur deorum κωμασίαι aureas imagines, duos quidem canes, vnum aũt accipitrem, & Ibim vnam circumferunt: & quatuor imaginum simulachra, vocant quatuor literas. κωμασίαι hώp

Atque duo quidem canes, sunt symbola duorum hemisphæriorum, vt quæ circum- A
eant & custodiát: accipiter verò, Solis: est enim igneus, & qui vim habet interimendi. Pestilentes itaq; morbos Soli attribuunt. Ibis autem, Lunæ: vmbrosa quidem, nigro: lucida autem, albo, plumis referentibus. Sunt autem qui volunt quidem tropicos significari à canibus, qui custodiunt, & instar ianitorum obseruant, accessum Solis ad Austrum & Septentrionem: ęquinoctialem autem, qui est altus & perustus, significat accipiter, sicut Ibis obliquum seu signiferum. Numeri enim inuentionis & mensuræ, maximè ex animalibus, Ibis videtur principium prębuisse Ægyptijs, sicut ex circulis obliquus. Sedenim non solùm q ex Ægyptijs vi ratiocinandi plurimùm valuere, sed ex alijs quoq; barbaris ijs qui erant dediti studio philosophię, symbolicũ genus sunt consectati. Aiunt quidē certè Idan thuram quoq; Scytharum regem, vt refert Pherecydes Syrius, Dario qui Istrum traiecerat bellum minantem, symbolum misisse pro literis, murem, ranam, auem, iaculum, aratrum. Cùm autem de his, vt erat consentaneum, exorta esse dubitatio, Orontopagas quidem Tribunus militum, dicebat eos tradituros imperium, coniectans ex mure quidem, habitationes: ex rana autem, aquas: ex aue verò, aërem: ex iaculo autem, arma: ex aratro verò, regionem. Xiphodres autem contrà est interpretatus. Dicebat enim: Nisi tanquam aues euolauerimus, aut tanquam mures terram, vel tanquam ranæ aquā subierimus, illorũ tela nō effugerimus: non sumus enim Domini regionis. Anacharsim quoq; Scytham dicit dormientem, sinistra quidem continuisse pudenda, os autem
dextera, significantem oportere quidem vtrunque, sed maius esse, linguam cohibe- B
re, quàm voluptatem. Et quid opus est vt in barbaris referendis immorer, cùm liceat ostendere ipsos Græcos valde esse vsos occultatione? Androcides certè Pythagoricus literas quæ vocantur Ephesiæ, in vulgus autem fuere valde iactatæ, dicit locum tenere symbolorum. Significare autem ἄσκιον quidem tenebras, eas enim non habere vmbras: κατάσκιον autem, lucem, quoniam illustrat vmbram. λὶξ autem prisca appellatione est terra, & τετρὰς, hoc est, quaternio, annus, ꝑpter horas. δαμναμενεὺς autem Sol qui domat, & αἴσια, vox vera. Significat autem symbolum, rerum diuinarum eum esse ornatum, qui est tenebrarum si conferatur cum luce, & Sol cum anno, & terra cum omnis generis naturæ generatione. Quinetiā Dionysius Thrax Grammaticus, in libro de declaratione symboli de rotulis, dicit his verbis: Significabant autem non per verba solùm, sed etiam per symbola, nonnulli actiones: per verba quidem, vt se habent, quæ dicuntur pręcepta Delphica, Nihil nimis: &, Nosce teipsum, & quę sunt his similia: per symbola autem, vt & rota quæ vertitur in deorum templis, quæ tracta est ab Ægyptijs, & rami qui dantur ijs qui adorant. Dicit enim Orpheus Thracius:

*Ramorum, ast quis sunt hominum terrestria curæ,*
*Non uno stant fata loco in mente, omnia circum*
*Voluuntur, nec fas una est consistere parte,*
*Vt cœpit cursus, uerum est pars cuilibet æqua.*

Rami aũt, aut sunt symbolum primi nutrimenti, aut vt sciat vulgus fructus quidē C
omnino germinare & augeri, longissimo tempore permanentes: se autem accepisse exiguum vitæ tempus, ea de causa volunt dari ramos. Fortasse autem etiam vt sciant, quòd sicut ij rursus vtuntur, ita illos quoq; hanc vitam citò esse relicturos, & ignis opus futuros. Genus ergo symbolicæ interpretationis est ad multa vtilissimũ, vt quod & ad rectam conferat Theologiam, & pietatem, & ad iudicandam ingenij solertiam, & breuitatis exercitationem, & ad ostendendam sapientiam. Sapientis enim esse vti dictione symbolica, apposite dicit Didymus Grammaticus, & declarare id quod per eam significatur. Iam puerorum quoq; doctrina quę versatur in elementis, complectitur interpretationem quatuor elemētorum. Dicit enim Phrygas aquam vocare Bedy, sicut etiam Orpheus:

*Nympharumq; Bedy promanat limpida lympha.*

Quinetiam Dion Thytes, id est, sacrificator, videtur scribere similiter: Et acceptũ Bedy effunde manibus, & conuertere ad aruspicinam. Contrà autem Comicus Philydæus, Bedy, aërem, qui vitam suppeditat, per hæc intelligit:

*Traham ut Bedy salutare deprecor,*
*Quod sanitatis est pars uel potißima.*

vt traham, inquit, aërem purum, non perturbatum. Huic opinioni consentit etiam Neanthes Cyzicenus, scribens sacerdotes Macedonum in precibus inuocare Bedy,

A dy, vt sit eis propitius & filijs, quod quidem interpretantur, aërem. Zaps autem alij quidem indoctè acceperunt ignem, à verbo σίσιε, quod significat ebullitionem. Sic autem vocatur mare, vt Euphorion in ijs quæ scripsit aduersus Theoridam:

*Nauibus exitio fuerat, quem cantibus urget* Zaps.
*Et Zaps insano nunc plangit in æquore salsus.*

Similiter autem Cratinus iunior Comicus:

*Producit & squillas Zaps & pisciculos.* Et Simmias Rhodius:
*Ex Amasignetis Cabrisq; enatus amarus* Est Zaps.

χθὼν autem est terra quæ est effusa in magnitudinem. Et πλῆκτρον, id est, plectrum, alij quidem polum, alij verò aërem, qui omnia pulsat & mouet ad naturam & augmentum, aut qui omnia implet. Non legerunt autem isti Cleanthem philosophum, qui Solem apertè vocat πλῆκτρον. In oriente enim iubar fulciens mundum veluti pulsans, in concinnum aptumq; cursum lucem deducit. Ex Sole autem reliqua quoq; astra significat. Sphinx autem non est intelligentia vniuersorum, & ex Poëtæ Arati sententia, mundi conuersio: sed fortè fuerit quidam spiritalis tenor qui peruadit, & mundũ continet: melius autem fuerit accipere æthera, qui omnia continet & cõstringit, sicut etiam dicit Empedocles: σφίγξ ἀπὸ τοῦ σφίγγω.

*Principium Solis tibi nunc agè carmine dicam,*
*Atq; orta unde stent quæ à nobis cuncta uidentur,*
*Tellus, atq; mare exundans, atq; humidus aer.*
*Titan, atq; æther qui cuncta astringit in orbem.*

B Apollodorus autem Corcyræus dicit hos versus fuisse prolatos à Brancho vate, Milesios expiante à fame. Ille enim multitudinem ramis lauri aspergens hymnum dicendo præiuit hoc modo:

*Cantetis pueri heus Hecaergon atq; Hecaergam.*

Ita aũt acclamauit populus vt diceret, Bedy, Zaps, Chthõ, Plectrũ, Sphinx, Cnachzbi, Chtyptes, Phlegmo, Drops. Meminit autẽ historię Callimachus quoq; in Iambis. Cnaachzbi autẽ per deriuationẽ est morbus, ex eo quod est κνάμπειν, id est, angere & dolore afficere. & διαφέρειν quod est differre ac dispergere, & βρύψαι quod est fulmine conburere. Thespis autem Tragicus per hæc dicit aliquid aliud significari, scribens hoc modo: Ecce tibi libo Cnachzbi candidũ, quod ex Cnecis expressi lactentibus. Ecce cùm tibi chtyptẽ caseũ, rubro melle miscuerim, Pandiorũ tempore in tuis sanctis id pono altarib. Ecce tibi Bromij candens fulgur libo. Significat autem, vt existimo, primũ lacteũ nutrimẽtũ quod est ex xxiiij elemẽtis animæ, post quod cibus iam est lac concretũ. Postremũ aũt sanguis vitis verbi, docet candens vinũ, nempe perficientem lætitiam, educationis. Drops autem est verbum efficax, quod ex prima catechesi, hoc est, quæ per auditum fit institutione, ad viri incrementum, in mensuram ætatis, hominem accendit & illuminat. Fertur etiam tertia puerilis in hunc mundum descriptio, μάρπτις, σφίγξ, κλώψ, ζυχθηδόν. Significat autem, vt opinor, per elementorum & mũdi administrationẽ, oportere nos progredi ad perfectiorum cognitionem, vi &

ἑκάεργος καὶ ἑκάεργα epitheta Apollinis & Dianæ, ita dicta, quòd operentur eminus.

κνακῶν.

πανδικαίως.

C labore æterna superata salute: μάρψαι enim significat comprehendere, Sphinx autem mundi compagem, ζυχθηδὸν autem difficultatem, & κλὼψ latentem Domini cognitionem simul & diem significat. Quid verò, an non Epigenes quoq; in libro de Poësi Orphei, ea quæ apud Orpheum sunt eius propria exponens, dicit κερκίσι καμπυλοχρόοις, id est radijs incurui corporis aratra significari? στημόσιν autem, hoc est staminibus, sulcos: μίτον autem, hoc est filum, dici allegoricè semen, & Iouis lachrymas significare pluuiam: μοίρας autem hoc est Parcas, rursus partes Lunæ tricesimam quintamdecimam, & nouam Lunam. Quocirca dicit etiam Orpheum eas vocare λευκοστόλους, id est, candidatas, vt quæ sint partes lucis. Rursus ἄνθιον quidem, id est floridum ver significare propter naturam. Noctem autem ἀργίδα, propter quietem, & Lunam γοργόνιον, propter ea quæ est in ipsa faciem. Et ἀφροδίτην, id est Venerem, apud Theologum dici tempus quo seminare oporteat. Huiusmodi etiam ænigmatibus vtebantur Pythagoræi, Proserpinæ quidem canes, stellas errantes: Saturni autem lachrymam, mare dicentes allegoricè. Et innumerabilia inuenerimus tam apud Philosophos, quàm apud Poëtas dicta ænigmaticè, cùm etiam toti libri indicent abditam scriptoris voluntatẽ: cuiusmodi est liber Heracliti de Natura, qui etiam propterea appellatus est σκοτεινὸς, id est, obscurus ac tenebricosus. Huic libro est similis Pherecydis quoq; Syri Theologia. Euphorion enim Poëta, & Callimachi Causæ, & Lycophronis Alexandra, & quæ sunt his similia, sunt instar gymnasij ꝓposita ad explicandũ, omnib. Grã

ἀργὸς, id est, ociosus.

ἀφροδίτη ἀπὸ τοῦ ἀφροῦ, id est, à spuma.

maticis. Talia ergo Moses quoq; præcipit, vt hæc cōmunia: Non vesci porco, neq; aquila, neq; accipitre, neq; coruo. Nam porcus quidē, quod est animal voluptati deditum & immundum, ciborum cupiditatem, & salacem in re venerea libidinem, & inquinatam significat intemperantiam, materialemq; & in luto iacentem, & quę ad cædem pinguescit & interitum. Rursus autem permittit vesci ijs, quæ habent fissam vngulam & quæ ruminant, significans, inquit Barnabas, oportere adhærere ijs qui timēt Dominum, & in corde meditantur eam quam acceperunt verbi distinctionē ijs qui loquuntur, & seruant Domini iustificationes: ijs qui sciunt quòd meditatio est opus lætitiæ, & qui verbum Domini ruminant. Quid verò est quod fissas & duplices habet vngulas? Quòd iustus & in hoc mundo ambulat, & sanctum expectat seculum. Deinde subiūgit: Videte quàm pulchrè legem Moses tulerit. Sed vndenam illis in mentem venerit vt hæc cogitarent? Nos iure præcepta intelligentes, loquimur vt Deus voluit, propterea aures nostras & corda circumcīdit, vt hęc intelligamus. Quādo certè dixit, Non vescêris aquila, accipitre, & miluo, & coruo. Non adhærebis, inquit, neq; assimilaberis his hominibus, qui labore & sudore nesciunt sibi parare victum, sed in rapina viuunt & iniquitate. Aquila enim rapinam, accipiter autem iniustitiam, & coruus auaritiam, & plura habendi cupiditatem significat. Scriptum est autem: Cum viro innocente eris innocens, & cum electo electus eris, & cum peruerso peruertêris. Sanctis ergo conuenit adhærere, quoniam ij qui eis adhærent sanctificabuntur. Hinc scribit Theognis:

Psal. 17.

*Te bona nanq; boni, si una uersere, docebunt:*
*Praui sed perimēt quod fuit ingenium.*

Exo. 15. Et rursus quando dicit in Cantico: Gloriose enim magnificatus est, equū & ascensorem deiecit in mare: multiplex, & beluinum, & quod appetitionis impetu fertur vitium, vnà cum auriga qui ascenderat, & habenas laxarat voluptatib. in mare proiecit, in mundi deijciens tumultus & perturbationes. Ita etiam Plato in libro de Anima, & aurigam, & equum qui defecerat, partem expertē rationis, quę bipertito diuiditur, nempe in iram & cupiditatem, dicit cadere. Qua ratione Phaëtontem quoque propter incōtinentiā fabula è curru excidisse significat. Ita etiam se habet de Ioseph. Cùm ei adolescenti fratres inuidissent, vt qui amplius aliquid pręuideret in cognitione, eum varia exuerūt tunica, & acceptum in lacum proiecerunt (lacus autem inanis non habuit aquam) vt qui variam viri boni cognitionē, ex diligenti studio cōparatā amandassent & valere iussissent: aut nuda quæ est ex lege fide vtentes, proiecerunt in lacum aqua vacuum, vt qui vendidissent in Ægyptum diuino verbo defectū. Vacuus autē scientia lacus, in quem proiectus, cùm exuisset cognitionem, videbatur similis fratribus, est nudus cognitione qui delituerat sapiens. Alio autem significato fuerit cupiditas varium indumentum, quæ in vastum barathrum est proiecta. Si quis autē, inquit lacum aperuerit, vel ædificauerit, & ipsum non texerit, vitulus autē vel asinus in eum inciderit, lacus Dominus soluet pecuniam, & dabit proximo, quod aūt fuerit mortuū, eius erit. Hic mihi illam subiunge prophetiā: Cognouit bos possessorem suum, & asinus præsepe Domini sui, Israël autem me non intellexit. Ne quis ergo ex ijs, cùm inciderit in eā quæ à te docetur cognitionē, nec possit continere veritatem, non obediat & excidat, sis cautus in vsu verbi: & apud eos quidem qui accedunt citra rationem, occlude fontem qui viuit in profundo, potum autem præbe ijs qui sitierint veritatem. Apud eos ergo qui non possunt accipere ꝓfunditatem cognitionis, tege lacū, Dominus ergo lacus, ipse inquam qui est cognitione præditus, mulctabitur, inquit, vt in quem culpa cōferatur, quòd is fuerit offensus & deuoratus verbi magnitudine, cùm tantas opes verbi minimè caperet, aut quòd eum qui operabatur traduxerit ad contemplationem, & à rudi & illaborata fide abduxerit per occasionem. Pecuniam autem dabit voluntati omnipotenti, sui facti reddens rationem. Hic est ergo typus & figura legis & prophetarū, quæ fuit vsque ad Ioannem. Ille autem etiamsi sit locutus apertius, vt qui non amplius vt Propheta prædiceret, sed iam præsentem ostenderet, qui ab initio symbolicè annunciabatur, Nō sum tamen, inquit, dignus qui soluem corrigiam eius calcei. Fatetur enim se non esse dignum qui tantam baptizet potestatem. Oportet enim eos qui mundos faciunt, animam exoluere à corpore & eius peccatis, tanquam pedem à vinculo. Fortasse autem postremam quoq; Seruatoris in nos operationem, proximam, inquam, & continentē, quæ Prophetiæ ęnigmate occultabatur per præsentiam, is qui per ipsum ostēdit aspectum, eum qui prędicebatur, eam quę procul in apertū veniebat

Gen. 37. Exo. 21. Esa. 1. Ioan. 1.

A bat significando præsentiam, reuera soluit finem eloquiorum carnis dispensationis, detecta notione symbolorum. Et quæ à Romanis fiunt in testamentis, locum obtinuerunt: nempe libræ illæ, & asses, propter iustitiã, fructuumq; perceptiones, & auri καρπισμοί. um contrectationẽ: illa quidem, vt iustè quidem fiant: hæc aũt, ad honoris diuisionem: tertium verò vt qui incidisset, cùm ei onus imponeretur, stans audiret, & teneret locum intercessoris. Sed, vt videtur, nimio quodam demonstrandi studio, plus quàm par sit, sum progressus. Me enim vita deficiet adducẽtem eorum multitudinẽ qui symbolicè Philosophantur. Memoriæ ergo causa, & breuitatis, & quòd se extendant ad veritatem, tales sunt scripturæ barbaricæ philosophiæ. Eorum enim qui sæpe ad eos accedunt, & dederunt, sui experientiam, & in fide, & in vita vniuersa, solũ esse volũt eam quæ verè est Philosophiã, & veram Theologiam. Iam verò nos quoq; volunt opus habere aliquo interprete & duce: sic enim fore vt maius in eam studiũ conferatur, & minimè decipiantur cùm accipiant ab ijs qui norunt, & prosint ijs qui se sunt digni existimarunt. Et alioqui omnia quæ ostenduntur per aliquod velamentũ, maiorẽ & præclariorẽ ostendunt veritatẽ, sicut res quæ in aqua pellucent, & ὕφια. formæ quæ per tegumenta concedunt aliquã sui euidentiã. Arguũt enim splendores, præter id quòd quæ sunt manifesta, vno modo intelligãtur. Cũ ergo liceat pluribus modis accipere, sicut certè accipimus in ijs quæ dicta sunt cum occultatione, ea cùm ita habeant, fallitur quidẽ indoctus & imperitus, cõprehendit aũt qui est cognitione præditus, iam ergo nec quislibet volunt omnia exponi temerè, nec cõmunicari bona sapientiæ, ijs qui ne in somnis quidẽ sunt omnia expurgati (neq; enim

B fas est quibuslibet obuijs ea expetere quæ parata fuere cũ tot certaminibus) neque prophanis verbi narrare mysteria. Aiunt certè Hipparchũ Pythagoræum accusatum quòd apertè scripsisset decreta Pythagorę, expulsum fuisse è schola, & ꝓpter ipsum, tanquam propter mortuum, factam esse columnam. Quocirca etiam in barbara philosophia vocant mortuos, eos qui exciderunt à dogmatibus, & mentẽ subiecerunt animæ perturbationibus. Quæ est enim participatio iustitiæ & iniustitiæ? vt ait diuinus Apostolus: aut quæ societas luci cum tenebris? Quæ autem est conuẽtio Christo cũ Belial? aut quæ pars est fideli cum infideli? Olympiorum enim & mortuorum sunt separati honores. Quocirca egredimini è medio ipsorum, & separemini, dicit Dominus, & immundum ne tangatis, & ego suscipiam vos, & ero vobis in patrem, & vos eritis mihi in filios & filias. Non soli autem Epicurei & Plato multa occultabant, sed etiam Epicurei dicunt quædam esse apud se arcana, & non permittere omnibus vt ea scripta legant. Quinetiam Stoici dicunt à Zenone primo quædam fuisse conscripta, quæ non facile permittunt legere discipulis, quorum non prius fuerit factum ab ipsis periculum, an germanè & syncerè philosophentur. Aristotelei quoque dicunt, ex suis scriptis alia quidem esse ἐσωτερικά, id est, interna: alia verò communia & ἐξωτερικά, hoc est, externa. Quinetiam ij qui fecere mysteria, cùm essent Philosophi, sua dogmata obscurauerunt fabulis, vt non essent manifesta omnibus: deinde illi quidem humanas celantes opiniones, arcebant indoctos ne ad eas adirent: eo-

C rum autem quæ verè sunt sanctam & beatam contemplationem, non multò magis celari conferebat. Sed neq; ea quæ sunt barbaræ Philosophię, neq; fabulæ Pythagoricæ, neq; quę apud Platonẽ in Republica ab Armenio, & in Gorgia ab Æaco & Rhadamanto & in Phædone fabula, Tartari, & in Protagora Promethei & Epimethei, & præterea fabula belli gesti inter Atlantinos & Athenienses in Atlantico, non sunt in omnibus nominibus exponendæ allegoricè, sed quæcunque vniuersam ac generalem significant sententiam. Atq; hæc certè inuenerimus significari per symbola sub velo allegoriæ. Quinetiam cum Pythagora consuetudo, & quæ cum familiaribus erat duplex coniunctio, vocans quosdam ἀκουσματικοὺς, id est, Auscultatores, quosdã verò Mathematicos, qui syncerè ac germanè attingebant Philosophiam, significabat aliud quidem dictum fuisse, aliud verò fuisse à multis occultatum. Fortassis autem illud quoq; duplex orationis genus Peripateticorum, nempe & quod opinabile, & quòd ἐπιστημονικόν, id est, scientiam constituens vocatur, non multum abest quin diuidat opinionem ac famam à vera gloria quæ dicitur εὔκλεια, & à veritate. δόξα.

*Mortale à seclo flores decerpere honorum,*

*Te minimè subiget, pia possis quo mage fari.*

Musæ certè Ionicæ dicunt dilucidè vulgus quidem hominum, & eos ex populis qui sibi videntur sapientes, sequi poëtas, & vti legibus, vt qui sciant multos esse malos: eos autem qui sunt optimi, gloriam persequi: eligunt enim, inquit, optimi omnium

contraria, perennem gloriam mortalium. Multi autem se explent & exaturant, tan A
quã pecora, ventre & pudendis, & rebus ex ijs quę sunt in nobis turpissimis, metien
tes beatitudinem. Magnus quoq; ille Parmenides Eleates, introducit duarum viarũ
doctrinam, sic scribens:

*Vna quidem ueri est, bene quam cor credere constans*
*Possit, opinio sed nimium leuis altera uulgi,*
*Cui non certa fides, nec inest persuasio uera.*

Ephe. 3. Meritò ergo dicit diuinus Apostolus: Per reuelationem notum mihi factũ est sacramentum, sicut prius scripsi paucis, prout potestis legentes intelligere prudentiam meam in mysterio Christi, quod alijs generationibus non est agnitum filijs hominum, sicut nunc reuelatũ est sanctis eius Apostolis & Prophetis. Est enim aliqua quo Col. 1. que perfectorum doctrina, de qua dicit scribens ad Colossenses: Non cessamus pro vobis orare & petere, vt impleamini agnitione voluntatis eius, in omni sapientia & intellectu spirituali, vt ambuletis dignè Deo, per omnia placẽtes, in omni opere bono fructificantes, & crescentes in cognitione Dei, omni virtute confirmati, secundum potentiam gloriæ eius. Et rursus: Secundum dispensationẽ Dei quę data est mihi, inquit, in vobis, vt impleam verbum Dei, mysteriũ quod fuit absconditũ à seculis & à generationibus, quod nunc manifestatum est sanctis eius, quibus voluit Deus notum facere, quæ sint diuitiæ gloriæ mysterij huius in gẽtibus. Quocirca alia quidem sunt mysteria quæ fuerunt abscõsa vsq; ad Apostolos, & tradita sunt ab ipsis, vt à Domino acceperunt: abscõsa autem in veteri testamento, quæ nunc manifesta B ta sunt sanctis. Aliud verò est quod est diuitiæ gloriæ mysterij, quod est in gentibus, quod est fides & spes in Christum, quem alibi dixit fundamentum. Et rursus veluti cupiens manifestare cognitionem, sic scribit: Admonentes omnem hominem in omni sapientia, vt exhibeamus omnem hominem perfectum in Christo. Non omnem hominem absolutè, quoniam nullus esset infideles: sed nec omnem qui credit, perfectum in Christo: sed omnem dicit hominem, perinde ac si diceret, totum hominem, vtpote sanctificatũ corpore & anima. Quòd enim non sit omniũ cognitio, subiungit apertè: Constructi in charitate, & in omnes diuitias certitudinis intelligẽtiæ, Col. 4. in agnitionẽ mysterij Dei in Christo, in quo sunt omnes thesauri sapientiæ & scientiæ absconditi. Orationi instate, vigilantes in ea cum gratiarum actione: gratiarum autem actio, non solùm fit in animo & bonis spiritalibus, sed etiam in corpore & bonis corporis. Adhuc quoq; apertius ostendit, cognitionem non esse omnium, subiũgens: Orantes simul & pro nobis, vt Deus aperiat nobis ostium ad loquendum mysterium Christi, propter quod etiam vinctus sum, vt manifestem ipsum ita vt opor-Heb. 5. tet me loqui. Iam enim erant quæ tradebantur Hebræis sine scriptis. Etenim cũ deberetis, inquit, esse doctores, propter tempus, vt qui in testamento veteri consenueritis, rursus opus habetis vt vos doceam quænam sint elementa initij eloquiorum Dei, & facti estis quibus lacte sit opus, nõ solido cibo. Omnis enim qui lactis est particeps, est imperitus sermonis iustitiæ, est enim paruulus, vt cui sint primæ creditæ disciplinæ. Perfectorum autem est solidus cibus, qui propter habitum habent sen- C Heb. 6. sus exercitatos ad discretionem boni ac mali. Quocirca, dimittẽtes initij Christi sermonem, ad perfectionem feramur. Quinetiam Barnabas, qui ipse quoq; prædicauit verbum vnà cùm Apostolo, Simplicius, inquit, vobis scribo, vt intelligatis. Deinde paulò inferius, iam adducens manifestius vestigium traditionis quæ est ex cognitione, dicit: Quid eis dicit alius Propheta Moses: Ecce hæc dicit Dominus Deus: Intrate in terram bonam, quam iurauit Dominus Deus, Deus Abrahæ, & Isaac, & Iacob, & possidete eam terram fluentem lacte & melle. Quid dicat cognitio, discite: Sperate, inquit, in eum qui in carne est vobis manifestãdus Iesus Christus. Homo enim est terra patiens: ex facie enim terræ fuit Adæ formatio. Quid ergo dicit in terram bonam fluentẽ lacte & melle? benedictus Dominus noster, ô fratres, qui sapientiã & intelligentiã posuit in nobis occultorũ suorũ. Dicit enim Propheta, Parabolam Domini quis intelliget, nisi sapiens & sciens, & diligẽs Dominũ suum? Paucorũ est hæc capere. Non enim inuidens, inquit, præcepit Dominus in aliquo Euangelio: Mysteriũ meum mihi, & filijs domus meę, in tuto & extra solicitudinem statuens electionem, vt cùm ea acceperit quæ sunt coniuncta & conuenientia ijs quæ elegerit, sit zelo superior. Qui enim non habet boni cognitionem, est malus, quoniam vnus est bonus, pater: patrem autem ignorare, est mors: vt nosse, vita æterna, per participationem potestatis, in quam non cadit interitus: & non interire quidem, est esse participem diuini-

A diuinitatis:interitum autem affert recessus à Dei cognitiõe. Rursus Propheta: Et da bo tibi thesauros absconditos, obscuros, inuisibiles, vt cognoscant quòd ego Dominus Deus. His cõuenienter Dauid quoq; psallit: Ecce enim veritatem dilexisti, incerta & occulta sapientiæ tuæ manifestasti mihi. Diem diei eructat verbum, vt apertè scriptum est, & nox nocti annunciat scientiam, quæ est abdita mysticè. Et non sunt loquelæ neque sermones, quorum non audiantur voces eorũ Deo qui dixit, Faciet quis clanculum, & non videbo ipsum? Propterea disciplina dicta est illuminatio, vt quæ manifestauerit ea quæ erant occulta, cùm magister solùm aperuit arcæ operaculum, contra quam Poëtæ dicunt Iouem bonorum quidem dolium obturasse, malorũ autẽ aperuisse. Scio quòd veniens ad vos, inquit Apostolus, veniã in plenitudine benedictionis Christi. Spiritale donũ, & traditionem quæ est ex cognitione, eis præsentibus pręsens cupit impertire (neq; enim ea poterant significari per epistolã) plenitudinem Christi, vocans per reuelationẽ mysterij, quod æternis temporib. fuerat tacitum, nunc autẽ fuit manifestatum per scripturas Propheticas, secundum mãdatum æterni Dei, ad obedientiã fidei in omnes gentes cogniti: hoc est in eos qui ex gentibus eum esse credebant. Paucis autẽ ex his ostenditur quænã sunt ea quæ sunt in mysterio. Meritò ergo Plato quoq; de Deo tractans in epistolis: Dicendũ est, inquit, tibi per ænigmata, vt si tabulę vel in mari vel in terra aliquid acciderit, qui legit non intelligat. Deus enim vniuersorum, qui omnem vocem, omnẽ cognitionem, & omnem superat notionem ac intelligentiam, nunquam mandari possit literis, cùm B sit potestate sua eiusmodi, vt verbis non possit exprimi: quod ipsum quoq; Plato significauit, dicens: Hæc ergo considerans, caue ne te aliquando pœniteat eorum quę nunc indignè exciderunt. Maxima autem cautio est, non scribere, sed discere. Non potest enim, non potest fieri, vt quæ scripta sunt non excidant. His germana dicit sanctus quoq; Apostolus Paulus, Propheticam & verè antiquam conseruans occultationẽ, à qua quæ Græcis fuerunt pulchra profluxere dogmata. Sapientiam autẽ loquimur inter perfectos: sapientiam autem non huius seculi, neq; principium huius seculi qui destruuntur: sed loquimur Dei sapientiã in mysterio absconditam. Deinde paulò inferius cautionem ne sermones in vulgus exeát, docet hoc modo: Et ego fratres, nõ potui loqui vobis tanquã spiritalibus, sed tanquã carnalibus: tanquã infantibus in Christo lac vobis potũ dedi, non cibũ: nondum enim poteratis, sed neq; nunc potestis, adhuc enim carnales estis. Si ergo lac quidẽ est infantiũ, cibus aũt, perfectorum nutrimentum, dictus est ab Apostolis: lac quidem intelligetur catechesis, veluti primum nutrimẽtum animæ: cibus autem, suspiciens contemplatio, quę sunt ipsę carnes & sanguis verbi, hoc est, comprehensio diuinæ potentiæ & essentiæ. Gustate & videte, inquit, quòd Christus est Dominus. Sic enim seipsum impertit ijs qui sunt talis cibi spiritalis participes, quando anima ipsa seipsam nutrit ex sententia Platonis. Cibus enim & potus verbi diuini, est cognitio diuinæ essentiæ. Quamobrem Plato quoque dicit in secundo de Republica: Cùm sacrificauerimus, nõ porcum, sed magnum aliquod & dubium sacrificiũ, ita demum oportere de Deo quęrere. C Apostolus autem: Et pascha, inquit, nostrum immolatus est Christus, reuera dubium & inexplicabile sacrificium, filius Dei qui pro nobis sanctificatur. Sacrificium autem Deo acceptum, est corporis & eius affectionum ac vitiorum seperatio: is est verus reuera Dei cultus. Num autem propterea meritò dicta est à Socrate philosophia mortis meditatio? qui enim neq; visum adducit in cogitãdo, neq; aliquem trahit ex alijs sensibus, sed ipsa pura mente se rebus applicat, is veram persequitur philosophiã. Hoc sibi vult etiã Pythagoræ quinq; annorũ silentiũ, quod præcipit discipulis, vt scilicet auersi à rebus sensilibus, nuda mente Deum contemplarentur. Hæc ergo à Mose accepta sunt philosophati Græcorũ præstantissimi. Præcipit enim vt holocausta, cùm ea excoriauerint, membratim diuidant, quoniam cognoscentem animã cùm nuda fuerit à pelle materiali, absq; nugis corporis & omnibus vitijs, quę sibi vendicant inanes & falsæ opiniones, carnalibus exutam cupiditatibus, luci consecrari necesse est. Plurimi autem homines, id quod est mortale tãquam cochleę induentes, & circa suas ipsarum libidines & intẽperantias, non secus ac histrices, instar globi circumacti, de beato Deo, & in quẽ non cadit interitus, talia qualia de se opinantur. Non animaduertunt autem etsi sint nobis propinqui, Deũ dedisse nobis innumerabilia quorũ ipse non est particeps: generationem quidem, cùm ipse sit ingenitus: nutrimentum aũt, cùm ipse eo nõ egeat: & augmentũ, cùm sit in æqualitate: senectutis & mortis potestatẽ, cũ ipse sit senij & mortis expers: quocirca & manus,

Esa. 45.
Psal. 50.
Psal. 18.
Num. 24.
Rom. 15.
1. Cor. 2.
1. Cor. 3.
1. Cor. 5.

&pedes,& os,& oculos,& ingressus,& egressus,& iras,& minas,nemo aliquo modo existimet dici Dei affectiones apud Hebræos. Sanctius est autē & magis pium, quædam ex his nominibus dici allegoricè, quæ quidē procedente tempore suo loco aperiemus.Ex omnibus medicamentis est maximè salutaris sapientia. Callimachus scribit in Epigrammatib. Alius autem ex alio sapiens. Et olim & nunc, inquit Bachylides in Pæanibus: neq; enim obscurorum versuum fores facilè est inuenire. Pulchrè itaq; Isocrates in Panathenaico,cùm prius posuisset, Quosnam ergo voco sapientes?subiungit: Primum quidē eos, qui rectè vtuntur ijs rebus quæ quotidie accidūt,& quorum est eiusmodi opinio,vt temporū opportunitates facilè assequatur, & magna ex parte coniectet id quod est vtile: deinde eos qui honestè & iustè semper versantur cum eis quorū vtuntur cōsuetudine: & quæ ab alijs quidē afferuntur molestias & indignitates toleranter & facilè ferunt,seipsos autem quàm fieri potest minimè graues,& quā moderatissimos exhibent ijs qui eis vtuntur:prętereа autem eos, qui voluptatibus quidē imperant,& sunt eis superiores: nō vincuntur autem à rebus aduersis,sed in eis se strenuè gerunt,&pro dignitate naturæ cuius sunt participes.Quartū,quod quidē est maximum,eos quos non corrumpunt res secundæ, nec ab eis ad immoderationē traducuntur & insolentiā, sed permanēt in ordine eorum qui sunt modesti & rectè sapiūt.Deinde colophonem addit orationi:Eos autem qui non solùm ad vnum ex his, sed ad hæc omnia habent animæ habitum bene cōpositum, eos dico esse & prudentes & perfectos viros, & omnes habere virtutes. Vides quomodo vitā quæ ex cognitione agitur,Græci quoq; ( etsi nesciant quomodo scire oporteat ) diuinis laudibus celebrent:quænam sit autem cognitio, ne in somnis quidem norunt.Si ergo inter nos conuenit,cognitionem esse cibum rationalem,reuera sunt beati,qui conuenienter diuinę scripturæ esuriunt & sitiunt veritatem,quoniam implebuntur alimento æterno.Valde autem admirabiliter qui est in scena Philosophus Euripides, inuenitur ijs quæ dicta sunt consentire per hæc, patrem & filiū simul nescio quomodo tacitè significans: Tibi omniū regi libamen & molam offerens,Iupiter,siue mauis Dis vocari:Tu aūt mihi sacrificum dubium omnis fructuum oblatiōis accipe,plenū,profusum.Perfecta enim & omni ex patre absoluta oblatio, dubiumq;,& quod exitum inuenire nō potest,pro nobis Christus est sacrificium.Et quòd Seruatorem ipsum nescius dicat,planum faciet,subiungens: Tu enim in cœlestibus sceptrum Iouis tractans, terrestrium autem ô Dis es imperij particeps.Deinde dicit apertè: Mitte quidē lucem, animæ virorum scire volentium certamina vndenam germinauerint:Quænam radix malorum,& quemnam ex beatis,cùm exposuerint, inuenire posit quies laborū. Non abs re ergo in mysterijs quoq; quæ fiunt apud Græcos, primum locum tenēt expiationes & lustrationes, sicut etiā apud Barbaros lauacrum.Post hæc autem sunt parua mysteria,quæ habent aliquod fundamētum doctrinę & præparationis futurorum.In magnis autem de vniuersis non restat amplius discere,sed contemplari & mente comprehendere & naturam & res ipsas. Acceperimus autem expiandi quidem & expurgandi modum,confessione,contemplandi autem resolutione, procedentes ad primam intelligentiam per resolutionē, ex ijs quæ sunt ei subiecta ducentes initium, auferentes quidem à corpore qualitates naturales,circuncidentes autem eam quę est in profundum dimensionē:deinde eam quæ est in latitudinem,& post hæc eam quæ est in longitudinē. Quod enim restat signum, est vnitas, quæ, vt ita dicam, habet posituram. Si ergo ablatis omnibus quæ adsunt corporibus, & ijs quæ dicuntur incorporea, nos ipsos proiecerimus ad Christi magnitudinem: & deinde in vastitatē immensitatemq; sanctitate processerimus, ad intelligentiam omnipotentis vtcunque processerimus, non quod est, sed quod non est cognoscentes. Figura aūt & motus, vel status, vel sedes, vel locus, vel dextera,vel sinistra,de patre vniuersorum ne sunt quidem cogitanda.Atqui hęc quoque scripta sunt, sed quid velit significare vnūquodq; eorū, ostendetur suo loco. Nō est ergo prima causa in loco, sed supra locum & tempus & nomē & intelligentiam. Propterea Moses quoq; dicit:Ostende mihi teipsum euidentissimè: tacitè innuens
Exod.33. Deum non posse doceri,nec verbis exprimi ab hominib.sed sola ea quæ ab ipso proficiscitur posse potestate cognosci. Inquisitio enim est informis, & quæ non cadit sub aspectum: gratia autem cognitionis, est ab ipso per filium. Apertissimè autem
Prouerb. 30. Solomon nobis feret testimonium,dicens hoc modo:Prudentia hominis non est in me, Deus autem dat mihi sapientiam, scio autem sancta. Iam verò diuinam prouidentiam allegoricè Moses nominauit lignum vitæ quod plātatum fuit in paradiso: qui

A qui quidem paradisus potest etiã esse mundus, in quo orta sunt omnia quę processere ex creatione. In eo & verbum floruit & fructum tulit caro factum, & eos qui eius benignitatem gustarant viuificauit, quoniam nec absq; ligno nobis venit in cognitionem. Suspensa enim est vita nostra ad fidem nostram. Porrò aũt Solomon quoq; rursus dicit: Arbor est immortalitatis ijs qui ipsam apprehendunt. Et ideo dicit: Ecce do ante faciem tuam vitã & mortem, diligere Dominum Deum, & ambulare in vijs eius, & audire vocem eius, & credere vitę. Sin aũt transgresi fueritis iustificationes & iudicia quæ dedi vobis, perditione perdemini. Hoc enim est vita & longitudo dierum tuorum, diligere Dominũ Deum tuũ. Rursus Abrahã cùm venisset in locum quem dixit ei Deus, tertio die suspiciens videt locum eminus. Nam primus quidem dies est qui fit per aspectum rerum pulchrarum & honestarũ: secundus est optimæ animæ desiderium: tertio verò mens perspicit spiritalia, apertis oculis à Magistro, qui die tertio resurrexit. Fuerint autẽ tres quoq; dies mysterium signaculi, per quod, is qui verè est Deus, creditur. Eminus ergo cõsequenter videt locum, est enim Dei regio captu difficilis, quem appellauit Plato χώραν ἰδεῶν, hoc est, idearum regionem, seu campum ac receptaculum, cùm à Mose eum accepisset esse locũ, vt qui omnia & vniuersa cõtineat. Meritò autẽ eminus videtur ab Abraham, propterea quòd sit in generatione, & per Angelum continenter ac proximè mysterijs initiatur. Hinc Apostolus: Videmus nunc, inquit, tanquam per speculum, tunc aũt facie ad faciem, per solas illas puras & incorporeas mentis applicationes. Fieri autem potest vt quis

*Sap. 15.* *Eccl. 15.* *Deut. 30.* *Gen. 22.* *1. Cor. 13.*

B in disserendo de Deo, diuinet, si aggrediatur absq; omnibus sensibus, contendere ad id quod est vnumquodq;, & ab ijs quę sunt non prius discedere, quàm transcendens ea quæ id supereminent, id quod est bonum, ipsa apprehenderit intelligentia, versans in ipso fine eius quod potest apprehendi intelligentia, ex Platonis sententia. Rursus Moses non permittens aras & delubra multis in locis construi, vno Dei templo extructo, & vnigenitum esse mundum, vt ait Basilides, & vnum, vt non amplius videtur Basilidi, Deum annunciauit: & quoniam eum qui comprehendi non potest loco, non comprehendit Moses qui est præditus cognitione, in templo nullum posuit colendum simulachrum, Deum sub aspectum non cadere, & circumscribi non posse significans, ad Dei autem notitiam Hebræos vtcunq; adducens, per honorem eius quod est in templo nominis. Quinetiam verbum prohibens & fanorũ constructiones, & omnia sacrificia, omnipotentem non esse in aliquo tacitè significat, per ea quæ dicit: Quam domum ædificabitis mihi, inquit Dominus? Cœlũ mihi est sedes, & quæ deinceps consequuntur. Et de sacrificijs similiter: Sanguinem taurorum, & adipem agnorum nolo, & quæ post hæc per Prophetam prohibet spiritus Domini. Pulcherrimè igitur his quoq; Euripides adstipulatur, scribens:

*Esa. 66.* *Psalm. 49.*

*Constructa ab architectis quæ queat domus,*
*Corpus Dei plexu cohibere mœnium?* Et de sacrificijs similiter:
*Nanq; indiget Deus, Deus si rectè siet.*

C Poëtarum sunt hæc verba infelicia. Deus enim non fecit mundum, quòd ei opus esset, & honores scilicet ab hominibus, & ab alijs dijs & dæmonibus, inquit Plato, perciperet, veluti quoddam vectigal accipiens à generatione: à nobis quidẽ fumos, à dijs autem & dæmonibus propria eorum munera ac ministeria. Appositissimè ergo & efficacissimè ad docendum Paulus in Actis Apostolorum, Deus, inquit, qui fecit mundum, & omnia quæ in eo sunt, is cùm sit Dominus cæli & terræ, non in manu factis templis habitat, neq; ab humanis manibus colitur aliquo indigens, cùm ipse det omnibus spiritum & vitam & omnia. Dicit aũt Zeno quoq; autor sectæ Stoicæ, in libro de Republica, neq; oportere tẽpla facere, nec imagines: nihil enim quod sit compositum esse dijs dignum. Nec veritus est hæc his verbis scribere: Neq; opus erit fana ædificare, fanum enim quod non sit magni precij & sanctum, nihil est existimandum. Nullum autem magni precij & sanctum, est ædificatorum opus & illiberalium opificum. Meritò ergo Plato quoq; sciens mundum esse Dei templum, ciuibus ostendit vnum locum ciuitatis, vbi eis essent reponenda simulachra. Priuatim autem prohibuit vt nemo haberet Deorum imagines. Nemo ergo alius, inquit, dijs sacra consecret. Nam aurum quidem & argentum & in alijs ciuitatibus priuatim, & in sacris, res est inuidiosa: ebur autem corporis quod amisit animam, est nefarium donarium: ferrum autem & æs, sunt instrumenta bellorum. Ex ligno autem quod ex vno est ligno compactum, quodcunq; voluerit offerat: similiter etiam ex lapide quoq; ad sacra cõmunia. Meritò ergo in magna epistola: Verbis enim, inqt, nequaq̃

*Act. 17.*

potest explicari vt aliæ disciplinæ. Sed cùm in re ipsa diuturnus fuerit vsus & longa vitæ consuetudo, repentè tanquam ex igne qui exilijt lux accensa in anima, ipsa seipsam iam alit. An non hæc sunt similia ijs quæ dicta sunt à propheta Sophonia? Et assumpsit me spiritus, & sustulit in quintum cælum, & contemplabar Angelos qui Domini vocabantur, & diadema eorum impositum in sancto spiritu, & erat sedes vniuscuiusq; eorum septuplo maior luce Solis oriẽtis, habitantes in templis salutis, & laudãtes Deum ineffabilem, altissimum. Patrem enim effectorem huius vniuersi, & inuenire est difficile, & cùm inueneris, vt apud omnes eloquaris, nequit fieri. Verbis enim minimè explicari potest, vt aliæ disciplinæ, veri amicus dicit Plato. Pulchrè enim audierat quòd sapientissimus Moses montem adscendens per sanctã contemplationem, ad fastigium eorũ quæ percipiuntur intelligentia, necessariò discernens, prohibet ne totus populus secum ascendat. Et quando dicit Scriptura: Ingressus est autem Moses in caliginem vbi erat Deus, hoc significat ijs qui possunt intelligere, Deum nec esse aspectabilem, nec verbis posse enunciari. Caligo autem reuera, nempe multorum incredulitas & ignoratio, obijcitur splendori veritatis. Et rursus Orpheus Theologus cùm ex eo adiutus dixisset, A

*Vnus perfectus per se, ex uno omnia facta,*

aut, Nata, nam sic quoq; scribitur, subiungit: *Nullus & ipsum*
*Mortalis cernit, uerùm omnes aspicit ipse.* Apertius autem subiungit:
*Non uideo hunc, solidus positus nam nymbus in orbem est:*
*Nanq; pupillæ oculis hominum mortalibus insunt* B
*Paruæ & mortales: ijs insunt nam caro & ossa.*

2. Cor. 12. Iis quæ dicta sunt feret testimonium Apostolus dicẽs: Noui hominem in Christo raptum vsq; ad tertium cælum, & illinc in paradisum, qui audiuit verba arcana quę non licet homini loqui: sic tacitè significans, Deum verbis non posse explicari: non lege & metu alicuius præcepti, illud, non licet, adijciens, sed sancta potestate Deum verbis enunciari nõ posse significans. Siquidem super tertium cælum loqui incipit, vt fas est ijs qui illic sunt electas animas initiare sacris. Scio aũt apud Platonẽ (multa enim exempla quæ sunt ex barbara philosophia, nunc mihi suggerit scriptura, cõuenienter primis promissis, tempus expectans) multos cælos intelligi. Cùm certè dubitasset in Timæo, an oporteat plures mundos, an hunc vnum existimare, indifferenter vtitur nominibus, citra vllum discrimen nominis, mundum & cælum appellans. Dictio aũt sic habet: Vtrum ergo rectè diximus vnum cælum, an multos & infinitos? Rectius fuerit vnum dicere, siquidem effectus est ad exemplar. Quinetiam in epistola Romanorũ ad Corinthios scriptum est: Oceanus infinitus, & qui sunt post

Rom. 11. ipsum mundi. His ergo consequenter exclamat diuinus Apostolus: O altitudo diuitiarum & sapientiæ & cognitionis Dei. Nunquid ergo hoc erat quod tacitè significabat Propheta, iubens subcinericios, qui ἐγκρυφίαι, id est, occulti dicuntur, facere azimos? significans verè sacrum de ingenito & potestatibus eius verbum mysticum o-

1. Cor. 2. portere celari. Hæc cõfirmans in epistola ad Corinthios apertè dixit Apostolus: Sapientiam aũt loquimur inter perfectos. Sapientiam aũt non huius seculi, neq; principum huius mundi qui destruuntur, sed loquimur Dei sapientiã in mysterio abscõ C

Col. 2. ditam. Et rursus alibi dicit: Ad agnitionem mysterij Dei in Christo, in quo sunt om-

Matth. 13. nes thesauri sapientiæ & scientiæ absconditi. Hæc obsignat ipse Seruator noster sic dicens: Vobis datum est nosse mysterium regni cælorum. Et rursus Euangelium dicit Seruatorem nostrum dixisse Apostolis sermonem in mysterio. Dicit enim de eo

Psal. 77. Prophetia: Aperiet in parabolis os suum, & eructabit quæ sunt abscon sa à constitu-

Matth. 13. tione mundi. Iam verò per parabolam quoq; de fermento significat Dominus occultationem. dicit enim: Simile est regnum cælorũ fermento, quod cùm accepisset mulier, abscondit in farinæ satis tribus, donec totum fuit fermẽtatum. Aut enim tripertitò per obedientiam salua fit anima: per spiritalem potestatem in eo abscõsam, per fidem, aut quòd vis verbi quæ data est nobis, cùm sit & valida & compendiosa, quẽlibet qui eam exceperit & intra se possederit, occultè & latenter ad se trahit, & omnem eius coactam multitudinem colligit ad vnitatem. Hæc ergo à Solone sapientissimè scripta sunt de Deo:

γνωμοσύνης μέτρον, mensurã cognitionis.

*Mensura haud facilè est obscuram mente uidere,*
*Extrema ex rebus quæ omnia sola tenet.* De Deo enim dicit poëta Agrigẽtinus:
*Illum non oculis nostris apprendere fas est,*
*Aut manibus, uia quæ reuera est maxima, mentes*

Vt

A *Vt credant hominum quæ mox deducere posit.*

Et Ioannes apostolus: Deũ nemo vidit vnquã, vnigenitus Deus qui est in sinu patris, ille exposuit. Cùm autem inaspectabilem & ineffabilem Dei sinum nominasset, hinc quidam eum profundum vocauerunt, vt qui omnia comprehenderit, & veluti sinu complexus sit, nec posit quis eum assequi, & sit infinitus. Est quidem certè hęc de Deo oratio tractatu difficillima. Quoniam enim cuiusuis rei principiũ est inuentu longè difficillimum: est certè omnino primum & antiquisimũ principium difficillimum ad demonstrandum, quod quidem est etiam alijs omnibus causa vt fiant & facta sint. Quemadmodum enim dici potuerit, quod neque est genus, neq; differentia, neq; species, neq; indiuiduum, neq; numerus, sed neq; accidens aliquod, neque cui aliquid accidit. Neq; verò eum totum rectè dixerit quispiam: in magnitudine enim totum ponitur, & est pater vniuersorum. Sed neq; dicẽdum est esse aliquas eius partes: in vnum enim non cadit diuisio, & ideo est etiam infinitum, non quòd eiusmodi mente cogitetur vt peruadi non posit, sed quatenus nullam distantiam suscipit ac dimensionem, & finem non habet: & ideo est figuræ expers, & quod nominari non potest. Et si aliquando eum nominemus, nó propriè vocantes, aut vnũ, aut bonum, aut mentem, aut ipsum id quod est, aut patrem, aut Deum, aut creatorẽ, aut Dominum: non id dicimus tanquam nomen eius proferentes, sed propter eius potestatem pulchris vtimur nominibus, vt in alijs non aberrans, his inniti posit cogitatio. Non enim vnum quodq; ex his Deum significat, sed omnia simul omnipotentis indicant potentiam. Quę enim dicuntur ex ijs quæ ipsis adsunt, aut ex ea quę est inter se inuicem habitudine ac relatione: horum autem nihil potest de Deo accipi. Sed neq; scientia accipitur demonstratiua, ea enim ex prioribus constat & ex notioribus: nihil est autem ante ingenitum, restat vtiq; vt diuina gratia, & solo quod ab eo proficiscitur verbo, id quod est ignotum intelligamus, quomodo Lucas quoq; in Actibus Apostolorũ Paulum dicere cõmemorat: Viri Athenięses, per omnia tanquã superstitiosiores vos video: præteriens enim & cõteplans quæ colitis simulachra vestra, inueni etiam aram in qua scriptum erat, Ignoto Deo. Quem ergo ignorantes colitis, eum ego vobis annuncio. Quicquid ergo cadit sub nomen, est genitum, velint an non. Siue ergo Pater ipse ad se trahit quemlibet qui purè vixerit & processerit ad notionem beatæ naturæ, & in quam non cadit interitus: siue liberum quod est in nobis arbitriũ, veniens ad boni cognitionem, septa transilit, vt dicitur in gymnasijs: non tamen absq; eximia gratia erigitur & exurgit anima, & extollitur supra ea quæ supereminent, quicquid graue est deponens, & reddens ei quod est cognatum. Dicit autem Plato quoq; in Menone, virtutem esse datam diuinitùs, vt hæc eius verba ostendunt: Ex hac ergo consideratione, ô Menon, videtur nobis virtus diuina sorte accedere quibus accedit. An non tibi videtur eum qui ad omnes venit cognoscendi habitus, diuinam sortem tacitè significasse? Apertius autem subiungit: Sin autem nos nunc in hac tota rectè quęsiuimus oratione, virtus nec fuerit natura, nec eiusmodi vt doceri posit, sed diuina sorte accedere, non absq; mente, ijs ad quos accesserit. Ergo diuinitùs data sapientia, quæ est virtus Patris, adhortatur quidem nostrum liberum arbitrium, excipit autem fidem, curamq; & attentionem remuneratur electionis suprema communicatione. Porrò autem ipsum quoq; tibi adducam Platonem, apertè volentem vt credatur Dei filijs. Nam cùm de dijs qui sub aspectum non cadunt & sunt geniti, verba fecisset in Timæo, de alijs dicere dæmonibus, & eorum ortum scire, dicit nostras vires superare: credendum autem esse ijs qui prius dixerũt, qui à dijs quidem, vt dixerunt, genus duxere, apertè autem suos parentes cognouere. Fieri ergo non potest vt Deorum filijs fides non habeatur, etiamsi absq; probabilibus & necessarijs dicant demonstrationibus. Non arbitror à Græcis posse manifestius ferri testimonium, Seruatorem nostrum, & eos qui vncti sunt in Prophetiam, hos quidem Dei filios esse appellatos: Dominum aũt cùm sit verus & germanus filius, veros esse testes rerum diuinarum. Et ideo adiecit, oportere eis credere, cùm sint inspirati diuinitùs, etiamsi quis paulò magis tragicè dixerit non credere:

Ioan. 1. — Act. 17.

B — C (marginal section letters)

*Nam non erat Iupiter hæc qui prædicauerat.* Soph. in Antig.

sed sciat ipsum Deum per filium prædicasse scripturas. Fide dignus aũt est is qui sua annunciat: quoniam, Nemo, inquit Dominus, nouit patrem, nisi filius, & cui filius reuelauerit. Est ergo hoc credendum ex Platonis quoq; sententia, etiam si absq; probabilibus & necessarijs demõstrationibus, per vetus & per nouum Testamentũ prædicetur & dicatur. Si enim non credideritis, inquit Dominus, in peccatis vestris Matth. 11. Ioan. 8.

Ioan.3. moriemini. Contrà aūt: Qui credit habet vitam ęternam. Beati ergo ſunt omnes qui A
Pſal.2. confidunt in ipſo: fiduciam aūt habere, eſt quid fide amplius. Quando enim ſciuerit
quiſpiam magiſtrum noſtrū eſſe Dei filium, cōcepit fiduciam quòd eius doctrina ſit
φρένες. vera. Quomodo autē doctrina, ex ſententia Empedoclis, auget præcordia, ita in Do
minum fiducia auget fidem. Atq; eorum quidem eſſe dicimus, philoſophiam quidē
vituperare, fidem autem inſectari, & laudare iniuſtitiam, & beatam vitam eſſe duce-
re quæ agitur ex cupiditate & libidine. Iam verò fides, etſi eſt voluntaria animæ aſ-
ſenſio, eſt tamen bonorum operatrix, & iuſtæ fundamentum actionis. Quòd ſi arti-
ποιεῖν. ficioſe diſputet Ariſtoteles, facere quidem docens poni & in beſtijs & in inanimis,
πράττειν. agere autem eſſe hominum tantū, eos corrigat qui dicunt Deum eſſe factorem vni-
uerſorum. Quod autem agitur, eſt vel bonum, inquit, vel neceſſarium: iniuriam ergo
facere non eſt bonum: nemo enim facit iniuriam niſi propter aliquid aliud. Ex ijs
autem quæ ſunt neceſſaria, nihil eſt voluntarium: iniuriam ergo facere eſt volunta-
rium, quare nec eſt neceſſarium. Boni autem à malis maximè differunt, inſtitutis, &
electionibus, & bonis deſiderijs. Quæuis enim animæ nequitia ſit cum intemperan
tia, & qui agit per affectionem, per intemperantiam agit & nequitiam. Mihi itaque
Ioan.10. ſuccurrit in ſingulis admirari diuinam illam vocem: Amen amen dico vobis, qui nō
ingreditur per oſtium in ouile, ſed aliunde aſcendens, ille eſt fur & latro: qui aūt in-
greditur per oſtium, eſt paſtor ouium, ei ianitor aperit. Deinde rem proſequēs dicit
Dominus: Ego ſum oſtium ouium. Oportet ergo eos qui per Chriſtum didicerunt
veritatem fieri ſaluos, etiam ſi fuerint Gręcam philoſophati philoſophiam. Nunc e- B
nim apertè eſt oſtenſum, quod alijs generationib. notum non euaſerat, nunc homi-
num filijs eſt reuelatum. Nam Dei quidem manifeſtatio erat vnius omnipotentis,
apud omnes qui rectè ſapiunt omnino naturalis, & æternum ex diuina prouidentia
beneficium apprehenderūt plurimi, qui non planè omnem exuerunt pudorem ad-
uerſus veritatem. Atq; vt ſummatim quidem dicam, Xenocrates Carthaginenſis nō
ſpem omnem abijcit, quinetiam in rationis expertibus animantibus ſit Dei notitia.
Democritus autem, etſi nolit, confitebitur per dogmatū conſequentiam: fecit enim
eaſdem imagines in homines incurrentes, & in animantes rationis expertes, ex di-
uina eſſentia. Longè certè abeſt vt ſit homo expers diuinæ notionis, quē etiam ſcri-
ptum eſt participem fuiſſe inſpirationis in generatione, vt qui fuerit purioris eſſen-
tiæ particeps quàm alia animantia. Hinc Pythagoras dicit mentē diuina ſorte veni-
re ad homines, ſicut fatentur Plato & Ariſtoteles: ſed nos quidem dicimus ſpiritum
ſanctum inſpirari ei qui credidit. Platonici aūt, mentē quidem, quæ eſt à diuina ſor-
te effluxio, inanima inhabitantem: animā aūt in corpore conſtituunt. Apertè enim
Ioh.2. dictum eſt per Ioël, qui erat vnus ex duodecim prophetis: Et erit poſt hæc, effundam
de ſpiritu meo ſuper omnem carnem, & filij veſtri & filiæ veſtræ prophetabunt. Sed
non vt pars Dei, eſt ſpiritus in vnoquoq; noſtrūm. Sed quomodo fiat hæc diuiſio, &
quidnam ſit ſpiritus ſanctus, oſtēdetur à nobis in libris de Prophetia, & in libris de
Anima. Sed ad cognoſcendas quidem cognitionis profunditates, bona eſt incredu-
litas ex ſententia Heracliti: non cognoſci enim, ſuum habet refugium ad increduli- C
tatem. Quod aūt deinceps conſequitur eſt tradendum: & Græcorum furtum ex bar
bara ſumptum philoſophia iam eſt clarius oſtendendum. Aiunt Stoici Deū eſſe cor-
pus & ſpiritum eſſentia, ſicut certè etiam animā. Hæc omnia apertè inuenies in ſcri-
pturis. Ne mihi enim in præſentia earum allegorias animo cogitaueris, vt quę ex co
gnitione habetur tradit veritas, num aliquid aliud indicent, ſicut ſapientes luctato-
res aliud eas oſtendere ſignificant. Sed illi quidem dicunt Deum vniuerſam perua-
Sap.7. dere eſſentiam: nos aūt eum ſolū dicimus effectorē, & verbo effectorem. Induxit aūt
eos quod dictum eſt in ſapientiam: Trāſit aūt & peruaſit omnia propter puritatem:
quoniā non intellexerunt hæc dici de ſapientia quæ fuit primò à Deo creata. Nę, in-
quiunt, ſed materiā ponunt philoſophi, & Stoici, & Pythagoras, quinetiam Ariſto-
teles peripateticus, non aūt vnum principium. Sciunt ergo eam quæ vocatur mate-
riam, quæ ab ipſis dicitur expers qualitatis & figuræ, audacius quoq; à Platone di-
ctam eſſe, id quod nō eſt. Num aūt vel in primis myſticè, cùm ſciret eſſe vnum quod
verè eſt principium, in Timæo dicit his verbis? Nunc autem ſic noſtra ſe habeat ora-
tio. De vniuerſorum quidem ſiue principio, ſiue principijs, ſiue quomodocunq; de
his videatur, nunc non eſt dicendum, non propter aliquid aliud, quàm quòd ſit diffi
cilè præſenti modo pertractationis ea quæ videatur declarare. Et alioqui dictio illa
Gen.1. prophetica: Terra aūt erat inaſpectabilis & incōpoſita, præbuit eis occaſionē mate-
rialis

Digitized by Google

A rialis tradendæ substantiæ. Iam verò hinc Epicuri quidem mentem subijt casus, cũ hoc dictum non intellexisset: Vanitas vanitatum & omnia vanitas. Aristoteli aũt venit in mentem vsq; ad lunam deducere prouidentiã, ex hoc Psalmo: Domine in cœlo misericordia tua, & veritas tua vsq; ad nubes: nondum enim reuelata fuerat propheticorum mysteriorum declaratio vsq; ad aduentum Domini. Et rursus, supplicia post mortem, & pœnas quæ igne luuntur, à barbara philosophia, & vniuersa musa Poëtica, & Græca etiam, surripuit philosophia. Plato certè in vltimo de Republica, dicit his verbis: Hîc viri agrestes aspectu ignito cùm astitissent, sermonem intelligentes, alios quidem seorsum assumptos ducebant. Aridæum aũt & alios cùm colligassent, manusq; & pedes & caput deiecissent, atque ab eis pellem detraxissent, extra viam non longè trahentes, aspalathis lacerabant. Viri enim illi igniti ei volunt significare angelos, quæ assumptos iniustos puniunt. Qui facit, inquit, angelos suos spiritus, & ministros suos ignem ardentẽ. His aũt est consequens, animã esse immortalem. Quod enim punitur vel castigatur, cùm sit sensu prȩditum, viuit, etiam si dicatur pati. Quid verò, non nouit Plato & fluuios ignis, & terræ altitudinẽ eam quæ à barbaris gehenna vocatur, tartarũ nominans propheticè, Cocytumq; & Acherontẽ, & Pyriphlegetontem, & quædã huiusmodi, quæ ad castigationem disciplinamq; inducunt, loca suppliciorum? Paruorũ aũt, conuenienter scripturæ, & minimorũ angelos Deũ videntes, quinetiã nostri curationẽ & visitationem quæ ad nos venit per angelos qui nobis præsunt, indicans, nõ veretur scribere, postquam omnes animæ

*Eccl. 1.* *Psal. 35.* *Psalm. 103.*

B vitam elegissent, ita vt sortitæ erant, ordine accedere ad Lachesim: illam autem eum quem vnusquisq; elegit dæmonem, cum eo mittere vitæ custodem, & vt adimpleat ea quæ elegerit. Fortasse autem Socrati quoque dæmonium tale quid significabat. Iam verò genitum esse mundum, cùm id à Mose accepissent, decreuerunt philosophi. Quinetiam Plato quoque dixit apertè: Vtrum fuit nullum habens ortus principium, an ortus est? Ortus est, vt qui cœperit ab aliquo principio. Nam & cùm sit aspectabilis, est tractabilis: & cùm sit tractabilis, est corporeus. Et rursus quando dixit: Atque effectorem quidem & patrem huius vniuersi inuenire est difficile, non solùm mundum ostendit esse genitum, sed etiam ex seipso significat esse genitum, tanquã filium: patrem autem eius esse vocatum, vt qui ex solo sit genitus, & ex eo qui non esset constiterit. Genitum autem mundum ponunt etiam Stoici, & qui in barbara philosophia est frequens, diabolum principem inquam dæmonum, maleficam esse animam dicit Plato in libro de Legibus decimo, his verbis: Animam quæ ea administrat quæ vndiq; mouentur, cœlum etiam necesse est administrare. Dixisse: Quid verò, vnam an plures? Plures ego pro vobis respõdebo. Non minus vtiq; quàm duas effecisse posuerimus, nempe eam quæ est benefica, & eam quæ potest efficere cõtraria. Similiter aũt hæc quoq; scribit in Phædro: Atq; sunt quidẽ alia quoq; mala. Sed dæmon quidẽ aliquis plurimis in præsentiã admiscuit vel voluptatem. Quinetiã in decimo de Legibus, apertè ostendit illud Apostolicũ, Non est nobis colluctatio aduersus carnem & sanguinẽ, sed aduersus principatus, aduersus potestates, aduersus

*Ephes. 6.*

C spiritalia eorũ quȩ sunt in cœlis, scribens hoc modo: Quoniã enim eis concessimus, nobis quidem esse cœlum multis bonis plenum, esse autem etiam cõtrarijs, plurib. aũt qui non sunt eiusmodi, est, inquimus, pugna eiusmodi immortalis, & quæ magna cautione indiget. Et rursus vnum quidem mundum nouit barbara philosophia qui percipitur intelligentia, alterũ verò sensilem: illum quidem archetypum, hunc verò imaginem eius qui exemplar dicitur: & illum quidem attribuit vnitati, vt qui percipiatur intelligẽtia: hunc verò, nempe sensilem, senario. Coniugium enim apud Pythagoræos vocatur senarius, vt qui sit genitalis numerus. Et in vnitate quidem cõstituit cœlum non aspectabile, & terram sanctam, & lucem quæ percipitur intelligẽtia. In principio enim, inquit, fecit Deus cœlum & terram: terra aũt erat inuisibilis. Deinde subiungit: Et dixit Deus, Fiat lux, & facta est lux. In ortu aũt mundi sensilis cœlum fabricatur solidum (quod est autem solidum, est sensile) & terram aspectabilem, & lucem quæ videtur. An non tibi hinc videtur Plato, animantium ideas relinquere in mundo qui percipitur intelligentia, & formas sensiles, & quæ intelligentia percipiuntur fabricari genera? Meritò ergo ex terra quidẽ corpus dicit formari Moses, quod dicit terrenum Plato tabernaculum: animam autem ratione præditam desuper inspiratam fuisse in faciem. Hîc enim dicunt esse collocatam principalem animæ facultatem, ingressum animæ in Protoplastum, per accessionẽ sensuum, interpretãtes, & ideo factum esse hominem ad imaginem & similitudinem. Dei enim

imago, est verbum diuinum & regium, homo impatibilis: imago autem imaginis, A
mens humana. Si alio autem nomine velis assumere assimilationẽ, inueneris apud
Mosem diuinam quæ nominatur consequentiam. Dicit enim: Post Dominum Deũ
vestrum ambulate, & eius præcepta custodite. Sunt autem, vt opinor, Dei assectatores
& cultores, omnes qui sunt virtute præditi. Hinc Stoici quidem dixerunt esse finem
philosophiæ, secundum naturam viuere: Plato aũt Deo assimilationẽ, vt ostendimus
in secundo Stromate, & Zeno Stoicus qui id accepit à Platone. Is autem Plato
ex barbara id sumens philosophia, dicit omnes bonos esse inter se amicos. Dicit
enim Socrates in Phædro, non consequi ac euenire quòd malum sit malo amicum,
neq; vt bonum bono non amicũ. Quod quidem satis quoq; probauit in Lysia, quòd
in iniustitia & improbitate nunquam seruari potuerit amicitia. Et hospes Atheniensis
similiter dicit actionem esse charam & Deo consequentem, & quæ habet vnam
antiquam rationem, quando simile quidem simili, quod est moderatum, sit simile:
immoderata autem, nec immoderatis, nec moderatis sunt amica. Deus autem fuerit
nobis rerum omnium mensura. Deinde rursus subiungit inferius: Quiuis enim bonus,
est bono similis. Eá aũt ratione & qui est Deo similis, cuius bono est amicus, &
Deo. Cùm in hoc sum loco, illius quoq; sum recordatus. Dicit enim in fine Timæi,
oportere id quod intelligit assimilare ei quod intelligentia apprehenditur conuenienter
antiquæ naturæ. Cùm aũt assimilauerit, habere finem vitæ optimæ, quæ à
dijs proposita est homini, & in tempus præsens & in futurum. Illa enim eandẽ vim
habent quam hæc. Non cessabit qui quærit donec inuenerit: cùm autem inuenerit B
admirabitur, admirans autem regnabit, regnans autem requiescet. Quid verò, non
illa quoq; Thaletis quæ ex his sumpta sunt, in secula seculorum Deum gloria affici,
& cordis cognitorem à nobis dici apertè interpretatur? Rogatus enim Thales quid
sit Deus: Id, inquit, quod neq; habet principium nec finem. Cùm aũt rogasset alius,
an Deum lateat homo aliquid agens: Et quomodo, inquit, qui ne cogitans quidem?
Porrò solum esse bonum id quod est honestum, nouit barbara philosophia, & virtutem
sufficere ad felicitatem, cùm dixit: Ecce dedi ante oculos tuos bonum & malũ, *Deut.* 30.
vitam & mortem, elige vitam. Nam quod bonum est vitam appellat, & honestum
eius electionem: malum autem, electionem contrarij. Boni autem & uitę vnus est finis,
esse pium ac religiosum. Hæc est enim vita tua & dierum longitudo, id diligere
quod pertinet ad veritatem. Illa autem se habent manifestius. Seruator enim cùm *Matth.* 22.
Deum diligere iussisset & proximum, dicit in his duobus mandatis totam legem pẽdêre
& prophetas. Hæc dogmata vulgò iactant Stoici, & ante eos in Phædro precás
Socrates: O Pan & dij alij, date mihi vt intus sim pulcher & honestus. In Theæteto
autem apertè dicit: Qui enim pulchrè dicit & honestè, is pulcher est, bonusq; & honestus.
Et in Protagora fatetur Protagoræ familiarib. se eum cõuenisse qui esset pulchrior
Alcibiade: siquidẽ est pulcherrimũ id quod est sapientissimũ. Dicebat enim
virtutẽ esse animæ pulchritudinem, cõtrà aũt, vitiũ animæ turpitudinẽ. Atq; Antipater
quidẽ Stoicus tribus quos scripsit libris, quòd ex sententia Platonis, quòd solum
honestum est bonum, probat etiam quòd ex eius sentẽtia sit sufficiens virtus ad beatitudinem: C
& complura alia adducit dogmata quæ conueniunt cum Stoicis. Ab Aristobulo
autem qui fuit tempore Ptolemæi Philadelphi, cuius meminit is qui cõposuit
Epitomẽ rerũ gestarũ à Machabæis, multos fuisse libros per quos probat, philosophiã
peripateticam ex lege Mosaica, & alijs dependisse prophetis. Et hæc quidem
ita se habeant. Fratres autem esse nos tanquam vnius Dei & vnius magistri, videtur
vtique Plato quoque vocare hoc modo: Nam estis quidem omnino, qui estis in ciuitate,
fratres, vt ad eos dicemus narrantes fabulas. Sed Deus dum fingeret, quicunq;
quidem ex vobis erant apti ad imperandum, aurum eis commiscuit in generatione,
& ideo sunt præstantissimi & maximi precij: quicunque autem erant auxiliatores,
argentum: ferrum autem & æs, agricolis & alijs opificibus. Vnde dicit fuisse necesse
vt amplecterentur & amarent: ij quidem ea propter quæ est cognitio: illos autem ea
propter quæ est gloria. Fortasse aũt diuinat electam hanc naturam quæ desiderat cognitionem:
nisi fortè tres aliquas ponens naturas, describit tres formas reipublicæ,
vt quidam existimarunt: & Iudæorum quidem, argenteam: Græcorum autem, tertiam:
Christianorum autem, quibus aurũ regale est admixtum, nempe sanctus spiritus,
& vitam Christianam ostendens, his verbis scribit in Theæteto: Dicamus verò
de ijs qui sunt summi & præcipui. Quid enim dixerit quispiam eos qui malè versantur
in philosophia? ij autem nec viam norũt in forum, nec vbi sit prætoriũ aut curia,

aut

A aut aliquis alius communis conuentus ciuitatis. Leges autem & scripta decreta, neque vident neq; audiunt. Sodalium aūt studia & congresſiones, & quæ cum tibicinis fiunt comessationes, ne in somnis quidem eis venit in mentem exercere. Bene autem an malè factum quid sit in ciuitate, aut quodnam est malum quod factum est à maioribus, magis eos latuit quàm qui maris dicuntur choës: & hæc nesciunt quidem se nescire, sed reuera iacet quidē humi eius corpus, & cum populo versatur. Ipse autem, vt ait Pin darus, & terram & cœlum superuolat, astrorum motus quærēs, & vniuersam naturam omni ex parte indagans. Rursus ipsi dicto Domini, Sermo vester sit, ita ita, & non non, illud est assimilādum: Sed mihi & falsum concedere, & verum de medio tollere, non est fas. Et iurandi prohibitioni congruit hæc dictio quæ est in decimo de Legibus: Laus autem & iusiurandum absit de re qualibet. Et in summa, Pythagoras & Socrates & Plato, dicentes se audire vocem Dei, considerantes vniuersorum constructionem quæ à Deo accuratè & perfectè facta est, & ab eo perpetuò continetur, audiuerunt Mosem dicentem, Dixit, & facta sunt, describente verbū Dei esse opus. Et cū cōstitissent in formatione hominis quæ facta est ex puluere, terrenum quidem esse corpus philosophi singillatim pronunciant. Homerus autē non veretur ponere loco execrationis:

χόες. Matth. 5.

*Omnes in terram sed uos redeatis & undam.*

sicut Esaias dicens: Et conculcate ipsos tanquam lutum. Callimachus autem scribit dilucidè: Erat ille annus, quo aliquando volucris, & quod est in mari, & quadrupes B ei loquebatur, vt lutum Promethei. Et rursus idem: Si te, inquit, finxit Prometheus, & non ex alio luto factus es. Et Hesiodus dicit de Pandora:

*Vulcanum insignem iussit mox puluere limpham*
*Miscere, unà hominisq; illi præbere loquelam* Et mentem.

Ignem ergo artificiosum via euntem in generationem, naturam definiunt Stoici. Ignis autem & lux allegoricè dicitur Deus, & verbum eius, à scriptura. Quid verò, nō Homerus quoq; describens per paraphrasim aquæ à terra separationem, & manifestam aridæ detectionem, dicit de Tethide & Oceano?

*Tempore nam longo cessauit inire cubile* *Alter in alterius.*

Rursus Deo potentiam in omnibus tribuunt, etiā qui apud Græcos sunt eruditissimi. Epicharmus quidem, erat autem Pythagoreus, dicēs: Deum nihil effugit, hoc te oportet scire. Ipse nostrî est inspector: nihil est autem, quod non posſit Deus. Vates autem Lyricus: Potest autem Deus ex nigra nocte lucem emittere intemeratam: atris autem tenebris tegere purum diei iubar. Qui solus, inquit, potest, cùm est dies, noctem facere, is est Deus. Et Aratus in ijs quæ inscribuntur Phænomena:

*A Ioue principium, assiduis quem laudibus omnes*
*Concelebrant homines, fora sunt Iouis omnia plena,*
*Compita cum pagis, omnes & cum æquore portus,*
*Omnibus atq; utimur Ioue nos ex partibus omnes.* Deinde infert:
C *Nam genus illius sumus (nempe creatione) isq; & numine dexter.*
*Dextera significat, pigrasq; ad munia gentes*
*Excitat, in cælis nanq; ipse hæc signa locauit,*
*Astra & distinguens, claris annumq; coronans*
*Stellis, queis homini certissima signa darentur*
*Horarum, ut stabili procedant omnia cursu.*
*Atq; illum semper primum extremumq; precantur,*
*Salue mire Pater qui ingentia commoda præbes*

Quinetiam ante eum Homerus in clypeo quem fabricatus est Vulcanus, mūdi creationem scribens ex Mosis sententia:

*Terras atq; mare, & cœlum fabricatus in illo est,*
*Omnia resplendens & cœlum quæ astra coronant.*

Qui enim & poëtarum versibus, & ijs quæ soluta scripta sunt oratione, canitur Iupiter, in Deum refert cogitationem. Iam verò, vt semel dicam, Democritus scribit paucos esse sub luce homines, qui hîc manus extendunt, quem nunc aërem Græci vocamus. Dicitur in fabulis omnia Iupiter, isq; omnia nouit, & donat, & aufert, & est is Rex omniū. Magis autem mysticè Pindarus quidem Bœotus, vt qui esset Pythagoræus: Vnum virorum, dicens, diuinitùs afflatorum est genus, ex vna autem matre spiramus ambo, tradi materiā, & vnū eius opificem quē ἀριστοτέχναν vocat, id est, præclarum ac optimum artificem, qui etiam pro meritis progresſionem præbuit ad diui-

A

nitatem. Taceo enim Platonem, is apertè in epistola ad Erastum, & Coriscũ videtur A
nescio quomodo patrem & filium ostẽdere ex scripturis Hebraicis, cùm ita eos hortatur: Iurantes, studio adhibito à Musis non alieno, & studij sorore disciplina, Deum ipsum omnium rerum causam, & ducis & causæ patrem Dominũ iuretis, quem si rectè philosophati fueritis, intelligetis. Et quæ est in Timæo concio, patrem vocat opificem, sic dicens: Dei Deorũ quorum ego sum pater & opifex operum. Quare quando etiam dicit: Circa omnium Regem sunt omnia, & illius causa omnia: illum quoq; omnium causam appellans secundum autem circa secunda, & tertium circa tertia, nõ aliter ego exaudio, quàm sanctam significari trinitatẽ. Nam tertium quidẽ esse sanctum spiritum, filium autem secundum, per quem facta sunt omnia ex voluntate patris. Idem autem in decimo libro de Republica meminit Heri Armenij, genere Pamphyli, qui est Zoroaster. Ipse quidem certè Zoroaster hæc scribit: Conscripsit Zoroaster Armenij filius, genere Pamphylus: In bello mortuus, cùm essem apud inferos, à Dijs didici. Hũc Zoroastrem, cùm duodecimo die post mortem in rogo fuisset positus, Plato dicit reuixisse. Ac fortasse quidem resurrectionem, fortasse autẽ illa tacitè significat, nempe quòd per duodecim signa animæ viam capessunt ad assumptionem. Ipse autem ad generationem quoq; dicit eundem esse descensum. Ea ratione existimãdum est Herculis quoq; fuisse duodecim certamina, post quæ à toto mũdo liberationem consequitur anima. Admitto etiam Empedoclem, qui admodum naturaliter vniuersorum meminit instaurationis, quòd scilicet aliquando futura sit mutatio in ignis essentiam. Heraclitus Ephesius est manifestißimè in hac sententia, B
cùm vnum quidem mundum censuisset esse æternum, alterum verò nouisset interire, eum scilicet qui consistit per variam & multiplicem exornationem, vt qui non sit alius ab illo qui aliquo modo se habet. Cæterùm quòd æternum quidem nouerat mundum, qui ex vniuersa essentia est æternè qualis, planum facit, sic dicens: Mundum eundum vniuersorũ neq; Deorũ vllus fecit, nec hominũ: sed fuit semper, & est, & erit ignis semper viuens, mẽsuras accẽdens, & extinguens mensuras. Quòd autẽ eum & ortum esse, & in eum cadere interitum putaret, significant ea quæ subiungũtur: Ignis conuersiones, primùm mare: maris aũt dimidium quidem terra, dimidium verò fulmen. Virtute enim ac potestate dicit, quòd ab administrante verbo & Deo, ignis, nempe omnia per aërem conuertũtur in humidum, quod est veluti semen mũdi dispositionis, quod vocat mare. Ex eo autẽ rursus gignitur terra & cœlum, & quæ in eis continentur. Quomodo aũt rursus in pristinum statum redeat & ignescat, per hæc apertè ostendit: Mare diffunditur, & mensionẽ accipit eadem ratione quæ prius erat antequam mare fieret. Similiter eadem quoq; de alijs elementis. Ei consimilia decreta fuerunt etiam Stoicorum doctißimi, tractantes & de conflagratione, & mundi administratione, & de mundo qui est æternè qualis, & de homine, & de animarum nostrarum permansione. Rursus autẽ Plato quoq; in septimo de Republica, eum qui est hîc diem, nocturnum appellauit, propter mundi principes, vt sentio, harum tenebrarum. Somnum autem & mortẽ, animæ descensum in corpus, eo modo quo Heraclitus. Nunquid autẽ de Seruatore hoc prędixit spiritus, dicens per Dauid? C
*Psal. 3.* Ego dormiui & soporatus sum, excitatus sum, quoniam Dominus me suscipiet. Nõ
*Matth. 25.* solam enim Christi resurrectionem, ex somno excitationem, sed etiam Domini in carnem descensum, somnum vocat allegoricè. Iam verò idẽ Seruator pręcipit, vigilate: perinde ac si diceret, Meditemini viuere, & tenteris separare animam à corpore. Diem quoque Dominicum, in decimo de Republica Plato per hęc diuinat. Postquã autem ijs qui fuerint in prato septem dies transierint, surgentes hinc oportet octauo proficisci, & quarto die venire. Atque pratum quidem oportet audire sphæram inerrantem, vtpote locum mitem, placidum & benignum, piorumque & sanctorum locum. Septem autem dies, vnumquenque motum septem errãtium, & omnem operandi artem quæ tendit ad finem quietis. Iter autem quod fit post errantes, deducit ad cœlum, hoc est, octauum motum & diem. Quarto autem die dicit abire animas, significans iter quod fit per quatuor elementa. Quinetiam septimum diem sacrum, non solùm sciunt Hebræi, verùm etiam Græci per quem vniuersus mundus circumagitur eorum quæ viua gignuntur, & omnium quæ producuntur à natura. Hesiodus quidem sic de eo dicit:

*Prima dies sacra est, tum quarta septima sacræ.* Et rursus:
*Septimo erat rursus lux uel clarißima Solis.* Homerus autem:
*Sacra dies uerò post hæc tum septima uenit.* Et:

Septima

A *Septima sacra fuit.* Et rursus:
*Septenusq; dies fuit, in quo cuncta peracta.* Et rursus:
*Luceq; septena ex ripis Acherontis abimus.*

Quinetiam Callimachus quoq; poëta scribit:

*Omnia septenaq; die perfecta fuere.* Et rursus:
*Septimus inq; bonis, natalis septimus illi est.* Et:
*Septimus in primis, perfectus septimus extat.* Et:
*Sydereo in cælo septem perfecta fuere*
*Orbibus, omnia quæ apparent uoluentibus annis.*

Quinetiam Solonis elegiæ septenarium numerum valde celebrant. Quid verò, an non similiter scripturæ quæ dicit, Tollamus iustum à nobis, quoniam est nobis inutilis, Plato propemodum prophetice prædicens salutarem dispensationem, sic dicit in secundo de Republica? Qui autem sic est affectus iustus, flagris cędetur, torquebitur, vincietur, ei oculi effodietur, & postremò omnia mala perpessus, suspẽdetur. Et Antisthenes Socraticus vocem illam propheticam circumlocutione exprimens quę dicit, Cui me assimilauistis, dicit Dominus: ait eum nulli esse similem, quoniam nemo potest eũ discere ex similitudine & imagine. Xenophõ quoq; Atheniensis similia dicit his verbis: Qui ergo omnia concutit & facit quiescere, manifestus quidẽ est, vt qui sit magnus & potens: quali aũt sit forma præditus non apparet. Neque verò Sol qui videtur luce illustrare omnia, ipse quoq; videtur permittere vt videatur:
B sed si quis eum impudenter fuerit contemplatus, is priuatur oculis.

*Quæ caro nanq; oculis cælestem cernere possit*
*Verum, immortalemq; Deum, cui in uertice cæli est*
*Sedes? Sed Solis radios nec cernere fixis*
*Luminibus poterit quisquam mortalis ab ortu,* vt prædixit Sibylla.

Rectè ergo Xenophanes quoque Colophonius docens vnum esse Deum, & incorporeum, subiungit:

*Maximus in genere est diuũm atq; hominum Deus unus,*
*Qui nec corpore nec mente est mortalibus ullis* *Assimilis.* Et rursus:
*Verùm uidentur progignere homines Deos,*
*Horumq; ueste uoceq; & corpore utier.* Et rursus:
*Si instrumenta manus bubus atq; leonibus essent,*
*Pingere quis possent, hominumq; operarier artes,*
*Depingenda ab eis esset si forma Deorum,*
*Tales hi formas facerent & corpora eorum*
*Talia, quale sibi corpus natura dedisset.*

Rursus igitur audiamus Lyricum Bacchilidem de diuina natura dicentem: Sunt hi quidem à morbis vel valde indomiti, & nulli crimini affines, hominibus nulla in re similes: Et Cleanthem Stoicum, qui in quodam poëmate de Deo hæc scribit:

*Sit quale nam bonum rogas, à me audies:* *Expers metus, doloris, & molestiæ,*
C *Quod ordinatũ est, religiosumq; ac pium,* *Iuuans, placens, pulchrè sibi consentiens.*
*Iustum, sui potens, decorum ac utile:* *Clarum nec insolens, modestum & uehemens,*
*Quod est seuerũ, graue, semper cõducibile.* *Quod permanet, potest nec quis imitarier.*

Idem autem tacitè reprehendens vulgi idololatriam, subiungit:

*Seruilis est qui opinionem respicit,* *Vt consecuturus aliquid per hanc boni.*

Non est ergo de Deo sentiendum conuenienter vulgi opinioni.

*Nam clanculum haud existimo,*
*Viri scelesti amictum illum imitarier.*
*Atq; ut hominem, tuum cubile ingredier:*

ait Amphion Antiopæ. Sophocles autem directè dicit ac dilucidè:

*Congressus est eius cum matre Iupiter,* *Plumis, puellam olim uelut Pleuroniam*
*Non aureus forma, aut amictus cygneis* *Ingrauidauit, sed homo uel planissimè.*

Deinde verò persequens, hæc quoque subiunxit:

*Sponsæ uelox adulter mox scandit gradus.*

Et deinde narrat apertius incontinentiam Iouis de quo narrantur hæ fabulæ:

*Is nec cibum tetigit, aqua nec se abluit,*
*Cubile init, sed corde qui esset saucius,*
*Et nocte tota operam uoluptati dedit.*

Atq; hæc quidem dimittantur theatrorum ignorantiæ. Apertè autem dicit quidem

A Heraclitus: Eius quod oportet orationem homines semper minimè intelligunt, & priusquam audierint, & cùm primùm audierint. Lyricus autẽ Melanippides canens dicit: Audi me ô pater miraculum mortalium, qui regis animam semper viuentem. Magnus autem Parmenides, vt Plato dicit in Sophista, de Deo hoc modo scribit:

*Est is & ingenitus, nec in hunc unquam cadit ullus*
*Interitus, totusq; unigena, firmus, & ortus* Expers.

Et Hesiodus:

*Cunctorum quæ morte carent rex es dominusq;.*
*De imperio poterit nec quis contendere tecum.*

Iam verò tragœdia quoq; abducens à simulachris, docet in cælum suspicere. Sophocles quidem, vt ait Hecatæus qui composuit historias, vbi agit de Abrahamo & de Ægyptijs, in scena apertè exclamat:

*In ueritate est unus Deus.*
*Cælumq; terramq; spaciosam is condidit,*
*Ponti trucesq; fluctus, uimq; flaminum.*
*Sed corde multi aberrantes mortalium,*
*Nos posuimus malorum pro solatio.*
*Imagines Deum factas ex lapidibus,*
*Ex ære uel auro, uel ex ebore typos.*
*Iisq; immolantes, & celebrantes dies*
*Festos, pios, pieq; agere nos credimus*

Euripides autem tragicè canens in eandem scena:

*Altum, inquit, uides & infinitum hunc æthera,*
*Suo humido terram qui complexu tenet,*
*Puta Iouem hunc, eumq; credito Deum.*

B In actu autẽ qui inscribitur Pirithus, hæc quoq; canit tragicè: Te qui per te ortus es, qui in imbre æthereo omnium naturam implicasti, circum quem lux quidem & fur ua nox, variorumq; colorum, & quæ discerni non potest astrorum multitudo assiduè ducit choreas. Hic enim eum qui per se est ortus, mentem dixit opificem. Quæ autem deinceps consequuntur, pro mundo ponuntur, in quo est repugnántia lucis & tenebrarum. Et Euphorion & Æschylus de Deo dicit grauissimè:

*Iupiter est æther, est terra Iupiter,*
*Cælumq; & omnia Iupiter, & si quid supra.*

Scio ego Platonem quoq; Heraclito adstipulari, qui scribit: Vnum quod est sapiens, solum dici non vult, & vult, nomen Iouis. Et rursus: Lex est & consilium vni parêre. Quòd si velis illud dictum ad sensum deducere anagogicum, Qui habet aures audiendi, audiat: id inueneris sic declarari ab Ephesio: Qui nõ intelligentes audierunt, sunt surdis similes. Quod vulgò dicitur, testatur eos abesse præsentes. Sed vnũ quoque principium ex Græcis audire desideras? Timæus Locrus in opere de Natura his verbis mihi feret testimonium: Vnum principium omnium est ingenitũ, si enim esset genitum, non esset vtiq; amplius principium, sed illa ex quibus genitum esset principium. Ex illo enim vera profluxit opinio, nempe: Audi, inquit, Israël, Dominus Deus tuus vnus est, & ei soli seruies.

*Omnibus en patet is, clarusq; & apertus, inerrans,*

C vt ait Sibylla. Iam verò videtur Homerus quoq; dicere patrem & filium, per aptam, vt contigit, horum diuinationem:

*Certè cùm solus sis uim tibi si afferat Vtis,*
*Nec ratione queat fugier morbus Iouis ulla,*
*Nanq; Iouem ægiferum nihilum curare Cyclopes* Suerunt.

Et ante eum Iupiter loquens de eo quod est propositum, dixit:

*Nate Iouis magni, pater & Iouis ægiferentis.*

Xenocrates autem Chalcedonius, vnum quidem vocans supremum Iouem, alterũ verò vltimum, relinquit patris & filij expressionem. Et quod est admirabile & præter opinionem, videtur Homerus quoq; Deum cognoscere, qui inducit Deos obnoxios humanis motibus & affectionibus, quem ne sic quidem reueretur Epicurus. sic certè dicit:

*Insequeris cur me pedibus pernicibus, ipse*
*Mortalis Pelide immortalem, an tibi notus* Non ego sum Deus?

Deum enim à mortali non posse capi, nec pedibus, nec manibus, nec oculis, nec denique toto corpore comprehẽdi, significauit. Cuinam assimilastis Dominum, aut cuinam similitudini ipsum assimilastis? inquit Scriptura. Num faber fecit imaginẽ, aut aurifex fuso auro eũ inaurauit? & quæ sequuntur. Et Comicus Epicharmus de verbo sic apertè dicit in Republica: Vita hominum ratiocinatione & numero valde indiget. Viuimus autem numero & ratiocinatione: hęc enim conseruant homines. De inde

Esa. 40.

A inde subiungit apertè: Ratio regit homines, & ritè seruat. Deinde si est homini ratio cinatio, diuina quoq; præterea ratio inest homini in ijs quæ ad victum pertinent & alimenta. Artes autem omnes diuina consequitur ratio, quę ipsa semper eos edocet, quidnam vtile facere oporteat. Non enim homo inuenit artem, sed eam affert Deus. Hominis autem ratio orta est ex diuina ratione. Iam verò cùm spiritus clamauerit per Esaiam: Quid mihi multitudinem sacrificiorum? inquit Dominus. Plenus sum holocaustis arietum: adipem agnorum, & sanguinem taurorum nolo. Et paulò pòst subiungat: Lauamini, mundi estote, auferte iniquitates ab animabus vestris, & quæ deinceps consequuntur. Menander Comicus scribit ijsdem verbis: λόγος, uerbũ & ratio. Esa. 1.

*Sacrificium at si quis offerens, ô Pamphile,*
*Taurorum, aut hœdorum aliquam multitudinẽ,*
*Aut aliorum eiusmodi, uel quidpiam*
*Quod arte sit laboratum, utpote aureas,*
*Purpureas, uel quas confecit chlamydas,*
*Eburnea aut smaragdina animalcula,*
*Propitium futurum sibi putat Deum,*
*Et fallitur, nimisq; is est mente leui:*
*Nanq; probus frugiq; oportet uir fiet,*
*Nec uirgines uitiet, adulter nec fiet,*
*Nec quid furetur is, cædem nec perpetret,*
*Ne acum quidem implicatum cupias Pamphile,*
*Nanq; aspicit propinquus qui est tibi Deus.*

Deus appropinquans, inquit, ego sum, & non Deus procul. Aut quid faciet homo in occultis, & non videbo ipsum? inquit per Hieremiam. Et rursus Menander scripturam illam circumloquendo proferens: Sacrificate sacrificium iustitiæ & sperate in Domino, sic scribit:

B

*Neque acum charissime,*
*Desideres unquam alienam: nam Deo*
*Facta haud iniqua, sed quæ iusta sunt placent.*
*Sinit laborantem sed augere rem suam:*
*Terram colentem noctuq; & interdiu.*
*Iustus Deo autem assiduè sacrifica,*
*Non uestibus nitidis, sed corde splendidus.*
*Si audiueris tonitru, ne fugito, conscius*
*Si nil tibi sis penitus here: nam deus*
*Te respicit præsens propè.*

Adhuc te loquente, inquit scriptura, dicam: Ecce adsum. Diphilus rursus Comicus quædam huiusmodi differit de iudicio: Esa. 52.

*Tu' ne mortuos putas heus Nicerate,*
*Qui se omnibus repleuere uoluptatibus,*
*Ac si Deum latuissent, penitus esse liberos?*
*Iustitiæ est oculus, tuetur qui omnia.*
*Nanq; in inferis duas putamus semitas:*
*Vnam bonorum, sed malorum esse alteram*
*Viam, licet duas tellus simul tegat.*
*Agedum furare alacriter omni tempore,*
*Prædare, diripe, spolia: at ne erraueris,*
*Iudicium est, faciet quidem quod in inferis*
*Qui est omnium dominus Deus, cui nomen est*
*Terribile, ego quod neq; nominauerim.*
*Mortalium si quis putat, sed indies*
*Dum agit mali quicquam, latêre illud deos,*
*Malè is putat, falsiq; dein conuincitur,*
*In otio & quiete dum degit iustitia,*
*Videte quicunq; haud Deum esse creditis,*
*Est, est enim Deus, si quis facit sed improbè*
*Cùm sit malus, tempus ille contemperet:*
*Nam tempore ille postero pœnas dabit.*

Conuenit autem his quoq; per hæc tragœdia:

*Erit næ, erit nouum nam tempus seculi,*
*Quando ignis effundet refertas copias*
*Auratus æther, flamma quæ pasta & fuit,*
*Terrena cuncta, cunctaq; & sublimia Vret furens.*

C Et rursus subiungit paulò pòst:

*Sed uniuersum ubi defecerit*
*Totum profundum tunc peribit fluctuum.*
*Tellus manebit & deserta, non enim*
*Pennata producit folia igne torrida:*
*Seruabit at deinde cuncta quæ perdiderat.*

His similia inuenimus etiam in Orphicis scripta hoc modo:

*Nam quos celarat, iucunda ad lumina cunctos,*
*Rursus solicitus sacro de corde remisit.*

Quòd si sanctè & iustè vixerimus, beati hîc quidem, sed post excessum è vita beatiores, non qui aliquo tempore simus felices, sed qui possimus in æuum quiescere,

*Vnà cum superis habitantes: mensa in eadem*
*Qua fortes Danai, communi & sorte fruentes,*

ait philosophica Empedoclis poëtica. Non erit aliquis adeò magnus, vel ex Græcorum sententia, vt superet iustitiam: neque adeò paruus, vt lateat. Idem autem Orpheus hæc quoque dicit:

*At uerbum aspiciens diuinum, totus in illo*
*Persiste, atq; tuæ præcordia corrige mentis,*
*Ingrediens rectà & solum cæli aspice regem Immortalem.*

Et rursus de Deo dicens, eum non cadere sub aspectum, ait eum fuisse cognitum vni soli genere Chaldæo, siue eum dicens Abraham, vel eius filium, his verbis: A

*Vnus præterquam, cui deriuatur origo*
*Chaldeûm ex genere, is noscebat sydera cæli*
*Illorumq; uias, & qui moueatur in orbem*
*Sphæra, & tellurem circumuertatur in axe:*
*Spiritus & regat hanc & in aere & æquore fuso.*

Deinde illud subiungit: Cælum mihi est sedes, terra autẽ scabellum pedum meorũ.

*Ipse autem in magno constans & firmus olympo est:*
*Aureus huic thronus est, pedibus subiectaq; terra,*
*Oceani ad fines illi portenditur ingens*
*Dextera, montanas atq; intus concutit illi*
*Ira bases, motus nec possunt ferre ualentes.*
*Ipse est in cælis, & terram amplectitur omnem.*
*Principium medijs extremisq; ipse paratum est,*
*Non aliter fas est te dicere, membra tremiscunt*    *Cogito dum summum:*

& quę deinceps sequuntur. Per hæc enim significauit omnia illa prophetica: Si aperueris cælum, tremor ex te apprehendet montes, & liquescent sicut à facie ignis liquescit cera. Et per Esaiam: Quis mensus est cælum palmo, & terram pugillo? Rursus quando dixit:

Esa. 40.

*Aetheris atq; erebi, ponti terræq; tyrannus,*
*Terribili tonitru quassasq; palatia cæli;* B
*Dæmones & quem horrent, timet & quem turba Deorum,*
*Cui parent Parcæ, quamuis nil mitiget illas.*
*Exitij expers Matripater, uoluuntur ab ira*
*Cui omnia, qui uentosq; mouet atq; omnia nymbis*
*Contigis, atq; secas latum æthera fulmine. In astris*
*Perpetuus tuus est ordo, præcepta sequendo.*
*Candentiq; tuæ sedi per multa laborans*
*Adstant Angelicus populus, quis maxima cura*
*Mandata est hominum. Producit uer tibi flores*
*Purpureos ueniens. A te quoq; tempus hybernum est,*
*Nubibus aduentans gelidis, quas diuidit uuis.*

Deinde subiungit, apertè Deum appellans omnipotentem:

*Exitij expertem, immortalem, dicere solum*
*Quem possunt, quibus est innatum morte carere.*
*Maximè diuorum fato comitatus adesto,*
*Magnus, & expers interitus, qui es ab æthere cinctus.*

Fato, ἀνάγκῃ id est, necessitate.

Per illud quidem Matripater, non solùm significauit generationem, sed etiam dedit occasionem ijs qui introducunt productionem, vt Dei quoq; conjugẽ excogitarẽt. Paraphrasticè autem scripturas illas exponit propheticas, nempe & eam quæ dicitur per Esaiam: Ego solidans tonitru, & creans spiritum, cuius manus exercitũ cæli fundauerunt: & eam quæ per Mosen, Videte, videte quòd ego sum, & non est alius Deus præter me. Ego occidam, & ego viuere faciam: percutiam, & medebor, non est qui de manibus meis eripiat. C

φρικτὸς, ἀήττητος, μέγας, ἄφθιτος.

Deut. 33.

*Ipse malum exq; malo plantat mortalibus, atq;*
*Aerumnas tristes, deinde & lachrymabile bellum,*

ex Orphei sententia. Talia etiam Archilochus Parius: O Iupiter, tuum quidem est cæli imperium. Vides autem opera quæ populum ad cælos dirigunt, & quæ fas est fieri. Canat rursus nobis Orpheus:

*Oceani ad fines expansa est & manus illi*
*Vndiq; dextera, sub pedibus subiectaq; terra est.*

Hæc illinc apertè sumpta sunt, nempe Dominus seruabit ciuitates quæ habitantur: & totum orbem terrę manu comprehendet tanquam nidum: Dominus qui fecit terram in fortitudine sua, vt ait Hieremias, & erexit orbẽ terræ in sua sapientia. Præterea aũt Phocylides angelos vocans dæmones, alios quidem ex his esse bonos, alios verò esse malos per hæc ostendit. Nam nos quoq; accepimus aliquos qui defecerũt.

*Dæmonibus non una uiris natura nocendi est,*
*Sunt etenim longè uenientia qui mala pellunt.*

Rectè

A Rectè verò Philemon quoque Comicus, simulachrorum cultum per hæc excindit:

*Fortuna non est nobis ulla usquam Dea.*
*Non est, sed unicuique quod euenerit,*
*Casuq; fit, fortuna nobis dicitur.* Sophocles autem Tragicus:
*Ipsis non ueniunt certè Dijs omnia sponte,*
*Excepto Ioue: principium nam & finis in illo est.* Et Orpheus:
*Imperium unum est, unus dæmon, lumine replens*
*Cælum, facta in eo sunt, in quo & cuncta mouentur,*
*Ignis aqua & tellus:* & quæ deinceps consequuntur.

Et Pindarus Lyricus veluti quodã Bacchico furore corripitur, & apertè dixit quid sit Deus, nempe quod vniuersum. Cùm autem dixerit: Exiguam sapientiam sperat homo habere ab homine: Deorum autem consilia mortali mente scrutari est difficile, mortali autem natus est ex matre: ex illo deduxit sententiam, nempe: Quis nouit mentem Domini? aut quis eius fuit consiliarius? Quinetiam Hesiodus per ea quæ scribit his consonat:

*Non uates inter terrestres ullus habetur,*
*Qui Iouis ægiferi possit cognoscere mentem.*

Meritò ergo Solon Atheniensis, qui ipse quoq; secutus est Hesiodum, scribit:

*Omnibus atq; uiris mens est obscura Deorum.*

Rursus cùm Moses prędixerit mulierem in labore & dolore esse parituram, propter Gen. 3.
B præuaricationem, scribit quidam poëta non ignobilis:

*Nunquam noctuq; diuq;*
*A tristi ærumna cessabunt atq; labore,*
*Horum dijq; graues mittent in pectore curas.*

Præterea Homerus quidem, cùm dixit:

*Ex auro uerùm trutinas pater ipse librabat,*

Deum iustum significat. Menãder autem Comicus Deum bonum interpretãs, dicit:

*Adest uiro cuilibet dæmon bonus,*
*Cùm natus est statim, ut ad uitam instituat.*
*Nam dæmonem malum non par est credere*
*Esse, ut bonam lædat uitam.* Deinde subiungit:

Sed bonum in omnibus Deum, aut omnem Deum dicens esse bonum, aut quod potius dicẽdum est, Deũ esse bonum in omnibus. Rursus Æschylus quidem Tragicus, Dei exponens potentiam, non veretur ipsum appellare etiam altissimum, per hæc:

*πάντα ἀγαθὸν est anceps: potest enim significare omnẽ bonũ, aut bonũ in omnibus.*

*Mortalium à rebus Deum sciungito,*
*Neq; similem unquam eum tibi esse credito.*
*Nescis eum quandoq; ignem uiderier?*
*Potentia est magna, nũc aqua est, nunc tenebræ.*
*Et similis ipse fit quandoq; bestijs,*
*Ventoq;, nubiq;, fulguri, atq; pluuiæ.*
*Inseruiunt ei mare, altiq; scopuli.*
*Fons omnis undaq; est collecta simul.*
*Montes tremiscunt, terraq;, & uasti maris*
*Ingens profundum, & montium cacumina,*
*Cùm uiderint Domini oculos terribiles*
*Cuncta: potens nam gloria est Altissimi.*

C An non tibi videtur explicare per paraphrasim illud, A facie Domini tremit terra? Huc accedit quòd Apollo diuinandi peritissimus, Dei gloriæ ferens testimoniũ, cogitur dicere de Minerua, quando Medi bellum gerebant in Græciam, quòd rogabat & Ioui supplicabat pro Attica. Sic autem habet oraculum:

*Casta Iouem haud potis est summum placare Minerua,*
*Permultis uerbis prudenti & pectore supplex,*
*Igni at multa dabit uehementi templa Deorum,*
*Quæ sudore hìc stant nunc pròmanantia multo,*
*Et concussa metu:* & quæ sequuntur.

Theatrides autem scribit in libro de Natura: Vnum est autem eorum quæ sunt principium quidem, vnum verò verum. Illud enim est in principio vnum & solum.

*Sed non est alius quisquam magno sine Rege,*

inquit Orpheus. Cui credens Comicus Diphilus sententiosissimè, Eum, inquit, qui est pater omnium, solum honora perpetuò,

*Qui tot bonorum inuentor est & conditor.*

Meritò ergo Plato quoq; assuefacit optima ingenia, vt veniant ad disciplinam, quã prius diximus esse maximam, & vt videant bonum, & illa ascendãt ascensione. Hoc autem, vt videtur, non fuerit testæ cõuersio, sed animæ circũactio à nocturno quodã die, ad verum eius quod verè est reditum, quem quidem dicemus esse philosophiã:

&c eos qui sunt eius participes, aurei generis esse iudicent, dicendo, Estis quidem omnes fratres: quinam aūt sint aurei generis, accuratissimè & omnino iudicent. Patrē ergo & vniuersorum effectorem naturaliter & citra doctrinam omnia ex omnibus apprehendunt, inanima quidem, quæ naturalem quandam habent consensionē & conuenientiā cum animali: ex animatis aūt, alia quidem iam immortalia quæ per diem operantur. Ex ijs autem quæ sunt adhuc mortalia, alia quidem in metu, & quæ per matrē adhuc vehuntur in vtero: alia autem quæ libera & quæ est in eorū potestate vtuntur ratiocinatione, vt ex hominibus omnes Græci & barbari. Nullum aūt vsquā genus, nempe agricolarum, neq; pastorum, neq; eorum qui versantur in ciuitatibus, potest viuere, nisi eius quod est præstantius ac melius fide præoccupatum prę uentumq; fuerit. Quamobrem vniuersa quidem gens Orientalium, & vniuersa quæ pertinet ad Occidentem, Septentrionem & Austrum, vnā habet & eandem anticipatam notionem de principatu eius qui constituit: siquidem quæ sunt vniuersæ & maximè generales eius operationes, omnes ex æquo peruaserunt. Longè autem magis qui apud Græcos fuere curiosi philosophi, à barbara moti philosophia, ei qui nō cadit sub aspectum, & est solus, & potentissimus, & artifex maximus, & eorum quæ sunt pulcherrima author præcipuus, dedêre prouidentiam: verùm quæ sunt his cōsequentia, nisi à nobis instituti fuerint, nescientes: sed neq; quomodo natura sit insitum vt deus mente cogitetur, sed solùm, vt iam sæpe diximus, per eius apparentem veram ostensionem. Meritò ergo Apostolus: At Iudæorum, inquit, solùm est Deus, non etiam Græcorum: non solùm dicens propheticè, eos qui ex Græcis credūt Gręcos, Deum esse cognituros, sed illud quoq; significans, quòd potestate quidem fuerit Dominus & Deus omnium, & reuera omnipotens: cognitione autem non omnium. Neque enim id quod est, neque quomodo Dominus & pater & creator, neq; aliam veritatis norunt œconomiam ac dispensationem, nisi ab ipsa didicerint. *Simi*liter etiam prophetica habent eandē vim cum dicto Apostolico. Nam Esaias quidē dicit: Si autem dicit is, In Dño Deo nostro confidimus, nunc misceamini cum domino meo rege Assyriorum. Et subiūgit: Et nūc non sine Domino ascendimus in hanc regionem vt in eam bellaremus. Ionas autem ipse quoq; propheta, idem tacitè significat, cùm dicit: Et accessit ad ipsum is qui proram gubernabat, & dixit ei: Cur tu stertis? Surge, inuoca Dominum Deum tuum, vt seruet nos, & non pereamus. Nam illud quidem, Deus tuus, dicens ei qui norat per agnitionem, hoc autē, vt seruet nos Deus, significauit consensionem gentium quæ applicarat mentem ad omnipotentem, & nondum crediderant. Et rursus idem: Et dixit ad ipsos, Seruus Domini ego sum, & Dominum Deum cæli ego timeo. Et rursus idem: Et dixerunt, Nequaquam Domine, ne pereamus propter animam hominis huius. Malachias autem propheta apertè ostendit Deum dicentem: Sacrificium non accipiam ex manibus vestris, quoniam ab ortu solis vsque ad occasum, nomen meum glorificatum est in gentibus, & in omni loco mihi offertur sacrificium. Et rursus: Quoniam Rex magnus ego sum, ait Dominus omnipotens, & nomen meum clarum est in gentibus. Cuiusmodi nomen? In ijs quidem qui crediderunt, filius patrem significans: in Gręcis autem, Deus creator. Liberum autem arbitrium Plato per hæc ostendit: Virtus autem non paret alterius dominio, quam prout vnusquisque vel honorauit vel despexerit, erit eius particeps. Eius qui elegerit, culpæ non potest in Deum causa conferri: Deus enim nunquam est causa malorum. O' Troiani bellicosi, inquit Lyricus, Iupiter regnator superûm qui omnia aspicit, non est mortalibus causa malorum, sed omnib. hominibus in medio est propositum, vt apprehendant iustitiam castam & sanctam Eunomiæ comitem & prudentis Themidis. Beatorum ô pueri qui nunc inuenistis sociam vnà habitantem. Pindarus autem apertè inducit Seruatorem vnà habitantē cum Themide, Regem Seruatorem iustum hoc modo interpretans: Primùm quidē, bono consilio præditam Themin cælestem, aureis equis, propter Oceani rupem Parcæ ad venerabiles Olympi scalas, in viam duxere præpinguem, vt esset vetus Seruatoris coniunx. Ea verò, frænis aureis, & præclarum fructum ferentes, peperit bona Seruatores. Qui ergo non credit veritati, humana autem est doctrina inflatus, miserq; est & infelix, & qui, vt ait Euripides, hæc videns, Deum mente non cogitat, de sublimibus autem rebus disputationis procul tortuosas iacit fallacias, quas indomita temerè iaculatur lingua, de ijs quæ non videntur, nullius certè particeps sententiæ, accedens, inquam, ad veram qui vult disciplinam, audiat quidem Parmenidem Eleatam promittentem,

Marginalia: A; κατάπιψις ειν. (at "insitum"); Rom. 3.; B; Ionæ 1.; Malach. 1.; C

Aetheream-q;

A *Aethereamq; scies naturam & in æthere cuncta*
*Signa, & sacrati clarissima lumina Solis,*
*Quæ res obscura est ualde, undeq; nata fuere.*
*Magnaq; Cyclopis facta in plantaria Lunæ,*
*Naturamq; scies, cælum & quod circuit orbem.*
*Effugit nanq; hinc, illud durum utq; necessum* Necessum, ἀνάγκη, necessitas.
*Vinxit, ut astrorum fines teneat.*

Et Metrodorum, qui, etsi fuerit Epicureus, hæc diuinè dixit: Memento Menestrate, quoniam es mortalis, & vitam accepisti terminatam, anima ascendere, donec seculum, & rerum videris infinitatem, tam quæ futuræ sunt quàm quæ fuerunt: quando cum beato choro, ex Platonis sententia, felicem visionem spectaculumq; contéplabimur: nos quidem cum Ioue sequentes, alij autem cum dijs alijs, & beatissima, si fas est dicere, mysteria peragemus ac celebrabimus, ipsi quidem integri & nulli malorum perpessioni obnoxij, quæ in posteriori tempore nos manserunt: integra autem & quieta visa aspicientes & contemplantes in luce pura, puri, & nequaquá hoc obsignati, quod nunc corpus circunferentes nominamus, eo instar ostrei alligati. Pythagoræi autem cælum appellant ἀντίχθονα, hoc est, terram ex aduerso sitam. In qua terra, inquit per Hieremiam, collocabo te in filios, & dabo tibi terram electam hæreditatem Dei omnipotentis, cuius qui fuerunt hæredes, erunt reges terræ. Affluunt mihi innumerabilia alia adijcienda, sed vt sit dicendi modus, finem imponam B orationi, ne id nobis quoq; eueniat quod dicit Agatho Tragicus:

*Id quod obiter dicitur, ut id de quo agitur,*
*Existimantes, & persequentes gnauiter.*

Cùm ergo apertè, vt arbitror, ostensum sit, quomodo fures à Domino dictum esse Græcos, sit audiendum, lubens prætermitto dogmata philosophorum. Nam si eorum quoq; dictiones persequeremur, mox commentariorum innumerabilem collegerimus multitudiné, ostendentes omnem quæ est apud Græcos sapientiam, esse à barbara sumptam philosophia. Quam contemplationem nihilo secius necessariò attingemus, quando colligemus opiniones Græcorum quæ feruntur de principijs. Sed hoc quoq; nobis ex ijs quæ dicta sunt licet tacitè considerare, quemadmodum sint legendi libri Græcorum, & qui scit tranare eorum fluctus.

*Diuinæ mentis possedit qui bona, felix,*

vt videtur ex sententia Empedoclis.

*Sed miser est, tenebrosa Deûm cui opinio curæ.*

Cognitionem & ignorationem, felicitatis & infelicitatis esse fines diuinè significauit. Oportet enim multarum rerum esse gnaros viros philosophos, ex Heracliti sententia, & reuera necesse est,

*Esse bonum hunc hominem, qui quærens multa pererrat.*

Ex ijs ergo quæ prius dicta sunt iam est nobis perspicuum, esse æternam Dei beneficentiam, & verè æqualem naturalem iustitiam, à principij experte principio, pro C vniuscuiusq; generis dignitate, ad omnes processisse, cùm nunquam cœpisset. Neq; enim huius quod est esse Dominum & bonú, principium accepit Deus, qui est semper id quod est. Sed neq; cessabit vnquam benefacere, etiamsi singula ad finem perduxerit. Est autem vnusquisque nostrûm beneficentiæ particeps ad id quod vult. Differentiam enim fecit anima quæ euasit digna electione, voluntariumq; institutum & exercitatio. Sic ergo quintus quoq; liber Commentariorum cognitionis qui sunt in vera philosophia, qui nominatur Stromateus, finiatur.

# CLEMENTIS ALE-XANDRINI STROMATVM LIBER SEXTVS.

A

HIC autem sextus simul & septimus Liber, eorum qui ex vera sunt philosophia Commentariorum cognitionem informantium, qui dicitur Stromateus, cùm moralem rationem quæ in his traditur, quam maximè fieri potuerit, descripserit, & ostenderit quonam sit vitæ instituto is qui est cognitione prędítus, procedit, Philosophis ostensurus eum minimè esse impium & à Dei religione alienum, vt existimauerunt, solùm aũt verè pium, & qui in Deo colendo ritè versatur, eius qui est cognitione præditus, religionis modum summatim exponens, quod attinet ad eam quæ admonet & in memo-
*Ioan.6.* riam reuocat, scripturam citra periculum imprimendam. Operari enim cibum qui
*Esa.32.* in æuum permanet, nos iussit Dominus. Et alicubi dicit Propheta: Beatus qui seminat super omnem aquam, quã conculcat vitulus & asinus: nempe qui ex lege & gentibus in vnam fidem congregatur populus. Qui autem est imbecillus, olera come-
*Rom.14.* dit, vt ait præclarus Apostolus. Prius autem pædagogus, qui à nobis diuiditur in tribus libris, ostendit educationem & institutionem quę datur à pueritia, hoc est, quæ B ex catechesi, seu ex auditione tradita doctrina, fide simul augetur, vitæ informatione, & ijs qui in numerum virorum adscribuntur, præparat animã virtute præditam, ad scientiam quæ cognitionem præbet accipiendam. Cùm ergo ex ijs quæ per hæc à nobis dicenda sunt, Græci euidenter didicerint, quòd cùm eum qui est pius & verus Dei cultor nefariè persequãtur, ipsi se impiè gerant: tunc iam procedentibus cõuenienter Stromatum stylo & formæ Cõmentarijs, soluendæ sunt quæ & à Græcis & à barbaris in nos mouentur dubitationes de aduentn Domini. Atq; in prato quidem qui variè florent flores, & in horto arborum plantatio, non est separata per vnã quanq; speciem eorum quæ sunt alterius generis, etiamsi quidam, eruditis variè decerptis collectionibus, prata & Heliconas, & fauos, & peplos, conscripserint: sed ijs quæ vt contigit mihi venerunt in mentem, & neq; ordine neq; dictione sunt expurgata, sunt autem de industria dispersa, permixtim nobis instar prati variata est Stromatum descriptio. Quæ cùm ita habeant, & mihi erunt ad me excitandum Commentarij: & ei qui est aptus ad cognitionem, si fortè in ea inciderit, eius quod est vtile ac conducibile cum sudore fiet inquisitio. Non solùm enim cibum, sed multò magis etiam cognitionem labor præcedat æquum est, ijs qui per arctã & angustam verè viam Dominicam, ad æternam & beatam transmittuntur salutem. Nostra aũt cognitio, & hortus spiritalis, est ipse noster Seruator, in quem implantamur, transpositi & transformati in terram bonam ex vita veteri. Mutatio aũt plantationis confert ad fertilitatem & bonitatem fructuũ. Lux est aũt Dominus & vera cognitio, in quẽ C sumus transpositi. Dicitur autem alioqui duplex etiam cognitio: vna quidem communiter, quæ est in omnibus hominibus: similiter intelligentia & apprehensio, quæ vulgò & publicè vbiq; ex eo apparet, quòd norit vnumquodq; eorum quę sunt subiecta: quam non solùm habent potestates quæ sunt ratione præditæ, sed etiam quæ ea carent: quam ego nunquam nominauerim cognitionem, vt cui sit à natura ingeneratum vt cognoscat per sensus. Quæ autem excellenter & præcipuè nominatur cognitio, ex mente & ratione formam accipit & characterem, per quam solæ potestates rationis participes fiunt cognitiones, quæ ijs quæ apprehenduntur intelligẽ-
*Psal.111.* tia, per nudam animæ operationẽ purè ac syncerè applicantur. Bonus est vir, inquit Dauid, qui miseretur eorum qui errore pereunt, & commodat impertiendo verbum veritatis, non temerè & vt contigit, sed si pensabit sermones suos in iudicio, profunda supputatione ac ratiocinatione: is dispersit, dedit pauperibus. Priusquàm autem aggrediamur id quod est propositum, fini quinti Libri Stromatum sunt instar procemij reddenda ea quæ desunt. Quoniam enim ostendimus symbolicum genus esse antiquum, eo autem esse vsos non solùm prophetas qui sunt apud nos, sed etiam ex priscis Græcis permultos, & non paucos ex alijs barbaris qui sunt in gentibus, oportebat eorum quoque qui initiantur persequi mysteria. Hæc autem declarare distuli in eum locum, quo ea quæ à Græcis dicta sunt de principijs persequentes,

A quentes, confutabimus: nam huius quoq; contemplationis ostendemus fore mysteria. Cùm autem ostenderimus Græcorum cogitatorum eum qui apparet sensum, ex veritate quæ nobis fuit tradita per scripturas, fuisse illustratũ, in quo significato fructum veritatis ad ipsos peruenisse postea, si non sit graue dictu, monstrauimns: agè ipsos Græcos furti in seipsos admissi testes adducamus. Qui enim quæ sunt eorum propria tam euidenter à se inuicem suffurantur, se quidem fures esse confirmant: vel inuiti autem ostenduntur à nobis acceptam vsurpasse veritatem, & eis qui erant sui generis clanculum tradidisse. Qui enim ne à seipsis quidem abstinent, à nostris vix abstinebunt. Atq; tacebo quidem eorum dogmata in philosophia, cùm scriptis fateantur ij qui in sectas distribuuntur, ne ingrati animi criminis conuincerentur, se decreta pręcipua accepisse à Socrate. Cùm autem vsus fuero paucis testimonijs eorum qui sermonibus celebrantur, & in magna existimatione habentur apud Græcos, & eorum furandi genus in diuersis temporibus conuicero, conuertar ad ea quæ deinceps sequuntur. Nam cùm fecisset Orpheus,

*Deterius peiusq; aliud quàm foemina nil est.*
Homerus apertè dicit:
*Deterius grauiusq; aliud quàm foemina nil est.*
Et cùm scripsisset Musæus:
*Melior longeq; est robore semper ars.*
Dicit Homerus:
*Non alio qui ligna secat nisi robore uincit.*
Et rursus cùm fecisset Musæus:
*In lucem utq; uides almam folia edere terram,*
*Atq; perire alia in ramis, ac rursus oriri*
B *Altera, sic hominum seclum generatio uoluit.*
Transcribit Homerus:
*Ventus fundit humi folia altera, syluaq; rursus*
*Altera producit uiridantia tempore uerno:*
*Nascitur humanum sic seclum, sicq; recedit.*
Et rursus cùm dixisset Homerus:
*De fato functis minimè se extollere fas est,*

scribunt Archilochus & Cratinus: ille quidem: Non bellè habet, propter mortuos maledictis persequi. Cratinus autem in Laconibus: Terribile est hominibus de mortuis iuuenibus se valde iactare. Et rursus Archilochus illud transferens Homericũ:

*Sum læsus, nec ego pro multis ferre recuso,*

hoc modo scribit: Erraui, & aliquem vtique alium deprehendit calamitas. Sicut certè illum quoq; versum,

*Communis perimit Mars & qui occiderat antè,*

ipse transmutans sic protulit: Faciam, reuera enim Mars est communis hominibus. Præterea illud quoq; transferens:

*Omnis in arbitrio uictoria postea Deorum est.*

Per hunc Iambum iuuenibus etiam apertè addit animum:

*Victoria ast sita est Deûm in arbitrio.*
Rursus cùm dixisset Homerus:
*Illotis plantis in humo duraq; cubantes:*
Scribit Euripides in Erechtheo,
*In solo minimè strato dormiunt.*
*Fontibus autem minimè lauant pedes.*
Et cùm similiter dixisset Archilochus:
C *Cor alij de alio mouetur gaudio,*
Conuenienter illi Homerico:
*De factis alij alius nam gaudia sumit.*
dicit Euripides in Oeneo:
*Nanq; alijs alius magis lætatur moribus.*
Audiui aũt Æschylum quidem dicentem:
*Est qui beatus, is maneat domi decet,*
*Rem qui gerit malè, is bene est ut maneat.*
Euripide similiter in scena clamante:
*Felix is est, beatus qui cùm sit, domi manet.*
Cũ sic dicat etiam Menãder in Comœdia:
*Domi manere oportet, & esse liberum,*
*Aut non beatum illum esse uerè dicier.*
Rursus cùm Theognis quidẽ dicat:
*Qui exulat, est illi non ullus fidus amicus,*
Fecit Euripides:
*Procul fugit quiuis amicus pauperem.*

Et cùm dixisset Epicharmus: O filia, hei mihi, cum quanam fortuna me facis habitare. & subiungat: Nam is quidem aliam sumit adolescentulam, alia autem aliũ quærit quempiam, scribit Euripides: *Locus corruptus.*

*Dare iuueni iuuenem mala est res coniugem,*
*Nanq; is cupit cubile inire alterius: Sed machinatur ipsa egens illi malum.*

Præterea cùm Euripides quidem dixisset in Medea:

*Etenim mali munus uiri haud est utile,*
Sophocles in Aiace flagellifero, dicit illud Iambicum: *Dona hostium non dona sunt, nec utilia.*
Cùm autem fecisset Solon:
*Nascitur ex nimijs opibus petulantia multa,*
apertè scribit Theognis:

*Nascimur ex nimijs opibus petulantia prauis.* A

Vnde etiam Thucydides in historijs: Solent auté, inquit, permulti homines, quibus maximè res secundę aliquantisper euenerint, fieri insolentes. Philistus quoq; similiter eadem imitatur, sic dicens: Multa autem quæ conuenienter rationi feliciter succedunt hominibus, sunt & ad famam & ad rerum aduersarum cautionem tutiora. Quibus enim præter spem & expectationem res secundæ accidunt, solent euadere insolentes. Rursus cùm fecisset Euripides:

*Ex patre matreq; uitam egere qui asperam,* *Et laboriosam, meliores filij.*

scribit Critias: Incipio autem ab ortu hominum, quemadmodũ fuerit corpore præstantissimus & fortissimus, si is qui serit exerceatur & strenuè comedat, & corpus vexet laboribus: & mater futuri infantis, & sit robusto corpore, & se exerceat. Rursus cùm Homerus dixisset de clypeo quod fabricatus erat Vulcanus:

*Tellurem mareq; & cælum fabricatus in illo est,*
*Oceani magnam & uim fluminis indidit illi,*

dicit Pherecydes Syrus, Zas facit magnum pulchrumq; pallium, & variè in eo describit terram & Ogenum & domos Ogeni. Et cùm dixisset Homerus:

*Qui pudor ipse hominem multum læditq; iuuatq;.* Euripides scribit in Erechtheo:
*Quid de pudore dicam haud facilè iudicem.*
*Eo est opus certè, nec est malum graue.*

Ex mutua autem comparatione furti loca sumpseris, & ex ijs qui simul floruerũt, & in ijsdem inter se concertarunt. Ex Euripide quidem in Oreste: B

*Illecebræ soporis, & mali remedium.* Et Sophocle ex Eriphile:
*Abi ad soporem, huius mali qui est medicus.* Et Euripide quidẽ ex Antigone:
*Nothum dedit probrosum natura nomine.* Sophocles auté ex Aleuadibus:
*Quicquid bonum est, naturam habet consimilem.* Rursus Eurip. quidẽ in Crimeno:
*Etenim laboranti Deus dat auxilium.* Sophocles autem in Minoë:
*Qui nil agunt, ijs nõ fortuna fert opem.* Quinetiã Euripides quidẽ ex Alexãdro:
*Ostendet autem tempus, ex quo indicio,*
*Aut te probum uel improbum cognouerim.* Sophocles autem ex Hippono:
*Ad hæc nihil celes, quod omnia enim uidet,*
*Et audit omnia, illud tempus explicat.*

Sed illa quoq; similiter persequamur. Nam cùm Eumulus fecerit:

*Mnemosynæ atq; Ioue est soboles prognata nouena.* Solon sic incipit elegiam:
*Natæ ex Mnemosyne & Ioue qui est regnator Olympi.*

Rursus Euripides illud Homericum paraphrasticè circumloquens:

*Quis tu homo es, & tibi quæ'nam est patria, quiq; parẽtes?* His Iambis vtitur in Ægeo:
*Dicemus à qua te abijsse patria*
*Multa peragrantem loca, & quæ'nam tua*
*Terra est, tuum quemnam asseris dici patrem?* Quid verò, nõ cùm dixisset Theognis:
*Potetur nimium si uinum, est res mala: sed si*
*Vtatur bene quis, res bona, non mala res.* scribit Panyases:
*Vinum quod modicum est, immodicũ at res pessima uinũ.* Quinetiã cũ dicat Hesiodus: C
*Nam tibi pro igne malum reddam quod recreet omnes.*

facit Euripides: Pro igne enim alius maior & expugnatu difficilior, germinarunt fœminæ. Ad hæc cùm dicit Homerus:

*Perdendus uenter nulla ratione repleri*
*Quit, mala plurima qui miseris mortalibus affert.* scribit Euripides:
*Vincit quidem usus, uenterq; malè perditus,*
*Ex quo quidem certè omnia profluunt mala.*

Præterea scribente Callia Comico, Insanientibus aiunt oportere omnes insanire: similiter Menander in Comœdia quæ inscribitur πολέμων,

*Adesse semper non decet prudentiam.*
*Etiam euenire aliqua oportet.* Et cùm dixisset Antimachus Teius:
*Ex donis hominum generi mala plurima fiunt.* Fecit Augias:
*Nanq; hominum mentes cum factis munera fallunt.*

Cùm autem dixisset Hesiodus,

*Nanq; homini melior fuerit possessio nulla,*
*Coniux quàm bona, nil scelerata at peius habetur.*

dixit Simonides: Vxore autem bona, vir nullam rem posidet meliorem, neq; mala deteriorem

A deteriorem. Rursus cùm dixisset Epicharmus: Tanquam longo tempore victurus, & tanquam breui, ita animo agites: scribit Euripides,

*Cùm cursus in rebus secundis haud siet* *Certus, molestias cur non repellimus?*

Similiter cũ dixisset Comicus Diphilus, Vita est hominũ mutabilis: ait Posidippus,

*Expers molestiæ acta nemini fuit* *Vita, beatus nec finẽ usq; ad ultimũ* *Permansit.*

Et alioqui id dicit tibi Plato, scribens de homine qui est animal mutabile. Rursus cũ dixisset Euripides: O laboriosa vita mortaliũ, quàm es omnino lubrica, & hæc quidem auges, illa verò minuis, nec est vllus terminus cõstitutus ad quẽ oporteat peruenire mortales, nisi quãdo venerit gelidus à Ioue missus mortis finis: scribit Diphilus,

*Non ulla uita quæ omnino caret malis,* *Curis, doloribus, & ægritudinibus:*
*Cùm apparuit sed mors, eorum ut medicus,* *Dat requiem ijs quibus malè est, hos sopiens.*

Præterea cùm dixisset Euripides: Dęmoniorum multæ sunt species: præter spem autem Dij multa efficiunt: Tragicus similiter Theodectes scribit esse instabiles fortunas mortalium. Et cùm dixisset Bacchylides: Apud quos autem mortalium, dæmoni visum est vt toto tempore vitam agens mediocrem, in tempore ad canam perueniat senectam, priusquam incidant infortunia? scribit Moschion Comicus:

*Vere beatissimus ille est omnium,*
*Perpetuò uitam qui egit æquabilem.* Inueneris aũt cùm dixisset etiam Theognides:
*Non iuuenis uetulo coniux est apta marito,*
*Quæ cymba ut clauo, haud audiet imperio:* Aristophanem Comicum scribentem,

B *Non fœminæ iuueni maritus conuenit* *Senex.*

Cùm aũt fecisset Anacreon: Amorẽ enim cano delicatũ, florentibus scatentẽ matricibus: is & suam in Deos exercet potentiam, atq; homines domat: scribit Euripides,

*Non adoritur uiros amor tantummodo*
*Et fœminas, sed ipsorum etiam Deũm*
*Turbat animos, ipsum mare atq; ingreditur.*

Sed ne nostra longius procedat oratio, dum contendimus ostendere quàm sint Græci procliues ad furtum, & in orationibus & in dogmatibus, age adducamus Hippiã Sophistam Eleum nobis apertè ferentem testimonium, qui id tractabat quod ad cõsiderandum est nobis propositum. Sic autem dicit: Ex his fortasse dicta sunt alia quidem ab Orpheo, alia verò à Musæo breuiter, alia alibi: alia autem ab Hesiodo, alia verò ab Homero, alia verò ab alijs Poëtis, alia verò in ijs quæ scripta sunt soluta oratione, alia quidem à Græcis, alia verò à barbaris. Ego autem cùm ex his omnibus ea quæ sunt maxima & eiusdem generis composuero, hanc nouam & multiformem conficiam orationem. Vt autem & philosophiam & historiam, & etiam dicendi facultatẽ seu rhetoricam ostendamus nõ esse immunẽ ab hac reprehẽsione, consentaneum est vt ex his quoq; pauca adducamus. Nam cũ diceret Alcmæon Crotoniata: Inimicum facilius est cauere quàm amicum, Sophocles quidem fecit in Antigone,

*Quod maius ulcus quàm amicus fiet malus?*

C Xenophon autem dixit: Non aliter inimicos læserit quispiam, quàm si videatur esse amicus. Quinetiam cùm in Telepho dixisset Euripides,

*Græci sumus, dein seruiemus barbaris?*

Thrasimachus in oratione pro Larissęis dicit: Archilao seruiemus, cùm simus Gręci, barbaro? Cùm autem fecisset Orpheus,

*Lympha anima est, sed mors est commutatio lymphis:*
*Ex lympha tellus, lympha ex tellure reuertit.*
*Ex illo autem anima est integrum quæ aera mutat.*

Heraclitus, ex his, ea quæ ab ipso dicta sunt componens, scribit: Animis mors est, aquam fieri: aquę autem mors est, fieri terram: ex terra autem fit aqua, ex aqua verò anima. Iam verò cùm dixisset Athamas Pythagoricus: Sic oriebatur vniuersi principium, & sunt radices quatuor, ignis, aqua, aër, terra: ex his enim gignuntur ea quæ gignuntur: Agrigentinus fecit Empedocles,

*Cunctarum rerum radices quatuor extant:*
*Ignem primùm & aquam & terram, deinde æthera summum*
*Audi, hinc præterita, & præsentia, quæq; futura.*

Et cùm diceret quidem Plato: Propterea Dij quoq; qui norunt homines, quos plurimi faciunt, eos à vita celerius liberant: Menander fecit,

*Dei quem amant, excedit is uita iuuenis.*

Cùm autem in Oenomao scriberet Euripides: Ex præsentibus futura cõijcimus: In

Phœnice aũt: Obscura indicijs deprehenduntur verisimiliter: dicit Hyperides: Quæ autē sunt obscura, necesse est eos qui docent inquirere signis & ijs quæ sunt probabilia. Et cùm rursus dixisset Isocrates, Coniectanda autem sunt futura ex ijs quæ prius facta sunt: Andocides non veretur dicere: Oportet enim ijs quæ prius facta sunt, vti tanquam signis futurorum. Præterea cùm fecisset Theognis, A

*Argentum reprobum atq; aurum falsæue monetæ,*
*Non ægrè sapiens uir reperire queat.*
*Mentem autem chari num pectore fallat amici*
*Callidus, atq; intus corda dolosa tegat,*
*Qua non à superis res est mage reproba, nosse*
*Inter res omnes est mage difficile:*

Euripides quidem,

*O Iupiter, cur adulterinum quod siet*
*Aurum, dedisti signa aperta inter homines:*
*Sed quo queat signo malus cognoscier,*
*Est insitus nullus character corpori?*

Hyperides autem ipse quoq; dicit: Nullus character animi est in vultu hominibus. Rursus cùm fecisset Stasinus,

*Stultus qui patrem occidit, gnatosq; relinquit:*

dicit Xenophon: Mihi enim videor similiter nunc fecisse, atq; si quis patre occiso, eius filijs pepercerit. Et cùm Sophocles fecisset in Antigone,

*Nam mater & pater cui sunt in inferis,*
*Fieri nequit frater ut illi germinet:*

dicit Herodotus: Nam cùm mater & pater nō sint amplius, fratrem non habebo. Ad hæc cùm dixisset Theopompus, Bis pueri senes recta ratione: & ante eum Sophocles in Peleo, B

*Gnatum Aeaci Pelea ego sola in ædibus*
*Similiter erudio, nutrio atq; instituo,*
*Rursus puer nanq; est quisquis consenuit.*

dicit orator Antipho: Senis enim educatio, est similis educationi pueri. Quinetiam Philosophus quoque Plato: Senex ergo, vt videtur, bis fuerit puer. Porrò autem cùm dicat Thucydides, Et soli Marathone periculum adijsse: dixit Demosthenes, Per eos qui Marathone periculum adierunt. Sed nec illa omittam, quòd cùm Cratinus dixisset in Pœtine: Apparatum quidem fortasse cognoscitis: dicit Orator Andocides: Apparatum quidem ô Iudices, vehemensq; animi studium & contentionem aduersariorũ meorum omnes propémodum scitis. Similiter etiam Nicias in oratione de Deposito, aduersus Lysiam: Apparatum quidem aduersariorum, & animi studium & contentionem videtis Iudices. Et post eum dicit Æschines: Apparatum quidem videtis ô viri Athenienses, & veluti instructam aciem. Rursus cùm dixisset Demosthenes: Quantum quidem, ô Athenienses, fuerit in hac causa studium, & quàm solicita postulatio ac prehēsatio, existimo vos omnes propémodum sensisse. Et Philinus similiter: Quantum quidem fuerit, ô Iudices, studium, & qualis veluti aciei instructio & adornatio in hac causa dicēda, neminem vestrûm ignorare existimo. Rursus cùm dixisset Isocrates: Perinde ac si esset pecuniæ cognatus, non illius. Lysias dicit in Orphicis: Et planum factum est eum non esse cognatum corporum, sed pecuniæ. Nam cùm Homerus quoq; fecisset, C

*Cùm uitata esset si hæc nobis alea belli,*
*Non inter primos uellē hancce capessere pugnam,*
*Ingredier, uerùm innumeras cùm sæua pararunt*
*Nec datur, insignis nobis agē fama paretur*
*Essemus senij expertes mortisq; futuri,*
*Prælia sed nec ego te nunc præclara iuberē*
*Mortis fata uias quæ impendent posse caueri*
*Pugna, aut ex nobis alij ingens gloria detur,*

scribit Theopōpus: Nam si cùm præsens quidē vitassemus periculũ, liceret reliquũ tēpus securè transigere, non esset mirandum si vitæ essemus cupidi. Nunc autem vitæ nostræ tot sunt ingenerata imminētq; pericula fatalia, vt mortem in prælio oppetere, videatur esse magis optandum. Quid verò, an non cùm Chilo quoq; Sophista dictum illud enunciasset, Sponde, noxa præstò est: Epicharmus eandem sententiam alio nomine protulit, dicens: Sponsio est noxæ filia, sponsio verò mulctę. Quinetiam cùm medicus scripsisset Hippocrates, Respicere oportet & tempus, & regionem, & ætatem, & morbos: dicit Euripides in hexametro,

*Quicunq; rectè autem sciunt mederier,*
*Hos rationem uictus cùm respexerint,*
*Et regionem ciuium morbos discernere* Decet.

Rursus

A Rursus cùm dixerit Homerus,

*Dico nulli homini mortem uitare licere.*

dicit Archinus, debere quidem mortem omnibus hominibus, aut prius, aut posterius. Et Demosthemes: Nam omnibus quidē hominibus vitę finis est mors, etiāsi quis seipsum seruet inclusum in domuncula. Et cùm dixisset Herodotus, vbi agebat de Glauco Spartano, Pythiam dixisse, In Deo perinde esse dicere ac facere: dixit Aristophanes, Tantum valet mente agitare atque agere. & ante eum Eleates Parmenides: Idem est enim & intelligentia percipere & esse. An non etiam cùm Plato dixisset: Nos autem hoc fortè ostendemus non absurdè, quòd visus quidem est amoris principium: affectionem autem spes minuit, alit verò memoria, conseruat autem consuetudo, scribit Philemon Comicus:

*Primum uident omnes, dein subit admiratio: Deinde contemplantur, & dein spes uenit.*

Ita fit ex his amor. Quinetiā cùm dixisset Demosthenes: Mors enim debetur omnibus, & quæ deinde consequuntur: scribit Phanocles in libro qui inscribitur Amores seu Pulchra,

*Sed nec caueri ullo modo Parcæ queunt Alma à quibuscunq; terra depascitur.*

Porrò autem inuenies quoq;, quòd cùm Plato dixisset: Cuiusuis enim plantæ primum quod rectè ortum est germen, ad suæ naturæ virtutem est præcipuum: appositum finem imposuerit Historicus scribens: Quinetiam nulli plantę agresti est à natura insitum vt mansuescat, vbi teneriorem ętatem præterierint. Et illud Empedoclis,

B *Ipse ego nanq; fui puer olim, deinde puella,*
*Arbustum, & uolucris, mutus quoq; in æquore piscis.*

Euripides transcribit in Chrysippo: Ex ijs quæ gignuntur nihil moritur: sed dum vnum ab alio discernitur, aliam formam ostendit. Et cùm Plato in libris de Republica dixisset mulieres esse communes, Euripides scribit in Protesilao:

*Ergo esse communem & torum fœmineum.* Quinetiam cùm scriberet Euripides:

*Quæ satis sunt enim, sufficiunt sapientibus,*

Epicurus dicit apertè, sufficientia res est omniū ditissima. Et rursus cū scribat Aristoph.

*Si iustus es, uitam habebis stabilem, Viues bene expers & tumultus & metus.*

dicit Epicurus: Iustitiæ fructus maximus, est vacuitas perturbationis. Atq; furti quidem Græcorum, quod attinet ad sententiam, species cùm sint eiusmodi, sufficiant ad exemplum euidens ei qui potest perspicere. Iam verò non sententias solùm & dictiones suffurati esse & per paraphrasim enunciasse sunt deprehensi, vt ostēderetur, sed etiam furta integra habere apertè arguentur. Nam cùm quæ erant aliorum, tota omnino surripuissent, enunciarunt tanquam propria, vt Eugamō Cyrenęus, ex Musæo librum integrum de Thesprotis, & Pisander Camireus Pisini Lydij Heracleam, & Panyasis Halicarnasseus à Cleophylo Samio Oechalię captiuitatē. Inueneris aūt Homerum quoq; magnum illum Poëtam, illos versus,

*Atq; ut uir nutrit ramum uiridantis oliuæ,*

& quæ deinceps cōsequuntur, ad verbum trāstulisse ex Orpheo de deleto Dionyso.

C Et quæ ab Orpheo in Theogonia facta sunt de Saturno:

*Atq; is transuersa crassa ceruice iacebat, Illum cuncta domans & somnus ceperat,*

ea Homerus transtulit ad Cyclopem. Hesiodus autem facit de Melampode:

*Facta autem à superis quæ sunt parēre lubenter*
*Par homines, parui atq; mali clarissima sunt hæc Signa.*

& quæ deinceps consequuntur, quæ ad verbum accepit à Musæo poëta. Aristophanes autem in primis Thesmophoriazusis, versus transtulit ex Comœdia Cratini, cui nomen Empiprameni, id est, exusti. Plato autem Comicus & Aristophanes in Dædalo à se inuicem surripiunt. Cocalum aūt qui aptè factus fuerat à Poëta Aristophane, Comicus Philemon, cùm eum paululum immutasset, egit in Comœdia quæ ὑποβολιμαῖος inscribitur, id est, suppositus. Hesiodi autem carmina cùm in solutam transmutassent orationem, ediderunt tanquam sua, Eumelus & Acusilaus historiographi. A' Melesagora autem est suffuratus Gorgias Leontinus, & Eudemus Naxius historici, & præterea Bion Proconesius, qui etiam veteris Cadmi res gestas transcripsit, eas in summam redigens: & Amphilochus & Aristocles, & Leandrius, & Anaximenes, & Hellanicus, & Hecatæus, & Androtion, & Philochorus. Dieuchidas autem Megaricus, orationis principium traduxit ex Hellanici Deucalionia. Taceo Heraclitum Ephesium, qui plurima accepit ab Orpheo. A' Pythagora autem immortalem esse animam auulsit Plato: illi verò ab Ægyptijs. Multi quoq; Platonici scripta literis man-

dauere, quibus ostendunt, vt in principio diximus, & Stoicos, & Aristotelem plurima & præcipua dogmata sumpsisse à Platone. Quinetiam Epicurus à Democrito principalia decreta surripuit. Atq; hæc quidem ita se habeant: vita enim me deficiet si velim sigillatim persequi Græcorum furta quę à nimio sui amore profecta, & quẽ admodum pulcherrimorum quæ sunt apud ipsos decretorum sibi vendicant inuentionem, quam à nobis acceperunt. Iam verò non solùm conuincuntur à barbaris dogmata surripere, sed ea etiam imitari quæ apud nos diuina virtute ab ijs qui sanctè vixerunt dum nostri curam gerunt, fiebant admirabiliter & præter opinionem, ea tanquam Græcas fabulas prodigiosè narrãtes. Atq; eos quidem rogabimus, veráne ea quæ scribunt esse dicant, an falsa. Sed falsa quidem non dicent, non enim seipsos sua quidem sponte maximè damnabunt stultitiæ, quòd falsa scribant, sed vera esse confitebuntur. Et quomodo eis adhuc videntur incredibilia, quæ per Mosen & alios Prophetas facta sunt miracula? Omnium enim hominum curam gerẽs Deus omnipotens, alios quidem pręceptis, alios verò minis, & nonnullos quidem signis prodigiosis, aliquos verò benignis promissis conuertit ad salutẽ. Verumenimuero cùm diuturna siccitas Gręciam aliquando affligeret, & fructuum esset maxima sterilitas, qui remanserant, inquiunt, propter famem Delphos supplices venientes, rogarunt Pythiam quomodo liberarentur à tam graui calamitate. Ea respondit, calamitatis vnum esse remedium si vterentur precib. Æaci. Eis ergo morem gerens Æacus, cùm in Græcum montem ascendisset, mundis in cælum extensis manibus communem Deum inuocans precatus est vt afflictæ misereretur Græciæ. Simulac autem cœpit precari, felix statim tonitru insonuit, & totus aër circumcirca fuit obductus nubibus. Vehemẽtes autem & continui imbres erumpẽtes totam impleuere regionem. Hinc efficitur abundans & copiosa fructuum feracitas, Æaci, quæ agriculturæ instar fuere, impetrata precibus. Et inuocauit, inquit, Samuel Dominum, & dedit Dominus voces & pluuiam in die messis. Vides vnũ esse Deum qui per subiectas potestates pluit super iustos & iniustos. Plena est autem nostra Scriptura Dei exaudientis, & vnamquanq; efficientis petitionem, per iustorum orationes. Rursus narrant Græci, quòd cùm Etesiæ venti aliquando deficerent, Aristæus in Cæo sacrificarit Ioui Isthmio: maxima enim erat calamitas: qui cùm ardore omnia cõflagrarent, & venti non spirarent qui solebant fructus refrigerare, eos facilè reuocauit. Delphi autem, cùm Xerxes bello inuasisset Græciam, dixisset autem Pythia,

*Placate ô Delphi uentos, meliusq; se habebit,*

altari posito, & facto ventis sacrificio, eos habuere adiutores. Nam cùm circa Sæpiadem promontoriũ spirassent vehementer, Persicę classis vniuersum apparatum contriuere. Empedocles quoq; Agrigentinus κωλυσανέμας, id est, venti prohibitor, fuit cognominatus. Dicitur certè quòd cùm ex monte Agrigenti grauis quidam aliquando spiraret ventus, qui non solùm morbos importabat incolis, sed eorũ etiam vxoribus erat causa sterilitatis, fecisse vt is cessaret. Quocirca ipse quoque scribit in versibus:

*Indefessorum uentorum flamina tolles,*
*Qui spirando hominum perdentes arua fatigant.* Et rursus:
*Cumq; uoles, eadem tu rursus flamina pones.*

Dicebatq; aliquos quidem eum sequi qui opus habebãt diuinationibus, alios verò qui grauibus morbis diu cruciati fuerant. Atq; iustos quidem & curationes & signa & miracula efficere, ex nostris credidere scripturis. Si enim aliquæ virtutes seu potestates mouent ventos, & imbres distribuunt, audiãt Psalmographum: Quàm dilecta tabernacula tua Domine virtutum. Is est virtutum & principatuum & potestatum Dominus, de quo dicit Moses: vt cum eo simus, & circũcidite durum cor vestrum, & ceruicem vestram non amplius indurabitis. Dominus enim Dominorum & Deus Deorum, Deus magnus & fortis, & quæ deinceps consequuntur. Et Esaias: Tollite, inquit, in altum oculos vestros, & videte quis hæc omnia fecerit. Porrò autem dicũt aliqui pestilentias, & grandines, & procellas, & quæ sunt his similia, nõ fieri ex sola materiali egestate ordinis, sed solere etiã fieri per aliquam iram dæmonum vel angelorum non bonorum. Iam verò aiunt magos qui sunt Cleonis, obseruantes sublimia nubium quæ erant grandines eiaculaturæ, canticis & sacrificijs iram depellere. Quòd si fortè eis quandoq; defuerit animal, suo cruentato digito sacrificant. Mantinica quoque Diotima, Atheniensibus qui sacrificauerãt ante pestilentiam, effecit vt morbus differretur decem annis. Sicut etiam Epimenidis Cretensis sacrificia, ipsis Atheni-

Marginalia: A (line 1); B (beside "Deum inuocans"); 1.Reg.12. (beside "star fuere"); C (beside "Indefessorum"); Psal.83. (beside "& miracula"); Deut.10. (beside "ceruicem vestram").

A Atheniensibus in tantum tempus Persicum bellum distulerunt. Existimant autẽ nihil referre an has animas Deos dicamus, an Angelos. Iam verò qui sunt eorum doctrinæ periti in multis templis tanquam Deorũ statuas, omnes ferè mortuorũ loculos posuere, dæmones quidem vocantes eorũ animas, docentes eas coli ab hominibus, vt quæ diuina prouidentia propter vitę puritatẽ potestatẽ acceperint, vt ad hominum ministeriũ obirent locum qui est circa terrã. Sciebant enim aliquas animas ex natura teneri corpore. Sed de his quidẽ cùm agetur de Angelis, procedente scriptura suo tempore differemus. Democritus aũt ex cæli & sublimiũ rerum obseruatione multa prædicens, cognominatus fuit Sapientia. Cùm itaq; eum benignè accepisset frater Damasus, ex quibusdã stellis capta coniectura, prædixit futuram multã pluuiam: atq; illi quidem ei credentes, fructus collegerunt: nam cùm esset ęstas adhuc, erant in areis: alij autem omnia amiserunt, cùm maxima & inopinata ingruisset pluuia. Quomodo autem sunt Græci adhuc non credituri apparuisse Deum in monte Sina, quo tempore ardebat quidem ignis nihil consumẽs ex ijs quæ nascebantur in monte: & tubarum ferebatur sonitus, qui absq; vllis inspirabatur instrumentis? Ille enim Dei in montẽ descensus, est aduentus diuinę potestatis quæ peruadit omnẽ mundum, & prædicat lucem ad quam nõ datur aditus. Talis enim est allegoria quę est scripturæ conueniens. Cęterùm visus est ignis, vt dicit Aristobulus, cùm totus populus, qui erat non minus quàm centum myriadum, præter pueros & ætate minores, circa montem esset congregatus: esset autem montis ambitus non minor quàm Exod. 20.

B quinq; dierum. Per totum ergo locum visionis, eis omnibus in orbem vtpote castrametantibus, visus est ignis ardens circumcirca. Quo fit vt descensus minimè fuerit loco terminatus: Deus enim est vbiq;. Dicunt autem ij quoq; qui conscripserunt historias, in Britannia insula esse quandam speluncã monti subiectam, in fastigio autẽ hiatũ: cùm autem ventus incidit in speluncã, & in fossæ sinu allidit ur, audiri sonum cymbalorũ quæ numerosè pulsantur. Sæpe aũt cùm in syluis quoq; mouẽtur folia, per repentinum & densum spiritus impetũ, editur sonus auium cantui similis. Cæterùm ij qui composuere Persica, in locis quæ in Magorum regione sunt eminentiora, referunt tres montes in longo campo deinceps esse positos: eos autem qui locũ transmittunt, cùm ad primum quidem montem peruenerint, audire vocem confusam, veluti clamantium non paucorum millium hominum, perinde ac si essent in acie: ad medium autem cùm venerint, maiorem simul & euidentiorem strepitum apprehendere: tandem autem audire in fine canentes pæana, perinde ac qui vicissent. Cuiusuis autem soni causa est, vt existimo, & locorum leuitas & concauitas. Reiectus itaq; qui ingressus est spiritus, in eundem locum procedens, sonat vehemẽtius. Et hęc quidem ita se habent. Deus autem omnipotens, etsi nihil sit ei subiectum, potest vocem & visionem auditu ingenerare, suam indicans maiestatem, præter ea quę solita sunt naturalem habere consequentiam, ad conuertendam eam quæ nondum credit animã, & accipiendum id quod datur præceptũ. Cùm autem esset nubes & mons altus, quomodo non poterat diuersus exaudiri sonitus, dum per operantem

C causam moueretur spiritus? Quamobrẽ dicit etiam Propheta: Vocem verborum vos audijstis, & similitudinẽ non vidistis. Vides quemadmodum vox Dominica, Verbũ expers figuræ, Verbi virtus, Verbũ Domini lucidum, veritas quæ de cælo venit desuper ad congregationẽ ecclesię, operabatur per lucidum continens ministeriũ. Inuenerimus aũt aliud quoq; testimonium, ad confirmãdum quòd, cùm præstantissimi Philosophi pulcherrima ex ijs quæ sunt apud nos dogmata sibi vendicauerint, ijs se veluti iactent & glorientur: nempe quòd ex alijs quoq; barbaris quædam decerpserint quę conferunt ad vnamquanque sectam, maximè autem ex Ægyptijs, cùm alia, tum dogma dè migratione animæ in corpora. Ægyptij enim quandam suam persequuntur philosophiam. Hoc autem maximè ostendunt sacræ eorum cæremoniæ. Primus enim procedit cantor, vnum aliquod afferens ex symbolis musicæ. Eum dicunt oportere accipere duos libros ex libris Mercurij, ex quibus vnus quidem continet hymnos Deorum, alter verò rationes vitæ regiæ. Post cantorem verò procedit horoscopus, qui in manu habet horologiũ & palmã, symbola & signa Astrologiæ. Eum libros Mercurij qui tractant de Astrologia, qui quidem sunt quatuor numero, oportet semper habere in ore. Ex quibus vnus quidem est de ordine inerrantium quæ videntur astrorum, alius verò de coitu & illuminatione Solis & Lunæ, reliqui de eorum ortu. Deinceps autem progreditur ἱερογραμματεύς id est, scriba sacrorum, pennas habens in capite, & librum in manibus & regulam, in qua est & atramentum Deut. 5.

ad scribendum,& iuncus quo scribunt. Hunc oportet scire & ea quæ vocantur hieroglyphica,& mundi descriptionem,& geographiam & ordinem Solis & Lunæ, & quinq; errantiũ,Ægyptiq; chorographiam & Nili descriptionẽ,& descriptionem instrumentorũ ornamẽtorumq; sacrorum, & locorũ eis consecratorũ, mensurasq;, & ea quæ sunt in sacris vtilia. Deinde post eos qui prius dicti sunt, sequitur qui dicitur στολιστὴς,id est,ornator,qui habet & iustitiæ cubitũ,& calicem ad libandũ.Is scit omnia quę vocantur παιδευτικὰ,id est,ad disciplinã & institutionẽ pertinẽtia, & μοσχοσφραγιστικὰ, hoc est,pertinentia ad ritum mactandorũ vitulorum. Sunt autem decem quæ pertinent ad honorem eorum qui sunt apud eos Deorum, & Ægyptiam continent religionem:nempe sacrificia,primitiæ,hymni,preces,pompæ,dies festi,& quæ sunt his similia.Post omnes exit Propheta, qui in sinu apertè gestat hydriam: quem sequuntur qui emissos panes portant.Is, vt qui sit sacrorum pręfectus, ediscit libros decem qui vocantur Sacerdotales:continent autem de legibus,& Dijs,& vniuersa Sacerdotum disciplina. Propheta enim apud Ægyptios præest etiam distributioni vectigalium.Sũt ergo quadraginta duo libri Mercurij valde necessarij, ex quibus triginta quidem & sex, qui continẽt omnem Ægyptiorum philosophiam, ediscunt ij qui antè dicti sunt:reliquos autem sex παστοφόροι, id est,qui gestant pallium,vt qui pertineant ad medicinam,nempe de constructione corporis,& de morbis, & de instrumentis,& medicamentis,& de oculis, & postremò de muliebribus. Et res quidem Ægyptiorum,vt paucis dicam,sunt eiusmodi. Indorum autem philosophia fuit ipsa quoque valde celebrata.Alexãder quidem certè Macedo, cùm Indorum decem cepisset B
Gymnosophistas qui videbantur esse optimi & præstantissimi,sermonisq; breuitate cæteris antecellere, quæstiones eis proposuit, eum qui non aptè responderet se esse de medio sublaturum minatus. Et cùm ex ijs quidem maiorem natu respondere iussisset,is quidẽ primus examinatus,vtros existimet esse plures,viuósne an mortuos: viuos dixit, non esse enim mortuos. Secundus autẽ, terrá ne an mare maiores aleret beluas:terra, inquit,nam eius quoq; pars est mare. Tertius autẽ,quódnam est animantiũ callidissimum,quod hucusq; non fuit cognitum:Homo,inquit. Quartus autem rogatus,quánam ratione moti,Sabba, qui erat eorũ princeps, impulissent ad defectionem:respondit,volentes eum vel honestè viuere,vel malè mori. Quintus autem rogatus,vtrum existimet fuisse priorem, diem an noctem:vno die, inquit. Dubiarũ enim quęstionum necesse est etiã esse dubias dubitationes. Sextus autem rogatus,quánam ratione fieri posset vt quis maximè diligeretur:si cùm sit,inquit, potentissimus,non fuerit terribilis. Septimus autem rogatus,quomodo ex hominibus fieret Deus aliquis:si ea,inquit,fecerit quę fieri non potest vt homo faciat. Octauus aũt interrogatus,quid sit fortius,vita an mors:vita,inquit,quę tam multa mala ferat. Nonus aũt examinatus,quousq; bene sit homini viuere: quousq;,inquit, non existimet melius esse mori quàm viuere. Cùm autem iussisset Alexander vt decimus quoq; diceret aliquid,erat enim Iudex,alius,inquit, alio dixit deterius. Cùm autem dixisset Alexander:ergo tu quoq; morieris primus,qui hæc iudicas. Et quomodo,inquit, ô Rex, verus fueris, qui dixisti te primùm eum esse interfecturum qui pessimè respon C
disset? Et quòd totius quidem scripturæ Græci dicti sint fures,satis,vt opinor, pluribus ostensum est indicijs. Quòd aũt Deum norunt,nõ per agnitionem, sed per qua-
περίφασιν. lemcunq; eius manifestationem,Græcorum præstantissimi,dicit Petrus in prædicatione: Cognoscite ergo vnum esse Deum qui fecit omnium principium, & finis habet potestatem, & qui non cadit sub aspectum, qui omnia videt: qui cùm capi non possit,omnia capit,nullius indigẽs,cuius indigent omnia,& per quem sunt omnia, qui comprehendi non potest,æternus,ab interitu alienus,non factus: qui omnia fecit verbo virtutis suæ,scripturæ,inquam,cognoscẽtis,hoc est, filij. Deinde subiungit:Hunc Deum colite, non vt Græci, vtpote quòd eundem quem nos, colunt Deũ qui sunt viri probi apud Græcos, sed non perfecta & absoluta agnitione, vt qui à filio datam non didicerint traditionẽ. Non ergo dixit,Ne colatis Deũ quẽ Græci, sed non colatis vt Græci: Dei cultus modum mutans, non autem alium annuncians. Quid autem sit,Non colatis vt Gręci,ipse Petrus explanabit,subiungens: Quoniam dum feruntur ignorantia, & Deum nesciunt vt nos perfecta cognitione, cùm potestate quam dedit eis ad vsum,formassent ligna & lapides,æs & ferrum,aurũ & argẽtum, ex ipsorum materia & vsu, & quæ substantiæ serua sunt excitassent, ea colunt: & quæ eis dedit Deus in cibũ,volucres aëris,& maris natatilia,& terræ serpentes,& feras, cum agri pecoribus quadrupedibus, mustelasque & mures, feles & canes &

simias,

A simias, & proprios cibos hominibus sacrificant, & mortua mortuis offerentes tanquam dijs, in Deum sunt ingrati, per hæc ipsum esse negantes. Et quòd ita feratur, vtpote quòd nosipsi & Græci eundem Deum nouerimus, sed non similiter, sic rursus inferet hoc modo: Neq; colite vt Iudæi: etenim illi soli se Deum nosse putantes, nesciunt se adorare Angelos & Archangelos, mensem & Lunam: & nisi Luna apparuerit, non agunt sabbatum quod dicitur primum, neq; agunt neomeniam, neque azyma, neq; festum, neq; magnũ diem. Deinde eius quod quæritur infert colophonem: Quare vos quoq; sanctè & iustè quæ vobis tradimus discentes, seruate, nouè Deum per Christum colentes. Inuenimus enim in Scripturis, sicut dicit Dominus: Ecce facio vobis testamentum nouum, non vt feci patribus vestris in monte Choreb. Nouũ dedit nobis testamentum: quæ enim sunt Iudæorum & Græcorum, sunt vetera. Nos aũt qui nouè ipsum tertio genere colimus, sumus Christiani. Apertè enim, vt arbitror, ostendit vnum & solum Deum, à Græcis quidem gentiliter, à Iudæis aũt Iudaicè: nouè aũt à nobis cognosci & spiritaliter. Præterea autem ostendit quòd idem Deus suppeditauit vtrunq; testamentum, qui etiam Græcis dedit Græcam philosophiã, per quam omnipotens à Græcis gloria afficitur. Est autem hinc quoq; manifestum. Ex Græca quidem certè disciplina, & ex Regali, in vnum genus populi cui salus datur, congregantur qui fidem admittunt, non tempore diuisis tribus populis, ne quis triplices existimet naturas, sed diuersis eruditis testamentis, cùm sint vnius Domini, vnius Domini verbo. Nam quòd quomodo Iudæos Deus saluos esse voluit, dans

B eis Prophetas: ita etiam Græcorum spectatissimos propriæ suæ linguæ Prophetas excitatos, prout poterant capere Dei beneficentiam, à vulgo secreuit, præter Petri prædicationem, declarabit Paulus apost. dicens: Libros quoq; Græcos sumite, agnoscite Sibyllam, quomodo vnum Deum significet, & ea quæ sunt futura: & Hystaspẽ sumite & legite, & inuenietis Dei filiũ multò clarius & apertius esse scriptũ, & quẽadmodum aduersus Christum multi Reges instruent aciem, qui eum habent odio, & eos qui nomen eius gestant, & eius fideles, & eius tolerantiam & aduentum. Deinde vno verbo nos interrogat: Totus autem mundus, & quæ sunt in mundo, cuius sunt, nónne Dei? Propterea dicit Petrus dominum dixisse Apostolis: Si quis ergo velit ex Israël duci pœnitentia, & propter nomen meum credere in Deum, remittentur ei peccata post duodecim annos. Egredimini in mundum, ne quis dicat, Non audiuimus. Sed vt in tempore nunc venit prædicatio, ita in tempore data quidem est lex & Prophetæ barbaris: philosophia autem Græcis, aures assuefaciens ad prædicationem. Dicit itaq; Dominus qui saluum fecit Israël: Tempore accepto exaudiui te, & in die salutis tibi dedi auxilium: dedi te in testamentum gentium, vt inhabitares terram, & possideres hæreditatem, dicens ijs qui sunt in vinculis: Egredimini, & vt reuelareris ijs qui sunt in tenebris. Si enim vincti quidem sunt Iudæi, quibus etiam dixit Dominus, Egredimini ex vinculis qui vultis, dicens eos qui sua sponte sunt vincti, & qui onera, inquit, toleratu difficilia in se per humanam susceperunt impositionem, clarum est quòd qui sunt in tenebris, ij sunt qui habent principalem animæ

*Hæc præter scripturas.*

*Esa.49.*

C partem defossam in cultu simulachrorum. Nam ijs quidem qui erant iusti ex lege, fides deerat. Et ideo cùm eos curaret Dominus, dicebat, fides tua te saluum fecit. Iis autem qui erant iusti ex philosophia, non solùm opus erat fide in Dominum, sed etiam vt discederent à cultu simulachrorum. Iam verò reuelata eis veritate, ipsi quoq; pœnitentia ducti sunt propter ea quæ fecerant. Quamobrem prædicauit Dominus ijs quoque qui erãt apud inferos. Dicit quidem certè Scriptura: Dicit infernus perditioni, eius quidem speciem non vidimus, eius autem vocem audiuimus. Non locus vtique voce accepta, dicit ea quæ prius dicta sunt, sed ij qui sunt collocati apud inferos, & seipsos tradiderunt ad exitium, tanquam ex naue aliqua se sua sponte in mare proijcientes. Ipsi ergo sunt qui diuinam audierunt virtutem & vocem. Nam quis sanæ mentis, & iustorum & peccatorum animas esse existimauerit in vna condemnatione iniustitiæ, maculam infundens prouidentiæ? Quid verò, an non significant Dominum annunciasse Euangelium, & ijs qui perierant in diluuio, vel potius vincti fuerant, & ijs qui in præsidio continebantur & custodia? Ostensum est autem in secundo quoq; stromate, Apostolos consequenter Domino, ijs quoq; qui erant apud inferos annunciasse Euangeliũ. Oportebat enim, vt existimo, sicut hic, ita illic quoq;, optimos ac præstantissimos discipulos esse magistri imitatores, vt vnus quidem, eos qui erant ex Hebræis, alij verò gentes deducerent ad conuersionem, hoc est, eos qui in iustitia quæ est ex lege & ex philosophia vixerant quidem, sed non

*Iob 28.*

perfectè,sed cum errore & prolapsione vitam transegerant. Hoc enim diuinum decebat cōsiliū & prouidentiā,vt qui in iustitia maiorē habuere dignitatem & merita, A
ὑπερηγμένως. & præ cæteris egregiè vixerunt,& eorū quæ peccarant ducti sunt pœnitētia,etiamsi sint in alio loco, cùm extra controuersiam sint in eorum numero qui sunt Dei omnipotentis,salui fierent per propriam vniuscuiusq; cognitionem. Operatur autem, vt existimo,Seruator,quandoquidem eius est opus seruare & saluum facere: quod quidem certè fecit,vt qui eos qui in ipsum voluerint credere, per prædicationem, vbicunq; essent,traxerit ad salutē. Si ergo Dominus nulla alia de causa descēdit ad inferos,quàm vt annūciaret Euangeliū,sicut descēdit: aut descendit vt annunciaret omnibus,aut solis Hebræis.Atq; si omnib.quidem, salui erunt omnes qui crediderint, etiamsi sint ex gentibus, cùm iam illic confessi fuerint. Sunt enim salutares,& quæ erudiunt,Dei castigationes, adducentes ad conuersionem, & potius pœnitentiam eligentes quàm mortem:idq; cùm possint animæ purius perspicere, quæ sunt liberæ à corporibus,etiamsi obscurentur vitijs & perturbationibus,eò quòd non se amplius eis opponat & eas impediat caruncula. Sin autem Iudæis solùm annunciauit Euangelium, quibus defuit ea quæ est per Seruatorem agnitio & fides, clarum est vtiq; quòd cùm apud Deum nullus sit personarū respectus,Apostoli quoq; sicut hîc, ita etiam illic, annunciarunt Euangelium ijs qui ex gentibus erant apti ad conuersionem.Et rectè dictum est à Pastore:Descenderunt ergo eorum in aquam,sed hi quidem descenderunt viuentes, & viuentes ascenderunt: illi autem qui prius dormierant,mortui descēderunt,viui autem ascenderunt. Iam verò dicit etiam Euangeliū, B
surrexisse multa corpora eorum qui dormierant, vt qui videlicet translati essent ad meliorem locum.Fuit ergo generalis quidam motus & translatio per Seruatoris dispensationem.Iustus ergo non differt à iusto, quatenus est iustus, siue is fuerit ex lege, siue Græcus:non enim Iudæorum solùm,sed etiam omnium hominum est Deus Dominus, propinquius autem pater eorum qui cognouerunt. Si enim honestè viuere, est etiam legitimè viuere:& vitam agere rationi consentaneam,est viuere ex lege: qui autem rectè vixerunt ante legem, in fidem sunt reputati,& iusti sunt iudicati:clarum est quòd ij etiam qui cùm extra legem essent,rectè vixerunt per vocis proprietatem, etiamsi in inferis essent & in custodia, exaudita voce Domini, vel ipsa per se,vel etiam quæ operabatur per Apostolos,mox cōuersi fuerint & crediderint. Meminimus Dominum esse Dei virtutem,& fieri non posse vt virtus vnquam fuerit imbecilla. Sic existimo ostendi bonum quidem esse Deum: potentem verò Dominum salutem dare cum iustitia & æqualitate in eos qui conuertuntur, siue hîc, siue etiam alibi.Non huc enim solùm peruenit virtus operatrix, sed est vbiq;, & semper operatur.Iam verò in Petri prædicatione dicit Dominus ad discipulos post resurrectionem:Elegi vos duodecim discipulos, iudicans esse me dignos, quos voluit Dominus,& fideles ratus esse Apostolos,mittens in mundum ad annunciandum Euangelium hominibus qui sunt in orbe terrarum, vt cognoscant vnum esse Deum, per meam Christi fidem futura significantes,vt qui audierint & crediderint, salui fiant. Qui autem nō crediderint, cùm audiuerint ferant testimonium, vt qui non possint C
se excusare dicendo,non audiuimus. Quid ergo,nō etiam apud inferos fuit eadem œconomia ac dispensatio, vt illic quoq; omnes animæ audita prædicatione, aut ostendant pœnitentiam, aut propterea quòd non crediderunt, iustum fateantur esse supplicium? Esset autem non leuis iniquitatis, eos qui ante aduentum Domini excessissent, cùm nec eis fuisset annunciatum Euangelium, nec in credendo vel non credendo vlla posset in eos culpa conferri,vel salutem assequi,vel puniri.Neq; enim fas est illos quidē indicta causa fuisse condemnatos: solis aūt eis qui fuerunt post eius aduentum frui diuina licuisse iustitia. Omnibus aūt animis ratione præditis desuper dictum est:Quæcunq; vestrûm fecit aliquis in ignoratione, Deum apertè non cognoscens, si ea agnoscēs ductus fuerit pœnitentia, ei omnia peccata remittentur.
Deut.30. Ecce enim,inquit,posui ante faciem vestram mortem & vitam,vt eligatis vitam: ad comparationem electionis dicens Deus posuisse, non ambo fecisse. Et in alia dicit
Esa.1. scriptura:Si me audieritis & volueritis,bona terræ comedetis:sin autem me non audieritis,neq; volueritis,gladius comedet vos:os enim Domini hæc locutū est. Rursus autem apertè Dauid,vel potius Dominus ex persona sancti (est autem is vnus à mundo condito,quicunq; diuersis temporibus per fidem fuit & erit saluus)Lætatū
Psal.15. est cor meum & exultauit lingua mea.Præterea autem caro quoq; mea in spe habitabit,inquit.Quoniam non derelinques animam meam in inferno, neq; dabis sanctū
tuum

A tuum videre corruptionem. Notas fecisti mihi vias vitæ. Implebis me lætitia cum vultu tuo. Quomodo ergo preciosus est populus Domino, ita populus sanctus omnis est cum Iudæo, etiam is qui ex gentibus conuertitur, qui prædicabatur proselytus. Meritò ergo dicit scriptura bouem & vrsam simul futuros. Nam bos quidem di- *Esa. 11.* ctus est Iudæus, ex animali quod à lege sub iugo iudicatũ est mundum, quandoquidem bos & fissam habet vngulam, & ruminat. Gẽtilis autem significatur per vrsam, quæ est animal immundum & agreste. Parit autem animal carnem informem, quam lingua sola effingit in similitudinem animalis. Verbo enim formatur ad hoc, vt ex vita ferina mansuescat, qui conuertitur ex gentibus. Iam aũt mansuefactus, ipse quoq; vt bos sanctificatur. Iam verò dicit Propheta: Sirenes me benedicent & filiæ passerũ, *Esa. 43.* & omnes bestiæ agri. Ab immundis animantibus bestiæ agri cognoscuntur, hoc est, mundi: quoniam eos qui in fidem sunt agrestes, & vita sordidi, nec ea quæ est ex lege iustitia purgati, appellat feras. Mutati autem ex eo quod est esse feras, per fidem dominicam fiunt homines Dei, ex eo quòd velint mutari, primùm ad hoc quòd fiant proficientes. Alios enim adhortatur Dominus, alijs verò qui iam sunt aggressi, & manum præbet & trahit. Non enim personam respicit & reueretur qui est omniũ *Sap. 6.* dominus: neq; curabit magnitudinem, quoniam ipse fecit magnum & paruum, & similiter omnibus prouidet & omnium curam gerit. Dauid quoq; dicit: Sin autem *Psalm. 9.* infixæ sunt etiam gentes in interitu quem fecerunt. In hoc laqueo quem absconderunt comprehensus est pes eorum. Sed fuit Dominus refugium pauperi, adiutor in

B opportunitate & in afflictione. Opportunè ergo annunciatum est Euangelium ijs qui sunt in afflictione. Et ideo dicit: Annunciate in gentibus studia eius, ne iniustè iudicentur. Si ergo ijs qui erant in carne, propterea annunciauit Euangelium, ne iniustè condemnentur: quomodo non ijs etiam qui excesserunt ante eius aduentũ, propter eandem causam annunciauit? Iustus enim Dominus, & iustitiam dilexit, rectitudinem vidit vultus eius. Qui autem diligit iniustitiam, odio habet animam suam. *Psal. 10.* Si ergo in diluuio perijt omnis caro peccatrix, eis castigatione redeunte in disciplinam, primùm quidem voluntatem Dei, quæ vim habet erudiendi & operandi, credendum est dare salutem ijs qui conuertuntur. Deinde etiam anima quæ est res longè subtilior, minimè potuerit affici ab aqua quæ est crassior, vt quæ propter subtilitatem & simplicitatem minimè superetur, quæ etiam appellatur incorporea. Quòd autem crassum, à peccato fuerit incrassatũ, hoc vnà cum spiritu carnali abijcitur, qui concupiscit aduersus animam. Iam verò eorum quoq; qui cõmunionẽ inducunt & cõmendant, princeps Valẽtinus, in ea quę est de amicis homilia, scribit ad verbum: Multa ex ijs quæ scripta sunt in libris publicis, inueniuntur scripta in Dei ecclesia. Hæc enim sunt inania verba quæ à corde proficiscuntur. Lex quæ scripta est in corde, ea est populus dilecti, qui diligitur, & ipsum diligit. Libros autem communes dicit, vel scripturas Iudaicas, vel scripturas philosophorũ: communem aũt facit veritatem. Isidorus quoq; Basilidis simul filius & discipulus, in primo libro expositionum Prophetæ Parchor, ipse quoq; scribit his verbis: Dicunt autem Attici quædam fuisse

C significata Socrati, dæmone eum consequente. Dicit etiam Aristoteles, omnes homines vti dæmonibus, qui eos sequuntur eo tempore quo migrant in corpus, propheticam hanc accipiens doctrinam, & eam ponens in suis libris, non confitens vnde hanc sumpsisset orationem. Et rursus in secundo eiusdem operis sic scribit: Nec existimet aliquis, quod dicimus esse proprium electorum, hoc fuisse prædictum ab aliquibus Philosophis. Non est enim hoc eorũ inuentũ, sed cùm sumpsissent à Prophetis, id tribuerunt ei qui est sapiens ex eorum sententia. Et rursus in eodem: Mihi enim videtur eos qui sibi philosophiam vendicant, vt discant quid sit quercus alata, & varium quod in ea est pallium, quæcunq; Pherecydes allegoricè dixit in Theologia, sumens ex prophetia Cham. Fundamentum autem, vt olim adnotauimus, non dicimus eam quæ in vnaquaque hęresi suscipitur vitæ institutionem, sed id quod verè est philosophia, rectè artificiosam sapientiam, quæ præbet experientiam eorum quæ sunt in vita. Sapientiam autem, solidam rerum diuinarum & humanarum cognitionem, firmam quandam & stabilem, & quæ non potest excidere, comprehensionem, & quæ comprehendit ea quæ sunt, & præterita, & futura: quam nos docuit per suam præsentiam & per Prophetas Dominus, estque eiusmodi vt non possit excidere, vt quæ à Verbo sit tradita. Ea quoque omnino vera est voluntate, vt quæ sit cognita per filium: & partim quidem est æterna, partim autem tempori vtilis: & partim quidem vna est & eadem, partim autem multæ & indifferentes: & par-

tim quidem est absq; vllo motu patibili, partim autem cum patibili appetitione: & partim quidem perfecta, partim verò indigens. Hanc ergo sapientiam concupiscit philosophia, animæ & verbi rectitudinis, & vitæ puritatis, quæ est beneuolè affecta in sapientiam, & omnia facit vt eam consequatur. Philosophi autem apud nos quidem dicuntur qui amant sapientiam, quæ est omnium opifex & magistra, hoc est, filij Dei cognitionem. Apud Græcos autem dicuntur Philosophi, qui disputationes de virtute suscipiunt. Fuerit autem Philosophia, quæ in vnaquaq; hæresi (de ijs loquor quæ sunt in philosophia) ea quæ reprehendi non possunt, decreta cum vita cõgruente in vnam coacta electionem, quæ ipsa quoq; à barbara diuinitùs data surrepta gratia, Græca ornata sunt eloquentia. Nam alia quidem sunt suffurati, alia verò malè audierunt. In alijs autem, aliqua quidem dixerunt imitantes, sed ea non reddidere perfecta: aliqua autem humana coniectura & ratiocinatione, in quibus etiam labuntur. Arbitrantur autem se isti quidem assequi veritatem perfectè, vt nos autem ipsos comprehendimus, aliqua ex parte: nihil certè amplius norunt quàm hunc mũdum. Quanquam versatur Geometria in mensuris, magnitudinibus, & figuris, per eam quæ fit in planis descriptionem, & pictura totum locum opticum, quem vocãt perspectiuum, videtur assumere in ijs quæ adumbrantur. Hæc autem falsò describit visum, artificiosè vtens signis quæ fiunt per applicationem linearum visus. Hinc cõseruantur ὑπεροψίαι, id est, eminentes visiones, & hypotheses, hoc est, visiones inferiores, & φάσεις, hoc est visa. Et videntur quidem alia eminere, alia verò subsidere: aliqua verò, aliquo alio modo visione apprehendi in loco læui & æquabili. Ita autem Philosophi quoq; instar picturæ imitantur veritatem. φιλαυτία autem, hoc est nimius amor sui, est semper quibuslibet causa peccatorum omnium. Quocirca non oportet eligendo & expetendo gloriam ab hominibus, esse nimium sui amantem, sed Deũ diligendo esse sanctum cum prudentia. Si quis ergo vtatur quidem singularibus, tanquã vniuersis ac generalibus, & id quod seruit habeat pro eo quod dominatur, à veritate excidit, non intelligens id quod à Dauid dictum est per confessionem: Terram seu cinerem tanquam panem mãducabam. *Psal.101.* Nimius autem sui amor, & vana opinio ac persuasio, est ei terra, & error. Quod si ita est, est ex disciplina cognitio & scientia: si est autem disciplina, necesse est quærere magistrum. Nam Cleanthes quidem sibi magistrum adscribit Zenonem, & Theophrastus Aristotelem, & Metrodorus Epicurum, & Plato Socratem. Sed etsi venero ad Pythagoram, & Pherecydem, & Thaletẽ, & primos sapientes, consisto quærens eorum magistrum. Et seu dixeris Ægyptios, seu Indos, seu Babylonios, seu magos ipsos, non cessabo eorum doctorem requirere. Porrò aũt te quoq; deduco ad primum ortum hominum, & illinc incipio quærere quis fuerit magister: nullus quidem ex hominibus, nondum enim didicerant. Sed nec aliquis ex Angelis: neq; enim quomodo significant Angeli quatenus Angeli, ita audiunt homines. Neq; enim quomodo sunt nobis aures, ita est illis lingua: neque instrumenta vocis quis dederit Angelis, labra, inquam, & quæ propter ea sita sunt, & guttur, & arteriam, & viscera, & spiritum, & aërem qui pulsatur. Multum autem abest vt Deus insonet sanctitate quæ adiri non potest, qui ipse quoque seperatus est ab archangelis. Iam verò angelos quoque accepimus didicisse veritatem, & qui eis subsunt principatus: ortum enim habuere. Restat ergo vt nos quoque ascendentes, eorum doctorem desideremus. *Ioan.1.* Quoniam autem vnum est ingenitum, nempe Deus omnipotens, vnum est etiam prægenitum, per quod omnia facta sunt, & sine ipso factũ est nihil. Vnus enim est reuera Deus, qui fecit principiũ vniuersorum, significans primogenitum filium, vt scribit Petrus, præclarè intelligẽs *Gen.1.* illud: In principio fecit Deus cælum & terram. Is autem dictus est sapientia ab omnibus Prophetis. *Heb.1.* Is est magister omnium quæ orta sunt, Dei consiliarius qui præsciuit *Matth.23.* omnia. Is autem ab alto, à prima mundi constitutione, multifariam multisq; modis & docuit & perficit. Vnde meritò dictum est: Ne dixeritis vobis magistrũ super terram. Vides vndénam ansas acceperit vera philosophia, etiam si lex sit imago & vmbra veritatis. Sed Græcorum nimius amor sui, quosdam homines prædicat doctores. Quomodo ergo ad Deum creatorem omnis recurrit paternitas, ita etiam ad Dominum eorum quæ bona sunt & honesta doctrina, & quæ iustificat, & quæ ad hoc deducit & fert opem. Si qui autem ex aliqua affectione semina veritatis quomodocunq; accepta non enutrierunt, sed terræ sterili & aridæ mandantes, ea herbis suffocarunt agrestibus, quomodo Pharisæi à lege declinarunt, doctrinas humanas inducẽtes, non est eorum causa magister, sed qui perperàm audire voluerunt. Qui aũt ex eis

credide-

A crediderunt & Domini aduentui & scripturarum declarationi, ij versantur in cognitione legis, sicut etiam philosophi, per doctrinam Domini perducuntur ad agnitionem veræ philosophiæ. Eloquia enim Domini eloquia casta, argentum ignitũ, pro- *Psal. 11.*
batum terræ, purgatum septuplum: aut quòd vt argẽtum sæpe purgatum probatur iustus, Domini nummus effectus, & qui regalem accepit characterem: aut quoniam Solomon quoq; dicit linguam iusti esse argentum ignitum, probatam autem & sapientem doctrinam, esse laudabilem & admittendam significans, quando sæpe terra fuerit expurgata, hoc est, quando anima cognitione prædita fuerit multis modis sanctificata, per abstinentiam à terrenis inflammationibus. Sanctificatur aũt corpus quoq; in quo habitat, cùm vt proprium dedicatur in sancti templi puritatẽ & synceritatẽ. Quæ est aũt in corpore primæ animæ prima purgatio, ea est abstinentia à malis, quã quidam existimant perfectionem ac cõsumationem, eaq; est, vt semel dicam, perfectio cõmunis Iudæi fidelis & Græci. Eius aũt qui est cognitione præditus, post eam quæ alijs lege decernitur perfectionem, iustitia procedit ad operationem beneficentiæ: & cui iustitiæ augmentum creuit ad beneficentiam, ei perfectio permanet in immutabili habitu beneficentiæ ad Dei similitudinem. Nam qui sunt quidem semen Abrahæ & serui Dei, ij sunt vocati. Filij autem Iacob, eius electi, qui supplantauerunt vitij operationem. Si ergo & ipsum Christum dicimus sapientiam, & eius operationem, eam quæ fit per Prophetas, per quam edisci potest traditio quæ est ex cognitione, vt ipse per præsentiã sanctos docuit Apostolos: sapiẽtia fuerit cognitio,
B vt quæ sit scientia & cõprehẽsio eorũ quę sunt, & futura sunt, & præterita, stabilis & firma, vt quæ à filio Dei sit tradita & reuelata. Atque si est quidẽ sapientis finis, contemplatio, eã quidem contemplatio quæ est adhuc philosophorum, diuinam appetit scientiam: nondum autem assequitur, nisi per disciplinam acceperit vocem propheticam sibi declaratam, per quam accipit quomodo se habent, habuerunt, & habitura sint, quæ sunt, quæ futura sunt, & prius fuerunt. Cognitio autem ipsa est, quæ per successionem ad paucos ex Apostolis absq; scriptis tradita peruenit. Hinc ergo cognitio seu sapientia exerceatur oportet ad contemplationis habitum æternũ, & in quem non cadit alteratio. Nam Paulus quoq; in Epistolis non videtur reprehendere philosophiam: sed eum qui est particeps altitudinis cognitionis, non vult amplius recurrere ad Græcam philosophiã, eam allegoricè vocans mundi elemẽta, vt quæ elementa quodammodo doceat, & sit veluti disciplina præcedens veritatem.
Quocirca ad Hebræos quoq; scribens qui à fide ad legem reflectebantur: An rursus, *Heb. 5.*
inquit, opus habetis vt vos doceam quæ nam sunt elementa initij eloquiorum Dei? & facti estis opus habentes lacte, & non solido cibo? Similiter autem ad Colossenses
quoq; qui conuertuntur ex Gręcis: Videte ne quis vos deprædetur per philosophiã *Col. 2.*
& inanem deceptionem, secundum traditionem hominum, secundum elementa
huius mundi, & non secundum Christum, * significans elementalem doctrinam re- ** Significãs.*
uerti ad philosophiam. Quòd si quis dicat, per hominum intelligentiam fuisse in- *Græcum ha-*
uentam à Græcis philosophiam: atqui inuenio scripturas dicentes intelligentiam *bet* δελιάζων,
C esse à Deo missam. Psalmographus quidem certè maximũ esse donum existimat in- *inescans: sed*
telligentiam, & petit dicens: Seruus tuus ego sum, fac vt sim intelligens. Nunquid *lego* δηλῶν,
autem multiplicem petẽs cognitionem, scribit Dauid, bonitatem & disciplinam & *id est, signifi-*
cognitionem docet me, quoniam mandatis tuis credidi? Testamenta esse principa- *cans.*
lia & maximæ authoritatis, est extra controuersiam, & dari præstantioribus. Dicit
quidem certè Psalmus de Deo: Nulli genti sic fecit, & iudicia sua non manifestauit *Psal. 147.*
eis. Illud autem, Non sic fecit, fecisse quidem significat, sed non sic. Illud ergo, Sic, positum est, vt fiat comparatio cum nostra excellẽtia. Poterat autem vtiq; Propheta dicere absolutè, Non fecit, absq; additamento huius, Sic. Quinetiam Petrus quoq; in
Actibus: In veritate comprehendo, inquit, quòd Dominus non acceptor personarũ, *Act. 10.*
sed in omni gente qui timet ipsum & operatur iustitiam, est ei acceptus. Non tẽpore ergo perfectum est vt Deus personas non respiceret, sed id fuit ab æterno. Neq; verò cœpit vnquam eius beneficentia: sed neq; circunscribitur locis vel vllis hominib.
Neq; enim singularis eius beneficentia: Aperite mihi, inquit, portas iustitiæ, in ipsas *Psal. 117.*
ingressus, confitebor Domino. Prophetæ autem dictum exponens Barnabas, infert: Cùm multæ portæ sint apertæ, quæ est in iustitia, ea est in Christo, in quam beati sunt omnes qui sunt ingressi. Eidem sententiæ adhæret illud quoque Propheti-
cum, Dominus super aquas multas, vtpote quòd non solùm testamenta diuersa, *Psal. 28.*
sed etiam diuersi modi doctrinæ sint ij, qui inter Græcos adducunt ad iustitiam,

& qui inter barbaros. Iam verò apertè quoque psallit Dauid, veritati ferens testimo- A
*Psal.9.* nium: Auertantur peccatores in infernum, omnes gẽtes qui obliuiscuntur Dei: obliuiscuntur scilicet eius cuius prius meminerant, & quẽ cognoscebant priusquã obliuiscerentur, eum iubent valere & amandant. Erat ergo quædam obscura Dei cognitio etiam apud gentes. Et hæc quidem ita se habeat. Oportet autem eum qui est cognitione præditus multa didicisse. Et quoniam dicunt Græci, cùm prior cœpisset Protagoras, paratã esse orationem quæ cuiuis orationi aduersetur, dici cõuenit etiã aduersus tales orationes. Dicit enim scriptura: Qui multa dicit, vicissim quoque audiet. Parabolam aũt Dñi quis intelliget, nisi sapiens & sciens, & qui diligit Dñm suũ? Sit ergo qui talis est, fidelis: sit eiusmodi vt possit explicare cognitionẽ, sit sapiẽs in verbis discernendis, sit in factis admirabilis, sit castus & mundus: eò enim debet esse magis humilis, quò videtur esse maior, dicit Clemens in epistola ad Corinth. Talis vt qui possit parere pręcepto: & aliquos quidẽ ex igne rapite, miseremini aũt eorũ qui discernuntur. Falx quidẽ certè facta est vt rami amputentur: sed implexos quoq; palmites in ea distinguimus, & spinas quę vitibus cohęrescunt excindimus, ad quas non potest accedi facilè. Hæc aũt omnia referuntur ad putãdas vites. Rursus homo factus est principaliter ad Dei cognitionem: sed & est Geometra, & agricola, & philosophatur, ex quibus vnũ quidem factum est ad viuendũ, alterũ verò ad bene viuendum, tertiũ ad ea meditanda quæ demõstrant. Porrò aũt illi qui dicunt philosophiã
*1.Cor.11.* esse profectam à diabolo, illud quoq; sciant, quòd scriptura dicit, diabolũ transfigurari in Angelum lucis. Quid agentem? Prophetantẽ scilicet. Si aũt prophetat vt Angelus lucis, vera dicit scilicet. Si angelica & lucida prophetat, tũc etiã prophetat vtilia, quando trãsfiguratur ad similitudinem operationis, etiã si sit alius, quatenus est subiectum defectionis. Nam quomodo deceperit quempiam, si non studiosum per vera adducat ad coniunctionem & familiaritatem, & ita postea ad verũ attrahat? & alioqui inuenietur scire veritatem, etsi non ita vt comprehendat, ita tamen vt nõ sit eius ignarus. Non est ergo falsa philosophia, etiamsi qui est fur & mẽdax, per transfigurationem operationis vera dicat. Neq; verò propter eum qui dicit, sunt imperitè ea prius damnanda quæ dicuntur (quod in ijs quoq; qui nunc prophetare dicuntur est obseruandum) sed sunt consideranda quæ dicuntur, an veritati cohæreant. Iam verò si vniuersa quoq; ac generali oratione, quæcunq; sunt necessaria & vitæ vtilia, diuinitus ad nos venire dicamus, minimè errabimus: vel potius si dicamus ipsam quoq; philosophiam Græcis veluti propriũ datam esse testamentũ, vt quæ sit fundamentũ Christianæ philosophiæ, etiamsi qui ex Græcis philosophantur, ad veritatẽ sua sponte obsurdescant, barbarorũ vocẽ vilipendentes, aut etiã reformidantes mortis periculum quod impendet fideli & legibus ciuilibus. Quomodo aũt in barbara philosophia, ita etiam in Gręca seminata sunt zizania, ab ipso verò agricola zizaniorum: vnde etiam & quæ sunt apud nos, exortæ sunt hæreses in bono & genitali tritico: & qui Epicuri impietatem, & voluptatem, & quæcunq; alia sata sunt præter rectam rationem, diuinitùs datæ agriculturæ sunt Græcis fructus adulterini. Hanc di-
*1.Cor.2.* cit Apostolus sapientiam huius seculi, quæ est scilicet voluptaria, & nimio tenetur C
sui amore, vt quæ doceat quæ sunt huius mundi, & quæ sunt circa ipsum solum, & consequenter, quod ad præfecturã attinet, est subiecta ijs qui hìc sunt principibus. Quamobrem singularis hæc philosophia quodam modo tradit elementa eius quæ verè perfecta est scientiæ, quæ versatur circa ea quę percipiuntur intelligentia, & his adhuc magis spiritalia, quæ oculus non vidit, & auris non audiuit, nec in cor homi-
*1.Cor.3.* nis ascenderunt, prius quàm quod de ijs est verbum, magister noster nobis aperiat sancta sanctorũ, & his pręterea sanctiora per ascensum reuelet ijs qui germanè synceréq; & nõ adulterinè sunt hęredes Dominicę adoptionis. Iam enim audemus dicere (hic enim est fides cognitionis) eum omnia scire, & firma comprehensione comprehendere ea etiam quæ sunt nobis dubia & inexplicabilia, qui verè est cognitione præditus, cuiusmodi fuit Iacobus, Petrus, Ioannes, Paulus, & reliqui Apostoli. Est enim prophetia cognitione plena, vt quæ data sit à Domino, & rursus per Dominum declarata Apostolis. Nunquid autem cognitio est proprietas animæ ratione præditæ, quæ ad hoc exercetur, vt per cognitionem inscribatur ad immortalitatem? Sunt enim ambæ animæ potestates, cognitio inquam & appetitio seu impulsio. Inueni-
*ὁρμὴ, impulsio ad aliquid agendũ* tur autem appetitio motus quidam qui est post aliquam ascensionem. Qui enim ad aliquã impellitur actionem, ante actionem sumit cognitionẽ, secundò autem appetitionẽ seu impulsionẽ. Præterea in hoc quoq; consideremus. Quoniã enim discere

est

A est antiquius quàm agere: nam naturaliter qui agit, id quod vult agere, prius discit: & cognitio quidem est ex eo quod didicerit: egisse autem ex eo quòd appetierit, seu incitatus sit: & ex eo quod discatur, est cognitio: scientiam autem sequitur appetitio, post quam actio: omnis actionis quę ratione suscipitur principium & opifex fuerit cognitio. Quare rursus meritò ex ea sola formam & charactêrem suscipit proprietas animæ ratione præditæ: reuera enim appetitio quidem, sicut etiam cognitio, mouetur in ijs quæ sunt. Cognitio aũt ex eo ipso, est quædam animæ consummata contemplatio eorum quæ sunt, aut alicuius, aut aliquorũ, aut omnium simul. Quanquam dicunt aliqui sapientem hominem persuasum habere, esse quædam quæ comprehendi nequeant, adeò vt de ijs aliquã comprehendat cõprehensionẽ, nempe qđ cõprehẽdi nequeãt quæ sunt incomprehensibilia, quod quidem est commune, & eorum qui parum possunt prospicere. Nam qui est eiusmodi, confirmat esse aliqua quæ comprehendi nequeant. Ille autem cognitione præditus, de quo loquor, ipse ea comprehendit quę videntur ab alijs non posse comprehendi, vt qui credat Dei filio nihil esse incomprehensibile, vnde nec esse eiusmodi vt doceri non possit. Qui enim propter suam in nos charitatem passus est, nihil omiserit qđ Sapien. 8. faciat ad doctrinam cognitionis. Fit ergo ipsa fides, firma & stabilis constansq; demonstratio in ijs quæ tradita sunt à Deo, quam sequitur veritas. Quòd si quis etiam desiderat multarum rerum experientiam, nouit antiqua, & coniectat futura: scit strophas orationum, & solutiones ænigmatum. Præscit signa & prodigia, & temporum

B euentus, discipulus sapientiæ. Talis enim est is qui est cognitione præditus, vt in eum eæ solæ cadant affectiones quæ oriuntur vt corpus maneat, nempe fames, sitis, & similia. Sed in Seruatore quidem corpus, vt corpus, necessaria postulare ministeria vt permaneat, fuerit ridiculum. Comedebat enim, non propter corpus quod sancta virtute continebatur: sed ne eis qui vnà cum eo versabantur, in mentem veniret de eo aliter sentire, sicut certè postea quidam existimarunt eum apparuisse visione & phantasmate. Ipse autem, vt semel dicam, erat impatibilis, quem nullus subit motus affectionis, neque voluptas, nec dolor. Apostoli autem cùm iram & metum & cupiditatẽ, per Dominicã doctrinam, ex vberiori quadam cognitione superassent, ne ea quidem quæ videntur bona ex patibilibus motionibus, vtpote confidentiam, æmulationem, gaudium, cupiditatem susceperũt, vt qui propter firmum quendam & stabilem statum mentis, nihil penitus mutarentur, sed in exercitationis habitu semper manentes alieni ab alteratione, post Domini quidem certè resurrectionem. Nam etsi ea quæ prius dicta sunt, si cum ratione fiant, aliquis bona esse accipiat: at inperfecto quidem certè minimę sunt admittenda, qui neque habet confidentiam: neque enim versatur in rebus grauibus & molestis, cùm ex ijs quæ sunt in vita, nihil graue molestúmue existimet, neque potest eum aliquid abducere à Dei charitate: neque tranquillitate animi opus habet (neque enim in dolorem incidit animíue angorem) cùm persuasum habeat omnia rectè fieri: neq; irascitur, neq; est enim quod eum ad irã moueat, cùm semper Deum diligat, & ad hoc so-

C lum totus sit conuersus, & ideo ex Dei creaturis nullã habet odio. Sed neq; æmulatur, nihil.n.ei deest ad assimilationem, quo sit bonus & honestus. Sed neq; amat aliquem communi hac amicitia, sed creatorem diligit per creaturas: neq; ergo in cupiditatem aliquam incidit aut appetitionem, neq; in anima indiget aliquo ex alijs, cùm iam per charitatem versetur cum dilecto, cui quidem iam est familiariter coniunctus per electionem, & per habitum qui procedit ex exercitatione, ei appropinquat continentius, & est beatus propter bonorum abundantiam. Quamobrem his de causis maxima vi contendit assimilari Domino in impatibilitate: est enim verbũ seu ratio Dei intelligens, per quam mentis imago & assimilatio in solo homine cernitur: vel etiam Deiformis & Deo similis fit per animam vir bonus, & rursus Deus est hominis formæ similis: forma enim vniuscuiusq; est mens, ex qua charactêrem suscipimus. Quo fit vt qui peccant in hominem, sint impij & execrandi. Est enim nugatorium dicere, eum qui est cognitione præditus & perfectus, non oportere eximere iram & confidentiam, vtpote quòd absque his neque sit aduersus ea quæ ingruerint excitandus, neque quæ sunt grauia toleraturus. Sed si etiam cupiditatem ab eo abstulerimus, fore vt ab omnibus rebus molestis & asperis conturbetur & obruatur, & ideo à vita pessimè excedat, si non sit eius particeps: aut, vt quibusdam videtur, non eum capiat earum rerum desiderium, quarum capit viros bonos & honestos. Si ergo omnis coniunctio & conciliatio quæ cum ijs quæ sunt bona & honesta

initur, fit cum appetitione: quomodo manet, inquit, impatibilis is qui ea quę sunt A honesta expetit? Sed hi, vt videtur, nesciunt diuinitatē charitatis. Non est enim vtiq; charitas eius qui diligit appetitio, sed est beneuola & firma coniunctio, in vnitatem fidei restituens eum qui est cognitione prædictus, loco & tempore minimè indigentem. Qui aūt per charitatem iam fuerit in ijs in quibus est futurus, vt qui spem præceperit per cognitionem, nihil expetit, vt qui, quoad eius fieri potest, habeat quod est expetendum. Meritò ergo manet in vno immutabili habitu diligens ex cognitione. Neque ergo vehementi ardebit studio vt assimiletur bonis, cùm habeat per charitatem id quod est bonum & honestum. Confidentia aūt & cupiditate quid ei adhuc est opus, cùm impatibili Deo coniunctionem & familiaritatē acceperit per charitatem, & per eam se in eius amicorum numerū adscripserit? Is ergo qui cognitione prædictus & perfectus, eximendus est à quauis animæ affectione ac perturbatione. Cognitio enim efficit exercitationem: exercitatio aūt habitum vel affectionē. Eiusmodi autem constitutio efficit impatibilitatem, nō autem animi motuum moderationem. Fruitur autē impatibilitate perfecta & absoluta amputatio cupiditatis. Sed nec eorum quę vulgò iactantur bonorum, hoc est, patibilium bonorum quæ adiunguntur animi perturbationibus, est particeps is qui est cognitione prædictus: vt exempli causa, lætitiæ, quæ adiuncta est voluptati: & mœstitiæ, ipsa enim adiuncta est dolori: & cautionis, subijcitur enim metui. Sed nec excandescentiæ, collocata est enim propter iram, etiamsi quidam dicant ea iam non esse amplius mala, sed bona. Fieri enim non potest vt qui iam semel est consumatus per charitatem, & B inexplebilem contemplationis delectationem ęternè & insatiabiliter percipit, eaq; fruitur, paruis & humilibus quibusdam & abiectis delectetur. Quæ enim iusta ei amplius restat causa cur ad bona mundana reuertatur, qui eam acceperit lucem ad quam non patet aditus? Etsi nōdum tempore & loco, at illa quidem certè cognitione prædita charitate, propter quam sequitur hæreditas, perfectaq; & absoluta restitutio: per opera cōfirmante eo qui reddit mercedem, quod quia elegit per cognitionē, pręuenit per charitatem accipiens is qui est cognitione prædictus. An non enim peregrinans ad Dominum propter suam in eum charitatem, etiamsi in terra cernatur eius tabernaculum, seipsum quidem à vita non educit? non est enim ei permissum, sed animam abducit à motibus & affectionibus, est enim ei concessum, & rursus viuit morte affectis cupiditatibus, & corpore non amplius vtitur, sed solùm ei permittit vti necessarijs, ne ei præbeat causam dissolutionis. Quemadmodum ergo est ei amplius opus magni animi virtute, qui in malis non versetur, vt qui ne sit quidem pręsens, sed totus sit cum eo quē diligit. Quis verò est etiam vsus tēperantiæ, cùm ea non egeat? Tales enim habere cupiditates, vt temperātia opus sit ad eas continēdas ac coërcendas, nondum est mundi, sed eius qui adhuc mouetur animi perturbationibus. Magni autem & excelsi animi virtus assumitur propter metum & timiditatē. Non est enim vtiq; decorū vt Dei amicus, quē Deus prædestinauit ante mundi constitutionem, vt referatur in summā filiorum adoptionē, voluptatibus subijciatur vel timoribus, & occupetur in cōprimendis animi perturbationibus. Audacter enim di C xerim, quemadmodū est prędestinatus per ea quę aget, & id quod consequetur: ita ipse quoq; cùm prędestinauerit, propter eum quē cognouit, habet quē dilexit: nec habet futurum cōiectu difficile, sicut multi viuunt coniectantes, sed per fidem cognitione præditam, accepit id quod est incertum & obscurū alijs: & propter charitatē, iam est ei præsens id quod est futurum. Credidit enim, & propter prophetiam, & propter pręsentiam, Deo qui non mentitur, & habet id quod credidit, & obtinet promissionē: veritas aūt est qui promisit, & finē promissionis, propterea quod fide dignus sit is qui promisit, firmiter ac stabiliter accepit per scientiā. Is aūt qui per eum in quibus est statum, nouit firmam ac stabilē futurorū cōprehensionem, futuro occurit per charitatem. Iam verò nec optabit quidē consequi ea quæ hîc sunt, cui persuasum est fore vt cōsequatur ea quæ verè bona sunt, sed semper optabit rectā & rectè se gerentē tenere fidē: & pręterea quāplurimos fieri sibi similes ad Dei gloriā, qua perficitur & cōsumatur per cognitionē. Est.n. salutaris, qui Seruatori assimilatur, quatenus humanę naturę fas est ad eius peruenire imaginē, in exequēdis pręceptis, ea minimè transgrediēdo, rectè se gerens. Hoc autē est Deum colere, per eam quę verè est iustitiam factorū & cognitionis. Huius vocē in precatione non expectat Dñs, pete, inquiens, & faciā: animo cogita, & dabo. In summa enim, in eo quod vertitur ac mutatur, fieri nō potest vt id quod est immutabile, concrescat & concilietur. Cùm autē in cōtinua

matu-

A mutatione,& ideo instabili,versatur facultas animæ principalis,nō conseruatur vis habitus:quomodo enim qui ab ijs quę extrinsecus ingrediuntur & incurrunt semper mutatur,habitum & affectionē tenere,& vt semel dicam, scientiā posidere poterit?Quāq; philosophi quoq; virtutes,habitus & affectiones & sciētias existimāt. Quo modo aūt nō simul generatur cum hominibus,sed est mixta sciētia:& vt discatur quidē,in principio opus est attentione educationeq; & incremento, deinde ex assidua,& quę non intermittitur,meditatione peruenit ad habitū: ita etiā perfecta & consumata in habitu mystico,propter charitatē manet talis vt non posit excidere.Non solùm enim primā causam,& eam quę ab ea est genita causam cōprehendit, & in his est firmus ac stabilis,stabiliter stabiles,& quæ excidere & dimoueri nequeunt,rationes posidens:quinetiā de bonis & malis, & vniuerso rerum ortu ac generatione,& vt semel dicam,de ijs quę locutus est Dn̄s,accuratisimā & exactisimam à mundi constitutione ad finē vsq; veritatem,ab ipsa veritate didicit, non si quid visum fuerit probabile,aut ex Græca oratione necessarium, ipsi veritati præponens. Quæ aūt à Domino dicta sunt,pro apertis & manifestis sumens, etiamsi alijs obscura fuerint,iam de omnibus accepit cognitionem.Quę sunt aūt apud nos eloquia,& de ijs quę sunt, vt sunt,respondent: & de futuris,vt erunt:& de ijs quæ facta sunt,vt fuerunt.In ijs solis quæ scientiam constituunt,cùm sit scientia præditus,se præclarè geret,& de bono tractandā suscipiet orationē,ijs quæ intelligētiā percipiuntur semper adhærens:ab illis supernis archetypis exemplaribus, suā rerū humanarū describens administrationē,quomodo qui nauigant,nauē ad astrū dirigunt:ad omnē bonam actionē semper præstò & paratus, omnia grauia & molesta solitus despicere, quando aliquid sustinere oportuerit, nihil temerariū, neq; quod sibi & Reipublicæ non conueniat,vnq̄ peragens,prouidus ac ꝓspiciens,& qui minimè flectitur voluptatibus tam ijs quæ verè sunt,q̄ ijs quæ noctu accidunt. Tenui enim diætæ,quæ vt paucis sit contentus efficit,assuefactus,est tēperans, & moderatus cum grauitate & honestatē,paucis ad vitam necessarijs indigens, nihil quærens quod sit superuacaneum:sed nec hæc vt principalia,sed ex vitæ consuetudine vt peregrinationi carnis necessaria,quantū necesse est admittēs:præcipua enim est ei cognitio.Per consequētiam ergo ijs quoq; attendit quæ exercent ad cognitionē,sumens ex vnaquaq; disciplina id quod cōfert ad veritatē.Ex Musica ergo,persequens proportionem quæ est in ijs quæ sunt coniuncta & cōposita:in Arithmetica aūt,adnotans augmenta & decrementa numerorū,& eas quæ sunt inter se inuicē relationes,& q̄ plurima cadunt in ꝓportionem numerorū:& Geometricam ipsam substantiā in seipsa cōtemplans & assuefaciens,aliquod continuū intelligentia ꝑcipit spatiū, & immutabilem essentiā,quæ est alia à corporibus. Et rursus ab Astronomia à terra eleuatus,vnà cum cælo mente in altū extolletur,& simul cum eorū conuersione circūagetur, semper considerās diuina,& eam quæ est inter se inuicem cōsensionem & cōuenientiā, à quib. adductus Abraham ascendit ad cognitionē eius q creauerat. Quinetiam Dialectica vtetur is qui est cognitione præditus,eligens diuisionem generū in species: & adducet eorū quæ sunt distinctionem,donec attigerit prima & simplicia. Multi aūt,non secus ac pueri laruas,timent Gręcā philosophiam,dum verētur ne eos abducat.Sed si talis est apud eos fides,non dixerim.n.cognitionem,vt ꝓbabilitate orationis per eos dissoluatur,fateantur se nō esse habituros veritatē:veritas.n.vt aiunt,est insuperabilis, dissoluitur aūt falsa opinio. Iam enim eligimus purpurā per cōparationem alterius purpuræ.Quare si quis fatetur se nō habere cor rectè informatū & explicatum, is nō habet mensam argentariorū, sed neq; rationē quæ habet vim iudicandi. Et quemadmodum erit adhuc trapezita, qui non potest probare & discernere probum nūmum à falso & adulterino?Clamauit aūt Dauid: In ęternum non commouebitur iustus.Neq; ergo fallaci oratione,neq; falsa voluptate:vnde neq; mouebitur à sua hæreditate.Ab auditione ergo mala non timebit. Neq; ergo ab inani calumnia, sed nec à falsa opinione quæ eum circumsistat:sed neq; astutas & callidas pertimescet orationes,qui eas potest discernere ad interrogandū & rectè respōdendum: est enim Dialectica,veluti vallus quidam,ne veritas cōculcetur à Sophistis. Oportet enim eos qui laudātur in sancto nomine Domini,vt vult Propheta,lætari corde quęrentes Dominum.Quærite ergo eum,& confirmemini:quærite faciem eius perpetuò modis omnibus. Nam cùm multifariam & multis modis sit locutus,non absolutè cognoscitur.Non his ergo tanquam virtutibus vtens,is qui est cognitione præditus,habebit disciplinarū multarū cognitionē, sed vtēs tanq̄ adiutricibus in com-

B (margin, at "bens administrationē")

C (margin, at "cet eorū quæ sunt")

*Psal. 114.* (margin, at "bum nūmum à falso")

*Psal. 68.* (margin, at "nim eos qui laudātur")

munibus & proprijs discernendis admittet ad veritatem. Est enim omnis erroris & A omnis falsæ opinionis causa, non posse discernere quânam ratione inter se conueniant ea quæ sunt, & quânam ratione differant. Sin aũt non pſequatur quis orationem, quatenus ea sunt diuisa, nō animaduertet se cōfundere cōmunia & ꝓpria. Hoc aũt si fiat, necesse est vt via amittatur, & incidatur in errores. Nominum aũt & rerũ distinctio, in ipsis quoq; scripturis magnã lucem affert animis. Necesse est enim exaudire & dictiones plura significãtes, & plures, quando quid vnũ significant: vnde etiã fit, vt rectè respōdeatur. Vitandus est aũt multus eius & planè inutilis abusus, qui cōsumitur in ijs in quibus nō oportet, eo qui est cognitione prẹditus, vtente disciplinis tanq̃ prẹexercitationibus, quẹ adiuuantiũ causarũ instar habeant, & ad accuratã veritatis traditionẽ, quatenus id potest assequi, nec ab eo potest diuelli, & ad ꝓpulsandas artificiosas rationes quæ improbè moliuntur excindere veritatẽ. Non relinquet ergo ea quæ ꝓmouent ad eas quæ sunt in orbe disciplinas, & Græcã philosophiã: sed nō principali ratione, sed ea quẹ est necessaria, & secunda, & quẹ deriuatur ex circunstantijs. Quibus enim improbè & malitiosè vtuntur ij q̃ suã operã ponũt in hæresibus, ijs rectè vtetur is qui est cognitione prædítus. Cùm sit ergo singularis veritas quæ in Græca apparet philosophia, quẹ verè quidẽ est veritas, quomodo Sol illuminans colores, & albũ & nigrũ, ostendit qualis sit vnusquisq; eorũ, sic ipsa quoque refellit omnẽ sermonis probabilitatẽ. Meritò ergo à Grẹcis quoq; acclamatum est: Principiũ magnæ virtutis est regina veritas. Quemadmodũ ergo in Astronomia habemus exemplũ Abrahã, ita etiã in Arithmetica eundẽ Abraham. Cùm enim au- B dijsset abductũ fuisse Loth captiuũ, trecẽtis vernaculis suis numeratis, hostes aggressus vincit maximũ eorũ numerũ. Dicunt ergo * Dominici quidẽ signi typũ quod ad figurã attinet, esse elementum, quod significat trecentos: ἰῶτα autẽ & ἦτα significare nomen salutare. Significari ergo eos esse Abrahæ domesticos & ei coniũctos, quod ad salutẽ attinet, qui ad signũ & nomen Dñi confugerunt, & superasse eos qui ipsos abducebant in captiuitatẽ, & plurimas gentes infideles quæ eos sequebantur. Iam verò numerus quidẽ trecentenarius est ternarius in cẽtenario. Decimus aũt citra vllam controuersiã est vndiquaq; perfectus. Octo aũt qui est primus cubus, est æqualitas in omnibus dimensionibus, longitudinis, latitudinis, & altitudinis. Dies hominum, inquit, erunt centum & viginti anni. Est aũt numerus ab vnitate per cōpositionem quintusdecimus. Luna aũt quintadecima est plena. Est autẽ aliàs quoq; cẽtum viginti numerus triangulus, & constat ex paritate quidem numeri lxiiij a. Quorum quæ fit per partem compositio, gignit quadratos, j.iij.v.vij.ix.xj.xiij.xv. Ex imparitate autẽ numeri lvj. nempe septem paribus à binario, qui generant eos qui sunt altera parte longiores, ij.iiij.vj.viij.x.xij.xiiij. In alio rursus significato constat cxx. numerus ex quatuor, vno quidem triangulo, nempe xv. altero verò quadrato, nempe xxv. tertio autem pentagono, nempe xxxv. quarto autem hexagono, nempe xxxxv. Eadem enim proportione sumptum est v. in vnaquaq; specie. Triangulorum enim ab vnitate v. quidem est xv. Quadratorum verò xxv. & eorum qui deinceps sequuntur, per proportionem. Iam verò numerus xxv. qui est v. ab vnitate dicitur esse sym- C bolum tribus Leuiticæ. Numerus autem xxxv. ipse quoq; habetur ex ea quæ fit ex duplis descriptione, Arithmetica, Geometrica, & Harmonica: nempe vj.viij.ix.xij. quorum cōpositio generat numerum xxxv. In his diebus dicunt Iudæi formari fœtus septẽ mensium. Numerus aũt xlv. constat ex descriptione quæ fit ex triplis, nempe vj.ix.xij.xviij. quorum cōpositio ꝓcreat xlv. Et in his similiter diebus dicunt formari fœtus nouem mensium. Et est hoc quidem forma exẽpli Arithmetici. Geometriẹ aũt testimonium sit tabernaculum quod construitur, & arca quẹ fabricatur, quẹ quibusdam proportionibus, quæ cum summa ratione procedunt, diuinis cōstruuntur inuentionibus, per donum intelligentiæ, quẹ à sensilibus ad ea quæ percipiuntur intelligentia, vel potius ab ijs ad sancta, & sancta sanctorum nos traducit. Ligna enim quadrata, significant quadratam figurã quoquo versus peruasisse, securitatẽ & stabilitatẽ efficientẽ rectis angulis. Et ædificij quidem longitudo erat trecentorũ cubitorum, latitudo verò quinquaginta, altitudo aũt triginta: & supernè in cubitum, q̃ ex lata base acuitur instar pyramidis, definit arca, eorũ qui p̃ ignẽ purgãtur & ꝓbantur symbolum. Hæc Geometrica præbetur proportio ad sanctas illas transmittendum mansiones, quarũ differentias subiectorũ numerorũ ostendunt differẽtiẹ. Qui aũt inferuntur numeri, sunt secupli, vt trecenta ad quinquaginta: & decupla, vt trecenta sunt decupla ad xxx. & ἐπιδιμερεῖς, hoc est, superbipartiẽtes. Quinquaginta enim sunt

* T litera est typus crucis, quæ litera significat etiam trecẽtos: I.H. verò & Iesum significat et octodecim.

a Post 64. uidentur nobis hæc uerba deesse: Nẽpe octo, imparibus ab unitate. Vbi autem est, Gignit quadratos, uidetur legendum, Gignit triangulos.

A ſunt ad xxx. ſuperbipartientia. Sunt aũt qui trecentos cubitos dicunt eſſe ſymbolũ ſigni Domini. Quinquaginta aũt, ſpei & remiſsionis quæ datur in pentecoſte. Et triginta, aut, vt eſt in nonnullis, duodecim, dicunt ſignificare prædicationem, quoniá tricesimo quidẽ anno prædicauit Dñs: duodecim autem fuerunt Apoſtoli. Et in cubitum conſumatũ fuiſſe ædificium, iuſti profectu deſinente in monadem, & in vnitatem fidei. Menſa aũt in tẽplo erat ſex cubitorum, & eius pedes quatuor erant circiter vnius cubiti & dimidij. Colligunt ergo omnes cubitos duodecim, conuenienter duodecim menſiũ cõuerſioni quæ fit per circulum anni, quibus terra omnia producit & perficit, cum quatuor temporibus anni inita conſuetudine. Terræ aũt, vt arbitror, imaginẽ menſa ſignificat, quæ quatuor fulcitur pedibus, æſtate, autumno, verẽ, hyeme, per quos annus ingreditur. Quocirca dicit etiá menſam habere vndulas inflexas ac tortiles, aut ꝙ temporum cõuerſionibus omnia circumagantur, aut fortaſſe ſignificauit terram quam circumfluit Oceanus. Pręterea exemplum Muſicę ſimul pſallens & prophetans ponatur Dauid, Deum concinnè & numeroſè laudans. Doricæ aũt harmoniæ maximè conuenit genus ἐναρμόνιον, id eſt, concinnum, & Phrygiæ διάτονον, quod eſt vehemens aut acutũ, vt ait Ariſtoxenes. Barbari itaq; Pſalterij harmonia, modorum oſtẽdens honeſtatẽ & grauitatem, cùm ſit antiquiſsima, maximè fuit exemplum Terpandro ad Doricam harmoniam, Iouem laudãti hoc modo: Iupiter omnium principium, dux omnium, hoc hymnorum principium ad te mitto Iupiter. Potuerit autem à pſalmographo allegoricè accipi cithara, in primo quidem

B ſignificato, Dominus: in ſecundo autem ij qui proximè ac continenter pulſant animas, canticum præeunte Domino. Populus quoq; qui fit ſaluus, dici potuerit cithara per Dei inſpirationem. Et qui per Dei cognitionem muſicè glorificat, exauditur, verbo pulſans ad fidem. Aliter quoq; acceperis muſicam conſonantiam, nempe Eccleſiaſticã, legis & Prophetarum ſimul & Apoſtolorum, vnà cum Euangelio, & concentum qui in vnoquoq; Propheta eſt poſitus, dum ab vna perſona ad aliam tranſilitur. Sed plurimi, vt videtur, ex ijs qui nomine ſunt inſcripti, nõ ſecus ac ſocij Vlyſsis, ruſticè aggrediuntur doctrinã: non Sirenes, ſed numeros & modos prætereũtes, obſtruentes ora propter inſcitiam, quoniá ſciunt, ſi Græcis diſciplinis aurẽ ſemel præbuerint, futurum vt nunquam poſsint reuerti poſteà. Ei autem qui decerpit id quod eſt conducibile ad vſum Catechumenorum, & maximè eorum qui ſunt Græci, Dñi aũt eſt terra & plenitudo eius, non eſt abſtinendum à ſtudio doctrinæ, inſtar brutorum animantium. Sunt autẽ plurima ijs qui audiunt, quoad eius fieri poteſt, ſuppeditanda auxilia. Sed nequaquam eſt in his immorandum, præterq̃ ad id quod ex ijs accipi poteſt cõmodi, vt cùm id acceptum poſſederimus, poſsimus domum reuerti ad veram philoſophiam, quæ eſt firmum animę refugium quod ab omnibus prębet ſecuritatem. Eſt ergo attingenda Muſica ad mores ornandos & componẽdos. Certè etiam in conuiuio nobis inuicem pſallendo propinamus, noſtrã incantantes cupiditatem, & Deum glorificantes propter copioſam donationem eorum quibus vtuntur & fruuntur homines, & ꝙ perpetuò ſuppeditata fuerint nutrimenta ad au-

C gmentum corporis & animæ. Eſt autem ſuperuacanea reſpuenda Muſica, quæ frangit animos & variè afficit, vt quæ ſit aliquando quidem lugubris, aliquando verò impudica & incitans ad libidinem, aliquando autem limphata & inſana. Eadem ratio eſt etiam de Aſtronomia: ea enim cum rerum ſublimiũ cognitione, de figura vniuerſi, & cæli conuerſione, & aſtrorum motione, ad creantem virtutẽ propius adducens animam, docet nos facilè ſentire tempora anniuerſaria, mutationem aëris, ortúſque & occaſus ſyderum. Nam ars quoque nauigandi & agricultura, referta eſt vſu qui ex ea redundat: ſicut Geometria, Architectura, & ars ædificandi. Efficit aũt hæc quoque diſciplina vt anima maximè aſſequatur, & verum perſpiciat, & falſum arguat, certáſq; aſſenſiones inueniat & proportiones, adeò vt venetur ſimile in diſſimilibus: inducitq; nos vt inueniamus longitudinem abſq; latitudine, & ſuperficiẽ quę caret altitudine, & ſignũ quod nullas habet partes, & à ſenſilibus nos traducit ad ea quæ percipiuntur intelligentia. Philoſophiam ergo adiuuant diſciplinæ, & ipſa philoſophia ad tractandum de veritatẽ. Ecce enim chlamys primùm fuit vellus, deinde carptum fuit, & ſubtegmen ſtamenq; factum eſt, deinde fuit contextum. Oportet ergo animam prius eſſe præparatam, & variè elaboratam, ſi ſit conſtituenda optima & præſtantiſsima. Nam veritatis alia quidem eſt pars quę verſatur in cognitione, alia verò in actione: profluxit autem à contemplatione. Magna autem exercitatione opus eſt & experientia. Quinetiam contemplationis, alia qui-

*Illud: Aut, vt eſt in nonnullis, duodecim, uidetur eſſe omnino tollendum ut ſuperfluum.*

dem pars est vt aduersus proximos, alia verò vt aduersus seipsum. Quamobrem sic quoq; eruditionem oportet esse comparatam, vt vtrisq; conueniat. Ei ergo qui suffi cienter didicerit illa, quæ continent ea quæ deducunt ad cognitionem, licet deinceps manere quietum, actiones dirigendo ad contemplationem. Cùm autem propter proximorum vtilitatem, alij quidem se conferant ad scribendum, alij verò ad Verbum tradendum se comparent, cùm alia doctrina est vtilis, tum scripturarum Domini lectio est necessaria ad eorum quæ dicuntur demonstrationem, & maximè si ij qui audiunt accedunt ex Græcorum doctrina. Quandam talem ecclesiam describit Dauid: Astitit regina à dexteris tuis in vestitu deaurato, circundata varietate: Græcis, inquam, & superfluis aureis fimbrijs circũdata & variata. Veritas autem per Dominum, Consilium enim tuum, inquit, quis nouit, si non tu dederis sapientiam, & miseris sanctum tuum spiritum ab altissimis, & ita correctæ fuerint viæ eorum qui sunt super terram, & didicerint homines ea quæ tibi placent, & salui fuerint sapientia. Nam qui est cognitione prædítus, per scripturã nouit antiqua, & conijcit futura: scit strophas orationum, & ænigmatum solutiones, præscit signa & prodigia, & euentus temporum, vt prius diximus. Vides fontem disciplinarum manare à sapientia. Iis autem qui obijciunt: Quid enim iuuat nosse causas (exempli causa) quomodo Sol moueatur, & reliqua astra: aut Geometrica speculatum esse theoremata, aut Dialectica, & vnamquãq; ex alijs disciplinis? ad ea enim quæ oportet tradenda eas nihil conferre, & humanam esse intelligentiam Græcam philosophiam, minimè enim doceri à veritate: illa sunt dicenda, primùm quidem, quòd ij falluntur in ijs quæ sunt ex ijs quæ sunt maxima, nempe in mentis & intelligentiæ voluntaria electione. Qui enim sancta, inquit, sanctè seruant, sanctificabuntur, & qui ea didicerunt, inuenient respõsionem. Qui enim est cognitione præditus, meritò omnia sanctè faciet quæ sunt facienda, vt didicit per doctrinam Domini, etiamsi acceperit p homines. Et rursus licet audire: In manu enim eius, hoc est, virtute & sapientia, & nos, & verba nostra, & omnis prudentia, & operũ scientia. Nihil enim diligit Deus nisi eũ qui cohabitat cũ sapientia. Præterea aũt non legerunt quod dictũ est à Solomone. Nam cùm de tẽpli constructione tractasset, apertè dicit: Artifex aũt cõstruxit sapiẽtia, tua aũt pater gubernat puidentia. Et quomodo nõ est à ratione alienũ, arte fabrili & arte ædificãdarum nauium deteriorẽ existimare philosophiã? Fortasse aũt Dñs quoq; illã, eorum qui in herba decubuerũt, multitudinẽ ex aduerso Tiberiadis, piscibus duobus, & hordeacis quinq; aluit panibus, tacitè significans priorẽ Iudæorum & Græcorũ eruditionẽ, quæ præcedit diuinũ frumentũ nutrimenti quod p legem colitur. Est enim hordeum frumento citius in tempore æstatis. Quæ autẽ p vndas gentiles gignitur & fertur Græcã philosophiã, pisces significabant, ad pfusam vitæ conuersationẽ dati ijs qui humi iacebant, qui non ita quidẽ dabant augmentũ sicut fragmenta panũ: sed cùm benedictionis Domini facti essent participes, habuerunt inspiratam diuinitatis resurrectionem per Verbi potentiam. Sed & si es nimis curiosus, accipe vnum ex piscibus eam quæ est in orbe disciplinam, reliquum verò significare ipsam quæ transcendit philosophiam, quæ scilicet cum ipsius Dñi verbo comparantur *. Mutorum aũt piscium chorus affluxerit, dixit alicubi Musa tragica. Me quoq; oportet minui, augeri aũt solùm iam deinceps Verbum Dñi, in quo lex finitur, dixit Propheta Ioannes. Iam mihi intellige mysteriũ veritatis, veniam tribuẽs si ad id pertractandum vereor progredi vlterius, hoc solum prædicans: Omnia per ipsum facta sunt, & sine ipso factum est nihil. Dictus certè est lapis angularis, in quo omnis ædificatio coagmẽtata augetur in sanctum Dei templum, vt ait diuinus Apostolus. Taceo in præsentia parabolã quæ est in Euãgelio, dicentẽ: Simile est regnum cælorum homini qui sagenã iecit in mare, & ex multitudine captorũ piscium meliores eligit. Iã verò quatuor quoq; virtutes apertè, quæ est apud nos sapientia, sic prædicat, vt earum quoq; fontes Græcis dati sint ab Hebræis. Ex his autem sciri potest, & si quis diligit iustitiam, labores eius sunt virtutes. Temperantia enim & prudentia docet iustitiam, & magni excelsique animi virtutem, quibus nihil est in vita hominibus vtilius. Postremò illud quoque illos scire oportebat, quòd natura quidẽ apti nati sumus ad virtutem, sed non quòd eam habeamus ab ortu, sed simus apti ad eam acquirendam. Qua ratione soluitur ea dubitatio, quæ ab Hæreticis aduersus nos mouetur: Vtrùm perfectus formatus sit Adam, an imperfectus? sed si imperfectus quidem, quomodo perfecti Dei imperfectum est opus, & maximè homo? sin autem perfectus, quomodo transgreditur præcepta? Audient enim etiam à nobis, quòd

Margin notes: A; Psal. 44.; Sapien. 9.; Sapien. 8.; B; Sapien. 7.; Ibid. 7.; C; * συνάλογοι, sed puto legendum, συναυάλογοι. Ioan. 1. Ephes. 2. Matth. 13.

A quòd perfectus quidem non fuit factus in constitutione, sed aptus ad suscipiendam virtutem: multum enim refert, factum esse aptum ad eam acquirendam. Vult autem nos ex nobisipsis saluos fieri. Hæc est ergo natura animæ, à seipsa impelli, & incitari: deinde cùm simus ratione prædití, ratione autem constet philosophia, habemus quandam cum ipsa cognationem. Aptitudo autem, est quidem motus ad virtutem, non autem virtus. Atque omnes quidem, vt dixi, apti sunt natura ad acquirendam virtutem: sed alius quidem magis, alius verò minus accedit ad disciplinam & exercitationem. Quocirca alij quidem vsque ad perfectam peruenêre virtutem, alij verò vsque ad aliquam: neglecti autem rursus aliqui, etiamsi alioqui bonum haberent ingenium, auersi sunt in contrarium. Multò autem magis quę magnitudine & veritate præstat omnibus disciplinis cognitio, est & ad acquirendũ difficillima, & multo labore superatur. Sed, vt videtur, Dei non nouere mysteria, quòd scilicet Deus creauit hominem ob immortalitatem, & fecit eum imaginem suę proprietatis, per quam proprietatem eius qui nouit omnia, is qui est cognitione pręditus, & iustus, & sanctus, cum prudentia contendit peruenire ad mensuram perfectæ ætatis. Quòd autem non solùm actiones & cogitationes, sed etiam verba sint munda ei qui est cognitione præditus: Probasti cor meum, visitasti me noctu, inquit, inflammasti me, & non est inuenta in me iniquitas. Ne loquatur os meum opera hominum. Et quid dico opera hominum? Ipsum cognoscit peccatum, non id quod est adductum ad pœnitentiam, est enim hoc commune aliorum quoque fidelium, sed quod est peccatum: neque enim hoc quidpiam condemnat, sed vt semel dicam, omne peccatum: neque quod quis malè fecit, sed quod non sit faciendum, adducit. Vnde est etiam duplex pœnitentia: vna quidem est communis, propterea quòd peccauerit: altera verò, cùm peccati naturam didicerit, persuadet ab ipso desistere peccato per principalem rationem, cui est consequens vt non peccet. Ne ergo dicat, quòd qui facit iniuriam, & peccat, delinquit per dæmonum operationem: sic enim nullis esset culpæ affinis. Cùm autem in peccando eadem eligat quæ dæmones, instabilis, & leuis, & mutabilis in cupiditatibus vt dæmon, fit homo dæmoniacus. Iam qui est natura quidem malus, cùm propter vitium factus sit peccator, redditus est improbus, id habens quod elegit: contrà autem vir bonus se rectè gerit. Quocirca non solùm virtutes, sed etiam actiones honestas, bona vocamus. Ex bonis autem, scimus alia quidem per se esse eligenda & expetenda, vt cognitionem (nihil enim aliud ex ipsa venamur cùm affuerit, nisi solummodo vt ea adsit, & in perpetua simus contemplatione, & ad ipsam & propter ipsam decertemus) alia autem, propter alia, vt fidẽ, & propter euitationem supplicij quæ ex ea proficiscitur, & vtilitatem quæ capitur ex remuneratione. Timor enim est multis causa ne peccẽt. Promissio autem est occasio persequendi obedientiam, per quam salus. Perfectissimum ergo bonum est cognitio, quę est per se expetenda: per consequẽtiam autem, bona quoq; quæ per eam consequuntur. Et supplicium, ei quidem qui punitur, est causa correctionis: ijs autẽ qui possunt eminus perspicere, fit exemplum, per quod cauent ne amplius cadant in similia. Suscipiamus ergo cognitionem, non ea quæ eueniunt cupientes, sed propter hoc ipsum solum, nempe vt cognoscamus, eam amplectentes. Prima enim vtilitas est habitus cognitionis, innoxias præbens voluptates per exultationem, & nunc & in posterum. Exultationẽ autem dicunt esse lætitiam, quę est reputatio virtutis ex veritate, per quandam exhilarationem & diffusionem animi. Facta autem quæ participant cognitionem, sunt bonæ & honestæ actiones: nam veræ quidem diuitiæ, est abundantia in ijs quæ sunt ex virtute actionibus. Paupertas autem est inopia in moderatis actionibus: possessiones enim, & vsus rerum necessariarum, non habent qualitatem noxiam, sed eam quæ est præter modum quantitatem. Quocirca circumscribit cupiditates is qui est cognitione præditus, & in possessione, & in vsu, non transiliens terminum eorum quæ sunt necessaria. Hic ergo viuere necessarium existimans ad augendam scientiam, & parandam cognitionem, non viuere, sed bene viuere faciet plurimi. Neque filios, neque rursus matrimonium, aut parentes præferens charitati in Deum, & ei quæ est in vita iustitiæ. Vxor autem ei soror post liberorum susceptionem, iudicatur tanquam quæ sit eodem patre nata, tunc solùm viri recordans, quando filios aspexerit, vt quę sit reuera futura soror post carnis depositionem, quæ diuidit & distinguit cognitionem spiritualium, proprietate sexuum. Ipsæ enim per se ex æquo sunt animæ: animæ neutræ, nec masculæ, nec fœminæ, quandoquidem neq; vxores ducunt, nec nubunt. Nunquid au-

Marginal notes: B (at "quod est peccatum"); C (at "in similia"); Sapien. 2. (at "Sed, vt videtur"); ἐπιδόσει (at "Exultationẽ"); σχήματι (at "proprietate sexuum").

tem sic in virum transmutatur mulier non effœminata, quæ æquè fit virilis & perfe- A
Genes.18. cta? Hoc ergo fuit Sarræ risus, cui pueri ortus fuit annunciatus, non quę, vt arbitror, Angelo fidem non habuisset, sed quam rursus puderet cógresſionis, per quam futu-
Gen.20. ra erat mater filij. Et nunquid ab eo tempore, quo apud regé Ægypti propter Sarræ pulchritudinem vocatus est in periculum, eam propriè Abraham appellauit sororem, sed nondum eadem matre & eodem patre natam? Atq; ijs quidem qui peccatorum ducti sunt pœnitentia, & non solidè crediderunt, per preces præbet Deus petitiones. Iis autem qui viuunt citra peccatū & ex cognitione, concedit si vel solummodo cogitarint. Ecce enim Annæ quæ solummodo cogitauerat de puero, data est Samuelis conceptio: Pete, inquit, scriptura, & faciam: animo cogita, & dabo. Deum enim accepimus cognitorem cordium, non qui cóijcitur ex motu animæ, sicut nos homines: sed neq; ex euentu, ridiculū enim esset sic cogitare: neq; vt Architectus laudauit opus, factum est, sic quoq; Deus cùm fecisset lucem, deinde eam vidisset, dixit boná. Ille aūt etiam priusquam fecisset, sciens qualis esset futura, eam laudauit quæ facta est, vt qui potestaté ab alto bonum faceret per principio carens propositum, id quod actu futurum erat bonum: & quod futurum erat, iam prædixit esse bonum, dictione hyperbato celante veritatem. Orat ergo is qui est cognitione pręditus, etiam cogitatione, omni hora per charitatem Deo cóiunctus, & familiaris effectus. Et primùm quidé petet remisſioné peccatorum, postea non amplius peccare: deinde posse benefacere, & omnem quæ facta est per Dominum creationem, & dispensationé intelligere, vt mundo corde effectus per agnitionem quæ est per filium Dei, facie ad B
Tob.12. faciem in beati spectaculi mysterio initietur, exaudiens scripturam quæ dicit: Bonū est ieiunium cum oratione. Ieiunia autem significant omnem generaliter abstinentiam ab omnibus malis, tam quæ actu fiunt, quàm quæ verbis, & ipsa cogitatione. Est ergo, vt videtur, iustitia quadrata, omni ex parte æqualis & similis, in verbo, in facto, in abstinentia à malis, in beneficentia, in perfectione cognitionis, nusquam vllo modo claudicás, ne videatur iniustus & inæqualis. Quatenus ergo est aliquis iustus, est omnino is quoq; fidelis: quatenus autem est fidelis, nondum est etiam iustus. Iustitiam dico quæ fit per profectum & consumationem, per quam is qui est cognitio-
Gen.15. ne præditus, iustus dicitur. Iam verò Abrahæ qui factus fuerat fidelis, reputatum est ad iustitiam, vt qui processerat ad id quod est fidei maximū & perfectisſimum. Non enim qui abstinet solùm à mala actione, est iustus, nisi præterea perfecerit vt & benefaciat, & cognoscat propter quam causam abstinendum quidem sit ab his, illa verò
2.Cor.6. sint agenda. Per arma iustitiæ dextera & sinistra, dicit Apostolus iustum transmitti ad summam hæreditatem, ab his quidem munitum, illis verò etiam agentem. Non enim solùm armaturæ tegumentum, & abstinentia à peccatis, sufficit ad perfectionem, nisi adsumpserit etiam opus iustitiæ, eam quæ ad benefaciendum est operationem. Tunc autem ambabus vtens manibus is qui est cognitione pręditus, in iustitia reuelatur, iam ex hoc quoq; non secus ac Moses, facie animę glorificatus, quam quidem prius diximus corpus quod formam & charactérem tribuit iustę animæ. Quomodo enim lanæ quæ indita mansit tinctura, in reliquas quoq; lanas proprietatem C
transmittit & mutationem: ita etiam in anima transit quidem labor, manet autem quod est bonum & honestum: & quod iucundum quidem est relinquitur, quod turpe autem est abstergitur. Hæ sunt enim qualitates, quæ vtriq; animæ formam & charactérem tribuunt, ex quibus vna quidem cognoscitur glorificata, altera verò condemnata. Certè sicut Mosi ex iusta operatione, & ex ea quæ continenter ei intercedebat cum Deo loquente consuetudine, vultui insidebat glorificata quædam coloris species: ita etiam iustæ animæ diuina quædam vis bonitatis inhærens per inspectionem, prophetiam, & administrantem operationem, quasi intelligentis illuminationis perinde atq; caloris solaris imprimit quoddam apertum iustitiæ signaculum, lucem animæ vnitam per charitatem quæ nullo spacio disiungitur, quæ Deo afflat, & Deo afflatur. Hinc quæ Seruatori Deo fit asſimilatio, exoritur ei qui est cognitione præditus, qui quidem euasit perfectus, quantum licet humanæ naturæ, si-
Matth.5. cut pater, inquit, qui est in cælis. Ipse est qui dixit: Filioli adhuc parum sum vobiscū.
Ioan.13. Nam Deus quoq;, non quatenus est natura bonus, ea ratione manet beatus, & ab interitu alienus: neq; habens negocij aliquid, neque alij exhibens, propriè autem bona faciens. Cùm verò sit Deus & pater bonus, & versetur in continua beneficentia, in eadem bonitate ita permanet vt nunquam ab ea digrediatur: quis est enim boni vsus, quod neque operatur, neque bono afficit? Qui ergo primùm suis modera-

A deratus est animi motibus, & vt impatibilis euadat est meditatus, & creuit ad beneficentiam cognitione prædità perfectionis, est hic quidem æqualis Angelis: iam autem lucidus, & tanquam Sol resplendens per beneficentiam, contendit iusta cognitione per Dei dilectionem, ad sanctam mansionem, sicut Apostoli, non q. fuerint electi Apostoli ex quadam eximia naturæ proprietate: nam Iudas quoq; fuerat cum eis electus, sed poterat fieri Apostoli, electi ab eo qui etiam fines præuidet. Qui itaq; nō vnà cum eis fuit electus Matthias, cùm se præbuisset dignum vt fieret Apostolus, sufficitur in locum Iudæ. Licet ergo nunc eis quoq; qui se in Dominicis exercuere mādatis, & perfectè vixere conuenienter Euangelio, ex cognitione quoq; adscribi in numerum Apostolorum. Hic est reuera Presbyter Ecclesię, & verus diaconus, id est, minister Dei voluntatis, si faciat & doceat quæ sunt Domini, non vt qui ordinetur ab hominibus, neq; q. iustus censeatur presbyter, sed q. iustus referatur in presbyteratum. Et licet hìc in terris non fuerit prima sede honoratus, sedebit in quatuor & viginti thronis populū iudicās, vt dicit Ioannes in Apocalypsi. Nam vnū quidē est reuera salutare testamentum, quod à cōstitutione mundi ad nos puenit per generationes diuersas & tempora, etiamsi datione existimatum fuerit esse diuersum. Consequēs enim est esse vnam immutabilem salutis dationē, ab vno Deo per vnum Dñm, quæ multis modis prodest. Propter quam causam tollitur materia, quæ diuidebat Græcum à Iudæo ad hoc vt esset populus peculiaris: & sic ambo perueniunt ad vnā fidei vnitatem, & ex ambobus vna est electio. Et electis, inquit, sunt magis electi, qui ex perfecta cognitione, & ab ipsa Ecclesia sunt decerpti, & magnificentissima gloria honorati, iudices & administratores, ex æquo & ex Iudæis & ex Græcis quatuor & viginti duplicata gratia. Nam hìc quoq; in Ecclesia progressiones Episcoporum, Presbyterorum, Diaconorum, sunt, vt arbitror, imitationes glorię Angelicę, & illius œconomiæ ac dispensationis, quam dicunt scripturæ illos expectare, qui insistentes vestigijs Apostolorum, vixerunt in perfectione iustitiæ conuenienter Euangelio. Hos sublatos in nubibus scribit Apostolus, primùm quidem diaconos futuros, deinde cooptandos esse in presbyteratum perfectum glorię: gloria enim differt à gloria, donec creuerint in virum perfectum. Qui sunt tales, vt ait beatus Dauid, requiescēt in monte sancto Dei, suprema Ecclesia, in qua cōgregantur Dei philosophi, qui verè sunt Israëlitæ, mundi corde, in quibus nullus est dolus, qui non permanserunt in septenario quietis, sed bonorum operum effectione diuinæ assimilationis, ad octonarij beneficentiæ hæreditatem sublati sunt insatiabilis contemplationis, puræ ac syncere speculationi attendentes. Sunt autem aliæ quoque, inquit Dominus, oues, quæ non sunt ex hoc ouili, quæ alio ouili & mansione pro proportione fidei sunt dignatę. Meæ autem oues meam vocem audiunt, ex cognitione mea mandata intelligentes. Hoc autem licet magnificè & pro dignitate meritisque accipere cum operum remuneratione, & mutua consequentia. Quare quando audierimus, Fides tua te saluam fecit, non accipimus eum dicere absolutè eos saluos futuros qui quomodocunque crediderint, nisi facta quoque fuerint consecuta. Iam verò Iudæis soC lis hanc dicebat vocem, qui legem tenebant & vixerant absque reprehensione, quibus sola fides restabat in Dominum. Non ergo fuerit fidelis cum intemperantia, sed etsi à carne exierit, necesse est vt vitia quoque deponat, vt possit ad propriam peruenire mansionem. Plus est autem cognoscere quàm credere, sicut etiam quàm saluum esse, maius est postquam saluus factus est, supremo honore dignum esse habitum. Cùm ergo per multā disciplinam vitia exuerit qui est nobis fidelis, transit ad maximum supplicium quod est melius priori mansione, inferens proprietatem pœnitentiæ eorum peccatorum quæ admisit post baptismum. Cruciatur ergo adhuc amplius, cùm vel nondum, vel ne omnino quidem ea assequatur, quorum videt alios esse participes. Præterea autem pudore afficitur ob ea quæ deliquit, quæ quidem sunt fideli maxima supplicia. Bona est enim Dei iustitia, & iusta est eius bonitas. Quòd si fortè cessauerint cruciatus in implendis quas luunt pœnis, & expiādis quæ admissa sunt ab vnoquoque delictis, habent tamen maximum permanentem dolorem, quòd cùm sint inuenti digni alio ouili, non vnà sint cum ijs qui sunt gloria affecti propter iustitiam. Iam verò Solomon sapientem vocans eum qui est præditus cognitione, hæc dicit de ijs qui mirantur dignitatē eius mansionis: Videbunt enim mortem sapientis, & non intelligent quid de eo decreuerit, & ad quid eum stabilierit Dominus, & dicent de eius gloria: Is est quē aliquando habuimus in derisum, & in parabolam opprobrij, insipientes. Vitā eius existimauimus insaniā, & mortē eius

Apocal. 4.
Ephes. 2.
Psal. 14.
Ioan. 1.
Ioan. 10.
Sapien. 5.

ignominiosam. Quomodo est enumeratus inter filios Dei, & in sanctis est sors eius? A
Non solùm ergo fidelis, sed etiam gentilis, iustissimè iudicatur. Quoniam enim scie
bat Deus, vt qui habeat præscientiam, eum non esse crediturum, nihilo secius vt su-
am acciperet perfectionem, ei quidem philosophiam dedit, sed ante fidem. Dedit
Deute. 5. autem solem & lunam & astra ad religionẽ, quæ Deus fecit gentibus, inquit lex, ne
si omnino essent impij & planè à Deo alieni, omnino etiam interirent. Illi autem et-
si in hoc nati essent mandato ingrati, sculptilibus attenderunt imaginibus: quòd si
non fuerint ducti pœnitentia iudicantur. Aliqui quidem quòd cùm possent, noluе-
runt Deo credere: alij verò, quòd etiam cùm vellent, non elaborauerunt vt fierent fi-
deles: quinetiam illi quoq;, qui à cultu astrorum non recurrerunt ad eorum creato-
rem. Hæc enim via data fuit gentibus, vt per astrorum cultum Deum suspicerẽt: qui
aũt ne in eis quidẽ quę eis data sunt astris voluerunt permanere, sed etiam ab eis ad
ligna & lapides procidere, reputati sunt, inquit, vt puluis terræ, & vt gutta ex cado,
superuacanei ad salutem, qui eijciũtur à corpore. Quomodo ergo absolutè quidem
saluũ facere, est ex ijs quæ sunt media, rectè aũt & vt decet, perfectũ est officiũ: ita e-
tiam omnis actio, eius quidem qui est cognitione præditus, rectum & perfectum est
officium: eius autẽ qui est solummodo fidelis, media dici possit actio, vt quæ ex ver-
bo seu ratione nondum efficiatur, neq; rectè geratur ex scientia. Contrà aũt cuiusuis
gentilis peccat actio. Non enim absolutè benè agere, sed scopum quendã spectãtes
actiones facere, & ex verbo seu ratione operari oportere ostendunt scripturę. Quo-
modo ergo lyram pulsandi imperitis, non est lyra tangenda: ita nec sunt attingenda B
negotia ijs qui non acceperunt cognitionem, & nesciunt quomodo ijs vti oporteat
ex verbo vitę. Atq; non solùm quidẽ in bellis suscipitur à bellatoribus certamen ꝓ
libertate, sed etiam in cõuiuijs, & in cubili, & in iudicijs, ij qui verbo sunt vncti, eru-
bescentes serui fieri voluptatis. Iniusto lucro nunq̃ virtutem ꝑmutauero: Lucrũ autẽ
euidenter iniustũ, est voluptas & dolor, labor & metus, & vt semel dicã, vitia & mo-
tus animę, quorũ id quod est in pręsentia iucundum, affert postea molestiã. Quid.n.
Matth. 16. prodest si totum mundum lucreris, inquit, perdas aũt animam? Clarũ est ergo q. qui
bonas non faciunt actiones, nec ea quidẽ nõrunt quę sunt sibi vtilia. Quod si ita est,
ne ij quidẽ Deũ precari possunt vt ab eo bona accipiãt, cùm quę sint verè bona igno
rent, neq; si acceperint, donũ senserint, neq; pro dignitate eo vsi fuerint quod nõ no
runt, & ꝓpter imperitiã rectè vtendi ijs quę data sunt, & propter nimiã inscitiam, ne
quomodo diuinis quidẽ donis vtendum sit scientes. Inscitia aũt est causa ignoratio-
nis: atq; iactabundæ quidem, sed bene sibi conscię animę est gloriatio, aduersus eos
casus qui eueniunt eloqui. Aduersus hæc oportet se cautè & prudenter gerere: nam
quod bene fit, & est iustum, mihi feret auxilium, neq; vnq̃ malè facere deprehendar.
Hęc autẽ bona cõscientia, & sanctitatem erga Deos, & iustitiam erga homines con-
seruat, mundam custodiens animam honestis cogitationibus & verbis castis, & iu-
stis operibus. Sic vim Domini cùm acceperit anima, meditatur esse Deus, putans
nullum aliud esse malum præterquàm ignorationis, & operationis quæ non fit
ex recta ratione. Semper autem propter omnia Deo agens gratias, per iustam au- C
ditionem & diuinam lectionem, per veram inquisitionem, per sanctam oblatio-
nem, per beatam orationem, laudans, canens, benedicens, psallens, à Deo nullo
Sapien. 3. vnquam tempore talis diuiditur anima. Meritò ergo dictum est: Et qui in ipso
confidunt, intelligent veritatem, & fideles in dilectione in ipso permanebunt. Vi-
des quę nam differat sapientia de ijs qui sunt prędíti cognitione. Proportione ergo
habita & conuenientia, sunt varię quidem mansiones, pro dignitate & meritis eo-
rum q crediderunt. Ecce enim Solomon: Dabitur enim ei, inquit, fidei gratia electa,
& sors in templo Domini iucundior. Comparatiuum enim ea quidem ostendit quę
sunt inferiora in templo Dei, quod est vniuersa ecclesia: relinquit autem superlatiuũ
quoq; cogitandũ, in quo est Dñs. Has tres electas mansiones significant numeri qui
sunt in Euangelio, triginta, & sexaginta, & centũ. Et perfecta quidem hęreditas est
eorũ qui euadunt in virum perfectum ad imaginem Dñi. Similitudo aũt non est, vt
quidam existimant, in figura humana, est enim impia hęc cõsideratio: sed nec quę in
virtute primæ causæ traditur assimilatio, est enim hęc quoq; impia traditio eorum,
Psal. 49. qui expectarunt eandem esse virtutem hominis & Dei omnipotẽtis: Existimasti, in-
Ioan. 13. quit, iniquè, quòd ero tibi similis: sufficit enim discipulo si fiat vt magister, inquit
magister. Ad Dei ergo fit similitudinẽ, qui est in filium adoptatus, & in numerum a-
micorum cooptatus, ex eo quòd est cohęres dominorum & deorum, si quemadmo-
dum

A dum ipse docuit Dominus, per Euangelium fuerit consumatus. Qui est ergo cognitione prædictus, magis propinquam & magis cohærẽtem exprimit similitudinẽ, nempe magistri mentẽ, quã cùm ille haberet, præcepit & consuluit sapientib. & temperantibus: exprimit, inquã, hanc intelligens vt voluit qui docuit, & magnifico sensu accepto, pro dignitate quidẽ docens sup tecta, eos qui altè volunt ædificari, prius autem incipiens facto exequi ea quæ dicuntur, conuenienter exemplo vitæ institutionis, ea enim præcepit quæ fieri poterant. Et reuera oportet eum qui est regalis & Christianus, principatum posse obtinere & præesse. Neq; enim solùm constitutum est vt dominaremur ijs solis quæ sunt foris bestijs, sed etiam agrestibus quæ sunt in nobis ipsis animi perturbationibus. Per scientiam ergo, vt videtur, bonæ & malæ vitæ, saluus fit is qui est cognitione prædictus, plus intelligens & operans quàm scribę & Pharisæi. Intende, bene prosperare, & regna, scribit Dauid, propter veritatem & mansuetudinem & iustitiã, & deducet te mirabiliter dextera tua, hoc est, Dominus. Psal.44.
Quis ergo sapiẽs, & intelliget hæc? intelligens, & cognoscet hæc? quoiam rectæ vię Domini, inquit Propheta, significans eum solum qui est prædictus cognitione, posse ea intelligere quę abditè dicta sunt à spiritu. Et qui intelligit, in tempore illo silebit, inquit Scriptura, in enunciando scilicet ad indignos. Quoniam, inquit Dominus, qui habet aures audiendi audiat, dicens non esse quorumuis audire & intelligere. Psal.106.
Iam verò Dauid dicit: Tenebrosa aqua in nubibus aëris. A fulgore corã ipso nubes transierunt, grando & carbones ignis: abditos esse docens sanctos sermones, & ijs Psal.18.
B quidẽ qui sunt cognitione prædicti, claras & perspicuas, tanquam grandinem innoxiam, significat demitti diuinitus: vulgo autem obscuros, tanquam qui ex igne extincti sunt carbones, quos nisi quis accenderit & suscitarit, non ardebunt, neque illuminabuntur. Dominus ergo, inquit, dat mihi linguam disciplinę, vt sciam in tẽpore quando oporteat loqui sermonẽ, non solùm in ferendo testimonio, sed etiam in interrogando & respondendo. Et disciplina Domini aperit os meũ. Est ergo eius qui est cognitione prædictus, scire vti sermone, & quãdo, & quo modo, & apud quos oportet. Iam verò Apostolus quoque dicens: Secundum elementa mundi, & non secundum Christum: tradit doctrinam quidem Gręcam esse instar elemẽtorum, Christi autem doctrinam esse perfectam, sicut iam prius significauimus. Iam verò oleaster inseritur in pinguedine oleę: quinetiam nascitur eadem specie qua oleæ satiuæ. Nam id quod est insitum, pro terra vtitur arbore in qua inseritur. Omnes autẽ plantæ simul iussu diuino germinarunt. Quocirca etiamsi sit oleaster agrestis, eos tamẽ coronat qui in Olympicis vincunt certaminibus. Et vlmus vitẽ in altũ extollẽs, eam docet esse fertilem. Videmus autem plus nutrimẽti attrahere agrestes arbores, propterea q, non possint concoquere. Quę sunt ergo agrestia, minus concoquunt q̃ satiua: & causa cur ea sint agrestia, est priuatio facultatis cõcoctricis. Plus ergo nutrimenti accipit inserta olea, propterea q, sit plantata in agresti. Assuesit autem veluti concoquere nutrimentum, dum assimilatur pinguedini satiuę. Sic etiam Philosophus, qui agresti oleę assimilatur, cùm multa habeat nõ concocta, propterea q, & lubenter inquirat, & facilè assequatur, & pinguedinem appetat veritatis, si per fidẽ, diuinam acceperit virtutem, in bonam & mitẽ insertus cognitionẽ, tanq̃ oleaster insitus in sermonem verè pulchrum & misericordem, & quod traditur nutrimentũ concoquit, & fit bona & satiua olea. Insitio.n. eas quæ erant inutiles facit generosas, & quę erãt steriles, cogit esse fertiles, arte agriculturę, & sciẽtia quę est ex cognitione. Esa.50. Col.2. Rom.11.
C Aiunt aũt insitionem fieri quatuor modis: vno quidẽ, quo inter lignũ & corticem oportet eum adaptare qui inserit: quo quidem modo Catechismũ suscipiunt, qui sunt ex gentibus idiotę qui verbum accipiunt in superficie. Altero aũt, quãdo ligno fisso, in ipsum plãtam generosam immiserint: quod quidem accidit in ijs qui sunt philosophati, eis enim dissectis dogmatibus, ingeneratur agnitio veritatis: sic autem Iudæis quoq; aperta veteri scriptura, noua & generosa planta oleę inseritur. Tertia autem insitio agrestes tangit & hęreticos, qui vi trahuntur ad veritatem: nam cùm vtrunq; surculum falce acuta deraserint, donec medullam quidem nudauerint, sed non vlcerauerint, eas inter se vinciunt. Quartus autem modus insitionis, est qui dicitur inoculatio: à generoso enim trunco circunciditur oculus, ei quoq; cortice vnà in orbẽ circũscripto, vnius palmi magnitudine. Deinde eraditur trũcus oculo ęquali circumscriptione, & sic immittitur circumligatus, & luto circumlitus, integro seruato & illæso oculo & minimè inquinato. Hoc est genus doctrinæ quæ oritur ex cognitione, quę res potest pspicere. Hoc quidẽ certè genus est maximè vtile in arbori- ἀγριέλαιος ἐγκεντρίζεται

bus satiuis. Potest autem quę ab Apostolo dicitur insitio, in bonam oleam fieri, nempe in ipsum Christum, agrestis & infidelis naturæ quæ implantatur in Christū, hoc est, eorum qui credunt in Christum. Melius est autem vniuscuisque fidem in ipsa inseri anima. Sanctus enim spiritus per eam quodammodo distributus transplātatur, prout est vniuscuiusque circumscriptio, incircumscriptè. De cognitione autem disserens Salomon, hæc dicit: Clara est, & quæ non marcescit sapientia, & facilè cernitur ab ijs qui ipsam diligunt, eos qui cupiunt præuenit vt præcognoscatur. Qui manè surrexerit ad ipsam, non laborabit: de ipsa enim cogitare, est perfectio prudētię. Et qui propter ipsam vigilauerit, citò erit cura vacuus, quoniam eos qui ipsa digni sunt, ipsa quærens circuit. Non est enim omnium cognitio. Et in semitis ab ipsis beneuolè visione apprehenditur. Semitæ autem sunt vitæ traducendæ ratio, & quæ est ex testamentis multiformis varietas. Mox subiungit: Et in omni cogitatione occurrit ipsis, vt quæ variè consideretur, per omnem scilicet doctrinam. Deinde infert, perficientem adducens charitatem, per rationem syllogisticam, & veras propositiones, maximè demonstratiuam, veram sic inducens illationem. Eius enim principiū verissimum, est desiderium disciplinæ, hoc est, cognitionis: cura autem disciplinæ, est dilectio: dilectio autem est obseruatio legum eius: attentio autem est legum confirmatio: confirmatio verò legum est vacuitas interitus: vacuitas autem interitus facit vt ad Deum propè accedatur. Sapientiæ ergo desiderium attollit ad regnum: docet enim, vt arbitror, quòd vera disciplina, est quoddam desiderium cognitionis. & dilectio quidem est obseruatio mandatorum quæ deducunt ad cognitionem. Obseruatio autem ipsorum, est confirmatio præceptorum propter quam contingit vacuitas interitus: vacuitas autem interitus, efficit vt prope Deum simus. Si ergo dilectio cognitionis facit alienum ab interitu, & eum qui est regalis prope Deum extollit: oportet ergo cognitionem quærere ad inuentionem. Est autem inquisitio quidem, incitatio & impulsio ad comprehendendum, quæ per quædam signa inuenit id quod est subiectum. Inuētio autem est finis & requies inquisitionis quæ peruenit ad comprehensionem, quod quidē est cognitio: & ipsa propriè inuētio est cognitio, vt quæ sit comprehensio inquisitionis. Signum autem dicunt esse id quod pręcedit, aut quod est vnà, aut quod sequitur, quod quidem est comprehensio. Eius ergo quæ est de Deo inquisitionis, inuentio quidem est doctrina quæ est per filium. Signum autem quòd sit Seruator noster ille ipse filius Dei, sunt & quæ eius aduentum præcedunt prophetiæ, quæ ipsum prædicant: & quæ cum eius ortu sensili fuerunt de ipso testimonia: & quæ præterea post eius assumptionem prædicantur & apertè ostenduntur, virtutes. Quòd ergo sit apud nos veritas, est indicium, quòd ipse docuerit Dei filius. Si enim in omni quæstione hæc generalia inueniuntur, res & persona, quæ verè est veritas, apud nos esse ostenditur. Nam veritatis quidem quæ ostenditur persona est filius Dei: res verò, virtus fidei, quæ quodcunque ei aduersatur, & vel ipsum totum mundum repugnantem superat. Sed quoniam hoc iam est certum & extra controuersiam, confirmatum esse in æternis factis & sermonibus. & visus est dignus qui suplicio afficiatur, non contra quem dicatur, quicunque existimat non esse prouidentiam, & reuera impius: nobis autem est propositum, quid agentes, & quomodo viuentes, peruenerimus ad omnipotentis Dei cognitionem, & quemadmodum Deum honorantes, efficiamur nobis causa salutis, cùm non à Sophistis, sed ab ipso Deo cognouerimus & didicerimus, quod ei est gratum, iustum & sanctum facere aggredimur. Nos autem esse saluos, quod quidem est ei gratum, & salus, accedit per bonam operationem & cognitionem, quorum amborum est magister Dominus. Si ergo vel ex Platonis sententia, aut à Deo, aut ab ijs qui à dijs duxere originem, verum solum disci potest: meritò à diuinis eloquijs eligentes testimonia, iactamus nos veritatem discere per filium Dei, quæ fuerunt quidem primum prædicta, deinde declarata. Quæ autem ad veritatem inueniendam adiuuant, ne sunt ipsa quidem reproba. Ipsa certè philosophia, quæ annunciat prouidentiam, & beatæ quidem vitæ remunerationem, miseræ autem punitionem, comprehensim tractat theologicè. Quæ autem accuratè & exactè traduntur, & quæ sigillatim habentur, ea vtique non seruat. Neque enim de filio Dei, neque de ea quæ est per prouidentiam œconomiam tractat, vt nos: non enim diuinam nouerat religionem. Quamobrem hæreses quoque quæ sunt in barbara philosophia, etiamsi vnum Deum dicant, etiamsi Christum celebrent, id ex comprehensione dicunt, non ex veritate: nam & alium Deum adinueniunt, & Christum nō excipiunt, sicut tradunt Prophetiæ.

Sapien. 6. (margin)

A B C (margin letters)

A tiæ. Verumenimuero quæ sunt apud eos falsa dogmata, quandiu aduersantur vitæ quæ agitur ex veritate, sunt contra nos. Iam enim Paulus Timotheũ circuncidit propter eos qui credebant ex Iudæis, ne eo dissoluẽte ea quæ à lege carnalius prius sumpta fuerant, à fide deficerent qui erant ex lege Catechumeni, etsi rectè sciret quòd nõ iustificat circuncisio. Omnibus enim omnia fieri profitebatur, dum se demitteret & variè eis accommodaret, ea conseruans quæ erant principalia dogmata, vt omnes lucrifaceret. Daniel autem torquem gestauit, cùm non neglexisset quòd afflictus esset populus à Rege Persarum. Mendaces ergo sunt reuera, non ij qui se demittunt, & se accommodant propter œconomiam salutis: neq; qui labuntur in aliquibus ex ijs quæ sunt singularia, sed qui concidunt in ijs quę sunt vel maximè principalia, & Dominum quidem, quoad eius fieri ab eis potest, infirmant & abrogant: auferunt autẽ veram Domini doctrinam, qui non pro dignitate Dei & Domini scripturas disserũt & tradunt. Depositum enim quod Deo redditur, est cõuenienter Domini doctrinæ, per eius Apostolorum piam traditionem intelligẽtia & exercitatio. Quod aũt auditis in aurem, abditè scilicet & in mysterio (nam quæ sunt eiusmodi, dicuntur in aurẽ dici allegoricè) super domos, inquit, prædicate, cùm ea præclarè ac magnificè accepissent, sublimique & excelso dicendi genere traderent, & ex regula veritatis scripturas explanarent. Neque enim prophetia, neque ipse seruator adeò crassè & generaliter elocutus est diuina mysteria, vt ea facilè capi possent à quibuslibet, sed disseruit in parabolis. De Domino quidem certè dicũt Apostoli, quòd omnia locutus est

Act. 16.

κατὰ συμπεριφοράν.

Daniel. 5.

λῃστής.

Matth. 10.

Mar. 4.

B in parabolis, & nihil loquebatur eis sine parabola. Si aũt omnia per ipsum facta sunt, & sine ipso factum est nihil: ergo Prophetia quoq; & lex per ipsum factæ sunt, & per ipsum dictæ sunt in parabolis. Cęterùm recta sunt omnia, inquit scriptura, coram ijs qui intelligunt, hoc est, ijs qui ab ipso declaratam scripturarũ expositionem, ex ecclesiastica regula accipientes, conseruant. Regula autem ecclesiastica est concentus & consensio legis & Prophetarum, conuenienter testamento quod traditur per Domini aduentum. Atq; cognitionem quidem sequitur prudentia, prudentiam autem temperantia. Dicatur enim prudentiam quidem esse diuinam cognitionem, & in ijs qui Dij fiunt: temperantiam autem philosophantur esse mortalem, & in hominibus nondum sapientibus. Iam verò si virtus est diuina, & ceu ipsius cognitio: temperantia aũt est veluti imperfecta prudentia, prudentiam quidem desiderans, laboriosè autem operans, & non contemplans, sicut certè iũstitia quæ est humana, vt quid commune subijcitur sanctitati, cùm sit diuina iustitia. Ei enim qui est perfectus, non in ciuilib. contractibus, neque in prohibitione legis, sed ex propria actione & dilectione in Deum est iustitia. Propter multas ergo causas occultant scripturæ sententiam: primùm quidem, vt diligenter inquiramus, & semper vigilemus in inueniendis salutaribus orationibus. Præterea ne omnibus quidem conueniebat hominibus intelligere, ne læderentur aliter accipientes ea quæ à sancto spiritu dicta sunt salutariter. Quocirca ijs qui sunt electi ex hominibus, & ijs qui ex fide cooptati sunt ad cognitionem, quæ seruantur sancta mysteria Prophetiarum, teguntur parabolis. Scri-

C pturarum enim stylus est parabolicus. Quocirca Dominus quoq; cũ nõ esset mundanus, tanquam mundanus venit ad homines. Portauit enim omnem virtutem & hominem qui erat in mundo enutritus, ad ea quæ percipiuntnr intelligentia, & sunt principalia, à mundo in mũdum erat sublaturus. Quocirca scriptura quoque vtitur metaphora. Est enim parabola res eiusmodi: oratio ab aliquo non proprio quidem, sed quod est simile proprio, ad id quod est verum & proprium deducẽs eum qui intelligit: aut vt dicunt aliqui, dictio quæ per alia, ea quæ propriè dicuntur ostendit cũ efficacia. Iam verò vniuersa quoque œconomia quæ prædicta est à Prophetis de Domino, videtur verè parabola ijs qui veritatem non norunt, quando filium Dei qui fecit omnia, carnem suscepisse, & in vtero virginis conceptum esse, quatenus fuit genita sensilis eius caruncula: consequenter autem quatenus fuit genita, passam esse & resurrexisse, vnus quidem dicit, alij verò audiunt: Iudæis quidem scandalum, Græcis autem stultitiam, vt dicit Apostolus. Apertè autem scripturæ & ijs qui aures habent verum ostendentes, illud ipsum quod passa est caro quam suscepit Dominus, Dei virtutem & sapientiam annunciant. Postremò parabolicum scripturæ genus cũ sit, vt ostendimus, antiquissimum, meritò apud Prophetas maximè abundauit, vt etiam philosophos, qui erant apud Græcos, & eos qui erant apud alios barbaros sapientes, ostendat sanctus spiritus ignorasse futurum Domini aduentum, & mysticam quæ ab ipso tradenda fuit doctrinam. Meritò ergo quę Dominum prædicat Prophe

D

tia,ne præter multorum dicens opiniones aliquibus videretur blaſphemare, ea quę A
ſignificantur figurauit vocibus,quę poſsint etiam ducere ad alias mentis conceptio
nes. Iam verò Prophetæ omnes qui Domini aduentum prædixerunt, & ſancta quæ
erãt cũ ipſo myſteria, perſecutionẽ paſsi ſunt, occiſi ſunt, ſicut ipſe quoq; Dominus
qui eis explanauit ſcripturas.Eius quoq; familiares,qui verbũ prædicauerunt,poſt-
quam ipſe exceſsit è vita, vſi ſunt parabolis. Vnde etiam Petrus in prædicatione lo-
quens de Apoſtolis, dicit: Nos autem cùm euoluiſſemus libros quos habuimus Pro
phetarum,qui partim quidẽ per parabolas,partim autem per ænigmata, partim ve-
rò expreſſa ſua authoritate & ipſis verbis Chriſtum Ieſum nominat,inuenimus eius
aduentum,& mortem,& crucem,& reliqua omnia ſupplicia quibus eum affecerunt
Iudæi,& reſurrectionem,& in cælos aſſumptionem priuſquam conderentur Hiero-
ſolyma, ſicut ſcriptũ eſt:Hęc omnia quæ oportebat ipſum pati,& poſt ipſum ea quę
erunt.Hęc ergo cùm agnouiſſemus,Deo credidimus per ea quę de ipſo ſcripta ſunt.
Et paulò pòſt rurſus infert,diuina prouidentia factas eſſe ſcripturas,ſic referẽs:Scie-
bamus enim Deum hæc verè iuſsiſſe: & abſque ſcriptura nihil dicimus. Habet autẽ
διάλεκτος. alias quoque quaſdam proprietates ſermo Hebræus, ſicut etiam vnuſquiſque ex re-
liquis,continens quandam orationem quæ gentis oſtendit ſtylum & figuram.Defi-
niunt itaque ſermonem, dictionem quæ gentis ſtylo ac figura conficitur: ſed non il-
lis ſermonibus nota eſt Prophetia. Græcis enim quæ troporum vocantur mutatio-
nes,de induſtria celant, deductę ad ſimilitudinem earum quę ſunt apud nos prophe
tiarum:verùm oſtẽditur tropus eſſe voluntariæ à recto declinationis, quæ fit vel ver B
ſu vel ſoluta dictione. Eſt quidem certè tropus, dictio tranſcripta à proprio ad non
proprium,compoſitionis cauſa,& propter rectum vſum dictionis quæ eſt in oratio-
ne. Prophetia autem minimè vtitur figuris in dictionibus, propter ornatum oratio-
nis. Eò autem quòd non ſit omnium, multis modis occultat veritatem ijs ſolis *qui*
ſunt initiati ad cognitionem, qui veritatem quærunt propter charitatem, lucem fa-
ciens exoriri.Dicitur autem prophetiæ ſpecies prouerbium à barbara philoſophia:
dicitur aliqua quoque parabola,& deinde ænigma. Quinetiam dicitur ſapientia, &
vt ab ea diuerſum quid diſciplina, & rurſus ſermones prudentiæ, & ſtrophæ verbo-
rum, & vera iuſtitia, & rurſus doctrina dirigendi iudicium: & aſtutia quæ ſimplici-
bus accidit ex diſciplina,& ſenſus & intelligentia,quæ ei inditur qui eſt recenter im
butus catecheſi.Qui hos,inquit,audiuit Prophetas,ſapiens erit ſapientior, guberna
Prouerb.1. tionem autem poſsidebit intelligens, & intelliget parabolam & obſcuram oratio-
nem,& ſapientum dicta & ęnigmata.Si autem ab Hellene Iouis filio,qui fuit cogno
minatus Deucalion,contigit Hellenicas,id eſt Græcas,appellari linguas, ex tempo
ribus quæ prius diximus, facilè perſpici poteſt quot generationibus ſint Hebræa
voce poſteriores linguæ quæ ſunt apud Græcos. Procedente aũt ſcriptura, cùm qui
prædicti ſunt à Propheta tropos in vnaquaque parte adnotauerimus, adducemus
viuendi rationem ex cognitione, per regulam veritatis, eam ſedulò & artificioſè o-
ſtendentes. An non enim quæ Hermæ quoque in viſione apparuit poteſtas in typo
eccleſiæ, dedit librum legendum quem voluit annunciari electis? Eum autem, in- C
quit,tranſcripſit ad literam,cùm non inueniret quomodo finiret ſyllabas.Significa-
bat autem vtiq; literam eſſe omnibus claram,ſi in nuda lectione accipiatur, & hanc
eſſe fidem quæ obtinet locum elementorum.Quocirca quæ eſt ad literam lectio,ſu-
ſcipit etiam allegoriam. Scripturarum autem ex cognitione explicationem, fide iã
proficiente aſsimilari ei quæ fit per ſyllabas lectioni accipimus. Quinetiam iubetur
Eſaias propheta, nouo libro accepto, in eo ſcribere ſanctam quandam poſtea futu-
rã cognitionem per ſcripturarũ expoſitionẽ, propheticè prædicendo ſpiritu eã quę
illo tẽpore erat adhuc nõ ſcripta,propterea quòd nondũ cognoſceretur:dictũ enim
fuerat ab initio ijs ſolis qui intelligunt.Iam verò cùm Apoſtolos docuerit Seruator,
ſcriptæ non ſcripta iam quoq; nobis traditur traditio. Ea ratione qui apud Gręcos
ſunt eruditiſsimi,Mercurio,quẽ dicunt eſſe orationem, conſecrãt propter interpre-
tationem,fructũ mali Punici. Habet enim multas latebras oratio. Meritò ergo Mo-
ſen quoq; qui aſſumebatur, duplicem vidit Ieſus filius Naue, & vnum quidem cum
Angelis, alterum autem ſupra montes, qui dignus erat cui in conuallibus iuſta fie-
rent. Vidit autem Ieſus hoc ſpectaculum inferius, ſublatus ſpiritu, vnà cum Chaleb:
ſed non vident ambo ſimiliter: ſed hic quidem deſcendit citius, vt qui multũ quod
grauabat inferret:ille autem cùm deſcẽdiſſet, poſtea narrauit gloriam quam erat cõ
templatus,vt qui magis quàm alter poſſet perſpicere,vt qui eſſet purior, ſignificãte,

vt

A vt arbitror, historia, non omnium esse cognitionem. Nam alij quidem corpus literarum, nempe dictiones & nomina, perinde ac corpus Mosis accipiunt: alij verò senté tias, & quæ à nominibus significantur peruident, eum qui est cum Angelis Mosen curiose inquirentes. Certè etiam ex ijs qui ipsum Dominum inuocabant, multi quidem dicebant, Fili Dauid miserere mei: pauci aût cognoscebant filium Dei sicut Petrus, quem etiam beatum pronunciauit, quoniam ei caro & sanguis non reuelauit veritatem, sed pater eius qui est in cælis: significans eum qui est cognitione præditus, non per eius carnem quæ fuit gestata in vtero, sed per ipsam paternam potentiam cognoscere filium Omnipotentis. Non solùm autem ijs qui tantummodo incidunt, est adeò difficilis acquisitio veritatis: sed eorum etiam quorum est propria scientia, ne his quidem totam simul aceruatim dari contemplationem, docet Mosis historia, donec sicut Hebræi gloriam Mosis aduersis oculis aspicere soliti, & sancti Israël Angelorum visiones: ita nos quoq; obiectum veritatis splendorem possimus intueri. Nobis autem cursim exponatur indicium ad declarandam cognitioné, Decalogus. Et quòd sacer quidem sit Denarius, superuacaneum est nunc dicere. Sin autem tabulæ scriptæ opus Dei, inuenientur naturale ostendere opificium. Digitus autem Dei intelligitur Dei potentia, per quam efficitur creatio cæli & terræ: quorum amborum intelligentur tabulę esse signa. Nam Dei quidem scriptura & formatio in subiecta tabula, est mundi creatio. Decalogus autem, in imagine quidem cælesti, có tinet Solem & Lunam, astra, nubes, lucem, spiritũ, aquam, aërem, tenebras, ignem: B hic est cæli naturalis decalogus. Terræ autem imago continet homines, pecora, reptilia, bestias, & ex aquatilibus pisces & cete: & rursus similiter ex volucribus, & quæ sunt carniuoræ, & quæ miti ac mansueto vtuntur cibo: & ex plantis similiter, & quæ sunt fertiles, & quæ steriles: hic est terræ naturalis decalogus. Porrò autem arca quæ hæc continebat, fuerit rerum diuinarum & humanarum cognitio & sapientia. Fortasse autem fuerint hæ duæ tabulæ, Prophetia duorum testamentorum. Mysticè autem sunt renouatæ, cùm simul abundaret ignoratio & peccatum. Dupliciter autem, vt videtur, scribuntur pręcepta duplicibus spiritibus, nempe & principali, & eo qui subijcitur: quoniam caro concupiscit aduersus spiritum, & spiritus aduersus carnem. Est autem in ipso quoq; homine quidam denarius: quinq; sensus, & vocis edendæ facultas, & vis seminaria, & hic quoq; octauus qui fuit in formatione spiritus: nona est facultas animæ quæ tenet principatum, quæ etiam dicitur principalis: & decima est sancti Spiritus quæ per fidem accedit, formam & charactêrem tribués proprietas. His accedit, quòd decem quibusdam humanis partibus videtur lex imperare, visui, & auditui, & odoratui, tactui, & gustui, & instrumentis eorum ministris, quæ sunt duplicia, nempe manibus & pedibus: hæc est enim formatio hominis. Ingreditur autem anima, & etiam prius ingreditur principalis facultas qua ratiocinamur, quæ non generatur per deiectionem seminis, vt etiam absq; ea numerus decimus colligatur, per quæ vniuersa actio hominis perficitur ordine. Nam cùm primũ est homo genitus, accipit initium vitæ à patibilibus: ratiocinandi ergo facul-C taté & eam quæ est principalis, dicimus esse animali causam constitutionis: quinetiam hanc partem expertem rationis, & fieri animatam, & esse eius partem. Iam vitalem quidem facultatem, qua continetur vis nutriendi & augendi, & vt in summa dicam, mouendi, sortitus est spiritus carnalis, qui & motu est facillimus, & quoquouersus per sensus & reliquũ corpus procedit, & per corpus primùm patitur. Principalis autem animæ facultas habet liberam eligendi facultaté, in qua existit inquisitio, disciplina, & cognitio. Verũenimuero ordinata est vniuersorum relatio ad vnã principalem facultatem, & propter illam & viuit homo, & certo modo viuit. Per corporeum itaq; spiritum homo sentit, concupiscit, lætatur, irascitur, alitur, augetur: quinetiam per eum ad actiones aggreditur, conuenienter ei quod mens cogitarit & conceperit: postquam autem vicerit cupiditates, regnat principalis facultas. Illud ergo, Non concupisces: non seruies, inquit, carnali spiritui, sed ei imperabis, quoniam caro concupiscit aduersus spiritum & insurgit vt se turpiter & indecorè gerat præter naturam: & spiritus aduersus carnem obtinet imperium, ad hoc vt homo vitam transigat secundum naturam. Num ergo meritò dictus est homo factus esse ad Dei imaginem, non quod attinet ad figuram constructionis, sed quoniam Deus quidem ratione omnia architectatur: homo autem qui euaserit cognitione præditus, ratiocinandi facultate bonas & honestas peragit actiones. Meritò ergo duæ tabulæ duobus spiritibus data præcepta, & ei qui est formatus, & ei qui est principalis,

*Matth. 15.* *Ibidem 16.* *Gal. 5.* *Hic locus est corruptus.*

quæ ante legem tradita fuerunt, dictæ sunt significare, & sensuū motus exprimunt A
per cogitationem,& manifestant per eam quę est ex corpore operationem:est enim ex ambobus comprehensio. Et rursus, vt se habet sensus ad sensile, ita intelligentia ad id quod ea comprehenditur. Sunt autem duplices quoque actiones,aliæ quidem per mentis agitationem ac conceptionem, aliæ verò per operationem. Et primum quidem præceptum decalogi ostendit vnum solum esse Deum omnipotentem, qui populum transtulit ex Ægypto per solitudinem in terram patriam, vt per diuinas quidem operationes comprehenderent vt poterant eius potentiam: ab eorum autem quæ sunt genita abstinerent idololatria, omnem spem habentes in Deo qui est ex veritate. Secunda autem oratio significabat nō oportere assumere, neq; inferre magnā & omni veneratione dignā eius potentiam, quæ quidem est nomē (huius enim solummodo discendi multi sunt adhuc capaces) neq; transferre eius nuncupationem ad res genitas & inanes, quas quidem fecere homines artifices: in his autem is qui est nō ponitur. In identitate enim ingenita, qui est, est ipse solus. Tertia aūt est oratio quæ significat mundū à Deo esse factū: & dedisse nobis septimū diem ad quiescendum, propter eam quæ est in vita afflictionem, & malorum perpessionem. Deus enim est indefessus, & impatibilis, & qui nullius indiget: quiete autē indigemus nos, qui carnem gestamus. Septimus ergo dies prædicatur quies, abstinētia à malis, præparās illum primarium & ex quo cuncta orta sunt diem, qui est verè nostra quies, qui quidem prima quoq; est reuera lucis generatio, in qua omnia simul & cernuntur & possidentur. Ex hoc die prima sapientia & cognitio nos illuminat: lux enim B
veritatis, lux vera, vmbræ expers, qui citra diuisionem diuiditur, spiritus Domini in eos qui sunt per fidem sanctificati, qui est instar luminaris ad eorum quæ sunt agnitionē. Eum ergo sequentes, per totam vitam reddimur impatibiles: id autē est quiescere. Quocirca Solomon quoq; ante cęlum & terrā & omnia quæ sunt, omnipotenti dicit genitam fuisse sapientiam, cuius participatio quæ est per virtutem, non dico per essentiam, docet eos qui hîc fuerint rerum diuinarum & humanarum habere scientiam via comprehensionis. Hæc quoq; sunt obiter reuocanda in memoriam, quoniā de septenario & octonario ingressa est oratio. Qui est enim octonarius, videtur esse omnino propriè septenarius: septenarius autem apertè senarius, & hic quidem propriè esse Sabbatum. Septenarius autem operarius, nam & mundi ortus finitur in sex diebus, & motus Solis qui fit à conuersionibus ad conuersiones seu ab vno tropico ad alterum, perficitur in sex mensibus, per quem partim quidem cadunt folia, partim verò plantæ pullulant, & seminum fiunt perfectiones. Aiunt autem fœtum quoque perfectè absolui mense sexto, hoc est, centum & octoginta duobus diebus & dimidio, vt scribit Polybus quidem medicus in libro de Octomestribus. Aristoteles autem Philosophus in libro de Natura, & Pythagoræi, hinc, vt arbitror, ex mundi ortu ex sententia Prophetæ numerum senarium perfectum existimant, & eum appellant μεσεύθυν & γάμον μεσεύθη quidem, id est, medirectum, quòd sit medium recti, hoc est, decem & duorum: videtur enim ex ęquo abesse ab ambobus: γάμον autē, id est, coniugium: nam vt coniugium generat ex masculo & fœmina, ita sex ex im- C
pari quidem ternario qui dicitur masculus, ex pari autem, nempe binario, qui fœmina existimatur, gignitur: bis enim tria fiunt sex. Tot rursus sunt motus maximè generales, p quos fertur omnis generatio, sursum, deorsum, dextrorsum, sinistrorsum, antè, ponè. Meritò ergo numerum septenarium existimāt esse sine matre & sine prole, Sabbatum interpretantes, & speciem quietis dicentes allegoricè, in qua nec vxores ducunt, nec nuptum dantur amplius. Neq; enim ex numero aliquo ad aliquem sumentibus fit septenarius, neq; ad aliquem sumptus, facit alium ex ijs qui sunt intra duodenarium. Octonarium autem cubum appellāt, cùm septem errantibus inerrantem sphæram connumerantes, per quas fit magnus annus, veluti quædam periodus remunerationis eorum quæ sunt promissa. Ea ratione cùm Dominus quartus in montē adscendisset, fit sextus, & spiritali luce illuminatur, nudata quæ à se proficiscitur virtute, quātum videri poterat ab ijs qui electi fuerant vt viderent, per septimam vocem prædicatus filius Dei, vt illi quidem quiescerent qui de ipso erant persuasi, ipse verò per generationem quam significauit senarius, cū esset insignis octonarius, appareret Deus in caruncula, ostendens potētiam qui numerabatur quidem vt homo, celabatur autem quisnam esset. Nam in numerorum quoq; ordinem refertur senarius: elemētorum aūt consequentia id insigne facit quod nō scribitur. Hîc in ipsis quidem numeris seruatur ordine vnaquęq; vnitas vsq; vd septenarium & octonarium.

A narium. In ordine autem elementorum fit ζῆτα sextum, & η septimum. Surrepto autē nescio quomodo eo quod est insigne ad scribendum, si sic quidem sequamur, fit septenarius quidem sextus, octonarius verò septimus. Quocirca etiam sexto dicitur homo fuisse factus, qui fuit fidelis ei qui est insignis, vt Dominicæ hæreditatis quietem protinus acciperet. Tale quid ostendit etiam hora sexta salutaris œconomiæ, qua homo fuit consumatus. Iam verò ipsorum quidem octo, media sunt septem: septem autem videntur habere sex spatia. Alia est enim illa ratio quando septenarius glorificauerit octonarium, & cæli cælis enarrant gloriam Dei. Figuræ autem eorū sensiles, sunt elemēta quę sunt apud nos vocalia. Sic etiā ipse Dominus dictus est α & ω, principium & finis, per quem omnia facta sunt, & sine ipso factum est nihil. Nō ergo, sicut quidam Dei quietem existimāt, cessauit Deus facere. Nam cùm sit bonus, si cessarit vnquam benefacere, Deus quoq; esse cessabit, quod nefas quidem est dicere. Quieuisse ergo, est ordinasse vt seruaretur citra vllam transgresionem in omne tempus ordo eorum quę facta sunt, & fecisse, vt vnaquæq; creatura cessaret à veteri confusione. Quæ enim diuersis diebus fuerunt creationes, maximæ acceptæ sunt consequentia, vtpote quòd omnia quæ facta sunt, quæ simul creata sunt cum cogitatione, honorem sint habitura ex eo quod est antiquius, nec sit futura par eorum æstimatio, neq; voce fuisset declaratus vniuscuiusq; ortus, si aceruatim & simul omnia fecisse, dicta esset creatio. Oportebat .n. aliquid primū quoq; nominasse. Propterea ergo prima propheticè dicta sunt, cùm omnia simul potestate facta sint ex vna essen-

B tia. Est enim vna, vt opinor, Dei voluntas in vna identitate. Quomodo autem in tempore facta fuerit creatio, cùm si vnà cum ijs quæ sunt tempus quoq; factum fuerit? Iā verò etiam in septenarijs totus mundus circumagitur omnium quæ & viua gignuntur & quæ nascuntur. Septem quidem sunt quorum est maxima potentia, primogeniti Angelorum principes. Porrò autem Mathematici quoq; dicunt esse septem stellas errantes quæ terram administrant, à quibus Chaldæi existimant omnia per consensum quæ ad mortalem vitam pertinent fieri: quo fit vt etiam de futuris quædam promittant dicere. Ex inerrantib. autē septem quidē sunt Pleiades. Vrsę autem constant ex septē stellis, per quas & agricultura exercetur, & nauigatur. Luna verò septimo quoq; die mutat figuram. Et in prima quidem hebdomada, est dimidia sui parte cęsa: in secunda est plena: tertia autem, ab occasu rursus est dimidia sui parte cęsa: & quarta, nō apparet. Quinetiā ipsa quoq;, sicut tradit Seleucus Mathematicus, mutat figuram septies. Ex obscura enim & non apparente fit cornuta lunula: deinde dimidia sui parte cæsa: deinde ἀμφίκυρτος, id est, concaua ac gibbosa & plena: & rursus occidendo concaua & gibbosa, & similiter sui dimidia parte cæsa, & cornuta lunula.

*Septem nostra tonis pulchros lyra personet hymnos,*

scribit quidam Poëta non ignobilis, docens veterem Lyram habuisse septem sonos. Sunt etiam in nostra facie septem instrumēta sensuum: duo quidem oculorum, duo autem meatuum auditus, duo autem narium, & oris septimum. Ætatum quoq; mutationes fieri per septenarium elegiæ Solonis significant hoc modo:

C *Infans septenos postquam compleuerit annos,*
*Producti dentes uallus ut oris erunt.*
*Postquam septem alios Deus huic concesserit annos,*
*Fit pubes, semenq; huic genitale datur.*
*Verùm septem alijs postquam annis creuerit ætas,*
*Densa seges barbæ contegit orta genas.*
*Additus est illi cùm septenarius alter,*
*Vir tum uirtutis fortia signa dabit.*
*Sed monet aduenien s uxorem ducere quintus,*
*Posteritatis & hunc tum meminisse suæ.*
*Solers ingenium, firma & prudentia sexto est,*
*Stulta nec hoc deinceps facta uidere iuuat.*
*Septimus accessit cùm septenarius, atq;*
*Octauus, lingua pollet & ingenio.*
*Nono aliquid possunt, sed iam minuuntur in illo*
*Vires, quis peragunt fortia facta uiri.*
*Sed decimus cum alios septem perfecerit annos,*
*Maturam mortem tristia fata dabunt.*

Rursus in morbis dies criticus, id est, ferens iudiciū, est septimus & quartusdecimus,

in quibus decertat natura aduersus causas morbi efficiẽtes. Alia eiusmodi innume- A
rabilia adducit Hermippus Berytius in libro de septenario. Apertè autẽ mysticam
de septenario & octonario rationem, ijs qui cognoscũt, tradit beatus Dauid sic psal-
*Psal. 89.* lens: Anni nostri sicut aranea meditabuntur. Dies annorum nostrorum in ipsis, se-
ptuaginta anni. Sin autem in potentatib. octoginta anni. Id autem fuerit nos regna-
re. Vt ergo discamus mundum esse genitum, nõ in tempore autem facere Deum exi-
stimemus, subiunxit Prophetia: Hic est liber generationis, & eorum quæ sunt in i-
psis, quando facta sunt, quo die fecit Deus cælum & terram. Illud enim, quãdo facta
sunt, enunciationem significat indiffinitam & expertem temporis. Hoc autem, Quo
die fecit Deus, hoc est, in quo & per quem fecit omnia, & sine quo factum est nihil,
*Psal. 117.* significat eam quæ per filium fit operationem, quem dicit Dauid: Hic est dies quem
fecit Dominus, exultemus & lætemur in ea, hoc est, per eam quæ per ipsum tradita
est cognitionem, diuinis fruamur epulis. Dies enim dictum est verbum quod occul-
ta illuminat, & per quod in lucem & ad generationem accessit vnaquæque creatu-
ra. Et in summa, decalogus per elementum ἰῶτα significat nomen beatum, Iesum
*Decem scribitur per ἰῶτα, quæ est prima litera nominis Iesu* qui est verbum, ostendens. Quinta autem deinceps sequitur oratio, de honore pa-
tris & matris. Deum autem apertè dicit patrem & Dominum: quocirca eos etiam
qui ipsum agnouerunt, appellat filios & Deos. Dominus ergo & pater est, qui est
Creator omnium: mater autem non, vt quidam existimant, est substantia ex qua su-
mus geniti, neque, vt aliqui exposuerunt, ecclesia, sed diuina cognitio & sapientia,
vt dicit Solomon, iustorum matrem appellans sapientiam, & est propter se eligẽda. B
Et rursus, quicquid est bonum & honestum, à Deo per filium cognoscitur. Eam con-
sequitur oratio de adulterio. Est autem adulterium, si quis relicta ecclesiastica & ve-
ra cognitione, & de Deo persuasione, accedat ad falsam quæ non conuenit opinio-
nem, aut in Deos referens aliquid ex ijs quæ sunt genita, & alicuius ex ijs quæ non
sunt simulachrum aliquod constituens, ad transiliendum cognitionem, vel potius
ab ea desiliendum. Ab eo autem qui est cognitione prçditus, aliena est falsa opinio,
sicut vera est ei coniuncta & familiaris. Quocirca prçclarus quoq; Apostolus vnam
*Hiere. 3.* fornicationis speciem vocat idololatriã consequenter Prophetæ qui dicit: Mœcha-
tus est cũ ligno & lapide. Ligno dixit, Pater meus es tu: & lapidi, tu me genuisti. De-
inde quæ est de cæde consequitur oratio. Est autẽ cædes firma ac constans ablatio.
Veram ergo de Deo & eius æternitate orationem qui vult auferre, vt falsum inserat,
dicens vel vniuersum nulla regi prouidentia, vel mundum esse ingenitum, vel ne-
gans aliquid ex ijs quç sunt firma ac stabilia in vera doctrina, is est perniciosissimus.
Post hanc autem est oratio de furto. Quomodo ergo qui aliena furatur, cùm magnã
faciat iniuriam, in ea quç meretur mala meritò incidit: ita qui diuina opera sibi ven-
dicat per fingendi, vel pingendi artem, & dicens se esse effectorem animantium
& plantarum: & similiter qui veram imitantur philosophiam, sunt fures: siue fue-
rit quis agricola, siue pater filij, est minister deiectionis seminum. Deus autem præ-
bens omnium augmentum & perfectionem, adducit ea quæ gignuntur ad id quod
est secundum naturam. Plurimi autem, vnà cum Philosophis, augmenta & mutatio- C
nes tribuunt astris principaliter, quod in se est, vniuersorum patrem priuantes sua
indefessa & inexhausta potentia. Elementa autem & astra, hoc est, potestates quæ
administrant, iussa sunt ea exequi quæ pertinent ad diuinam œconomiam, eaque pa-
rent, & aguntur ab ijs quæ sunt eis imperata, quò ea duxerit verbum Domini: quan-
doquidem diuinç inest potentiç vt omnia occultè operetur. Qui ergo dixerit se ali-
quid excogitasse vel fecisse ex ijs quæ pertinent ad creationem, impij & nefarij in-
cœpti dabit pœnas. Doctrina autem oratio est de omnibus cupiditatibus. Quomo-
do ergo qui concupiscit ea quæ non decęt, cogitur reddere rationem: eodem modo
non permittitur res falsas concupiscere, neque existimare, ex ijs quæ sunt in gene-
ratione, animata quidem per se posse, inanima autem omnino non posse salutem da-
re vel lædere. Et si quis dicat antidotum non posse mederi, & cicutam interimere, la-
tenter callido decipit sophismate. Nihil enim ex ijs operatur absque eo qui herba
& medicamento vtitur, sicut nec securis absq; eo qui scindit, neque serra absque eo
qui secat. Quomodo autem per se quidem non operantur, habent autem aliquas
qualitates naturales, quæ artificis operatione proprium opus efficiunt: ita gene-
rali & vniuersa Dei prouidentia, per ea quæ mouentur propinquius, per submis-
sionem transmittitur ad singularia efficax operatio. Sed vt videtur, Græci Phi-
losophi Deum nominantes, non cognoscunt, quoniam Deum nequaquam colunt

A vt Deum. Quæ enim ipsi philosophantur, vt ait Empedocles, vt quæ per vulgi linguam temerè transierint, effusa sunt, cùm ora parum nouerint vniuersi. Nam vt ars viam excogitat, qua lux quę à sole procedit, per vas vitreum aqua plenum ignescat: ita etiam Philosophia, cùm ex diuina scriptura veluti quandã ignis scintillam acceperit, in paucis visione apprehendit. Certè quomodo eundem aërem spirant omnia animantia, sed alia aliter, & ad diuersum quidpiam: ita etiam plurimi accedunt ad veritatem, vel potius ad id quod de veritate dicitur. Non enim de Deo dicunt aliquid, sed suas affectiones Deo attribuentes exponũnt. Agitur enim ab eis vita quærentibus id quod est probabile, non autem id quod verum. Ex imitatione autem nõ docetur veritas, sed ex disciplina. Non enim vt videamur esse Christum credimus: quomodo nec ad solem, vt in sole tãtum esse videamur, accedimus: sed hîc quidem, vt calescamus, illic autem, vt viri boni & honesti simus, vt simus Christiani, vim facimus. Regnum enim est eorum qui sunt maximè violenti: qui ex inquisitione, disciplina & perfecta exercitatione hoc percipiunt fructus, quòd Reges fiant. Qui ergo imitatur opinionem, ostẽdit etiam anticipatam notionem. Quando autem quispiã accepta rei scintilla, eam intus in anima accenderit desiderio & doctrina, omnia mouet postea vt cognoscat. Quod quis enim non apprehendit, neque ipsum desiderat, neq; suscipit eam quæ ex ipso capitur vtilitatem. Posterius ergo is qui est cognitione præditus, propter finem eorum quæ rectè & ex virtute geruntur imitatur Dominum, quoad eius fieri potest ab hominibus, quadã Dominica accepta qualitate, ad B Dei assimilationem: qui autem nesciunt cognitionem, nec certa possunt regula inquirere veritatem. Fieri ergo non potest vt simus participes contemplationum quæ ducuntur ex cognitione, nisi nos exinaniamus prioribus cogitationibus: sic enim absolutè dicitur communiter veritas de quolibet quod intelligentia percipitur, & de sensili. Iam verò licet etiam videre veritatem picturæ distinctam à vulgari, & musicæ honestatem seiunctam ab impudica. Ergo Philosophiæ quoq; est aliqua veritas separata ab alijs Philosophis, & vera pulchritudo præter adulterinam. Non eæ ergo quæ sunt in parte veritates, de quibus prædicatur veritas, sed ipsa veritas est magna cura & studio indaganda, non quærendo scire nomina. Quod enim de Deo dicitur, non est res vna, sed innumerabiles. Refert autem an Deum dicas, an quæ sunt de Deo. In summa autem, cùm de vnaquaque re dicitur, à substantia distinguenda sunt ea quæ accidunt: ac mihi sufficit dicere Deum esse eum qui est Dominus vniuersorum: per se autem perfectè & absolutè dico Dominum vniuersorum, nullo reliquo quod excipiatur. Quoniam ergo duæ sunt ideæ seu species veritatis, nempe nomina & res, alij quidem dicunt nomina, qui in ornatu & elegãtia versantur orationis, cuiusmodi sunt apud Gręcos Philosophi: res autem sunt apud nos barbaros. Iam verò Dominus non frustra voluit vti vili & humili forma corporis, ne quis speciẽ laudans, & admirans pulchritudinẽ, absistat ab ijs quæ dicuntur: & attendens ijs quæ relinquuntur, abducatur ab ijs quæ percipit intelligentia. Non est ergo versandũ in dictione, sed in ijs quæ significantur. Atq; ijs quidem quæ apprehendi possunt, & nõ C mota sunt ad cognitionem, verbum minimè creditur. Nam corui quoq; voces imitãtur humanas, cùm eius rei quam dicunt nullam habeant notitiam. Intelligens autẽ apprehensio fidem proximè consequitur. Ita etiam dixit Homerus, Hominum pater atq; Deorum, nesciens quisnam sit pater, & quomodo pater. Quomodo autẽ ei qui habet manus, sumere est secundum naturam: & ei qui oculos sanos, lucem videre: ita ei qui fidem acceperit, proprium est esse participem cognitionis, si iacto fundamento aurũ, argentum, lapides preciosos elaborare, & ei superædificare voluerit. Non ergo pollicetur se velle esse participem, sed imperare: neq; se futurum, sed esse regalem, & lucidum, & cognitione præditum. Neq; nomine, sed re ipsa res velle attingere conuenit. Nam cùm sit bonus Deus, propter principalem vniuersæ creaturę partem, cùm eam vellet esse saluam, ad reliqua quoq; facienda est conuersus, hoc eis primùm præbens beneficium ab initio, vt fierent: esse enim melius, esse quàm non esse, quiuis cõfitebitur. Deinde prout erat capax vniuscuiusq; natura, factum est & fit vnumquodq; ad ipsum quod est melius proficiens. Quamobrem nõ est absurdũ datã quoq; esse philosophiam à diuina prouidentia, prius erudientem ad eam quæ est per Christum perfectionem, si non erubescat à barbara cognitione discere Philosophia profectũ ad veritatem: sed sunt pili quidẽ numerati, & viles motiones. Philosophia aũt quomodo nõ est in Verbo? Atqui Sampsoni quoq; data est vis in pilis, vt etiam reiectitiæ artes eorũ quæ sunt in vita, quæ iacent & humi manẽt post excessum

Matth. 11.

animæ, cogitari nō possint absq; diuina potestate. Iam verò diuina prouidentia, dē- A
super ex ijs quæ sunt principalia, tanquā ex capite, peruadit ad omnes. Sicut vnguē
Psal. 132. tū, inquit, quod descendit in barbam Aaron, & in orā vestimenti eius, hoc est, magni
*Deest aliquid, ut sit, non in mundum corporis, sed animæ: uel aliquid eiusmodi.* Sacerdotis, per quem omnia facta sunt, & sine ipso factum est nihil non in mundum corporis. Extrinsecus autem Philosophia populi, est tanquam vestis: Philosophi ergo qui ad proprium sensum sunt spiritali sensu exercitati, pôstquam non partē Philosophiæ, sed eam quæ est per se perfectè & absolutè philosophia, curiose indagauerint, & cum quodam amore veritatis, & citra vllam arrogantiā veritati ferentes testimonium, ex ijs quæ apud eos qui sunt diuersę opinionis rectè dicta sunt profecerint ad intelligentiam, per diuinam administrationem & ineffabilem bonitatē, quę semper quantum fieri potest, ad id quod est melius adducit eorum quæ sunt naturā. Deinde non solùm cum Græcis, sed etiam cum barbaris habuerint consuetudinē, à cōmuni ad suam intelligentiam exercitatione ducuntur ad fidem: tanquā fundamento aūt suscepta vi veritatis, assumunt etiam vlteriorē progressionem ad inquirendū, & exhinc eis quidem gratum est discere, cupientes aūt cognitionem, magno studio contendunt ad salutem. Ea ratione dicit scriptura, spiritum sensus datum esse à Deo artificibus: is autem nihil est aliud quàm prudentia, vis animæ quæ cōtemplatur ea quæ sunt, discernitq; & comparat id quod est consequens, simile & dissimile, præcipitq; & prohibet, & futura coniectat. Pertinet autem non ad artes solùm, sed etiā ad ipsam philosophiam. Cur nam ergo serpens quoque dictus est prudens? Quoniā in maleficijs quoq; potest inueniri consequentia aliqua & discretio, & compositio, & coniectura futurorum, & ideo latent plurima scelera, quoniam mali sibi omni ratione prouident vt possint vitare supplicia. Cùm sit autem multiplex prudētia quæ B
extensa est per totum mundum, & per omnia humana, in vnoquoque eorum mutat appellationem. Et cùm primis quidem causis se applicauerit, appellatur intelligentia: quando autem eam demonstratiua ratione confirmauerit, nominatur cognitio, sapientia, & scientia: quando autem versatur in ijs quæ tendunt ad pietatem, & à principio deductam absque contemplatione acceperit rationem, per operationis quæ est in ipsa obseruationem, fides dicitur: & si in rebus sensilibus id quod videtur constituerit, tanquam in his verissimum, recta opinio: & in ijs rursus quæ admotis manibus fiunt actionibus, ars. Cùm autem absq; primarum causarum contemplatione, similium obseruatione & traductione ad aliquid agendum impulsionem cœperit, & aliquid constituerit, appellatur experientia: eius est proprius ille reuera principalis sanctus spiritus, quam post firmā ac stabilem fidem, postremò per inspectionem ac curationem assumit is qui credidit. Cùm sensum ergo excellentiorem participarit Philosophia, vt ostensum est ex ijs quæ prius dicta sunt: quæ de ijs quidē quę percepta fuerint intelligentia, ratione fit pertractatio, cum electione & assensione, dicitur Dialectica, quę ea quidē quæ dicuntur de veritate, confirmat per demonstrationem, eas autem quæ inferuntur dissoluit dubitationes. Qui ergo dicunt Philosophiam non venire huc à Deo, videntur omnino dicere fieri non posse vt Deus videat C
omnia singularia: neq; eum esse causam bonorum omnium, cùm vnumquodq; eorū sit ex singularibus. Nihil autem ex ijs quæ sunt, omnino constiterit, si Deus nolit: quòd si eo volente est à Deo Philosophia, ea est cùm talem esse qualis est esse voluērit, propter eos qui non alia ratione abstinerent à malis. Deus enim nouit omnia, nō solùm ea quæ sunt, sed etiam quæ futura sunt, & vt erit vnumquodq;, & eos qui sunt singulares motus præuidens, intuetur omnia, & omnia exaudit, & nudam animam aspiciens intrinsecus, vniuscuiusq; etiam ex singularibus æternam habet intelligentiam, & quod fit in theatris, & in partibus vniuscuiusq;, inspiciendo, circunspiciendo, & conspiciendo, hoc in Deo simul fit & aceruatim. Omnia enim & singula intuetur vna applicatione, nō tamen omnia per principale institutum. Iam enim multa quidem ex ijs quę sunt in vita, per humanam quoque rationem ortum accipiunt, cùm diuinitus acceperint illuminationem. Ecce enim sanitas, per medicinam: & bona corporis habitudo, per alipticam, id est, vngendi artem: & diuitiæ per negotiationem & rei faciendæ artem oriuntur & adsunt, per diuinam quidem prouidentiam, per humanam autem opem & operam. A Deo autem est etiam intelligentia. Atq; diuinæ quidem voluntati maximè obedit bonorum virorum liberum eligendi arbitrium: quoniam bonorum quidem & malorum hominū multa sunt cōmoda cōmunia, fiunt tamē vtilia solis bonis & probis, quorū causa Deus hæc fecit. Ad vsum enim bonorū virorū, enata est vis eorū quæ data sunt diuinitus: quinetiā cogitata eo

rum

A rum qui sunt virtute prædici, per diuinã fiunt inspirationẽ, cùm anima aliquo modo afficitur, & diuina voluntas in humanas animas transmittitur, dum qui sunt singulares diuini administri, ad talia opem ferant ministeria. Nam per gentes & ciuitates sunt distributæ Angelorum præfecturæ: fortasse autem etiam ex ijs sunt deputati singulis. Pastor itaq; & singularum ouium curam gerit: eos maximè prouidendi & visendi tenet studium, qui sunt & præclaro ingenio, & populo multum possunt prodesse. Ii autem sunt qui & ad regendum & docendum sunt apti, per quos prouidentiæ euidentiã apertè ostenditur, quando vel per doctrinam, vel per magistratum aliquem, & administrationem vult Deus benefacere hominibus: vult aũt semper, & ideo mouet eos qui sunt apti ad ea vtiliter efficienda quæ pertinent ad pacem & virtutem & beneficẽtiam. Quicquid autem est ex virtute, & à virtute oritur, & refertur ad virtutem: & aut ad hoc datur vt sint boni, aut ad hoc vt ij qui sunt boni, vtantur ijs commodis quæ sunt secundum naturam: adiuuat enim & in vniuersis, & in singularibus. Quemadmodum ergo non est absurdum, vt qui diabolo insolentiam tribuũt & iniustitiam, eum rei bonæ & quæ est ex virtute, nempe philosophiæ, datorem cõstituant? Contrà autem existimo legis esse proprium & rectæ rationis, reddere quod vnicuiq; conuenit, & quod est eius proprium, & quod ad eum pertinet. Nam vt lyra est solius cytharœdi, & tibicinis, ita commoda bonorum virorum sunt possessiones: vt eius qui est beneficus, natura est benefacere: vt ignis est calefacere, & lucis illuminare. Malum autem non faciet bonus, vt neque lux tenebras, aut ignis frigefaciet: ita contrà, vitium non fecerit aliquid quod sit ex virtute, est enim eius operatio

B malè facere, vt tenebrarum, oculos cõfundere. Non est ergo vitij opus Philosophia, quæ facit homines virtute præditos: restat itaq; vt sit Dei, cuius solum opus est benefacere: & quęcunq; à Deo dantur, rectè & dantur & accipiuntur. Porrò autem si vsus philosophiæ non est malorum, sed datus est Græcorum optimis & præstantissimis, hinc quoq; clarum, à quo data sit, à prouidentia scilicet, quæ vnicuiq; distribuit pro meritis ea quæ conueniunt. Meritò ergo Iudæis quidem lex, Græcis autem data est philosophia vsq; ad aduentum: hinc autem est vniuersa ac generalis vocatio, ad peculiarem populum iustitiæ, per eam quæ est ex fide doctrinam, per vnum cogente Dominum eo qui est vnus solus Deus amborum, Gręcorum scilicet & barbarorum, vel potius totius humani generis. Philosophiam autem sæpe diximus, id quod per Philosophiam assequitur veritatem, etiamsi sit singulare: iam verò ea etiam quæ bona sunt in artibus, vt in artibus, habent principium diuinitus. Vt autem artificiosè aliquid facere continetur in artis contemplationibus, ita prudenter facere locatur sub prudentia: prudentia autem est virtus, & proprium est eius & alia cognoscere, & ea maximè quæ ad ipsam pertinent. Et sapientia quæ est facultas, nihil est aliud quàm scientia diuinorum & humanorum bonorum. Dei autem est terra & eius plenitudo, bona diuinitus venire ad homines docens dixit scriptura, per diuinam virtutem ac potestatem, perueniente distributione ad humanum auxilium. Iam verò

C sunt tres modi omnis vtilitatis, qua alius alium impertitur: vnus quidem per affectationem, vt pędotriba qui effingit puerum: alius autem per assimilationem, vt qui alterum vt crescat hortatur, eò quòd ipse prior creuerit: & ille quidem adiuuat eum qui discit, hic autem simul prodest ei qui accipit. Tertius autem modus est qui fit iussu, quando pædotriba non amplius informans eum qui discit, nec per se luctam ostendens puero ad imitationem, sed tanquam iam satis exercitato nominatim imperat vt luctetur. Is ergo qui est cognitione præditus, cùm à Deo potestatem iuuandi acceperit, alios quidem iuuat, effingens affectatione, alios verò adhortans assimilatione, alios verò præceptione docens & erudiens. Certè ipse quoque pari ratione adiutus est à Domino. Sic ergo cognoscitur vtilitas quæ à Deo peruenit ad homines, simul adhortantibus Angelis. Etenim diuina virtus præbet bona per Angelos, siue videantur, siue non videantur. Talis etiam fuit modus in aduentu Domini, quãdo & per hominum cogitationes & ratiocinationes virtus aliquid inspirat, & in mentes vim immittit & sensum perfectiorum, promptitudinis & animi alacritatis vehementiam præbens, & ad quæstiones & ad implenda opera. Exponuntur autem nobis quoq; nihilo secius ad imitationem & assimilationem, verè admirabilia & sancta virtutis exempla per res gestas quæ scriptæ sunt. Porrò autẽ genus quoque actionis est manifestissimum & per testamenta Domini, & per leges quæ sunt apud Græcos, quinetiam per ea quæ sunt præcepta in Philosophia. Et vt semel dicam, omnis vtilitas quæ ad vitam pertinet, suprema quidem ratione, à Deo omni-

potente, qui præest omnibus patre, perficitur per filium, qui etiam propterea est A
1. Timot. 4. Seruator omnium, inquit Apostolus, maximè autẽ fidelium. Proximè autem ab ijs quæ sunt proxima singulis, per iussum & præceptionem eius qui est propinquus primæ causæ, nempe Domino. Qui est autem apud nos cognitione prædictus, semper versatur in ijs quæ sunt præcipua. Sed si quando est ei otium, & tempus relaxandi animi ab ijs quæ sunt præcipua, loco alterius recreationis, Græcam quoque attingit philosophiam, vt qui sit bellarium ad cœnam illaturus, non vt qui neglexerit ea quę sunt præstantiora, sed vt qui acceperit quãtum decet, idq; propter eas quas dixi causas. Qui autem in Philosophia appetunt ea quæ non sunt necessaria, sed superuacanea, & solùm contentiosis vacant sophismatibus, discedunt ab ijs quæ sunt necessaria & præcipua, rationum vmbras verè persequentes. Ac bonum quidem est scire omnia: cui autem imbecillus est animus ad multarum disciplinarum suscipiendã peritiam, ea sola eliget quæ sunt præcipua & meliora. Nam quę est reuera scientia, quã dicimus solũ habere eum qui est præditus cognitione, est firma ac stabilis cõprehensio per constantes ac stabiles rationes deducens ad causæ cognitionẽ. Qui habet aũt scientiã eius quod verũ est in re aliqua, quæcunq; ea sit, in eadẽ habet etiã eius quod verũ est scientiã. Illa ergo oratio mihi videtur rectè se habere, an sit philosophandũ: eam enim hoc ipsum consequitur. Sed etsi nõ sit philosophandũ, non enim aliquid condemnarit quispiam, si non prius nouerit, est ergo philosophandum. Hæc cùm ita se habeant, oportet Græcos discere per legem & prophetas, colere vnum Deum
1. Cor. 8. qui est verè omnipotens. Deinde doceri per Apostolum: Nobis aũt nullum est simulachrum in mũdo, quoniam in rebus genitis nihil potest Dei referre imaginem. Prę- B
terea doceri, quòd nec eorum quos colunt simulachra sunt imagines: neq; enim figura tale est genus animarum, cuiusmodi fingunt Græci statuas. Non cadunt enim animæ sub aspectum, non solùm quæ sunt compotes rationis, sed etiam animæ aliorum animantium. Corpora autem ipsarum, nunquam fiunt partes ipsarum animarum, sed instrumenta, vt quibus aliæ quidem insideant, aliarum verò ea sunt vehicula, aliarum verò alio modo possessiones. Sed nec fieri potest vt instrumentorum expressè imitentur imagines. Fingat enim Solem, vt videtur, aliquis & Iridis imaginẽ repræsentet coloribus: postquam autem simulachra reliquerint, tunc audient scri-
Matth. 5. pturam: Nisi abundauerit iustitia vestra plus quàm scribarum & Pharisæorum, qui iustificantur per abstinentiam à malis, cum eo quòd cum ea quæ est in his perfectionẽ, proximũ quoq; possitis diligere & ei benefacere, non eritis regales. Augmẽtum enim eius, quæ est ex lege iustitiæ, ostendit eum qui est præditus cognitione. Sic cùm fuerit aliquis collocatus in capite quod suum regit corpus, cùm peruenerit ad summum fidei, ipsam, inquam, cognitionem circa quam sunt omnes sensus, assequetur similiter summam hæreditatem. Cognitionem autem obtinere principatum, apertè ostendit Apostolus ijs qui possunt perspicere, hoc modo scribens Græcis illis
2. Cor. 10. Corinthijs: Spem autem habentes augescente fide vestra fore, vt magnificemur secundum regulam nostram in abundantia, vt in ijs quæ sunt supra vos euangelizem. Non dicens extensionem prædicationis quæ fuit in loco, quoniam fidem quoque C
Act. 17. dicit abundasse in Achaia. Fertur autem in Actibus quoque Apostolorum, Verbum prædicasse Athenis: sed docet cognitionem, quæ est perfectio fidei, abundare vltra catechesim, conuenienter maiestati doctrinæ Domini, & regulæ ecclesiasticę. Quocirca paulò etiam inferius subiungit: Si autem sum imperitus sermone, sed non cognitione. Cæterùm qui ex Græcis gloriantur, quòd ab eis comprehensa fuerit veritas, dicant nobis à quònam glorian tur se didicisse. A Deo quidem non, dixerint: ab hominibus autem confitentur. Et si hoc ita est, aut à seipsis serò didicerint, sicut certè ex ipsis quoq; quidam insolenter gloriantur: aut ab alijs similibus. Sed non sunt fide digni de Deo dicentes homines, quatenus homines: neque enim qui homo est, potest pro dignitate de Deo vera dicere: imbecillus & morti obnoxius, de ingenito, & eo in quẽ nõ cadit interitus: & opus de eo qui fecit. Deinde qui nõ potest de seipso vera dicere, an nõ multò magis ne de Deo quidem ei credendũ est? Quantũ enim abest homo à Dei potestate, tantũ est etiam eius oratio imbecilla, etiãsi nõ Deũ, sed de Deo dicat, & verbo diuino. Est enim imbecilla natura humana oratio, & quæ nõ possit Deũ dicere, nõ dico nomẽ, est enim hoc cõmune non solùm Philosophis, sed etiam Poëtis nominare, neq; essentiã, neq; enim potest fieri, sed Dei vim & opera. Quanquã qui Deũ sibi adscribunt magistrũ, vix perueniunt ad Dei notitiam, opẽ eis ferente gratia ad quantulamcunque cognitionem, vtpote volũtate voluntatem,
&

A & sancto Spiritu sanctum Spiritũ contemplari assuefacientes, quoniam spiritus scrutatur Dei profunda. Animalis autem homo non capit ea quæ sunt Spiritus. Sola ergo est à Deo tradita, quæ est apud nos doctrina, à qua dependent omnes fontes sapientiæ, quicunq; ad veritatem tanquam ad scopum feruntur. Venientis certè ad homines Domini qui nos erat docturus, innumerabiles fuere significatores, annunciatores, præparatores, præcursores ab alto ex mundi constitutione, per opera, per verba præsignificantes, prædicentes esse venturum, & quomodo, & quando, & quæ'nã signa. Eminus certè lex præmeditatur & prophetia. Deinde præcursor ostendit præsentem, post quem prædicatores docentes aduentus virtutem significant. Philosophi Græcis solis, neque ijs omnibus placuere, sed Platoni quidem Socrates, & Xenocrati Plato, Aristoteles Theophrasto, & Cleanthi Zeno, qui suis solis persuaserũt asseclis. Magistri autem nostri verbum non mansit in sola Iudæa, sicut Philosophia in Græcia, sed diffusum est per totum orbem terræ, Græcorum simul & barbarorum gentibus & vicis & totis vrbibus persuadens, totas domos & seorsum vnumquenque ex ijs qui audierunt, & ex ipsis etiam Philosophis non paucos iam traducens ad veritatem. Et Græcam quidem philosophiam si quiuis magistratus prohibuerit, ea statim perit: nostram autem doctrinam à prima vsque prædicatione prohibent simul Reges & Tyranni, & singuli Duces & magistratus cum vniuersis satellitibus, & innumerabilibus etiam hominibus, in nos belligerantes, & nos pro viribus exexcindere conantes. Illa autem magis etiam floret: non enim emoritur vt doctrina humana, neque flaccescit vt donum imbecillum. Nullum enim Dei donum est imbecillum: manet autem eiusmodi vt prohiberi nequeat, cùm prædictum tamen sit fore, vt ea patiatur persecutionem. Deinde de Poëtica quidem dicit Plato: Res quędam leuis & sacra est Poëta, nec potest versus facere priusquam fuerit Deo afflatus & mente excesserit. Democritus quoq; similiter: Poëta autem quæcunque quidem scripserit cum Dei afflatu & sacro spiritu, sunt valde pulchra. Scimus autem qualia dicunt Poëtæ. Omnipotentis autem Dei prophetas, qui instrumenta fuere diuinæ vocis, nemo stupuerit. Eius ergo qui est cognitione præditus veluti statuam effingentes, iam quidem ostendimus, quæ'nam sit eius morum magnitudo & pulchritudo, veluti describentes. Qualis autem sit in contemplatione rerum naturalium, postea ostendetur, cùm de ortu mundi tractare cœperimus.

1. Cor. 2.

*Adieci uocabula duo, quæ in Græco uidebantur deesse, nẽpe, Philosophi Græcis.*

B

FINIS LIBRI SEXTI.

# CLEMENTIS ALEXANDRINI STROMATVM

C

## LIBER SEPTIMVS.

IAM verò tempus est vt Græcis ostendamus, solũ esse verè pium ac religiosum, eum qui est cognitione præditus: vt cùm didicerint Philosophi, qualis sit is qui verè est Christianus, suam damnent inscitiam, vt qui temerè quidem & inconsideratè nomen persequantur: nullo autẽ iudicio eos impios, & à Deo alienos vocent, qui norunt eum qui verè est Deus. Oportet autem ad philosophos euidentioribus vti rationibus, vt ex sua ipsorum doctrina exercitati iam possint exaudire, etiam si seipsos nondum dignos præbuerint, vt essent facultatis credendi participes. Dictionum autem Propheticarum non meminerimus in præsentia, tempore oportuno postea vsuri scripturis. Quæ autem ab eis significantur indicabimus, Christianismũ summatim describentes, ne interrumpamus orationis continuationem, si vnà complectamur scripturas, idq; ijs qui nondum intelligunt earum dictiones. Postquã aũt ostenderimus ea quæ significantur, tunc eis cùm crediderint, ex redundanti copia aperientur scripturæ. Quòd si ea quæ à nobis dicuntur, videantur aliquibus ex vulgo diuersa à scripturis Domini: sciendum est ea illinc & spirare & viuere, & cùm ex eis argumentũ habeãt, se sententiam solam, non dictionẽ, profiteri adducere. Nimia enim pertractatio quæ

non sit in tempore, meritò videri potuerit esse superuacanea: & non considerare o- A
Psal.118. mnino id quod instat & vrget, nimiæ fuerit socordiæ & egestatis. Verè autem beati sunt qui scrutantur testimonia Domini: in toto corde exquirent ipsum. De Domino autem testimonium ferunt lex & Prophetæ. Est ergo nobis propositum ostendere, eum solum qui est cognitione præditus, esse sanctum, & ritè eum qui est verè Deus colere prout eius decet maiestatem: eum autem qui Deum colit vt eius maiestatem decet colere, consequitur Dei amor, & in Deum pietas. Quicquid ergo est excellens & superius, existimat esse honorabile pro dignitate: & in rebus quidem sensilibus, esse honorandos magistratus & parentes, & omnem presbyterum: in ijs autem quæ docetur, antiquissimam philosophiam & vetustissimam prophetiam: in his autem quæ intelligentia percipiuntur, id quod est vetustius: in generatione, tẽpore & principio carens principium: & eorum quæ sunt primitias, filium, à quo discere eam quę omnia superat causam, nempe patrem vniuersorum, quæ quidem est vetustissima, & omnium beneficentissima, & voce non vtiq; traditur, sed cultu & silentio cum sancta admiratione est colenda & veneranda: & perquam propriè quidem dicitur à Domino, quantum possunt audire ij qui discunt, intelligitur autem ab ijs qui à Domino electi sunt ad cognitionem, est eorum qui sunt, vt ait Apostolus, exercitati sensibus. Dei ergo cultus est continua animæ cura ei qui est præditus cognitione, & eius perpetua in Deo occupatio per charitatem quæ nunquam intermittitur. Eius enim cultus qui versatur circa res hominum, vnus quidem est qui reddit meliores: alius verò, qui seruit: medicina quidem corpus, philosophia verò animam reddit me- B
liorem. Ac parentibus quidem à filijs, magistratibus autem ac principibus ab ijs qui parent eorum ditioni, seruiens accedit vtilitas. Similiter autem etiam in Ecclesia, eã quidem quæ facit meliores, presbyteri seruant in ecclesia: eam autem quę seruit, diaconi. Ambobus his ministerijs Angeli Deo seruiunt in dispensatione & œconomia rerum terrenarum: & ipse qui est cognitione præditus, qui Deo quidem inseruit, hominibus autem ostendit eam quæ meliores facit contemplationem, quomodocunque ad erudiendum fuerit constitutus, ad hominum correctionem. Ille enim solus est pius ac religiosus, qui pulchrè ac citra vllam reprehensionem, in rebus humanis Deo seruit. Quomodo enim plantarum cultura est optima, per quam nascuntur & importantur fructus, scientiæ & agriculturæ experientia hominibus vtilitatem afferens: ita eius qui est cognitione præditus, pius ac religiosus Dei cultus, eorum hominum fructus qui per ipsum crediderunt in se accipiens, cùm plures ad agnitionem veniant, & per ipsam salui fiant, optimum importat prouentum per experientiam. θεοπρέπεια autem, ita enim vocatur cultus Dei maiestati conueniens, est habitus qui id conseruat quod Deum decet: θεοπρεπὴς, id est, qui cõuenienter Dei maiestati Deum colit, solus fuerit Dei amicus. Is autem fuerit qui nouit quid deceat & scientia & vita, qua sit viuendũ ei qui est futurus, & iam Deo assimilatur. Ea ergo ratione fuerit primum & Dei amans: nam vt qui patrem honorat, amat patrem: ita qui Deum honorat, Deum amat. Qua quidem ratione mihi quoque videntur esse tria effecta cogno- C
scendi potestatis: res nosse: secundum, id efficere quod verbum seu ratio dictauerit: & tertium, posse tradere, prout Dei conuenit maiestati, ea quæ occulta fuerãt apud veritatem. Is ergo cui persuasum fuerit Deum esse omnipotentem, & diuina mysteria didicerit à filio eius vnigenito, quemadmodum fuerit is ἄθεος, id est impius? nam ἄθεος quidem est qui nõ putat esse Deum: δεισιδαίμων autem, hoc est, superstitiosus, qui timet dæmonia, qui omnia refert in Deos, & lignum, & lapidem, & spiritum, & hominem qui viuit è ratione redactum in seruitutem. Fides ergo est nosse Deum, quæ est prima post fiduciam doctrinæ Seruatoris, nullo modo iniusta facere, existimare hoc decere Dei agnitionem. Ea re in terra quidem res est præstantissima homo, qui est maxima in Deum pietate. In cælo autem res est præstantissima, Angelus, qui loco propius & iam purius est æternæ & beatæ vitæ particeps. Perfectissima autem & sanctissima, & maximè principalis, & quæ maximè præest, & est maximè Regia, & longè beneficentissima, est natura filij, quæ est soli omnipotenti propinquissima: ipsa maxima excellentia, quæ omnia ordinat ex voluntate patris, & optimè gubernat vniuersum, indefessa & inexhausta potestate cuncta operans, propterea quòd agit arcanas & abditas respiciẽs notiones. Nunquam enim à sua excedit specula Dei filius, vt qui non diuidatur, non dissecetur, non transeat à loco ad locum, sit autem semper vbiq;, & nequaquam contineatur: tota mens, tota lux paterna, totus oculus, qui omnia videt, omnia audit, scit omnia, potestate scrutatur potestates. Ei subiecta est

A est vniuersa militia Angelorũ & Deorũ, Verbo paterno quod sanctã suscepit œconomiã ac dispẽsationẽ, propter eũ qui subiecit. Per quæ sunt etiã oẽs eius homines: sed alij quidẽ per agnitionẽ, alij verò nondũ: & alij quidẽ vt amici, alij verò vt serui fideles, alij verò, vt absolutè serui. Hic est magister, qui mysterijs quidẽ erudit eũ qui est prȩditus cognitionȩ: & spe bona eũ qui est fidelis: & corrigẽte disciplina per sentientẽ operationẽ, eũ qui est duro corde: hinc est prouidentia priuatim, publicè, & vbiq;. Dei aũt esse filiũ, & eum esse Seruatorẽ & Dñm quẽ nos dicimus, apertè diuinȩ ostendũt Prophetiæ. Hac ratione qui est omnium Grȩcorũ & barbarorum Dominus, persuadet ijs qui volunt: neminẽ enim cogit ab ipso salutem accipere, propterea quòd possit eligere, & omnia à se implere ad spem accipiendam. Hic est qui dat Græcis sapientiam per inferiores Angelos. Sunt enim iussu diuino & antiquo per gentes distributi Angeli. Sed pars Domini est opinio credentium. Aut enim omnium hominum curam non gerit Dominus, idq; ei acciderit, aut quòd non possit, quod quidẽ est nefarium, est enim signum imbecillitatis: aut quòd nolit cùm possit, non est autẽ boni affectio: non est ergo socors ob delitias, qui propter nos carnem accepit patibilem. Aut curam gerit vniuersorum, quod quidem pertinet etiam ad eum qui est Dominus vniuersorum. Seruator enim est non horum quidem seruator, illorum verò non. Pro ea autem quã habet vnusquisq; aptitudine, suum diuisit beneficium & Græcis & barbaris, & ijs qui ex eis prȩdestinati quidem fuerant, suo autem tempore sunt vocati, fideles & electi. Neq; ergo vnquã aliquibus inuiderit, qui omnes quidem ex

B æquo vocauit: ijs autem qui eximiè crediderunt, honores tribuit eximios. Neq; ab alio prohibitus vnquam fuerit, qui est omnium Dominus, & maximè boni & omnipotentis patris voluntati seruiens. Sed neq; Dominum impatibilem, qui sine principio est genitus, vnquã tangit inuidia: sed nec res hominum ita habent, vt eis possit inuidere Dominus. Alius autem est qui inuidet, quem etiam tetigit affectio. Sed nec dici potest Dominũ nolle dare salutem humano generi propter ignoratiõẽ, quòd nesciat quomodo sit gerenda cura vniuscuiusq;. Ignoratio enim Deum non tangit, qui ante mundi constitutionẽ fuit patris consiliarius: hæc erat enim sapientia quã Deus delectabatur omnipotẽs. Dei enim virtus siue potestas est filius, vtpote ante omnia quæ sunt genita, Verbum patris maximè principale, & eius sapiẽtia, propriè etiã dici potuerit magister eorũ qui per ipsum sunt formati. Sed neq; ab aliqua voluptate abstractus relinquit vnquã hominum curationẽ, qui cũ suscepisset carnem quȩ natura genita fuerat patibilis, ad impatibilitatis habitũ eam erudijt. Quomodo autẽ est Seruator & Dominus, si non est omniũ Seruator & Dominus? Sed est quidẽ Seruator eorum qui crediderunt, propterea quòd scire voluerint: eorũ autẽ qui non crediderũt est Dominus, si cùm potuerint confiteri, propriam & eis conuenientem acceperint beneficentiam. Omnis autem Domini operatio, relationem habet ad omnipotentem, & est filius paterna quædam, vt ita dicam, operatio. Nunquam ergo seruator habet odio homines, qui etiam propter suã excellentem benignitatem, & in homines charitatẽ, non despecta carnis humanæ imbecillitate, sed ea indutus, ad cõ

C munem venit hominũ salutem: est enim communis fides eorum qui elegerunt: sed neq; propriũ opus vnquã neglexerit, quòd soli ex alijs animalibus homini notio & mentis perceptio indita sit à creatione, neq; alia melior & conuenientior hominum administratio Deo fuerit, quàm quæ est ordinata. Semper ergo conuenit ei quod est secundum naturam melius ac præstãtius, vt præsit ei quod est deterius, & eius quod non potest aliquid rectè regere, ei detur administratio. Est aũt id quod verè regit & præest, diuinũ Verbum, & eius prouidentia, quæ omnia quidem respicit, nullius autem ex ijs qui ad eam pertinent despicit curationem. Ii autem qui ad ipsum pertinere, & ei esse coniuncti elegerunt, fuerint qui per fidem initiantur. Hic omniũ bonorum, voluntate patris omnipotẽtis, author & causa filius, est primus effector motus, potestas quȩ sensu non potest comprehendi. Non enim id quod erat, visus est ijs qui non poterant capere propter imbecillitatẽ carnis. Cùm ergo carnem accepisset sensilem, venit ostensurus hominibus sufficientes esse eorum vires, vt possint obedire mãdatis. Cùm sit ergo virtus paterna, facilè superat ea quȩ voluerit, ne minimũ quidem relinquens, cuius curam non gerat eius administratio. Neque enim totum ab eo vtiq; rectè esset effectũ. Maximȩ autẽ, vt arbitror, potestatis est omnium partiũ etiam vsq; ad minimã, accurata examinatio, peruadẽs ad primũ vniuersorum administratorẽ, qui ex voluntate patris gubernat omniũ salutem, alijs ordinatis qui ad alios perfectos respiciunt, donec perueniatur ad magnum põtificem. Ab vno enim

désuper principio, quod conuenienter voluntati operatur, dependét prima, secunda, & tertia. Deinde in summo fine eius quod apparet, beati positi sunt Angeli, atque adeo vsque ad nos ipsos, alij sub alijs sunt collocati, qui ex vno & per vnum & seruantur & seruant. Quomodo ergo vel minima pars ferri vnà mouetur spiritu lapidis magnetis, extensa per multos annulos ferreos: ita etiam qui sunt virtute præditi, diuino spiritu attracti, cum prima mansione coniunguntur, deinceps autem alij vsque ad postremam. Qui autem sunt mali ex imbecillitate, cùm propter iniustam imbecillitatem in malum habitum inciderint, vt qui nec teneant nec teneantur, circunfluunt circumacti animi perturbationibus, humíque décidunt. Lex enim hæc ab alto data est, vt qui velit eligat virtutem. Quocirca præcepta quoque quæ & in lege, & ante legem erant, non legibus (iusto enim non est lex lata) statuerunt vt qui elegisset quidem, æternam vitam & beatum præmium acciperet: qui autem rursus vitio esset delectatus, côcessere vt versaretur cum ijs quos elegerat: & rursus vt anima quæ assiduè euadit melior ad acquirendam virtutem, & parandam iustitiam, meliorem locum accipiat in vniuerso, vt quæ per vnumquenque profectum extendatur ad habitum impatibilitatis, donec peruenerit ad virum perfectum, nempe ad cognitionis simul & hæreditatis excellentiam. Salutares hæ conuersiones, pro ordine mutationis, diuiduntur, & temporibus, & locis, & honoribus, & cognitionibus, & hæreditatibus, & ministerijs, vsque ad eam quę transcendit contemplationé, & est proxima Domino in æternitate. Quod est autem amabile, adducit ad sui contemplationem, quemlibet qui se totum applicauit ad cognitionem per dilectioné cognitionis. Quocirca præcepta dedit & priora & posteriora, ex vno fonte hauriés Dominus, nec eos qui erant ante legem, sine lege esse nihili pendés: nec eos qui non audiebant barbaram philosophiam, ferri effręnatos permittens. Nam cùm illis quidem præcepta, his verò præbuisset philosophiam, incredulitatem conclusit ad aduentum, quo tempore est inexcusabilis quisquis nó crediderit. Ab alio enim & Gręco & barbaro profectu, deducit ad eam quæ est per fidem perfectionem. Si quis autem ex Græcis, transgressus id quod præcedit Græcæ philosophiæ, protinus ad veram aggressus est doctrinam, is etsi sit planè rudis, longo superauit interuallo, cùm salutis compendium per fidem elegerit ad perfectionem. Quęcunque ergo nihil impediebant quò minus esset homini liberum eligendi arbitrium, effecit vt ea ad virtutem opem ferrent, vt aliqua quidem ratione ijs etiam qui possunt obscurè & exiliter dispicere, is qui reuera est solus vnus omnipotens, bonus appareat Deus, à seculo in seculum dás saluté per filiũ. Is rursus nulla ratione fuit author & causa mali: ad vniuersi enim saluté, ab eo qui est vniuersorum Dominus, omnia sunt ordinata, & vniuersè & sigillatim. Est ergo officium iustitię salutaris, vnumquodq; semper deducere ad id quod est melius, prout côtingit & côceditur: ad saluté enim & permansioné eius quod est præstantius, conuenienter suorũ morũ proportioni, administrantur etiam quæ sunt minora. Ecce enim quicquid est virtute præditũ, mutatur in melius, habens propriam causam mutationis, electioné cognitionis, quam habebat anima in sua potestate. Castigationes autem quæ sunt necessariæ bonitati magni qui intuetur iudicis, & per propinquos Angelos, & per varia præiudicia, & per perfectum & omni ex parte absolutum iudicium, cogunt eos qui doloris sensum paulò amplius exuerunt, duci pœnitentia. Alia auté taceo, Dominũ glorificans. Cæterùm dico illas animas cognitione præditas, quæ magnificentia contemplationis, vniuscuiusque sancti ordinis vitæ institutum superant, cùm in quibus beatę Deorum definitæ habitationes sunt distributæ in sanctis fuerint reputatæ, & totæ ex totis transportatæ in melioribus locis meliora loca venerint, non in speculis aut per specula diuinam amplectentes contemplationem, quammaximè autem euidenti & verè puro ac syncero diuinæ contemplationis sempiternæ, sempiterno exceptas conuiuio, quo satiari non possunt quæ supra modum amant animæ, & inexplebili fruentes lætitia in secula nunquam terminanda, permanere, honoratas, vt ita dicam, identitate vniuersæ excellentiæ. Hæc est côtemplatio quæ côprehendi potest ab ijs qui sunt mundo corde. Hæc est ergo operatio eius qui est consumatus in cognitione, cum Deo habere côsuetudiné per magnũ pontificem, pro viribus Domino assimilatũ per omné in Deũ pietatem & religionem, quæ tendit ad hominũ salutem per curá exercendæ in nos beneficentiæ: & rursus per sacra ministeria, & per doctriná, & per bonorum operum effectioné. Iam verò seipsum quoq; creat & fabricatur. Quinetiá eos qui ipsum audiũt, exornat is qui est cognitione præditus, ei quod natura possidet

impatibi-

A impatibilitatē, id quod ex exercitatione eam habet, quoad eius fieri potest, maximè asimilans, idque cùm à Dñi consuetudine & conuersatione minimè posit auelli. Mansuetudo autem, vt ego quidem opinor, & benignitas, magnificusq; & maiestate plenus Dei cultus, sunt regulæ asimilationis, quæ oritur ex cognitione. Has ego dico virtutes esse sacrificium Deo gratū & acceptum, cor à superbia & fastu alienum cum recta scientia, dicente scriptura, esse Dei holocaustum, cùm quisquis ex hominibus assumptus est ad sanctitatē, illuminetur ad eam quę discerni non potest vnionē. Nam seipsos redigere in captiuitatem, & seipsos interimere, veterem hominem qui per cupiditates corrūpitur, interficientes, & nouum suscitantes à veteri mortis conuersione, & Euangelium iubet & Apostolus, depositis quidem animi perturbationibus, à peccato autem effectos omnino alienos. Hoc erat quod lex quoque tacitè significabat, iubens peccatorem tolli de medio, & à morte ad vitā traduci eam quę est ex fide impatibilitatem. Quòd cùm non intelligerent ij qui leges docebant, legem autem accepissent, vt quæ delectaretur rixis & contentionibus, dederunt occasionē ijs qui eam temerè volunt calumniari. Propter quam causam meritò Deo non sacrificamus, qui nullius indiget, & omnia præbuit hominibus: sed eum glorificamus qui est pro nobis sacrificatus, nos ipsos sacrificātes, ad id quod est nullius indigēs, ex eo quod nullius indiget, & ab impatibili ad id quod est impatibile. Deus enim sola nostra salute delectatur. Meritò ergo ei non offerimus sacrificium, qui nō vincitur à voluptatibus, cùm inferius, & nec vsq; ad crassissimas nubes, & longè etiā ab ijs perueniat quæ fit per fumū exhalatio, si modò perueniat. Nullius ergo indiget Deus, nec

B capitur voluptate, nec est aut lucri aut pecuniæ cupidus, cùm sit plenus, & cuilibet quod ortū est & indiget, omnia præbeat. Neq; sacrificijs, sed neq; donarijs, neq; rursus gloria & honore Deus inuocatur, neq; aliquibus eiusmodi allicitur: sed solis viris bonis & honestis apparet, qui iustum nunquā prodiderint vel propter metū intentatū, vel propter promissa magnifica. Qui aūt non perspexere humanæ animæ libertatem, & quæ quod ad vitæ attinet electionem, non potest redigi in seruitutem, quæ ab inerudita fiunt iniustitia ægrè ferentes, Deum non esse existimant. His consimili opinione, qui in voluptatū intemperantiam, & vehementes dolores, & in infortunia præter expectationem incidunt, & casus lamentantur, dicunt non esse Deum: vel si sit, nō omnia intueri. Alij autem sunt quibus est persuasum, eos qui Dij existimantur, sacrificijs & donis posse placari, assentientes & fauētes eorū libidinibus, & neq; volunt credere solum esse eum qui est verè Deus, qui est in veræ iustitiæ idētitate. Pius ergo est ac religiosus is qui est cognitione prędictus, qui primùm quidem sui curā gerit, deinde proximorū, vt fiant quamoptimi. Etenim filius bono patri gratificatur, seipsum præbens bonū & patri similem: & principi ac magistratui is qui eius subiungitur imperio. Nam credere quidē & parēre, est in nostra potestate. Malorū autem causam si quis putauerit & materiæ imbecillitatē, & nō voluntate adductos ignorationis impetus, & rationis expertes propter inscitiam necessitates, cùm eos perinde ac bestias aliquas per disciplinā lōgè superauerit qui est cognitione prę

C ditus, diuinum imitans institutū, bene facit pro viribus hominibus qui voluērint: & si quando fuerit in magistratu constitutus, non secus ac Moses, præerit ad salutem eorum in quos obtinebit imperiū, & mansuefacit id quod est agreste & infidele: honore quidem eorum qui sunt optimi ac pręstantissimi: supplicio autem improborū, quod conuenienter rationi adscriptum est ad disciplinam. Imago enim valde diuina & Deo similis, est viri iusti anima, in qua per præceptorum obedientiam ædificatur & collocatur dux mortalium & immortalium omnium, Rexq; & genitor omnium, bonorum reuera lex & præscriptū, & verbum æternum, qui & priuatim singulis, & cōmuniter omnibus est vnus Seruator. Hic est reuera vnigenitus, & omniū Regis & omnipotentis patris gloriæ figura, quæ ei qui est cognitione præditus imprimit perfectam contemplationē ad suam imaginē, vt sit iam tertia diuina imago, quę quoad eius fieri potest asimilatur causæ secundæ, ei quæ est reuera vita, per quam, veram vitam viuimus, veluti nobis describentes eum qui est cognitione præditus, qui versatur in ijs quę sunt firma ac stabilia, & nec mutari possunt & alterari. Sibi ergo & suis imperans, firmam ac stabilem posidēs cōprehensionem diuinæ scientiæ, germanè ac syncerè accedit ad veritatē. Eorū enim quæ intelligentia percipiuntur cognitio & cōprehensio, iure dicatur firma ac stabilis scientia: cuius ea quidem pars quæ versatur in rebus diuinis, hoc habet munus vt consideret quidem quæ sit prima causa, quid verò sit per quod facta sunt omnia, & sine quo factum est nihil: & quænā

sunt ea quæ sunt vt peruadentia, quæ autem vt continentia: & quæ sunt quidem coniuncta, quæ verò vt disiuncta: & quemnam habeat ordinem vnumquodq; eorum, & quas vires, & quod ministerium afferat vnumquodque. Et rursus in rebus humanis, quid sit ipse homo, & quid sit ei secundũ & præter naturã, & quemadmodũ rursus agere vel pati oporteat, & quænam sint eius virtutes, & quænam vitia, & de bonis & malis & medijs, & quæcunq; tractantur de magni & excelsi animi virtute, de prudentia & temperantia, & de ea quæ est post omnes omni ex parte perfecta & absoluta virtute iustitia. Sed prudẽtia quidem & iustitia vtitur ad parandã sapiẽtiã: magni autẽ animi virtute, non solùm in ferendis casibus, sed etiam in eo quòd resistat voluptati & cupiditati, dolorią;, & iræ: & in summa, cuiuis rei quæ nos vel vi vel fraude aliqua illicit. Non enim oportet vitia & honesta sustinere, sed ꝑsuaderi & ea sustinere, quæ sunt terribilia. Inuenitur aũt dolor quoq; vtilis, & in medicina, & ad erudiẽdũ, & castigandum: & per eum corriguntur mores ad vtilitatẽ hominum. Magni autem & excelsi animi virtutis species sunt tolerantia, ingens spiritus, magnitudo animi, liberalitas, magnificentia. Propter quã causam, nec reprehensionẽ, nec vulgi malam famam apprehendit is qui est cognitione præditus, neq; glorijs subijcitur, neq; assentationibus: & in sustinendis laboribus simul aliquid agens eorũ quæ oportet, & casus omnes magno & forti animo superãs, reuera vir apparet inter alios homines. Et rursus conseruans prudentiam, & moderatus ac temperans in quiete animę, ea quæ præcipiuntur excipiens tanquam quæ sibi conueniant: ea verò quæ sunt turpia, vt aliena auersans, mundanus & supermundanus ornatè & decorè se gerens, & nullo modo delinquẽs. Maximè quidem diues, ex eo quòd nihil concupiscat, vt qui paucis egeat, & cuiusuis boni magnis abundet copijs, propter boni cognitionẽ. Eius enim iustitiæ est primũ munus, amore cõplecti eos qui sunt eiusdẽ generis, & cũ eis agere & versari, & in terra & in cælo. Ea ratione lubenter quoq; impertit & communicat si possideat: & cùm sit comis ac benignus, summo odio habet malos, quoduis maleficium perfectè abhorrens & auersans. Oportet ergo discere esse fidelem & sibi & proximo, & parẽre præceptis. Hic est enim Dei seruus, qui sua sponte se subijcit præceptis: qui aũt non iã propter præcepta, sed propter ipsam cognitionẽ est mũdus corde, is est Dei amicus. Neq; enim nascimur natura virtute præditi, neq; ea natis, vt aliquæ alię partes corporis, accedit postea naturaliter, nã sic non esset voluntariũ, nec laudabile: sed nec ex eorũ q̃ conuenerunt accedente vsu & cõsuetudine, quo modo sermo, virtus perficitur (vitium enim propémodum hoc modo ingeneratur) sed nec ex arte aliqua, siue ex ijs quæ proponunt sibi quæstum, siue ex ijs quæ pertinent ad curam corporis, accedit cognitio. Sed nec ex ijs quę sunt in orbe disciplinis: bene enim cum eis ageretur, si tantùm possent præparare animam & ei ministrare. Nam leges ciuiles, malas actiones fortè possunt reprimere: sed neq; ad persuadendũ comparatæ orationes, cùm versentur in superficie, præbuerint permansionem veritatis quæ constituit scientiam. Philosophia autem Græca veluti præpurgat & præparat animam ad fidem accipiendam, super quam veritas ędificat cognitionem. Hic est verus Athleta, qui in magno stadio, nempe pulchro hoc mũdo, coronatur, veram assecutus victoriam aduersus omnes animi perturbationes. Nam & Agonotheta est omnipotens Deus, & qui brauia seu præmia distribuit est vnigenitus Dei filius, spectatores autem sunt Angeli & Dij: variumque & ex omni genere pugnæ constans certamen, non est aduersus carnem & sanguinem, sed aduersus spiritales potestates quæ per carnes operantur vehementes vitiorum & affectionum motus. His magnis superatis certaminib. & veluti prostrato imminente tentatore, potitus est immortalitate: falli enim non potest Dei sententia in iustissimo iudicio. Ac vocatum quidem est theatrũ ad certamen, in stadio autem decertant athletę: & ex his vtiq; superat qui aliptæ paruerit. Omnibus enim omnia à Deo proposita sunt æqualia, & est ipse alienus à reprehensione: misericordiam autẽ consequitur is qui potest, & potens est is qui voluerit. Hac ratione mentem quoq; accepimus, vt sciamus quod agimus: & illud, Nosce teipsum, hîc est scire propter quid orti sumus: orti autem sumus vt eligeremus obedire præceptis ad hoc vt vellemus esse salui. Hic est Nemesis, per quam Deum non licet effugere: est ergo officium hominis, Deo parẽre, qui variã annunciauit salutem per præcepta. Grati autem animi significatio est confessio: benefactor enim prior incipit benefacere. Qui autem cum ijs, cum quibus par est, considerationibus * prompto & alacri animo acceperit, & mandata custodierit, is est fidelis. Qui autem pro accepto beneficio pro virib. refert gratias per charitatẽ, is iam est amicus.

*ἀμφάσια Nemesis, inde dicta, quòd effugi non possit.*

* ἀναφέρει.

Vna

A Vna est autem ab hominibus præcipua gratiæ relatio, ea facere quæ Deo sunt optima. Nam tanquam proprij fœtus, & in aliquo cognati effectus, magister & seruator accipit vtilitates & correctiones hominum ad propriam gratiam & honorem, sicut etiam damna & offensiones quas accipiunt ij qui ipsi crediderunt, tanquã ingrati animi in se admissa crimina, propriaq; probra & dedecora existimat. Quod enim aliud probrũ ac dedecus Deũ attigerit? Quocirca nec possunt omnino referri gratiæ pro dignitate salutis, si conferantur cũ vtilitate quę à Domino proficiscitur. Quomodo aũt qui vexant possessiones, dominos iniuria afficiunt: & qui milites, eorũ Imperatorẽ: ita Domini est contemptio, eorum qui sunt illi dedicati, vexatio. Quomodo enim Sol nõ solùm cælum, & totum mundum illuminat, super terrã & mare resplẽdens, sed etiam per fenestram & paruũ foramen, vel in intima penetralia domorum lucem emittit: ita Verbum vndiquaq; effusum, vel minima respicit ex ijs quę in vita geruntur. Græci autem sicut hominibus forma similes, ita ijsdem quoq; quibus ipsi, animi perturbationibus, Deos ponunt obnoxios, & quomodo eorum formas sibi similes singuli describunt, vt ait Xenophanes, Æthiopes quidẽ nigros & simos, Thraces autem fuluos & cęruleos: ita etiam animos quoq; assimilant ijs qui eos effingunt, Barbari quidẽ agrestes & efferatis moribus: Græci autẽ mansuetiores, sed in quos tamen cadunt motus & perturbationes. Quocirca necesse est quidẽ vt improbi malas de Deo suscipiant cogitationes, probi autem optimas. Quamobrẽ qui est animo verè regio & cognitione præditus, is cùm & piè Deũ colat, & sit alienus à B superstitione, persuasum habet eũ solum qui est solus Deus, esse honorandum, venerandum, magnificũ, beneficentia omnes complectentem, principem & authorẽ bonorum, malorum autem non esse causam. Atq; de Græcorũ quidem falsa religione satis, vt arbitror, ostendimus in libro qui dicitur Protrepticos, abundè vtẽtes ijs quę ad id faciebant historijs: non sunt ergo repetenda ea quæ apertè dicta sunt. Quod ad notandũ autẽ attinet cùm ad hunc locum peruenerimus, satis est pauca ex multis adducere, ad ostendendum eos esse impios qui Deum pessimis hominib. assimilãt. Aut enim eis Dij læduntur ab hominibus, & qui lęduntur ab hominibus, ostenduntur esse ijs inferiores: aut si non læduntur, quemadmodum cùm non lædantur, perinde ac iracunda anicula ad iram incitata indignantur? vt dicunt Dianam propter Oeneum iratam fuisse Ætolis. Quemadmodũ enim cùm Dea esset, non cogitauit, quod non contemnens Oeneus, sed vel cùm esset oblitus, vel cùm sacrificasset, neglexit? Bene autem ipsa quoq; causam suam defendens apud Mineruam, propterea quòd ei succenseret quòd in templo peperisset, dicit:

*Cruenta quidem spolia gaudes,*
*Cernens detracta ex mortuis,*
*Nec hæc sunt tibi execranda:*
*Si autem ego peperi, graue ducis.*

quãquam cætera quoq; animalia quæ in templis pariunt, eis nullam faciunt iniuriam. Meritò ergo superstitiosi, cùm tam procliues ad iram pertimescant omnia quæ C eueniunt, existimant esse signa & causas malorum. Si mus aram quę erat è luto constructa perfoderit, & cùm nihil aliud haberet, lecythum corroserit: si gallus qui alitur vespere cecinerit, hoc alicuius signum esse statuentes. Talem quendam ludificatur Menander in Comœdia quæ inscribitur Δεισιδαίμων, id est, superstitiosus:

*Quidnam boni mihi accidat ô boni Dei?*
*Nam dexteri alligans calcei corrigiam* Rupi.

Meritò ô nugator, erat enim putrida: tu autem es parcus & sordidus, qui nolis nouos emere. Lepidum est illud Antiphõtis: Nam cùm quidam malè præsagiret ex eo quòd sus porcellos deuorasset, isq; eam vidisset ob sordes eius qui ipsam alebat fame valde attenuatam: De signo, inquit, lætare, quòd cùm sic esuriret, filios tuos non comederit. Quid mirum, inquit Bion, si mus calathum arroserit, cùm non inueniret quod comederet? hoc enim fuisset mirum, si (vt ludens argutabatur Arcesilaus) murẽ calathus comedisset. Rectè certè Diogenes quoq; ad eum qui admirabatur quòd inuenisset pistillum à serpente in gyrum circundatum: Ne mireris, inquit: esset enim illud mirabilius, si vidisses rectum serpentem esse à pistillo circundatum. Oportet enim animantia rationis expertia currere, pugnare, pãrere, & mori: quę cùm illis sint secundum naturam, præter naturam nobis nunquam fuerint:

*Et uolucres multæ ueniunt sub lumina Solis.*

Philemon quoque Comicus talia ridet in Comœdia. Cùm videro, inquit, obseruan-

tem quis sternutarit, vel quis sit locutus, aut respicienté quis sit qui pullo procedat, A
statim in foro sternutat vnusquisq; nostrûm, is secũ ingreditur & loquitur, dicens ci uibus res nõ euenire vt earum fert natura. Deinde sobrij quidem petunt sanitatem: se autem implentes, & in ebrietatibus festis diebus volutantes, morbos ad se attrahunt. Multi autem suspensas quoq; timent scripturas. Lepidè admodum Diogenes, cùm inuenisset scriptum super domum cuiusdam improbi, Insignis victoria, Hercules hic habitat, nihil mali ingrediatur. Et quomodo ingredietur, inquit, dominus ædium? Ii autem ipsi omne lignum, & omnem lapidem pinguem, vt dicitur, adorantes, lanas flauas, & frusta salis, & faces, & scillã, & sulphur timent, incantati à præstigiatoribus per quasdam immundas expiationes. Deus autem qui reuera est Deus, sanctos solos nouit, iusti mores, sicut iniustos, impuros & sceleratos. Videre quidẽ certè licet oua ab his quæ purgantur si fota fuerint, viuificari: atqui hoc nequaquam fieret, si eius ipsius, quod purgatur, mala participarent. Eleganter certè Comicus quoque Diphilus per hæc ridet præstigiatores, Puellas expians Prœtidas, & patrem ipsarum Prœtũ Abantiadem, & anum quintam inter eos, face vna, & scilla vna, quot hominũ corpora, & sulphure & bitumine maris magnũ edentis strepitum, ex quieto sed profundo fluente Oceano. Sed beate aër mitte per nubes Andicyram, vt ex cimice fucum efficiam. Certè rectè quoq; Menander, Si aliquod quidem verum malũ haberes, hos tibi verum medicamentum adhibere oporteret: nunc autem non habes, inane medicamentum inueni ad inane: existima autem id te aliquid iuuare. Abstergant te circumcircà mulieres, & ex tribus fontibus aquam afferant vt te aspergãt, B
salemq; & lentem inijcient: quilibet est mundus qui nullius est sibi mali conscius. Iam verò dicit Tragœdia, Oreste: Quis te perdit morbus? cõsciẽtia ipsa, quoniã sum mihi conscius me perpetrasse grauia. Reuera enim non est alia puritas quàm abstinere à peccatis. Pulchrè ergo dicit etiam Epicharmus: Mundam si mentem habeas, es mundus toto corpore. Porrò autem animas quoq; dicimus oportere prius purgari à malis & improbis dogmatibus per rectam rationẽ, & tunc sic cõuerti ad commemorãda præcipua capita: nam ante mysteriorum quoq; seu sacramentorũ traditionem, exhiberi oportere quasdam expiationes ijs qui sunt initiandi mysterijs, vtpote quòd oporteat impia deposita opinione ad veram cõuerti traditionẽ. Num enim rectè & verè aliquo loco non circunscribimus eum qui nõ potest circunscribi, neq; in templis manu factis cõcludimus eum qui omnia continet? Ædificatorũ autẽ & lapicidarũ, sordidiq; & illiberalis artis quodnam fuerit sanctũ opus? Non sunt ijs meliores qui aërem & id quod continet, vel potius totũ mundum & vniuersum, existimarunt esse dignũ Dei excellentia? Ridiculum enim fuerit, vt ipsi dicunt Philosophi, hominem qui est ludus Deorum, Deum efficere, & ex ludicra arte Deum fieri: quoniam id quod fit, fit idem & simile ei ex quo fit, vt quod fit ex ebore eburneũ, & quod ex auro aureum. Quæ autẽ à vilibus & sordidis hominibus conficiuntur imagines & tẽpla, fiũt ex vana & inutili materia: quare ipsa quoq; fuerint vana, inutilia, materialia, & profana, & vt artem perfeceris, sordes semper participant & illiberalitatem: non sunt ergo vtiq; sacra & diuina artis opera. Quidnam verò poni & collo C
cari potuerit, cùm nihil sit quod nõ sit positum & collocatũ, quoniam omnia sunt in loco? Iam verò quod ponitur & collocatur, ponitur & collocatur cùm prius positũ & collocatũ non esset. Si ergo Deus ponitur & collocatur ab hominibus, fuit aliquãdo non positus, & non locatus, & nec omnino quidem erat. Id enim erat non locatum & positum, quod non erat: quandoquidẽ quicquid non est, ponitur & collocatur: quod autem est, nõ poni & collocari potuerit ab eo quod nõ est, sed nec ab vllo alio, nam ipsum quoq; verè est: restat itaq; vt à seipso. Et quomodo aliquid ipsum seipsum generabit? aut quomodo ipsum quod est, seipsum esse ponet & collocabit? Vtrum cùm prius non esset positum & collocatum, prius seipsum posuit & collocauit? Sed ne sic quidem fuisset, quoniam id quod nõ est, poni & collocari non potest. Et quod existimatũ est esse positũ & collocatũ, quomodo id quod est quod prius habuit, hoc seipsum postea fecerit? Cuius autem sunt ea quæ sunt, quomodo hoc aliquo adhuc opus habuerit? Sed etsi Deus est homini forma similis, perinde ac homo opus habebit nutrimento & tegumẽto & domo, & alijs quæ consequenter accidũt. Nam qui eandem habent formam & easdem affectiones, eodem quoque victu egebunt. Si autem sacrum accipitur duobus modis, nempe & Deus ipse, & id quod est constructum in eius honorem, quomodo non propriè eam quæ in Dei honorem per sanctam agnitionem facta est ecclesiam, Dei sacrum dixerimus, quod est magni
precij,

A precij,& non sordida & illiberali arte constructum:sed neq; manu prestigiatoris ornatum,sed voluntate Dei templum effectũ?Non enim nunc locum,sed electorũ congregationem,appello ecclesiam:melius est hoc templum ad accipiendã Dei dignitatis magnitudinẽ.Animal enim quod est magni precij,ei qui est omni precio dignus, imò cuius precio nihil omnino respondet,consecratum est propter insignem sanctitatẽ.Fuerit aũt magni precij is qui est cognitione præditus,qui est in honore & precio apud Deum,in quo Deus est collocatus, hoc est,de Deo consecrata est cognitio. Hîc diuinã inuenerimus effigiem & sanctã imaginem in iusta anima,quando ea quidẽ fuerit beata,vt quæ est præpurgata, beata aũt efficiat opera. Hic est & quod collocari potest, & quod est collocatũ : hoc quidẽ in ijs qui iam sunt assecuti cognitionẽ, illud aũt in ijs qui possunt fieri, etiamsi nondũ sint digni Dei scientiam accipere. Nã quicquid est crediturũ, iam fidelis Deo & posita in honorẽ imago virtute prædita, Deo est dedicata. Quomodo ergo Deus loco non circunscribitur, neq; animalis figuræ vnquam assimilatur:ita nec in eum similes cadũt affectiones, neq; alicuius indiget, sicut quæ sunt natiua, vt sacrificiũ instar alimenti propter famẽ concupiscat. Quæ tangit affectio,in ea omnia cadit interitus,& ei qui nõ nutritur, cibum præbere est stultitia. Porrò aũt Comicus quoq; ille Pherecrates lepidè in comœdia quę inscribitur Fugitiui,fecit Deos cũ hominibus expostulare de sacris, quòd cũ Dijs sacrificarent,primũ secerneretur id quod eorum dedecori assignaretur, dicendo : Nõ cũ femora ad inguinẽ vsq; valde circumlinxeritis,& lumbos valde tenues,ipsam deinceps spinã tanquam limatã distribuistis nobis tanquã canibus? Deinde cùm vos vestri inuicem pudeat,multis modis contegitis.Eubulus autem qui est ipse quoq; Co- ἐλύμασι.

B micus,hoc modo ipse quoq; scribit de sacrificijs : Caudam solam & femur sacrificatis, tanquam pædiconibus.Et in comœdia Semele introductum Dionysium facit disceptantem: Primùm quidem quòd mihi sacrificant quidam sanguinem & vesicam, cordis autem ne superficiem quidem. Ego enim neque dulci vescor victima,nec femoribus. Scripsit autem Menander: Cùm summos lumbos, bilem, & quæ comedi non possunt ossa Dijs imposuerint,ipsi consumunt alia.An non enim à nidore sacrificiorum vel bestijs est abstinendum? Sin autem reuera nidor est munus deorum qui sunt apud Græcos,cur non prius quoq; coquos in Deos retulerint, qui æquali dignantur beatitudine, & non ipsum adorant caminum qui est huic venerabili nidori propinquior? Quinetiam Hesiodus dicit Iouem deceptum à Prometheo in diuisione carnium,accepisse Hes.in Theo.

*Arte mala ossa bouis nitida pinguedine tecta.*
*Hinc fit ut ossa uiri sacras adolere per aras*
*Assueti,ueteris imitantur originis usum.*

Sed nequaquam dixerint, quæ ex indigentia oritur cupiditate vexatum Deum nutriri. Eum itaq; efficient plantæ similem, vt qui nutriatur absq; appetitione : & bestijs quæ latent in cauernis, eas quidem certè dicunt aut ab ea quæ est in aëre crassitudine,aut etiã ab ipsa proprij corporis exhalatione nutriri, & citra offensionem augeri.Atqui si citra vllam egestatẽ eis Deus nutritur, quid est opus nutrimento ei qui

C nõ indiget?Sin autẽ gaudet honorari,cùm natura nullius indigeat,nõ abs re nos Deum precibus honoramus,&hoc sacrificiũ optimum & sanctissimũ cum iustitia emittimus,iustissimo verbo eum honorantes,per quem accipimus cognitionem,ea quę didicimus per eum glorificantes.Est ergo quod est hîc apud nos altare,terrestris cõgregatio eorum qui sunt dedicati orationib.qui veluti vnam vocem habent communem & vnam mentẽ.Quæ per odoratum aũt accipiuntur nutrimenta, etsi sint diuiniora ijs quæ per corpus,significant tamen respirationem. Quid ergo de Deo dicũt, vtrùm perspirat sicut genus dæmonum?an inspirat solùm,vt aquatilia per branchiorum dilatationem? an circumspirat, vt insecta per compressionem pennarum incisionis?Sed nulli ex his,si sapiant,Deum assimilauerint. Quæ autẽ respirant per pulmonis ad thoracem obiectam dilatationem, ea attrahunt aërem. Deinde si Deo dederint viscera & arterias,& venas,& neruos,& partes, inducent eum nihil differentẽ. Conspiratio autem propriè dicitur in ecclesia.Est enim ecclesia sacrificium. Verbũ quod à sanctis exhalatur animis, cùm sacrificiũ simul aperiatur & tota mẽs Deo. Sed antiquissimã quidem aram in Delo sanctam vulgò iactarunt.Ad hãc autẽ solam dicunt etiam accessisse Pythagorã,cæde & morte minimè inquinatam:aram autem verè sanctam iustam animam, & qui ab ea emittitur suffitum nobis sanctam dicentibus orationem,non credent?Esus autem carnium,vt arbitror,prætextu, excogitata

sunt hominibus sacrificia:licebat aũt alioqui absq; tali cultu simulachrorum, ei qui vellet, vesci carnibus. Quæ enim ex lege fiunt sacrificia, allegoricè nostrã significant religionem, vt turtur & columba quæ offeruntur pro peccatis, emundationẽ partis animæ quæ caret ratione, Deo esse acceptam significant. Si quis aũt ex iustis esu carnium animã non onerat, satis consentanea vtitur ratione, non qua Pythagoras & eius asseclæ, somniantes animæ transmigrationem. Videtur autem Xenocrates seorsum tractans de nutrimento ex animalibus, & Polemon in opere de Vita secundum naturam, apertè dicere, esse inutile quod fit per carnes nutrimentum, iam confectũ & assimilatum animis bestiarũ. Ea ratione Iudæi quoq; maximè abstinent à carne suilla, vtpote quòd hoc animal sit maximè sceleratũ & execrandum, quoniam maximè ex alijs fructus effodit & corrumpit. Sin autem dicant hominibus data esse animantia: nos quoq; id cõfitemur, sed non omnino ad comedendum: sed neq; omnia, sed quæcunq; non laborant. Quocirca non malè Plato Comicus in Comœdia quæ inscribitur Festa, dicit: Ex quadrupedibus autẽ nullum deinceps oporteret nos occidere, præter sues: carnes enim habent suauissimas, & nihil ad nos redit ex sue, præterquã setæ & lutum & clamor. Vnde etiam dicebat Essopus, nõ rectè clamare sues, cùm quãdo trahuntur, maximè intelligãt se ad nihil aliud esse vtiles q̃ ad sacrificiũ. Quocirca Cleanthes quoq; dicebat eos pro sale habere animam, ne carnes putrescerent. Alij ergo eò non vescuntur, vt qui sit inutilis, alij verò, vt qui fructus perimat: & alij eò non vescuntur, quòd sit animal procliue ad coitum. Ea ratione neq; hircum lex sacrificat, præterquã propter solã malorũ amandationem, quandoquidem voluptas est vitij metropolis. Iam verò hircinarum quoq; carnium esum dicunt conferre ad morbum comitialem: dicunt autem maximum augmentũ fieri ex carnibus porcinis. Quocirca ijs quidem qui corpus exercent est vtilis, ijs aũt qui ipsam conantur augere animam, propter eam quæ ex esu carnium ingeneratur hebetudinẽ, non vtique. Fortasse aũt ex ijs qui sunt præditi cognitione, exercitationis quoq; gratia abstinuerit à carnibus aliquis, & ne caro nimis luxuriet, & nimio impetu feratur ad rẽ Veneream. Vinum, enim, inquit Androcydes, & carnis ingurgitationes, corpus quidem robustum efficiunt, animam verò debiliorem: est ergo impium & à religione alienum hoc nutrimentum ad perfectam intelligentiam. Quocirca Ægyptij quoq; in ijs quæ eorum ritu fiunt sanctificationibus, non permittunt Sacerdotibus vesci carnibus: & auiculis vtuntur quàm leuissimis: & pisces non tangunt, cùm propter alias quasdam fabulas, tum maximè quòd eiusmodi cibus carnem reddat humidam. Iam verò animantia quidem terrestria & volucria, eundem quem nostræ animæ, aërem inspirantia, nutriuntur, vt qui eiusdem generis aëre habeant animam. Pisces autem ne hunc quidem dicunt inspirare aërem, sed illum qui cum aqua fuit cõtemperatus statim in primo mundi ortu, sicut etiam cum reliquis elementis, quod etiam est indicium materialis permansionis. Oportet ergo Deo offerre sacrificia, non sumptuosa ac splendida, sed quę sunt pia & ei accepta, & suffitum illum in lege compositum, qui constat ex multis linguis & vocibus in oratione, vel potius qui ex diuersis gentibus & sexibus per donum testamentorum construitur in vnitatem fidei, & in laudibus congregatur, mente quidem pura, iusta autem & recta vitæ institutione, ex sanctis operibus & iusta oratione. Nam quis adeò stultus, vt ait lepor Poëticus, & tam ignaui est animi,

*Tam credulus uir est quisquam, ut speret* Deos,
*Quæ non habent carnem ossibus, tosta & bile,*
*Quæ esurientes neq; ipsi ederent canes,*
*Lætarier, munus sibiq; hoc poscere,*

& ijs qui hæc faciunt gratiam reddere, seu sint piratæ, seu latrones, seu tyranni? Nos autem dicimus ignem sanctificare, non carnes, sed animas peccatrices, ignem dicentes non illum edacem & omnia cõsumentem & planè sordidum & illiberalem, sed prudentem, qui peruadit animam per ignem transeuntem. Iubemur autẽ colere & honorare eundem, quem & verbũ esse & Seruatorẽ & ducem habemus persuasum, & per ipsum, patrem, nõ selectis diebus, vt aliqui alij, sed continenter per totam vitam hoc agentes, & modis omnibus. Certè genus electum, per præceptum iustificatum, Septies, inquit, laudem dixi tibi. Vnde nec in definito loco, neq; in templo selecto, neq; diebus aliquib. festis & præstitutis, sed per totam vitam is qui est præditus cognitione, in omni loco, etiam si per se sit solus, & si habuerit aliquos qui similiter crediderunt, Deũ honorat, hoc est, agit gratias propter rectæ vitæ cognitionẽ. Si aũt

alicuius

A alicuius boni viri præsentia, propter obseruantiam & reuerentiã eius quod est præstantius, eum qui conuersatur semper format & effingit: quemadmodum is qui cũ Deo semper est præsens, per cognitionem, & vitam, & gratiarum actionem, nõ iure se melior semper euadat in omnibus & factis & verbis & affectionibus? Talis est is cui est persuasum, Deũ vbiq; adesse, non aũt arbitratu eũ certis ac definitis locis esse conclusum: vt cùm se absq; eo esse aliquando existimauerit, noctu & interdiu intẽperantiæ se dedat & libidini. Per totam ergo vitam diem festũ agentes, vbiq; & omni ex parte Deum adesse persuasi, laudãtes agros colimus, laudantes nauigamus, & in omni alio vitæ instituto vt decet ex arte versamur. Propius aũt Deo iungitur & familiaris efficitur is qui est cognitione præditus, vt qui simul quidẽ grauitatem & hilaritatem ostẽdat in omnib. Grauitatẽ quidem, propterea quòd ad Deũ cõuertatur: hilaritatẽ aũt, propterea quòd humana bona reputet quæ dedit nobis Deus. Videtur aũt cognitionis excellentiam Propheta sic ostendere: Benignitatem & disciplinam & cognitionẽ doce me, per adscensum amplificans id quod est principale perfectionis. Hic ergo homo qui est verè regalis, sacerdos, sanctus Dei, quod quidẽ nũc quoq; seruatur apud eos qui sunt doctissimi ex barbaris, genus sacerdotale ad regnũ proueheẽtes: hic ergo nequaquam se tradit cõfusæ turbæ dominæ theatrorum. Quæ aũt dicuntur & fiunt & videntur voluptatis illicientis gratia, ne in somnis quidem admittit. Neq; has ergo quæ visu percipiuntur voluptates, nec eas quæ in alijs fruendis capiuntur varietates: vt sumptuosos & magnificos suffitus qui odoratum alliciunt, aut cõdimenta ciborũ, & quæ ex varijs vinis sentiuntur delitias gustum inescan-

B tes: neq; odoriferas ex varijs floribus contexturas, quæ per sensum animam effœminant: sed honestum rerum omnium vsum ad Deum semper referens, & cibi, & potus, & vnctionis, vniuersorum datori offert primitias, gratias agens & per donum & vnctionem, & per Verbum ei datum, ad conuiuiales epulas rarò veniens, nisi quòd amicitiam concordiamq; & consensionem profitetur conuiuium, vt veniat ei persuaserit. Est enim ei persuasum Deum omnia scire & audire, nec vocem solùm, sed etiam cogitationem. Nam auditus quoq; qui fit in nobis per meatus corporeos, non apprehendit per vim corpoream, sed per quendam sensum animalem, & intelligentiam quæ discernit voces aliquid significãtes. Non est ergo Deus humana forma præditus, vt audiat, neq; ei sensibus est opus, vt placuit Stoicis, maximè auditu & visu, non posse enim vnquã aliter apprehendere. Sed & aëris ad patiendum facilitas, & acerrimus Angelorum consensus, & vis quæ animæ attingit conscientiam, inexplicabili potestate etiam absq; sensili auditione simul cum cogitato cognoscit omnia. Quòd si quis dicat vocem quæ inferius circa aërem voluitur, ad Deum nõ peruenire: at cogitata sanctorum secant non solùm aërem, sed totum mundum. Occupat autem vis diuina perinde ac lux, totam animam perspicere. Quid verò, non etiam vota & instituta ad Deum perueniunt, suam vocem emittentia? an non ea etiam transmittuntur à conscientia? Quam'nam vocem expectauerit, qui secundum propositũ electum etiam ante ortum, & id quod futurum est tanquam quod sit cognouit? An

C non profundum cuiusuis animæ elucescere facit lux potestatis, cùm penetralia, vt ait scriptura, scrutetur lux potestatis? Totus auditus, & totus oculus, est, vt his nominibus vtar, Deus. Nullam ergo religionem, nec vllum Dei cultum seruat, neq; in hymnis, neq; in sermonibus, sed neq; in scripturis aut dogmatibus, quæ non conuenit de Deo opinio, ad humiles & indecoras deflectẽs notiones & cogitationes: quo fit vt multorum laudatio nihil differat à maledicto, propter veritatis ignorationem. Atq; quorum quidem sunt appetitiones, cupiditates, & vt semel dicam, animi impulsiones, eorum sunt etiam precationes. Quamobrem nemo potum desiderat, sed bibere potum: sed nec hæreditatem, verùm esse hæredem: ita autem neq; cognitionem, sed nosse: neq; enim rectam rempublicam, sed rempublicam gerere. Eorum ergo sunt precationes, quorum petitiones: & eorum sunt petitiones, quorum sunt cupiditates. Precari autem & appetere fiunt inter se inuicem, ad habendum bona & ea quæ adiuncta sunt cõmoda. Is itaque qui est cognitione præditus, creaturæ & petit & precatur ea quæ sunt verè bona, nempe bona animæ, ipse quoque adiuuans vt perueniat ad habitum bonitatis, vt non amplius habeat bona tanquam aliquas adiunctas disciplinas, sit autem bonus. Quocirca eos maximè decet precari qui Deum norunt vt oportet, & ei rei habent virtutem appositam & consentaneam, qui sciunt quæ'nam sint verè bona, & quæ sint petenda, & quando, & quomodo singula. Est autem extrema inscitia, ab ijs qui non sunt dij tanquam à dijs petere: aut quæ nõ

sunt conducibilia petere, petendo sibi mala quæ visione bona esse apprehendunt. A
Vnde meritò cùm sit vnus bonus Deus, ab ipso ex bonis alia quidem dari, alia verò permanere, precamur nos & angeli, sed non similiter. Non est enim idem, petere vt donum permaneat, aut ab initio vt id accipiamus contendere. Quinetiam auersio & depulsio malorum, est species precationis. Sed ea precatione nunquam est vtendum ad damnum hominum, nisi iustitiæ curam gerens hoc moliatur is qui est cognitione prædirus, & dispenset hanc petitionem ijs qui mali sensum exuerunt. Est ergo, vt audacius dicam, precatio, cum Deo conuersatio, & collocutio: licet ergo susurrantes, & nec labra quidem aperientes tacitè loquamur, intus clamauimus. Omnem enim intrinsecus paratam collocutionem Deus exaudit perpetuò. Ea caput & manus in cęlum extendimus, & pedes excitamus in vltima acclamatione orationis, promptitudine & alacritate spiritus assequentes essentiam quæ apprehenditur intelligentia: & vnà cum verbo corpus à terra abducere conantes, erectam & eleuatam animam desiderio meliorum cogimus in sancta progredi, magno animo carnis vinculum despicientes. Scimus enim optimè, eum qui est prædirus cognitione, totum mundum lubenter transmittere, vt certè Iudæi Ægyptum, aperte ostendendo se Deo quamproximum esse futurum. Quòd si nonnulli certas ac definitas horas constituunt orationi, vt verbi causa, tertiam, sextam, nonam: at is qui est cognitione prædirus, per totam orat vitam, per preces quidem cum Deo studens versari. Reliquit autem, vt semel dicã, omnia quæ nõ sunt vtilia, cùm eò iam peruenerit, vt iam hinc acceperit consumationem eius qui agit ex charitate. Iam verò triplicem horarum diuisionem, quæ totidem sunt honoratæ precibus, sciunt qui norunt beatam B
sanctarum mansionum trinitatem. Hîc mihi venit in mentem quorundam qui diuersa sentiunt, nempe Prodici hæresis sectatorum, dogmatum, quæ inducunt non esse orandum. Ne ergo de hac impia sua sapientia, tanquam noua & aliena hæresi se efferant, sciant eam fuisse quidem prius acceptam à Philosophis qui dicuntur Cyrenaici. Suo autem tempore aduersus impiam execrandorum istorum dicetur cognitionem, ne si huic Commentario insereretur contra eos disputatio, quæ de ijs prolixa futura esset pertractatio, interrumperet cœptam orationem, cùm nos solum ostendamus verè pium ac religiosum Dei esse cultorem, qui ex regula ecclesiastica verè est cognitione prædirus, cui soli, cùm ex Dei voluntate dispertiat ac distribuat, fit petitio cùm petiuerit atqueadeo cogitauerit. Quomodo enim quicquid vult potest Deus, ita quicquid petierit is qui est cognitione prædirus, id accipit. Omnino enim nouit Deus eos qui bonis digni sunt, & qui non, vnde dat ea quæ singulis conueniunt. Quamobrem indignis, etiamsi sæpe petierint, non dabit: dabit autem scilicet ijs qui sunt digni. Non est tamen petitio superflua, etiamsi bona dentur absque oratione. Iam & gratiarum actio, & petitio eorum quæ pertinent ad conuersionem proximorũ, est opus eius qui est prædirus cognitione: qua quidem ratione orauit quoq; Dominus, gratias quidem agens propter ministerium, rogans autem quãplurimos esse in cognitione, vt in ijs qui salui fiunt, per salutẽ ex agnitione Deus glorificetur, & qui est solus bonus & qui solus Seruator, per filium ex seculo in seculum a- C
gnoscatur. Quanquã fides quoq; futurum esse vt accipiat, est species orationis quæ est reposita vt conuenit cognitioni. Cæterùm si oratio sit occasio cum Deo conuersationis, aditus ad Deum nulla est prętermittẽda occasio: eius certè qui est prædirus cognitione, sanctitas connexa cum beata prouidentia, per spontaneam confessionem, ostẽdit perfectũ Dei beneficium. Est enim veluti quædam mutuò respondens prouidẽtiæ cura, sanctitas eius qui est prædirus cognitione, & quæ conuertitur amici Dei beneuolẽtia. Neq; enim Deus inuitus est bonus, quomodo ignis est prędirus vi calefaciendi. Est autem voluntaria bonorũ impertitio, etiã si anticipet petitionẽ. Neq; verò inuitus saluus erit is qui fit saluus: non est enim inanimis, sed omnino voluntariè & libero animi arbitrio contendet ad salutem. Quocirca præcepta quoque homo accepit, vt qui ex se moueri & incitari possit ad vtrum velit ex ijs quæ sunt eligenda & fugienda. Non facit ergo Deus bona ex necessitate, sed libera voluntate bene facit ijs qui ex se conuertuntur. Non est enim seruilis quæ ad nos venit diuinitus, tanquam à deterioribus ad meliores procedens, prouidentia. Ex miseratione autem nostræ imbecillitatis, exercentur quæ sunt proximæ ac cõtinentes prouidentię dispensationes: sicut etiam pastores ouium curam gerunt, & Rex eorum qui eius parent imperio, & nos paremus præfectis nostris, qui eos regunt qui sunt eis commissi, eo ordine q fuit eis traditus. Dei ergo sunt serui & cultores, qui liberalissimũ

&

A &c maximè regalem cultum exhibent, qui fit per piã ac religiosam mentem & cognitionem. Est ergo omnis quoq; locus verè sacer, in quo Dei accipimus notionẽ & cogitationẽ, & tempus. Quando autem is cuius est bona mens, & bonũ animi institutũ, & qui est gratus, petit per orationem, nonnullam aliqua ex parte fert opem, lubẽter per ea quæ flagitat precibus, accipiens id quod desiderat. Quãdo enim nostrã bonam animi propensionẽ acceperit is qui est dator bonorũ, eius conceptionẽ omnia simul bona cõsequũtur. Certè per orationẽ examinatur modus quomodo se habeat ad id quod oportet. Si aũt vox & dictio nobis data est causa intelligentiæ, quemadmodũ non ipsam animam & mentem Deus exaudit, cùm iam certè anima animã, & mens mentem exaudiat? vnde quæ multas edunt voces Deus linguas nõ expectat, vt hominum interpretes, sed cognoscit omnium, vt semel dicã, mentes & quod nobis vox significat, hoc Deo nostra loquitur cogitatio, quã etiam ante creationẽ sciebat esse venturã in mentem. Licet ergo ne voce quidem emittere orationem, sed solùm quicquid est intrinsecus spiritale, intendere in vocem quæ mẽte percipitur, per indiuulsam ad Deum conuersionem. Quoniam autem diei natalis imago est Oriẽs, illinc quoq; lux augetur quæ primùm illuxit ex tenebris: sed etiam ijs qui volutantur in ignoratione, exortus est dies cognitionis veritatis, ea ratione qua Sol in Oriẽte matutino, nempe orationes. Vnde etiam quæ erant ex templis antiquissima, respiciebant ad Occidẽtem, vt qui stant vultu conuerso ad imagines, doceantur verti ad Orientem. Dirigatur oratio mea tanquã incensum in cõspectu tuo: eleuatio manuũ mearũ sacrificium vespertinum, aiunt Psalmi. Sceleratis ergo hominib. oratio, *Psal. 140.*
B nõ solùm in alios, sed etiam in seipsos est perniciosissima: siquidem etiamsi quæ fausta & prospera dicunt, petita acceperint, lædunt eos qui acceperunt, vt qui sint vsus eorũ nescij. Qui enim orant vt possideãt ea bona quæ nõ habẽt, ea quæ videntur bona, nõ ea quæ sunt petunt. Qui aũt est cognitione prædictus, eorum quidẽ quæ possidet permansionẽ, ad ea aũt quæ est superaturus aptitudinem, eorũ aũt quæ non est accepturus, petet æternitatẽ. Quæ aũt verè sunt bona quæ versantur in animo, ea & sibi esse, & ei permanere precatur: neq; aliquid ex ijs quæ absunt desiderat, contentus præsentibus. Neq; enim est proprijs bonis defectus, cùm satis iam sibi sit ex diuina gratia & cognitione. Sed cùm suis quidem sit contentus, alijs aũt non egeat, omnipotentem autem cognoscat voluntatem, & simul habeat & precetur, maximè autem proximè adhærescat potentiæ, studens esse spiritalis, per indefinitam charitatẽ est vnitus Spiritui. Sic magni est & excelsi animi, qui id quod est omnium præstantissimum, quod omniũ optimum, possidet per scientiã, & facilè quidẽ mouetur & applicatur ad contemplationem: eorũ aũt quæ cadunt in cõtemplationem, in anima vim habet permanentem, hoc est, perspicacem scientiæ acrimoniã. Hanc aũt vt possideat potestatem quàm maxima vi contendit, se ab ijs quæ menti aduersantur, & in contemplatione quidem perpetuò residens, & in ea se exercens exercitatione quæ ab ijs quæ sunt iucunda se abstinet, & ea quę sunt facienda rectè gerit, & magna præterea vtens experientia, tam in doctrina, quàm in ijs quæ ad vitam pertinent, ha-
C bet dicendi libertatẽ, non vim effrȩnatæ linguæ, sed vim & facultatem simplici oratione vtentem, quæ nihil eorum quæ conuenienti tempore dici possunt, & de quibus maximè dicendum est pro dignitate, celat, neque propter gratiam, neque propter timorem. Qui ergo quæ Dei sunt accepit à choro mystico ipsius veritatis, vtitur oratione adhortatoria, quæ magnitudinem virtutis, ipsam, inquam, & quæ ab ea oriuntur, pro dignitate indicat, cum diuina orationis eleuatione, ijs quæ percipiuntur intelligentia, & quæ sunt spiritalia, quammaximè fieri potest, ex cognitione se reddens familiarem. Quo fit vt sit semper benignus, mansuetus, aditu facilis, affabilis, patiens, gratus, bona præditus cõscientia. Is est non solùm rigidus & austerus ad hoc vt non corrumpatur, sed etiam ad hoc vt non tentetur. Præbet enim animũ, qui neq; voluptati neq; dolori cedit, aut ab eis expugnatur. Iudex, si vocet ratio, immobilis, animi motibus nihil penitus largiens, immutabiliter quà iustum iubet proficisci, ingrediens, persuasum habẽs omnia pulcherrimè administrari, & animas semper in melius proficere, donec ad ipsum bonum venerint, vt quæ in vestibulis, vt semel dicã, patris, magno põtifici propinquæ euaserint. Hic cognitione præditus, qui est fidelis, & cui est persuasum quæ sunt in mundo optimè administrari, æquo certè fert animo omnia quæ eueniunt. Meritò ergo nihil requirit ex ijs quæ ad vitã pertinent ad vsum necessariũ, vt cui sit planè persuasum, quòd qui omnia nouit Deus, id quod est vtile suppeditat bonis etiã non petẽtibus. Sicut enim artifici artificiose, &

gentili gentiliter:ita etiam ei qui est cognitione prædiʃtus, ex cognitione præbet singula. Et qui ex gentibus quidem conuertitur, fidem: qui aũt ascendit ad cognitioné, charitatis petet perfectionem. Qui autem summũ iam attigit cognitione præditus, precatur vt cótemplatio augeatur & permaneat: sicut qui est homo cómunis, vt sit perpetuò sanus. Iam verò petet etiam vt à virtute nunquã excidat, maximè adiuuãs & dans operam vt perpetuò maneat eiusmodi vt non possit excidere. Nouit enim aliquos quoq; ex Angelis, qui propter socordiam humi lapsi fuerant, nondũ perfectè ad vnũ illum habitum, ab ea quæ est ad duplicitatem aptitudine seipsos expressisse. Is qui hîc ad summum cognitionis & excellentem viri perfecti altitudinem se exercuit, & ita viuere vt nullo loco nec tẽpore labatur elegit, & in eo se exercet per mentis vndiq; exæquatã & vnius planè tenoris stabilitatem. Quibus aũt grauis aliquis adhuc relinquitur angulus deorsum vergens, vnà quoq; detrahitur id quod per fidem sustollitur. Ei ergo qui exercitatione profecta ex cognitione parauerit virtutem quæ non potest amitti, efficitur naturalis habitus. Et quomodo lapidi grauitas, ita huius scientia euadit huiusmodi vt amitti non possit, non inuoluntariè, sed volũtariè, vi rationis & cognitionis atq; prouidentiæ. Quoniam aũt amissum non esse, per cautioné fit eiusmodi vt non possit amitti: cautionem quidem ad hoc vt nó peccet, bonam aũt considerationem ad hoc vt virtus non amittatur, retinebit. Cognitio aũt videtur bonam præbere cósiderationem, docens perspicere ea quæ possunt adiuuare ad hoc vt virtus permaneat. Res est ergo maxima Dei cognitio: quocirca ea quoque ita conseruatur virtus vt amitti nequeat. Qui aũt Deum nouit, est sanctus & pius: qui est ergo cognitione præditus, ostensum est eum solum esse pium & religiosum. Is gaudet quidem de bonis præsentibus: lætatur auté propter ea quæ sunt promissa, tanquam iam præsentia. Neque enim eum latent tanquam adhuc absentia, propterea quòd qualia sint iam antè cognouerit. Cognitione ergo persuasus, quomodo sit vnumquodq; ex futuris, hoc possidet. Quod enim est mancum ac defectũ, metiendum est ex eo quod ad ipsum pertinet. Si ergo possidet sapientiam, & est res diuina sapientia: qui est particeps eius quod non indiget, non fuerit indigens. Non enim sapientiæ cómunicatio fit dum se inuicem mouent & retinent operatio & id quòd participat: neq; dum aliquid aufertur, aut fit alicuius indigens. Ostenditur ergo minui non posse operationem per ipsam cómunicationem. Sic ergo nobis habet omnia bona is qui est cognitione præditus, potestate: sed nondũ etiam numero, nã alioqui dimoueri non posset, quod attinet ad diuinos qui debentur profectus & administrationes. Hunc quoq; Deus adiuuat, propinquiore honorãs curatione. An nó enim bonorũ virorum gratia, & vt ea possiderét, & illis vsui, vel potius saluti essent, omnia facta sunt? Non ergo eis abstulerit ea quæ sunt propter virtuté, propter quos sunt quæ facta sunt. Clarum est enim quòd bonam ipsorũ naturã & sanctum institutũ honorans, ijs qui bene viuere constituerunt, vires inspirat ad reliquam salutem, alios quidem solùm adhortans, alijs verò qui ex se digni euaserunt opem ferens. Est enim omne bonũ eiusmodi, vt adnascatur ei qui est præditus cognitione: siquidem ei est finis scire & facere scienter vnumquodq;. Quomodo aũt medicus præbet sanitatem ijs qui ei opem ferunt ad sanitatem: ita etiam Deus æternam salutem ijs qui opem illi ferunt, & cum eo cooperãtur ad cognitionem, & ad bonas actiones. Cùm aũt simul cum eo quod facimus, in nostra sint potestate ea quę præcepta imperant, perficitur quoq; promissio. Ac mihi videtur illud quoq; rectè dici apud Græcos. Athleta quidem non ignobilis nec pusilli animi inter veteres, cùm longo tẽpore corpusculum exercuisset ad fortitudinem, ascendens ad Olympia, cùm Pisani Iouis aspexisset statuam: Si omnia, inquit, ô Iupiter, mihi rectè parata sunt ad certamen, iustè mihi redde victoriam. Sic enim cùm is quoq; qui est cognitione præditus, citra reprehensionem & cum bona conscientia, quod ad se attinet, omnia impleuerit, & ad doctrinam, & ad exercitationem, & ad bonorum operum effectionem, & ad hoc vt Deo sit gratus & acceptus, id vniuersum salutem deducit ad perfectionem. Hæc ergo à nobis exiguntur quæ sita sunt in nostra potestate, & eorũ quæ ad nos pertinent tam præsentium quàm absentium electio, & desiderium, & possessio, & vsus, & permansio. Quocirca verè puram & immaculatã oportet habere animam, eum qui cum Deo conseruatur, seipsum bonum perfectè efficientem: sin minus, proficienté ad cognitioné, & eam desiderantem, à vitij aũt operibus omnino esse auulsum. Quinetiã decet eum omnes orationes & probè facere, & cum probis. Est enim lubricum ac periculosum vnà adscribi cũ peccatis aliorũ. Vnà ergo cũ ijs qui recentiùs crediderũt,

is

A is qui est cognitione prædítus, de ijs precabitur de quibus vnà etiam agere conuenit. Vniuersa autem eius vita, est quidam celebris ac sanctus dies festus. Atq; ei quidem sacrificia, sunt ipsæ preces & laudes, & quæ ante cibum fiunt scripturarũ lectiones: psalmi autem & hymni, dum cibus sumitur: antequam eatur cubitum, quinetiam noctu, rursus orationes. Per eas seipsum vnit choro diuino, ex memoria cõtinua in memoriæ semper mandanda positus contemplatione. Quid verò, non aliud quoque sacrificium, nempe dogmatum & pecuniarum in egenos largitionem, cognoscit? Maximé. Sed nec ea quæ fit ore vtitur verbosa precatione, vt qui quæ petere à Domino oporteat, didicerit. In omni ergo loco orabit, sed nõ vt apertè populo appareat. Is verò dum & ambulatione vtitur & sermone & quiete & lectione & ijs quæ fiunt ex ratione, omni modo precatur, & si in ipsius animæ penetralibus solùm cogitauerit, etiam inenarrabilibus gemitibus Patrẽ inuocauerit: ille aũt propè adest eo adhuc loquente. Cùm sint aũt tres fines cuiusvis actionis, propter id quidem quod est bonum & vtile omnia operatur: voluptatis autem causa aliquid agere, his relinquit qui vulgarem vitam sequuntur. Longè aũt abest vt qui in tali pietate probatur & dijudicatur, sit ad mentiendum propensus & ad iurandum: est enim iusiurandum quidẽ confessio definitiua cum diuina assumptione. Qui est autem semel fidelis, quemadmodum seipsum infidelẽ præbuerit, vt etiam opus habeat iureiurando, & non ita vitam gesserit vt ea sit firmum ac definitũ iusiurandum, & fidẽ confessionis ostenderit in constanti stabiliq; vita & sermone? Si aũt in iudicio eius q facit

B & loquitur positũ est facere iniuriã, non in perpessione eius qui patitur persecutionem, neq; mentietur, neq; peierabit, vt qui Deũ afficeret iniuria, cùm eum sciat natura esse huiusmodi vt minimè lædi possit. Sed neq; ꝓpter proximũ mentietur, vel aliquid transgredietur, quem didicit diligere, etiamsi non sit familiaris. Propter seipsum autem multò magis neq; mentietur, neq; peierabit, siquidẽ nunquã sua sponte in seipsum iniustus inuenietur. Sed neq; iurat, vt qui in affirmatione quidem, Næ vel Est: in negatione autem, Non, ponere constituerit. Iurare enim est iusiurandum, vel tanquam iusiurandum mente conceptum proferre affirmatiuè. Sufficit ergo ei vel affirmationi vel negationi addere illud, Verè dico, ad comprobandũ ijs qui non perspiciunt stabilitatẽ eius responsionis. Oportet enim eum habere, vt ego quidem existimo, apud externos quidem vitam fide dignam, vt ne postuletur quidem ab eo iusiurandum: in seipsum autem & eos qui conuersantur, animi æquitatem, quæ est iustitia voluntaria. Iam verò rectè & verè iurans, non autem procliuis ad iurandum, est is qui est præditus cognitione, qui raro quidem accedit ad iurandum, sed ita vt diximus. Quanquam verum esse in iureiurando, fit cum ea quę est in vero consensione: contingit ergo hoc euenire, quatenus quis se rectè gerit in officijs. Vbi nam ergo est amplius opus iureiurando, ei qui ita viuit vt qui peruenerit ad summũ veritatis? Qui ergo ne iurat quidem, multum abest vt sit peieraturus: qui autẽ nihil transgreditur ex ijs quæ pacta & conuenta sunt, is nunquam iurauerit, cùm transgressionis & perfectæ obseruationis in factis sit obseruatio, sicut certè mentiri & peierare, in dicendo & iurando præter officium. Qui autem iustè viuit, nihil ex ijs quæ decet fieri transiliens, vbi examinatur iudicium veritatis, is factis verè & sanctè iurat: est ergo ei superfluum linguæ testimonium. Cùm ergo sit ei semper persuasum Deum esse vbiq;, & erubescat non verum dicere, & falsum dicere cognoscat se esse indignũ, diuina & sua ipsius contentus est conscientia: & ideo non mentitur, neq; præter pacta conuenta facit aliquid. Ea ratione neq; iurat, si fuerit rogatus: neq; vnquã negat, ne falsum dicat, etiamsi moriatur in tormentis. Eius autẽ qui est prędítus cognitione dignitatem, maximè auget & amplificat, qui aliorum docendorũ suscepit pręfecturam, vt qui maximi quod est in terris boni dispensationem & verbo & facto acceperit, per quam intercedit vt fiat cũ Deo coniunctio & societas. Quomodo aũt qui res terrenas colunt ac venerantur, precãtur imagines perinde ac si audiant, firma ac stabilia ducẽtes pacta cõuenta quę eis fiũt authoribus: ita authoribus ac ducibus animatis imaginibus, scilicet hominibus, vera verbi magnificentia à fide digno magistro accipitur: & qđ in eos confertur beneficiũ, refertur ad ipsum Dominũ, ad cuius imaginẽ docens is qui reuera est homo, fabricatur & componit, ad salutẽ renouans, hominem catechumenũ. Quomodo enim ferrum Martẽ Gręci appellant, & vinum Bacchum, per aliquã relationem: ita is qui est prędítus cognitione, proximorũ vtilitatem propriam salutẽ existimans, meritò dicatur Domini imago animata, nõ quo ad formę ꝓprietatem, sed quo ad symbolũ signúmve potestatis, & similitudinẽ prę-

F

dicationis. Quicquid habet in mēte, id etiam fert in lingua, apud eos qui digni sunt audire, ex assensione & certa sententia simul dicens & viuens. Vera enim simul sentit & dicit, nisi si quando loco medicinæ, vt medicus ad ægrotantes, ad eorum qui laborant salutem, mentietur, aut falsum dicet, vt aiunt Sophistæ. Ecce enim Timotheum præclarus circuncidit Apostolus, cùm vociferaretur & scriberet circuncisionem manu factam nihil prodesse: sed ne repentè & aceruatim à lege auellēs, ad eam quæ est ex fide cordis circuncisionem, adhuc reluctantes eos qui audiebant Hebræos, à synagoga cogeret abrumpere, se Iudæis accommodans, factus est Iudæus, vt omnes lucrifaceret. Qui ergo propter proximorum salutem quibus se accommodat, se ad solam demittit accommodationem, is nullius simulationis omnino cogitur esse particeps, propter periculū quod imminet iustis ab ijs qui eis inuidēt. Propter solam aūt propinquorum vtilitatem, faciet quædam quæ non principaliter ab eo fierent, si non faceret propter illos. Is seipsum tradit ꝓ Ecclesia, pro familiaribus quos ipse in fide genuit, in exemplum, ijs qui possunt suscipere summam œconomiā, benigni & pij doctoris, ad ostendendam verborum veritatem, ad operationem charitatis in Dominum. Is est eiusmodi vt à timore non redigatur in seruitutem, verus in sermone, tolerans in labore, nec in ea quæ profertur oratione volens vnquam mentiri, & in ea se semper ita gerens vt non peccet: quandoquidem ipsum mendacium, vt quod cum aliquo dolo dictum sit, non est sermo ociosus, sed exercetur ad vitium. Vndiq; ergo veritati testimonium fert is solus qui est cognitione præditus, & facto, & oratione: semper enim in omnib. omnino se rectè gerit, & in sermone, & in actione, & in ipsa cogitatione. Hęc ergo est, vt cursim persequēdo dixerim, Christiani pietas & religio. Si hæc facit vt dicit, & conuenienter rectę rationi piè facit & iustè. Si hæc aūt ita se habēt, solus reuera fuerit pius, iustus, religiosusq; ac verus Dei cultor, is q̄ est cognitione prędîtus. Non est ergo Christianus impius (hoc enim fuerat propositum ostendere Philosophis) quare nullū malum vel turpe, quod est iniustū, nullo modo vnq̄ operabitur. Consequenter ergo nec se gerit impiè, sed vel solus piè ac sanctè Deum colit, eum, inquā, qui verè est Deus, princeps, & Rex omnium, & omnipotens, ex vera religione purè & castè colens. Est enim, vt semel dicam, cognitio, quædam hominis, tanquam hominis perfectio, quæ completur per rerum diuinarū scientiam, & modo, & vita, & sermone, congruens & consentiens sibi & verbo diuino. Per hanc enim fides perficitur, vtpote quòd per eam solummodo fidelis efficiatur perfectus. Est ergo fides aliquod bonum intrinsecus positum, & quæ absq; eo q̄ Deum quærat, Deum esse confitetur, & vt qui sit glorificat: vnde oportet ab hac fide eductum & in ea auctum, gratia Dei, quoad eius fieri potest, eius accipere cognitionem. Dicimus autem cognitionem differre à sapientia quæ est per doctrinam: nam quatenus quidem est aliquid cognitio, hoc omnino est etiā sapientia: quatenus autem est aliquid sapientia, non est omnino cognitio. In sola enim sermonis qui profertur cognitione, nomen sapiētiæ visione apprehenditur. Verumenimuero de Deo non dubitare, sed credere, est fundamentum cognitionis. Est autē vtrunq; Christus, fundamentum, inquam, & ædificium, per quem est & principium & finis. Et extrema quidem non docentur, nempe principium & finis, fides, inquam, & charitas. Cognitio autem quæ datur ex traditione per Dei gratiam, veluti quoddam depositum committitur ijs qui seipsos doctrina dignos exhibuerint, ex qua elucescit charitatis dignitas, ex luce in lucem. Dictum est enim, habenti dabitur. Fidei quidem cognitio: cognitioni autem, charitas: charitati autem, hæreditas. Hoc autem fit quādo quis pependerit à Domino per fidem, cognitionem, & charitatem, & vnà cum eo ascenderit, vbi est fidei nostræ & charitatis Deus & custos. Vnde in fine traditur cognitio ijs qui ad hoc sunt apti & selecti, eò quòd maiori præparatione opus sit & præexercitatione, & ad ea audienda quæ dicuntur, & ad vitam componendam, & ad consideratè progrediendum ad id quod est vltra eam quæ est ex lege iustitiam. Ea nos deducit ad finem interminatum & perfectum, prius docens eam quæ nobis est futura, Deo conuenientem cum Dijs viuendi rationem, cùm ab omni pœna & supplicio fuerimus liberati, quæ sustinemus ex peccatis ad salutarem disciplinam. Post quam redemptionem, præmium & honores dantur consumatis, cùm cessauerint quidem à purgatione, cessauerint autem etiam ab alio ministerio, & si sit sanctum, & inter sanctos: deinde ijs qui fuerint mundo corde, per proximam Domino adhæsionem, perpetuæ contemplationi permanet restitutio: & Dij vocati sunt appellatione, qui in ijsdem sedibus sunt collocati, in quibus alij Dij qui sunt primi à Ser-

Marginalia: *Actuum 6.* *Galat. 5. 6.* *Matth. 25.* *Luc. 14.* A B C

A Seruatore constituti. Est ergo cognitio velox ad purgationem, & apta ad mutationem facilè suscipiendam in melius. Vnde etiam facilè traducit ad id quod est animæ cognatũ ac diuinũ & sanctum, & per cuiusdam proprij luminis mysticos profectus trãsmittit hominem, donec in supremum quietis locum restituerit eum qui est mũdo corde, docens Deum scienter & per comprehensionem contemplari facie ad faciem. Hęc est enim vtique animæ cognoscentis perfectio, vt cùm omnem purgationem & ministerium superauerit, fit cum Domino, vbi est proximè & ei cohærendo subiecta. Fides ergo, vt semel dicam, est breuis & compendiosa eorum quæ vrgent cognitio. Cognitio autem est firma ac stabilis demonstratio eorum quæ assumpta sunt per fidem, quæ per doctrinam Domini super fidem ædificatur, quæ transmittit ad id quod non potest excidere & mutari, & potest comprehendi scientia. Ac mihi quidem videtur esse prima quædam salutaris mutatio, quæ fit à gentibus ad fidẽ, vt prius dixi: secunda autẽ, quæ est à fide in cognitionem. Illa verò traijciens ad charitatem, hinc iam reddit amicum amico, id quod cognoscit, ei quod cognoscitur. Et fortasse qui est eiusmodi, exhinc iam anticipauit vt sit similis Angelis. Post eam ergo postremam quæ est in carne excellẽtiam, semper prout cõuenit mutatus ad id quod est melius, ad paternam aulam, ad verè Dominicam per sanctam hebdomadem contendit mansionem, futurus, vt ita dicam, lumen stans & manens propriè, quod est omni ex parte & omnino immutabile, qui est primus modus Dominicæ operationis, eius quæ dicta est à nobis remunerationis, conuenienter pietati & veræ religioni. B Ex multis autem quæ sunt testimonijs, vnum summatim exemplum adducam, quod sic dictum est à Dauid propheta: Quis ascendet in mõtem Domini, aut quis stabit in loco sancto eius? *Psal. 23.* Innocens manibus, & mundo corde, qui non accepit in vano animam suam, neq; iurauit in dolo proximo suo. Hic accipiet benedictionem à Domino, & misericordiam à Deo Seruatore suo. Hæc est generatio quærentiũ Dominum, quærentium faciem Dei Iacob. Breuiter, vt arbitror, nobis significauit Propheta eum qui est prędicus cognitione: cursimq; & obiter, vt videtur, nobis demonstrauit Dauid, Seruatorem esse Deum, dicens eum esse faciem Dei Iacob, qui annunciauit & docuit de spiritu. Quocirca Apostolus quoq; appellauit filium charactẽrẽ seu typum gloriæ patris, qui veritatem de Deo docuerit, & expresserit quod Deus & pater vnus est & solus omnipotens, quem nemo nouit nisi filius, & cui filius reuelauerit. Vnum autem esse Deum, per eos qui quærunt faciem Dei Iacob, meminit, quem solum esse Deum patrem bonum exprimit Seruator noster & Deus. Generatio autẽ quærentium eum, est genus electum, quod est vi inquirendi præditum ad cognitionem. Et ideo Apostolus quoq; dicit: Nihil vobis prodero, nisi vobis locutus fuero *1. Cor. 14.* aut in reuelatione, aut in cognitione, aut in Prophetia, aut in doctrina. Quanquam nonnulla quoque rectè fiũt ab ijs qui non sunt præditi cognitione: sed non ex ratione, sicut est in magni animi virtute. Nonnulli enim cũ sint natura iracundi, & deinde id absque ratione aluerint, ad multa citra rationem quodam feruntur impetu, & faciunt similia ijs qui sunt magni & excelsi animi, adeò vt sordidi & illiberales opifi- C ces eadem nonnunquam rectè gerunt, quod attinet ad tolerantiam: sed neq; ex eadem causa, ex qua qui est præditus cognitione, neque idem sibi proponentes, nec si totum corpus tradant. Charitatem enim non habent, vt ait Apostolus, quæ generatur per cognitionem. Quæcunque ergo fit actio à sciente, ea est recta actio: quæcunque autem ab insciente, mala est, etiamsi maximè instet & vrgeat, quoniam non fit fortis ex cõsideratione: neque dirigit actionẽ ad aliquid vtile ex ijs quę conuertunt ad virtutem, & procedunt à virtute. Eadem autem ratio est etiam in alijs virtutibus: quare etiam ijs conuenienter in Dei cultu & religione. Nõ ergo in sanctitate solùm talis est nobis is qui est cognitione præditus. Religioni autem ac Dei cultui qui fit ex scientia, sunt etiam consequentia præcepta de alia eius vitæ institutione. Vitam enim eius qui est cognitione prędicus, nunc est nobis propositum describere, non autem adducere dogmatum contemplationem, quam conuenienti tempore postea exponemus, simul etiam seruantes cõsequentiam. De vniuersis ergo verè & magnificè disseruit, vt qui diuinam conceperit doctrinam. Cùm ergo initiũ duxisset à creaturæ admiratione, quòd posit accipi cognitio domo argumentum afferens, fit alacer & promptus Domini discipulus. Cùm primùm autẽ audiuisset Deum & prouidentiam, credidit ex ijs quæ est admiratus. Hinc impulsus omnibus modis dat operam disciplinæ, omnia illa faciens, per quæ poterit accipere cognitionem eorum quę desiderat. Desiderium autem per profectum fidei, consistit contemperatũ simul

cum inquisitione: id autem est fieri dignum tali & tanta contemplatione. Sic Dei gustabit voluntatem is qui est præditus cognitione: non aures enim præbet, sed animum, rebus quæ significantur ab ijs quæ dicuntur. Cùm ergo essentias & res ipsas acceperit per verba, meritò animam quoque deducit ad ea quæ oportet, illud, Non mœchaberis, Non occides, propriè accipiens, vt dictũ est ei qui est prȩditus cognitione, non vt existimatum est ab alijs. Accedit ergo se exercens contemplatione quæ efficit scientiam, vt certamen ineat cum ijs quȩ magis vniuersè & magnificentius dicta sunt, rectè sciens, quòd qui docet hominem sciētiā, vt ait Propheta, est Dominus, per os hominis Dominus operans: ea ratione carnem quoque accepit. Meritò ergo nunquam iucundum præfert vtili, nec si casu aliquo eum prȩuētum meretriciè vim afferens prouocet formosa mulier, quoniam nec Ioseph quidem ab instituto abducere potuit vxor domini. Ei autem se exuit per vim tenenti tunicam, vt qui à peccato quidem fuerit nudatus, honestatis autē & temperantiæ ornamentum induerit. Nam etsi oculi domini, Ægyptij inquam, Ioseph nō videbant, at omnipotentis quidem certè inspiciebant. Nam nos vocem quidem audimus, & corpora contemplamur: Deus autem rem examinat, à qua fertur vocem edere & aspicere. His consequētèr, si vel morbus, vel casus aliquis, eū inuaserit qui est præditus cognitione, atque adeo mors quæ est omnium terribilissima, manet animo interritus, sciens quæcunque sunt huiusmodi, esse naturȩ necessitatem: sed sic quoque Dei virtute ea effici medicamentum salutis, vt quæ per disciplinam eos beneficio afficiant qui sunt incompositiores, & à sancta pro meritis verè dispertiantur prouidentia. Vtens autem rebus creatis, quando dicet & quantum dicet Verbum, ei qui creauit agendo gratias, vsus earum fit Dominus: nunquam acceptæ est memor iniuriȩ, nulli indignatur, aut in eum acerbè inuehitur, etiāsi sit odio dignus propter ea quæ facit: colit enim creatorem, diligit autem vitæ socium, eius miserens, & pro eo orans propter eius ignorantiam. In corpus quoque suum per consensionem afficitur, cui quidem natura patibili est alligatus, sed non in ipsum primam suscipit affectionem. In inuoluntarijs quidem certè casibus, à doloribus seipsum deducens ad ea quæ sunt eius propria, non abducitur ab ijs quæ sunt eius aliena: ijs autem cedit & se accommodat quæ sunt eius solùm necessaria, quatenus illæsa conseruatur anima. Non enim opinione aut existimatione solùm vult videri esse fidelis, sed cognitione & veritate, hoc & firmo & stabili facto, & sermone efficaci. Non solū ergo laudat bona & honesta, sed ipse etiam cogitur esse bonus & honestus, à bono & fideli seruo transiens ad amicum per charitatem propter perfectionem habitus, quam ex vera disciplina & multa exercitatione acquisiit. Vt qui ergo magna vi cōtendat vt perueniat ad summum cognitionis, moribus ornatus, habitu compositus, habēs omnia illa commoda eius qui est verè cognitione præditus, pulchras respiciens imagines, multos quidem qui rectè & ex virtute se antea gesserunt, patriarchas, plurimos autem prophetas, & innumerabiles Angelos, & postremò Dominum qui nos docuit, & ostendit fieri posse vt summam illam vitam assequamur: propterea omnia mundi bona quæ sunt in promptu & ad manum, non diligit, ne humi remaneat, sed ea quæ sperantur, vel potius quæ iam sunt cognita, sperantur autem esse comprehendenda. Hac ergo ratione labores, & tormēta, & afflictiones sustinet, nō vt qui sunt fortes apud Philosophos, propter spē quòd præsentes quidē sunt cessaturi dolores, sint autem rursus iucundorum futuri participes, sed cognitio ei persuasionē ingenerauit firmissimā futurorum spei recipiendæ. Quocirca non solùm quæ hîc sunt supplicia, sed etiam iucunda contemnit omnia. Aiunt certè beatum Petrum, cùm vidisset vxorem suam duci ad mortem, lætatum quidem esse propter vocationē, & quòd domum reuerteretur: valde autem exhortando & consolando, proprio nomine eam cōpellantem dixisse, Heus tu memento Domini. Tale erat beatorum matrimonium, & vsque ad amicissima perfecta affectio. Ea ratione Apostolus quoq;, qui vxorem ducit, tanquā qui non ducat, inquit, volens matrimonium minimè moueri affectione, & nequaquam diuelli à charitate in Dominum, quam tenere ad Dominum peregrinanti vxori suasit qui verè erat vir. An non est ergo eis manifesta fides spei post mortem, qui etiam in ipso tempore tormentorum Deo agunt gratias? Firmam enim & constantē, vt opinor, fidē possidebant, quam fideles quoq; consequebantur operationes. Est ergo in quouis casu fortis ac valida anima eius qui est cognitione præditus, quȩ veluti corpus athletȩ, & optima est habitudine, & maximas habet vires. Est enim optimi quidē cōsilij in ijs quȩ ad homines pertinēt, quid sit iusto faciēdū sententiā exponens.

A

B

C

A nens, nempe quæ supernè à Deo procedunt principia, & ad Dei assimilationem, voluptatum & molestiarum corporis acquirit moderationem. Audacter autem insurgit aduersus metus, in Deo habens fiduciam. Reuera ergo terrestris diuinæ virtutis imago est anima cognitione prædita, perfecta virtute exornata ex his omnibus simul, natura, exercitatione, & quæ simul creuit ratione. Hęc pulchritudo animæ fit templum sancti Spiritus, quando affectionem Euangelio consentientem per totam vitam habuerit. Qui est eiusmodi, insurgit aduersus omnem metum, omne periculum, & quicquid est formidabile, non solùm mortem, sed etiam paupertatē, & morbum, & ignominiam, & quæcunque sunt huius generis, vt qui & à voluptate vinci nequeat, & rationis expertibus dominetur cupiditatibus. Bene enim nouit quę sint agenda, & quæ non, vt qui strenuè nouerit quænam sint reuera grauia ac pertimescenda, & quæ non. Vnde scienter ea sustinet quæ oportet, & quæ decere ei dictat ratio, scienter distinguens ea de quibus habenda est fiducia, hoc est, ea quæ sunt bona, ab ijs quæ videntur, & terribilia ab ijs quæ apparent, vtpote morte, morbo, & paupertate, quæ quidem sunt opinionis potius quàm veritatis. Hic est qui est reuera vir bonus, qui per habitum vel affectionem animæ virtute præditæ remotus ab animi perturbationibus, vniuersam vitam superauit affectionibus obnoxiam. Huius omnia à seipso dependent ad finem acquirendum. Nam quæ fortunæ dicuntur incommoda, ea viro bono non sunt formidabilia, quoniam non sunt mala. Quæ autem verè sunt grauia, ea sunt à Christiano aliena qui est præditus cognitione, vtpote quæ ex diametro pugnant cum bonis, quoniam ea sunt mala, nec fieri potest vt

B eidem eodem tempore simul insint contraria. Qui citra vllam ergo reprehensionē agit actum vitæ, quem ei Deus agendum præbuerit, quæ sunt agenda & quæ sustinenda cognoscit. Nunquid ergo si propter eorum quæ sunt grauia aut non grauia, ignorationem, consistit pusilli & abiecti animi vitium, solus is qui est præditus cognitione, audenti fidentiq; est animo, vt qui norit bona quæ sunt, & futura sunt? Cū his autem, vt dixi, vnà sciens ea quæ non sunt reuera grauia, vt qui sciat solum vitiū esse inimicum, & exitium afferens ijs qui proficiunt ad cognitionem, armis Domini munitus, aduersus id bellum gerit. Non enim si quid constat propter imprudentiam, & diaboli operationem vel potius cooperationem, hoc protinus fuerit imprudentia aut diabolus, quoniam nulla operatio est prudentia: prudentia enim est habitus. Nulla autem operatio est habitus. Non ergo neque quæ propter ignorationem consistit actio, iam est ignoratio, sed vitium quidem est propter ignorationem, nō tamen ignoratio: neque enim animi motus, neque peccata sunt vitia, etsi procedant à vitio. Nullus ergo citra rationem fortis, est cognitione præditus: nam pueros quoque sic dixerit aliquis fortes, qui quæ sunt formidabilia sustinent, propter eorum quæ sunt grauia ignorationem: ignem quidē certè sic tangunt: & feras quæ in hastas incurrunt, cùm sint fortes citra rationem, vocauerint ratione prędita. Fortasse autem hi quoque fortes dicent præstigiatores se in gladios rotantes, qui ex quadam experientia propter vilem mercedem malam artem

C exercent. Qui est autem reuera fortis, cùm propter multorum inuidiam & æmulationem, manifestum videat periculum, quod accedit confidenter accipit, hac ratione separatus ab alijs qui dicuntur martyres, quòd alij quidem sibijpsis præbeant occasionem, & se nescio quomodo in ipsa pericula mijciant: bonis enim verbis vti par est: hi verò se ex recta ratione componentes, deinde cùm Deus vocauerit prompto & alacri animo se tradentes, & confirmant vocationē ex eo q̃ nihil temerè & pręcipitanter de se cōstituerint, & virum prębent examinandū in ea quę est ex veritate rationali fortitudine. Neq; ergo metu maiorū minora tolerāt vt reliq: neq; timentes ne vituperentur ab ijs qui sunt eiusdem loci & sententiæ, in confessione persistunt vocationis, sed propter suam in Deum charitatem lubentes parent vocationi, nullum alium sibi scopum proponētes, nisi vt Deo placeant, non autem propter præmia laborum. Nam alij quidem propter glorię cupiditatem: alij verò quòd vitent aliud grauius supplicium: alij verò propter quasdam lætitias & voluptates post mortem futuras, patiuntur: pueri in fide, beati quidem, sed qui nondum sunt viri in ea quæ est erga Deum charitate, vt is qui est cognitione præditus. Sunt enim, sunt quomodo in gymnicis certaminibus, ita etiam in Ecclesia coronæ virorum & puerorum. Charitas autem ipsa propter se est eligenda & expetenda, non propter aliquid aliud: ei ergo qui est cognitione præditus, vnà cum cognitione augetur perfectio fortitudinis, ex vitæ exercitatione, quę semper est meditata vincere motus a-

nimi. Metu ergo & formidine vacuum, & in Domino confidentem, reddit suum Athletã, inungens & exercens charitas: quomodo ei tribuit iustitia vt per totam vitam verum dicat. Est enim iustitiæ compendium dicere: erit vestrum, Næ næ, & nõ non. Eadem ratio est etiã in temperantia: neq; enim propter honoris cupiditatem, quomodo Athletę propter coronas & gloriã: neq; rursus ꝑpter pecunię cupiditatẽ, vt nonnulli, præ se ferunt esse temperantes ac moderati, graui motu ac perturbatione animi bonum persequentes: sed neq; qui propter rusticitatẽ est continens, & nõ gustat voluptates, est vllus verè tẽperans. Certè cùm voluptates gustauerint qui in faciendo opere vitã terunt, continentiæ inflexã duritiem infringunt ad voluptates. Tales aũt sunt ij quoq; qui lege & metu prohibẽtur: nam si acceperint occasionem, furtim legẽ transgrediuntur, ea quæ sunt honesta fugientes. Quæ est autem propter seipsam expetenda temperantia, vt quæ per cognitionem perficiatur & semper maneat, virum efficit Dñm, & qui sua authoritate imperet, vt sit temperans is qui est cognitione præditus, & nec afficiatur à voluptatibus, nec liquetur doloribus, vt aiunt Adamantẽ igne minimè liquescere. Horum ergo causa est sanctissima & totius sciẽtiæ præcipua charitas. Per cultum enim eius qui est optimus & excellentissimus, qui ex vno charactẽrem accipit, amicum simul & filium efficit eum qui est præditus cognitione, perfectũ reuera virum, vt qui creuerit in mensuram ętatis. Quinetiã quę est circa eandem rem concordia ac consensio, est assensio: quod autem idem est, vnũ est. Amicitia aũt ꝑficitur per similitudinẽ cõmunitatis quę sita est in vno. Qui est ergo cognitione prędit⁹, cùm diligat eũ q̃ verè est vnus Deus, & sit vir verè perfectus, & Dei amicus, in filij locum cooptatus (hæc enim sunt nomina nobilitatis & cognitionis & perfectionis) per Dei cõtẽplationem, quã summum profectũ cognoscens capit anima, munda planè effecta, & facie, inquit, ad faciẽ Deum omnipotentẽ æternè videre dignata, tota enim effecta spiritalis, cùm ad id quod est cognatum processerit in ecclesia spiritali, manet ad Dei requiẽ. atq; hęc quidem ita sint. Cùm aũt ita se habeat is qui est cognitione præditus, & quod ad corpus attinet, & quod ad animam, & quod ad propinquos, seu fuerit seruus, seu hostis lege factus, seu qualiscũq; inuenitur æqualis & similis (nõ enim conuenienter legi diuinę despicit fratrẽ eodẽ patre & eadem matre natum) eum certè qui affligitur alleuat consolationibus, adhortationibus, ijs quæ sunt ad vitam necessaria succurrens: dans omnibus egentibus, sed nõ similiter, sed iustè & pro meritis: quinetiam ei qui ꝑsequitur & odio habet, si eo indigeat, parum curans eos qui dicũt, propter metum ei dedisse: si non hoc fecerit propter metum, sed vt ei opem ferret. Qui enim vt inimicis subueniant non parcunt pecunię, & odio habent improbos, quemadmodum non fuerit in suos maior eorum charitas? Qui talis est, ex hoc progreditur ad perfectè sciendum, & cui nã maximè, & quantum, & quando, & quomodo sit daturus. Quis autem eius viri iurè fuerit inimicus, qui nullam inimicitiarum causam prębet omnino? Nunquid autem sicut de Deo dicimus, Deum nulli aduersari, nec esse alicuius inimicum, est enim creator omnium, & nihil est ex ijs quæ constiterunt quod nolit? Dicimus autem ei esse inimicos eos qui non parent, & ex eius præceptis non ambulant, vt qui in eius testamentum gerant inimicitias: eodem modo inuenerimus etiam in eo qui est præditus cognitione, ipse enim nulli vnquam vllo modo fuerit inimicus: eius autem inimici intelligi potuerint, qui in viam ei contrariam conuertuntur. Et alioqui is qui est in nobis distribuendi habitus, dicitur iustitia: quinetiam habitus discernendi pro meritis aut magis aut minus, in quibus id oportet fieri ex scientia, est species summæ iustitiæ. Ac sunt quidem quædam quæ vulgi more rectè geruntur ab aliquibus, vt continentia à voluptatibus. Quomodo enim inter gentes, & ex eo quòd non possit cõsequi quod videt aliquis, & ex eo quòd timeat homines: sunt autem etiam qui propter maiores voluptates abstinent ab ijs quæ sunt iucunda in præsentia: ita etiam in fide, aut propter promissionem, aut propter Dei metum se nonnulli continent. Sed est quidem fundamentum cognitionis, talis continentia, & quędam deductio ad id quod est melius, & ad id quod est perfectum incitatio. Initium enim sapientiæ, inquit, est timor Domini. Qui est autẽ perfectus, propter charitatem omnia suffert, omnia sustinet, non vt homini placens, sed Deo. Quanquam eum quoq; laus sequitur per consequentiam, non ad suam vtilitatẽ, sed ad imitationem & vsum eorũ qui laudant. Dicitur aũt in alio quoq; significato cõtinens, nõ solùm is qui comprimit animi perturbationes, sed etiam is qui bona continuit, & firmiter ac stabiliter acquisijt scientiæ magnitudinem, ex qua producit eas quæ ex vir

tute

A tute fiunt operationes. Ea facit vt si quis casus euenerit, à proprio habitu nunquam excedat is q est præditus cognitione: est enim solida & immutabilis boni quæ scientiam constituit possessio, vt quæ sit scientia diuinarũ rerũ & humanarum. Cognitio ergo nunquã fit ignoratio, neque bonum mutatur in malum: quocirca & comedit, & bibit, & vxorem ducit, non principaliter, sed necessariò. Vxorem autem ducere, dico, si verbum dixerit, & vt conuenit: qui enim fuerit perfectus, exempla habet Apostolos, & reuera vir ostenditur, non in eo quòd vitam elegerit monasticam, sed ille viros vincit qui in matrimonio, & liberorũ procreatione, & domus cura ac prouidentia, citra voluptatem & dolorem se exercet, & cum domus curatione est indiuulsus à Dei charitate, & insurgit aduersus omnem tentationem quę affertur per filios, vxorem & famulos, & possessiones. Ei autem qui domum non habet, magna ex parte euenit vt non tentetur. Qui ergo sui solummodo curam gerit, vincitur ab eo qui cùm sit inferior quidem in ijs quæ pertinent ad suam salutem, superior autem in ijs quæ ad vitæ spectant dispensationem, exiguam reuera conseruat imaginem, veritatis prouidentia. Sed nobis quidem quàm fieri potest maximè prius variè exercenda est anima, vt ad suscipiendam cognitionem sit operatu facilis. Non videtis quemadmodum mollitur cera & purgatur æs, vt accedentem accipiat charactêrem? Iam verò vt mors est animæ separatio à corpore, ita cognitio est veluti mors rationalis, abducens & separans animam à motibus & perturbationibus, & deducens ad vitam beneficẽtiæ & bonarum operationum, vt tunc Deo dicat liberè, viuo sicut vis. Nam

B cuius est institutum vt placeat hominibus, is Deo placere non potest: quoniam non quæ conferunt, sed quæ delectant multi eligunt: qui autem Deo placet, bonis hominibus per consequentiam fit gratus & acceptus. Quomodo ergo cibus & potus & Venus ei amplius fuerit delectabilis, cùm etiam sermonem qui aliquam affert voluptatem, motumq; cogitationis & operationem iucundam, habeat suspectam? Nemo enim potest duobus dominis seruire, Deo & Mammonæ: non pecuniam dicens *Matth. 6.* sic nudè dicit, sed suppeditationem quæ fit à pecunia in varias voluptates. Reuera non potest fieri vt qui Deum cognouit magnificè & verè, eis quæ aduersantur seruiat voluptatibus: est ergo vnus quidẽ solus ab omni cupiditate alienus ab initio, benignus & clemens Dominus, qui propter nos quoq; est homo. Quicunq; autẽ student assimilari charactêri qui ab ipso datus est, vt fiant expertes cupiditatis magna vi contendunt ex exercitatione. Qui enim concupiuit, & seipsum continuit, vt vidua quæ est rursus virgo per temperantiam, is eam cognitionis mercedem seruatori & magistro reddidit, quam ipse petijt, nempe abstinentiã à malis, & bonarũ actionum operationẽ, per quas accedit salus. Quomodo ergo qui artes didicerunt, per ea quę docti sunt alimenta acquirunt: ita is qui est cognitione pręditus, per ea quę scit, vitam acquirens, fit saluus: qui enim noluerit perturbationẽ animæ excindere, seipsum occidit. Sed, vt videtur, alimẽti quidẽ defectus est ignoratio animæ: nutrimentum verò, cognitio. Hæ autem sunt cognoscentes animæ quas assimilauit Euange- *Matth. 15.* lium virginibus sanctificatis, quę Dominum expectant. Nam virgines quidem sunt,

C vt quæ à malis abstinuerint, expectant autem Dominum propter charitatem: & sua lumen accendunt ad rerum contemplationem, prudentes virgines, dicentes, ô Domine, iam tandem desideramus te recipere: consequenter ijs quæ tu mandasti viximus, nihil prætermittentes eorum quæ præcepisti, quamobrem promissa quoq; petimus. Precamur autem quæ sunt vtilia, vtpote quod non conueniat à te petere quæ sunt pulcherrima, & accipiemus omnia ad vtilitatem, etiamsi videantur esse mala quæ accedunt exercitia, quæ quidem nobis tua prębet œconomia, ad stabilitatem exercendam & constantiam. Atque qui est quidem cognitione præditus, propter insignem sanctitatem est paratior si petat non assequi, quàm si non petat assequi. Precatio quidem est ei vniuersa vita, & cum Deo conuersatio, quòd si sit mundus à peccatis, omnino quod vult assequetur. Iusto enim dicit Deus: Pete & dabo tibi, cogita & faciam. Si sunt ergo vtilia, accipiet protinus: inutilia autem nunquam petet, & ideo non accipiet: sic erit id quod vult. Quòd si quis dicat nobis, quosdam etiã peccatores impetrare petitiones: hoc quidem raro fit, propter iustam Dei bonitatem. Datur autem ijs etiam qui possunt alijs benefacere: vnde non fit donatio propter eum qui petijt, sed œconomia præuidens eum qui per ipsum est saluus futurus, rursus iustam facit donationem: ijs autem qui sunt digni, ea etiam quæ verè sunt bona dantur etiam non petentibus. Quando ergo non necessitate vel metu vel spe fuerit iustus aliquis, sed ex libero animi instituto, hęc dicitur via regia, quã ingreditur regale

genus:sunt autē lubricæ & præcipites aliæ ab ea declinationes. Si quis ergo metum & honorem abstulerit, nescio an adhuc sustinuerint afflictiones, & præclari qui liberè loquuntur Philosophi. Cupiditates ergo & alia peccata dicta sunt tribuli & valli: operatur ergo is qui est prӕditus cognitione, in vinea Domini, plantans, putans, irrigans, verè diuinus agricola eorum qui sunt plantati in fide. Et qui malum quidē non fecerunt, æquum censent vt otij mercedem accipiant: qui autem bona fecit ex nudo ac puro animi instituto, exigit mercedem vt bonus operarius. Duplam certè is accepisset, & propter ea quæ non fecit, & propter ea quæ bene fecit. Hic qui est cognoscendi potestate prӕditus, à nemine tentatur, nisi Deus permiserit, idq; propter eorum qui cum eo versantur vtilitatem: confirmat certè ad fidem per virilem adhortans tolerantiam. Et profectò propterea beati Apostoli, ad confirmādas & stabiliendas ecclesias, ad experientiam & testimonium ducti sunt perfectionis. Cùm ergo habeat is qui est cognitione prӕditus, vocem in auribus resonantem quę dicit: Quē ego percussero, tu eius miserere, petit vt ij etiam qui odio habent, ducantur pœnitentia. Nam quod de maleficis in stadijs sumitur supplicium, est etiam puerorū non contemplari: non potest enim fieri vt ab ijsdem vnquam doceatur vel delectetur is qui est prędirus cognitione, qui ex libero animi instituto, vt bonus esset & honestus se exercuit. Et ideò qui voluptatibus minimè est liquefactus, nec in peccata vnq̃ incidit, alienorum malorum exemplis non castigatur: multum autem abest vt terrenis voluptatibus & spectaculis delectetur, qui mundanas, etsi sint diuinæ, contempsit promissiones. Non omnis ergo q dicit, Domine, Domine, ingredietur in regnū Dei, sed qui facit voluntatem Dei. Is autem fuerit qui est cognitione prӕditus operarius, qui mundanas quidem vincit cupiditates, licet sit adhuc in carne. De ijs autē quæ cognouit futuris, & quæ adhuc sub visum non cadunt, tam certam habet persuasionē, vt ea magis adesse putet, quàm quę sunt præsentia. Hic est aptus & opportunus operarius, qui ijs quidem quæ nouit lætatur: quòd autem in huius vitæ necessitatibus volutetur, animo contrahitur, nōdum dignatus efficace eorum quæ nouit participatione, hac ratione hac vita vtitur tanquam aliena, quantum requirit necessitas. Nouit ipse ieiunij quoq; ænigmata horū dierū, quarti, inq̃, & sexti: dicitur autē ille quidē Mercurij, hic verò Veneris. Ecce. n. ieiunat in vita, & ab auaritia, & à libidine, ex quibus oīa oriūtur vitia. Fornicationis enim iā tres supremas ex Apostoli sententia posuimus differentias, libidinē, auaritiā, idololatriā. Ieiunat ergo etiā ex lege à malis actionibus, & ex Euāgelij pfectione à malis cogitationibus: ei exhibentur etiā tentationes, nō ad expiationē, sed ad propinquorū, vt diximus, vtilitatē, si laborum & dolorum periculo facto, eos contempserit & amandarit. Eadem est etiam ratio de voluptate: est enim res maxima, cùm quis eam expertus fuerit, deinde abstinuisse: quid enim magnum, si quis se contineat ab ijs quæ non nouit? Is cùm executus sit præceptum quod est ex Euangelio, facit illum diem Dominicum, quādo malam abiecerit cogitationem, & acceperit eam quæ est ex cognitione, eam quæ est in ipso, Domini glorificans resurrectionem. Quinetiam cùm theorematis quod est ex scientia acceperit comprehensionem, se Dominum videre existimat, visum suum deducens ad ea quæ cadunt sub aspectum, etsi videatur videre ea quæ non vult videre, castigans videndi facultatem, cùm senserit se voluptate affici ex applicatione visus: nam hoc solùm vult videre & audire quod ad se pertinet. Iam verò fratrum animas considerans, carnis quoq; pulchritudinem ipsa aspicit anima, quæ solum id quod est honestum consueuit intueri absque voluptate carnali. Fratres autem sunt qui reuera per electam creationem, & morum consensionem, & operum substantiā, eadem faciunt & cogitant & loquuntur opera sancta & honesta, quæ Dominus voluit ipsos, cùm sint electi, sentire. Nam fides quidem est in eo, quòd eadem eligant: cognitio autem in eo, quòd eadem didicerint & sentiant: spes autem in eo, quòd eadem faciant. Quòd si propter vitæ necessitatem in se nutriendo consumat aliquid temporis, se debitū fraudare existimat, vt qui à suo auellatur negocio. Hinc fit reuera ne somnium quidem videat, quod non electo conueniat. Nam reuera is est totus hospes & peregrinus in tota vita, qui ciuitatem habitans, contemnit ea quæ sunt in ciuitate, quæ apud alios habentur in admiratione, & viuit in ciuitate tanquam in solitudine, vt non locus eum cogat, sed liberum eligendi arbitrium eum iustum ostendat. Hic qui est cognitione prӕditus, vt semel dicam, Apostolicam adimplet absentiam, rectè viuens, accuratè cognoscens, suos iuuans necessarios, montes propinquorum transmouens, & inæqualitates ipsorum animę abijciens. Quanq̃ vnusquisque

Matth. 7.

A B C

que

A que nostrûm sui est & vita & operarius. Qui autem etiã quæ sunt optimã agens vult latêre homines, Domino simul & sibi ipsi persuadens quòd viuat ex præceptis, ea præferens ex eo quòd esse credidit: Vbi enim, inquit, est mens alicuius, illic est etiam eius thesaurus: ipse seipsum diminuit, ad hoc nunquam contemnit fratrẽ qui fuerit in afflictione, propter eam quæ est in charitate perfectionem, si se sciuerit facilius laturum egestatem quàm frater. Existimat certè illius dolorem esse dolorem propriũ, & si ex sua præbens inopia, propter beneficentiam aliquo afficiatur incommodo, id non ægrè fert, sed adhuc magis auget beneficium. Habet enim puram & synceram fidem, eam quæ est de rebus, per opera & contemplationem laudans Euangelium. Atqui non laudem ab hominibus accipit, sed à Deo, peragens ea quæ docuit Dominus. Hic cùm attrahatur à spe propria, non gustat ea quæ sunt in mundo pulchra, omnia quæ hic sunt magno animo despiciens, miserens eorum qui post mortem castigantur, per supplicium inuiti cõfitentes, bonam semper habens cõscientiã, & semper paratus ad exitũ, vt peregrinus & hospes earũ quæ hîc sunt hæreditatũ, memor tantùm propriorum: quæ aũt hîc sunt omnia aliena existimans, non solùm Domini mandata admirans, sed vt semel dicam, per ipsam cognitionẽ particeps diuinæ volũtatis, verè familiaris Domini, & mandatorũ electus vt iustus, regendi aũt & regnandi potestate præditus, vt cognitione præditus omne quidẽ aurũ quod est super terram, & sub terra, & regnũ quod est à finibus ad fines Oceani despiciens, vt solũ Domini cultum teneat. Quocirca & comedens, & bibens, & vxorẽ ducens, si dicat Ver- *Matth.6.*

B bum, quinetiam somnia aspiciens, sancta facit & cogitat, ea ratione semper mundus ad orationem. Is verò etiam precatur cum Angelis, vt qui iam sit etiam æqualis Angelis, neque est vnquam extra sanctam custodiam, & licet oret solus, habet chorum Angelorùm vnà assistentem. Duplicem is nouit, & eius qui credidit operationẽ, & eius quod creditur, eam quæ est pro digna excellentia. Nam iustitia quoque est duplex, vna quidem propter charitatem, altera verò propter metum. Dictum quidem certè est timor Domini castus, permanẽs in seculũ seculi: qui enim conuertuntur à timore ad fidem & iustitiam, permanent in seculum. Iam verò abstinentiam à malis operatur is qui timet. Adhortatur autem benefacere charitas ædificans super voluntariũ, vt quis audiat à Domino: Non vos amplius dico seruos, sed amicos. Etiam cũ fiducia accedit ad preces. Genus autem ipsum orationis est gratiarum actio propter præterita, præsentia, & futura, vt quæ sint per fidem iam pręsentia: id autẽ præcedit, accepisse cognitionem. Quinetiam sic quoq; petit vt viuat vitam in carne definitam, vt cognoscendi potestate præditus, vt expers carnis, & consequatur quidem quæ sunt optima, fugiat autem quæ sunt deteriora. Petit autem alleuationem quoq; eorum quæ nos peccauimus, & conuersionẽ ad agnitionem, tam acriter sequens eũ qui vocat in excessu, quàm ille vocat, vt ita dicam, producens, propter bonam conscientiam festinans ad agendas gratias, & vt cùm illic fuerit cum Christo, vt qui seipsum dignum præbuerit propter puritatem, per contemperaturam habeat Dei virtutem quæ suppeditatur per Christũ. Non enim caloris participatione calidus, neq; *Psal.18.* *Ioan.15.*

C ignis lucidus, sed vult totus esse lux. Is accuratè nouit id quod dictum est: Nisi odio habueritis patrem & matrem, & præterea propriam quoq; animam, & nisi signum portaueritis. Nam & carnales affectiones, quæ voluptatis maximas habent illecebras, & magno animo despicit omnia quæ sunt accommodata & creationem & nutritionẽ carnis: sed etiã insurgit aduersus animã corpoream, imperiũ detrectanti spiritui experti rationis frænum inijciens, quoniã caro concupiscit aduersus spiritum. Signum aũt portare, est mortem circunferre, adhuc viuum renunciantem omnibus: quoniam non est æqualis charitas eius qui seminauit carnem, & eius qui animam creauit ad scientiam. Hic cùm ad benefaciendi habitum peruenerit, dicto citius beneficio afficit, orans vt fratrum quidem peccatorum sit particeps ad confessionem & cognatorum conuersionem, ad propria autem bona amicissimis communicanda paratissimus. Ipsi autem sic ei sunt amici. Augens aũt quæ apud ipsum deponuntur semina, ea quam mandauit Dominus agricultura manet quidem nulli peccato affinis: fit aũt continens, & degit cum ijs qui sunt simili spiritu in choris sanctorum, etiamsi adhuc in terris detineatur. Hic toto die & nocte dicens & faciens iussa Domini, supra modum lætatur, non solùm cùm manè surgit & in meridie, sed etiã cùm deambulat, & dormit, & vestes induit & exuit, & docet filium, si sit genere filius, inseparabilis à mãdato & à spe: Deo semper agens gratias, sicut animalia glorificantia, quę allegoricè dicuntur per Esaiã: tolerãs cuiusuis tentationis, Dominus, inquit, *Luc.14.*

Iob.1. dedit, Dominus abstulit. Talis erat Iob quoque, qui propter in Dominum charitatem, omnia sibi externa vnà cum sanitate auferenda deposuit: erat enim, inquit, iustus, sanctus, abstinens ab omni improbitate. Sanctũ autem significat ea iura, quæ ad Deum pertinent, & omnem œconomiam, quæ quidem sciens, erat præditus cognitione. Oportet enim neq; si sint bona, eis esse nimium deditum: neq; rursus si mala, nimium ægre ferre, sed vtrisq; esse superiorem, hæc quidem conculcantem, illa verò ad egenos transmittentem. In dispensando autem & se demittendo & accommodãdo, est admodum cautus is qui est præditus cautione, ne fortè non intelligatur, aut pro constitutione habeatur dispensatio. Nunquam meminit eorum, quæ in se peccata sunt, sed ea remittit: quocirca iustè etiam orat, dicens, Dimitte nobis, nam nos quoq; dimittimus. Nam hoc quoq; vnum est ex ijs quæ vult Deus, nihil concupiscere, nullum habere odio: est enim opus vnius voluntatis, omnes homines. Nunquid autem eum qui est cognitione præditus, perfectum esse volẽs Seruator noster, sicut patrem cælestem, hoc est seipsum, dicens, Venite filij, audite à me timorem Domini, non vult nos amplius opus habere auxilio quod datur per Angelos, sed à seipso cùm dignus euaserit accipere, & à seipso habere præsidium per obedientiam? Qui talis est, exigit à Domino, non autem petit, & egentibus fratribus non petet is qui est cognitione præditus, pecuniæ copias ad eis impertiendum: sed optabit illis suppeditari ea quibus indigent. Nam sic dat etiam preces ijs qui indigent, is qui est præditus cognitione, & non per preces inscienter simul præbet & simpliciter. Sæpe ergo paupertas, & morbus, & tales tentationes præbentur ad admonitionẽ & correctionem præteritorum, & ad curam futurorum. Qui est eiusmodi, his petens alleuationem, vt qui habeat id quod est eximium cognitionis, non propter vanam gloriam, sed propter hoc ipsum quòd sit cognitione præditus, exercet ipse beneficentiam, vt qui factus sit instrumentum Dei bonitatis. Dicunt autem Matthiam Apostolum inter cætera dixisse: Si electi vicinus peccauerit, peccauit electus: nam si se ita gessisset vt iubet Verbũ seu ratio, eius vitam ita esset reueritus vicinus vt nõ peccasset. Quid ergo dicemus de eo qui est præditus cognitione? An nescitis, inquit Apostolus, quòd templum Dei estis? Diuinus ergo est is qui est præditus cognitione, & iam sanctus, qui Deo afflat & afflatur. Iam verò ostendens scriptura eum esse alienũ à peccato, eum quidem qui offendisset vendit alienigenis. Ne aspiciat aũt ad concupiscentiam mulierem alienam, dicens, apertè dicit peccatum esse alienum, & præter naturam templi Dei. Templum autem, vnum quidem est magnum, vt Ecclesia: alterum verò paruum, vt homo qui seruat semen Abrahæ. Non cõcupiscet ergo aliquid aliud, qui habet Deum qui requiescit. Iam verò relictis omnibus quæ sunt impedimento, & despecta tota quæ eum abstrahit materia, cælum secat per scientiam: & spiritalibus transmissis essentijs, & omni principatu & potestate, tangit supremos thronos, ad illud solum tendens, propter quod solum cognoscebat. Serpente ergo commixto cum columba, simul perfectè viuit & cum bona cõscientia, spem fide cõmiscens ad expectationem futuri. Sentit enim donum quod accepit, vt qui dignus sit habitus qui consequeretur, & translatus sit à seruitute in filiorum adoptionem, consequenter scientiæ: & neq; non Deum cognouerit, vel potius sit ab ipso cognitus propter finem, & pro gratiæ meritis ostendat operationes: opera enim sequuntur cognitionem, non secus ac vmbra corpus. Meritò ergo nihil eum cõturbat ex ijs quæ accidunt, neq; quicquam veretur ex ijs quæ diuino cõsilio fiunt propter vtile, neq; erubescit mori, vt qui bonã habeat cõscientiam, vt ostendatur potestatibus, ab omnibus vt semel dicã, animæ maculis emundatus, & qui sciat post excessum ex hac vita fore vt secum agatur melius. Vnde iucundum & vtile nunquam præfert œconomiæ, & diuino consilio, per mandata seipsum exercens vt euadat Domino gratus & acceptus in omnibus, & apud mundum laudabilis, quandoquidem dependent omnia ab vno Deo omnipotente. In propria, inquit, venit filius Dei, & sui eum non receperunt. Quamobrem etiam in vsu rerum mundanarum, non solùm agit gratias & admiratur creaturam, sed etiam vtens vt oportet laudatur, quoniam ei finis desinit in contemplationem per operationem ex cognitione profectam, quæ fit conuenienter mandatis. Hinc iam per scientiam colligens viaticum contemplationis, postquam magnificè accepit magnitudinem contemplationis, procedit ad translationis sanctam remunerationem. Audiuit enim psalmum dicentem: Circundate Sion, & cõprehẽdite eam, narrate in turribus eius. Significat enim, vt arbitror, eos qui Verbũ altè susceperunt, futuros altos vt turres, & firmiter & stabiliter staturos

Marginal notes: Esa.33. (beside "Nunquid autem"); 1. Cor. 3. (beside "set. Quid ergo"); Ioan.1. (beside "nia ab vno Deo"); Psal. 47. (beside "tionis, postquam"). Section letters A, B, C in right margin.

A ros in fide & cognitione. Et hæc quidem quàm fieri potest breuissimè dicta sint Græcis instar seminis, de eo qui est præditus cognitione. Sciendum est autem, q, si vnum vel alterum ex his fidelis rectè gesserit, non tamen geret omnia, neq; cum summa illa scientia cum qua is qui est præditus cognitione. Atq; illius quidem, vt ita dicam, impatibilitatis quæ nobis est in eo qui est præditus cognitione, per quam perfectio eius qui est fidelis, per charitatem in virum perfectũ procedens ad mensuram peruenit ætatis, Deo assimilata, vt quæ verè facta sit æqualis Angelis, sucurrunt multa alia, quæ ex scriptura adduci possunt, testimonia. Satius autem existimo hanc laudẽ propter orationis prolixitatem ijs relinquere qui volunt laborare, permittentes vt vnà etiam elaborent dogmata per allegationem scripturarum. Vnius autem breuissimè meminero, ne locum prętermittã non adnotatum. Dicit enim diuinus Apostolus in priore Epistola ad Corinthios: Audet aliquis vestrum habens negocium cum alio, iudicio contendere apud iniustos, & non apud sanctos? An nescitis quòd sancti mundum iudicabunt? & quæ sequuntur. Cùm sit autem ea pars maxima, opportunis dictorum Apostolicorum vtentes dictionibus, paucissimis persequentes, & dictionẽ enunciantes veluti metaphrasticè, ostendemus sententiã dicti Apostolici, per quam describit perfectionem eius qui est præditus cognitione. Non cõstituit enim eum qui est præditus cognitione, ex hoc solùm quod magis iniuria afficiatur, quàm afficiat: sed eum docet etiam obliuisci acceptæ iniuriæ, nec permittens malè precari ei qui fecit iniuriã. Scit enim Dominum quoq; apertè iussisse orare pro inimicis. Cap. 6.

B Dicere enim eum qui est affectus iniuria iudicio contendere apud iniustos, nihil est aliud quàm velle videri vicem reddere, & velle iniuriam referre, quod quidem est ipsum quoq; similiter facere iniuriam. Dicere autem aliquos velle apud sanctos iudicio contendere, ostendit eos qui petunt precibus vt ijs qui fecerunt iniuriam par pari referatur, & esse quidem prioribus secundos meliores, sed nondum planè obedientes, nisi iniuriæ perfectè obliuiscẽtes, ex doctrina Domini precentur etiam pro inimicis. Pulchrum est ergo quòd bonam mentem ex ea quæ est ad fidem pœnitentia acceperint. Nam etsi veritas eos videatur habere inimicos qui inuident & æmulantur, ipsa tamen nulli est inimica: nam & Deus facit Solem suum oriri super iustos & iniustos. Quinetiam ipsum Dominum misit ad iustos & iniustos, & qui contendit Deo assimilari, per maximam iniuriæ acceptæ obliuionem, remittens septuagesies septies, vtpote per totam vitã & vniuersam mũdi conuersionem, quę hebdomadibus quę numerantur significatur, est benignus & clemens in quemlibet, etiamsi quis hoc vniuersum in vita viuens tempus, iniuria afficit eum qui est pręditus cognitione. Non solam enim possessionem vult virum bonum alijs permittere ex ijs qui ipsum affecere iniuria, sed etiam vult iustum ab illis iudicibus petere remissionem peccatorum, ijs qui in ipsum peccarunt. Et meritò, siquidem in eo solum quod est externum, & in eo quod pertinet ad corpus, si vel ad mortem vsq; procedatur, detrimento afficiunt ij qui conantur facere iniuriam, ex quibus nihil est quod sit propriũ eius qui est præditus cognitione. Quemadmodum autem Angelos qui defecerunt

C iudicabit quispiam, qui ipse defecerit ab illa lenitate, & acceptæ iniuriæ obliuione, quam præscribit Euangelium? Cur non ergo potius, inquit, iniuria afficimini? Cur non potius fraudamini? Sed vos iniuriam facitis & fraudatis, eis scilicet malè precantes qui peccant per ignorantiam: & fraudatis Dei clementia & bonitate, quantum est in vobis, eos quibus malè precamini, fratres dicẽtes non eos solos qui sunt in fide, sed etiam proselytos. An enim is qui nunc est inimicus sit postea crediturus, nos nondum scimus. Ex quibus apertè colligitur, etsi non esse omnes, at nobis quidem ipsis videri esse fratres. Iam verò omnes quoq; homines qui sunt vnius Dei opus & vna imago, vna circundati substantia, etiamsi sint alij alijs magis obscurati, solus cognoscit is qui scit etiam per creaturas operationem, per quam rursus Dei adoras voluntatem. An nescitis quòd iniusti regnum Dei non possidebunt? iniuriam ergo facit qui refert iniuriam, seu facto, seu verbo, siue etiam volendi cogitatione, quam post legis pædagogiam circumscribit Euangelium. Et hæc quidem eratis: tales scilicet, quales adhuc sunt quibus ipsi non ignoscitis. Sed abluti estis: non absolutè vt reliqui, sed cùm per cognitionem abiecistis animæ affectiones, vt pro viribus assimilaremini bonitati Dei prouidentiæ, & per tolerantiam, & per acceptæ iniuriæ obliuionem. Super iustos & iniustos, Verbi & operum benignitatis lucem, sicut Sol, emittentes, siue hoc animi magnitudine, hoc sibi vendicabit is qui est præditus cognitione: siue imitatione eius quod est melius. Tertia

est autem causa, Remitte & remittetur tibi, veluti cogente mãdato ad salutem propter insignem bonitatem. Sed sanctificati estis: ei enim qui ad hunc venit habitum, sanctum esse conuenit, nullo modo cadendo in vllam animi perturbationem, sed perinde ac si carne careat, & absq; hac terra sanctus euaserit. Quamobrem iustificati estis, inquit, nomine Domini, facti estis, vt ita dicã, ab ipso, vt iusti essetis sicut ipse: & spiritui sancto, quoad eius fieri potuit, cõmixti & contemperati estis. Num enim omnia mihi licent? Sed non in potestatem redigar, inquit, vt aliquid faciam vel cogitem vel loquar præter Euangelium. Escæ autem ventri, & venter escis, quas Deus destruet, hoc est, eos qui sic cogitant & viuunt, tanquam nati sint vt comedant, non autem comedunt vt viuant quidem per consequentiam, cognitioni autem attendant principaliter. Et nunquid eos esse dicit veluti carnes sancti corporis? Corpus autem allegoricè dicitur Domini Ecclesia, spiritalis & sanctus chorus, ex quibus ij qui vocantur solùm nomine, viuunt autem non ex ratione, sunt carnes. Hoc autem corpus spiritale, hoc est, sancta Ecclesia, non fornicationi, nec ab Euangelio defectioni, quæ nullo modo oportet inire consuetudinem & familiaritatem cum vita gentilium. Fornicatur enim in Ecclesiam, eius quoque corpus, is qui gentiliter viuit in Ecclesia, siue in facto, siue in verbo, siue etiam in ipsa cogitatione. Qui huic adhæret meretrici, ei inquam quæ est præter testamentum operationi, fit aliud corpus, non sanctum in carnem vnam, & vitam gentilem, & spem aliam: qui autem adhæret Domino in spiritu, corpus spiritale, diuersum genus congressionis. *Filius* hic totus, homo sanctus, impatibilis, cognitione præditus, perfectus, formatus doctrina Domini, vt cùm facto & verbo & ipso spiritu Domino adhæserit, recipiat illam mansionem quæ debetur ei qui sic vir euasit. Sufficit hoc specimen eis qui habent aures. Non est enim euoluendum mysterium, sed tantum est ostendendum, quantum sufficit ad reuocandum in memoriam ijs qui sunt participes cognitionis, qui etiam intelligent quemadmodum dictum sit à Domino: Estote vt pater vester perfecti, perfectè peccata remittentes, & acceptæ iniuriæ obliuiscentes, & viuentes in habitu impatibilitatis. Quomodo enim perfectum dicimus medicum, & perfectum philosophum: ita, vt opinor, perfectè cognitione præditum. Sed nihil ex his, etsi sit maximum, assumitur ad Dei similitudinem: non enim, vt Stoici valde impiè, hominis & Dei eandem virtutem esse dicimus. Nunquid ergo debemus esse perfecti, vt vult pater? Nequaquam enim fieri potest vt sit aliquis perfectus vt est Deus: vult autem Pater nos ita viuentes vt obediamus Euangelio, perfectos fieri citra reprehensionem. Si ergo dicti quod ita prolatum est vt ei aliquid desit, id quod deficit subaudierimus, ad locum implendum ijs qui possunt intelligere: & voluntatem Dei cognoscemus, & pro dignitate mandati simul piè & magnificè viuemus. Quoniam autem est consequens respondere ijs quæ à Græcis & Iudæis nobis obijciuntur: in nonnullis autem dubitationibus similiter atq; prædicti nos reprehendunt quæ aliam sequuntur doctrinam hæreses, bene habuerint vt prius expurgatis ijs quæ sunt impedimento, parati ad soluendas dubitationes, progrediamur ad sequens Stroma. Primùm ergo hoc aduersus nos adducunt, dicentes non oportere credere propter dissensionem hęresum: retardatur enim ac differtur veritas, dum alij alia dogmata constituunt. Ad quos dicimus, quòd & apud vos Iudæos, & apud eos qui inter Græcos fuere in maxima existimatione Philosophos, fuere plurimæ hæreses: neq; tamen ideo dubitandum esse dicitis philosophari, aut se Iudaicę tradere disciplinæ, propter eam quæ est inter se vestrarum sectarum dissensionẽ. Præterea autem fore vt in veritate seminentur hæreses, vt in frumento zizania, prophetice dictum est à Domino, & fieri non potest vt non fiat id quod prædictum est esse futurum. Huius autem causa est, quòd quicquid est pulchrũ sequitur Momus. Num ergo si quis pacta conuenta non obseruauerit, & transgressus fuerit eam quæ fit apud nos confessionem, propter eum qui non stetit suæ professioni, abstinebimus nos quoq; à veritate? Sed vt oportet virum probum minimè esse mendacem, & nihil infirmare eorum quæ est pollicitus, etiamsi aliqui alij pacta cõuenta transiliant: ita nos quoq; nullo modo conuenit transilire regulam ecclesiasticam: & maximè eam quę fit de rebus maximis professionem, nos quidem obseruamus, illi verò transiliunt. Est ergo credendum ijs quæ firmiter adhærent veritati. Iam verò nobis vt largè vtentibus hac defensione licet ad eos dicere, quòd medici quoq; quorũ cõuenienter suis sectis diuersę sunt sententiæ, ex ęquo re ipsa curant. Nũ ergo quispiã ęgrotans & vt curetur opus habens, non admittit medicũ propter eas quæ sunt in medi-

cina

A cina hęreses?Neq; ergo qui anima ęgrotat,& est plenus simulachris,ꝓ sanitate & ad
Deum cõuersione prætexat vnq̃ hęreses.Certè ꝓpter probatos,inquit,sunt hęreses:
probatos autem dicit,vel eos qui venientes ad fidem, maiori electione accedunt ad
doctrinam Dominicam, tanq̃ probos argentarios qui nummum Domini adulteri-
num discernunt ex falsa impressione:aut eos qui in ipsa fide iam probi euaserũt, &
in vita & in cognitione.Propterea ergo maiori cura opus est & prouidentia,vt exa-
minetur quo modo sit exactè & perfectè viuendum, & quænam sit vera pietas & re
ctus Dei cultus.Clarum est enim quòd cùm veritas sit ardua & difficilis, propterea
certè fuerunt quęstiones,ex quibus quę nimio sui amore laborant,& sunt ambitio-
sę & gloriæ cupidæ,sunt hæreses eorum qui non didicerunt quidem,neq; verè acce
perunt,sed sibi cognitionis sumpsere ꝑsuasioné. Est ergo nobis maiori studio & cu-
ra perscrutãda,ea quæ verè est veritas,quę sola versatur circa eum qui verè est Deus.
Laborem aũt consequitur dulcis inuẽtio & memoria. Est ergo labor inueniẽdi sub-
eundus propter hæreses,sed non est omnino deficiẽdum. Neq; enim si appositus sit
fructus,vnus quidem verus & maturus,alius verò factus ex cera quàm maximè simi
lis,propter similitudinem est abstinendum ab vtroq;. Simul autem discernendũ est
comprehendente contemplatione,& principali consideratione,verùm ab eo quod
apparet. Et quomodo si vna quidem sit via regia, & multæ etiam aliæ, ex quibus
aliquæ ferunt in præcipitium,aliquæ verò ad fluuium rapidè fluentem,aut ad mare
profundum,non dubitauerit quispiam viam ingredi propter dissensionem,sed vte-
B tur via regia & trita & seiuncta à periculo:ita cùm alij alia dicant,de veritate non est
discedendum,sed est exactiùs & diligentiùs inquirenda eius exactissima & accura-
tissima cognitio. Nam cum oleribus hortensibus vnà etiam nascuntur herbæ : num
ergo abstinẽt agricolę à cultura hortorum?Cùm ergo habeamus à natura multa quę
nos incitant,& dant occasionem ad ea quę dicuntur examinanda,debemus etiã ve-
ritatis inuenire consequentiã.Quocirca meritò etiam cõdemnamur,non assentien-
tes ijs quibus oportet parêre,nõ discernentes id quod repugnat,& indecorũ,& prę-
ter naturã,& falsum,à vero & cõsentaneo,& decoro,& eo quod est secundum natu-
ram:quibus quidẽ vtendum est, vt quę incitent & sint occasio agnoscendæ eius quę
verè est veritatis.Græcis ergo est inanis hic prætextus:volentibus enim licebit inue
nire veritatem.Iis autem qui causas adducũt quæ carent ratione, est iudicium quod
nullam habet excusationem:vtrum enim perimunt,an assentiuntur esse demonstra
tionem?Existimo omnes esse confessuros præter eos qui sensus perimunt. Cùm sit
autem demonstratio,necesse est descendere ad quæstiones,& per ipsas scripturas di
scere demonstratiuè,quemadmodum lapsæ quidem sunt hæreses : quemadmodum
autem in sola veritate & antiqua Ecclesia sit perfectissima cognitio, & ea quę est re-
uera optima hæresis,id est,electio.Ex ijs autem qui declinant à veritate,alij quidem
seipsos solos,alij verò propinquos quoq; conantur fallere.Atq; ij quidem qui appel
lantur δοξίσοφοι,hoc est,opinione sapientes,qui se veritatem inuenisse existimant,nul
lam habentes veram demonstrationẽ,ij seipsos decipiunt,se acquieuisse existiman-
C tes,quorum non parua est multitudo,& quæstiones declinantium propter confuta
tiones,& doctrinam vitantium propter condemnationem. Qui autem eos qui ac-
cedunt decipiunt,sunt valde callidi & astuti,qui etiamsi satis assequãtur se nihil sci-
re,probabilibus tamen argumentis obscurant veritatem.Alia est autem ,vt opinor,
natura probabilium argumentorum,& alia verorum.Et quòd necesse sit nomen hæ
resum ita dici vt veritati opponatur,& ab ea distinguatur, cognoscimus : à qua cùm
quædam ad hominum perniciem auulserint Sophistæ, humanis à se inuentis ea in-
fodientes artibus,gloriantur se præesse diatribæ seu scholæ potius quàm Ecclesiæ.
Sed qui in rebus pulcherrimis laborem impendere sunt parati,non potius desistent
quærere veritatem, quàm ex ipsis scripturis acceperint demonstrationem. Ac sunt
quidem quidam communes hominum iudices,vtpote sensus:alij autem,eorum qui
consultarunt & exercuerunt ea quæ vera sunt,nempe quę sunt verarum & falsarum
orationum artes,per mentem & ratiocinationem. Maximum est autem deponere
opinionem,consistendo in medio accuratæ perfectęq; scientiæ,& temerarię sapien
tiæ opinionis,& nosse quòd qui æternam sperat quietem, cognoscit etiam eius in-
gressum qui est laboriosus & arctus.Et qui semel admisit Euãgelium,& salutare, in-
quit, quando cognouerit, ne ad ea quę sunt retro conuertatur sicut vxor Loth, neq;
ad priorem vitam quæ dat operam rebus sensilibus. Sed neque recurrat ad hæreses:
assuefaciunt enim nescio quomodo,eum qui non est,nosse Deum. Qui enim diligit

patrem vel matrē plus quàm me, qui sum verè pater & magister veritatis, qui regenero & recreo, foueoq; & alo electam animam, non est me dignus, vt sit, inquit, Dei filius, & Dei discipulus, & simul etiā amicus & cognatus: nemo enim ad ea quę sunt retro respiciens, & manum suam mittens ad aratrum, est aptus regno Dei. Sed, vt videtur, multis in hodiernum diem videtur Maria esse puerpera propter ortum filij, cùm non sit puerpera: etenim dicūt aliqui eam postquam peperisset, inspectā ab obstetrice, inuentam fuisse virginem. Tales autem sunt nobis scripturæ Dominicæ, veritatem parientes, & manentes virgines cum occultatione mysteriorum: peperit, & non peperit, inquit Scriptura, vt quę ex se, non ex coniunctione conceperit. Quamobrem ijs qui sunt cognitione præditi, conceperunt scripturæ: hæreses aūt, vt quæ non intellexerint, amandant tanq̄ quę non conceperint. Cùm aūt omnes homines idem habeant iudicium, alij quidem Verbū quod dictat sequentes, faciunt argumēta: alij aūt cùm seipsos dediderint voluptatibus, scripturam torquent ad suas cupiditates. Opus est autē, vt opinor, amatori veritatis robore animi: necesse est enim labi in maximis, eos qui res maximas aggrediuntur, nisi regulam veritatis ab ipsa veritate acceptam tenuerint. Qui aūt sunt eiusmodi, vt qui à recta via exciderint, meritò etiam falluntur in plurimis singularibus, propterea q, non habeant verorum & falsorum iudicium planè exercitatum, in ijs quæ oportet eligere: si enim haberent, parêrent scripturis diuinis. Quomodo ergo si q̄s fiat bestia ex homine, similiter atq; ij qui fuerant infecti venenis Circes: ita homo Dei esse, & Domino fidelis esse perdidit, qui aduersus Ecclesiasticam recalcitrauit traditionem, & in humanarum hæresum desiluit opiniones. Qui aūt ex errore reuersus obedijt scripturis, & vitam suam permisit veritati, Deus quodam modo ex homine efficitur. Principium enim doctrinæ habemus Dominum, qui & per Prophetas, & per Euangelium, & per beatos Apostolos, multifariam multisq; modis à principio ad finē deducit cognitionis. Principium autem si quis alio opus habere existimauerit, non vtiq; verè potuerit conseruari principium. Qui est ergo ex seipso fidelis, Dominica scriptura & voce est fide dignus, quę per Dn̄m exercetur ad hominum beneficium. Ipsa autem iudice vtimur ad res inueniendas: quicquid aūt iudicatur, non creditur, priusq̄ fuerit iudicatum, quare nec est principiū id quod opus habet iudicio. Meritò ergo cùm fide comprehenderimus principium indemonstrabile, & ex redundanti quadam copia demonstrationes ab ipso principio sumpserimus de principio, voce Domini erudimur ad agnitionem veritatis: non enim absolutè enunciantibus hominibus fidem habuerimus, quibus licet etiam enunciare contrariū. Si autem nō satis est solùm absolutè dicere quod visum est, sed oportet etiam probare quod dictum est, non expectamus testimonium quod datur ab hominibus, sed voce Domini probamus quod quæritur, quæ est magis fide digna quàm quæuis demonstrationes: vel potius quæ est sola demōstratio, per quam scientiam, qui solùm quidem gustauere scripturas, sunt fideles. Qui aūt etiā vlterius processerūt, sunt pfecti gnomones veritatis, ij scilicet qui sunt cognitione præditi: quandoquidem etiam in ijs quæ ad vitā pertinent, eos qui sunt rudes superant artifices, & per communes notiones exprimunt id quod est melius. Sic ergo nos quoq; ex ipsis de ipsis scripturis perfectè demonstrantes, ex fide persuademus demonstratiuè. Quòd si Propheticis quoq; scripturis vti ausi fuerint qui persequuntur hęreses, primùm quidem non omnibus, deinde non perfectis, neq; vt dictat corpus & contextura Prophetiæ, sed eligentes ea quæ dicta sunt ambiguè, traducunt ad proprias opiniones, paucas voces sparsim carpentes, non id considerantes quod ex ipsis significatur, sed ipsa nuda dictione vtentes. Nam in omnibus ferè dictis quæ adducūt, inueneris ipsos sola nomina attendentes, vt qui mutēt significata, neq; quemadmodum dicatur cognoscant, neq; ijs quas afferunt allegationibus, ita vt earum natura postulat vtantur. Veritas autem non inuenitur in eo quòd transferat significata, sic enim omnem veram euertēt veritatem: sed in eo quòd considerent quid Domino & omnipotenti Deo perfectè conueniat, & eum deceat, & in eo quòd confirment vnumquodque ex ijs quæ demonstrantur per scripturas, ex ipsis rursus similibus scripturis. Neque ergo volunt conuerti ad veritatem, vt quos pudeat deponere cōmodum sui in seipsos amoris: neq; sciunt qua ratione possint suas stabilire opiniones, scripturis vim afferentes. Cùm autem ad falsa in vulgus proferendum dogmata processerint, cum omnibus ferè scripturis euidēter pugnantes, & semper à nobis qui contra eos dicimus cōfutati, quod reliquum est, nunc adhuc quoque sustinent, partim quidem ex Propheticis aliqua non admittere, partim autem

iutem nos, tanquam qui simus alterius naturæ, non posse quæ sunt illorum propria intelligere, calumniantur. Nonnunquam autẽ etiam cùm conuincuntur, sua negant dogmata, apertè confiteri erubescentes quę se seorsum sic docere gloriãtur: sic enim in omnibus hæresibus videre licet, persequendo ipsorum dogmatũ nequitias. Nam postq̃ à nobis euersi fuerint, ostendentibus ipsos apertè aduersari scripturis, duorũ alterum videre licet fieri ab ijs qui præsunt dogmati: aut enim suorum dogmatum consequentiam, aut ipsam prophetiam, vel potius suam ipsorum spem despiciunt. Semper enim sibi sumunt id quod eis visum fuerit esse euidentius, quàm quod dictũ est à Domino per Prophetas, & ab Euangelio, & etiam Apostolorũ testimonio comprobatum & confirmatum. Cùm viderent ergo sibi imminere periculũ, non de vno dogmate, sed de conseruanda hæresi: non veritatem inuenire (nam cùm quæ sunt in medio posita & in promptu sunt apud nos legissent, ea vt vilia contempserunt) sed quod est cõmune fidei superare cõtendentes, excesserunt à veritate. Nam cùm Ecclesiasticæ cognitionis non didicissent mysteria, neq; veritatis percepissent magnitudinem, vt qui in perscrutãdo rerum profundo fuissent socordes, & superficie tenus legissent, scripturas valere iusserunt. Inani ergo sapiẽtiæ opinione elati, perpetuò litigant, apertè ostendentes se magis curare vt videantur, quàm vt philosophentur. Iam verò cùm non necessarijs rerum nitantur principijs, & humanis moti opinionibus, vt finis deinde eis necessariò sequatur, comparant, sauciãtur argumentis eorum qui veram tractant philosophiam, & quiduis potius tolerant, & omnem, vt aiunt, ruden-
B tem mouent, etiamsi futuri sint impij, propterea quòd non credant scripturis, quàm à sectæ sibi grato honore traducantur, & à vulgo iactata in eorum ecclesijs prima sede, propter quam, illam quoq; conuiuialem, per eam quæ falso nomine appellatur charitatem, primum accubitum amplectuntur. Quæ est autem apud nos agnitio veritatis, vt ex ijs quæ iam sunt credibilia, ijs quæ nondum sunt, fides habeatur, efficit: quæ quidem est essentia, vt ita dicam, demonstrationis. Sed omnis, vt videtur, hæresis ab initio habet aures quæ non audiunt id quod est vtile, sed solùm patent ijs quę dicuntur ad voluptatem. Nam curatus vtiq; esset eorum aliquis, si tantùm voluisset parêre veritati. Est autem triplex ratio curandę opinionis, sicut etiam cuiusuis affectionis: causę cognitio, & quomodo ea possit auferri, & tertium, animę exercitatio, & assuefactio vt possit sequi ea quæ rectè iudicata fuerint. Quomodo enim turbatus oculus, ita etiam anima conturbata ijs dogmatibus quæ sunt pręter naturã, non potest veritatis lucem perfectè videre, quinetiam ea quæ sunt præ pedibus ægrè intuetur. Dicunt itaque anguillas quoque excæcatas capi in aqua turbida. Et sicut improbi pueri excludunt Pædagogum, ita etiam hi arcent Prophetias à sua Ecclesia, suspectas eas habentes propter reprehensionem & admonitionem: quàm plurima certè consarciunt mẽdacia & figmenta, vt iurè videantur nõ admittere scripturas. Hac
C ergo ratione non sunt pij, vt qui diuinis præceptis non acquiescant, hoc est, sancto spiritui. Quomodo autem dicuntur inanes amygdalæ, non in quibus nihil inest, sed in quibus id quod inest, est inutile: ita etiam hæreticos dicimus qui sunt inanes Dei consiliorum & Christi traditionum, & amarescunt non secus ac agrestis amygdala, & sunt principes authoresq; dogmatum, nisi si quæ propter veri euidẽtiam deponere & occultare non potuerunt. Quomodo ergo in bello non est ordo deserendus quem dedit imperator militi: ita nec deserendus est ordo quem dedit nobis Verbũ, quem accepimus principem ac Ducem cognitionis & vitæ. Vulgus autem ne hoc quidem examinauit, an sit sequẽdus aliquis, & quisnam hic, & quemadmodũ: quale enim est Verbum, talem quoq; vitam esse conuenit fideli, vt possit sequi Deum qui ab initio omnia recta via dirigit. Postquam autem transgressus fuerit Verbum quispiam, & per id, Deum, si imbecillus quidem fuit, propterea quòd aliqua repẽtina se obtulerit visio, efficiendum est vt sint prompta visa quæ sunt ex ratione. Sin autem more qui prius inualuit, victus fuerit, vt ait scriptura, is qui est ex vulgo, curandum est vt mos conquiescat in eo quod est perfectum, & omni ex parte absolutum, & vt contrà cùm dicat, exercenda est anima. Si autẽ pugnantia quoq; aliqua dogmata videtur attrahere, ea sunt subducenda, & eundum est ad eos qui quieta dogmata efficiunt, & diuinis scripturis eos incantant qui sunt rudes & imperiti, & strepitum pertimescunt, per testamentorũ consequentiã eis veritatẽ explanantes. Sed, vt videtur, magis declinamus ad ea quæ sunt opinabilia, etiamsi sint contraria, quàm ad veritatẽ: est enim austera grauisq; ac seuera. Atq; cùm sint quidem tres animæ affectiones, ignoratio, opinio, sciẽtia: qui in ignoratione quidem versantur, sunt gentes: qui

autem in scientia, vera Ecclesia: qui verò in opinione, ij qui sectantur hæreses. Nihilo ergo apertiùs videre licet affirmantes eos qui sciunt de ijs quę sciunt, quàm hos de ijs quæ opinantur, quod attinet ad affirmandum absq; demonstratione. Se itaq; inuicem despiciunt & irrident, & áccidit vt eadem intelligentia ab alijs quidem in maximo honore habeatur, ab alijs autem damnetur amentiæ. Atqui didicimus aliud quidem esse voluptatem, quæ est attribuenda gentibus: aliud autem litem ac contentionem quæ præponenda est in hæresibus: aliud gaudium, quod, vt propriũ, est ecclesiæ assignandum: aliud autem, lætitiam, quæ danda est ei qui est ex veritate præditus cognitione. Quemadmodum autem si quis in Ischomacho studium posuerit, eum faciet agricolam: & si Lampidi, nautam: & Charidemo, imperatorem: & Simoni, equitãdi gnarum: & Perdici, cauponẽ: & Crobylo, opsoniorum conditorem: & Archilao, saltatorem: & Homero, Poëtam: & Pyrrhoni, contentiosum: & Demosthenì, oratorem: & Chrysippo, dialecticum: & Aristoteli, physicum: & Platoni, philosophum: ita qui paret Domino, & per eum datam sequitur Prophetiã, efficitur ad magistri imaginem Deus qui in carne versatur. Hanc ergo altitudinem minimè assequuntur, qui non sequuntur Deum eos ducentem: ducit autem per scripturas diuinitùs inspiratas. Atq; cùm ea quidem sint innumerabilia quæ fiunt ab hominibus, sunt vtiq; duo cuiusuis peccati principia, ignoratio & imbecillitas: est autẽ vtrunque in nostra potestate, cùm nec velimus discere, nec cupiditatem continere. Ex his autem, vnum quidem est par quod non rectè iudicant, alterum verò, per quod non possunt exequi quæ rectè sunt iudicata. Neq; enim si quis fuerit deceptus in sententia, rectè agere potuerit, etiam si sit satis potens vt agat ea quæ fuerint cognita: neq; qui potest id quod oportet iudicare, se ab omni reprehensione alienum præbuerit, si sit ad res gerendas impotens. Consequenter ergo duæ quoq; genere disciplinę traduntur vtriq; peccato vtiles: illi quidem, cognitio, & ex scripturarum testimonio euidens demonstratio: huic verò, quæ est ex Verbo exercitatio, quæ à fide & timore tanquam Pædagogis docetur: crescunt autem ambo in perfectam charitatem. Eius enim qui est præditus cognitione, est hîc quidem, vt arbitror, duplex finis: in aliquibus quidem, cõtemplatio ex scientia: in alijs verò, actio. Ac fieri quidem potuerit vt hi hæretici discentes ex his Commentarijs, corrigantur, & conuertantur ad Deum omnipotentem: sin autem tanquam surdi serpentes (quod nouè quidem dicitur, est autem antiquissimum) non exaudiant canticum, à Deo certè castigentur, paternas admonitiones quæ ante iudicium fiunt patienter sustinentes, donec pudore affecti ducantur pœnitentia: non autem per immanem inobedientiam seipsos inijciant in perfectum iudicium. Fiunt enim singulares quoq; quædam disciplinæ, quas vocant castigationes, in quas multi ex nostris qui in delicto fuerunt, ex populo Dominico dilabentes incidunt, sed sicut à magistro vel patre pueri, ita nos castigamur à prouidentia. Deus autem non punit, est enim punitio, mali redditio: castigat autẽ & communiter & priuatim ad vtilitatem eorum qui puniuntur. Hæc quidem adduxi, volens adhortari studiosos ne facilè prolabantur in hæreses: alios autem vt ab hac quę consistit in superficie siue inscitia, siue stultitia, siue mala habitudine, siue quocunq; alio nomine eam vocare oporteat, desistant efficere cupiens: contrà autem persuasos conans adducere ad veritatẽ, eos qui non sunt omnino immedicabiles, vsus sum his sermonibus. Sunt enim qui nec omnino quidem in animum inducunt vt audiãt eos qui hortantur ad veritatem, quinetiam nugari aggrediuntur, verba in veritatem maledica effundentes, sibi arrogãtes quòd quę sunt ex rebus maxima, cognouerint, cùm nec didicerint, nec quæsierint, nec laborarint, nec inuenerint consequentiam, quorum miserebitur potius aliquis, quàm odio habebit, propter talem vitæ eorum rationem. Si quis est autem medicabilis, qui tanquam ignem vel ferrum ferre possit libertatem veritatis, secantem & vrentem falsas eorum opiniones, præbeat aures animæ. Hoc autem fiet, si non otium & socordiam amplectentes extrudant veritatẽ, aut gloriam desiderantes, res nouas magna vi persequãtur. Sunt enim socordes, qui, cùm liceat ex ipsis scripturis, diuinis scripturis conuenientes colligere demonstrationes, id omnino non faciant, sed quod eorum voluptatibus suffragatur eligunt. Gloriæ autem tenentur desiderio, qui ea quæ ex sua natura cõueniunt, sermonibus diuinitùs inspiratis, tradita à beatis Apostolis & magistris, sua sponte fallaci sapientiæ simulatione corrumpunt per alias tractationes, humanis doctrinis resistentes diuinæ traditioni, vt hæresim constituant. Nam inter eos viros qui tanti erant in ecclesiastica cognitione quid restabat dicendum à Marcione, verbi gratia, aut Prodi-

co,

Margin: A; B; C

Margin note: εὐφροσύνη. Lætitia coniuncta prudentiæ.

A co,& similibus,qui non sunt ingressi recta via? Neque enim eos qui pręcesserunt superare potuerunt sapientia, vt aliquid adinuenirent ijs quæ ab illis verè dicta sunt: sed bene cum eis actum esset,si scire potuissent ea quæ prius sunt tradita. Is ergo nobis solus qui est cognitione prędicus, cùm in ipsis scripturis consenuerit, Apostolicam & Ecclesiasticam seruans dogmatum rectitudinem,rectissimè viuit conuenienter Euangelio, & demōstrationes ita vt quęrit inuenit,vt qui emittatur à Domino, à lege & à Prophetis. Nam vita,vt opinor,eius qui est præditus cognitione, nihil est aliud quàm facta & verba quæ consequuntur traditionem Domini: sed non est omnium cognitio. Nolo enim vos ignorare fratres,inquit Apostolus, quòd omnes sub *1.Cor.10.*
nube erant,& spiritalis cibi & potus erant participes,apertè cōfirmans,non omnes qui Verbum audiūt,facto & verbo cepisse magnitudinem cognitionis. Vnde etiam subiunxit: Sed non in eis omnibus est complacitum. Cui nam? Ei qui dixit: Quid mi *Luc.6.*
hi dicitis,Domine,& non facitis voluntatem patris mei,hoc est,doctrinam Seruatoris,quæ nobis cibus spiritalis,& potus qui nescit sitim,aqua vitæ cognitione prædite. At inquiunt,dicta est inflare cognitio. Ad quos dicimus: Fortasse quidē quæ vi- *1.Cor. 4.*
detur cognitio inflare dicitur,si quis existimet dictionē idem sibi velle quod tumefacere & insolentem reddere: sin autem,quod magis dicendum est,magnificè & verè sentire significat vox Apostoli,solutum quidem est id de quo dubitatur. Sequētes autem scripturas,confirmemus quod dictum est. Sapientia,inquit Solomon,infla- *Ecclef.4.*
uit suos filios. Non enim ijs qui sunt in doctrina singularia,fastum & arrogātiam in-
B generauit Dominus,sed in veritate habere fiduciam,& esse magnificum in cognitione quæ traditur per scripturas,efficit contemptorem eorum quæ trahunt ad peccatum,quod significat dictio Inflauit,quæ docet magnificentiā sapientiæ, quę implantatur ijs qui sunt per doctrinam filijs. Iam verò inquit Apostolus: Et cognoscam nō sermonem eorum qui sunt inflati,sed virtutem,an magnificè,quod quidem est verè, veritate autem nihil est maius,scripturas intelligatis. In hoc enim est virtus inflatorum filiorum sapientiæ. quasi dicat: Sciam an de vestra cognitione iure vos magnificè sentiatis. Notus enim est,vt ait Dauid,in Iudæa Deus,hoc est,Israëlitis qui sunt *Psal. 73.*
per cognitionem: Iudæa enim exponitur confessio. Meritò ergo dictum est ab Apostolo illud, Non mœchaberis, Non furaberis, Non concupisces,& si quod est aliud *Rom.13.*
mandatum,in hoc verbo in summam redigitur,nempe: Diliges proximum tuum sicut teipsum. Non oportet enim vnquam,vt faciunt qui hæreses persequuntur,adulterare veritatem, neq; furari regulam Ecclesiæ, propriæ cupiditati & gloriæ inseruiendo in fraudem propinquorum,quos omnino diligentes veritatem, decet doce re eam complecti. Apertè ergo dictum est: Annunciate inter gentes studia eius,vt nō *Psal.9.*
iudicentur,sed conuertantur qui prius audierint. Quicunq; autem linguis suis dolosè agunt,scriptis pœnis puniuntur: qui impios ergo attingunt sermones, neq; verbis diuinis rectè,sed peruersè vtuntur, neq; ipsi in regnum cælorum ingrediuntur, neq; eos quos deceperūt sinunt assequi veritatem. Sed nec ipsi ingressus clauem habentes,sed falsam quandam,&,vt dicit consuetudo,ἀντικλεῖδα,id est,aduersam clauē,
C per quam,non relaxato velo,vt nos ingredimur per Domini traditionem, sed exciso ostio,& muro Ecclesiæ clàm perfosso,veritatem transgredientes,efficiuntur principes ac duces mysteriorum animæ impiorum. Quòd enim catholica Ecclesia posteriora sua fecerint conciliabula,non opus est multis verbis. Nam Domini quę fuit in aduentu doctrina, cùm cœpisset ab Augusto, medio tempore Tiberij cōsumatur: Apostolorum autem eius doctrina,vsq; ad Pauli ministerium,Neronis tempore consumatur. Inferius autem circa tempora Adriani Imperatoris fuerunt qui hęreses excogitarunt,& peruenerunt vsq; ad ętatē Antonini natu maioris,vt Basilides,etiamsi Glauciam sibi adscribat magistrum,vt ipsi gloriantur,qui fuit Petri interpres. Similiter autem Valentinum quoq; dicunt audiuisse Theodadi: is autem fuit Pauli familiaris. Marcion enim cùm natus esset eadem qua ipsi ætate, versabatur vt senex cum iunioribus: post quem,Simon Petrum audijt paululum prædicantem. Quæ cùm ita habeant, clarum est ex antiquissima & verissima Ecclesia, has recentiores, & quæ his sunt adhuc inferiores, tempore fuisse innouatas, adulterinæ notæ hæreses. Ex ijs quæ dicta sunt manifestum esse existimo, vnam esse veram Ecclesiam, eam quæ verè est antiqua,in cuius catalogum referuntur ij qui sunt iusti secundum propositum. Nam cum vnus sit Deus & vnus Dominus,propterea id etiam quod est sum-

mè venerabile, laudatur ex vnione, & ex eo quòd sit solum, vt quod sit imitatio prin- A
cipij quod est vnum. In vnius ergo naturæ sortem cooptatur Ecclesia quæ est vna, quam conantur hæreses in multas discindere. Et substantia ergo & cogitatione & principio & excellentia, solam esse dicimus, quam etiam antiquam & catholicam Ecclesiam, in vnitatem vnius fidei quæ est ex proprijs testamentis, vel potius ex testamento quod est vnum diuersis temporibus, in quibus Dei voluntate per vnum Dominum congregat eos qui iam sunt ordinati, quos prædestinauit Deus, cùm eos iustos cognouisset ante mundi constitutionem. Cæterùm Ecclesiæ quoque eminentia, sicut principium constructionis, est ex vnitate, omnia alia superans, & nihil habens sibi simile vel æquale. Atque de ijs quidem dicetur postea. Ex hæresibus autem, aliæ quidem appellantur ex nomine, vt quæ appellatæ sunt ex Valentino & Marcione & Basilide, etiamsi glorientur se Matthiæ opinionem adducere: fuit enim vna omnium Apostolorum sicut doctrina, ita etiam traditio: aliæ autem ex loco, vt Peratici: aliæ autem ex gente, vt Phrygum hæresis: aliæ autem ex operatione, vt Encratitarum: aliæ autem ex proprijs dogmatibus, vt Docitarum & Hematitarum: alij autem ex positionibus, & ijs quæ ipsæ honorarunt, vt qui appellantur Caianistæ & Ophiani: aliæ verò ex ijs quæ nefariè ausæ sunt & perpetrarunt, vt qui ex Simonianis vocantur Entychitæ. Cùm autem ijs qui ex Ecclesia spectandi tenentur desiderio, ex lege de sacrificijs, tum de Iudæis vulgaribus, tum de hæresibus quæ mysticè discernuntur, tanquam immundæ, ex diuina
mundorum & immundorum animalium distinctione, paruum quoddam foramen B
ostenderimus, finiemus orationem. Quæ enim sunt fissis vngulis & ruminant, hostias esse mundas & Deo acceptas tradit scriptura, vtpote quòd iusti per fidem iter ingrediantur ad patrem & filium. Hæc est enim stabilitas eorum quorum fissæ sunt vngulæ, qui Dei eloquia diu noctuque meditantur & ruminant in animæ receptaculo disciplinarum: quam etiam cognitione præditam exercitatoinẽ, mundi animalis ruminationem dicit lex allegoricè: quæ autem neque vtrunque, neque ex ijs habent alterum, secernit vt immunda. Ac quæ ruminant quidem, bifidam autem non habent vngulam, vulgus Iudæorum tacitè significant, qui eloquia quidem Dei habent in ore, fidem autem & basim non habent, quæ transmittit ad patrem per filium, & innititur veritati. Vnà etiam eiusmodi genus animantium satis facilè prolabitur, vt quorum pedes minimè sunt bifidi, neque
Luc.10. duplicitati fidei innitantur. Nemo enim, inquit, cognoscit patrem nisi filius, & cui filius reuelauerit. Rursus autem illa quoque contrà sunt similiter immunda, quæ bifidas quidem habent vngulas, minimè autem ruminant. Hæc enim indicant hæreticos, qui ingrediuntur quidem in nomine Patris & filij, accuratam autem eloquiorum declarationem subtiliter exprimere, & in tenues partes comminuere nequeunt, & iustitiæ opera paulò crassius, non autem accuratius &
Luc.6. subtilius obeant, si modò obeunt. Ijs qui sunt tales dicit Dominus: Cur mihi dicitis Domine, Domine, & non facitis quæ dico? Sunt autem omnino immundi, qui non bifidas habent vngulas, neque ruminant. Vos autem Megarenses, inquit
Theognis, neque tertij, neque quarti, neque duodecimi estis, neque in ratione, C
Psal.1. nec numero, sed tanquam puluis quem proijcit ventus à facie terræ, & tanquam stilla à cado. His à nobis prætractatis, & loco morali nobis summatim sparsimque descripto, vt sumus polliciti, & quæ ad veram excitant cognitionem, ita hîc & illic disseminatis dogmatibus, vt à quolibet ex ijs qui mysterijs non sunt initiati, non facilè possint inueniri sanctæ traditiones, aggrediamur quod sumus polliciti. Sunt autem libri Stromatum vtique similes, non illis elaboratis hortis in quibus sunt arbores & plantatæ, & in certum ordinem digestæ ad delectandos oculos: sed alicui potius spisso & vmbroso monti, in quo simul sunt plantatæ cupressi & platani, laurus & hedera, mali & oleæ & ficus, de industria commistis plantis arborum fertilium simul & infertilium, propter eos qui quæ sunt pulchra & matura surripiunt & suffurantur, latère volente scriptura. Ex quibus cùm viui radices sumpserit, & alibi inseruerit agricola, pulchrum hortum efficiet & nemus amœnum. Neque ergo ordinem, neque dictionem spectant libri Stromatum, cùm etiam Græci de industria nolint adesse ornatum dictionis, & latenter dogmata inserant, & non vt rei habet veritas, hoc agentes vt si qui eorum scripta legant, sint laboriosi

A riosi & acres ad inueniendum. Sunt enim multæ & variæ escæ propter multas piscium differentias. Atqueadeo post hunc septimum librum Stromatum, de ijs quæ deinceps sequuntur tractemus, aliud sumentes exordium.

# CLEMENTIS ALEXANDRINI STROMATVM LIBER OCTAVVS.

SED neque antiquissimi Philosophi ad contendendum ferebantur & ad dubitandum, nedum nos qui amplectimur eam quæ verè est philosophiam, quos apertè causa inuentionis ad perscrutandum quærere iubet scriptura. Recentiores autem Græcorum Philosophi, inani laudis cupiditate commoti, refellendo simul & contendendo, ad nugas deducuntur inutiles. Contrà autem barbara philosophia omnē expellens contentionem: Quærite, inquit, & inuenietis: pulsate & aperietur: petite & dabitur vobis. Luc. 11.
B Atq; pulsat quidem per inquisitionem, quæ per interrogationem & responsionem habetur oratio, veritatis fores, per id quod apparet. Apertè autem perscrutationem eo quod est impedimento, ingeneratur contemplatio quæ est ex scientia. Iis qui sic pulsant aperitur, vt opinor, id quod quæritur. Et ijs qui sic petunt interrogationes per scripturas, ad quod quidem à Deo contendunt, fit donatio diuinitùs datę cognitionis, cōprehendendo per rationalem quæ verè elucet inquisitionem. Non enim fieri quidem potest vt inueniat, non autē quęrat: neq; vt quęrat quidem, non autem perscrutetur, & explicet & aperiat per interrogationē, ad euidētiam deducens id quod quæritur: neq; vt rursus procedens per omnem examinationem, non deinceps accipiat pręmium, videlicet scientiam eius quod quæritur. Sed potest quidem inuenire qui quæsierit: quærere autem, si prius existimauerit se nescire. Hinc autem ductus desiderio ad id quod bonum est & honestū inueniendum, benignè quærit, citra contentionem & citra gloriæ cupiditatem, interrogando & respondendo, & ea etiam quæ dicuntur considerando. Oportet enim nō solùm eos qui ad diuinas se applicāt scripturas, sed eos etiam qui communes insequuntur notiones, ita proponere quæstiones vt desinat inuentio in finem aliquē vtilem. Turbulentos enim homines, & forenses inuentiones, alius excipit locus & alia turba: eum autem qui veritatis simul est amator & familiaris, decet esse pacificum, & in inquisitionibus, per demonstrationem quæ fit ex scientia, non nimio sui amore laborantem, sed veritatis amantem, accedere ad eam quę comprehendit cognitionē. Quænam ergo fuerit alia melior aut euidentior methodus ad principium talis doctrinæ, quàm nomen propositum tam apertè oratione persequi, vt id assequatur quicunq; eadem voce vtuntur? Est'ne demonstrationis ergo nomen eiusmodi, cuiusmodi est Blityri, vox solùm nihil significans? Et quomodo neq; Philosophus, neq; Orator, sed neq; Iudex, tanquam nomen nihil significans profert demonstrationem, neque aliquis ex ijs qui iudicio cōtendunt, ignorat esse significatum? Iam verò Philosophi excogitant demōstrationem, vt quæ consistat, alius aliter. De quauis ergo re quæsita si quis rectè tractet, non ad aliud principium quod sit certum & extra cōtrouersiam potius deducet orationem, quàm ad id quod quicunq; sunt eiusdem gentis & sermonis, ex appellatione fatentur significari. Deinde ab eo progrediendo, necesse est quærere, existat nec'ne id quod oratione significatur. Deinde si esse ostensum fuerit, accuratè quærendum est qualis sit eius natura, & num ordinem datū superet. Si autē non sufficit id solum quod visum est, absolutè dicere de eo quod quæritur: licet enim ei qui aduersatur, ex ęquo contrà quod velit pronunciare, sed oportet confirmare id quod dictum est. Et si eius quidem referatur iudicium ad id de quo similiter dubitatur, & illius rursus ad alterum de quo dubitatur similiter, procedet in infinitum, & non poterit demonstrari. Si autem eius quod est certum & extra controuersiā, referatur fides ad id quod

C

omnes confitentur, illud est constituendum doctrinæ principium. Omne ergo no- A
men propositum, est sumendum ad orationem quę est certa & extra controuersiam,
& manifesta ijs qui sunt participes considerationis, futurum quidem doctrina prin
cipium, expositurum autem inuentionem eorum quæ quæruntur. Agè ergo propo-
situm sit nomen Sol: dicunt itaq; Stoici eum esse, intelligens vinculum ex aquis ma
rinis. An nō est ergo oratio seu definitio, ipso nomine obscurior, quę alia demonstra
tione indiget an sit vera? Melius est ergo dicere communi & aperta oratione, So-
lem nominari id quod est splendidissimum eorum quæ cælum obeunt. Est enim,
vt opinor, fide dignior, & apertior, & quam omnes similiter confitentur homines,
hæc oratio. Similiter autem demonstrationem quoque omnes homines confessi
fuerint rationi esse consentaneam, quæ ijs de quibus dubitatur, ex ijs quæ sunt cer-
ta & extra controuersiam, facit fidem. Non solùm autem demonstratio & fides &
cognitio, sed etiam præscientia seu pręcognitio dicitur duobus modis: vna quidem
quæ est ex scientia, firma ac stabilis: alia autem solùm ex spe. Ac propriè quidem
dicitur demonstratio, quæ fidem ex scientia indit animis eorum qui discunt: altera
autem est ex opinione. Sicut etiam homo, vnus quidem verè est homo qui commu-
nem habet prudentiam: alter verò agrestis & beluinus. Sic etiam dixit Comicus:
Charies est homo, donec fuerit homo. De boue quoque, equo, & cane eadem est
ratio, prout fuerit virtus vel vitium animalis: respicientes enim ad perfectionem ge
neris, venimus ad ea quæ sunt præcipua ex significatis. Ecce enim medicum intel-
ligimus, cui nihil deest medicæ facultatis: cognitione autem pręditum, eum cui ni- B
hil deficit cognitionis quæ est ex scientia. A syllogismo autem differt indicatio,
quatenus id quidem quod indicat, vnum significat, cùm sit vnum: vt, vterum gere-
re dicimus esse indicium quòd non sit amplius virgo. Quod autem in syllogismo su
mitur, cùm sit vnum, plura consequitur: vt, quòd Pytho proderet Byzantinos, verbi
causa, non vnum, sed plura sumuntur quæ id significent. Et concludere quidem ex
ijs quæ quis confitetur, est ratiocinari seu syllogismum conficere. Ex veris autem a-
liquid concludere, est demonstrare, adeò vt sit quædam composita vtilitas demon-
strationis: nempe & ex eo quòd quæ sumuntur vera sumat ad ea quę quæruntur, &
ex eo q, inferatur consequens conclusio. Quòd si non sit prius, vel id non consequa-
tur secundum, non demonstrauit quidem, sed est ratiocinatus, seu effecit syllogis-
mum: assumptis enim propositionibus conuenientem inferre conclusionem, so-
lùm est ratiocinari. Ex assumptis autem propositionibus esse etiam vnamquan-
que veram, non solùm est ratiocinari, sed etiam demonstrare: concludere autem,
quod est περαίνειν, vt etiam patet ex nomine, est ad finem deducere. Est autem in
vnaquaque oratione finis id quod quæritur, quod etiam vocatur conclusio. Nul-
la autem simplex & prima oratio vocatur syllogismus, etiamsi sit vera, sed est ad
minimum composita ex tribus huiusmodi: duabus quidem, vt quæ sumuntur pro-
positionibus, vna autem, vt conclusione. Aut enim omnia egent demonstratio-
ne, aut etiam quædam ex ijs sunt credibilia. Sed si prius quidem verum est: vnius-
cuiusque demonstrationis petentes demonstrationem, procedemus in infinitum, C
& sic euertetur demonstratio: sin autem secundum, ea ipsa quæ sunt ex se credibilia,
erunt principia demonstrationum. Iam verò Philosophi fatentur esse indemon-
strabilia principia vniuersorum: quamobrem si est demonstratio, omnino neces-
se est prius esse aliquid ex se credibile, quod quidem dicitur primum & indemon-
strabile: ad fidem ergo indemonstrabilem reducitur omnis demonstratio. Fue-
rint autem alia quoque principia demonstrationum post eum fontem qui est ex
fide, nempe ea quæ euidenter apparent ex sensu & intelligentia. Nam ea quidem
quæ ex sensu euenerunt, sunt simplicia, & eiusmodi vt solui nequeant: quæ autem
ex intelligentia, simplicia, rationalia, & prima: quæ autem ex his gignuntur, sunt
quidem composita, sed nihilo secius euidentia, & credibilia, & primis magis ratio-
nalia. Quam ergo propriam orationis facultatem habemus omnes natura insitā, ea
ęst ex eo quod consequens, & eo quod repugnat. Si qua ergo fuerit eiusmodi in-
uenta oratio, vt ex ijs quę iam sunt credibilia, ijs quæ nondum sunt probabilia pos-
sit fidem facere, eam ipsam dicemus esse essentiam demonstrationis. Dictum est au-
tem fidei quoq; & demonstrationis genus esse duplex: vnū quidem, quod solam af-
fert persuasionē animis auditorum: alterum verò, quod efficit scientiā. Si quis ergo
ince-

A inceperit ex ijs quæ sunt euidentia sensu & intelligentia, & deinde conuenientem intulerit conclusionem, verè demonstrat: sin autem ex opinabilibus solùm, sed non primis, hoc est, neq; sensu euidentibus nec intelligentia, si conuenientem quidem inferat conclusionem, ratiocinabitur quidem, sed non quæ scientiam constituat efficiet demonstrationem: sin autem non conuenientem, ne omnino quidem ratiocinabitur. Differt autem demonstratio à resolutione. Vnumquodque enim ex ijs quæ demonstrantur, demonstratur per quædam quæ demonstrantur, illis quoque prius demonstratis ab alijs, donec recurrerimus ad ea quæ sunt per se credibilia, aut ad ea quæ sunt euidentia sensu & intelligentia, quod quidem nominatur resolutio. Demonstratio autem est, quando à primis venit id quod quæritur, per omnia quæ sunt intermedia. Oportet ergo virum qui est præditus facultate demonstrandi, veritatis quidem propositionum multam curam gerere, nomina autem non curare, siue quis pronunciata, siue propositiones, siue assumptiones quis malit eas vocare. Similiter autem magna quoque cura est gerenda, quorum nam subiectorum quid concludat: an autem concludentem orationem, an syllogisticam quis velit appellare, non curare. Dico enim eum qui demonstrat, oportere hæc duo obseruare in omnibus, nempe vt veras quidem assumat propositiones, eis autem consequentem inferat conclusionem, quam quidem nonnulli etiam appellant ἐπιφορὰν, hoc est, illationem, id scilicet quod in vnaquaque quæstione infertur propositionibus, de eo quod quæritur: atque diuersis quidem opus est propositionibus. Ei autem quod B est propositum, id quoque quod est ei propositum ad orationem, conueniens assumere necesse est: & hanc orationem oportet esse apud omnes certam & extra omnẽ controuersiam. Si sumantur autem propositiones quæ quæstioni propositæ non conueniant: non contingit eum aliquid rectè inuenire, cùm ignoretur tota quæstio proposita, quæ etiam quæstio naturæ appellatur. In omnibus ergo quæ quæruntur, est aliquid quod prius quæritur, quod cùm sit omnino ex seipso credibile, creditur absque demonstratione, à quo quidem est procedendum ad eorum inquisitionem, statuendumq; est id esse iudicem eorum quæ videntur esse inuenta. Omnis enim quæstio inuenitur ex ea quæ prius consistit cognitione: esse autem cognitionem quæ prius constiterit ante quamcunque rem quę quæritur, aliquando quidem solummodo essentiæ, cùm eius ignorentur munera & officia, vt, verbi causa, lapidum, & omnium animantium, quorum ignoramus operationes, aut affectionũ, aut facultatum, aut, vt semel dicam, eorum quæ insunt in ijs quæ sunt. Nonnunquam autem cognosci quidem aliquid ex his facultatibus, vel affectionibus, vel aliqua ex his, vt animæ cupiditates & affectiones: ignorari autem & quæri essentiam. In multis autem cùm ipsa nostra intelligentia sit sibijpsi subiecta, hæc omnia in quæstione versari cuinam ex substantijs sic insint. Nam cùm vtrorunque, essentiæ scilicet & operationis, notiones cogitatione conceperimus, ita quæstionem aggredimur. Sunt autem etiam aliqua, quorum cùm sciamus operationes simul cum essentijs, ignoramus affectiones. Est ergo inuentionis ratio & methodus eiusmodi: incipiendum C enim est à cognitione earum quæ proponuntur quæstionum: sæpe enim decipit figura dictionis, & confundit ac perturbat cogitationem, vt non facilè inueniat ex qua sit differentia: vt, exempli causa, an non sit animal fœtus qui gestatur in vtero. Nam cùm & animalis & fœtus qui in vtero gestatur aliquam habeamus notionem, quærimus an fœtui qui in vtero gestatur insit esse animal: hoc autẽ est, an substantiæ quæ gestatur in vtero, insit vt tunc possit moueri, & præterea sentire. Quamobrem operationum & affectionum inquisitio est in essentia quę prius cognoscitur. Statim ergo is qui proponit, prius est interrogandus quidnam vocet animal: hoc enim est maximè faciendum, quando viderimus nomen duci ad diuersos vsus: & perscrutandum est, an de significato dubitetur ex appellatione, an sit apud omnes extra controuersiam. Si enim dixerit se vocare animal, quicquid augetur & alitur: rursus eum rogabimus, an plantas quoque existimet animalia: deinde cùm sic quidem dixerit, iam oportet ostendere quid sit quod vtero gestatur & alitur. Plato enim plantas quoque vocat animalia, vt quæ solam tertiam animæ speciem, nempe eam quæ concupiscit, participent. Aristoteles autem censet plantas & naturalis & nutrientis animæ esse participes, animantia autem non censet esse vocanda: quod enim alterius animæ, nempe sentientis, est particeps, id solum vult vocari animal. Stoici autem naturalem seu vegetantem facultatem, nõ nominant animam. Quòd si is qui proposuit, negauerit plantas esse animalia, ostẽdemus eum secum pugnan-

tia dicere:nam cùm definierit animal ex eo quod alatur & augeatur, & plantam nõ A esse animal pronũciarit,nihil aliud visus est dicere,quàm quòd id quod alitur & augetur,est & animal,& non animal.Dicat ergo quid velit discere. Nam an augeatur & nutriatur fœtus qui est in vtero,aut an sit particeps sensus alicuius, an etiam motus qui est ex appetitione.Nam ex sententia quidem Platonis,planta est animata & animal:ex sententia verò Aristotelis,nondum quidem est animal: deest enim ei vis sentiendi,sed iam animata: est ergo, vt ipse vult, animal, essentia animata sentiendi potestate prędita.Ex Stoicorum autem sententia,neque animatum,neq; animal est planta:est enim animal animata essentia.Si ergo animal est animatum,anima aũt est natura vi sentiendi prædita: clarum est quòd iam animatum est sentiendi potestate præditum. Si ergo is qui quæsiuit, vicissim fuerit interrogatus,an animal quod est in vtero adhuc vocet animal,quòd alatur & augeatur, habet responsionem. Sin autem dicat esse id quod quærit,vtrum fœtus qui gestatur in vtero sit iam sentiendi vi præditus,an etiam per aliquam appetitioné sit se mouẽdi potestate præditus, sit iam apertè rei perscrutatio,non manente amplius deceptione nominis.Si autem non respondeat ad id quod fuit vicissim rogatus,neque velit dicere quídnam intelligat,aut cuínam rei tribuens nomẽ animalis, fecerit propositionem, iubeat autem nos diuidere,potuerit cognosci eum esse contentiosum.Si autem cùm sint duo modi,vnus quidem qui fit per interrogationem & responsionem,alter auté persequendo & explicando latiùs,negauit alterum:audiat nos omnia persequentes quæ pertinent ad quæstionem propositam: deinde postquam perfecerimus, tunc licebit ei B vicissim tractare de vnoquoque. Si autem conetur interrogando interrumpere examinationem,planum est eum nihil velle audire. Sed si malit quidem respondere,primùm omnium est rogandus,cuínam rei tribuat nomen animalis. Et vbi hoc responderit, rursus est rogandus,quídnam ei significet fœtus qui gestatur in vtero, an quæ sunt iam formata & animalia, an etiam semen deiectum vult significare id quod est in vtero, an ea quæ iam sunt membris effícta & expressa, quæ appellantur ἔμβρυα. Cùm autem ad hoc quoque responderit, oportet deinceps id quod est propositum concludere & docere: si autem ipse nos velit dicere non respondens, audiat:Quoniam tu non vis dicere de quónam significato dicas id quod proposuisti, sic enim fieret vt ego non verba facerem de significatis, sed iam de rebus ipsis considerarem,scias te perinde fecisse,ac si proposuisses an canis sit animal, meritò enim dixissem,de quo cane:ego enim & de terrestri,& marino,& de astro cælesti, quinetiã de Diogene, & de alijs deinceps loquor canibus: non enim diuinauerim vtrum de omnibus interrogas, an de aliquo. Quod ergo postea es facturus, hoc cùm iam didiceris, dic apertè de quónam quæras. Sin autem in excutiendis nominibus lubens verseris,clarum est quòd ipsum nomen fœtus,neque est animal, neque planta, sed nomen,& vox,& corpus,& id quod est,& aliquid,& quiduis potius quàm animal. Et si hoc proposuisti,habes responsionem. Sed neque quod significatur ex nomine fœtus,est animal:sed illud quidem est & incorporeum, & dicendum est id esse & rem & cogitatum,& quiduis potius quàm animal: fuerit autem quædam a- C lia natura animalis.Apertè enim ostensum est,à re ipsa de qua quæritur, natura, inquam,fœtus qui est in vtero,cuiusmodi ea sit: alia est quæ proponitur quæstio de significatis huius nominis animal. Dico ergo, si hoc dicis animal quod potest sentire & moueri ex appetitione, est animal non absolutè, id quod ex appetitione & mouetur & sentit:nam potest etiam dormire,aut si non adsint sensilia, non sentire. Quod autem potest vel impelli appetitione,vel etiam sentire, est à natura datum signum quo animal cognoscitur: tale quid enim ex his significatur. Primùm quidem, an fœtus qui in vtero gestatur, ex appetitione non sentire aut moueri possit, quod quidem proponitur considerandum: alterum autem,an fœtus qui gestatur in vtero,aliquando sentire aut moueri potest ex appetitione:in quo significato nullus quærit,cùm sit euidens.Quæsitum autem fuerat,vtrum fœtus iam sit animal, an adhuc planta:deinde nomen animalis traductum est ad definitionem, vt esset manifestum,cùm sensu &motu qui proficiscitur ex appetitione,inuenissemus ipsum differre à non animali. Id rursus distinximus à rebus ei adiunctis,dicentes aliud quidẽ esse id quod potestate est tale,quod nondum quidem sentit & mouetur, erit autem aliquando tale:alterum auté,quod actu iam est tale. Huius autem est aliud quidem quod iam agit,aliud autem,quod agere quidem potest, quiescit autem vel dormit: hoc est autem id quod quæritur. Non enim ex eo quòd alatur fœtus,dicendum est

esse

A esse animal, quod quidem est eorum qui recedunt ab essentia, ijs autem quæ alioqui accidunt mentem adhibent. In omnibus autem quę dicuntur inueniri, posita est demonstratio, quæ quidem est oratio quæ probat aliud ex alijs. Ea autem ex quibus probatur id quod quæritur, oportet eum qui discit confiteri & cognoscere: horum autem omnium est principium, id quod est euidens sensu & intelligentia. atq; prima quidem demonstratio constat ex his omnibus. Quæ autem ex ijs quæ per hanc prius fuere demonstrata, rursus aliquid aliud concludit, & quidem non minus credibilis quàm prior: non potest tamen prima quoq; nominari, quoniam neq; ex primis concluditur propositionibus. Prima erga species differentiæ eorum quæ quæruntur, cùm tres sint, est ostensa: dico autem cùm cognoscatur essentia, ignorari aliquam eius actionem vel affectionem. Secunda autem erat differentia earum quæ proponuntur quæstionum, in qua actiones quidem & affectiones omnes cognoscimus, ignoramus autē essentiam, vt, exempli causa, in quánam parte corporis sita sit pars animæ principalis. Eadem autem demonstrationis pertractatio est etiam in hac quæstione. Dicunt aliqui non contingere esse plura principia vnius animalis: atque vnius quidem generis principia non contingit esse plura vnius animalis: generibus aūt diuersa, non est absurdū. Apud Pyrrhonios, inquiunt, est ἐποχὴ, hoc est, assensionis sustentatio, quę vult nihil esse firmum ac stabile. Ea si à seipsa inceperit, clarum est, q̃ primùm seipsam infirmabit. Aut ergo dat aliquid esse verum, & nō est de omnibus sustinenda assensio: aut persistit dicens nihil esse veri, & clarum est quòd

B nec ipsa prius verum dicet: aut enim ipsa verum dicit, aut non. Sed si verum quidem dicit, concedit vel inuita, esse aliquid veri: sin autem non verum dicit, vera ea relinquit quæ volebat tollere de medio. Nam quatenus falsa ostenditur quæ perimit epoche, seu assensionis sustentatio, eatenus vera esse ostēduntur ea quæ perimuntur, quomodo somnium quod dicit omnia somnia esse falsa: nam cùm seipsam perimat, confirmat alia. Et in summa, si est vera, ducet à seipsa principium, cùm non sit alicuius alterius sustentatio assensionis, sed primùm suijpsius. Deinde si comprehendit q̃ sit homo, vel quòd sustinet assensionem, clarum est eum non sustinere assensionem. Quomodo autem respondit etiam ad rogatum? nam clarum est eum de hoc non sustinere assensionem. At qui se sustinere assensionem pronunciat, quod sequendo si oporteat nos de rebus omnibus sustinere assensionem, de ipsa assensionis sustentatione assensionem primùm sustinebimus, sit'ne ei credēdum, an non. Pręterea si hoc ipsum verum est, eum verum nescire, neque omnino veri quicquam ab illo datur: si autem hoc quoque dicet dubitabile verum ignorare, eo ipso dat verum cognosci posse, quòd suam de ipso assensionis sustentationem videatur nō confirmare. Quòd si hæresis est dogmatum inclinatio, aut, vt quidam dicunt, inclinatio quæ multis dogmatibus prębet consequentiā inter se & ea quæ videntur, tēdens ad rectè viuendū: & dogma quidem est quędam quæ fit ratione comprehensio: cōprehensio autem est habitus & assensio animi, non solùm ephectici, sed etiam quilibet dogmaticus, id est, qui tradit dogmata, in nonnullis solet sustinere assensionem, aut propter men-

C tis imbecillitatem, aut rerum obscuritatem, aut vires æquales rationum. Ante definitiones autem, demonstrationes, & diuisiones, prius ponendum est quot modis dicatur id quod quæritur: & tractanda sunt homonyma, & synonyma sunt aptè & distinctè ponenda in sua significatione. Deinde quærendum est an ex ijs quæ considerantur relata ad alia, sit id quod proponitur, an per seipsum sumatur. Post hæc, an sit, quid sit, quid ei àccidat: aut sic etiam, An sit, quid sit, propter quid sit. Ad hæc autem contemplanda confert singulorum cognitio & vniuersorum, & ea quæ sunt priora, & differentiæ, & earum diuisiones. Atque inductio quidem affert id quod est vniuersum & definitionem: diuisiones autem, species, & quid sit, & indiuiduum. Contemplatio autem qua consideratur, quot modis dicatur, affert assumptionem eius quod est proprium: dubitationes autem, eas quæ sunt in ipsis, differentias & demonstrationes: & alioqui augent contemplationem ea quæ ipsam consequuntur: ex omnibus autem ostenditur scientia & veritas. Rursus id quod in summam redigitur ex diuisione, appellatur definitio: sumitur enim prior diuisionis & posterior distinctio: prior quidem, quando concessum vel propositum fuerit: posterior autem, quando demonstratum. Porrò autem per sensum, ex eo quod est singulare, in summam colligitur id quod est vniuersum ac generale: inductionis enim principium est sensus: finis aūt, id quod est vniuersum ac generale. Atq; inductio quidem non ostendit quid sit, sed quòd sit, vel non sit: diuisio autem quòd sit, &

distinctio similiter atq; diuisio, essentiam docet, & quid sit, nō autem an sit. Demonstratio autem tria, nempe an sit, & quid sit, & propter quid sit aperit. Sunt autē nonnullæ quoq; definitiones quæ causam continent. Quoniam autem scire est, quando causam viderimus: sunt autem causæ quatuor, materia, id quod mouet, forma, finis: erit quatuor modis distinctio. Primùm ergo sumēdum est genus, in quo sunt ea quæ sunt proxima ijs quæ sunt suprema: postea propinqua ac continens differentia. Differentiarum autem continuatio quæ scinditur & diuiditur, implet quid sit esse, seu rei essentiam ac definitionem. Non necesse est autem dicere omnes vniuscuiusque differentias, sed eas quæ formam tribuunt. Geometrica resolutio & compositio est diuisioni Dialecticæ & definitioni similis. Et à diuisione quidem recurrimus ad ea quæ sunt simpliciora, & magis principalia. Atque genus quidem rei quæ quæritur diuidimus in eas quę ei insunt species: vt exempli causa, in homine, animal quod est genus, diuidimus in eas quæ in ipso apparent species, nempe mortale & immortale. Et sic semper genera quæ videntur esse composita, secantes in species simpliciores, accedimus ad id quod non quæritur, & non amplius suscipit diuisionem. Cùm enim animal diuiserimus in mortale & immortale, deinde verò mortale in terrestre & aquatile, & rursus terrestre in volucre & pedestre, & sic propinquam ei quod quęritur speciem, quæ etiam comprehendit id quod quæritur diuiserimus, secādo deuenimus ad simplicissimam speciem, quæ nihil quidē aliud, sed id solum quod quæritur comprehendit. Rursus enim pedestre diuidimus in rationis particeps & expers rationis. Deinde ex ijs speciebus quæ sumuntur ex diuisione, eligentes ea quæ sunt magis propinqua homini, cùm ea in vnam composuerimus orationem, efficimus hominis definitionem, quę est animal mortale, terrestre, pedestre, rationis particeps. Quo fit vt materiæ quidem locum obtineat diuisio, definitioni quęrens simplicitatem nominis: artificis autem & opificis definitio, quę componit & construit, & eius quod est ostendit cognitionem. Non harum autem rerum, nec idearum sunt definitiones, sed rerum quarū habemus vniuersas & generales in animo notiones. Harum notionum dicimus esse orationes quæ eas interpretantur: harum enim notionum fiunt etiam diuisiones. Ex diuisionibus autem, vna quidem diuidit id quod diuiditur in species, vt genus: altera autem in partes, vt totū: alia verò in ea quę accidunt. Atq; totius quidem in partes diuisio, vtplurimùm consideratur in magnitudine: quæ fit autem in ea quę accidunt, nunquam potest tota accipi, siquidem oportet vnicuiq; etiam omnino inesse eorum quæ sunt essentiam. Vnde etiam reprobantur ambæ hę diuisiones: sola autem probatur diuisio generis in species, à qua formam charactêremq; accipit quæ est in genere identitas, & diuersitas quæ est in differentijs specialibus. Species semper in aliqua parte consideratur, non tamen contrà si quid est pars alicuius, hoc erit etiam species: manus enim est pars quidem hominis, non est autem species. Et genus quidem inest in speciebus: animal enim inest in homine & boue. Totum autem non inest in partibus, homo enim non inest in pedibus: quocirca species est parte magis principalis. Et quæcunq; de genere prædicantur, ea etiam omnia prædicantur de specie. Atque optimum quidem fuerit contemplari genus in duabus speciebus: sin minus autem, in tribus. Species ergo diuisę quidem generaliùs, charactêrem accipiunt ex eodem & altero. Deinde verò diuisæ, per ea quę generaliter significantur charactêrem accipiunt. Vnaquæque enim species aut est essentia: vt cùm dicimus, ex ijs quæ sunt, alia quidem sunt corpora, alia verò incorporea: aut quantum, aut quod refertur ad aliquid, aut vbi, aut quādo, aut agere, aut pati. Cuiuscunque ergo rei habet aliquis scientiam, eius etiam dabit definitionem: quemadmodum qui non potest oratione comprehendere & definire quodlibet, eius rei nunquam habuerit scientiam. Ex ignoratione autem definitionis, accidit vt multæ dubitationes oriantur & deceptiones. Si enim qui rem nouit, habet in animo eius cognitionem: potest autem etiam oratione explicare id quod habet in animo: eius autem quod animo cogitatur explicatio, est definitio: necesse vt qui rem norit, possit eius etiam dare definitionem. Assumitur autem in definitionibus etiam differentia, quæ signi locum obtinet in definitione. Hominis itaq; definitioni adiectum, vi ridendi præditum, facit totum, animal rationis particeps, mortale, terrestre, pedestre, vi ridendi prēditum. Quę enim per differentiam adhibentur definitioni, sunt signa rerum propriarum, ipsarum autem rerum naturam non indicant. Iam verò dicunt differentiam esse proprij redditionem, & quatenus differt ab alijs id quod habet differentiam, quod soli inest, & de re mutuò prædicatur: necesse

est

A est in definitionibus primùm genus assumere vt principale, & quod posiit consistere. Et in longioribus quidé definitionibus, multitudo specierum quæ inueniuntur per decem prædicamenta: in minimis auté, quæ ex propinquis & continentib. speciebus sumptæ fuerint principales rei essentiam & naturam significant. Quæ est aût minima, constat ex tribus: ex genere, & duabus speciebus maximè necessarijs: hoc aût fit propter breuitatem. Dicimus ergo: Homo est animal vi ridendi præditum: tunc assumendû est id quod præcipuè accidit ei quod definitur, aut propria eius virtus, aut proprium eius munus ac officium, aut aliquid aliud eiusmodi. Quare definitio quæ rei exponit essentiam, nô potest quidem rei naturam accuratè comprehendere: per præcipuas auté species declarat essentiam. Habet aût definitio propemodû essentiam in qualitate. Quæ efficiût vt sustineatur assensio, causæ sunt duæ supremæ. Vna quidem, mens humana quæ est multiplex & instabilis, cui quidem natura est insitum vt generet dissensionem, aut eorum inter se, aut sui ipsorû à seipsis. Secunda aût, ea quæ est in rebus discrepantia, quæ etiá maximè efficit vt sustineatur assensio. Nam cùm neq; omnib. visis posimus credere propter repugnantiá: neq; omnibus fidem non habere, quòd id quod dicit omnia esse incredibilia, cùm sit ex omnibus, in numerum etiam omniû adscribatur: neq; aliquibus quidem credere, aliquib. verò non credere, propter æqualitatem: eò deducti sumus vt sustineremus assensionem. Harum autem principalium causarum, assensionis, sustétationis, cogitationis quidem instabilitas, generat dissensionem: dissensio aût est propinqua causa sustétationis assensionis. Vnde plena quidem est vita iudicijs & curijs, & in summa, eorum
B quæ dicuntur bona & mala, electione, quæ quidem dubiæ mentis & ad oppositarum rerum infirmitatem claudicantis, sunt arguméta. Sunt itaq; libris plenæ bibliothecæ, classesq; & commentationes ijs qui in dogmatibus inter se dissentiunt, & sibi persuaserunt se in rebus tenere veritaté. In voce tria versantur: nempe & nomina quæ sunt signa eorum quæ animo cogitantur principaliter, per côsequentiam auté, etiam subiectorum: secundò autem, cogitata quæ res subiectas referût & exprimût. Vnde sunt omnibus eadem cogitata, propterea quòd ex rebus subiectis eadé forma & typus ingeneretur omnibus: non itidem etiam nomina, propter diuersos sermones. Tertium aût, sunt res subiectæ, ex quibus nobis imprimuntur cogitata. Atq; nomina quidem reducit Grammatica in vigintiquatuor vniuersa ac generalia elementa: oportet enim esse eleméta definita: eorum enim quæ sunt singularia, cùm sint infinita, non est scientia. Est autem proprium scientiæ vniuersis ac generalibus theorematibus niti & definitis, vnde singularia reducuntur ad vniuersa ac generalia. Philosophorum autem indagatio versatur & in ijs quæ animo cogitátur, & in rebus subiectis. Quoniam autem singularia horum sunt infinita, horû quoque sunt quędam inuenta elementa, ad quæ reducitur quicquid quæritur: & si videatur quidem subire vnum aliquod, vel etiam plura ex elementis, id esse pronunciamus: quod si omnia effugerit, nequaquam esse. Ex ijs quæ dicuntur, alia quidem dicuntur absque connexione, vt homo, & vt currit, & quæcunque orationem minimè perficiunt, quæ ha-
C bet verum vel falsum: alia verò cum connexione. Ex ijs autem quæ dicuntur absque connexione, alia quidem significant essentiam, alia autem qualé, alia verò quantum, alia autem quæ referuntur ad aliquid, alia autem vbi, alia verò quando, alia autem situm esse, alia autem habere, alia verò agere, alia autem pati: quæ etiam dicimus esse elementa eorum quæ sunt, quæ sunt in materia & post principia. Côsiderari enim possunt hęc ratione. Quæ carent autem materia, sola mente possunt apprehendi per primam applicationem. Ex ijs autem quæ collocantur sub decé prædicamenta, alia quidem per se dicuntur, vt noué prædicamenta: alia autem relata ad aliquid. Et rursus ex ijs quæ sunt sub his decem prædicamentis, alia quidem sunt synonyma, quorum & nomen est ambobus commune, vt animal: & ratio eadem, hoc est, definitio, hoc est, essentia animata. Heteronyma autem sunt, quę circa idem subiectum sunt in diuersis nominibus, vt ascensus & descensus: est enim eadem via, siue sursum, siue deorsum. Est autem alia species heteronymorum, vtpote equus, & niger, quæ & nomé & rationem habent, alterum ab altero diuersam, & neque habent idem subiectum: sunt ea autem dicenda altera, nô heteronyma. Polyonyma autem sunt quę eandem quidem habent rationem, nomen autem diuersum, vt ensis, spatha, gladius. Denominatiua autem sunt, quę ex aliquo altero sunt nominata, vt à fortitudine fortis. Homonyma autem sunt, quæ vtuntur eodem nomine, non habent autem eandem rationem, vt homo, & qui est animal, & homo pictus. Ex homonymis autem, alia qui-

dem habent idem nomen ex fortuna, vt Aiax Locrus, & Aiax Salaminius: alia autem ex cogitatione. Et ex his, alia quidem per similitudinem, vt homo, & qui est animal, & qui pictus: alia autem per proportionem ac conuenientiam, vt pedes Idæ, & nostri pedes, propterea quòd sint inferiùs: alia autem ex operatione, vt pes nauis, per quem nauis nauigat, & pes noster, per quem mouemur. Dicuntur etiam homonyma ab eodē & ad idem, vt à medico liber & scalpellum medica, & ex medico qui vtitur, & ad rationem medicam. Ex causis, aliæ quidem sunt quæ dicuntur procatarcticæ, aliæ verò synecticæ, aliæ autem adiuuantes, aliæ sine quibus non. Procatarcticæ, quæ primò dant occasionem ad hoc vt aliquid fiat, quemadmodum pulchritudo dat incontinentibus occasionem amoris: eis enim visa solùm ingenerat affectionem amatoriam, nec tamē necessariò. Synecticæ, quæ etiam per synonymiā seu vnìuocè vocantur, per se perfectę, quandoquidē per se est efficiēs effectus. Deinceps aūt sunt omnes causæ ostendendę in eo qui dicit, Pater quidē est causa procatarctica seu primordialis, disciplinæ: magister autem, synectica, id est continens. Eius autē qui discit, ingenium est causa adiuuans: tempus autem obtinet rationem causarum sine quibus non. Causa autē propriè dicitur id quod agendo est aliquid prębens, seu præbendi potestate præditum: sicut etiam ferrum dicimus esse τμητικὸν, hoc est, secādi potestate pręditum, nō solùm in secando, sed etiam in nō secando. Sic ergo παρεκτικὸν quoq;, id est, præbendi potestate præditum, ambo significat, & id quod iam operatur, & quod nondū quidem operatur, sed vim habet operādi. Porrò aūt alij quidem dicunt causas esse ex corporibus: alij verò ex in corporeis: alij autem dicunt corpus quidem esse propriè causam, incorporeum autem per abusionē & veluti causaliter. Alij autem couertunt è cōtrario, res incorporeas quidē propriè dicentes esse causas: per abusionem autem corpora: vt, verbi causa, sectionem, quæ est operatio, esse incorpoream: & esse causam secādi, cùm sit operatio & incorporea, & quòd secetur similiter gladio & eo qui secat, quæ sunt corpora. Aliquorum autem causa dicitur trib. modis, vna quidem quæ est causa, vt statuarius: alia autem, cuius causa est: vt fiat statua: alia verò cui est causa, vt materia: æri enim causa est vt fiat statua. Fieri ergo & scindi, quæ sunt causæ cuius sunt, cùm sint operationes, sunt incorporea. Qua ratione, categorematū, vel, vt nonnulli dicūt, dictorū (categoremata enim λεκτὰ, hoc est dicta, vocant Cleanthes & Archidemus) sunt causæ: vel, quod potius dicendū est, aliæ quidē dicentur causæ categorematum, vt huius, scinditur, cuius casus est scindi: alię verò, pronunciatorum, vt huius, nauis fit. Cuius rursus casus est, nauem fieri. Aristoteles autem vocat appellationem, nempe eorum quæ sunt huiusmodi, domus, nauis, vstionis, sectionis. Est autem extra controuersiam casum esse incorporeum, quocircà illud quoque sophisma sic soluitur. Quod tu dicis transit per os tuum, quod quidem est verum: domum autem dicis, domus ergo transit per os tuum, quod quidem est verum. Neque enim domum dicimus quæ est corpus, sed casum qui est incorporeus, quem habet domus. Et ædificatorem dicimus ædificare per eam relationem quæ fit ad id quod futurum est. Sic dicimus texi chlamydem, id enim quod facit, significat operationem. Non est autem alterius quidem, id quod facit, alterius verò, causa, sed eiusdem & chlamydis & domus. Quatenus enim causa est vt fiat, ea ratione est etiam efficiens quòd fiat: eadem autem est causa & efficiens, & propter quod. Et si aliquid quidem est causa & efficiens, hoc quoque est omnino propter quod: si quid autē est propter quod, nō est id omnino quoq; causa. Multa quidē certè concurrunt ad vnū effectū, propter quæ fit finis, sed non sunt omnia causæ. Filios enim non occidisset Medea, nisi fuisset irata: neq; fuisset irata, nisi laborasset zelotypia: neq; fuisset zelotypa, nisi amasset: neq; amasset, nisi Iason Colchos nauigasset: neque Colchos nauigasset, nisi Argo fuisset ædificata: neq; Argo fuisset ædificata, nisi ligna fuissent scissa ex Pelio. In his. n. omnibus cùm sit propter quod, non sunt omnia causæ cædis filiorū, sed sola Medea. Quamobrem id quod non prohibet, non operatur: quocircà nō est causa id quod non prohibet, sed id quod prohibet: in aliquid enim agendo & operando causa intelligitur. Præterea quod non prohibet separatum est ab eo quod fit, causa autem refertur ad id quod fit: non fuerit ergo causa id quod non prohibet. Propterea quidem certè perficitur, quòd non adsit id quod potest prohibere. Quatuor autem modis dicitur causa: efficiens, vt statuarius: & materia, vt æs: & forma, vt character: & finis, vt honor gymnasiarchæ. Eorum ergo sine quibus non, rationem æs tenet, ad hoc vt fiat statua, & est similiter causa. Nam quicquid est sine quo non contingit fieri effectum, causa est necessariò: causa autem non

προκαταρκτικαὶ, primordiales.

συνεκτικαὶ, contingētes.

A non absolutè, non est enim synectica seu continens causa, id sine quo non, sed adiuuans. Quicquid autem operatur, effectum reddit cũ eius quod patitur aptitudine: nam afficit quidem causa, patitur autem vnumquodq; prout ei fuerit aliquid à natura insitum, cùm sit ea quæ id prębet aptitudo, & eorum sine quibus non, rationem obtineat. Est ergo causa inefficax absq; aptitudine: non est aũt causa, sed causa adiuuans. Omnis enim causa consideratur in agendo. Seipsam autem non fecerit terra: quare nec fuerit causa sui ipsius. Ridiculum est autem dicere, non ignem esse causam vstionis, sed ligna: neq; gladium, sectionis, sed carnem: neq; quòd victus sit Athleta, vires aduersarij, sed suam imbecillitatem. Causa continens non opus habet tempore: nam cauterium simulac carni fuerit applicatum, præbet dolorem. Ex procatarcticis aliæ quidem tempore opus habent, donec ad finem perductus fuerit effectus: aliæ autem non indigent, vt casus in fractura. Num ergo hæc non dicuntur expertia temporis per eius priuationem, sed per diminutionem, vt etiam repentè, quod nec ipsum quidem factum est absq; tempore? Omnis causa quæ tanquam causa comprehẽdi potest cogitatione, est alicuius, & versatur in aliquo. Alicuius quidem effectus, vt gladius secandi: in aliquo autẽ versatur, nempe in eo quod est aptum & accommodatum, quemadmodum ignis in ligno, nõ vret enim Adamantẽ. Causa est ex ijs quæ referuntur ad aliquid: mẽte enim cõcipitur per eam quæ est ad alterũ habitudinem & relationẽ. Quo fit vt duobus sibi inuicem applicatis, causam vt causam intelligamus. Eadem autem est ratio opificis, effectoris, & patris. Non est aliquid ipsum, sui-

B ipsius causa, neq; est aliquis pater suus: nam sic primum, futurum esset secundũ. Causa quidem certè agit & afficit: quòd à causa factum est, patitur & afficitur. Nõ potest autem idem à seipso sumptum, operari simul & affici, neq; esse filius & pater. Et alioqui id quod est causa eius quod fit ab ipsa, est prius tempore quo ad essentiã, vt gladius incisionis. Non potest autem idem simul & tempore esse prius quo ad materiam, quatenus est causa: & tempore esse posterius, quatenus est opus causæ. Et differt esse ab eo quod est factum esse: sic etiam causa quidem eius quod fit, pater verò filij. Non cõtingit enim idem per idem & esse simul & fieri: nihil est ergo sua ipsius causa. Causæ non sunt altera alterius inuicem, sed altera alteri. Spleniaca enim quæ prius existit affectio, nõ est causa febris, sed vt fiat febris: & quæ præcedit febris, non splenis causa est, sed vt augeatur affectio. Sic etiam virtutes sunt sibi inuicem causæ ne separentur, propter mutuã consequentiã: & qui sunt in fornice lapides, sunt sibi inuicem causæ manendi, non sunt autẽ sui inuicem causæ. Magister quoq; & discipulus sunt sibi inuicem causæ proficiendi. Dicuntur autem alteri alterius inter se causæ, aliquãdo quidẽ eorundem, vt mercator & caupo sunt sibi inuicem causæ vt proficiant: aliquando autẽ alterius & alterius, quemadmodũ ensis & caro: ille quidẽ carni, vt scindatur: caro aũt gladio, vt scindat. Oculũ pro oculo, & animã pro anima. Qui enim alicui vulnus inflixit letale, is ei causa est mortis, aut vt ei mors accidat: qui autẽ ab ipso est vicissim letaliter sauciatus, eũ vicissim causam habuit, non quatenus ei fuit causa, sed per aliud: ipsi enim fit causa mortis: non autẽ mors mortale ipsi vulnus vicissim intulit, sed ipse sauciatus. Quare ipse qdẽ fuit alterius causa, aliã autẽ causam

C habuit. Et qui alij fecit iniuriam, causa quidem est alterius, nempe eius cui facta est iniuria. Lex autem quæ contrà iubet eum supplicio affici, non iniuriæ ac maleficij, sed alteri quidẽ vindictę, alteri verò disciplinæ causa est. Quamobrẽ non sunt sui inuicem causæ vt causæ, si causæ sunt. Præterea quæritur an multa fiant multæ causæ vnius per congressum. Coniuncti enim homines causa sunt vt nauis attrahatur, sed cum alijs, nisi sit etiam aliqua causa adiuuans, quæ concausa dicitur. Alij autem dicunt, si multæ causæ fiunt, seorsum vna vnius causa, eius quidem quod est esse beatum, quod vnum est, causæ sunt virtutes quæ sunt multæ: & eius quod est calefieri, & dolere, multæ sunt causæ similiter. Nunquid ergo multę virtutes sunt vna potestate, & quæ calefaciũt, & dolore afficiunt: & multitudo virtutum quæ est vnum genere, fit causa vnius, nempe eius quod est esse beatum? Reuera autem procatarcticæ quidem causæ sunt vnius plures & genere & specie: & genere quidem, vt cuiuslibet morbi, exempli gratia, algor, resolutio, labor, inconcoctio, ebrietas: specie autem febris. Continentes autem causæ, genere solùm, non itidem etiam specie. Eius enim quod est bene olere, quod est vnum genere, multæ sunt causæ specie, vtpote thus, rosa, crocus, styrax, myrrha, vnguentum. Rosa enim non fuerit adeò odorifera, vt myrrha. Idem autem fit causa contrariorum, aliquãdo quidem ob causæ tum vim, tum magnitudinem, aliquãdo autem ob eius quod patitur aptitudinẽ. Ob cer-

tam quidem vim, nempe eadem chorda ob intensionem aut remissionem, acutum aut grauem edit sonum: ob aptitudinem autem eorum quæ patiuntur, mel quidem sanos dulcedine afficit, amarore aũt eos qui febre laborãt: & vnum & idem vinum, alios quidem ciet ad iram, alios verò exhilarat: & idem Sol, ceram quidem liquefacit, lutum autem exiccat. Porrò autem ex causis aliæ quidem sunt apertæ, aliæ verò obscuræ: & aliæ quidem consideratione comprehenduntur, aliæ ratiocinatione. Ex obscuris autem, aliæ quidem sunt obscuræ ad tempus, vt quæ aliquo quidem tempore abditæ fuerint, aliquando autem rursus apertè videantur: aliæ autem obscuræ natura, quæ nullo tempore possunt esse apertæ. Et ex his quidem quæ sunt natura, aliæ quidem possunt comprehendi, quas quidem vocabant non obscuras, quæ per signa sumuntur reputando ac ratiocinando, quemadmodum symmetria dubiarum orationum quæ cadunt in contemplationem: aliæ autem quæ comprehendi neque unt, quæ nullo modo possunt cadere sub comprehensionem, quę etiam omnino dicuntur obscuræ. Et aliæ quidem sunt procatarcticæ seu primordiales, aliæ verò synecticæ, id est, continentes, aliæ autem concausæ, aliæ verò adiuuantes. Et aliæ quidē, eius quod est secundum naturam, aliæ verò, eius quod est præter naturam. Aliæ aũt morbi, & per accidens, aliæ quidem affectionum, aliæ verò earum magnitudinis: aliæ autem temporum & occasionum. Atq; si tollantur quidem causæ primordiales, manet tamen effectus. Continens autem causa est, quæ si adsit, manet effectus: & si tollatur, tollitur. Continentem per synonymiam appellant, etiam per se perfectam, quandoquidem est sufficienter per se efficiens effectus. Si autem causa per se, perfectam significat operationem, adiuuans causa significat ministerium, & munus quod obit cum alio. Atq; si nihil quidem prębetur, ne dicetur quidem adiuuans: sin autem præbetur, eius fit omnino causa cuius etiã præbetur, hoc est, eius quod fit per ipsam. Est ergo causa adiuuans, quæ cùm adest fit effectus, aperta quidem apertæ, obscura autem obscuræ. Porrò autem concausa quoq; est ex genere causarum, quemadmodum commilito est miles, & coëphebus est ephebus: atque adiuuãs quidem causa, fert opem causæ continenti, ad intensionem eius quod ab ipsa fit. Concausa autē non ita mente concipitur: potest enim esse concausa, etsi non sit aliqua causa continens. Intelligitur enim concausa cum alio, quod nec ipsum per se potest effectum efficere, vt quæ sit causa cũ causa. Differt autem adiuuans causa à concausa, quòd concausa quidem, ei quod seorsum non efficit, præbeat effectum: adiuuans autem, in eo quòd seorsum quidem non efficiat, alteri autem accedens quæ seorsum efficit, ei ferat opem ad hoc vt fit effectus vehementissimus. Maximè autem ex primordiali causa factam esse causam adiuuantem, ad vim causæ intendendam adducit.

OCTAVI ET VLTIMI LIBRI STROMATVM FINIS.

SCHOLIA

# SCHOLIA IN OBSCVRIORA
## ALIQVOT CLEMENTIS LOCA.

Pagina 6.C. uersu 9. Est aūt uetus.) Adæ est error uetus, res autem noua est salus per Christum.

2.B.13. Ex columna.) De columna ignis loquitur, quæ Israelitis exeuntibus ex Aegypto duce Mose apparuit.

8.B.5. Statue aleuromantes.) ἀλευρομάντις in farina, κριθομάντις in hordeo diuinat.

8.C.6. Siue Dardanus.) Dardanus Iouis quidē filius, Phrygum autem Rex, primus dicitur incepisse mysteria Cereris.

Ibidem 7. Ab Odryso.) Odrysus Rex Thracum, cum quo gens habet idem nomen.

9.A.2. Et Phallus traditur.) φαλλὸς lignum efformatum in speciem membri uirilis.

9.A.5. Appellata est Brimo.) βριμῶ ἀπὸ τοῦ βριμᾶν, quod est fremere & irasci.

9.A.7. Et Cybelæ.) Rhea dicitur Cybele, Cybela enim sunt montes Phrygiæ, in quibus ea colitur.

9.A.16. Sabāziorum.) Sabazia mysteria quæ fiebant Dionyso, quē ex Ioue suscepit Proserpina, quem nominabant Sabazium & Zagreum.

9.B.2. Collegerit Proserpina.) Proserpina Zagream Dionysum Tauri formam seu Taurina specie appellauit, propterea quòd esset ualde agrestis.

9.B.10. Pinea nux.) κῶνος καὶ ῥόμβος, quæ & nucem pineam & trochum significant, sunt etiam genera saltationis.

9.C.7. Thesmophoria celebrant.) Thesmophoria est festus dies Cereris, sic appellatus, quoniam unà cum inuentione fructuū Cereris excogitatæ sunt leges, quæ θεσμοὶ dicuntur, cùm prius ferarum instar uiuerent.

9.C.17. Super puteum.) Hunc puteū ueteres appellabant καλλίχορον. Dicit enim Callimachus, καλλιχόρῳ ἐπὶ φρέατι καθίζεο παιδὸς ἄπαυστος.

10.B.8. Dionysi Bassari.) Bassara dicitur indumentum Bacchicum.

10.C.6. Vt Menagyrtes aliquis.) Menagyrtæ uocabantur Rheæ Sacerdotes, quòd pecunias singulis mensibus colligebant, pagos, urbes & domos obeūtes ac mendicantes, & simulachra ferentes in humeris. Hi etiā uocantur μητραγύρται, quòd matrē Deorum ferentes humeris, colligerent pecunias.

10.C.8. Et fœmininum morbum.) Fœmininum, ut puto, morbum dicit, qui conuenit fœminis: uel uoluptatem, ut quæ emolliat & effœminet corda uirorum fortium.

10.C.9. Euemerum Agrigentinum.) Euemerus est hic, quem quidam dicunt Messenium, cuius meminit Callimachus in Choriambis, dicens, γέρων ἀλαζὼν ἄδικα βιβλία ψύχει, qui malè audiebat ut ἄθεος.

10.C.10. Et Diagoram.) Diagoras Philosophus fuit Melius genere, qui cùm esset pius à principio, cōuersus est postea ad impietatē. Hac de causa, cùm is qui depositum acceperat, esset inficiatus, dixit, id quod est præstantius, nō respicere res humanas: neq; enim tam improbum hominem fuisse passurum. Huius meminit Aristophanes, cùm dicit Socratē Meliū, id est, Diagoram. Hipponis autem, qui ipse quoq; fuit impius, meminit Cratinus.

11.A.15. Conijcere est difficile.) Græcè est δυστέκμαρτος, id est, coniectu & comprehensu difficilis. Deriuatur autem à τέκμαρ, quod est locus: alludit uerò ad id quod dixerat, continet.

11.B.8. Priscus quoq; Epimenides.) Is Epimenides purgauit Athenas: erat autem Cretensis, sapientissimus, cuius meminit Menander in Cozeanomenis.

11.B.19. Ad uiuum ostendere.) Ad uiuum, ἐν χρῷ in cute, id est, propè uel uerè. Sic Hieremias, Deus appropinquans ego sum, id est, uerus.

12.A.20. Mensibus is dolio.) Dolium, Græcè κέραμος. Fuit autem κέραμος carcer: sic enim uocatur lingua Cypriorum.

12.C.5. Poemata Cypriaca.) Cypriaca poemata quæ sunt dicuntur cyclica. Continent autem raptum Helenæ. Ignoratur autem scriptor horū Cyclicorum. Cyclici autem dicuntur, qui quæ sunt circa Iliadem uel priora uel posteriora, ex ipsis cōscripserunt Homericis.

12.C.13. Dicæarchus autem gracilem.) σχίζιας gracilis apud Atticos, ut ait Diogenes, seu tenuis ac subtilis.

12.C.18. Macar autem.) Meminit etiam Macaris Homerus, cùm dicit, ὅσσον Λέσβος ἄνω μάκαρος ἕδος ἐντὸς ἐέργει.

13.C.17. In Sagra mysteria.) Sagra urbs Italiæ, à qua etiam prouerbium, Veriora ijs quæ in Sagra.

14.A.13. Qui Ilotes uocātur à Lacedæmonijs.) εἵλωτες uocantur Messenij, uel à palude quæ sita est prope Lacedæmonem, uel à uerbo ἑλεῖν. Lacedæmonij enim cùm eos cepissent, condemnarunt eos colere paludem, quod est uile & seruile officium. Sicut Penestæ apud Thessalos, & Thetes, id est, mercenarij, apud Atheniēses, sic apud Lacedæmonios Ilotes.

15.A.2. Ex quercúue petráue.) Petra, ut ex qua natos esse homines sit in fabulis.

15.B.1. πορφιβασίη.) fortè leg. ἐπιβασίη Venus, quæ facit ascendere. Scholia interpretantur ἀσχημοποιῶ, id est, quæ turpes efficit figuras.

15.B.3. χοιροψάλαν.) χοιροψάλας Dionysius colitur in Sicyone Bœotiæ, ut dicit Polemo in epistola ad Attalum. Accipitur autem χοιροψάλον pro τίλλον. Est autem χοῖρος pudendum muliebre, ut testatur Aristoph. in Achar. dicens, χοῖρε χοῖρε πῶ κοὶ, βρῶγοις αὖ ὀρεβίνθων.

15.C.1. Thebani autem mustelas.) Continet historia quòd cùm in partu laboraret Alcumena, accessit mustela & statim peperit Herculem, & ideo eum colunt Thebani.

15.C.4.Quos ipsi appellant σμίνθοι.) Cùm Cretenses expeditionẽ fecissent aduersus Troianos, & castrametati essent prope Troadẽ, mures noctu arrodebant lora clypeorum. Hinc factum est ut templum extruerent Apollini:sua autem Cretensiũ lingua eum uocarunt Smynthium: mures enim Cretenses appellant Smynthos.

15.C.15.Colitur autem quidã quoq; heros Phaleres in puppi.) Phalereus erat portus Atticæ.Qui autem in proris erat Heros,is erat Androgeus filius Minois,sic nominatus,quoniã collocabatur in proris nauium.Et Callimachus meminit in quarto Causarum.

16.A.2.O Bœotie nõ te pigeat dicere.) Bœotie, id est,ô Hesiode:erat enim Bœotius genere.

16.A.19.Ithomete Ioui trecẽtos mactauit.) Ithome est urbs Lacedæmoniæ,quã etiã dicunt esse Messenem,uel potius ubi est arx Messenæ,sicut olim arx Argorum dicebatur Larissa.

16.B.7. Et Lesbios Dionyso.) Hæc est libri inscriptio,qui cõtinet reditum eorum qui reuersi sunt ex Troia.

16.C.11.Prodidit Crœsum.) Super pyram enim cùm esset Crœsus, sic dixit, ut ait Herodotus: Quæ autem mihi acciderunt,ingrata quidem, sed docuerunt uerũ esse quod dicit Homerus,παθὼν δέ τι νήπιος ἔγνω,Passus autem stultus cognouit.

17.A.2. Phoroneus erat genere Argiuus, Merops autẽ Cous.) Oraculum circa Lebadiam Bœotiæ fuisse primũ à Phoroneo inuentũ,cũ ijs qui Dij censentur sacrificasset. Scribitur similiter etiam à Merope.

17.A.4.Inter Deos antiquissimos.) Antiquissimum Deorum amorem cum Chao & Terra fuisse natum dicit Hesiodus, cũ dicit,ἤτοι μὲν πρώτιστα χάος γένετ᾽ αὐτὰρ ἔπειτα γαῖ᾽ εὐρύστερνος,ἠδ᾽ ἔρως.

17.A.9. Diceret Philippides.) Hic Philippides erat ἡμεροδρόμος,id est,tabellarius seu ueredarius,ut dicit Herodotus.Deinde cũ Xerxes in Græciam fecisset expeditionem, is profectus ad annunciandum Laconibus aduentum Xerxis, in monte Parthenio uidet spectrum Panis eo in loco, & audit cuiusnam dæmonis esset uisum,& quòd ueniret laturus opem Græcis,& ab eo tempore Pan est existimatus Deus ab Atheniẽsibus:& cũ speluncam quæ est super Areopagum ei ædificassent, coleatũ hircum ei quotannis sacrificabant.

17.B.2.In Didymæo.) Didymæus enim Apollo Mileti colitur, uel propterea quòd simul cum sorore Diana natus sit,uel quòd sint illic duplicia eius sacrificia.

17.B.3. Hic Leucophrynes.) Leucophryne uocatur Diana in Magnesia.

17.B.4.Zenonem Myndium.) Myndus est urbs Cariæ, & Telmissus urbs Cariæ, quæ optimos habuit uates:unde erat Aristander, quicum Alexãder uersabatur,quando ædificauit Alexandriam.

18.A.7. Qui uocatur Phellata.) Phellatas lapides uocant quidam à mõte Phelleo, lapides asperos, ut Aristophanes Comicus αἶγας ἐκ φελλέως,capras ex Phelleo,utpote loco aspero.

18.A.11. Dianæ Munychiæ.) Munychia Diana colitur in Piræo.Vnde etiam pars portus uocata est Munychium.

19.C.6.Minerua Poliadis.) Dolias Minerua colitur Athenis,quæ etiam πολιοῦχος,id est,præses ciuitatis,est autem posita in arce.

20.A.1. Liberalis autem.) Liberalis Dionysus, qui colebatur Liberis:est autem is locus Bœotiæ.

20.A.4.In Iouis Olympij digito.) Alij dicunt in digito Mineruæ,ex quibus est etiã Gregorius Theologus,cũ dicit, καὶ φειδίας τὰ παιδικὰ ἐν τῷ δακτύλῳ τῆς παρθένου γράφοντα παντάρκης καλός: Et Phidias qui pusionem pingit in digito Pantarces pulcher.Libanius autem Sophista dicit Phidiam pinxisse in digito Veneris.

20.A.10.Ad Alcibiadem.) Alcibiades dux exercitus Atheniensium, uir & forma elegans, & ætate iuuenis, adeò ut multæ fœminæ eum insanè amauerint.

20.B.9. Demetrium ipsum.) Demetrius fuit Rex Macedonum & Græcorum. Quodam autem à ratione alieno œstro incitatus, Mineruam uxorem ambijt.

20.B.13. Lamiam meretricem.) Lamia quidem hæc fuit, propter quam laruæ quæ fiunt appellantur lamiæ, quæ fuerit terribilis infantibus: nam cũ suos perdidisset filios,ueluti quodam inuidiæ œstro percita,ferebatur in cædem alienorum.

20.B.15. Hipponi inuidendum.) Hippo quidã fuit ex ueteribus sapientibus: existimauit autem nõ esse deos,sed existimari solùm ab hominibus.

21.B.13. Illexit in barathrum.) Barathrum est locus Athenis profundissimus,in quem inijciebãtur damnati, quorum ne corpora quidem apparebant amplius. Erant autem alibi quoq; loca supplicio deputata,quemadmodum Ceatas Lacedæmone, Carcer autem Romæ.

23.C.17. Democritus Abderitanus.) Abdera est oppidum Thraciæ, sic appellatum ab Abdero uno ex socijs Herculis, qui fuit illic deuoratus ab equis Diomedis, quos quidem equos interfecit Hercules, & ab Abdero qui ab eo amabatur uocauit oppidũ. Eadem etiam scribuntur de Perithoo,qui fuit etiam amatus ab Hercule, & ab illo illic mortuo & sepulto ab Hercule nominata est urbs Perinthus.

31.C.16. Tertiumdecimum Macedonem.) Antiquissimi enim apud Græcos, si audiendus est Herodotus Halicarnasseus,ex Aegypto comparata fabula,octo primũ in Deos relati sunt.Deinde cũ in nimiam Græci redacti essent superstitionem, duodecim omnes sunt existimati.

32. A.6.Gorgopin & Ergatin.) γοργῶπιν & ἐργάτιν epitheta Mineruæ, quorum primũ significat oculis trucem,secundum quæ delectatur operibus.

33.C.10. Maligni cõmoda.) Maligni commoda dicit cæteros sensus, quoniam ingrediens per sensus hominem afficit iniuria.

36.C.7.Et uerbo incruentũ.) Non est enim, inquit, nobis pugna aduersus carnẽ & sanguinẽ, sed aduersus principatus, aduersus potestates tenebrarum, aduersus spiritualia nequitiæ.

31.C.2. In incesta uisceratione.) Crudas enim carnes comedebant, qui Dionyso initiabantur, hoc peragentes indicium dilaniationis Dionysi, quæ facta est à Mænadibus.

42.A.5. Et cum figura.) Illud, in figura, non est accipiendum, ut uolebant qui inducebant phantasiam, seu uisionem, sed ut Paulus, qui ipse quoq; dicens: Habitu inuentus ut homo, liberat nos ab errore Docitarum, seu phantasticum corpus in Christo statuentium. Significat autem Paulus, ut uerus fuit homo, ueram quoq; formam hominis suscepisse.

42.B.3. Ea autem sedem.) Ratiocinandi siquidem facultas locata est in cerebro, ira in corde, cupiditas in iecore.

43.A.7. Si ergo homo est propter.) Quoniam enim sua qui comprehendi non potest sapientia, præuidit hunc mundum declinare ad interitum, & necessariò opus habere ut corrigatur: ne tantum opus frustra constituisset, censuit id non aliter futurum, nisi per suæ unius creaturæ tractationem, ea ueluti instrumento usus, ut id quod lapsum erat corrigeret. Prius ergo hominem constituit, opus dignum sua reformatione, per quem eius quæ rationem superat œconomiæ peracta est uoluntas.

43.B.1. Verbum fidei.) Id est, eorum quæ dicuntur confirmatio Dominus.

44.B.15. Neque uerò ita.) Non sic habet Euangelium: dicit enim, Generationem hanc cui aßimilabo? & subiungit parabolam puerorum ludentium in foro.

44.C.2. Agnelli stent à dextris.) Nec hoc sic habet liber Domini: non dicit enim agnellos stetisse à dextris, sed oues.

45.A.11. Et pullum.) Ligans ad uitem pullum suum, & ad uineæ capreolũ pullum asinæ suæ: pullum uocat nouum populum Christianæ reip. Vitem, Gentem quæ ex lege Mosaica, & illius plantatione, se iactabat de Dei cognitione. Et quòd ita sit, Esaias filius Amos, & Dauid filius Iesse possunt esse testes fide digni: ex quibus alter Milech dicit, Vites Domini domus Israel: Dauid autem Iesse filius, Vineam ex Aegypto transtulisti. Ad hanc uitem pullum suum ligare dicit id quod est in manibus eloquium, illum ipsum qui deficiẽtibus ijs quibus ex tribu Iuda obtingebat imperare, ipse erat præfuturus, futurus quidẽ expectatio Gentiũ, nec tamen eum esse expectationem Gentium, quæ Veteris testamenti confirmatam gloriam alienet & abroget, sed quia gentilem superstitionem sperans fore ut comprimeret, legalium rituum nullum abrogauit. Vnde primi quidem prædicatores fidei in Christum, ut qui adhuc dicerentur esse Mosaicæ pædagogiæ, existimabant nihil oportere aboleri Veteris testamenti à Nouo, non Circuncisionem, non Sabbatismum, non ab aliquibus cibis abstinentiam, illud ipsum præ se ferentes, esse pullum ad uitem alligandum. Et hæc quidem ita se habuerunt, donec Iacobus frater Domini secundum carnem, & Paulus diuinus Apostolus, Legi quidem nimiam purgationem, & nimis anxiam de cibis curam resecuerunt: Gentilem autem nauem paucißimis agitari permiserunt, nempe ut se abstinerent à fornicatione, immolatis, & suffocato: quando qui prædictus esset ad uitis capreolos alligandus, pullus uenit ad opus, & qui ex uno ex Mosaicis præceptis, nempe de diuinitate, colligabatur uiti, & ex Mosaicis institutionibus uelut ab obstetrice primò eductus fuerat, ex meliori rursus, nempe Apostolica quæ est in Christo cognitione scilicet, prodit in lucem, liberatus à iugo Legis, & in liberam adductus rempublicam. Ac de uite quidem & ad uitis capreolum alligato pullo quod adducit eloquium, satis aptam, ut existimo, habuit contemplationem.

47.C.12. Gratia, illuminatio.) Ex his tractandi rationem sumpsit Gregorius cognomine Theologus in oratione, quæ inscribitur εἰς φῶτα.

48.A.11. Ipsi enim uos.) Hoc quoq; congruit cũ prophetia Hieremiæ quæ dicit: Omnes me noscent à paruo usq; ad magnum eorum.

50.C.14. Sed illud.) Quod dictum est ab Apostolo de uerbis quæ non licet homini loqui, non ita accipiendum est, quòd quæ dixit sint tacenda. Quo modo enim, cũ ipse in suis multa proferat Epistolis? Qui enim non erat Apostolus cum Christus in hac nostra uita ageret, quomodo dicit, Ego accepi à Domino, quod & tradidi uobis? Et rursus: De uirginibus præceptum Domini non habeo? Non significat itaq;, non esse enunciandum, sed, Non licet, significat cum tanta authoritate & dignitate ea dicta esse, quanta assequi nequeat humana natura. Huius rei fides fit ex ijs quæ dicuntur in Euangelio de doctrina Christi, quòd docebat turbas cum potestate, sed non ut Scribæ & Pharisæi, scilicet cum adulatione.

63.A.4. Duplex.) Duplex est metus: unus quidem qui inchoat, qui etiam conuertit, ut est metus eorum qui metu suppliciorum conuertuntur à peccatis: alter uerò perficiens, de quo etiam dicit Dauid: Timete Dominum omnes sancti eius, quoniam nihil deest metuentibus eum.

64. A. 14. Et dixeritis, pater.) Et quomodo Gregorius Nyssenus in expositione orationis Dominicæ, dicit eos qui tenentur peccatis, si dicant Pater noster, non bonũ Deum uocare patrem, sed aduersarium? quòd uel non conuertentur labijs, ut uocent Patrem, uel non ex toto corde.

69. A.7. Casus est.) Sicut indigna res est charitatem à cælo detrahere, ita etiam sumptuosam cœnã in charitatem, nempe agapen conuertere.

72. A. 7. A uerbi floribus.) Florum non meminit intempestiuè, sed quia paulò pòst & plantarum & fontis & irrigationis erat usum adducturus, iurè prius accepit florem qui nascitur ex plantis.

77.C.5.Therìdei calices.) Sunt hæc genera poculorum. Theracleũ est quod fundo sphærico impositũ habet instar infundibuli, ex quo est facile bibere. Antigonium, quod absque fundo sphærico desinit in acutum. Cantharus autem est peluis quidem simile, supernè autem tectum operculo, cuius os in medio iusta patet symmetria, & in extrema parte circunferentiæ ostiolum, ex quo bibere potest qui id aperit. Labronium est poculum factum in formam aspidis, ex quo pleno haustu potest ingurgitare qui bibit. Lepaste est in formam ollæ, & una ansa apprehenditur. Psycter est figuræ cylindricæ segmentum, quod sectionis cylindricæ innititur columellæ, qua & stare & apprehẽdi potest. Prochois, quæ etiam dicitur œnochoe, est uas quoddam sphæricum, ansa una & uno saliente instructum, ex quibus ansa quidem apprehenditur, saliente uerò humidum quod est intus reconditum effunditur.

36.A.4. Nam neq; genu.) Per hæc uidetur tale quid significare, quòd nec in nominibus membrorum cõsideratur turpitudo: neq; enim tibia, nec genu, uerbi gratia, turpe quid significant, ut neque os, nec lingua, sic nec uerendum: sed si rem accuratè oportet perpendere, honestas quædam nomini tribuitur, significans uerendum id de quo dicitur. Sic etiam patrem & superiorem aliquem uerẽdum dicimus, ut etiã Helena apud Homerũ suũ socerũ.

84. A. 17. Sermonem ne iteraueris.) Et quomodo Samuelis Anna eadem sæpe in sua oratione repetit, & nos sæpe repetentes Kyrieeleison, minimè improbamur? sed existimo eloquium minimè hoc dicere, sed quòd quæ Deo uouerimus, ea esse Deo statim reddenda, nec expectandum ut idem rursus promittas, perinde ac si putaremus uerbis adimpleri gratiam, & accessione præstiti promissi uellemus nostrorum morum ostentare insolentiam.

85.B.19. Brenthium.) A quodam suaui genere floris sic dictum. Metallium, à quodam Metallo qui inuenit.

Ibid. Plangonium, ab inuentrice Plangone.

85.C.1. Et baccari.) Baccari genus unguẽti Barbarici.

96.A.3. Crobulo.) Huius Crobuli meminit etiã Thucydides in prooemio quarti Peloponnesiaci. Erat genus reticuli crobylus, ab extremis crines extẽdens ad uerticem, deinde eos deducens in acutũ, qui perforata aurea cicada constringebantur ne deorsum diffluerent.

96.A.12. Ipso mundo.) κόσμος mundum & ornatum significat, sicut etiam muliebris mundus Latinè dicitur.

97.B.11. Xystides.) Xystis est genus uestis admodum subtile, unde etiam dictum est ἀπὸ τοῦ ξέσθαι, quòd sit ueluti rasum propter tenuitatem. Ephaptis autem idem est quod lena. Est enim utrunque genus uestis penulæ simile, quod indutis uestibus imponitur. Est autem ephaptis lena preciosior.

97.C.12. Trahere autem uestes.) Vt insani Nicolaitæ, qui ipsum cacodæmonem ducem imitantur.

97.C.18. Talarem Domini uestem.) Legis dicit uestem sacerdotalem: sed hoc erat signum mysticum: significat enim, ut arbitror, nihil esse diuinorum mysteriorum prophanis euulgandum: siquidem pedes significant transitum actionum, sicut etiam Dauid dicit, obseruari calcaneum ab improbis. Et alibi dicit, in malo die se timere iniquitatem calcanei.

98. A. 5. Sicut Lacænas uirgines.) Quæ eò quòd femora ostenderent, uocabantur φαινομηρίδες.

98. A. 7. Pulcher cubitus.) Hoc dixit quispiam intuitus cubitum mulieris Lacedæmoniæ: quæ respondit, Sed non publicus: nam & sine manicis saltabant, adeò ut ab humeris uideretur & brachiũ & corpus, idqúe adhuc uidetur in ueteribus statuis. Quæ manicis autem non utebantur, dicebantur δωρίζειν: erant enim Dorienses Lacedæmonij. Quæ autem utebantur, ἰωνίζειν, ut uxores Atheniensium. Vocabantur autem Athenienses Iones, ob missam coloniam. Hoc autem faciebant Lacedæmonij, ut uiriles efficerent mulieres, Athenienses uerò ut effœminarent.

99. A. 3. Fuscas aut uirides.) Fuscus color dicitur qui non est admodum albus: tales autem sunt qui uocantur Sardonychi, qui quidem sunt naturales: non habent enim album ualde lucidum, si non sint artificiales. Quinetiam addantur his Sapphiri, nam illi quoque ad album cum fusco uergunt. Sunt autem multi quoque uirides Iaspides, & Smaragdi, & alij multi. Quæ ab externi autẽ maris æstu expelluntur, sunt quæ dicuntur margaritæ: enascuntur enim ex ostreis sinus Persici. Terræ autem ramenta sunt omnes gemmæ: tales enim sunt, Lychnitæ, & Carbunculi, & Amethysti. Præterea autem Berilli & Smaragdi, & Hyacinthi, & omnes ferè gemmæ. Topazij autem, si credendum est Agatarchidi, qui scripsit de rubro mari, inueniuntur ẽn medijs quæ in eo sunt cautibus.

101. C. 1. Quæ ergo.) Hoc referendum est ad id quod superius dictum est, ut sit, Et non erubescunt non intelligentes spiritaliter ea quæ symbolicè dicta sunt, utpote quòd mulieres adducerent ea quæ dicta sunt, creaturas, gemmas, & gemmarum colores.

180.B.15. Aristophanes ostendit.) Sunt hæc nomina ornamentorum mulierum apud Aristophanẽ: quæ & cuiusmodi fuerint ignorantur, nec possunt reddi Latinè.

101.A.17. Si sunt enim.) Si sint pulchræ, sufficit natura, ne contendat ars cum natura. Sin autem sint natura turpes, seipsas arguunt, ex eo quòd applicãt quod non habent.

104.B.1. Depressior est.) Est quidem hic locus Græcè corruptus, sed hanc esse existimo sententiam.

106.A.8. Mastichen rodentes, ut sordes scilicet ex dentibus emundent.

106.A.9. Metoposcopus, qui ex frontis inspectione hominis naturam coniectat.

107.B.2. Et coxarum.) Coxarum, Græcè λορδουμένους, id est, posteriores lumborum partes constringendo, anteriùs protendere pectus. Id enim significat λόρδος, quod est cōtrarium dictioni κύρτος, id est, conuexus.

107. C. 8. Muliebria.) Sceleratas intelligit Tribades, quas uocant etiam Lesbias & Etæristrias.

109. B. 9. Circulatoribus, Græcè est μητραγύρτας. Sunt autem Metragyrtæ qui matri Deorum Rheæ dedicati, & præstigias inducunt, & philtra componunt, quos etiam Gallos uocant, qui sibi absciderunt uirilia, & sunt ad turpia patienda paratißimi.

109. C. 18. Melitæo catello.) Melitæus catellus paruus & humilis, quem νανύδιον uocant, ex eo quòd in altum non assurgat. Est enim νανύδιον diminutiuum à νάνος, quod paruum hominem significat. Dicitur autem Melitæus, à Melite insula in mari Tyrrheno.

111.A.13. Cynira ditior.) Cyniras fuit Cypriorū Rex longè ditißimus. Is fertur ab irata Venere impulsus, filiæ suæ Myrrhæ stuprum intulisse, ex qua natus est Adonis.

112.A.11. Sub rhamno.) Scriptura dicit sub iunipero, & panē ὀλυρίτην: est autem ὄλυρα quod multi uocant βρόμιον.

115.A. 6. Qui Phenis dicitur.) Phenis ludus est eiusmodi. Ex ludentibus pueris quis sphærā tenēs, deinde eam alij prius ostendens, eam ad alium mittebat. Ita autem dictus est uel à Phenicida qui prius inuenit, uel à uerbo φενακίζειν, quod significat decipere. Decipiebat enim, ut qui alij quidem ostenderet, alij uerò traderet.

SCHOLIORVM FINIS.

# IN CLEMENTIS ALEXANDRINI OPERA RERVM MEMORABILIVM INDEX.

D



E



F



Fortis

Q



Quæstio-

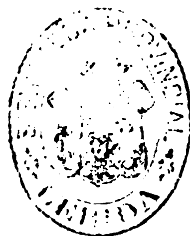

INDICIS FINIS.

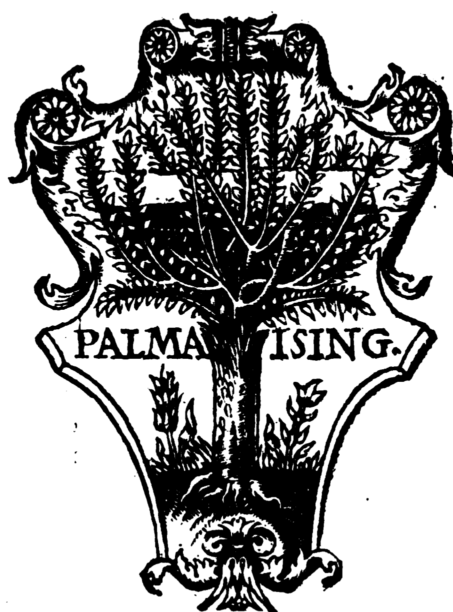
PALMA ISING.